।। पूर्ण परमात्मने नमः ।।

श्रीमद्भगवद्गीता

गहरी नजर गीता में

--: अनुवाद कर्ता :--

(संत) रामपाल दास महाराज

कबीर पंथी

जीव हमारी जाति है, मानव धर्म हमारा।
हिन्दु, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई, धर्म नहीं कोई न्यारा।।

कुल लागत : 200/- रू.
धर्मार्थ मूल्य : मात्र 50/- रू.

अनुवादकर्ता :- संत रामपाल दास

प्रकाशक :-

सतलोक आश्रम

सतलोक आश्रम, चण्डीगढ़ रोड़, बरवाला, जिला हिसार हरियाणा।

☎ 8222880541, 8222880542, 8222880543
8222880544, 8222880545

मुद्रक :- कबीर प्रिंटर्स
C-117, सैक्टर-3, बवाना इन्डस्ट्रियल ऐरिया, नई दिल्ली।

---

e-mail : jagatgururampalji@yahoo.com
visit us at - www.jagatgururampalji.org

विषयानुक्रमणिका

1. भूमिका -- A-D
2. दो शब्द -- 1
3. पवित्र गीता जी का ज्ञान किसने कहा ? ---------------------- 2
4. विराट रूप क्या होता है ? ---------------------- 4
5. संक्षिप्त महाभारत का लेख -------------------------------------- 7
6. काल की परिभाषा -- 10
7. अन अधिकारी से यज्ञ व पाठ करवाना व्यर्थ है --------------- 13
8. प्रभु प्रेमी पाठकों की शंकाओं का समाधान-रामपाल दास ------- 13

सृष्टि रचना

1. (असंख्य ब्रह्मण्डों का लघु चित्र)-------------------------------------- 17
2. कविर्देव (कबीर परमेश्वर) ने अपने द्वारा रची सृष्टि का ज्ञान स्वयं ही बताया है--- 19
3. आत्माऐं काल के जाल में कैसे फंसी ?------------------------------- 20
4. (एक ब्रह्मण्ड का लघु चित्र)-- 22
5. (ब्रह्म लोक का लघु चित्र)-- 23
6. श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी व श्री शिव जी की उत्पत्ति ----------- 25
7. तीनों गुण क्या हैं ? प्रमाण सहित------------------------------------ 26
8. ब्रह्म काल की अव्यक्त रहने की प्रतिज्ञा-------------------------------- 27
9. ब्रह्मा का अपने पिता(काल) की प्राप्ति के लिए प्रयत्न------------- 29
10. माता दुर्गा द्वारा ब्रह्मा को शाप देना--------------------------------- 30
11. विष्णु का अपने पिता ब्रह्म की प्राप्ति के लिए प्रस्थान व माता का आर्शीवाद पाना-- 31
12. (एक ब्रह्मण्ड का लघु चित्र)-- 32
13. ज्योति निरंजन (काल) ब्रह्म के लोक (21 ब्रह्मण्ड) का लघु चित्र- 33
14. परब्रह्म के सात संख ब्रह्मण्डों की स्थापना--------------------------- 37
15. वेदों में सृष्टि रचना का प्रमाण-- 38
16. पवित्र अथर्ववेद में सृष्टि रचना का प्रमाण--------------------------- 38

17. पवित्र ऋग्वेद में सष्टि रचना का प्रमाण---------------------------- 42
18. पवित्र श्रीमद्देवी महापुराण में सष्टि रचना का प्रमाण (दुर्गा अर्थात् प्रकति तथा सदा शिव अर्थात् काल रूपी ब्रह्म की मैथुन क्रिया से ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव की उत्पत्ति)-- 46
19. श्री मद्देवीभागवत से लेख--- 48
20. पवित्र शिव महापुराण में सष्टि रचना का प्रमाण (दुर्गा अर्थात् प्रकति तथा सदा शिव अर्थात् काल रूपी ब्रह्म की मैथुन क्रिया से ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव की उत्पत्ति)-- 51
21. श्री विष्णु पुराण में सष्टि रचना का प्रमाण------------------------------- 58
22. श्री विष्णु पुराण का सारांश-- 67
23. पवित्र श्रीमद्भगवत गीता जी में सष्टि रचना का प्रमाण (दुर्गा तथा ब्रह्म की मैथुन क्रिया से ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव की उत्पत्ति)-------------- 70
24. उल्टे लटके हुए संसार रूपी वक्ष का लघु चित्र--------------------- 71
25. सर्व प्रभुओं की आयु-- 74
26. पवित्र बाईबल तथा पवित्र कुर्आन शरीफ में सष्टि रचना का प्रमाण- 76
27. पूज्य कबीर परमेश्वर(कविर् देव) जी की अमतवाणी में सष्टि रचना- 78
28. आदरणीय गरीबदास साहेब जी की अमतवाणी में सष्टि रचना का प्रमाण-- 81
29. गरीबदास जी महाराज की वाणी-- 83
30. (काल लोक में जन्म-मरण रूपी हरहट (चक्र) का चित्र) ---------- 84
31. आदरणीय नानक साहेब जी की वाणी में सष्टि रचना का संकेत-- 87
32. राधा स्वामी व धन-धन सतगुरु सच्चा सौदा पन्थों के सन्तों तथा अन्य संतों द्वारा सष्टि रचना की दन्त कथा------------- 90

पहला अध्याय

1. दिव्य सारांश -- 93
प्रथम अध्याय के अनुवाद सहित श्लोक ------------ 94

दूसरा अध्याय

1. दिव्य सारांश -- 105
2. गीता ज्ञान बोलने वाले के भी जन्म-मत्यु होते हैं -------------- 105

3.	अविनाशी प्रभु तो गीता ज्ञान दाता से अन्य है ----------------	106
4.	नकली संत की कथा --	111
5.	पूर्ण परमात्मा की साधना करने तथा समर्थता का सटीक वर्णन	113
6.	शब्द - 'सतलोक में चल मेरी सुरता' --------------------------	116
7.	वेदों में वर्णित साधना विधि से विकार नहीं मरते -------------	122
8.	ब्रह्मा से मन व काम(सैक्स) वश नहीं हुआ --------------------	125
	द्वितीय अध्याय के अनुवाद सहित श्लोक ----------	127

तीसरा अध्याय

1.	दिव्य सारांश ---	149
2.	शास्त्र विधि रहित पूजा अर्थात् मनमाना आचरण का विवरण ----	149
3.	यज्ञों का लाभ केवल सांसारिक सुविधाएँ, मुक्ति नहीं --------	151
4.	जो धर्म नहीं करते वे चोर व पापी प्राणी हैं ------------------	154
5.	काल ब्रह्म का उत्पत्तिकर्ता तथा यज्ञों में प्रतिष्ठित पूर्ण परमात्मा है --	155
6.	मनोकामना पूर्ति के बिना किया हुआ धर्म पूर्ण लाभदायक---------	159
7.	कथनी और करनी में अंतर ------------------------------------	159
8.	विद्वानों को शास्त्रानुसार साधना करनी चाहिए ----------------	160
9.	दूसरों की दिखावटी घटिया साधना से अपनी शास्त्र - विधि अनुसार साधना अच्छी ------------------------------------	163
10.	एक दुःखी परिवार की कहानी ---------------------------------	163
11.	मान बड़ाई जान की दुश्मन ------------------------------------	164

-: नकली नामों से मुक्ति नहीं :-

1.	सतनाम के प्रमाण के लिए कबीरपंथी शब्दावली से सहाभार--	167
2.	धर्मदास को सतनाम कबीर साहेब ने दिया -------------------	167
3.	सतनाम का गरीबदास जी महाराज की वाणी में प्रमाण-------	167
4.	श्री नानक साहेब की वाणी में सतनाम का प्रमाण-------------	168
5.	शब्द : ''संतों शब्दै शब्द बखाना'' -----------------------------	173
6.	सारशब्द बिना सतनाम भी व्यर्थ --------------------------------	174
7.	नामदेव जी की वाणी में सतनाम का प्रमाण ------------------	175

8.	गलत नाम मूर्खो की उपासना ---------------------------------	176
9.	काल के जाल का वर्णन ---------------------------------------	176
10.	शब्द : ''कर नैनों दीदार महल में प्यारा है'' -----------------	177
11.	नकली गुरु को त्याग देना पाप नहीं --------------------------	182
12.	सतनाम का विशेष प्रमाण ------------------------------------	183
13.	अवधू अविगत से चल आए---------------------------------------	184
14.	शब्द : ''ऐसा राम कबीर ने जाना'' --------------------------	193
15.	संसार रूप वक्ष के मूल, तना, डार, शाखा तथा पत्तों का वर्णन	194
16.	गीता में भी संसार वक्ष का वर्णन ------------------------------	194

-: सतमार्ग दर्शन :-

1.	रमैणी :''मैं तोहे पूँछू पंडित ज्ञानी'' --------------------------	196
2.	रमैणी :''वेद कतेब झूठे नहीं भाई'' -------------------------	197
3.	(कबीर साहेब द्वारा अंध विश्वास का निवार्ण करना चित्र)-----	198
4.	पितरों को जल देना व्यर्थ -------------------------------------	199
5.	भगवान शंकर के भी मन व काम(सैक्स) वश नहीं हुआ-------	199
	ततीय अध्याय के अनुवाद सहित श्लोक ---------	205

चौथा अध्याय

1.	दिव्य सारांश ---	220
2.	गीता ज्ञान बोलने वाला भी जन्मता-मरता है ------------------	220
3.	पूर्ण ज्ञानी काल जाल में नहीं रहते ----------------------------	222
4.	कर्मों के बन्धन से त्रिलोकी नाथ भी नहीं बचे ------------------	222
5.	जो जैसी साधना करता है, उसे ही गलती से पापनाशक जानता है --	223
6.	नाम के साथ-साथ यज्ञ भी आवश्यक --------------------------	225
7.	तत्वदर्शी संतों से ज्ञान समझकर भक्ति करने से पूर्ण मुक्ति संभव --	226
	चौथे अध्याय के अनुवाद सहित श्लोक ------------	229

पांचवां अध्याय

1. दिव्य सारांश -- 242
2. कर्म सन्यासी से कर्म योगी उत्तम हैं ---------------------------- 243
3. श्रंगी ऋषि जैसे कर्म सन्यासी भी असफल रहे ---------------- 245
4. वेदों में वर्णित साधना से विकार रहित नहीं होते ------------- 247
5. नारद जी की कहानी -- 247
6. कर्मसन्यासी को त्याग का अभिमान हो जाता है --------------- 250
7. सुखदेव ऋषि की कथा -- 250
8. आदरणीय गरीबदास साहेब जी की वाणी ---------------------- 254
9. राजा अम्ब्रीष कर्म योगी तथा दुर्वासा ऋषि कर्म सन्यासी थे -- 256
10. गीता ज्ञान बोलने वाले से अन्य पूर्ण परमात्मा है ------------- 259
11. प्राणी अपने स्वभाव वश चलते हैं ------------------------------ 259

-: पंडित की परिभाषा :-

1. साहेब कबीर द्वारा भैंसे से वेद मन्त्र बुलवाना ----------------- 260
2. (चित्र-साहेब कबीर द्वारा भैंसे से वेद मन्त्र बुलवाना)----------- 262
3. वार कौन तथा पार कौन? --------------------------------------- 264
4. शब्द : 'कोई है रे परले पार का' ------------------------------- 264
5. अजपा जाप से विकार मरते हैं ---------------------------------- 266
6. दयालु परमात्मा कौन? -- 267

पाँचवें अध्याय के अनुवाद सहित श्लोक ---------- 269

छठवां अध्याय

1. दिव्य सारांश -- 282
2. हठयोग करके ध्यान करना गीता ज्ञान दाता का मत व्यर्थ है -- 284
3. ध्यान समाधि का फल --- 284
4. योगी कौन? -- 285
5. गीता ज्ञान में विरोधाभास -- 286

6. पूर्ण परमात्मा प्राप्त करने की विधि व व्रत निषेध की जानकारी -- 287
7. मन का रोकना वायु रोकने के समान ------------------------ 288
8. साधक का साधना बिगड़ने पर क्या होगा? -------------------- 289
9. पूर्ण योगी कौन? -- 293
छठे अध्याय के अनुवाद सहित श्लोक ------------ 295

सातवां अध्याय

1. दिव्य सारांश -- 310
2. इस ज्ञान को जानने के बाद कुछ जानना शेष नहीं ---------- 310
3. तीनों गुण क्या हैं? प्रमाण सहित -------------------------------- 312
4. ''देवी दुर्गा का पति है'', का प्रमाण -------------------------- 313
5. ब्रह्मा, विष्णु, शिव(त्रिगुण माया) जीव को मुक्त नहीं होने देते 314
6. गीता ज्ञान देने वाले ने अपनी भक्ति से होने वाली गति को अनुत्तम यानि घटिया क्यों कहा? -------------------------------- 315
7. अन्य देवताओं (रजगुण ब्रह्मा, सतगुण विष्णु, तमगुण शिव) की पूजा बुद्धिहीन ही करते हैं ---------------------------------- 320
8. ज्योति निरंजन(काल) कभी स्थूल शरीर आकार में सर्व के समक्ष नहीं आता -- 321
9. काल के जाल से कौन छूटते हैं? ----------------------------- 323
सातवें अध्याय के अनुवाद सहित श्लोक -------- 325

आठवां अध्याय

1. दिव्य सारांश -- 338
2. वह तत् ब्रह्म यानि पूर्ण ब्रह्म कौन है?---------------------------- 338
3. काल का उपासक काल ब्रह्म को तथा पूर्णब्रह्म का उपासक परम अक्षर ब्रह्म को प्राप्त होता है ------------------------------ 338
4. पूर्ण ब्रह्म का साधक उसी को प्राप्त होता है ------------------- 339
5. ब्रह्म(काल) प्राप्त साधक का सुख क्षणिक है-------------------- 340
6. महाप्रलय में ब्रह्मण्ड में बना ब्रह्मलोक भी नष्ट हो जाता है---- 341

7. प्रलय की जानकारी-- 341
8. सर्व प्रभुओं की आयु--- 346
9. परब्रह्म (अक्षर पुरूष) से भी दूसरा सनातन अव्यक्त
सतपुरुष (पूर्णब्रह्म) है-- 348
10. तीन प्रभुओं का प्रमाण -- 348
11. ब्रह्म(काल) का परम धाम सतलोक ---------------------------- 349
12. पूर्ण परमात्मा को अनन्य भक्ति से ही प्राप्त किया जा
सकता है-- 349
आठवें अध्याय के अनुवाद सहित श्लोक ---------- 351

नौवां अध्याय

1. दिव्य सारांश --- 365
2. पूर्ण परमात्मा ही सर्व जीवों का आधार ------------------------ 365
3. ब्रह्म (काल) उपासक का जन्म-मरण निश्चित है -------------- 366
4. प्रकति व ब्रह्म (काल) से प्राणियों की उत्पत्ति ----------------- 366
5. ब्रह्म (काल) कभी स्थूल शरीर में आकार में नहीं आता-------- 367
6. ब्रह्म (काल) के उपासक उसी का आहार ---------------------- 367
7. पवित्र वेदों अनुसार साधना का परिणाम केवल स्वर्ग -
महास्वर्ग, मुक्ति नहीं -- 369
8. वेदों के अनुसार साधना न करने वाले पूर्ण मुक्त नहीं -------- 370
9. श्राद्ध निकालने (पितर पूजने) वाले पितर बनेंगे, मुक्ति नहीं- 370
10. अति दुराचारी भी भक्ति करने वाला महात्मा के समान-------- 374
नौवें अध्याय के अनुवाद सहित श्लोक ------------ 378

दशावां अध्याय

1. दिव्य सारांश --- 390
2. ब्रह्म (काल) की उत्पत्ति का प्रमाण ------------------------------ 390
3. पूर्ण ज्ञानी पूर्ण परमात्मा की ही पूजा करते हैं,
ब्रह्म (काल) की नहीं --- 391
4. ब्रह्म (काल) द्वारा ही शास्त्र (वेद) उत्पन्न ----------------------- 391

5. ब्रह्म (काल) के उपासक उसी के आधार ---------------------- 391

दशवें अध्याय के अनुवाद सहित श्लोक ----------- 395

ग्यारहवां अध्याय

1. दिव्य सारांश -- 406
2. अर्जुन द्वारा भगवान काल की वास्तविकता जानने की प्रार्थना- 406
3. अर्जुन को भगवान (काल) द्वारा दिव्य दृष्टि प्रदान करना तथा अपना वास्तविक काल रूप दिखाना--------------- 406
4. संजय द्वारा काल रूप का विवरण ----------------------------- 406
5. अर्जुन द्वारा काल रूप का आँखों देखा हाल बताना --------- 406
6. अर्जुन पूछता है कि वास्तव में आप कौन हो ? --------------- 407
7. गीता ज्ञान दाता स्वयं को काल बताता है --------------------- 407
8. ब्रह्म (काल) भगवान की प्राप्ति अति असंभव ------------------- 408
9. चतुर्भुज महाविष्णु रूप में भी दर्शन वेदों व तप, - दान, यज्ञ आदि से नहीं, केवल अनन्य भक्ति से ------------- 408

ग्यारहवें अध्याय के अनुवाद सहित श्लोक--------- 413

बारहवां अध्याय

1. दिव्य सारांश -- 431
2. सत्यनाम व सारनाम बिना निराकार व साकार रूप में ब्रह्म (काल) उपासक काल के ही जाल में रहते हैं ------------ 431

बारहवें अध्याय के अनुवाद सहित श्लोक --------- 434

तेरहवां अध्याय

-: पूर्ण परमात्मा की महिमा का वर्णन :-

1. दिव्य सारांश -- 440
2. क्षेत्र व क्षेत्रज्ञ की परिभाषा --------------------------------------- 440
3. आन उपासना को व्यभिचारिणी भक्ति बताना ------------------ 440

4. पूर्ण परमात्मा ही जानने व भक्ति योग्य है---------------------- 441
5. पूर्ण परमात्मा तथा प्रकति दोनों अनादि ----------------------- 443
6. अन्य अनुवादकर्ताओं का गोलमाल ----------------------------- 444
7. मनमुखी साधना व्यर्थ --- 446
8. भक्ति के लिए अक्षर ज्ञान आवश्यक नहीं ---------------------- 446
9. पूर्ण ज्ञानी वही है जो पूर्ण परमात्मा को अविनाशी मानता है - 446
10. शब्द : ''मन तु चल रे सुख के सागर''------------------------ 448
11. देवी-देवताओं का राजा इन्द्र भी गधा बनता है ---------------- 449
12. क्षेत्र (शरीर) क्षेत्रज्ञ (ब्रह्म) तथा क्षेत्री (परमात्मा आत्मा सहित) को जानकर भक्त काल जाल से मुक्त हो जाता है ----------- 450
तेरहवें अध्याय का अनुवाद सहित श्लोक --------- 452

चौदहवां अध्याय

1. दिव्य सारांश -- 462
2. ब्रह्म(काल) द्वारा अति उत्तम ज्ञान की जानकारी -------------- 462
3. परमात्मा के क्या धर्म-गुण होते हैं? ----------------------------- 463
4. भगवान कष्ण प्रभु परंतु पूर्ण समर्थ नहीं ----------------------- 463

-: साहेब कबीर पूर्ण परमात्मा :-

1. मतक गाय को जीवित करना ------------------------------------ 463
2. मतक लड़के कमाल को जीवित करना ------------------------- 467
3. चित्र - (मतक लड़के कमाल को जीवित करना)---------------- 468
4. चित्र - (मतक लड़की कमाली को जीवित करना)------------- 469
5. मतक लड़की कमाली को जीवित करना ---------------------- 470
6. लड़के सेऊ (शिव) को जीवित करना -------------------------- 470
7. ब्रह्म(काल) व प्रकति (दुर्गा) से सर्व प्राणी तथा ब्रह्मा, - विष्णु, शिव की उत्पत्ति -- 473
8. तीनों - ब्रह्मा(रजगुण), विष्णु(सतगुण), शिव(तमगुण) - आत्मा को शरीर में बाँधते हैं अर्थात् मुक्त नहीं होने देते ----- 473
9. ब्रह्मा की उपासना से उपलब्धि ---------------------------------- 473

10.	शिव की उपासना से प्राप्ति ------------------------------------	474
11.	विष्णु की उपासना से प्राप्ति -----------------------------------	474
12.	ब्रह्मा, विष्णु, शिव कर्त्ता नहीं -----------------------------------	475
13.	ब्रह्मा, विष्णु, शिव की साधना त्याग कर पूर्ण परमात्मा- की पूजा करनी चाहिए ---	475
14.	तीनों गुणों से अतीत अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु, शिव की - भक्ति से ऊपर उठे भक्त के लक्षण ----------------------------	475
15.	ब्रह्म (काल) की उपासना का लाभ देवी-देवताओं व - ब्रह्मा, विष्णु, शिव की भक्ति त्याग कर होता है ----------------	476
16.	पूर्ण परमात्मा की प्राप्ति में काल ब्रह्म सहयोगी ---------------	476
	चौहदवें अध्याय के अनुवाद सहित श्लोक----------	478

पंद्रहवां अध्याय

1.	दिव्य सारांश --	486
2.	सष्टि रूपी वक्ष का वर्णन --------------------------------------	486
3.	(उल्टे लटके हुए सष्टि रूपी वक्ष का चित्र)---------------------	487
4.	पूर्ण परमात्मा की जानकारी ------------------------------------	488
5.	तीन पुरूषों (प्रभुओं) का वर्णन ----------------------------------	490
6.	ब्रह्म(काल) नाशवान है --	490
7.	वास्तव में अविनाशी पूर्ण परमात्मा -----------------------------	491
8.	गीता एक शास्त्र है ---	493
	पन्द्रहवें अध्याय के अनुवाद सहित श्लोक --------	495

सोलहवां अध्याय

1.	दिव्य सारांश --	502
2.	सुर व असुर स्वभाव के व्यक्तियों का वर्णन -------------------	502
3.	विकारी प्राणी भक्ति नहीं कर सकते ---------------------------	504
4.	शास्त्र विरूद्ध पूजा व्यर्थ (नरक दायक)-------------------------	504
5.	(शास्त्रानुकूल साधना अर्थात् सीधा बीजा हुआ भक्ति रूपी पौधा का चित्र)--	506

6. (शास्त्रविरूद्ध साधना अर्थात् उल्टा बीजा हुआ भक्ति रूपी पौधा का चित्र)-- 507

सोलहवें अध्याय के अनुवाद सहित श्लोक -------- 508

सतरहवां अध्याय

1. दिव्य सारांश -- 515
2. सर्व प्राणी शास्त्र विधि रहित भक्ति भी स्वभाव अनुसार ही करते हैं -- 515
3. शास्त्र विधि को त्याग कर साधना करने वाले भगवानों को दुःखदाई तथा नरक अधिकारी ----------------------------- 516
4. शरीर (पिण्ड) में कमलों (चक्रों) का चित्र --------------------- 517
5. यज्ञों की जानकारी -- 520
6. तप की परिभाषा --- 520
7. ऊँ-तत्त-सत्त का विस्तत वर्णन ------------------------------------ 524
8. श्रद्धा भाव बिना भक्ति व्यर्थ ------------------------------------- 526
9. भगवान कष्ण का विदुर के घर अलुणा साक खाना ----------- 526
10. पाण्डवों की यज्ञ में सुपच सुदर्शन द्वारा शंख बजाना --------- 527
11. पाण्डव यज्ञ की शेष कथा -- 531
12. सतनाम व सारनाम बिना सर्व साधना व्यर्थ -------------------- 537
13. कुम्भ के मेले में प्रथम स्नान करने पर कत्ले आम ----------- 539

सतरहवें अध्याय के अनुवाद सहित श्लोक ------- 541

अठाहरवां अध्याय

1. दिव्य सारांश -- 552
2. त्यागने और न त्यागने योग्य कर्मों का ज्ञान ------------------- 552
3. भक्तों का वर्तमान विष के तुल्य होता है और परिणाम अमत के तुल्य होता है --- 556
4. जो भक्ति नहीं करते, उनका वर्तमान अमत के तुल्य होता है और परिणाम विष के तुल्य होता है ---------------------------- 556
5. गीता ज्ञान देने वाले से अन्य पूर्ण परमात्मा का ज्ञान --------- 557

6. शुद्र भी भगवान की भक्ति का अधिकारी है --------------------- 557
7. अर्जुन भगवान ब्रह्म (काल) की शरण में रहा फिर भी - पाप मुक्त नहीं हुआ --- 565
8. साहेब कबीर की गोरख नाथ से ज्ञान गोष्ठी-------------------- 566
9. चित्र - (साहेब कबीर व गोरख नाथ की ज्ञान गोष्ठी)----------- 568
10. साहेब कबीर ने श्री रामानन्द जी को सतज्ञान कराया --------- 572
11. गीता का ज्ञान सुनने व सुनाने वाले भी काल के ही जाल में - 572

अठारहवें अध्याय के अनुवाद सहित श्लोक------ 574

आँखों वाले अंधे

-: शंका समाधान :-

1. मुझ दास (संत रामपाल दास) का तत्व भेद प्राप्ति----------- 597
2. संत धर्मदास जी के वंशों के विषय में-------------------------- 599
3. चौदहवीं महंत गद्दी का परिचय -------------------------------- 600
4. पवित्र कबीर सागर में अद्भुत रहस्य--------------------------- 603
5. प्रभु प्रेमी पाठकों की शंकाओं का समाधान-रामपाल दास---------- 613
6. तीनों गुण क्या हैं ? प्रमाण सहित ------------------------------ 619
7. तीनों गुण (रजगुण ब्रह्मा जी, सतगुण विष्णु जी, तमगुण शिव जी)अर्थात् त्रिगुण माया की पूजा व्यर्थ----------- 620

❑❑❑

जगत् गुरु तत्वदर्शी संत रामपाल जी महाराज

भूमिका

इस पुस्तक में श्रीमद्भगवत गीता के ज्ञान का यथार्थ प्रकाश किया गया है। ऐसे आज तक किसी हिन्दू धर्म के गुरू ने तथा गीता के अनुवादकर्ता ने नहीं किया। सबने भोले हिन्दू समाज को भ्रमित करके उल्टा पाठ पढ़ाया है। मेरा मानव समाज से निवेदन है कि इन झूठे गुरूओं की मेरे साथ आध्यात्मिक ज्ञान चर्चा करवाएं। तब पता चलेगा ज्ञानी और अज्ञानी का। इस पुस्तक को ध्यानपूर्वक दिल थामकर पढ़ें। आप स्वयं समझ जाओगे कि माजरा क्या है? इसी पुस्तक में लिखी सष्टि रचना में तथा गीता के सारांश में आप जी को श्री ब्रह्मा, विष्णु, महेश जी के माता-पिता तथा देवी दुर्गा के पति कौन हैं? आदि का ज्ञान भी होगा जिससे आज तक अपने धर्मगुरू नहीं बता पाए जो अपने ही ग्रन्थों में लिखे हैं।

श्रीमद्भगवत गीता चारों वेदों (ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद) का संक्षिप्त रूप है। दूसरे शब्दों में गागर में सागर है। चारों वेदों में अठारह हजार (18000) श्लोक (मंत्र) हैं। उनको गीता में 574 श्लोकों में लिखा है। जिस कारण से गीता में सांकेतिक शब्द अधिक हैं। वैसे तो गीता में सात सौ (700) श्लोक हैं। जिनमें 574 काल ब्रह्म ने श्री कष्ण के मुख से कहे हैं, शेष श्लोक संजय तथा अर्जुन के कहे हैं जो ज्ञान से संबंधित नहीं हैं।

गीता के सांकेतिक शब्दों को हिन्दू धर्म के धर्मगुरू समझ नहीं पाए। जिस कारण से शब्दों के अर्थों का अनर्थ किया है। उदाहरण के लिए गीता अध्याय 18 श्लोक 66 में ''व्रज'' शब्द है। उसका अर्थ है जाना, जाओ, चले जाना, दूर जाना। सर्व गीता अनुवादकों ने व्रज का अर्थ ''आना'' किया है। आप प्रत्येक अनुवादक के किए अनुवाद में इस श्लोक को देखें। एस्कोन वालों ने तो कमाल कर रखा है। गीता अध्याय 18 श्लोक 66 के शब्दार्थ पहले लिखे हैं, नीचे अनुवाद किया है। ''व्रज'' शब्द का अर्थ तो किया है ''जाओ'', परंतु अनुवाद में कर दिया ''मेरी शरण में आओ।''

देखें गीता अध्याय 18 श्लोक 66 के शब्दार्थ तथा अनुवाद की फोटोकॉपी जो भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट, हरे कष्ण धाम जूहू, मुंबई-400049 द्वारा प्रकाशित है तथा ए.सी. भक्ति वेदान्त स्वामी प्रभु द्वारा अनुवादित है जिसका पूरा नाम इस प्रकार है कष्ण कपा मूर्ति श्री ए. सी. भक्ति वेदान्त स्वामी प्रभुपाद। संस्थापकाचार्य :- अन्तर्राष्ट्रीय कष्ण भावनामत संघ।

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥ ६६॥

सर्व-धर्मान्—समस्त प्रकार के धर्म; **परित्यज्य**—त्यागकर; **माम्**—मेरी; **एकम्**—एकमात्र; **शरणम्**—शरण में; **व्रज**—जाओ; **अहम्**—मैं; **त्वाम्**—तुमको; **सर्व**—समस्त; **पापेभ्यः**—पापों से; **मोक्षयिष्यामि**—उद्धार करूँगा; **मा**—मत; **शुचः**—चिन्ता करो।

समस्त प्रकार के धर्मों का परित्याग करो और मेरी शरण में आओ। मैं समस्त पापों से तुम्हारा उद्धार कर दूँगा। डरो मत।

यह फोटोकॉपी गीता अध्याय 18 श्लोक 66 की है। इसमें आप देख रहे हैं कि शब्दार्थ में ''व्रज = जाओ'' किया है, नीचे अनुवाद में लिखा है कि मेरी शरण में आओ।

विचार करें :- अंग्रेजी भाषा के शब्द Go का अर्थ जाना, जाओ है। इस शब्द का अर्थ आना, आओ करना मूर्खता के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। इसी प्रकार गीता प्रैस गोरखपुर से प्रकाशित सर्व गीता अनुवादकों जैसे श्री जयदयाल गोयन्दका, श्री रामसुख दास जी, महामण्डलेश्वर गीता मनीषी जैसी उपाधि प्राप्त श्री ज्ञानानंद जी, अड़गड़ानंद जी ने तथा अन्य महानुभावों ने गीता के गूढ़ तथा सांकेतिक शब्दों के गूढ़ रहस्य को न समझकर अर्थ न करके अनर्थ किए हैं, गलत अर्थ करके भोली जनता को भ्रमित किया है। इनके द्वारा किए गए गीता के अनुवाद वाली गीता पर प्रतिबंध लगना चाहिए। जिन्होंने गलत अनुवाद किए हैं, उन सबकी अनुवादित गीता से समाज में गीता की गरीमा को ठेस पहुँच रही है तथा गीता का यथार्थ संदेश जनता को नहीं मिल रहा।

जैसे गीता अध्याय 18 श्लोक 62 में भी गीता ज्ञान बोलने वाला अपने से अन्य परमेश्वर की शरण में जाने के लिए कह रहा है। उसी से संबंधित प्रकरण गीता अध्याय 18 श्लोक 66 में है जिसका अर्थ गलत करके गलत अनुवाद किया है। ऐसी-ऐसी अनेकों गलतियाँ गीता के अनुवाद में मेरे अतिरिक्त सबके द्वारा की गई हैं।

गीता के अनुवादक लिखते हैं कि श्री कष्ण जी ने गीता का ज्ञान अर्जुन से कहा। श्री कष्ण को विष्णु जी का अवतार यानि स्वयं विष्णु जी ही माता देवकी के गर्भ से उत्पन्न मानते हैं और श्री विष्णु जी उर्फ श्री कष्ण जी को अविनाशी कहते हैं। जबकि गीता का ज्ञान कहने वाला गीता अध्याय 2 श्लोक 12, अध्याय 4 श्लोक 5, अध्याय 10 श्लोक 2 में अपने को नाशवान कहता है। कहा है कि हे अर्जुन! तेरे और मेरे अनेकों जन्म हो चुके हैं। कप्या देखें फोटोकॉपी गीता अध्याय 4 श्लोक 5 की जिसका अनुवाद भी हिन्दू धर्मगुरूओं ने किया है।

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन।
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परन्तप॥ ५॥

बहूनि, मे, व्यतीतानि, जन्मानि, तव, च, अर्जुन,
तानि, अहम्, वेद, सर्वाणि, न, त्वम्, वेत्थ, परन्तप॥ ५॥

इसपर श्रीभगवान् बोले—

परन्तप	= हे परन्तप	**व्यतीतानि**	= हो चुके हैं।
अर्जुन	= अर्जुन!	**तानि**	= उन
मे	= मेरे	**सर्वाणि**	= सबको
च	= और	**त्वम्**	= तू
		न	= नहीं
तव	= तेरे	**वेत्थ**	= जानता, (किंतु)
बहूनि	= बहुत-से	**अहम्**	= मैं
जन्मानि	= जन्म	**वेद**	= जानता हूँ।

B

अन्य प्रमाण :- श्री देवी महापुराण के तीसरे स्कंद के अध्याय 4-5 पष्ठ 138 की सम्बन्धित प्रकरण की फोटोकॉपी :-

१३८ * संक्षिप्त देवीभागवत * [तीसरा स्कन्ध

सूर्य जगत्‌को प्रकाशित करता है। तुम शुद्धस्वरूपा हो, यह सारा संसार तुम्हींसे उद्भासित हो रहा है। मैं, ब्रह्मा और शंकर—हम सभी तुम्हारी कृपासे ही विद्यमान हैं। हमारा आविर्भाव और तिरोभाव हुआ करता है। केवल तुम्हीं नित्य हो, जगज्जननी हो, प्रकृति और सनातनी देवी हो।

भगवान् शंकर बोले—'देवी! यदि महाभाग विष्णु तुम्हींसे प्रकट हुए हैं तो उनके बाद उत्पन्न होनेवाले ब्रह्मा भी तुम्हारे ही बालक हुए। फिर मैं तमोगुणी लीला करनेवाला शंकर क्या तुम्हारी संतान नहीं हुआ—अर्थात् मुझे भी उत्पन्न करनेवाली तुम्हीं हो। शिवे! सम्पूर्ण संसारकी सृष्टि करनेमें तुम बड़ी चतुर हो।

यह फोटोकॉपी श्री देवी पुराण की है। इसमें श्री विष्णु जी स्वयं स्वीकार कर रहे हैं कि मेरा (विष्णु का) श्री ब्रह्मा का तथा श्री शिव का आविर्भाव यानि जन्म तथा तिरोभाव यानि मरण होता है। इसी फोटोकॉपी में यह भी प्रमाणित है कि इन तीनों को जन्म देने वाली भी देवी दुर्गा जी यानि अष्टांगी है। हिन्दू धर्म के अज्ञानी धर्मगुरू कहते हैं कि इनके कोई माता-पिता नहीं हैं। सइ प्रकार की अनेक मिथ्या कथाऐं शास्त्रों के विपरित बताकर इन अज्ञानियों ने हिन्दू समाज का बेड़ा गरक कर रखा है।

हिन्दू धर्मगुरू कहते हैं कि श्री विष्णु जी सतगुण, श्री शिव जी तमगुण व अन्य देवी-देवताओं की पूजा करो जबकि गीता में अध्याय 7 श्लोक 12-15 तथा 20-23 में कहा है कि इनकी पूजा करने वाले राक्षस स्वभाव को धारण किए हुए, मनुष्यों में नीच दूषित कर्म करने वाले मूर्ख हैं।

हिन्दू धर्मगुरू श्री ब्रह्मा, श्री विष्णु तथा श्री शिव जी को ईश यानि सर्व के स्वामी बताते हैं जबकि श्री शिव महापुराण में विद्यवेश्वर संहिता भाग-1 पष्ठ 17-18 अध्याय 9-10 में स्पष्ट है कि सदाशिव यानि काल ब्रह्म श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी तथा शिव जी के पिता जी हैं जो गीता अध्याय 11 श्लोक 32 में कह रहा है कि मैं काल हूँ। उसने विद्यवेश्वर संहिता भाग-1 के पष्ठ 17 पर आपस में लड़ रहे श्री ब्रह्मा जी तथा श्री विष्णु जी के मध्य में तेजोमय स्तम्भ खड़ा करके उनका युद्ध बंद करवाकर कहा कि तुम अपने को संसार का ईश यानि स्वामी कह रहे हो, इस बात पर लड़ रहे हो। तुम ईश (प्रभु=भगवान) नहीं हो। यह सब मेरा है। मेरा एक ॐ (ओम्) मंत्र भक्ति का है जो पाँच अवययों से एकीभूत होकर यानि अ,उ,म,नाद तथा बिंदु से मिलकर एक ॐ (ओम्) बना है। गीता अध्याय 8 श्लोक 13 में भी इसी ने श्री कष्ण में प्रेतवत् प्रवेश करके गीता ज्ञान कहा था। उसमें कहा है कि मुझ ब्रह्म का केवल एक ओम् (ॐ) अक्षर है उच्चारण करके स्मरण करने का।

श्री शिव पुराण का प्रकरण बताता हूँ :- शिवपुराण के विद्यवेश्वर संहिता भाग-1 पर

काल ब्रह्म जो उस समय अपने पुत्र शिव के वेश में उपस्थित था, ने बताया कि हे पुत्रो! मेरे पाँच कत्य हैं सष्टि, स्थिति, संहार, तिरोभाव तथा अनुग्रह। हे पुत्रो ब्रह्मा, विष्णु! सष्टि की उत्पत्ति ब्रह्मा तेरे को तथा पालन करना विष्णु तेरे को मैंने तुम्हारे तप के प्रतिफल में दिए हैं। संहार (सामान्य प्राणियों को मारना) रूद्र को तथा तिरोभाव (भक्तों तथा देवताओं आदि को मारना) महेश को दिए, परंतु ''अनुग्रह'' कत्य को पाने में कोई भी समर्थ नहीं है।(1-12)

श्री शिव महापुराण के इस प्रकरण से सिद्ध हुआ कि श्री ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव ईश यानि संसार के स्वामी (प्रभु) नहीं हैं। इन तीनों का पिता काल ब्रह्म है तथा माता श्री देवी (दुर्गा) जी हैं जो श्री देवी भागवत पुराण यानि देवी पुराण में लिखा है। हिन्दू धर्मगुरूजन अपने शास्त्रों से ही परिचित नहीं तो ये गुरू पद के योग्य नहीं हैं। इन्होंने हिन्दू धर्म के श्रद्धालुओं के मानव जीवन का नाश कर दिया। शास्त्रविधि विरूद्ध भक्ति साधना करवाकर भिखारी, चोर, डाकू, रिश्वतखोर, मिलावटखोर बनाकर छोड़ दिया। गीता अध्याय 16 श्लोक 23-24 में स्पष्ट किया है कि जो साधक शास्त्रविधि त्यागकर अपनी इच्छा से मनमाना आचरण करता है यानि जो भक्ति की साधना शास्त्रों में वर्णित नहीं है, उसे करता है तो उसे न तो सुख प्राप्त होता है, न उसे भक्ति शक्ति यानि सिद्धि प्राप्त होती है तथा न उसकी गति यानि मुक्ति होती है। इसी कारण से सर्व साधक तन-मन-धन से झूठे गुरूओं द्वारा बताई साधना, दान-धर्म भी करते हैं। फिर भी न तो घर-परिवार में सुख, न कारोबार में बरकत (लाभ) जिसके लिए प्रत्येक व्यक्ति भगवान की साधना से अपेक्षा करता है। साधना शास्त्रविरूद्ध होने से परमात्मा की और से कोई लाभ नहीं मिलता। जिसकी पूर्ति के लिए चोरी, हेराफेरी, रिश्वत, ठगी, मिलावट आदि अपराध करने लग जाते हैं। कुछ समय पश्चात् नास्तिक हो जाते हैं। ऐसे हिन्दू समाज का बेड़ा गरक शास्त्र ज्ञान से अपरिचित हिन्दू गुरूओं ने कर दिया। मेरे (लेखक-रामपाल दास के) पास शास्त्रों का यथार्थ ज्ञान है तथा शास्त्रोक्त साधना के यथार्थ स्मरण मंत्र हैं जो साधक को सुख यानि घर-परिवार में सुख, कषि व कारोबार में बरकत (लाभ), आध्यात्मिक शक्ति (सिद्धि) तथा पूर्ण मोक्ष प्रदान करते हैं। इ०स पुस्तक ''गरीमा गीता की'' में आप जी को उन शास्त्रों में वर्णित यथार्थ साधना के मंत्रों की जानकारी पढ़ने को मिलेगी। शास्त्रों के अध्याय, श्लोक तथा पष्ठ भी लिखे हैं जो आप अपनी संतुष्टि के लिए अपने शास्त्रों से मिलान करके जाँच सकते हो।

श्रीमद्भगवत गीता चारों वेदों (ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद) का सारांश है तथा यह पुस्तक ''गरीमा गीता की'' श्रीमद्भगवत गीता का यथार्थ सारांश है। प्रत्येक अध्याय से मक्खन निकालकर फिर उसको शुद्ध करके गीता रूपी गाय का घी बनाया है। आप जी इसे पढ़ें तथा गीता की गरीमा से यथार्थ रूप से परिचित होकर स्वयं तथा अपने परिवार को धन्य बनाऐं। नाम दीक्षा लेकर मोक्ष प्राप्त करें। विश्व के सर्व प्राणी एक परमेश्वर कबीर जी के बच्चे हैं यानि परमेश्वर द्वारा उत्पन्न आत्माऐं हैं जो काल ब्रह्म के लोक में जन्म-मरण तथा अनेकों कष्ट उठा रहे हैं। परमेश्वर कबीर जी चाहते हैं कि मेरी आत्माऐं मुझे अध्यात्म ज्ञान से पहचानें। फिर सत्य साधना करके सनातन परम धाम (सत्यलोक) में जाकर सदा सुखी जीवन जीएं। उस परमेश्वर जी ने स्वयं यथार्थ भक्ति मंत्रों को बताया है जो सर्व शास्त्रों में प्रमाण मिला है। जिस कारण सत्य भक्ति की साधना की सार्थकता सिद्ध हुई है।

जीव हमारी जाति है, मानव धर्म हमारा। हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई, धर्म नहीं कोई न्यारा।।

आप जी इस पवित्र गीता सार को पढ़ें तथा अन्य को पढ़ाऐं। भूलों को राह बताऐं।

D

इससे बड़ा पृथ्वी पर कोई धर्म नहीं है। मेरे अनुयाई तथ्यों को आँखों शास्त्रों में देखकर आश्चर्यचकित हुए थे। सत्य को स्वीकार करके तुरंत झूठी साधना त्यागकर सत्य साधना दीक्षा मुझ दास (रामपाल दास) से लेकर जीवन धन्य कर रहे हैं। साथ-साथ इस अद्वितीय यथार्थ अध्यात्म ज्ञान का प्रचार करके पुण्य के भागी बन रहे हैं। झूठे गुरूओं से प्रभावित भोली जनता के द्वारा दी जा रही परेशानियों को झेलते हुए प्रचार में लगे हैं। ये आपको अपना भाई-बहन मानते हैं। आपके कल्याण का उद्देश्य रखते हैं। लेखक का उद्देश्य भी मानव समाज का कल्याण करना है। आप जी मेरे द्वारा बताया अध्यात्म ज्ञान समझें। पूर्ण रूप से जाँच करें। फिर हमसे जुड़ें। मर्यादा में रहकर भक्ति करें। तब देखना आपको प्रत्यक्ष लाभ होता महसूस होगा। आप अपने बीते मानव जीवन के समय को व्यर्थ साधना नष्ट होने का बहुत पाश्चाताप् करोगे। सत्य भक्ति मार्ग मिलने से परमेश्वर कबीर जी का कोटि-कोटि धन्यवाद करोगे। आप ऐसा अनुभव करोगे जैसे कोई मौत मुख से निकलने पर सुरक्षित तथा भय महसूस करता है। अविलंब आऐं और दीक्षा लेकर अपना कल्याण करवाऐं।

प्रार्थी - लेखक
(संत) रामपाल दास (महाराज)
सतलोक आश्रम, बरवाला
जिला-हिसार, हरियाणा (भारत)।

गहरी नजर गीता में

दो शब्द

हिन्दुओं के शास्त्रों में पवित्र वेद व गीता विशेष हैं, उनके साथ-साथ अठारह पुराणों को भी समान दृष्टि से देखा जाता है। श्रीमद् भागवत सुधासागर, रामायण, महाभारत भी विशेष प्रमाणित शास्त्रों में से हैं। विशेष विचारणीय विषय यह है कि जिन पवित्र शास्त्रों को हिन्दुओं के शास्त्र कहा जाता है, जैसे पवित्र चारों वेद व पवित्र श्रीमद् भगवत गीता जी आदि, वास्तव में ये सद् शास्त्र केवल पवित्र हिन्दु धर्म के ही नहीं हैं। ये सर्व शास्त्र महर्षि व्यास जी द्वारा उस समय लिखे गए थे जब कोई अन्य धर्म नहीं था। इसलिए पवित्र वेद व पवित्र श्रीमद्भगवत गीता जी तथा पवित्र पुराणादि सर्व शास्त्र मानव मात्र के कल्याण के लिए हैं। पवित्र यजुर्वेद अध्याय 1 मंत्र 15-16 तथा अध्याय 5 मंत्र 1 व 32 में स्पष्ट किया है कि ''{अग्नेः तनूर् असि, विष्णवे त्वा सोमस्य तनुर् असि, कविरंघारिः असि, स्वर्ज्योति ऋतधामा असि} परमेश्वर का शरीर है, पाप के शत्रु परमेश्वर का नाम कविर्देव है, उस सर्व पालन कर्त्ता अमर पुरुष अर्थात् सतपुरुष का शरीर है। वह स्वप्रकाशित शरीर वाला प्रभु सत धाम अर्थात् सतलोक में रहता है। पवित्र वेदों को बोलने वाला ब्रह्म यजुर्वेद अध्याय 40 मंत्र 8 में कह रहा है कि पूर्ण परमात्मा कविर्मनीषी अर्थात् कविर्देव ही वह तत्वदर्शी है जिसकी चाह सर्व प्राणियों को है, वह कविर्देव परिभूः अर्थात् सर्व प्रथम प्रकट हुआ, जो सर्व प्राणियों की सर्व मनोकामना पूर्ण करता है। वह कविर्देव स्वयंभूः अर्थात् स्वयं प्रकट होता है, उसका शरीर किसी माता-पिता के संयोग से (शुक्रम् अकायम्) वीर्य से बनी काया नहीं है, उसका शरीर (अस्नाविरम्) नाड़ी रहित है अर्थात् पांच तत्व का नहीं है, केवल तेजपुंज से एक तत्व का है, जैसे एक तो मिट्टी की मूर्ति बनी है, उसमें भी नाक, कान आदि अंग हैं तथा दूसरी सोने की मूर्ति बनी है, उसमें भी सर्व अंग हैं। ठीक इसी प्रकार पूज्य कविर्देव का शरीर तेज तत्व का बना है, इसलिए उस परमेश्वर के शरीर की उपमा में अग्नेः तनूर् असि वेद में कहा है।

सर्व प्रथम पवित्र शास्त्र श्रीमद्भगवत गीता जी पर विचार करते हैं।

❖ *विशेष :- श्रीमद्भगवत गीता को यथार्थ रूप में जानने के लिए कृप्या सर्वप्रथम ''सृष्टि रचना'' अध्याय को पढ़ें जिससे ज्ञान होगा कि संसार की रचना किसने की? किसलिए की? जन्म तो कुछ सही लगता है, परंतु मृत्यु होना खटकता है, अच्छा नहीं लगता है। मृत्यु वृद्धावस्था में हो तो कुछ जँचता है, परंतु युवा अवस्था में होती है तो बुरा लगता है। विचार आता है कि यह तो बहुत ही गलत है। वास्तव में सही भी है कि छोटे-छोटे बच्चों को छोड़कर मर जाना या माता-पिता के छोटे-बड़े बच्चे मर जाना आदि अति अन्याय तथा अत्याचार है। परंतु प्रभु की इच्छा मानकर रो-पीटकर भूल जाना बेहतर मानते हैं। यह प्रक्रिया कसाई के पालित बकरे-बकरियों के जीवन के सदृश है। इससे यह तो मानना ही पड़ेगा कि इस परंपरा को चालू करने वाला अवश्य कसाई तुल्य प्रभु है। वह दयालु नहीं है। इन सब प्रश्नों का उत्तर तथा गीता के गूढ़ रहस्यों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए इसी पुस्तक के पृष्ठ 17 पर सृष्टि रचना को सर्वप्रथम पढ़ें। फिर गीता में आगे बढ़ें।*

❖ *इस पुस्तक में श्रीमद्भगवत गीता का सारांश तथा अनुवाद है जिसमें प्रत्येक अध्याय का भिन्न-भिन्न विश्लेषण किया गया है। विश्व में एकमात्र गीता का यथार्थ प्रकाश किया गया है। मुझ दास (रामपाल) के अतिरिक्त वर्तमान तक गीता के गूढ़ रहस्यों को कोई उजागर नहीं कर सका। सभी ने शब्दों के अर्थ भी गलत किए हैं तथा श्लोकों का भावार्थ ही बदल दिया। उदाहरण के लिए गीता अध्याय 18 श्लोक 66 का भावार्थ है कि गीता ज्ञान दाता ने अपने से अन्य परमेश्वर की शरण में जाने के लिए कहा है। व्रज का अर्थ जाना है, परंतु मेरे अतिरिक्त सर्व अनुवादकों ने ''व्रज'' का अर्थ आना किया है। आश्चर्य की बात तो यह है कि गीता अध्याय 18 के ही श्लोक 62 में स्पष्ट व ठीक अर्थ किया है कि गीता बोलने वाले काल ब्रह्म ने अपने से अन्य परम अक्षर ब्रह्म यानि परमेश्वर की शरण में जाने को कहा है। वह परमेश्वर कौन है? इसका ज्ञान हिन्दू गुरूओं को नहीं है। जिस कारण से भोली जनता को भ्रमित करते रहे हैं कि श्री कृष्ण ने गीता का ज्ञान बोला तथा अपनी ही शरण में आने के लिए कहा है। जबकि अनेकों अध्यायों के श्लोकों में गीता ज्ञान दाता ने अपने से अन्य उत्तम पुरूष यानि पुरूषोत्तम अविनाशी परमेश्वर के विषय में स्पष्ट कहा कि वही परमात्मा कहा जाता है। तीनों लोकों में प्रवेश करके सबका धारण-पोषण करता है। प्रमाण - गीता अध्याय 15 श्लोक 17 में। इसके अतिरिक्त गीता अध्याय 8 श्लोक 3 में उसे परम अक्षर ब्रह्म कहा है। इसी अध्याय के श्लोक 8, 9, 10 में उस दिव्य परमपुरूष की भक्ति करने से साधक उसी को प्राप्त होता है। इसी अध्याय 8 के श्लोक 20, 21, 22 में उसी अन्य अमर परमात्मा (सत्य पुरूष) की महिमा कही है जो इस पवित्र पुस्तक में पढ़ने को मिलेंगे। आप अपने को धन्य समझेंगे।*

हिन्दू धर्मगुरूओं को यह भी ज्ञान नहीं है कि गीता का ज्ञान श्री कृष्ण जी के शरीर में प्रवेश करके काल ब्रह्म ने कहा था। जैसे प्रेत किसी के शरीर में प्रवेश करके बोलता है। पढ़ें प्रमाण सहित सत्य सार।

"पवित्र श्रीमद्भगवत गीता जी का ज्ञान किसने कहा?"

पवित्र गीता जी के ज्ञान को उस समय बोला गया था जब महाभारत का युद्ध होने जा रहा था। अर्जुन ने युद्ध करने से इन्कार कर दिया था। युद्ध क्यों हो रहा था? इस युद्ध को धर्मयुद्ध की संज्ञा भी नहीं दी जा सकती क्योंकि दो परिवारों का सम्पत्ति वितरण का विषय था। कौरवों तथा पाण्डवों का सम्पत्ति बंटवारा नहीं हो रहा था। कौरवों ने पाण्डवों को आधा राज्य भी देने से मना कर दिया था। दोनों पक्षों का बीच-बचाव करने के लिए प्रभु श्री कृष्ण जी तीन बार शान्ति दूत बन कर गए। परन्तु दोनों ही पक्ष अपनी-अपनी जिद्द पर अटल थे। श्री कृष्ण जी ने युद्ध से होने वाली हानि से भी परिचित कराते हुए कहा कि न जाने कितनी बहन विधवा होंगी ? न जाने कितने बच्चे अनाथ होंगे ? महापाप के अतिरिक्त कुछ नहीं मिलेगा। युद्ध में न जाने कौन मरे, कौन बचे ? तीसरी बार जब श्री कृष्ण जी समझौता करवाने गए तो दोनों पक्षों ने अपने-अपने पक्ष वाले राजाओं की सेना सहित सूची पत्र दिखाया तथा कहा कि इतने राजा हमारे पक्ष में हैं तथा इतने हमारे पक्ष में। जब श्री कृष्ण जी ने देखा कि दोनों ही पक्ष टस से मस नहीं हो रहे हैं, युद्ध के लिए तैयार हो चुके हैं। तब श्री कृष्ण जी ने सोचा कि एक दाव और है वह भी आज लगा देता हूँ। श्री कृष्ण जी ने सोचा कि कहीं पाण्डव मेरे सम्बन्धी होने के कारण अपनी जिद्द इसलिए न छोड़ रहे हों कि श्री कृष्ण हमारे साथ हैं, विजय हमारी ही होगी(क्योंकि श्री कृष्ण जी

की बहन सुभद्रा जी का विवाह श्री अर्जुन जी से हुआ था)। श्री कष्ण जी ने कहा कि एक तरफ मेरी सर्व सेना होगी और दूसरी तरफ मैं होऊँगा और इसके साथ-साथ मैं वचन बद्ध भी होता हूँ कि मैं हथियार भी नहीं उठाऊँगा। इस घोषणा से पाण्डवों के पैरों के नीचे की जमीन खिसक गई। उनको लगा कि अब हमारी पराजय निश्चित है। यह विचार कर पाँचों पाण्डव यह कह कर सभा से बाहर गए कि हम कुछ विचार कर लें। कुछ समय उपरान्त श्री कष्ण जी को सभा से बाहर आने की प्रार्थना की। श्री कष्ण जी के बाहर आने पर पाण्डवों ने कहा कि हे भगवन् ! हमें पाँच गाँव दिलवा दो। हम युद्ध नहीं चाहते हैं। हमारी इज्जत भी रह जाएगी और आप चाहते हैं कि युद्ध न हो, यह भी टल जाएगा।

पाण्डवों के इस फैसले से श्री कष्ण जी बहुत प्रसन्न हुए तथा सोचा कि बुरा समय टल गया। श्री कष्ण जी वापिस आए, सभा में केवल कौरव तथा उनके समर्थक शेष थे। श्री कष्ण जी ने कहा दुर्योधन युद्ध टल गया है। मेरी भी यह हार्दिक इच्छा थी। आप पाण्डवों को पाँच गाँव दे दो, वे कह रहे हैं कि हम युद्ध नहीं चाहते। दुर्योधन ने कहा कि पाण्डवों के लिए सुई की नोक तुल्य भी जमीन नहीं है। यदि उन्हें राज्य चाहिए तो युद्ध के लिए कुरुक्षेत्र के मैदान में आ जाऐं। इस बात से श्री कष्ण जी ने नाराज होकर कहा कि दुर्योधन तू इंसान नहीं शैतान है। कहाँ आधा राज्य और कहाँ पाँच गाँव? मेरी बात मान ले, पाँच गाँव दे दे। श्री कष्ण से नाराज होकर दुर्योधन ने सभा में उपस्थित योद्धाओं को आज्ञा दी कि श्री कष्ण को पकड़ो तथा कारागार में डाल दो। आज्ञा मिलते ही योद्धाओं ने श्री कष्ण जी को चारों तरफ से घेर लिया। श्री कष्ण जी ने अपना विराट रूप दिखाया। जिस कारण सर्व योद्धा और कौरव डर कर कुर्सियों के नीचे घुस गए तथा शरीर के तेज प्रकाश से आँखें बंद हो गई। कष्ण जी वहाँ से निकल गए।

विचार करें :- उपरोक्त विराट रूप दिखाने का प्रमाण संक्षिप्त महाभारत गीता प्रेस गोरखपुर से प्रकाशित में प्रत्यक्ष है।

❖ जब कुरुक्षेत्र के मैदान में पवित्र गीता जी का ज्ञान सुनाते समय अध्याय 11 श्लोक 32 में पवित्र गीता बोलने वाला प्रभु कह रहा है कि 'अर्जुन मैं बढ़ा हुआ काल हूँ। अब सर्व लोकों को खाने के लिए प्रकट हुआ हूँ।' जरा सोचें कि श्री कष्ण जी तो पहले से ही श्री अर्जुन जी के साथ थे। यदि पवित्र गीता जी के ज्ञान को श्री कष्ण जी बोल रहे होते तो यह नहीं कहते कि अब प्रवर्त्त हुआ हूँ। फिर अध्याय 11 श्लोक 21 व 46 में अर्जुन कह रहा है कि भगवन् ! आप तो ऋषियों, देवताओं तथा सिद्धों को भी खा रहे हो, जो आप का ही गुणगान पवित्र वेदों के मंत्रों द्वारा उच्चारण कर रहे हैं तथा अपने जीवन की रक्षा के लिए मंगल कामना कर रहे हैं। कुछ आपके दाढ़ों में लटक रहे हैं, कुछ आप के मुख में समा रहे हैं। हे सहस्र बाहु अर्थात् हजार भुजा वाले भगवान! आप अपने उसी चतुर्भुज रूप में आईये। मैं आपके विकराल रूप को देखकर धीरज नहीं कर पा रहा हूँ।

❖ गीता अध्याय 11 श्लोक 31 में अर्जुन ने पूछा कि हे महानुभाव! उग्र रूप वाले आप कौन हैं? मुझे बतलाईए।

❖ श्री कष्ण जी तो अर्जुन के साले थे। श्री कष्ण की बहन सुभद्रा का विवाह अर्जुन से हुआ था। क्या व्यक्ति अपने साले को भी नहीं जानता? इससे सिद्ध है कि गीता का ज्ञान काल ब्रह्म ने बोला था।

❖ अध्याय 11 श्लोक 47 में पवित्र गीता जी को बोलने वाला प्रभु काल ने कहा है कि 'हे अर्जुन यह मेरा वास्तविक काल रूप है, जिसे तेरे अतिरिक्त पहले किसी ने नहीं देखा था।'

❖ उपरोक्त विवरण से एक तथ्य तो यह सिद्ध हुआ कि कौरवों की सभा में विराट रूप श्री कष्ण जी ने दिखाया था तथा कुरूक्षेत्र में युद्ध के मैदान में विराट रूप काल (श्री कष्ण जी के शरीर में प्रेतवत् प्रवेश करके अपना विराट रूप काल) ने दिखाया था। नहीं तो यह नहीं कहता कि यह विराट रूप तेरे अतिरिक्त पहले किसी ने नहीं देखा है। क्योंकि श्री कष्ण जी अपना विराट रूप कौरवों की सभा में पहले ही दिखा चुके थे।

❖ दूसरी यह बात सिद्ध हुई कि पवित्र गीता जी को बोलने वाला काल(ब्रह्म-ज्योति निरंजन) है, न कि श्री कष्ण जी। क्योंकि श्री कष्ण जी ने पहले कभी नहीं कहा कि मैं काल हूँ तथा बाद में कभी नहीं कहा कि मैं काल हूँ। श्री कष्ण जी काल नहीं हो सकते। उनके दर्शन मात्र को तो दूर-दूर क्षेत्र के स्त्री तथा पुरुष तड़फा करते थे। यही प्रमाण गीता अध्याय 7 श्लोक 24-25 में है जिसमें गीता ज्ञान दाता प्रभु ने कहा है कि बुद्धिहीन जन समुदाय मेरे उस घटिया (अनुत्तम) अटल विधान को नहीं जानते कि मैं कभी भी मनुष्य की तरह किसी के सामने प्रकट नहीं होता। मैं अपनी योगमाया से छिपा रहता हूँ।

गीता अध्याय 4 श्लोक 9 में कहा है कि हे अर्जुन! मेरे जन्म और कर्म दिव्य हैं। भावार्थ है कि काल ब्रह्म अन्य के शरीर में प्रवेश करके कार्य करता है। जैसे श्री कष्ण जी ने प्रतिज्ञा कर रखी थी कि मैं महाभारत के युद्ध में किसी को मारने के लिए शस्त्र भी नहीं उठाऊँगा। श्री कष्ण में काल ब्रह्म ने प्रवेश होकर रथ का पहिया उठाकर अनेकों सैनिकों को मार डाला। पाप श्री कष्ण जी के जिम्मे कर दिए। प्रतिज्ञा भी समाप्त करके कलंकित किया।

जिस समय काल ब्रह्म ने श्री कष्ण जी के शरीर से बाहर निकालकर अपना विराट रूप दिखाया, वह बहुत प्रकाशमान था। अर्जुन भयभीत हो गया तथा श्री कष्ण उस विराट रूप के प्रकाश में ओझल हो गया था। इसलिए पूछ रहा था कि आप कौन हो? क्या अपने साले से भी यह पूछा जाता है कि आप कौन हो? इसलिए गीता का ज्ञान काल ब्रह्म ने श्री कष्ण जी के शरीर में प्रवेश करके बोला था।

➢ उपरोक्त विवरण से सिद्ध हुआ कि गीता ज्ञान दाता श्री कष्ण जी नहीं है क्योंकि श्री कष्ण जी तो सर्व समक्ष साक्षात् थे। श्री कष्ण नहीं कहते कि मैं अपनी योग माया से छिपा रहता हूँ। इसलिए गीता जी का ज्ञान श्री कष्ण जी के अन्दर प्रेतवत् प्रवेश करके काल ने बोला था।

नोट :- विराट रूप क्या होता है ?

विराट रूप : आप दिन के समय या चाँदनी रात्री में जब आप के शरीर की छाया छोटी लगभग शरीर जितनी लम्बी हो या कुछ बड़ी हो, उस छाया के सीने वाले स्थान पर दो मिनट तक एक टक देखें, चाहे आँखों से पानी भी क्यों न गिरें। फिर सामने आकाश की तरफ देखें। आपको अपना ही विराट रूप दिखाई देगा, जो सफेद रंग का आसमान को छू रहा होगा। इसी प्रकार प्रत्येक मानव अपना विराट रूप रखता है। परन्तु जिनकी भक्ति शक्ति ज्यादा होती है, उनका उतना ही तेज अधिक होता जाता है।

इसी प्रकार श्री कष्ण जी भी पूर्व भक्ति शक्ति से सिद्धि युक्त थे, उन्होंने भी अपनी सिद्धि शक्ति से अपना विराट रूप प्रकट कर दिया, जो काल के तेजोमय शरीर(विराट) से कम तेजोमय था। तीसरी बात यह सिद्ध हुई कि पवित्र गीता जी बोलने वाला प्रभु काल सहस्त्रबाहु

अर्थात् हजार भुजा युक्त है तथा श्री कृष्ण जी तो श्री विष्णु जी के अवतार हैं जो चार भुजा युक्त हैं। श्री विष्णु जी सोलह कला युक्त हैं तथा श्री ज्योति निरंजन काल भगवान एक हजार कला युक्त है। जैसे एक बल्ब 60 वाट का होता है, एक बल्ब 100 वाट का होता है, एक बल्ब 1000 वाट का होता है, रोशनी सर्व बल्बों की होती है, परन्तु बहुत अन्तर होता है। ठीक इसी प्रकार दोनों प्रभुओं की शक्ति तथा विराट रूप का तेज भिन्न-भिन्न था।

इस तत्वज्ञान के प्राप्त होने से पूर्व जो गीता जी के ज्ञान को समझाने वाले महात्मा जी थे, उनसे प्रश्न किया करते थे कि पहले तो भगवान श्री कृष्ण जी शान्ति दूत बनकर गए थे तथा कहा था कि युद्ध करना महापाप है। जब श्री अर्जुन जी ने स्वयं युद्ध करने से मना करते हुए कहा कि हे देवकी नन्दन मैं युद्ध नहीं करना चाहता हूँ। सामने खड़े स्वजनों व नातियों तथा सैनिकों का होने वाला विनाश देख कर मैंने अटल फैसला कर लिया है कि मुझे तीन लोक का राज्य भी प्राप्त हो तो भी मैं युद्ध नहीं करूँगा। मैं तो चाहता हूँ कि मुझ निहत्थे को दुर्योधन आदि तीर से मार डालें, ताकि मेरी मृत्यु से युद्ध में होने वाला विनाश बच जाए। हे श्री कृष्ण! मैं युद्ध न करके भिक्षा का अन्न खाकर भी निर्वाह करना उचित समझता हूँ। हे कृष्ण ! स्वजनों को मारकर तो पाप को ही प्राप्त होंगे। मेरी बुद्धि काम करना बंद कर गई है। आप हमारे गुरु हो, मैं आपका शिष्य हूँ। आप जो हमारे हित में हो वही दीजिए। परन्तु मैं नहीं मानता हूँ कि आपकी कोई भी सलाह मुझे युद्ध के लिए तैयार कर पायेगी अर्थात् मैं युद्ध नहीं करूँगा। (प्रमाण पवित्र गीता जी अध्याय 1 श्लोक 31 से 39, 46 तथा अध्याय 2 श्लोक 5 से 8)

श्री कृष्ण जी में प्रवेश काल बार-बार कहने लगा कि अर्जुन कायर मत बन, युद्ध कर। या तो युद्ध में मारा जाकर स्वर्ग को प्राप्त होगा, या युद्ध जीत कर पृथ्वी के राज्य को भोगेगा, आदि-आदि कह कर ऐसा भयंकर विनाश करवा डाला जो आज तक के संत-महात्माओं तथा सभ्य लोगों के चरित्र में ढूंढने से भी नहीं मिलता है। तब वे अज्ञानी गुरु जी(नीम-हकीम) कहा करते थे कि अर्जुन क्षत्री धर्म को त्याग रहा था। इससे क्षत्रित्व को हानि तथा शूरवीरता का सदा के लिए विनाश हो जाता। अर्जुन को क्षत्री धर्म पालन करवाने के लिए यह महाभारत का युद्ध श्री कृष्ण जी ने करवाया था। पहले तो मैं उनकी इस अज्ञानियों वाली कहानी से चुप हो जाता था, क्योंकि मुझे स्वयं ज्ञान नहीं था।

विश्लेषण :- भगवान श्री कृष्ण जी स्वयं क्षत्री थे। कंस के वध के उपरान्त श्री अग्रसैन जी ने मथुरा की बाग-डोर अपने दोहते श्री कृष्ण जी को संभलवा दी थी। एक दिन नारद जी ने श्री कृष्ण जी को बताया कि निकट ही एक गुफा में एक सिद्धि युक्त राक्षस राजा मुचकन्द सोया पड़ा है। वह छः महीने सोता है तथा छः महीने जागता है। जागने पर छः महीने युद्ध करता रहता है तथा छः महीने शयन के समय यदि कोई उसकी निन्द्रा भंग कर दे तो मुचकन्द की आँखों से अग्नि बाण छूटते हैं तथा सामने वाला तुरन्त मृत्यु को प्राप्त हो जाता है, आप सावधान रहना। यह कह कर श्री नारद जी चले गए।

कुछ समय उपरान्त श्री कृष्ण जी को छोटी उम्र में मथुरा के सिंहासन पर बैठा देख कर एक काल्यवन नामक राजा ने अपने दामाद कंस की हत्या का प्रतिशोध लेने के लिए अठारह करोड़ सेना लेकर मथुरा पर आक्रमण कर दिया। श्री कृष्ण जी ने देखा कि दुश्मन की सैना बहु संख्या में है तथा न जाने कितने सैनिक मृत्यु को प्राप्त होंगे, क्यों न काल्यवन का वध मुचकन्द से करवा दूँ। भगवान श्री कृष्ण जी ने काल्यवन को युद्ध के लिए ललकारा तथा युद्ध

छोड़ कर(क्षत्री धर्म को भूलकर विनाश टालना आवश्यक जानकर) भाग लिये और उस गुफा में प्रवेश किया जिसमें मुचकन्द सोया हुआ था। मुचकन्द के शरीर पर अपना पीताम्बर(पीली चद्दर) डाल कर श्री कृष्ण जी गुफा में गहरे जाकर छुप गए। पीछे-पीछे काल्यवन भी उसी गुफा में प्रवेश कर गया। काल्यवन ने मुचकन्द को श्री कृष्ण समझकर उसका पैर पकड़ कर घुमा दिया तथा कहा कि कायर तुझे छुपे हुए को थोड़े ही छोडूंगा। पीड़ा के कारण मुचकन्द की निंद्रा भंग हुई, नेत्रों से अग्नि बाण निकलें तथा काल्यवन का वध हुआ। काल्यवन के सैनिक तथा मंत्री अपने राजा के शव को लेकर वापिस चल पड़े। क्योंकि युद्ध में राजा की मृत्यु सैना की हार मानी जाती थी। जाते हुए कह गए कि हम नया राजा नियुक्त करके शीघ्र ही आयेंगे तथा श्री कृष्ण तुझे नहीं छोड़ेंगे।

श्री कृष्ण जी ने अपने मुख्य अभियन्ता (चीफ इन्जिनियर) श्री विश्वकर्मा जी को बुला कर कहा कि कोई ऐसा स्थान खोजो, जिसके तीन तरफ समुद्र हो तथा एक ही रास्ता(द्वार) हो। वहाँ पर अति शीघ्र एक द्वारिका(एक द्वार वाली) नगरी बना दो। हम शीर्घ ही यहाँ से प्रस्थान करेंगे। ये मूर्ख लोग यहाँ चैन से नहीं जीने देंगे। श्री कृष्ण जी इतने नेक आत्मा तथा युद्ध विपक्षी थे कि अपने क्षत्रीत्व को भी दाव पर रख कर जुल्म को टाला। क्या फिर वही श्री कृष्ण जी अपने प्यारे साथी व सम्बन्धी को ऐसी बुरी सलाह दे सकते हैं तथा स्वयं युद्ध न करने का वचन करने वाले दूसरे को युद्ध की प्रेरणा दे सकते हैं? अर्थात् कभी नहीं। गीता अध्याय 18 श्लोक 43 में गीता ज्ञान दाता ने क्षत्री के स्वभाविक कर्मों का उल्लेख करते हुए कहा है कि ''युद्ध से न भागना'' आदि-२ क्षत्री के स्वभाविक कर्म है। इस से भी सिद्ध हुआ कि गीता जी का ज्ञान श्री कृष्ण जी ने नहीं बोला। क्योंकि श्री कृष्ण जी स्वयं क्षत्री होते हुए कालयवन के सामने से युद्ध से भाग गए थे। व्यक्ति स्वयं किए कर्म के विपरीत अन्य को राय नहीं देता। न उसकी राय श्रोता को ठीक जचेगी। वह उपहास का पात्र बनेगा। यह गीता ज्ञान ब्रह्म(काल) ने प्रेतवत् श्री कृष्ण जी में प्रवेश करके बोला था। भगवान श्री कृष्ण रूप में स्वयं श्री विष्णु जी ही अवतार धार कर आए थे।

एक समय श्री भृगु ऋषि ने आराम से बैठे भगवान श्री विष्णु जी(श्री कृष्ण जी) के सीने में लात घात किया। श्री विष्णु जी ने श्री भृगु ऋषि जी के पैर को सहलाते हुए कहा कि 'हे ऋषिवर! आपके कोमल पैर को कहीं चोट तो नहीं आई, क्योंकि मेरा सीना तो कठोर पत्थर जैसा है।' यदि श्री विष्णु जी(श्री कृष्ण जी) युद्ध प्रिय होते तो सुदर्शन चक्र से श्री भृगु जी के इतने टुकड़े कर सकते थे कि गिनती न होती।

वास्तविकता यह है कि काल भगवान जो इक्कीस ब्रह्मण्ड का प्रभु है, उसने प्रतिज्ञा की है कि मैं स्थूल शरीर में व्यक्त(मानव सदृश अपने वास्तविक) रूप में सबके सामने नहीं आऊँगा। उसी ने सूक्ष्म शरीर बना कर प्रेत की तरह श्री कृष्ण जी के शरीर में प्रवेश करके पवित्र गीता जी का ज्ञान तो सही(वेदों का सार) कहा, परन्तु युद्ध करवाने के लिए भी अटकल बाजी में कसर नहीं छोड़ी। काल(ब्रह्म) कौन है? यह जानने के लिए कृप्या पढ़िए सृष्टि रचना इसी पुस्तक के पृष्ठ नं. 17 पर।

❖ जब तक महाभारत का युद्ध समाप्त नहीं हुआ तब तक ज्योति निरंजन (काल - ब्रह्म - क्षर पुरुष) श्री कृष्ण जी के शरीर में प्रवेश रहा तथा युधिष्ठिर जी से झूठ बुलवाया कि कह दो कि अश्वत्थामा मर गया, श्री बबरु भान(खाटू श्याम जी) का शीश कटवाया तथा रथ के

पहिए को हथियार रूप में उठाया, यह सर्व काल ही का किया-कराया उपद्रव था, प्रभु श्री कष्ण जी का नहीं। महाभारत का युद्ध समाप्त होते ही काल भगवान श्री कष्ण जी के शरीर से निकल गया। श्री कष्ण जी ने श्री युधिष्ठिर जी को इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली) की राजगद्दी पर बैठाकर द्वारिका जाने को कहा। तब अर्जुन आदि ने प्रार्थना की कि हे श्री कष्ण जी! आप हमारे पूज्य गुरुदेव हो, हमें एक सतसंग सुना कर जाना, ताकि हम आपके सद्वचनों पर चल कर अपना आत्म-कल्याण कर सकें।

यह प्रार्थना स्वीकार करके श्री कष्ण जी ने तिथि, समय तथा स्थान निहित कर दिया। निश्चित तिथि को श्री अर्जुन ने भगवान श्री कष्ण जी से कहा कि प्रभु आज वही पवित्र गीता जी का ज्ञान ज्यों का त्यों सुनाना, क्योंकि मैं बुद्धि के दोष से भूल गया हूँ। तब श्री कष्ण जी ने कहा कि हे अर्जुन तू निश्चय ही बड़ा श्रद्धाहीन है। तेरी बुद्धि अच्छी नहीं है। ऐसे पवित्र ज्ञान को तूं क्यों भूल गया ? फिर स्वयं कहा कि अब उस पूरे गीता ज्ञान को मैं नहीं कह सकता अर्थात् मुझे ज्ञान नहीं। कहा कि उस समय तो मैंने योग युक्त होकर बोला था। विचारणीय विषय है कि यदि भगवान श्री कष्ण जी युद्ध के समय योग युक्त हुए होते तो शान्ति समय में योग युक्त होना कठीन नहीं था। जबकि श्री व्यास जी ने वही पवित्र गीता जी का ज्ञान वर्षों उपरान्त ज्यों का त्यों लिपिबद्ध कर दिया। उस समय वह ब्रह्म(काल-ज्योति निरंजन) ने श्री व्यास जी के शरीर में प्रवेश कर के पवित्र श्रीमद्भगवत गीता जी को लिपिबद्ध कराया, जो वर्तमान में आप के कर कमलों में है।

प्रमाण के लिए संक्षिप्त महाभारत पष्ठ नं. 667 तथा पुराने के पष्ठ नं. 1531 पर :-

न शक्यं तन्मया भूयस्तथा वक्तुमशेषतः।। परं हि ब्रह्म कथितं योगयुक्तेन तन्मया।

(महाभारत, आश्रवः 1612-13)

भगवान बोले - 'वह सब-का-सब उसी रूपमें फिर दुहरा देना अब मेरे वशकी बात नहीं है। उस समय मैंने योगयुक्त होकर परमात्मतत्वका वर्णन किया था।'

संक्षिप्त महाभारत द्वितीय भाग के पष्ठ नं. 1531 से सहाभार :

('श्रीकष्णका अर्जुनसे गीता का विषय पूछना सिद्ध महर्षि वैशम्पायन और काश्यपका संवाद')-पाण्डुनन्दन अर्जुन श्रीकष्णके साथ रहकर बहुत प्रसन्न थे। उन्होंने एक बार उस रमणीय सभाकी ओर दष्टि डालकर भगवान्से यह वचन कहा 'देवकीनन्दन! जब युद्धका अवसर उपस्थित था, उस समय मुझे आपके माहात्म्यका ज्ञान और ईश्वरीय स्वरूपका दर्शन हुआ था, किंतु केशव ! आपने स्नेहवश पहले मुझे जो ज्ञानका उपदेश किया था, वह सब इस समय बुद्धिके दोषसे भूल गया है। उन विषयोंको सुननेके लिये बारंबार मेरे मनमें उत्कण्ठा होती है, इधर, आप जल्दी ही द्वारका जानेवाले हैं। अतः पुनः वह सब विषय मुझे सुना दीजिये।

वैशम्पायन जी कहते हैं --अर्जुनके ऐसा कहनेपर वक्ताओं में श्रेष्ठ महातेजस्वी भगवान् श्रीकष्णने उन्हें गलेसे लगाकर इस प्रकार उत्तर दिया।

श्रीकष्ण बोले - अर्जुन ! उस समय मैंने तुम्हें अत्यन्त गोपनीय विषयका श्रवण कराया था, अपने स्वरूपभूत धर्म सनातन पुरुषोत्तमतत्त्वका परिचय दिया था और (शुक्ल-कष्ण गतिका निरूपण करते हुए) नित्य लोकोंका भी वर्णन किया था। किंतु तुमने जो अपनी नासमझीके कारण उस उपदेशको याद नहीं रक्खा यह जानकर मुझे बड़ा खेद हुआ है। उन बातोंका अब पूरा-पूरा स्मरण होना सम्भव नहीं जान पड़ता। पाण्डुनन्दन ! निश्चय ही तुम बड़े श्रद्धाहीन हो, तुम्हारी बुद्धि अच्छी नहीं जान पड़ती। अब मेरे लिये उस उपदेशको ज्यों-का-त्यों दुहरा देना कठिन है, क्योंकि उस समय योगयुक्त होकर मैंने परमात्मतत्त्वका वर्णन किया था। (अधिक जानकारी के लिए पढ़ें - 'संक्षिप्त महाभारत द्वितीय भाग')

विचार करें :- उपरोक्त विवरण से सिद्ध हुआ कि श्री कृष्ण जी ने श्रीमद्भगवत गीता का ज्ञान नहीं बोला, यह तो काल (ज्योति निरंजन अर्थात् ब्रह्म) ने बोला था।

❖ *श्री कृष्ण जी ने अर्जुन को अपने स्तर की गीता सुनाई जो महाभारत ग्रन्थ में इस प्रकरण के तुरंत पश्चात् यानि लगातार श्री कृष्ण जी ने अपने ज्ञान स्तर की गीता कहीं जो एक ऋषि की कहानी है जिसमें जरा भी आध्यात्मिक ज्ञान इस श्रीमद्भगवत से मेल नहीं करता।*

अन्य प्रमाण :- (1) कुछ समय उपरान्त श्री युधिष्ठिर जी को भयंकर स्वपन आने लगे। श्री कृष्ण जी से कारण तथा समाधान पूछा तो बताया कि तुमने युद्ध में जो पाप किए हैं वह नर संहार का दोष तुम्हें दुःख दाई हो रहा है। इसके लिए एक यज्ञ करो। श्री कृष्ण जी के मुख कमल से यह वचन सुन कर श्री अर्जुन को बहुत दुःख हुआ तथा मन ही मन विचार करने लगा कि भगवान श्री कृष्ण जी पवित्र गीता बोलते समय तो कह रहे थे कि अर्जुन तुम्हें कोई पाप नहीं लगेगा, तूं युद्ध कर ले(पवित्र गीता अध्याय 2 श्लोक 37-38)। यदि युद्ध में मारा भी गया तो स्वर्ग का सुख भोगेगा, अन्यथा युद्ध में जीत कर पृथ्वी के राज्य का आनन्द लेगा। अर्जुन ने विचार किया कि जो समाधान दुःख निवारण का श्री कृष्ण जी ने बताया है इसमें करोड़ों रूपया व्यय होना है। जिससे बड़े भाई युधिष्ठिर का कष्ट निवारण होगा। यदि मैं श्री कृष्ण जी से वाद-विवाद करूंगा कि आप पवित्र गीता जी का ज्ञान देते समय तो कह रहे थे कि तुम्हें पाप नहीं लगेगा। अब उसके विपरित कह रहे हो। इससे मेरा बड़ा भाई यह न सोच बैठे कि करोड़ों रूपये के खर्च को देख कर अर्जुन बौखला गया है तथा मेरे कष्ट निवार्ण से प्रसन्न नहीं है। इसलिए मौन रहना उचित जान कर सहर्ष स्वीकृति दे दी कि जैसा आप कहोगे वैसा ही होगा। श्री कृष्ण जी ने उस यज्ञ की तिथि निर्धारित कर दी। वह यज्ञ भी श्री सुदर्शन स्वपच के भोजन खाने से सफल हुई। (यज्ञ का प्रकरण देखें इसी पुस्तक के पृष्ठ नं. 520 पर)

कुछ समय उपरान्त ऋषि दुर्वासा जी के शापवश सर्व यादव कुल विनाश हो गया, श्री कृष्ण भगवान के पैर के तलुवे में एक शिकारी (जो त्रेतायुग में सुग्रीव के भाई बाली की ही आत्मा थी) ने विषाक्त तीर मार दिया। तब पाँचों पाण्डवों के घटना स्थल पर पहुँच जाने के उपरान्त श्री कृष्ण जी ने कहा कि आप मेरे शिष्य हो मैं आप का धार्मिक गुरु भी हूँ। इसलिए मेरी अन्तिम आज्ञा सुनो। एक तो यह है कि अर्जुन, द्वारिका की सर्व स्त्रियों को इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली) ले जाना, क्योंकि यहाँ कोई नर नहीं बचा है तथा दूसरे आप सर्व पाण्डव राज्य त्याग कर हिमालय में साधना करके शरीर को गला देना। क्योंकि तुमने महाभारत के युद्ध के दौरान जो हत्याऐं की थी, तुम्हारे शीश पर वह पाप बहुत भयंकर है। उस समय अर्जुन अपने आप को नहीं रोक सका तथा कहा प्रभु वैसे तो आप ऐसी स्थिति में हैं कि मुझे ऐसी बातें नहीं करनी चाहिऐं, परन्तु प्रभु यदि आज मेरी शंका का समाधान नहीं हुआ तो मैं चैन से मर भी नहीं पाऊँगा। पूरा जीवन रोता रहूँगा। श्री कृष्ण जी ने कहा अर्जुन पूछ ले जो कुछ पूछना है, मेरी अन्तिम घड़ियाँ हैं। श्री अर्जुन ने आँखों में आंसू भर कर कहा कि प्रभु बुरा न मानना। जब आपने पवित्र गीता जी का ज्ञान कहा था उस समय मैं युद्ध करने से मना कर रहा था। आपने कहा था कि अर्जुन तेरे दोनों हाथों में लड्डू हैं। यदि युद्ध में मारा गया तो स्वर्ग को प्राप्त होगा और यदि विजयी हुआ तो पृथ्वी का राज्य भोगेगा तथा तुम्हें कोई पाप नहीं लगेगा। हमने आप ही की देख-रेख व आज्ञानुसार युद्ध किया(प्रमाण पवित्र गीता अध्याय 2 श्लोक 37-38)। हे भगवन ! हमारे तो एक हाथ में भी लड्डू नहीं रहा। न तो युद्ध में मर कर स्वर्ग प्राप्ति हुई तथा अब

राज्य त्यागने का आदेश आप दे रहे हैं, न ही पथ्वी के राज्य का आनन्द ही भोग पाए। ऐसा छल युक्त व्यवहार करने में आपका क्या हित था? अर्जुन के मुख से यह वचन सुन कर युधिष्ठिर जी ने कहा कि अर्जुन ऐसी स्थिति में जब कि भगवान अन्तिम स्वांस गिन रहे हैं आपका शिष्टाचार रहित व्यवहार शोभा नहीं देता। श्री कष्ण जी ने कहा अर्जुन आज मैं अन्तिम स्थिति में हूँ, तुम मेरे अत्यन्त प्रिय हो, आज वास्तविकता बताता हूँ कि कोई खलनायक जैसी और शक्ति है जो अपने को यन्त्र की तरह नचाती रही, मुझे कुछ मालूम नहीं मैंने गीता में क्या बोला था। परन्तु अब मैं जो कह रहा हूँ वह तुम्हारे हित में है। श्री कष्ण जी यह वचन अश्रुयुक्त नेत्रों से कह कर प्राण त्याग गए। उपरोक्त विवरण से सिद्ध हुआ कि पवित्र गीता जी का ज्ञान श्री कष्ण जी ने नहीं कहा। यह तो ब्रह्म(ज्योति निरंजन-काल) ने बोला है, जो इक्कीश ब्रह्मण्ड का स्वामी है। काल(ब्रह्म) कौन है? यह जानने के लिए सष्टि रचना पढ़े।

श्री कष्ण सहित सर्व यादवों का अन्तिम संस्कार कर अर्जुन को छोड़ कर चारों भाई इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली) चले गए। पीछे से अर्जुन द्वारिका की स्त्रियों को लिए आ रहा था। रास्ते में जंगली लोगों ने सर्व गोपियों को लूटा तथा कुछेक को भगा ले गए तथा अर्जुन को पकड़ कर पीटा। अर्जुन के हाथ में वही गांडीव धनुष था जिससे महाभारत के युद्ध में अनगिन हत्याऐं कर डाली थी, वह भी नहीं चला। तब अर्जुन ने कहा कि यह श्री कष्ण वास्तव में झूठा तथा कपटी था। जब युद्ध में पाप करवाना था तब तो मुझे शक्ति प्रदान कर दी, एक तीर से सैकड़ों योद्धाओं को मार गिराता था और आज वह शक्ति छीन ली, खड़ा-खड़ा पिट रहा हूँ। इसी विषय में पूर्ण ब्रह्म कबीर साहेब (कविर्देव) जी का कहना है कि श्री कष्ण जी कपटी व झूठे नहीं थे। यह सर्व जुल्म काल(ज्योति निरंजन) कर रहा है। जब तक यह आत्मा कबीर परमेश्वर(सतपुरुष) की शरण में पूरे सन्त(तत्वदर्शी) के माध्यम से नहीं आ जाएगी, तब तक काल इसी तरह कष्ट पर कष्ट देता रहेगा। पूर्ण जानकारी तत्वज्ञान से होती है। इसीलिए काल कौन है? यह जानने के लिए पढ़ें सष्टि रचना।

अन्य प्रमाण :-

(2) गीता अध्याय 10 श्लोक 9 से 11 में गीता ज्ञान दाता प्रभु कह रहा है कि जो श्रद्धालु मुझ ब्रह्म का ही निरन्तर चिन्तन करते रहते हैं उनके अज्ञान को नष्ट करने के लिए में ही उनके अन्दर(आत्मभावस्थः) जीवात्मा की तरह बैठकर शास्त्रों का ज्ञान देता हूँ।

(3) श्री विष्णु पुराण(गीता प्रैस गोरखपुर से प्रकाशित) के चतुर्थ अंश अध्याय 2 श्लोक 21 से 26 में पष्ठ 233 पर लिखा है कि देवताओं और राक्षसों के युद्ध में देवताओं की प्रार्थना पर भगवान विष्णु ने कहा है कि मैं राजर्षि शशाद के शरीर में कुछ समय प्रवेश करके असुरों का नाश करूँगा। ऐसा ही किया गया।

(4) श्री विष्णु पुराण (गीता प्रैस गोरखपुर से प्रकाशित) के चतुर्थ अंश अध्याय 3 श्लोक 4 से 6 में पष्ठ 242 पर लिखा है कि ''नागेश्वरों की प्रार्थना स्वीकार करके श्री विष्णु जी ने कहा कि मैं मान्धाता के पुत्र पुरूकुत्स के शरीर में प्रवेश करके गन्धर्वों का नाश करूंगा। वैसा ही किया गया। {यहाँ पर विष्णु रूप में काल(ब्रह्म) बोल रहा है}

विशेष विचार :- उपरोक्त प्रमाणों से सिद्ध हुआ कि इसी प्रकार श्रीमद्भगवत गीता का ज्ञान श्री कष्ण ने नहीं बोला, श्री कष्ण जी के शरीर में प्रेतवत प्रवेश होकर ब्रह्म(काल अर्थात् ज्योति निरंजन) ने बोला था।

(5) श्री कृष्ण जी की बहन सुभद्रा का विवाह अर्जुन से हुआ था। श्री कृष्ण जी नाते में अर्जुन के साले लगते थे। गीता अध्याय 11 श्लोक 31 में अर्जुन ने पूछा कि हे उग्र रूप वाले! आप कौन हो? गीता अध्याय 11 के श्लोक 32 में गीता ज्ञान दाता ने उत्तर दिया कि मैं काल हूँ। सर्व सेना का नाश करने के लिए अब प्रवर्त हुआ हूँ यानि आया हूँ।

विचारणीय विषय है कि क्या कोई अपने साले को नहीं जानता? अर्जुन को उस समय काल दिखाई दिया था जो श्री कृष्ण के शरीर से निकलकर अपने वास्तविक रूप में प्रकट था। गीता अध्याय 11 श्लोक 47 में भी स्पष्ट किया है कि यह मेरा स्वरूप है जिसे तेरे अतिरिक्त न तो किसी ने पहले देखा था, न कोई भविष्य में देख सकेगा। इससे सिद्ध हुआ कि श्री कृष्ण के शरीर में काल ने प्रवेश करके गीता का ज्ञान कहा था।

क्योंकि वह उपरोक्त नियम से किसी भी योग्य व्यक्ति में प्रेतवत् प्रवेश करके अपना कार्य सिद्ध करता है। पश्चात् निकल जाता है जैसे अर्जुन में प्रवेश करके विरोधी सेना मार डाली पश्चात् निकल गया। फिर अर्जुन को जंगली व्यक्तियों ने मारा-पीटा। अर्जुन में पूर्व वाली शक्ति नहीं रही।

"काल की परिभाषा"

पवित्र विष्णु पुराण में वर्णन है कि भगवान विष्णु (महाविष्णु रूप में काल) का प्रथम रूप तो पुरुष (प्रभु जैसा) है परन्तु उसका परम रूप 'काल' है। जब भगवान विष्णु (काल जो महाविष्णु रूप में ब्रह्मलोक में रहता है तथा प्रकृति अर्थात् दुर्गा को अपनी पत्नी महालक्ष्मी रूप में रखता है) अपनी प्रकृति (दुर्गा) से अलग हो जाता है तो काल रूप में प्रकट हो जाता है। (यह प्रकरण विष्णु पुराण अध्याय 2 पृष्ठ 4-5 गीता प्रैस गोरख पुर से प्रकाशित है। अनुवादक हैं श्री मुनिलाल गुप्त।)

विशेष :- उपरोक्त विवरण का भावार्थ है कि यह महाविष्णु अर्थात् काल पुरुष पहले तो लगता है कि यह दयावान भगवान है। जैसे खाने के लिए अन्न, मेवा व फल आदि कितने स्वादिष्ट प्रदान किए हैं तथा पीने के लिए दूध, जल कितने स्वादिष्ट तथा प्राण दायक प्रदान किए हैं। कितनी अच्छी वायु जीने के लिए चला रखी है, कितनी विस्तृत पृथ्वी रहने तथा घूमने के लिए प्रदान की है, फिर पति-पत्नी का योग, पुत्रों व पुत्रियों की प्राप्ति से लगता है कि यह तो बड़ा दयावान प्रभु है। जिसके लोक में हम रह रहे हैं।

महाविष्णु का वास्तविक रूप काल कैसे है :- किसी के पुत्र की मृत्यु, किसी की पुत्री की मृत्यु, किसी के दोनों पुत्रों की मृत्यु, किसी का पूरा परिवार दुर्घटना में मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। किसी क्षेत्र में बाढ़ आकर हजारों व्यक्तियों की परिवार सहित मृत्यु, किसी क्षेत्र में भूकंप से लाखों व्यक्ति सपरिवार मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं। इस प्रकार इस विष्णु (महाविष्णु रूप में ज्योति निरंजन) का वास्तविक रूप काल है। क्योंकि ज्योति निरंजन (काल ब्रह्म) शाप वश एक लाख मानव शरीर धारी प्राणियों का आहार करता है। इसलिए इसने अपने तीनों पुत्रों (रजगुण ब्रह्मा जी, सतगुण विष्णु जी तथा तमगुण शिव जी) से उत्पत्ति, स्थिति व संहार करवाता है।

उदाहरण :- पूर्ण ब्रह्म कविर्देव ने अपने प्रिय सेवक श्री धर्मदास जी द्वारा काल की स्थिति पूछने पर बताया कि जैसे कसाई बकरे पालता है। उन प्राणियों के चारे की व्यवस्था करता है, पानी का प्रबन्ध करता है, गर्मी व सर्दी से बचने के लिए कुछ मकान आदि का भी प्रबन्ध करता

है, जिससे वे अबोध बकरे समझते हैं कि हमारा स्वामी बहुत नेक है। हमारा कितना ध्यान रखता है। जब कसाई उनके पास आता है तो वे नर व मादा बकरे उसे अपना सुखदाई मालिक जान कर उसको प्यार जताने के लिए आगे वाले पैर उठाकर कसाई के शरीर को स्पर्श करते हैं, कुछ उसके पैरों को चाटते हैं। कुछ को वह स्वयं छूकर कमर पर हाथ लगा कर दबा दबा कर देखता है तो वे बकरे समझते हैं कि हमें प्यार दे रहा है। परन्तु कसाई देख रहा होता है कि इस बकरे में कितने किलोग्राम मास हो चुका है। जब मास लेने के लिए ग्राहक आता है तो उस समय कसाई नहीं देखता कि किसका बाप मर रहा है, किसकी बेटी या पुत्र या सर्व परिवार मर रहा है। उनको सुविधा देने का उसका यही उद्देश्य था। ठीक इसी प्रकार सर्व प्राणी काल(ब्रह्म) साधना करके काल आहार ही बने हैं। इससे छूटने की विधि आपको इसी पुस्तक में विस्तत मिलेगी। एक बहन ने मुझ दास का सतसंग सुना तथा बाद में अपनी दुःख भरी कथा सुनाई जो निम्न है :-

उस बहन ने कहा महाराज जी मैं विधवा हूँ। एक पुत्र की प्राप्ति होते ही मेरे पति की मत्यु हो गई। मैंने अपने पुत्र की परवरिश बहुत ही चाव तथा प्यार के साथ इस दष्टि कोण से की कि कहीं पुत्र को पिता का अभाव महसूस न हो जाए। उसने जो सम्भव वस्तु की प्रार्थना की मैंने दुःखी सुखी होकर उपलब्ध करवाई। जब वह ग्यारहवीं कक्षा में कॉलेज में जाने लगा तो मोटर साईकिल की जिद कर ली। दुर्घटना के भय से मैंने बहुत मना किया, परन्तु पुत्र ने खाना नहीं खाया। तब मैंने उसके प्यारवश होकर मोटर साईकिल जैसे-तैसे करके मोल लेकर दे दी। मैंने दूसरी शादी भी इसी उद्देश्य से नहीं करवाई की कि कहीं मेरे पुत्र को कष्ट न हो जाए। मैंने अपने पुत्र को गर्म-गर्म खाना खिलाया। वह प्रतिदिन की तरह अपने एक दोस्त को उसके घर से मोटर साईकिल पर बैठाकर कॉलेज जाने के लिए चला गया।

मैंने शेष भोजन बनाया तथा स्वयं खाने के लिए भोजन डाल कर प्रथम ग्रास ही तोड़ा था इतने में मेरे पुत्र का दोस्त दौड़ा हुआ आया, उसको कुछ चोट लगी हुई थी। उसने कहा कि चाची भईया को दुर्घटना में बहुत ज्यादा चोट आई है। इतना सुनते ही हाथ का ग्रास थाली में गिर गया। नंगे पैरों उस बच्चे के साथ पागलों की तरह रोती हुई दौड़ कर उस स्थान पर गई जहाँ मेरे पुत्र की दुर्घटना हुई थी। वहाँ पर केवल क्षति ग्रस्त मोटर साईकिल पड़ी थी। उपस्थित व्यक्तियों ने बताया कि आपके पुत्र को हस्पताल लेकर गये हैं। मैं हस्पताल पहुँची तो डाक्टरों ने मत घोषित कर दिया। मैंने हस्पताल की दीवार को टक्कर मारी, मेरा सिर फट गया, सात टांके लगे, बेहोश हो गई, लगभग दो घंटे में होश आया।

उस दिन के बाद सर्व भगवानों के चित्र घर से बाहर फैंक दिए तथा स्वपन में भी किसी भगवान को याद नहीं करती। क्योंकि मैंने अपने पुत्र की कुशलता के लिए लोकवेद अनुसार सर्व साधनाऐं की, परन्तु कुछ भी काम नहीं आई। आज आप का सतसंग जो सष्टि रचना का प्रकरण आपने सुनाया तथा पवित्र गीता जी से भी बताया कि यह सर्व काल का जाल है, अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए कसाई की तरह सर्व प्राणियों को विवश किए हुए है। मेरी तो आज आंखें खुल गई। अब फिर मन करता है कि आपका उपदेश लेकर काल जाल से निकल जाऊं। उस बहन ने उपदेश लिया तथा अपना कल्याण करवाया।

मैंने उस बहन से पूछा कि आप क्या साधना करते थे?

उस बहन ने उत्तर दिया :- एक सुप्रसिद्ध संत का नाम लेकर कहा कि उस मूर्ख से दस

वर्ष से उपदेश भी ले रखा था। उसके बताए अनुसार नाम जाप घण्टों किया करती थी। श्री विष्णु जी का सहस्त्रनामा का जाप भी करती थी। गीता जी का नित पाठ, पितर पूजा (श्राद्ध निकालना) करती थी। गांव में परम्परागत बाबा श्याम जी की पूजा भी करती थी। अष्टमी तथा सोमवार का व्रत भी करती थी। निकटतम मन्दिर में प्रतिदिन जाती थी। वर्ष में दो बार वैष्णों देवी के दर्शन करने जाती थी। गुड़गांव वाली माता की पूजा भी करती थी। नवरात्रों का व्रत भी किया करती थी। एक बहन ने कहा बाबा गरीबदास जी की पूजा करने तथा वहाँ छुड़ानी धाम(जिला झज्जर) पर जाने से कोई आपत्ति नहीं आ सकती। वहाँ भी छठे महीने मेला भरता है जाया करती थी तथा पाठ भी करवाती थी। और क्या बताऊँ? बाबा हरिदास जी झाड़ौदा वाले की भी पूजा करती थी। मुझे कोई लाभ नहीं हुआ। पहले तो लगता था कि मेरा परिवार सुखी है। जो उपरोक्त साधना का ही परिणाम है।

परन्तु अब आप के सतसंग से ज्ञान हुआ कि यह तो मेरा प्रारब्ध ही मिल रहा था। ये पूजायें पवित्र गीता जी में तथा पवित्र अमृत वाणी गरीबदास जी के सद्ग्रन्थ में वर्णित न होने से शास्त्र विरुद्ध थी। जिस कारण से कोई लाभ होना ही नहीं था। हमारा क्या दोष है? जो गुरु जी ने साधना बताई मैं तो तन-मन-धन से कर रही थी। अब पता चला कि वे गुरु नहीं है, वे तो नीम हकीम हैं। मानव जीवन के सब से बड़े शत्रु हैं। यदि मुझे यह सत्य साधना मिल जाती तो मेरा पुत्र नहीं मरता। क्योंकि मैंने आपके सेवकों के सुखों को देखा है तथा उन पर आने वाली भयंकर आपतियों को टलते देखा है। तब मैं आपका सतसंग सुनने आई हूं तथा आप का लगातार चार दिन तक सतसंग सुनकर आज उपदेश लेने की इच्छा हुई है। मैंने उस बहन से कहा कि जिन साधनाओं को आप कर रही थी वे सर्व शास्त्र विधि अनुसार नहीं थी, जिस कारण आपको परमेश्वर का सहयोग प्राप्त नहीं हुआ। यह तो आप ने स्वयं ही निर्णय लेकर बता दिया। क्योंकि आज तक आपको सत्संग ही प्राप्त नहीं हुआ था। जिसे आप सतसंग जान कर श्रवण करती थी वह सतसंग नहीं लोक वेद (सुना सुनाया शास्त्र विरुद्ध ज्ञान) था। जो आप किसी धाम पर जाती थी तथा पाठ करवाती थी। आदरणीय गरीबदास जी की पूजा करती थी। जब कि आदरणीय गरीबदास जी तो कहते हैं कि :-

सब पदवी के मूल हैं, सकल सिद्ध हैं तीर। दास गरीब सतपुरुष भजो, अविगत कला कबीर।।

अलल पंख अनुराग है, सुन्न मण्डल रहे थीर। दास गरीब उधारिया,सतगुरु मिलें कबीर।।

पूजें देई धाम को, शीश हलावें जो। गरीबदास साची कहैं, हद काफिर हैं सो।

उपरोक्त अमृतवाणी में प्रमाण है कि आदरणीय गरीबदास साहेब जी कह रहे हैं कि मेरा उद्धार भी परमेश्वर कबीर(कविर्देव) ने किया तथा तुम भी उसी सर्वशक्तिमान कबीर(कविरमितौजा) परमेश्वर की ही भक्ति करो। उसके लिए कहा है कि पूर्ण संत जो कबीर परमेश्वर(कविर्देव) का कृपा पात्र हो, उससे उपदेश लेकर अपना कल्याण करवाओ। झूठे गुरुओं के आश्रित रहने से जीवन व्यर्थ होता है। उस शास्त्र विरुद्ध साधना बताने वाले नकली गुरु को त्याग देना चाहिये। उसके तो दर्शन भी अशुभ होते हैं। आदरणीय गरीबदास जी अपनी अमृतवाणी में कहते हैं कि :-

झूठे गुरु को लीतर लावैं, उसको निश्चय पीटे। उसके पीटे पाप नहीं है, घर से काढ़ घसीटे।।

उपरोक्त अमृतवाणी में आदरणीय गरीबदास साहेब जी शास्त्र विधि रहित साधना बताकर अनमोल मानव जन्म को नष्ट करने वाले नकली (झूठे) मार्ग दर्शकों (गुरुओं) के विषय में कह रहे हैं कि वे आप का जीवन नष्ट करने वाले हैं। उनसे तुरंत छुटकारा लेना चाहिये। घर में घुसने नहीं

देना चाहिए। वे तो परमेश्वर कबीर (कविर्देव) के द्रोही हैं तथा काल के भेजे दूत हैं।

"अन् अधिकारी से यज्ञ व पाठ करवाना व्यर्थ है"

जिसको पूर्ण परमात्मा का मार्ग दर्शन करने का अधिकार नहीं है तथा उसके पास सत्य भक्ति तीन मंत्र की नहीं है, वह अन अधिकारी होता है। पूर्ण संत जो पूर्ण परमेश्वर की वास्तविक साधना बताता है उसे गुरु बना कर उसी के माध्यम से सर्व धार्मिक अनुष्ठान करवाना हितकर है।

कबीर गुरु बिन माला फेरते, गुरु बिन देते दान। गुरु बिन दोनों निष्फल हैं, पूछो वेद पुराण।।
गुरु बिन यज्ञ हवन जो करही, निष्फल जाएं कबहुं नहीं फलहीं।

एक बार राजा परिक्षित को सातवें दिन सर्प ने डसना था। उस समय सर्व ऋषियों ने यह निर्णय लिया कि राजा को सात दिन तक श्रीमद्भागवद सुधासागर का पाठ सुनाया जाये, ताकि राजा का मोह संसार से हट जाए। कौन ऐसा कथा करने वाला ऋषि है जिसके पाठ करने से राजा का कल्याण हो सके ?

विचार करें :- सातवें दिन पता लग जाना था कि कथा (पाठ) करने वाला अधिकारी है या नहीं। इसलिए पृथ्वी पर उपस्थित सर्व ऋषियों व महर्षियों ने पाठ (कथा) करने का कार्य स्वीकार नहीं किया। क्योंकि वे महापुरुष प्रभु के संविधान से परिचित थे, इसलिए राजा परिक्षित के जीवन से खिलवाड़ नहीं किया तथा जो ढोंगी थे वे इस डर से सामने नहीं आए कि सातवें दिन पोल खुल जायेगी। उस समय स्वर्ग से महर्षि सुखदेव जी बुलाए गए जो विमान में बैठ कर आए। आते ही श्री सुखदेव जी ने राजा परिक्षित जी से कहा कि राजन आप मेरे से उपदेश प्राप्त करो अर्थात् मुझे गुरु बनाओ तब कथा (पाठ) करने का फल प्राप्त होगा। राजा परिक्षित ने श्री सुखदेव जी को गुरु बनाया तब सात दिन श्री भागवत सुधासागर (श्री विष्णु उर्फ श्री कृष्ण जी की लीला) की कथा सुनाई। राजा को सर्प ने डसा। राजा की मृत्यु हो गई। सूक्ष्म शरीर में राजा परिक्षित अपने गुरु श्री सुखदेव जी के साथ विमान में बैठ कर स्वर्ग गए। क्योंकि पहले राजा बहुत धार्मिक होते थे, पुण्य करते रहते थे।

राजा परिक्षित ने श्री कृष्ण जी से उपदेश भी प्राप्त था। उन्हीं के मार्ग दर्शन अनुसार बहुत धर्म किया था। परन्तु बाद में कलयुग के प्रभाव से ऋषि भिंडी के गले में सर्प डालने से तथा अन्य मर्यादा हीन कार्य करने से राजा परिक्षित का उपदेश खण्ड हो गया था। उस समय न तो किसी ऋषि जी ने राजा को उपदेश दे कर शिष्य बनाने की हिम्मत की, क्योंकि वे गुरु बनने योग्य नहीं थे। उन्हें उपदेश देने का अधिकार नहीं था। केवल श्री कृष्ण जी ही उपदेश देते थे, जो पाण्डवों के भी गुरु जी थे तथा छप्पन (56) करोड़ यादवों के भी गुरु जी थे। राजा परिक्षित के पुण्यों के आधार से श्री सुखदेव जी गुरु बन कर उसको कथा सुनाकर संसार से आस्था हटवा कर केवल स्वर्ग ले गए। इतना लाभ राजा परिक्षित को हुआ। स्वर्ग का समय पूरा होने अर्थात् पुण्य क्षीण होने के उपरान्त राजा परिक्षित तथा सुखदेव जी भी नरक जायेंगे, फिर चौरासी लाख प्राणियों के शरीर में नाना कष्ट उठायेंगे। जन्म-मृत्यु समाप्त नहीं हुआ अर्थात् मुक्त नहीं हुए।

"प्रभु प्रेमी पाठकों की शंकाओं का समाधान - रामपाल दास"

परमेश्वर के तत्वज्ञान सम्बन्धित लेखों को विज्ञापन के माध्यम से समाचार पत्रों में पढ़कर 99.99 प्रतिशत पाठक श्रद्धालुओं के प्रशंसा युक्त पत्र सतलोक आश्रम में प्राप्त हुए। जिन्होंने

लगभग सर्व लेख पढ़े हैं। एक आध श्रद्धालु ने केवल एक ही विज्ञापन पढ़ा, उसी के आधार पर नाराज होकर बिना पते का पत्र डाल दिया तथा एक पाठक ने 9 जुलाई 2005 के दैनिक भास्कर पृष्ठ 6 पर एक कोने में शंका व्यक्त की है। उन श्रद्धालुओं से प्रार्थना है कि पूर्ण जानकारी के लिए दो पुस्तकें (1. गहरी नजर गीता में 2. गीता तेरा ज्ञान अमृत) सतलोक आश्रम, बरवाला से मुफ्त प्राप्त करें। दूरभाष (8222880541, 8222880542) द्वारा अपना पता लिखवायें, पुस्तकें आपके पास पहुँच जाएंगी। केवल डाकखर्च आपको देना होगा।

शंका - (क) किसी की निंदा नहीं करनी चाहिए। जो संत जैसा मार्ग दर्शन करता है करता रहे।

उत्तर - मुझ दास का उद्देश्य है कि सर्व भक्त समाज को तत्वज्ञान कराऊँ। जिस भी शास्त्र पर जो भक्त वंदआधारित है उसी की वास्तविकता आप के समक्ष रखूं, तभी उन अधूरे शास्त्रों को त्यागने तथा सत भक्ति ग्रहण करने की तड़फ जाग्रत होगी। जैसे पेंटर (रंग करने वाला) जंग अर्थात् पूर्व किया गलत पैंट हटाने के लिए रेगमार लगाता है, फिर पेंट सही पकड़ करता है। इसी प्रकार शास्त्र विधि त्याग कर मनमाना आचरण (पूजा) करने वाले श्रद्धालुओं पर जंग लगा है, जिसे छुड़ाने के लिए शास्त्रों का तत्वज्ञान रूपी रेगमार लगाना अति आवश्यक है, यह निंदा नहीं है।

वास्तविक वस्तु का बोध कराने के लिए नकली वस्तु को साथ दिखाना आवश्यक होता है। जैसे सरकार ने 500 रूपये के नकली नोट पकड़े थे। जनता को धोखे से बचाने के लिए नकली तथा असली दोनों नोट समाचार पत्रों तथा टी.वी. के माध्यम से दिखाए थे। सरकार ने निंदा नहीं, परोपकार किया था, जो अति आवश्यक था। सरकार के उपरोक्त प्रयत्न को तीन प्रकार के व्यक्ति निंदा कह सकते हैं, एक तो जिसने नशा कर रखा हो, दूसरा अबोध बालक तथा तीसरा उसी गिरोह का व्यक्ति जो नकली नोट छापते थे।

सर्व पवित्र धर्मों के पवित्र शास्त्र वास्तविक (असली) नोट हैं। परन्तु उन्हीं की आड़ में वर्तमान के मार्गदर्शकों ने जो साधना की विधि बताई है, दास ने तो उसकी तुलना असली शास्त्रों से की है। जैसे किसी अध्यापक ने गणित का प्रश्न ठीक हल नहीं किया है उसी पर सर्व कक्षा के विद्यार्थी आश्रित हैं। दूसरा अध्यापक उसे ठीक कराए और विद्यार्थी कहें की अध्यापक जी तो पूर्व अध्यापक की निंदा कर रहा है, तो वह उन विद्यार्थियों की बाल बुद्धि ही है। मूल व्याख्या फिर पढ़ें। किसी अन्य अध्यापक से भी जानकारी लें। पूर्ण निश्चय करके परीक्षा की तैयारी करना ही उचित है।

अपने शास्त्र (सद्ग्रन्थ) सत्यज्ञान युक्त हैं, जिनमें मूल व्याख्या है। उन्हें पुनर् पढ़कर निर्णय लेना ही हितकर है। मूल शास्त्र हैं - 1. पवित्र चारों वेद, 2. पवित्र श्रीमद्भगवत गीता जी, अठारह पुराण, श्रीमद्भागवत सुधासागर जो पवित्र हिन्दु समाज के शास्त्र माने जाते हैं। वास्तव में उपरोक्त शास्त्र महर्षि व्यास जी द्वारा उस समय लिपिबद्ध किए गए थे जब कोई अन्य धर्म(हिन्दु, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई आदि) नहीं था। केवल वेदों के अनुसार साधना सर्व भक्त समाज किया करता था, ऋषिजन एक ही प्रकार की साधना श्रद्धालुओं को बताते थे। परन्तु वर्तमान के मार्गदर्शक शास्त्र विधि त्याग कर मनमाना आचरण (पूजा) कर तथा करवा रहे हैं जो हानिकारक है। प्रमाण श्रीमद्भगवत गीता अध्याय 16 श्लोक 23-24 में कहा है कि अर्जुन ! जो साधक शास्त्र विधि त्याग कर मनमाना आचरण (पूजा) करता है उसे न तो कोई सुख

होता है, न परमगति, न ही कोई कार्य ही सिद्ध होता है। इसलिए भगवत भक्ति के करने तथा न करने योग्य कर्मों (साधनाओं) के निर्णय के लिए शास्त्र ही प्रमाण हैं(श्रीमद्भगवत गीता जी का ज्ञान बोला जा रहा था, अतः चारों वेदों की तरफ संकेत है)।

पवित्र गीता जी चारों पवित्र वेदों का ही सारांश है, जो भक्ति के लिए प्रभु का संविधान है। संविधान की अवहेलना करने वाला दोषी होता है। पवित्र गीता जी तथा पवित्र चारों वेदों का ज्ञान ब्रह्म (ज्योति निरंजन-काल) द्वारा ही दिया गया है। जिसमें ब्रह्म(क्षर पुरुष), परब्रह्म(अक्षर पुरुष) तथा पूर्णब्रह्म(परम अक्षर पुरुष) के विषय में विवरण है। प्रमाण : पवित्र श्रीमद्भगवत गीता अध्याय 15 श्लोक 1 से 4 तथा 16-17 में, पवित्र यजुर्वेद अध्याय 40 मंत्र 17, पवित्र ऋग्वेद मण्डल 10 सूक्त 90 मंत्र 1 से 5 आदि-आदि।

उपरोक्त शास्त्रों में पूजा की विधि केवल ब्रह्म तक की ही वर्णित है। पूर्णब्रह्म की पूजा की विधि के विषय में पवित्र गीता तथा पवित्र वेदों का ज्ञान दाता ब्रह्म(ज्योति निरंजन-काल) ने कहा है कि उस पूर्ण परमात्मा के विषय में मुझे ज्ञान नहीं है। उसके लिए किसी तत्वज्ञान युक्त तत्वदर्शी संतों की खोज कर, फिर जैसे वे तत्वदर्शी संत बताऐं वैसे साधना उस परमात्मा की करना। प्रमाण पवित्र गीता अध्याय 4 श्लोक 34, यजुर्वेद अध्याय 40 मंत्र 10 ।

अपनी साधना के विषय में पवित्र श्रीमद्भगवत गीता के ज्ञान दाता ब्रह्म ने अध्याय 8 मंत्र 13 में कहा है -

ओम् इति एकाक्षरम्, ब्रह्म व्याहरन् माम् अनुस्मरन्, यः प्रयाति त्यजन् देहम्, सः याति परमाम् गतिम्।।13।।

इसका शब्दार्थ है कि गीता बोलने वाला ब्रह्म अर्थात् काल कह रहा है कि (माम् ब्रह्म) मुझ ब्रह्म का तो (इति) यह (ओम् एकाक्षरम्) ओं अर्थात् ॐ एक अक्षर है (व्याहरन्) उच्चारण करके (अनुस्मरन्) स्मरण करने का (यः) जो साधक (त्यजन् देहम्) शरीर त्यागने तक अर्थात् अन्तिम स्वांस तक (प्रयाति) स्मरण साधना करता है (सः) वह साधक ही मेरे वाली (परमाम् गतिम्) परमगति को (याति) प्राप्त होता है। भावार्थ है कि श्री कृष्ण जी के शरीर में प्रेतवत् प्रवेश करके ब्रह्म अर्थात् हजार भुजा वाला ज्योति निरंजन काल कह रहा है कि मुझ ब्रह्म की साधना केवल एक ओम् (ॐ) नाम से मृत्यु पर्यन्त करने वाले साधक को मुझसे मिलने वाला लाभ प्राप्त होता है। अन्य कोई मंत्र मेरी भक्ति का नहीं है तथा अपनी गति को भी गीता अध्याय 7 मंत्र 18 में अनुत्तमाम् अर्थात् अति घटिया बताया है। इसलिए गीता अध्याय 18 श्लोक 62 में कहा है कि अर्जुन सर्व भाव से उस परमेश्वर की शरण में जा, तब तू पूर्ण मुक्त होकर परम शान्ति को तथा सतलोक अर्थात् सनातन धाम को प्राप्त होगा। यदि मेरी शरण में रहेगा तो युद्ध भी कर तथा मेरा स्मरण भी कर (गीता अध्याय 8 श्लोक 7)। परन्तु तू तथा मैं (गीता ज्ञान दाता प्रभु) दोनों ही नाशवान हैं अर्थात् तेरे तथा मेरे बहुत जन्म हो चुके हैं, आगे भी होते रहेंगे (गीता अध्याय 4 श्लोक 5 तथा गीता अध्याय 2 श्लोक 12 व 17)। उस परमेश्वर के ज्ञान व भक्ति विधि के लिए किसी तत्वदर्शी संत की खोज करने को कहा है(गीता अध्याय 4 श्लोक 34)। अब सर्व से प्रार्थना है कि उस परमेश्वर पूर्णब्रह्म का ज्ञान मुझ दास के पास है, निःशुल्क प्राप्त करें।

यही प्रमाण यजुर्वेद अध्याय 40 मंत्र 15 व 17 में भी है। उपरोक्त सद्ग्रन्थों अर्थात् प्रभु भक्ति के संविधान ने सिद्ध कर दिया कि एक ओ३म् नाम को छोड़ कर अन्य जो भी नाम हैं वे शास्त्र विधि (प्रभु भक्ति के संविधान) के विरूद्ध मनमाना आचरण (पूजा) हैं जो हानिकारक है। इसलिए ओम्

नमो शिवाय, ओम् नमो भगवते वासुदेवाय, हरिओम् आदि भी मंत्र शास्त्र विधि अनुसार नहीं हैं। जैसे मोटर साईकिल के पिस्टन से कोई अन्य नट आदि वैल्ड कर देना हानिकारक है, ऐसे ही ओम नाम के साथ अन्य कोई वाक्य या अक्षर लगाना शास्त्र विधि रहित है। इसलिए ब्रह्म तक की साधना केवल एक ओं (ॐ) 'ओ३म्' नाम के जाप से ही सफल होती है।

वर्तमान के सन्तों व महन्तों को स्वयं ही ज्ञान नहीं कि हम जो शास्त्र विरुद्ध साधना कर तथा करवा रहे हैं यह कितनी भयंकर कष्टदायक दोनों (गुरु जी व शिष्यों) को होगी। इसलिए पुनर् विचार करना चाहिए तथा झूठे गुरुजी को तथा झूठी (शास्त्र विरुद्ध) पूजाओं को तुरन्त त्याग कर सत्य साधना प्राप्त करके आत्म कल्याण करवाना चाहिए। वह साधना मुझ दास के पास पूर्ण रूपेण उपलब्ध है। अब श्रीमद्भगवत गीता शास्त्र का यथार्थ अनुवाद करता हूँ जो आज तक किसी ने नहीं किया।

दिनाँक :- 08-09-2001

अनुवाद कर्ता
(सन्त) रामपाल दास

❑❑❑

सृष्टि रचना

श्री देवी भागवत पुराण के पहले स्कन्ध में अध्याय 1 से 8 पष्ठ 21 से 43 पर प्रमाण है। कि महर्षि व्यास जी के परम शिष्य श्री सूत जी से शौनकादि ऋषियों ने प्रश्न किया कि हे सूत जी! कपा आप देवी पुराण की पावन कथा सुनाऐं। श्री सूत जी ने कहा (पष्ठ 23) पौराणिकों एवं वैदिकों का कथन है तथा यह भली–भांति विदित भी है कि ब्रह्मा जी इस अखिल जगत् के सष्टा हैं। साथ ही वे यह भी कहते हैं कि ब्रह्मा जी का जन्म भगवान् विष्णु जी के नाभि कमल से हुआ है। फिर ऐसी स्थिती में ब्रह्मा जी स्वतन्त्र सष्टा कैसे ठहरे ? भगवान् विष्णु को स्वतन्त्र सष्टा नहीं कह सकते क्योंकि वे शेष नाग की शय्या पर सोए थे। नाभि से कमल निकला और उस पर ब्रह्मा जी प्रकट हुए। किन्तु वे श्री विष्णु जी भी तो किसी आधार पर अवलम्बित थे। उनके आधार भूत क्षीर समुन्द्र को भी स्वतन्त्र सष्टा नहीं माना जा सकता क्योंकि वह रस है, रस बिना पात्र के ठहरता नहीं कोई न कोई उसका आधार रहना ही चाहिए। अतएव चराचर जगत् की आधार भूता भगवती जगदम्बिका ही सष्टा रूप में निश्चित हुई'' (देवी पुराण के पष्ठ 41 पर लिखा है :–) ऋषियों ने पूछा :– महाभाग सूत जी ! इस कथा प्रसंग को जानकर तो हमें बड़ा ही आश्चर्य हो रहा है, क्योंकि वेद, शास्त्र, पुराण और विज्ञ जनों ने सदा यही निर्णय किया है कि ब्रह्मा, विष्णु और शंकर–ये ही तीनों सनातन देवता हैं। इनसे बढ़कर इस ब्रह्माण्ड में दूसरा कोई देवता है ही नहीं। आपने इस सर्व की सष्टि कारण भूत जिस जगदम्बिका (दुर्गा) के विषय में कहा है वह कौन शक्ति है उसकी सष्टि (उत्पति) कैसे हुई। यह सब बताने की कपा करें।

सूत जी कहते हैं :– मुनिवरों ! चराचर सहित इस त्रिलोकी में कौन ऐसा है जो इस संदेह को दूर कर सके। ब्रह्मा जी के पुत्र नारद, कपिल आदि दिव्य महापुरूष भी इस प्रश्न का समाधान करने में निरूपाय हो जाते हैं। महानुभावों ! यह बड़ा ही गहन और विचारणीय है। इस सम्बन्ध मैं क्या कह सकता हूँ ?

(श्री देवीपुराण के तीसरे स्कन्ध के अध्याय 13 पष्ठ 115 पर) नारद जी ने अपने पिता ब्रह्मा जी से पूछा ''पिता जी! यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड कहां से उत्पन्न हुआ है। विभो ! अपने सम्यक प्रकार से इसकी रचना की है? अथवा विष्णु इस विश्व के रचियता हैं या शंकर ने इसकी सष्टि की है? जगत् प्रभो ! आप विश्व की आत्मा हैं। सच्ची बात बताने की कपा करें। किस देवता की पूजा करनी चाहिए ? तथा कौन देवता (प्रभु) सबसे बड़ा एवं सर्व समर्थ है? इन सभी प्रश्नों का समाधान करके मेरे हृदय के संदेह को दूर करने की कपा कीजिए। ब्रह्मा जी ने कहा– बेटा मैं इस प्रश्न का क्या उत्तर दूँ? यह प्रश्न बड़ा ही जटिल है। इस संसार में कोई भी रागी पुरूष ऐसा नहीं है जिसे यह रहस्य विदित हो। (श्री देवी पुराण से लेख समाप्त)

प्रिय पाठक जनों ! जिस सष्टि रचना के विषय में तथा सर्व समर्थ प्रभु के विषय में न व्यास जी जानते हैं न श्री ब्रह्मा जी। उस रहस्य को सष्टि रचना के उल्लेख में निम्न पढ़ें :-

प्रभु प्रेमी आत्माऐं प्रथम बार निम्न सष्टि की रचना को पढ़ेंगे तो ऐसे लगेगा जैसे दन्त कथा हो, परन्तु सर्व पवित्र सद्ग्रन्थों के प्रमाणों को पढ़कर दाँतों तले ऊँगली दबाऐंगे कि यह वास्तविक अध्यात्मिक अमत ज्ञान कहाँ छुपा था? कप्या धैर्य के साथ पढ़ते रहिए तथा इस अमत ज्ञान को सुरक्षित रखिए। आप की एक सौ एक पीढ़ी तक काम आएगा। पवित्रात्माऐं कप्या सत्यनारायण (अविनाशी प्रभु अर्थात् सतपुरुष) द्वारा रची सष्टि रचना अर्थात् अपने द्वारा निर्मित सर्व लोकों की रचना का वास्तविक ज्ञान पढ़ें।

1. इस सष्टि रचना में सतपुरुष, सतलोक का स्वामी (प्रभु), अलख पुरुष, अलख लोक का स्वामी (प्रभु), अगम पुरुष अगम लोक का स्वामी (प्रभु) तथा अनामी पुरुष अनामी लोक का

परमेश्वर कबीर साहेब के असंख्य ब्रह्मण्डों का लघु चित्र

अनामी लोक : इस लोक में कबीर साहेब अनामी पुरूष रूप में रहते हैं। यहाँ अकेले हैं।

अगम लोक : इस लोक में भी कबीर साहेब अगम पुरूष रूप में रहते हैं।

अलख लोक : इस लोक में भी कबीर साहेब अलख पुरूष रूप में रहते हैं।

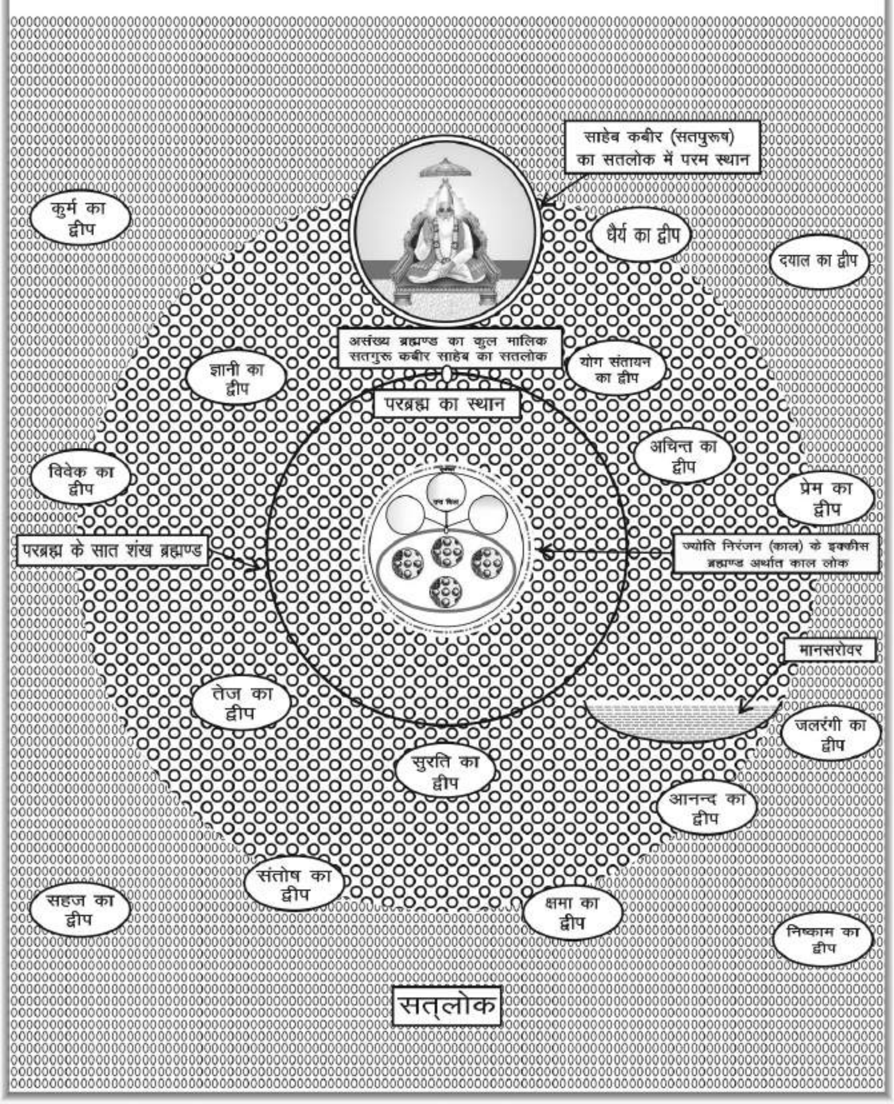

स्वामी (प्रभु) तो एक ही पूर्ण ब्रह्म है, जो वास्तव में अविनाशी प्रभु है। जो भिन्न-2 रूप धारण करके अपने चारों लोकों में रहता है। जिसके अन्तर्गत असंख्य ब्रह्मण्ड आते हैं।

2. परब्रह्म :- यह केवल सात संख ब्रह्मण्ड का स्वामी (प्रभु) है। यह अक्षर पुरुष भी कहलाता है। परंतु यह तथा इसके ब्रह्मण्ड भी वास्तव में अविनाशी नहीं है।

3. ब्रह्म :- यह केवल इक्कीस ब्रह्मण्ड का स्वामी (प्रभु) है। इसे क्षर पुरुष, ज्योति निरंजन, काल आदि उपमा से जाना जाता है। यह तथा इसके सर्व ब्रह्मण्ड नाशवान हैं।

4. ब्रह्मा :- इसी ब्रह्म का ज्येष्ठ पुत्र ब्रह्मा कहलाता है तथा विष्णु मध्य वाला पुत्र है तथा शिव अंतिम तीसरा पुत्र है। ये तीनों ब्रह्म के पुत्र केवल एक ब्रह्मण्ड में एक विभाग (गुण) के स्वामी (प्रभु) हैं तथा नाशवान हैं। विस्तृत विवरण के लिए कृप्या पढ़ें निम्न लिखित सृष्टि रचना।

{कविर्देव (कबीर परमेश्वर) ने अपने द्वारा रची सृष्टि का ज्ञान स्वयं ही बताया है। उसी ज्ञान को कृप्या पढ़िए लेखक के शब्दों में}

परमेश्वर कबीर जी द्वारा दिया ज्ञान लेखक के शब्दों में :- सर्व प्रथम केवल एक स्थान 'अनामी (अनामय) लोक' था। जिसे अकह लोक भी कहा जाता है पूर्ण परमात्मा उस अनामी अर्थात् अकह लोक में अकेला रहता था। उस परमात्मा का वास्तविक नाम कविर्देव अर्थात् कबीर परमेश्वर है। सर्व आत्माऐं उस पूर्ण धनी के शरीर में समाई हुई थी। इसी कविर्देव का उपमात्मक (पदवी का) नाम अनामी पुरुष है (पुरुष का अर्थ प्रभु होता है। प्रभु ने मनुष्य को अपने ही स्वरूप में बनाया है, इसलिए मानव का नाम भी पुरुष ही पड़ा है।) अनामी पुरूष के एक रोम कूप का प्रकाश असंख्य सूर्यों की रोशनी से भी अधिक है।

विशेष :- जैसे किसी देश के आदरणीय प्रधान मंत्री जी का शरीर का नाम तो अन्य होता है तथा पद का उपमात्मक (पदवी का) नाम प्रधानमंत्री होता है। कई बार प्रधानमंत्री जी अपने पास कई विभाग भी रख लेता है। तब जिस भी विभाग के दस्तावेजों पर हस्ताक्षर करता है तो उस समय उसी पद को लिखता है। जैसे गृहमंत्रालय के हस्ताक्षर करेगा तो अपने को गृह मंत्री लिखेगा। वहाँ उसी व्यक्ति के हस्ताक्षर की शक्ति प्रधान मंत्री रूप में किए हस्ताक्षर से कम होती है। जबकि व्यक्ति वही होता है इसी प्रकार कबीर परमेश्वर (कविर्देव) की रोशनी में अंतर होता जाता है।

ठीक इसी प्रकार पूर्ण परमात्मा कविर्देव (कबीर परमेश्वर) ने नीचे के तीन और लोकों (अगमलोक, अलख लोक, सतलोक) की रचना शब्द (वचन) से की। यही पूर्णब्रह्म परमात्मा कविर्देव (कबीर परमेश्वर) ही अगम लोक में प्रकट हुआ तथा कविर्देव (कबीर परमेश्वर) अगम लोक का भी स्वामी है तथा वहाँ इनका उपमात्मक (पदवी का) नाम अगम पुरुष अर्थात् अगम प्रभु है। इसी प्रभु का मानव सदृश शरीर बहुत तेजोमय है। जिसके एक रोम कूप की रोशनी खरब सूर्य की रोशनी से भी अधिक है।

यह पूर्ण परमात्मा कविर्देव (कबीर परमेश्वर) अलख लोक में प्रकट हुआ तथा स्वयं ही अलख लोक का भी स्वामी है तथा उपमात्मक (पदवी का) नाम अलख पुरुष भी इसी परमेश्वर का है तथा इस पूर्ण प्रभु का मानव सदृश शरीर तेजोमय (स्वर्ज्योति स्वयं प्रकाशित) है। एक रोम कूप की रोशनी अरब सूर्यों के प्रकाश से भी ज्यादा है।

यही पूर्ण प्रभु सतलोक में प्रकट हुआ तथा सतलोक का भी अधिपति यही है। इसलिए इसी का उपमात्मक (पदवी का) नाम सतपुरुष (अविनाशी प्रभु)है। इसी का नाम अकालमूर्ति - शब्द स्वरूपी राम - पूर्ण ब्रह्म - परम अक्षर ब्रह्म आदि हैं। इसी सतपुरुष कविर्देव (कबीर प्रभु) का मानव सदश शरीर तेजोमय है। जिसके एक रोमकूप का प्रकाश करोड़ सूर्यों तथा इतने ही चन्द्रमाओं के प्रकाश से भी अधिक है। इस कविर्देव (कबीर प्रभु) ने सतपुरुष रूप में प्रकट होकर सतलोक में विराजमान होकर प्रथम सतलोक में अन्य रचना की।

एक शब्द (वचन) से सोलह द्वीपों की रचना की। फिर सोलह शब्दों से सोलह पुत्रों की उत्पत्ति की, एक मानसरोवर की रचना की जिसमें अमत भरा। सोलह पुत्रों के नाम हैं :-(1) ''कूर्म'', (2)''ज्ञानी'', (3) ''विवेक'', (4) ''तेज'', (5) ''सहज'', (6) ''सन्तोष'', (7)''सुरति'', (8) ''आनन्द'', (9) ''क्षमा'', (10) ''निष्काम'', (11) 'जलरंगी' (12)''अचिन्त'', (13) ''प्रेम'', (14) ''दयाल'', (15) ''धैर्य'' (16) ''योग संतायन'' अर्थात् ''योगजीत''।

सतपुरुष कविर्देव ने अपने पुत्र अचिन्त को सत्यलोक की अन्य रचना का भार सौंपा तथा शक्ति प्रदान की। अचिन्त ने अक्षर पुरुष (परब्रह्म) की शब्द से उत्पत्ति की तथा कहा कि मेरी मदद करना। अक्षर पुरुष स्नान करने मानसरोवर पर गया, वहाँ जल में प्रवेश करके स्नान करने लगा। शीतल जल में आनन्द आया तथा जल में ही सो गया (क्योंकि सतलोक में शरीर स्वांसों पर आधारित नहीं है) *लम्बे समय तक बाहर नहीं आया। तब अचिन्त की प्रार्थना पर अक्षर पुरुष को नींद से जगाने के लिए कविर्देव (कबीर परमेश्वर) ने उसी मानसरोवर से कुछ अमत जल लेकर एक अण्डा बनाया तथा उस अण्डे में एक आत्मा प्रवेश की तथा अण्डे को मानसरोवर के अमत जल में छोड़ा। अण्डे की गड़गड़ाहट से अक्षर पुरुष की निंद्रा भंग हुई। अण्डे को क्रोध से देखा जिस कारण से अण्डे के दो भाग हो गए। उसमें से ज्योति निरंजन (क्षर पुरुष) निकला जो आगे चलकर 'काल' कहलाया। इसका वास्तविक नाम ''कैल'' है। तब सतपुरुष (कविर्देव) ने आकाशवाणी की कि आप दोनों अचिंत के द्वीप में रहो। आज्ञा पाकर अक्षर पुरुष तथा क्षर पुरुष(कैल) दोनों अचिंत के द्वीप में रहने लगे। (बच्चों की नालायकी उन्हीं को दिखाई कि कहीं फिर प्रभुता की तड़फ न बन जाए, क्योंकि समर्थ बिन कार्य सफल नहीं होता) फिर पूर्ण धनी कविर्देव ने सर्व रचना स्वयं की। अपनी शब्द शक्ति से एक राजेश्वरी (राष्ट्री) शक्ति उत्पन्न की, जिससे सर्व ब्रह्मण्डों को स्थापित किया। इसी को पराशक्ति/परानन्दनी भी कहते हैं। सर्व आत्माओं को अपने ही अन्दर से अपनी वचन शक्ति से अपने मानव शरीर सदश उत्पन्न किया। प्रत्येक हंस आत्मा का परमात्मा जैसा ही शरीर रचा जिसका तेज 16(सोलह) सूर्यों जैसा मानव सदश ही है। परन्तु परमेश्वर के शरीर का करोड़ सूर्यों से भी अधिक एक रोम कूप का प्रकाश है। बहुत समय उपरान्त क्षर पुरुष (ज्योति निरंजन) ने सोचा कि हम तीनों (अचिन्त - अक्षर पुरुष - क्षर पुरुष) एक द्वीप में रह रहे हैं तथा अन्य एक-एक द्वीप में रह रहे हैं। मैं भी साधना करके अलग द्वीप प्राप्त करूँगा। ऐसा विचार करके एक पैर पर खड़ा होकर सत्तर (70) युग तक तप किया।*

"आत्माऐं काल के जाल में कैसे फंसी ?"

विशेष :- जब ब्रह्म (ज्योति निरंजन) तप कर रहा था हम सर्व आत्माऐं जो आज ज्योति निरंजन के इक्कीस ब्रह्मण्डों में रहते हैं इसकी साधना पर आसक्त हो गए तथा हृदय से इसे

चाहने लगे। अपने सुखदाई प्रभु से विमुख हो गए। जिस कारण से पतिव्रता पद से गिर गए। पूर्ण प्रभु के बार-बार सावधान करने पर भी हमारी आसक्तता क्षर पुरुष से नहीं हटी। {यही प्रभाव आज भी काल संष्टि में सर्व प्राणियों में विद्यमान है। जैसे नौजवान बच्चे फिल्मी स्टारों (अभिनेताओं तथा अभिनेत्रियों) की बनावटी अदाओं तथा अपने रोजगार उद्देश्य से कर रहे अभिनय पर अति आसक्त हो जाते हैं, रोकने से नहीं रूकते। यदि कोई अभिनेता या अभिनेत्री निकटवर्ती शहर में आ जाए तो देखें उन नादान बच्चों की भीड़ केवल दर्शन करने के लिए बहु संख्या में एकत्रित हो जाते हैं। 'लेना एक न देने दो' रोजी रोटी अभिनेता कमा रहे हैं, नौजवान बच्चे लुट रहे हैं। माता–पिता कितना ही समझाऐं किन्तु बच्चे नहीं मानते। कहीं न कहीं – कभी न कभी लुक–छिप कर जाते ही रहते हैं।}

पूर्ण ब्रह्म कविर्देव (कबीर प्रभु) ने क्षर पुरुष से पूछा कि बोलो क्या चाहते हो? उसने कहा कि पिता जी यह स्थान मेरे लिए कम है, मुझे अलग से द्वीप प्रदान करने की कंपा करें। हक्का कबीर (सत् कबीर) ने उसे 21 (इक्कीस) ब्रह्मण्ड प्रदान कर दिए। कुछ समय उपरान्त ज्योति निरंजन ने सोचा इस में कुछ रचना करनी चाहिए। खाली ब्रह्मण्ड (प्लाट) किस काम के। यह विचार कर 70 युग तप करके पूर्ण परमात्मा कविर्देव (कबीर प्रभु) से रचना सामग्री की याचना की। सतपुरुष ने उसे तीन गुण तथा पाँच तत्व प्रदान कर दिए, जिससे ब्रह्म (ज्योति निरंजन) ने अपने ब्रह्मण्डों में कुछ रचना की। फिर सोचा कि इसमें जीव भी होने चाहिए, अकेले का दिल नहीं लगता। यह विचार करके 64 (चौसठ) युग तक फिर तप किया। पूर्ण परमात्मा कविर् देव के पूछने पर बताया कि मुझे कुछ आत्मा दे दो, मेरा अकेले का दिल नहीं लग रहा। तब सतपुरुष कविरग्नि (कबीर परमेश्वर) ने कहा कि हे ब्रह्म ! तेरे तप के प्रतिफल में मैं तुझे और ब्रह्मण्ड दे सकता हूँ, परन्तु अपनी प्रिय आत्माओं को किसी भी जप-तप साधना के फल रूप में नहीं दे सकता। हाँ, यदि कोई स्वइच्छा से तेरे साथ जाना चाहे तो वह जा सकता है। युवा कविर् (समर्थ कबीर) के वचन सुन कर ज्योति निरंजन उन आत्माओं के पास आया। जो पहले से ही उस पर आसक्त थे। वे आत्माऐं उसे चारों तरफ से घेर कर खड़े हो गए। ज्योति निंरजन ने कहा कि मैंने पिता जी से अलग 21 ब्रह्मण्ड प्राप्त किए हैं। वहाँ नाना प्रकार से रमणिक स्थल बनाए हैं। क्या आप मेरे साथ चलोगे? हम सर्व हंसों ने जो आज 21 ब्रह्मण्डों में परेशान हैं, कहा कि हम तैयार हैं यदि पिता जी आज्ञा दें तो। तब क्षर पुरुष पूर्ण ब्रह्म महान् कविर् (समर्थ कबीर प्रभु) के पास गया तथा सर्व वार्ता कही। तब कविरग्नि (कबीर परमेश्वर) ने कहा कि मेरे सामने स्वीकंति देने वाले को आज्ञा दूंगा। क्षर पुरुष (कैल) तथा परम अक्षर पुरुष (कविरमितौजा) दोनों उन हंसात्माओं के पास आए। सत् कविर्देव ने कहा कि जो हंस ब्रह्म के साथ जाना चाहता है हाथ ऊपर करके स्वीकंति दे। अपने पिता के सामने किसी की हिम्मत नहीं हुई। किसी ने स्वीकंति नहीं दी। बहुत समय तक सन्नाटा छाया रहा। तत्पश्चात एक हंस आत्मा ने साहस किया तथा कहा कि पिता जी मैं जाना चाहता हूँ। फिर तो उसकी देखा-देखी (जो आज काल (ब्रह्म) के इक्कीस ब्रह्मण्डों में फंसी हैं उन) सर्व आत्माओं ने हाँ कर दी। परमेश्वर कबीर जी ने ज्योति निरंजन से कहा कि आप अपने स्थान पर जाओ। जिन्होंने तेरे साथ जाने की स्वीकंति दी है मैं उन सर्व हंस आत्माओं को आपके पास भेज दूंगा। ज्योति निरंजन अपने 21 ब्रह्मण्डों में चला गया। उस समय तक यह इक्कीस ब्रह्मण्ड सतलोक में ही थे।

तत् पश्चात पूर्ण ब्रह्म ने सर्व प्रथम स्वीकंति देने वाले हंस को लड़की का रूप दिया परन्तु स्त्री इन्द्री नहीं रची तथा उन सर्व आत्माओं को जिन्होंने ज्योति निरंजन (ब्रह्म) के साथ जाने

एक ब्रह्मण्ड का लघु चित्र

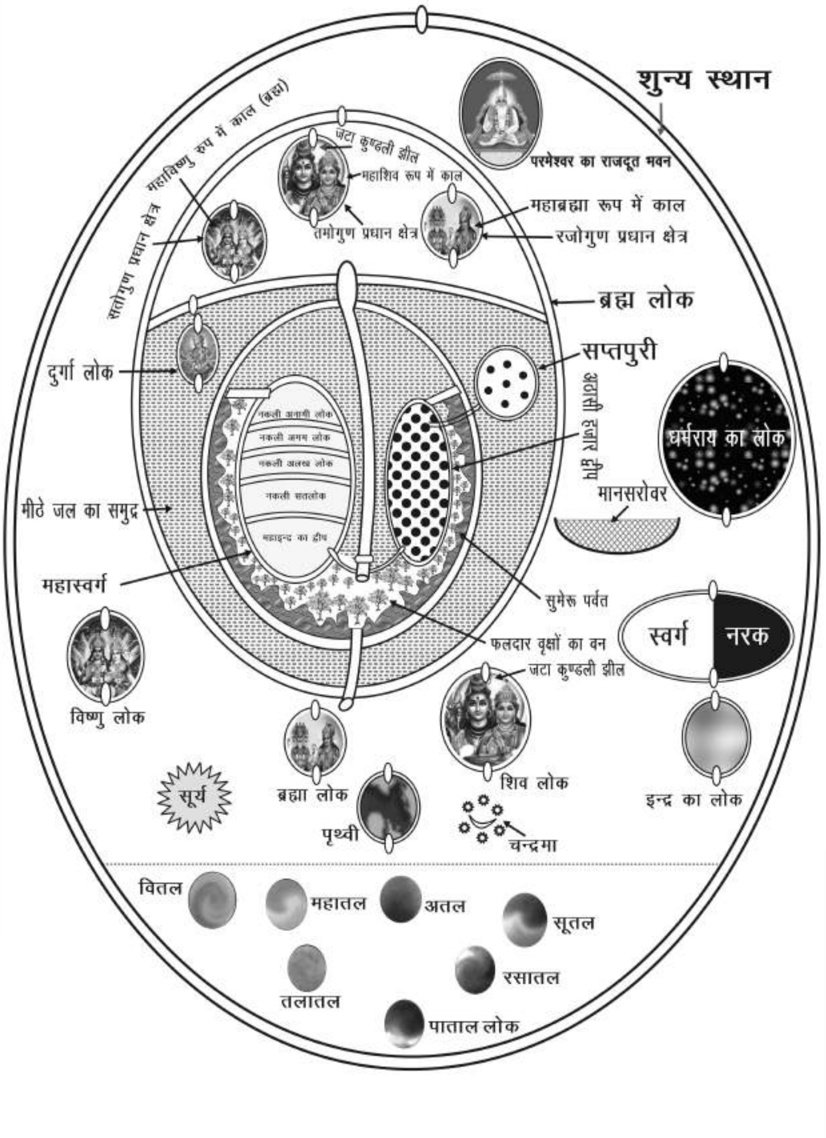

ब्रह्म लोक का लघु चित्र

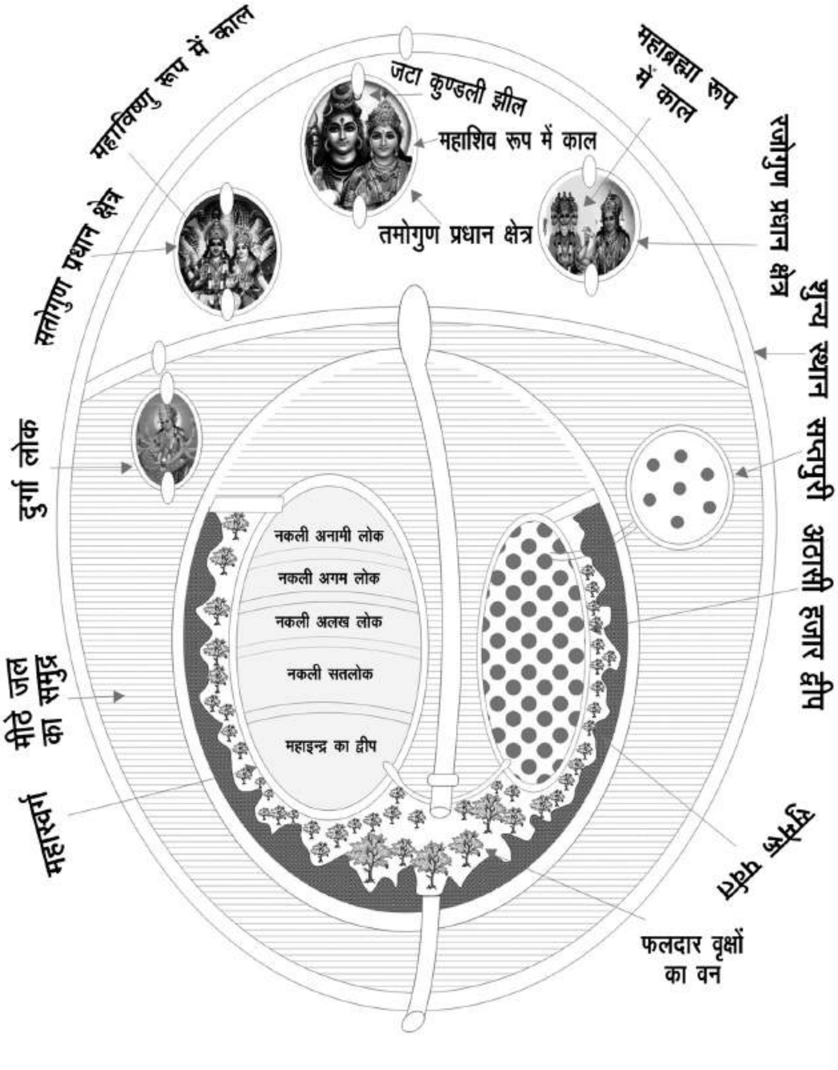

की सहमति दी थी उस लड़की के शरीर में प्रवेश कर दिया तथा उसका नाम आष्ट्रा (आदि माया/ प्रकति देवी/ दुर्गा) पड़ा तथा कहा कि पुत्री मैंने तेरे को शब्द शक्ति प्रदान कर दी है जितने जीव ब्रह्म कहे आप उत्पन्न कर देना। पूर्ण ब्रह्म कविर्देव (कबीर साहेब) अपने पुत्र सहज दास के द्वारा प्रकति को क्षर पुरुष के पास भिजवा दिया। सहज दास जी ने ज्योति निरंजन को बताया कि पिता जी ने इस बहन के शरीर में उन सर्व आत्माओं को प्रवेश कर दिया है जिन्होंने आपके साथ जाने की सहमति व्यक्त की थी तथा इस बहन को वचन शक्ति प्रदान की है। आप जितने जीव चाहोगे प्रकति अपने शब्द से उत्पन्न कर देगी। यह कह कर सहजदास वापिस अपने द्वीप में आ गया।

युवती होने के कारण लड़की का रंग-रूप निखरा हुआ था। ब्रह्म के अन्दर विषय-वासना उत्पन्न हो गई तथा प्रकति देवी के साथ अभद्र गति विधि प्रारम्भ की। तब दुर्गा ने कहा कि ज्योति निरंजन मेरे पास पिता जी की प्रदान की हुई शब्द शक्ति है। आप जितने प्राणी कहोगे मैं वचन से उत्पन्न कर दूँगी। आप मैथुन परम्परा प्रारम्भ मत करो। आप भी उसी पिता के शब्द से अण्डे से उत्पन्न हुए हो तथा मैं भी उसी परमपिता के वचन से ही बाद में उत्पन्न हुई हूँ। आप मेरे बड़े भाई हो, बहन-भाई का यह विवाहकर्म महापाप का कारण है। परन्तु ज्योति निरंजन ने प्रकति देवी की एक भी प्रार्थना नहीं सुनी तथा अपनी शब्द शक्ति द्वारा नाखूनों से स्त्री इन्द्री (भग) प्रकति को लगा दी तथा बलात्कार करने की ठानी। उसी समय दुर्गा ने अपनी इज्जत रक्षा के लिए कोई और चारा न देख सूक्ष्म रूप बनाया तथा ज्योति निरंजन के खुले मुख के द्वारा पेट में प्रवेश करके पूर्णब्रह्म कविर् देव (कबीर प्रभु)से अपनी रक्षा के लिए याचना की। उसी समय कविर्देव (कविर् देव) अपने पुत्र योग संतायन अर्थात् जोगजीत का रूप बनाकर वहाँ प्रकट हुए तथा कन्या को ब्रह्म के उदर से बाहर निकाला तथा कहा कि ज्योति निरंजन आज से तेरा नाम 'काल' होगा। तेरे जन्म-मत्यु होते रहेंगे। इसीलिए तेरा नाम क्षर पुरुष होगा तथा एक लाख मानव शरीर धारी प्राणियों को प्रतिदिन खाया करेगा व सवा लाख उत्पन्न किया करेगा। आप दोनों को इक्कीस ब्रह्मण्ड सहित निष्कासित किया जाता है। इतना कहते ही इक्कीस ब्रह्मण्ड विमान की तरह चल पड़े। सहज दास के द्वीप के पास से होते हुए सतलोक से सोलह संख कोस (एक कोस लगभग 3 कि. मी. का होता है) की दूरी पर आकर रूक गए।

{विशेष विवरण – अब तक तीन शक्तियों का विवरण आया है।

1. पूर्णब्रह्म जिसे अन्य उपमात्मक नामों से भी जाना जाता है, जैसे सतपुरुष, अकालपुरुष, शब्द स्वरूपी राम, परम अक्षर ब्रह्म/परम अक्षर पुरुष आदि। यह पूर्णब्रह्म सर्व ब्रह्मण्डों का स्वामी है अर्थात् वासुदेव है तथा वास्तव में अविनाशी है।

2. परब्रह्म जिसे अक्षर पुरुष भी कहा जाता है। यह वास्तव में अविनाशी नहीं है। यह सात शंख ब्रह्मण्डों का स्वामी है।

3. ब्रह्म जिसे ज्योति निरंजन, काल, कैल, क्षर पुरुष तथा धर्मराय आदि नामों से जाना जाता है। जो केवल इक्कीस ब्रह्मण्ड का स्वामी है। अब आगे इसी ब्रह्म (काल) की सष्टि के एक ब्रह्मण्ड का परिचय दिया जाएगा, जिसमें आपको तीन अन्य नाम पढ़ने को मिलेंगे – ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव।

ब्रह्म तथा ब्रह्मा में भेद – एक ब्रह्मण्ड में बने सर्वोपरि स्थान पर ब्रह्म (क्षर पुरुष) स्वयं तीन गुप्त स्थानों की रचना करके ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव रूप में रहता है तथा अपनी पत्नी प्रकति (दुर्गा) के सहयोग से तीन पुत्रों की उत्पत्ति करता है। उनके नाम भी ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव ही रखता है। जो ब्रह्म का पुत्र ब्रह्मा है वह

एक ब्रह्मण्ड में बने चौदह लोकों में से केवल तीन लोकों (पथ्वी लोक, स्वर्ग लोक तथा पाताल लोक) में एक रजोगुण विभाग का मंत्री (स्वामी) है। इसे त्रिलोकीय ब्रह्मा कहा जाता है तथा ब्रह्म जो ब्रह्मलोक में ब्रह्मा रूप में रहता है उसे महाब्रह्मा व ब्रह्मलोकीय ब्रह्मा कहा जाता है। इसी ब्रह्म (काल) को सदाशिव, महाशिव, महाविष्णु भी कहा जाता है।}

"श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी व श्री शिव जी की उत्पत्ति"

काल ब्रह्म (क्षर पुरूष) ने प्रकति (दुर्गा) से कहा कि अब मेरा कौन क्या बिगाड़ेगा? मन मानी करूंगा। प्रकति ने फिर प्रार्थना की कि आप कुछ शर्म करो। प्रथम तो आप मेरे बड़े भाई हो, क्योंकि उसी कबीर पूर्ण परमात्मा (कविर्देव) की वचन शक्ति से आप ब्रह्म की अण्डे से उत्पत्ति हुई है तथा बाद में मेरी उत्पत्ति उसी परमेश्वर के वचन से हुई है। दूसरे मैं आपके पेट से बाहर निकली हूँ, मैं आपकी बेटी हुई तथा आप मेरे पिता हुए। इन पवित्र नातों में बिगाड़ करना महापाप होगा। मेरे पास पिता की प्रदान की हुई शब्द शक्ति है, जितने प्राणी तू कहेगा मैं वचन से उत्पन्न कर दूंगी। ज्योति निरंजन ने दुर्गा की एक भी विनय नहीं सुनी तथा कहा कि मुझे जो सजा मिलनी थी मिल गई, मुझे सतलोक से निष्कासित कर दिया। अब मनमानी करूंगा। यह कह कर प्रकति के साथ बलपूर्वक विवाह किया तथा तीन पुत्रों (रजगुणयुक्त-ब्रह्मा जी, सतगुणयुक्त-विष्णु जी तथा तमगुणयुक्त-शिव शंकर जी) की उत्पत्ति की।

युवा होने तक तीनों पुत्रों को दुर्गा के द्वारा अचेत करा दिया, युवा होने पर श्री ब्रह्मा जी को कमल के फूल पर, श्री विष्णु जी को शेष नाग की शैय्या पर तथा श्री शिव जी को कैलाश पर्वत पर सचेत करके इक्त्रित किया तथा प्रकति (दुर्गा) के द्वारा इन तीनों का विवाह किया। एक ब्रह्मण्ड में तीन लोकों (स्वर्ग लोक, पथ्वी लोक तथा पाताल लोक) पर एक-एक विभाग के मंत्री (प्रभु) नियुक्त किए। जैसे श्री ब्रह्मा जी को रजोगुण विभाग का तथा विष्णु जी को सत्तोगुण विभाग का तथा श्री शिव शंकर जी को तमोगुण विभाग का प्रभु बनाया तथा स्वयं गुप्त (महाब्रह्मा-महाविष्णु-महाशिव) रूप से मुख्य मंत्री पद को संभालता है। एक ब्रह्मण्ड में एक ब्रह्मलोक की रचना की है। उसी में तीन गुप्त स्थान बनाए हैं। एक रजोगुण प्रधान स्थान है जहाँ पर यह ब्रह्म (काल) स्वयं महाब्रह्मा (मुख्यमंत्री) रूप में रहता है तथा अपनी पत्नी दुर्गा को महासावित्री रूप में रखता है। इन दोनों के संयोग से जो पुत्र इस स्थान पर उत्पन्न होता है वह स्वतः ही रजोगुणी बन जाता है। उसका नाम ब्रह्मा रखता है दूसरा सत्तोगुण प्रधान स्थान बनाया है। वहाँ पर यह क्षर पुरुष स्वयं महाविष्णु रूप बना कर रहता है तथा अपनी पत्नी दुर्गा को महालक्ष्मी रूप में रखता है दोनों के संयोग से जो पुत्र उत्पन्न होता है उसका नाम विष्णु रखता है, वह बालक सत्तोगुण युक्त होता है तथा तीसरा इसी काल ने वहीं पर एक तमोगुण प्रधान क्षेत्र बनाया है। उसमें यह स्वयं सदाशिव रूप बनाकर रहता है तथा अपनी पत्नी दुर्गा को महापार्वती रूप में रखता है। इन दोनों के पति-पत्नी व्यवहार से तमोगुण युक्त पुत्र उत्पन्न होता है उसका नाम शिव रख देते हैं। (प्रमाण के लिए देखें पवित्र श्री शिव महापुराण, रूद्र संहिता अध्याय 6 तथा 7, 8, 9 पष्ठ नं. 99 से 110 तक, अनुवाद कर्त्ता श्री हनुमान प्रसाद पोद्दार, गीता प्रैस गोरखपुर से प्रकाशित तथा पवित्र श्रीमद् देवी महापुराण तीसरा स्कंद पष्ठ नं. 114 से 123 तक, गीता प्रैस गोरखपुर से प्रकाशित, जिसके अनुवाद कर्त्ता हैं श्री हनुमान प्रसाद पोद्दार चिमन लाल गोस्वामी।) ***इन्हीं को धोखे में रख कर अपने खाने के लिए जीवों की उत्पत्ति श्री ब्रह्मा जी द्वारा तथा स्थिति (एक-दूसरे को***

मोह-ममता में रख कर काल जाल में रखना) श्री विष्णु जी से तथा संहार श्री शिव जी द्वारा करवाता है। (क्योंकि काल पुरुष को शापवश एक लाख मानव शरीर धारी प्राणियों के सूक्ष्म शरीर से मैल निकाल कर खाना होता है उसके लिए इक्कीसवें ब्रह्मण्ड में एक तप्तशिला है जो स्वयं गर्म रहती है, उस पर गर्म करके मैल पिघलाकर खाता है, जीव मरते नहीं परन्तु कष्ट असहनीय होता है, फिर प्राणियों को कर्म आधार पर अन्य शरीर प्रदान करता है।) ***गुण प्रधान क्षेत्र को समझने के लिए :- जैसे किसी घर में तीन कक्ष बने हों। एक कक्ष में अश्लील चित्र लगे हों। उस कक्ष में जाते ही मन में वैसे ही मलीन विचार उत्पन्न हो जाते हैं। दूसरे कक्ष में साधु-सन्तों, भक्तों के चित्र लगे हों तो मन में अच्छे विचार उत्पन्न होते हैं तथा प्रभु का चिंतन ही बना रहता है। तीसरे कक्ष में देशभक्तों व शहीदों के चित्र लगे हों तो मन में वैसे ही जोशीले विचार उत्पन्न हो जाते हैं। ठीक ऐसे ही ब्रह्म (काल) ने अपनी सूझ-बूझ से उपरोक्त तीनों गुण प्रधान स्थानों की रचना ब्रह्मलोक में की है।***

''तीनों गुण क्या हैं ? प्रमाण सहित''

''तीनों गुण रजगुण ब्रह्मा जी, सतगुण विष्णु जी, तमगुण शिव जी हैं। ब्रह्म (काल) तथा प्रकृति (दुर्गा) से उत्पन्न हुए हैं तथा तीनों नाशवान हैं''

प्रमाण :- गीताप्रेस गोरखपुर से प्रकाशित श्री शिव महापुराण जिसके सम्पादक हैं श्री हनुमान प्रसाद पोद्दार पष्ठ सं. 110 अध्याय 9 रूद्र संहिता ''इस प्रकार ब्रह्मा-विष्णु तथा शिव तीनों देवताओं में गुण हैं, परन्तु शिव (ब्रह्म-काल) गुणातीत कहा गया है।

दूसरा प्रमाण :- गीताप्रेस गोरखपुर से प्रकाशित श्रीमद् देवीभागवत पुराण जिसके सम्पादक हैं श्री हनुमान प्रसाद पौद्दार चिमन लाल गोस्वामी, तीसरा स्कंद, अध्याय 5 पष्ठ 123 :- भगवान विष्णु ने दुर्गा की स्तुति की : कहा कि मैं (विष्णु), ब्रह्मा तथा शंकर तुम्हारी कपा से विद्यमान हैं। हमारा तो आविर्भाव (जन्म) तथा तिरोभाव (मत्यु) होती है। हम नित्य (अविनाशी) नहीं हैं। तुम ही नित्य हो, जगत् जननी हो, प्रकति और सनातनी देवी हो। भगवान शंकर ने कहा : यदि भगवान ब्रह्मा तथा भगवान विष्णु तुम्हीं से उत्पन्न हुए हैं तो उनके बाद उत्पन्न होने वाला मैं तमोगुणी लीला करने वाला शंकर क्या तुम्हारी संतान नहीं हुआ ? अर्थात् मुझे भी उत्पन्न करने वाली तुम ही हों। इस संसार की सष्टि-स्थिति-संहार में तुम्हारे गुण सदा सर्वदा हैं। इन्हीं तीनों गुणों से उत्पन्न हम, ब्रह्मा-विष्णु तथा शंकर नियमानुसार कार्य में तत्पर रहते हैं।

उपरोक्त यह विवरण केवल हिन्दी में अनुवादित श्री देवीमहापुराण से है, जिसमें कुछ तथ्यों को छुपाया गया है। इसलिए यही प्रमाण देखें श्री मद्देवीभागवत महापुराण सभाषटिकम् समहात्यम्, खेमराज श्री कष्ण दास प्रकाशन मुम्बई, इसमें संस्कत सहित हिन्दी अनुवाद किया है।

तीसरा स्कंद अध्याय 4 पष्ठ 10, श्लोक 42 :-

ब्रह्मा - *अहम् ईश्वरः फिल ते प्रभावात्सर्वे वयं जनि युता न यदा तू नित्याः, के अन्ये सुराः शतमख प्रमुखाः च नित्या नित्या त्वमेव जननी प्रकतिः पुराणा (42)।*

हिन्दी अनुवाद :- हे मात! ब्रह्मा, मैं तथा शिव तुम्हारे ही प्रभाव से जन्मवान हैं, नित्य नही हैं अर्थात् हम अविनाशी नहीं हैं, फिर अन्य इन्द्रादि दूसरे देवता किस प्रकार नित्य हो सकते हैं। तुम ही अविनाशी हो, प्रकति तथा सनातनी देवी हो। (42)

पष्ठ 11-12, अध्याय 5, श्लोक 8 :- *यदि दयार्द्रमना न सदां बिके कथमहं विहितः च तमोगुणः कमलजश्च रजोगुणसंभवः सुविहितः किमु सत्वगुणों हरिः। (8)*

अनुवाद :- भगवान शंकर बोले :-हे मात! यदि हमारे ऊपर आप दयायुक्त हो तो मुझे तमोगुण क्यों बनाया, कमल से उत्पन्न ब्रह्मा को रजोगुण किस लिए बनाया तथा विष्णु को सतगुण क्यों बनाया? अर्थात् हम तीनों को जीवों के जन्म-मृत्यु रूपी दुष्कर्म में क्यों लगाया?

श्लोक 12 :- रमयसे स्वपतिं पुरुषं सदा तव गतिं न हि विह विद्म शिवे (12)

हिन्दी - अपने पति पुरुष अर्थात् काल भगवान के साथ सदा भोग-विलास करती रहती हो। आपकी गति कोई नहीं जानता।

निष्कर्ष :- उपरोक्त प्रमाणों से प्रमाणित हुआ की रजगुण - ब्रह्मा, सतगुण विष्णु तथा तमगुण शिव हैं ये तीनों नाशवान है। दुर्गा का पति ब्रह्म (काल) है यह उसके साथ भोग विलास करता है।

"ब्रह्म काल की अव्यक्त रहने की प्रतिज्ञा"

तीनों पुत्रों की उत्पत्ति के पश्चात् ब्रह्म ने अपनी पत्नी दुर्गा (प्रकृति) से कहा कि भविष्य में मैं किसी को अपने वास्तविक रूप में दर्शन नहीं दूंगा। जिस कारण से मैं अव्यक्त माना जाऊँगा। दुर्गा से कहा कि आप मेरा भेद किसी को मत देना। मैं गुप्त रहूँगा। दुर्गा ने पूछा कि क्या आप अपने पुत्रों को भी दर्शन नहीं दोगे ? ब्रह्म ने कहा मैं अपने पुत्रों को तथा अन्य को किसी भी साधना से दर्शन नहीं दूंगा, यह मेरा अटल नियम रहेगा। दुर्गा ने कहा यह तो आपका उत्तम नियम नहीं है जो आप अपनी संतान से भी छुपे रहोगे। तब काल ने कहा दुर्गा मेरी विवशता है। मुझे एक लाख मानव शरीर धारी प्राणियों का आहार करने का शाप लगा है। यदि मेरे पुत्रों (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) को पता लग गया तो ये उत्पत्ति, स्थिति तथा संहार का कार्य नहीं करेंगे। इसलिए यह मेरा अनुत्तम नियम सदा रहेगा। आप मेरी आज्ञा का पालन करो जब ये तीनों कुछ बड़े हो जाऐं तो इन्हें अचेत कर देना। मेरे विषय में नहीं बताना, नहीं तो मैं तुझे भी दण्ड दूंगा। दुर्गा इस डर के मारे वास्तविकता नहीं बताती। इसीलिए गीता अध्याय 7 श्लोक 24 में कहा है कि यह बुद्धिहीन जन समुदाय मुझ अव्यक्त को मनुष्य रूप में आया हुआ अर्थात् कृष्ण मानते हैं।

अध्याय 7 का श्लोक 24

अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यन्ते मामबुद्धयः।
परं भावमजानन्तो ममाव्ययमनुत्तमम्।२४।

अव्यक्तम्, व्यक्तिम्, आपन्नम्, मन्यन्ते, माम्, अबुद्धयः।
परम्, भावम्, अजानन्तः, मम, अव्ययम्, अनुत्तमम्।।24।।

अनुवाद : (अबुद्धयः) बुद्धि हीन (मम) मेरे अनुत्तम अर्थात् घटिया (अव्ययम्) अविनाशी (परम् भावम्) विशेष भाव को (अजानन्तः) न जानते हुए (माम् अव्यक्तम्) मुझ अव्यक्त को (व्यक्तिम्) मनुष्य रूप में (आपन्नम) आया (मन्यन्ते) मानते हैं अर्थात् मैं कृष्ण नहीं हूँ। (गीता अध्याय 7 श्लोक 24)

केवल हिन्दी अनुवाद : बुद्धि हीन मेरे अनुत्तम अर्थात् घटिया अविनाशी विशेष भाव को न जानते हुए मुझ अव्यक्त को मनुष्य रूप में आया मानते हैं अर्थात् मैं कृष्ण नहीं हूँ। (24)

गीता अध्याय 11 श्लोक 47 तथा 48 में कहा है कि यह मेरा वास्तविक काल रूप है। इसके दर्शन अर्थात् ब्रह्म प्राप्ति न वेदों में वर्णित विधि से, न जप से, न तप से तथा न किसी क्रिया से हो सकती है।

जब तीनों बच्चे युवा हो गए तब माता दुर्गा (प्रकृति/अष्टंगी) ने कहा कि तुम सागर मन्थन करो। (ज्योति निरंजन ने अपने श्वांसों द्वारा चार वेद उत्पन्न किए। उनको गुप्त वाणी द्वारा आज्ञा

दी कि सागर में निवास करो) प्रथम बार सागर मन्थन किया तो चारों वेद निकले वह ब्रह्मा ने लिए। वस्तु लेकर तीनों बच्चें माता के पास आए तब माता ने कहा कि चारों वेदों को ब्रह्मा रखे व पढ़े।

नोट :- वास्तव में पूर्णब्रह्म ने, ब्रह्म काल को पाँच वेद प्रदान किए थे। लेकिन ब्रह्म ने केवल चार वेदों को प्रकट किया। पाँचवां वेद छुपा दिया। जो पूर्ण परमात्मा ने स्वयं प्रकट होकर कविर्गिर्भिः अर्थात् कविर्वाणी(कबीर वाणी) द्वारा लोकोक्तियों व दोहों के माध्यम से प्रकट किया है।

दूसरी बार सागर मन्थन किया तो तीन कन्याऐं मिली। माता ने तीनों को बांट दिया। प्रकति (दुर्गा) ने अपने ही अन्य तीन रूप (सावित्री,लक्ष्मी तथा पार्वती) धारण किए तथा समुन्द्र में छुप गई। सागर मन्थन के समय तीन भिन्न-2 रूपों में बाहर आई। गीता अध्याय 7 श्लोक 4 से 6 में स्पष्ट है कि जो जड़ प्रकति है उससे भिन्न जो चेतन प्रकति है। वह दुर्गा है। गीता अध्याय 14 श्लोक 3 से 5 में स्पष्ट किया है कि सर्व प्राणी प्रकति से उत्पन्न किए हैं मैं उसकी योनि में बीज स्थापित करता हूँ मैं सर्व प्राणियों का पिता हूँ तथा दुर्गा (प्रकति) सब की माता है फिर श्लोक 5 में कहा है कि तीनों गुण (रजगुण, सतगुण, तमगुण) प्रकति से उत्पन्न हुए हैं।

सिद्ध हुआ कि प्रकति अर्थात् दुर्गा ही तीन रूप हुई। उन्हीं में से वही प्रकति तीन रूप हुई तथा भगवान ब्रह्मा को सावित्री, भगवान विष्णु को लक्ष्मी, भगवान शंकर को पार्वती पत्नी रूप में दी। तीनों ने भोग विलास किया, सुर तथा असुर दोनों पैदा हुए।

{जब तीसरी बार सागर मन्थन किया तो चौदह रत्न ब्रह्मा को तथा अमत विष्णु को व देवताओं को, मद्य(शराब) असुरों को तथा विष परमार्थ शिव ने अपने कंठ में ठहराया। यह तो बहुत बाद की बात है।} ***जब ब्रह्मा वेद पढ़ने लगा तो पता चला कि कोई सर्व ब्रह्मण्डों की रचना करने वाला कुल का मालिक पुरूष (प्रभु) और है। तब ब्रह्मा जी ने विष्णु जी व शंकर जी से बताया कि वेदों में वर्णन है कि सजनहार कोई और प्रभु है परन्तु वेद कहते हैं कि भेद हम भी नहीं जानते, उसके लिए संकेत है कि किसी तत्वदर्शी संत से पूछो। तब ब्रह्मा माता के पास आया और सब वतांत कह सुनाया। माता कहा करती थी कि मेरे अतिरिक्त अन्य कोई प्रभु नहीं है। मैं ही कर्त्ता हूँ। मैं ही सर्वशक्तिमान हूँ परन्तु ब्रह्मा ने कहा कि वेद ईश्वर कत हैं यह झूठ नहीं हो सकते। दुर्गा ने कहा कि तेरा पिता तुझे दर्शन नहीं देगा, उसने कसम खाई है। तब ब्रह्मा ने कहा माता जी अब आप की बात पर अविश्वास हो गया है। मैं उस पुरूष (प्रभु) का पता लगाकर ही रहूँगा। दुर्गा ने कहा कि यदि वह तुझे दर्शन नहीं देगा तो तू क्या करेगा? ब्रह्मा ने कहा कि मैं आपको मुख नहीं दिखाऊँगा। दूसरी तरफ ज्योति निरंजन ने कसम खाई है कि मैं किसी को दर्शन नहीं दूंगा अर्थात् 21 ब्रह्मण्ड में कभी भी अपने वास्तविक काल रूप में आकार में नहीं आऊँगा।***

गीता अध्याय नं. 7 का श्लोक नं. 24

अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यन्ते मामबुद्धयः।
परं भावमजानन्तो ममाव्ययमनुत्तमम्।२४।

अव्यक्तम्, व्यक्तिम्, आपन्नम्, मन्यन्ते, माम्, अबुद्धयः।
परम्, भावम्, अजानन्तः, मम, अव्ययम्, अनुत्तमम्।।24।।

अनुवाद : (अबुद्धयः) बुद्धिहीन लोग (मम) मेरे (अनुतमम्) अश्रेष्ठ (अव्ययम्) अटल (परम्) परम (भावम्) भावको (अजानन्तः) न जानते हुए (अव्यक्तम्) अदश्यमान छुपे हुए अर्थात् परोक्ष (माम्) मुझ (व्यक्तिम्) मानव आकार में अर्थात् कष्ण अवतार (आपन्नम्) प्राप्त हुआ (मन्यन्ते) मानते हैं।(24)

केवल हिन्दी अनुवाद : बुद्धिहीन लोग मेरे अश्रेष्ठ अटल परम भावको न जानते हुए अदश्यमान छुपे हुए अर्थात् परोक्ष मुझ मानव आकार में अर्थात् कष्ण अवतार प्राप्त हुआ मानते हैं।(24)

गीता अध्याय नं. 7 का श्लोक नं. 25

नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः।
मूढोऽयं नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम्।२५।

न, अहम्, प्रकाशः, सर्वस्य, योगमायासमावतः।
मूढः, अयम्, न, अभिजानाति, लोकः, माम्, अजम्, अव्ययम्।

अनुवाद : (अहम्) मैं (योगमाया समावतः) योगमायासे छिपा हुआ अर्थात् अव्यक्त रूप में रहता हुआ (सर्वस्य) सबके (प्रकाशः) प्रत्यक्ष (न) नहीं होता अर्थात् अदश्य रहता हूँ इसलिये (अजम्) जन्म न लेने वाले (अव्ययम्) अविनाशी अटल भावको (अयम्) यह (मूढः) अज्ञानी (लोकः) जनसमुदाय संसार (माम्) मुझे (न) नहीं (अभिजानाति) जानता अर्थात् मुझको अवतार रूप में आया कष्ण समझता है। क्योंकि ब्रह्म अपनी शब्द शक्ति से अपने भिन्न–भिन्न रूप बना लेता है, यह दुर्गा का पति है इसलिए इस मंत्र में कह रहा है कि मैं श्री कष्ण आदि की तरह दुर्गा से जन्म नहीं लेता।(25)

केवल हिन्द अनुवाद : मैं योगमायासे छिपा हुआ अर्थात् अव्यक्त रूप में रहता हुआ सबके प्रत्यक्ष नहीं होता अर्थात् अदश्य रहता हूँ इसलिये जन्म न लेने वाले अविनाशी अटल भावको यह अज्ञानी जनसमुदाय संसार मुझे नहीं जानता अर्थात् मुझको अवतार रूप में आया कष्ण समझता है। क्योंकि ब्रह्म अपनी शब्द शक्ति से अपने भिन्न-भिन्न रूप बना लेता है, यह दुर्गा का पति है इसलिए इस मंत्र में कह रहा है कि मैं श्री कष्ण आदि की तरह दुर्गा से जन्म नहीं लेता।(25)

"ब्रह्मा का अपने पिता(काल) की प्राप्ति के लिए प्रयत्न"

जब दुर्गा ने ब्रह्मा जी से कहा कि अलख निरंजन तुम्हारा पिता है परन्तु वह तुम्हें दर्शन नहीं देगा। यह सुनकर ब्रह्मा जी व्याकुल होकर उत्तर दिशा की ओर चल दिया। जहां अन्धेरा ही अन्धेरा है। वहाँ ब्रह्मा ने चार युग तक ध्यान लगाया परन्तु कुछ भी प्राप्ति नहीं हुई। काल ने आकाशवाणी की कि जीव उत्पत्ति क्यों नहीं की? भवानी ने कहा आप का ज्येष्ठ पुत्र ब्रह्मा जिद्द करके आप की तलाश में गया है। ब्रह्मा के बिना सब कार्य असम्भव है। ब्रह्म(काल) ने कहा उसे वापिस बुला लो। मैं उसे दर्शन नहीं दूँगा। तब दुर्गा(प्रकति) ने अपनी शब्द शक्ति से गायत्री नाम की लड़की उत्पन्न की तथा उसे ब्रह्मा को लौटा लाने को कहा। गायत्री ब्रह्मा जी के पास गई परंतु ब्रह्मा जी समाधि लगाए हुए था उसे कोई आभास ही नहीं था कि कोई आया है। तब आदि कुमारी (प्रकति) ने गायत्री को ध्यान द्वारा बताया कि इस के चरण स्पर्श कर। तब गायत्री ने ऐसा ही किया। ब्रह्मा जी का ध्यान भंग हुआ तो क्रोध वश बोला तू कौन पापिन है जिसने मेरा ध्यान भंग किया है। मैं तुझे शाप दूंगा। गायत्री ने कहा की मेरा दोष नहीं है पहले मेरी बात सुनो तब शाप देना। मेरे को माता ने तुम्हें लौटा लाने को कहा है क्योंकि आपके बिना जीव उत्पत्ति नहीं हो सकती। ब्रह्मा ने कहा कि मैं कैसे जाऊँ? पिता जी के दर्शन हुए नहीं, ऐसे जाऊँ तो मेरा उपहास होगा। यदि आप माता जी के समक्ष यह कह दें कि ब्रह्मा ने पिता (ज्योति निरंजन) के दर्शन हुए हैं, मैंने अपनी आँखो से देखा है तो मैं आपके साथ चलूं। तब गायत्री ने कहा कि आप मेरे साथ संभोग (सैक्स) करोगे तो मैं आपकी झूठी साखि (गवाही) भरूँ। तब ब्रह्मा ने सोचा कि पिता के दर्शन हुए नहीं वैसे जाऊँ तो माता के सामने शर्म लगेगी अन्य विकल्प न देख गायत्री से रति क्रिया (संभोग) की।

तब गायत्री ने कहा कि क्यों न एक गवाह और तैयार किया जाए। ब्रह्मा ने कहा बहुत ही अच्छा है। तब गायत्री ने शब्द शक्ति से एक लड़की पुहपवति नाम की उत्पन्न की तथा उससे दोनों

ने कहा कि आप गवाही देना कि ब्रह्मा ने पिता के दर्शन किए हैं। तब पुहपवति ने कहा कि मैं क्यों झूठी गवाही दूँ। हाँ यदि ब्रह्मा मेरे से रति क्रिया (संभोग) करे तो गवाही दे सकती हूँ। गायत्री ने ब्रह्मा को समझाया (उकसाया) कि और कोई चारा नहीं है तब ब्रह्मा ने पुहपवति से संभोग किया तो तीनों मिलकर आदि माया (प्रकृति) के पास आए। दोनों देवियों ने उपरोक्त शर्त इसलिए रखी थी कि यदि ब्रह्मा माता के सामने हमारी झूठी गवाही को बता देगा तो माता हमें शाप दे देगी। इसलिए उसे भी दोषी बना लिया।

(यहां महाराज गरीबदास जी कहते हैं कि – ''दास गरीब यह चूक धुरों धुर'')

"माता दुर्गा द्वारा ब्रह्मा को शाप देना"

तब माता ने ब्रह्मा से पूछा क्या तुझे तेरे पिता के दर्शन हुए? तब तीनों ने कहा कि हाँ हमने अपनी आँखों से देखा है। भवानी (प्रकृति) को संशय हुआ कि मुझे तो ब्रह्म ने कहा था कि मैं किसी को दर्शन नहीं दूंगा, परन्तु ये कहते हैं कि दर्शन हुए हैं। तब अष्टंगी ने ध्यान लगाया और काल ज्योति निरंजन से पूछा कि यह क्या कहानी है? ज्योति निरंजन जी ने कहा कि ये तीनों झूठ बोल रहे हैं। तब माता ने कहा तुम झूठ बोल रहे हो आकाशवाणी हुई है कि इन्हें कोई दर्शन नहीं हुए। यह बात सुनकर ब्रह्मा ने कहा कि माता जी मैं प्रतिज्ञा करके पिता की खोज करने गया था। परन्तु पिता ब्रह्म के दर्शन हुए नहीं। आप के पास आने में शर्म लग रही थी। इसलिए हमने झूठ बोल दिया। तब माता (दुर्गा) ने कहा अब मैं तुम्हें शाप देती हूँ।

<u>ब्रह्मा को शाप</u> : - तेरी पूजा जग में नहीं होगी। तेरे वंशज बहुत पाखण्ड करेंगे। झूठी बात बना कर जग को ठगेंगे। ऊपर से तो कर्म काण्ड करते दिखाई देंगे अन्दर से विकार करेंगे। पुराणों को पढ़कर सुनाया करेंगे, स्वयं को ज्ञान नहीं होगा कि सद्ग्रन्थों में वास्तविकता क्या है, फिर भी मान वश तथा धन प्राप्ति के लिए गुरु बन कर अनुयाईयों को लोकवेद (शास्त्र विरुद्ध दंत कथा) सुनाया करेंगे। देवी-देवों की पूजा करके तथा करवाके, दूसरों की निन्दा करके कष्ट पर कष्ट उठायेंगे। जो उनके अनुयाई होंगे उनको परमार्थ नहीं बताएंगे। दक्षिणा के लिए जगत को गुमराह करते रहेंगे। अपने आपको सबसे श्रेष्ठ मानेंगे, दूसरों को नीचा समझेंगे। जब माता के मुख से यह सुना तो ब्रह्मा मूर्छित होकर जमीन पर गिर गया। बहुत समय बाद होश में आया।

<u>गायत्री को शाप</u> : -- तेरे कई सांड पति होंगे। तू मतलोक में गाय बनेगी।

<u>पुहपवति को शाप</u> : -- तेरी जगह गंदगी में होगी। तेरे फूलों को कोई पूजा में नहीं लाएगा। इस झूठी गवाही के कारण तुझे यह नरक भोगना होगा। तेरा नाम केवड़ा केतकी होगा। {हरियाणा में कुसोंधी कहते हैं। यह गंदगी (कुरड़ियों) वाली जगह पर होती है।}

इस प्रकार तीनों को शॉप देकर माता भवानी बहुत पछताई। {इस प्रकार पहले तो जीव बिना सोचे मन (काल) के प्रभाव से गलत कार्य कर देता है, परंतु जब आत्मा (सतपुरूष अंश) के प्रभाव से उसे ज्ञान होता है तो पीछे पछताना पड़ता है। जिस प्रकार माता–पिता अपने बच्चों को छोटी–सी गलती के कारण ताड़ते हैं (क्रोधवश होकर) परन्तु बाद में बहुत पछताते हैं। यही प्रक्रिया मन (काल–निरंजन) के प्रभाव से सर्व जीवों में क्रियावान हो रही है।} ***यहाँ एक बात विशेष है कि निरंजन (ब्रह्म) ने भी अपना कानून बना रखा है कि यदि कोई जीव किसी दुर्बल जीव को सताएगा तो उसे उसका बदला देना पड़ेगा। जब भवानी (प्रकृति/ अष्टंगी) ने ब्रह्मा, गायत्री व पुहपवति को शाप दिया तो अलख निरंजन (काल) ने कहा कि हे भवानी (प्रकृति/अष्टंगी) यह आपने अच्छा नहीं किया। अब मैं आपको शाप देता हूँ कि द्वापर***

युग में तेरे भी पाँच पति होंगे। (द्रोपदी ही दुर्गा का अवतार हुई है।) जब यह आकाश वाणी सुनी तो आदि माया ने कहा कि हे ज्योति निरंजन (काल) मैं तेरे वश पड़ी हूँ जो चाहे सो कर ले।

{सष्टि रचना में दुर्गा जी के अन्य नामों का बार-बार लिखने का उद्देश्य है कि पुराणों, गीता तथा वेदों में प्रमाण देखते समय भ्रम उत्पन्न नहीं होगा। जैसे गीता अध्याय 14 श्लोक 3-4 में काल ब्रह्म ने कहा है कि प्रकति तो गर्भ धारण करने वाली सब जीवों की माता है। मैं उसके गर्भ में बीज स्थापित करने वाला पिता हूँ। श्लोक 4 में कहा है कि प्रकति से उत्पन्न तीनों गुण जीवात्मा को कर्मो के बँधन में बाँधते हैं। - (लेख समाप्त)।

इस प्रकरण में प्रकति तो दुर्गा है तथा तीनों गुण तीनों देवता यानि रजगुण ब्रह्मा, सतगुण विष्णु तथा तमगुण शिव के सांकेतिक नाम हैं।}

"विष्णु का अपने पिता ब्रह्म की प्राप्ति के लिए प्रस्थान व माता का आर्शीवाद पाना"

इसके बाद विष्णु से प्रकति ने कहा कि पुत्र तू भी अपने पिता का पता लगा ले। तब विष्णु अपने पिता जी ब्रह्म का पता करते-करते पाताल लोक में चले गए जहाँ शेषनाग था। उसने विष्णु को अपनी सीमा में प्रवेश किया देखकर क्रोधित होकर विषभरा फूंकारा मारा। उसके विष के प्रभाव से विष्णु जी का रंग सांवला हो गया जैसे स्प्रे पेंट हो जाता है। तब विष्णु ने चाहा कि इस नाग को सजा देनी चाहिए। ज्योति निरंजन ने देखा कि विष्णु को शांत करना चाहिए। तब आकाशवाणी हुई कि विष्णु अब तू अपनी माता जी के पास जा और सत्य-सत्य सारा विवरण बता देना तथा जो कष्ट आपको शेषनाग से हुआ है, इसका प्रतिशोद्ध द्वापर युग में लेना। द्वापर युग में आप (विष्णु) तो कष्ण अवतार धारण करोगे और कालीदह में कालिन्द्री नामक नाग, शेष नाग का अवतार होगा।

ऊँच होई के नीच सतावै, ताकर ओएल (बदला) मोही सों पावै।
जो जीव दवे पीर पुनी काँहु, हम पुनि ओएल दिवावें ताहूँ।।

तब विष्णु जी माता जी के पास आए तथा सत्य-सत्य कह दिया कि मुझे पिता के दर्शन नहीं हुए। इस बात से माता प्रकति बहुत प्रसन्न हुई और कहा कि पुत्र तू सत्यवादी है। अब मैं अपनी शक्ति से तेरे पिता से मिलाती हूँ तथा तेरे मन का संशय समाप्त करती हूँ।

कबीर, देख पुत्र तोहि पिता भीटाऊँ, तौरे मन का धोखा मिटाऊँ।
मन स्वरूप कर्ता कह जानों, मन ते दूजा और न मानो।
स्वर्ग पाताल दौर मन केरा, मन अस्थीर मन अहै अनेरा।
निंरकार मन ही को कहिए, मन की आस निश दिन रहिए।
देख हूँ पलटि सुन्य मह ज्योति, जहाँ पर झिलमिल झालर होती।।

इस प्रकार अष्टंगी (प्रकति) ने विष्णु से कहा कि मन ही जग का कर्ता है, यही ज्योति निरंजन है। ध्यान में जो एक हजार ज्योतियाँ नजर आती हैं वही उसका रूप है। जो शंख, घण्टा आदि का बाजा सुना, यह महास्वर्ग में निरंजन का ही बज रहा है। तब अष्टंगी (प्रकति) ने कहा कि हे पुत्र तुम सब देवों के सरताज हो और तेरी हर कामना व कार्य मैं पूर्ण करूंगी। तेरी पूजा सर्व जगत् में होगी। आपने मुझे सच-सच बताया है। काल के इक्कीस ब्रह्माण्डों के प्राणियों की विशेष आदत है कि अपनी व्यर्थ महिमा बनाता है। जैसे दुर्गा जी श्री विष्णु जी को कह रही है कि तेरी पूजा जगत् में होगी। मैंने तुझे तेरे पिता के दर्शन करा दिए। दुर्गा ने केवल प्रकाश दिखा कर श्री विष्णु

एक ब्रह्मण्ड का लघु चित्र

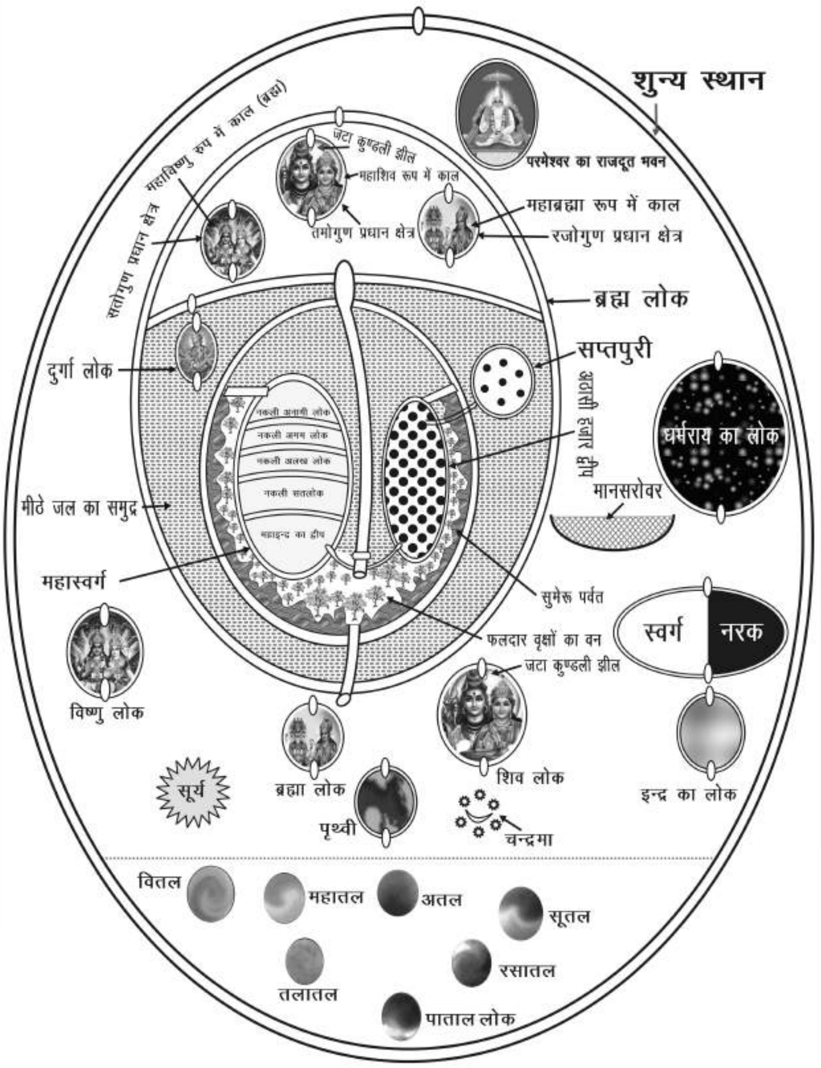

ज्योति निरंजन (काल) ब्रह्म के लोक (21 ब्रह्मण्ड) का लघु चित्र

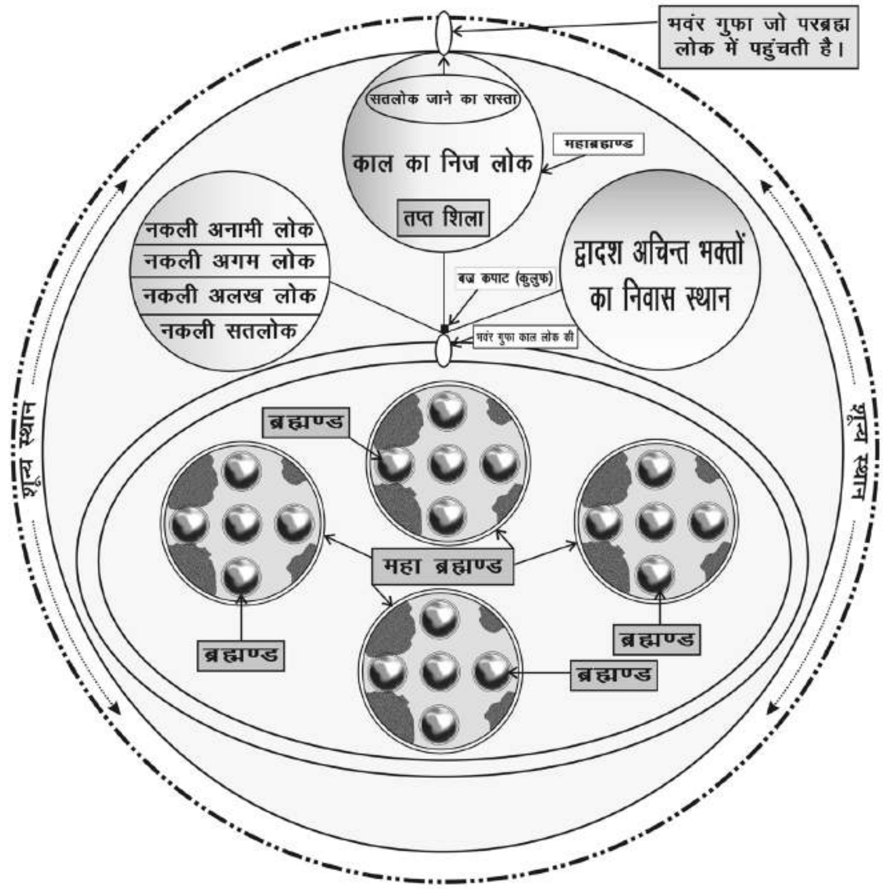

जी को बहका दिया। श्री विष्णु जी भी प्रभु की यही स्थिति अपने अनुयाईयों को समझाने लगे कि परमात्मा का केवल प्रकाश दिखाई देता है। परमात्मा निराकार है। जबकि सर्व शास्त्रों में परमात्मा साकार- मानव सदंश शरीरयुक्त लिखा है। इसके बाद आदि भवानी, रूद्र (महेश जी) के पास गई तथा कहा कि महेश तू भी कर ले अपने पिता की खोज तेरे दोनों भाइयों को तो तुम्हारे पिता के दर्शन नहीं हुए उनको जो देना था वह प्रदान कर दिया है अब आप माँगो जो माँगना है। तब महेश ने कहा कि हे जननी! यदि मेरे दोनों बड़े भाईयों को पिता के दर्शन नहीं हुए फिर तो प्रयत्न करना व्यर्थ है। कंपा मुझे ऐसा वर दो कि मैं अमर (मंत्युंजय) हो जाऊँ। तब माता ने कहा कि यह मैं नहीं कर सकती। हाँ युक्ति बता सकती हूँ, जिससे तेरी आयु सबसे लम्बी बनी रहेगी। विधि योग समाधि है (इसलिए महादेव जी ज्यादातर समाधि में ही रहते हैं)। तीनों पुत्रों को विभाग बांट दिए : -

ब्रह्मा जी को काल लोक में लख चौरासी के चौले (शरीर) रचने (बनाने) अर्थात् रजोगुण प्रभावित करके संतानोत्पत्ति के लिए विवश करके जीव उत्पत्ति कराने का विभाग प्रदान किया।

भगवान विष्णु जी को इन जीवों में मोह-ममता उत्पन्न करके स्थिति बनाए रखने का विभाग प्रदान किया।

भगवान शिव शंकर (महादेव) को संहार करने का विभाग प्रदान किया।

क्योंकि इनके पिता निरंजन को एक लाख मानव शरीर धारी जीव प्रतिदिन खाने पड़ते हैं।

उपरोक्त विवरण एक ब्रह्मण्ड का है। ऐसे-ऐसे क्षर पुरुष (अर्थात् काल भगवान) के इक्कीस ब्रह्मण्ड हैं।

परन्तु क्षर पुरूष (काल) स्वयं व्यक्त नहीं होता अर्थात् वास्तविक शरीर रूप में सबके सामने नहीं आता। उसी को प्राप्त करने के लिए तीनों देवों (ब्रह्मा जी, विष्णु जी, शिव जी) को वेदों में वर्णित विधि अनुसार भरसक साधना करने पर भी ब्रह्म (काल) के दर्शन नहीं हुए। बाद में ऋषियों ने वेदों को पढ़ा। परन्तु नहीं समझ सके क्योंकि सबकी बुद्धि काल वश है। वेदों में लिखा है कि 'अग्नेः तनूर् असि' (पवित्र यजुर्वेद अ. 1 मंत्र 15) परमेश्वर सशरीर है तथा पवित्र यजुर्वेद अध्याय 5 मंत्र 1 दो बार में लिखा है कि 'अग्नेः तनूर् असि विष्णवे त्वा सोमस्य तनूर् असि'। इस मंत्र में दो बार वेद गवाही दे रहा है कि सर्वव्यापक, सर्वपालन कर्ता सतपुरुष सशरीर है। पवित्र यजुर्वेद अध्याय 40 मंत्र 8 में कहा है कि (कविर् मनिषी) जिस परमेश्वर की सर्व प्राणियों को चाह है, वह कविर् अर्थात् कबीर परमेश्वर पूर्ण विद्वान् है। उसका शरीर बिना नाड़ी (अस्नाविरम्) का है, (शुक्रम् अकायम्) वीर्य से बनी पाँच तत्व से बनी भौतिक काया रहित है। वह सर्व का मालिक सर्वोपरि सत्यलोक में विराजमान है, उस परमेश्वर का तेजपुंज का (स्वर्ज्योति) स्वयं प्रकाशित शरीर है जो शब्द रूप अर्थात् अविनाशी है। वही कविर्देव (कबीर परमेश्वर) है जो सर्व ब्रह्मण्डों की रचना करने वाला (व्यदधाता) सर्व ब्रह्मण्डों का रचनहार (स्वयम्भूः) स्वयं प्रकट होने वाला (यथा तथ्यः अर्थान्) वास्तव में (शाश्वतिभः) अविनाशी है जिसके विषय में वेद वाणी द्वारा भी जाना जाता है कि परमात्मा साकार है तथा उसका नाम कविर्देव अर्थात् कबीर प्रभु है(गीता अध्याय 15 श्लोक 17 में भी प्रमाण है।) भावार्थ है कि पूर्ण ब्रह्म का शरीर का नाम कबीर (कविर देव) है। उस परमेश्वर का शरीर नूर तत्व से बना है। परमात्मा का शरीर अति सूक्ष्म है जो उस साधक को दिखाई देता है जिसकी दिव्य दंष्टि खुल चुकी है। इस प्रकार जीव का भी सुक्ष्म शरीर है जिसके ऊपर पाँच तत्व का खोल (कवर) अर्थात् पाँच तत्व की काया चढ़ी होती है जो माता-पिता के संयोग से (शुक्रम) वीर्य से बनी है। शरीर

त्यागने के पश्चात् जीव जिस भी योनी में जाता है। जीव का सुक्ष्म शरीर साथ रहता है। वह शरीर उसी साधक को दिखाई देता है जिसकी दिव्य दृष्टि खुल चुकी है। इस प्रकार परमात्मा व जीव की साकार स्थिति को समझें। वेदों में ओ३म् नाम के स्मरण का प्रमाण है जो केवल ब्रह्म साधना है। इस उद्देश्य से ओ३म् नाम के जाप को पूर्ण ब्रह्म का जान कर ऋषियों ने भी हजारों वर्ष हठयोग (समाधी लगा कर) करके प्रभु प्राप्ति की चेष्टा की, परन्तु प्रभु दर्शन नहीं हुए, सिद्धियाँ प्राप्त हो गई। उन्हीं सिद्धी रूपी खिलौनों से खेल कर ऋषि भी जन्म-मृत्यु के चक्र में ही रह गए तथा अपने अनुभव के शास्त्रों में परमात्मा को निराकार लिख दिया। ब्रह्म (काल) ने प्रतिज्ञा की है कि मैं अपने वास्तविक रूप में किसी को दर्शन नहीं दूँगा। मुझे अव्यक्त कहा करेंगे। (अव्यक्त का भावार्थ है कि कोई आकार में है परन्तु व्यक्तिगत रूप से स्थूल रूप में दर्शन नहीं देता। जैसे आकाश में बादल छा जाने पर दिन के समय सूर्य अदृश हो जाता है। वह दृश्यमान नहीं है, परन्तु वास्तव में बादलों के पार ज्यों का त्यों है, इस अवस्था को अव्यक्त अर्थात् परोक्ष कहते हैं।) ***(प्रमाण के लिए गीता** अध्याय 7 श्लोक 24-25, अध्याय 11 श्लोक 47, 48 तथा 32)*

पवित्र गीता जी बोलने वाला ब्रह्म (काल) श्री कृष्ण जी के शरीर में प्रेतवत प्रवेश करके कह रहा है कि अर्जुन मैं बढ़ा हुआ काल हूँ और सर्व को खाने के लिए आया हूँ। यह मेरा वास्तविक रूप है, इसको तेरे अतिरिक्त न तो कोई पहले देख सका तथा न कोई आगे देख सकता अर्थात् वेदों में वर्णित यज्ञ-जप-तप तथा ओ३म् नाम आदि की विधि से मेरे इस वास्तविक स्वरूप के दर्शन नहीं हो सकते। (अध्याय 11 श्लोक 32 से 48) मैं कृष्ण नहीं हूँ, ये मूर्ख लोग कृष्ण रूप में मुझ अव्यक्त को व्यक्त (मनुष्य रूप) मान रहे हैं। क्योंकि ये मेरे घटिया नियम से अपरिचित हैं कि मैं कभी वास्तविक इस काल रूप में सबके सामने नहीं आता। क्योंकि मैं अपनी योग माया अर्थात् सिद्धी शक्ति से छिपा रहता हूँ (गीता अध्याय 7 का श्लोक 24-25) विचार करें :- अपने छूपे रहने वाले विधान को स्वयं अश्रेष्ठ (अनुत्तम) क्यों कह रहे हैं?

क्योंकि जो पिता अपनी सन्तान को भी दर्शन नहीं देता तो उसमें कोई त्रुटि है जिस कारण से छुपा है तथा सुविधाएं भी प्रदान कर रहा है। काल (ब्रह्म) को शापवश एक लाख मानव शरीर धारी प्राणियों का आहार करना पड़ता है तथा 25 हजार प्रतिदिन जो अधिक उत्पन्न होते हैं उन्हें ठिकाने लगाने के लिए तथा कर्म भोग का दण्ड देने के लिए चौरासी लाख योनियों की व्यवस्था की हुई है। यदि सबके सामने बैठ कर किसी की पुत्री, किसी की पत्नी, किसी के पुत्र, माता-पिता को खाए तो सर्व को काल ब्रह्म से घृणा हो जाए तथा जब भी कभी पूर्ण परमात्मा कविरग्नि (कबीर परमेश्वर) स्वयं आएें या अपना कोई संदेशवाहक (दूत) भेंजे तो सर्व प्राणी सत्यभक्ति करके काल के जाल से निकल जाएं। इसलिए धोखा देकर रखता है तथा पवित्र गीता अध्याय 7 श्लोक 18,24,25 में अपनी साधना से होने वाली मुक्ति (गति) को भी (अनुत्तमाम्) अति अश्रेष्ठ कहा है तथा अपने विधान (नियम)को भी (अनुत्तम) अश्रेष्ठ कहा है। (कृप्या देखें एक ब्रह्मण्ड का लघु चित्र इसी पुस्तक के पृष्ठ 32 पर।)

प्रत्येक ब्रह्मण्ड में बने ब्रह्मलोक में एक महास्वर्ग बनाया है। महास्वर्ग में एक स्थान पर नकली सतलोक - नकली अलख लोक - नकली अगम लोक तथा नकली अनामी लोक की रचना प्राणियों को धोखा देने के लिए प्रकृति (दुर्गा/आदि माया) द्वारा करा रखी है। एक ब्रह्मण्ड में अन्य लोकों की भी रचना है, जैसे श्री ब्रह्मा जी का लोक, श्री विष्णु जी का लोक, श्री शिव जी का लोक। जहाँ पर बैठकर तीनों प्रभु नीचे के तीन लोकों (स्वर्गलोक अर्थात् इन्द्र का लोक -

पथ्वी लोक तथा पाताल लोक) पर एक - एक विभाग के मालिक बन कर प्रभुता करते हैं तथा अपने पिता काल के खाने के लिए प्राणियों की उत्पत्ति, स्थिति तथा संहार का कार्यभार संभाले हैं। तीनों प्रभुओं की भी जन्म व मत्यु होती है। तब काल इन्हें भी खाता है। इसी ब्रह्मण्ड {इसे अण्ड भी कहते हैं क्योंकि ब्रह्मण्ड की बनावट अण्डाकार है, इसे पिण्ड भी कहते हैं क्योंकि शरीर (पिण्ड) में एक ब्रह्मण्ड की रचना कमलों में टी.वी. की तरह देखी जाती है।} *में एक मानसरोवर तथा धर्मराय (न्यायधीश) का भी लोक है तथा एक गुप्त स्थान पर पूर्ण परमात्मा अन्य रूप धारण करके रहता है। जैसे प्रत्येक देश का राजदूत भवन होता है। वहाँ पर कोई नहीं जा सकता। वहाँ पर वे आत्माऐं रहती हैं जिनकी सत्यलोक की भक्ति अधूरी रहती है। जब भक्ति युग आता है तो उस समय इन पुण्यात्माओं को पथ्वी पर मानव शरीर प्राप्त होता है तथा ये शीघ्र ही सत भक्ति पर लग जाते हैं तथा पूर्ण मोक्ष प्राप्त कर जाते हैं। उस स्थान पर रहने वाले हंस आत्माओं की निजी भक्ति कमाई खर्च नहीं होती। परमात्मा के भण्डारे से सर्व सुविधाऐं उपलब्ध होती हैं। ब्रह्म (काल) के उपासकों की भक्ति कमाई स्वर्ग-महा स्वर्ग में समाप्त हो जाती है। क्योंकि इस काल ब्रह्म का लोक (ब्रह्म के इक्कीस ब्रह्मण्ड) तथा परब्रह्म लोक (परब्रह्म के सात संख ब्रह्मण्ड) में प्राणियों को अपना किया कर्मफल ही मिलता है। (कप्या देखें एक ब्रह्मण्ड का व ब्रह्म के इक्कीस ब्रह्मण्ड का लघु चित्र इसी पुस्तक के पष्ठ 32 व 33 पर)*

क्षर पुरुष (ब्रह्म) ने अपने 20 ब्रह्मण्डों को चार महाब्रह्मण्डों में विभाजित किया है। एक महाब्रह्मण्ड में पाँच ब्रह्मण्डों का समूह बनाया है तथा चारों ओर से अण्डाकार गोलाई (परिधि) में रोका है तथा चारों महा ब्रह्मण्डों को भी फिर अण्डाकार गोलाई (परिधि) में रोका है। इक्कीसवें ब्रह्मण्ड की रचना एक महाब्रह्मण्ड जितना स्थान लेकर की है। इक्कीसवें ब्रह्मण्ड में प्रवेश होते ही तीन रास्ते बनाए हैं। इक्कीसवें ब्रह्मण्ड में भी बांई तरफ नकली सतलोक, नकली अलख लोक, नकली अगम लोक, नकली अनामी लोक की रचना प्राणियों को धोखे में रखने के लिए आदि माया (दुर्गा) से करवाई है तथा दांई तरफ बारह सर्व श्रेष्ठ ब्रह्म साधकों (भक्तों) को रखता है। {प्रत्येक युग में अपने संदेश वाहक (नकली सतगुरु) बनाकर पथ्वी पर भेजता है, जो शास्त्र विधि रहित साधना व ज्ञान बताते हैं तथा स्वयं भी भक्तिहीन हो जाते हैं तथा अनुयाईयों को भी काल जाल में फंसा जाते हैं। वे गुरु जी तथा अनुयाई दोनों ही नरक में जाते हैं।} *सामने एक ताला (कुलुफ) लगा रखा है। वह रास्ता काल (ब्रह्म) के निज लोक में जाता है। जहाँ पर यह ब्रह्म (काल) अपने वास्तविक मानव सदश काल रूप में रहता है। इसी स्थान पर एक पत्थर की टुकड़ी तवे जैसी* (चपाती पकाने की लोहे की गोल प्लेट जैसी होती है) *स्वयं गर्म रहती है। जिस पर एक लाख मानव शरीर धारी प्राणियों के सूक्ष्म शरीर को भूनकर उनमें से गंद निकाल कर खाता है। उस समय सर्व प्राणी बहुत पीड़ा अनुभव करते हैं तथा हा-हाकार मच जाती है। फिर कुछ समय उपरान्त बेहोश हो जाते हैं। जीव मरता नहीं। फिर धर्मराय के लोक में जाकर कर्माधार से अन्य जन्म प्राप्त करते हैं तथा जन्म - मत्यु का चक्कर बना रहता है।*

उपरोक्त इक्कीसवें ब्रह्मण्ड में सामने लगा ताला ब्रह्म (काल) केवल अपने आहार वाले प्राणियों के लिए कुछ क्षण के लिए खोलता है। पूर्ण परमात्मा के सत्यनाम व सारनाम से यह ताला स्वयं खुल जाता है। ऐसे काल का जाल पूर्ण परमात्मा कविर्देव (कबीर साहेब) ने स्वयं ही अपने निजी भक्त धर्मदास जी को समझाया।

"परब्रह्म के सात संख ब्रह्मण्डों की स्थापना"

कबीर परमेश्वर (कविर्देव) ने आगे बताया है कि परब्रह्म (अक्षर पुरुष) ने अपने कार्य में सतर्कता नहीं की क्योंकि यह मानसरोवर में सो गया तथा जब परमेश्वर (मैंनें अर्थात् कबीर साहेब ने) उस सरोवर में अण्डा छोड़ा तो अक्षर पुरुष (परब्रह्म) ने उसे क्रोध से देखा। इन दोनों अपराधों के कारण से भी यह सतलोक में रहने योग्य नहीं रहा। अन्य कारण :- अक्षर पुरुष (परब्रह्म) अपने साथी ब्रह्म (क्षर पुरुष) की वियोग में व्याकुल होकर परमपिता कविर्देव (कबीर परमेश्वर) की याद भूलकर उसी को याद करने लगा तथा सोचा कि क्षर पुरुष (ब्रह्म) तो बहुत आनन्द मना रहा होगा, मैं पीछे रह गया तथा अन्य कुछ आत्माऐं जो परब्रह्म के साथ सात संख ब्रह्मण्डों में जन्म-मृत्यु का कर्मदण्ड भोग रही हैं, उन आत्माओं की वियोग की याद में खो गई जो ब्रह्म (काल) के साथ इक्कीस ब्रह्मण्डों में फंसी हैं तथा पूर्ण परमात्मा, सुखदाई कविर्देव की याद भुला दी। परमेश्वर कविर् देव के बार-बार समझाने पर भी आस्था कम नहीं हुई। परब्रह्म (अक्षर पुरुष) ने सोचा कि मैं भी अलग स्थान प्राप्त करूं तो अच्छा रहे। यह सोच कर राज्य प्राप्ति की इच्छा से सहज ध्यान प्रारम्भ कर दिया। इसी प्रकार अन्य आत्माओं ने (जो परब्रह्म के सात संख ब्रह्मण्डों में फंसी हैं) सोचा कि वे जो ब्रह्म के साथ आत्माऐं गई हैं वे तो वहाँ मौज-मस्ती मनाऐंगे, हम पीछे रह गये। परब्रह्म के मन में यह धारणा बनी कि क्षर पुरुष अलग बहुत सुखी होगा। यह विचार कर अन्तरात्मा से भिन्न स्थान प्राप्ति की ठान ली। परब्रह्म (अक्षर पुरुष) ने हठ योग नहीं किया, परन्तु सहज समाधी का अभ्यास केवल अलग राज्य प्राप्ति के लिए विशेष कसक के साथ करता रहा। अलग स्थान प्राप्त करने के लिए पागलों की तरह विचरने लगा, खाना-पीना भी त्याग दिया। अन्य कुछ आत्माऐं उसके वैराग्य पर आसक्त होकर उसे चाहने लगी। पूर्ण प्रभु के पूछने पर परब्रह्म ने अलग स्थान मांगा तथा कुछ हंसात्माओं के लिए भी याचना की। तब कविर्देव ने कहा कि जो आत्मा आपके साथ स्वइच्छा से जाना चाहें उन्हें भेज देता हूँ। पूर्ण प्रभु के पूछने पर कि कौन हंस आत्मा परब्रह्म के साथ जाना चाहता है, सहमति व्यक्त करे। बहुत समय उपरान्त एक हंस ने स्वीकृति दी, फिर देखा-देखी उन सर्व आत्माओं ने भी सहमति व्यक्त कर दी। सर्व प्रथम स्वीकृति देने वाले हंस को स्त्री रूप बनाया, उसका नाम ईश्वरी माया (प्रकृति सुरति) रखा तथा अन्य आत्माओं को उस ईश्वरी माया में प्रवेश करके अचिन्त द्वारा अक्षर पुरुष (परब्रह्म) के पास भेजा। (पतिव्रता पद से गिरने की सजा पाई।) कई युगों तक दोनों सात संख ब्रह्मण्डों में रहे, परन्तु परब्रह्म ने दुर्व्यवहार नहीं किया। ईश्वरी माया की स्वइच्छा से अंगीकार किया तथा अपनी शब्द शक्ति द्वारा नाखुनों से स्त्रीइन्द्री (योनी) बनाई। ईश्वरी देवी की सहमति से संतान उत्पन्न की। इस लिए परब्रह्म के लोक (सात संख ब्रह्मण्डों) में प्राणियों को तप्तशिला का कष्ट नहीं है तथा वहाँ पशु-पक्षी भी ब्रह्म लोक के देवों से अच्छे चरित्र युक्त हैं। आयु भी बहुत लम्बी है, परन्तु जन्म - मृत्यु कर्माधार पर कर्म फल तथा परिश्रम करके ही उदर पूर्ति होती है। स्वर्ग तथा नरक भी ऐसे ही बने हैं। परब्रह्म (अक्षर पुरुष) को सात संख ब्रह्मण्ड उसके सहज समाधी के अभ्यास की इच्छा रूपी भक्ति की कमाई के प्रतिफल में प्रदान किया तथा सत्यलोक से भिन्न स्थान पर गोलाकार परिधि में बन्द करके सात संख ब्रह्मण्डों सहित अक्षर ब्रह्म व ईश्वरी माया को निष्कासित कर दिया।

पूर्ण ब्रह्म (सतपुरुष) असंख ब्रह्मण्डों जो सत्यलोक आदि में हैं तथा ब्रह्म के इक्कीस

ब्रह्मण्डों तथा परब्रह्म के सात संख ब्रह्मण्डों का भी प्रभु (मालिक) है अर्थात् परमेश्वर कविर्देव कुल का मालिक है। (कप्या देखें असंख ब्रह्मण्डों का चित्र इसी पुस्तक के पष्ठ नं. 18 पर)

श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी तथा श्री शिव जी आदि की चार-चार भुजाएँ तथा 16 कलाऐं हैं तथा प्रकति देवी (दुर्गा) की आठ भुजाऐं हैं तथा 64 कला हैं। ब्रह्म (क्षर पुरुष) की एक हजार भुजाऐं हैं तथा एक हजार कला है तथा इक्कीस ब्रह्मण्डों का प्रभु है। परब्रह्म (अक्षर पुरुष) की दस हजार भुजाऐं हैं तथा दस हजार कला हैं तथा सात संख ब्रह्मण्डों का प्रभु है। {**परब्रह्म की दस हजार कला हैं का प्रमाण :-** श्री विष्णु पुराण प्रथम अंश अध्याय 9 श्लोक 53 (पष्ठ 32) में है ''यस्य अयुतांश अयुतांशे विश्वशक्तिरियं स्थिता। पर ब्रह्मस्वरूपम् यत् प्रणमाम् अस्तम् अव्ययम् (53) हिन्दी अनुवाद :– जिसके अयुतांश (दस हजारवें अंश) के अयुतांश में अर्थात् दस हजार वें अंश के दस हजार वें अंश में यह विश्व रचना की शक्ति स्थित है तथा जो परब्रह्मस्वरूप है उस अव्यक्त को हम प्रणाम करते हैं। (53) इस प्रमाण से सिद्ध हुआ कि परब्रह्म अर्थात् अक्षर पुरूष की दस हजार कलांऐं हैं जो स्वसम वेद अर्थात् तत्वज्ञान के प्रमाण का समर्थन है। क्योंकि यह तत्व ज्ञान परमेश्वर कबीर जी ने प्रथम सत्ययुग में ऋषि सत्य सुकत नाम से प्रकट होकर श्री ब्रह्मा जी को सुनाया था। इसलिए श्री ब्रह्मा जी ने कुछ ज्ञान उस तत्वज्ञान से तथा शेष अपना अनुभव के ज्ञान का मिश्रण करके पुराण ज्ञान कहा है।} ***पूर्ण ब्रह्म (परम अक्षर पुरुष अर्थात् सतपुरुष) की असंख्य भुजाऐं तथा असंख्य कलाऐं हैं तथा ब्रह्म के इक्कीस ब्रह्मण्ड व परब्रह्म के सात संख ब्रह्मण्डों सहित असंख ब्रह्मण्डों का प्रभु है। प्रत्येक प्रभु अपनी सर्व भुजाओं को समेट कर केवल दो भुजाऐं भी रख सकते हैं तथा जब चाहें सर्व भुजाओं को भी प्रकट कर सकते हैं। पूर्ण परमात्मा इस परब्रह्म के प्रत्येक ब्रह्मण्ड में भी अलग स्थान बनाकर अन्य रूप में गुप्त रहता है। यूं समझो जैसे एक घूमने वाला कैमरा बाहर लगा देते हैं तथा अन्दर टी.वी. (टेलीविजन) रख देते हैं। टी.वी. पर बाहर का सर्व दश्य नजर आता है तथा दूसरा टी.वी. बाहर रख कर अन्दर का कैमरा स्थाई करके रख दिया जाए। उसमें केवल अन्दर बैठे प्रबन्धक का चित्र दिखाई देता है। जिससे सर्व कर्मचारी सावधान रहते हैं।***

इसी प्रकार पूर्ण परमात्मा अपने सतलोक में बैठ कर सर्व को नियंत्रित किए हुए है तथा प्रत्येक ब्रह्मण्ड में भी सतगुरु कविर्देव विद्यमान रहते हैं। जैसे सूर्य दूर होते हुए भी अपना प्रभाव अन्य लोकों में बनाए हुए है।

''वेदों में सष्टि रचना का प्रमाण''

"पवित्र अथर्ववेद में सष्टि रचना का प्रमाण"

काण्ड नं. 4 अनुवाक नं. 1 मंत्र नं. 1 :–

ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद् वि सीमतः सुरुचो वेन आवः।
स बुध्न्या उपमा अस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च वि वः।।1।।

संधिछेद :– ब्रह्म जज्ञानम् प्रथमम् पुरस्तात् विसिमतः सुरुचः वेनः आवः सः बुध्न्याः उपमा अस्य विष्ठाः सतः च योनिम् असतः च वि वः। (1)

अनुवाद :– (प्रथमम्) प्राचीन अर्थात् सनातन (ब्रह्म) परमात्मा ने (जज्ञानम्) प्रकट होकर अपनी सूझ–बूझ से (पुरस्तात्) सर्व प्रथम समय में शिखर में अर्थात् सतलोक आदि को (सुरुचः) स्वइच्छा से बड़े चाव से स्वप्रकाशित (विसिमतः) सीमा रहित अर्थात् विशाल सीमा वाले भिन्न लोकों को उस (वेनः) जुलाहे रचनहार ने ताने अर्थात् कपड़े की तरह बुनकर (आवः) सुरक्षित किया (च) तथा (सः) वह पूर्ण ब्रह्म ही सर्व

रचना करता है इसलिए उसी मूल मालिक ने मूल स्थान सतलोक की रचना की है इसलिए उसी (बुध्न्याः) मूल मालिक ने (योनिम्) मूलस्थान सत्यलोक को रच कर (अस्य) इस सतलोक के (उपमा) उपमा के सदृश अर्थात् मिलते जुलते (सतः) अक्षर पुरुष अर्थात् परब्रह्म के लोक कुछ स्थाई (च) तथा (असतः) क्षर पुरुष के अस्थाई अर्थात् नाश्वान लोक आदि (वि वः) आवास स्थान भिन्न (विष्ठाः) स्थापित किए।

भावार्थ :- पवित्र वेदों को बोलने वाला ब्रह्म(काल) कह रहा है कि सनातन परमेश्वर ने स्वयं अनामय(अनामी) लोक से सत्यलोक में प्रकट होकर अपनी सूझ-बूझ से कपड़े की तरह रचना करके ऊपर के सतलोक आदि को भिन्न-2 सीमा युक्त स्वप्रकाशित अजर - अमर अर्थात् अविनाशी ठहराए तथा नीचे के परब्रह्म के सात संख ब्रह्मण्ड तथा ब्रह्म के 21 ब्रह्मण्ड व इनमें छोटी-से छोटी रचना भी उसी परमात्मा ने अस्थाई की है।

काण्ड नं. 4 अनुवाक नं. 1 मंत्र नं. 2 :–

इयं पित्र्या राष्ट्रयेत्वग्रे प्रथमाय जनुषे भुवनेष्ठाः।
तस्मा एतं सुरुचं ह्वारमह्यं घर्मं श्रीणन्तु प्रथमाय धास्यवे।।2।।

संधिछेद :– इयम् पित्र्या राष्ट्रि एतु अग्रे प्रथमाय जनुषे भुवनेष्ठाः तस्मा एतम् सुरुचम् हवारमह्यम धर्मम् श्रीणान्तु प्रथमाय धास्यवे (2)

अनुवाद :– (इयम्) इसी (पित्र्या) जगतपिता परमेश्वर से (एतु) इस (अग्रे) सर्वोतम् (प्रथमाय) सर्व से पहली माया परानन्दनी (राष्ट्रि) राजेश्वरी शक्ति अर्थात् पराशक्ति जिसे आकर्षण शक्ति भी कहते हैं, उत्पन्न हुई जिस को (जनुषे) उत्पन्न करके (भुवनेष्ठाः) लोक स्थापना की (तस्मा) उसी परमेश्वर ने (सुरुचम्) बड़े चाव के साथ स्वइच्छा से (एतम्) इस (प्रथमाय) सर्व प्रथम उत्पन्न की गई माया अर्थात् पराशक्ति के द्वारा (ह्वारमह्यम्) एक दूसरे के वियोग को रोकने अर्थात् आकषर्ण शक्ति के (श्रीणान्तु) गुरूत्व आकर्षण को पूर्ण परमात्मा ने आदेश दिया कि सष्टि समय तक बना रहो उस कभी समाप्त न होने वाले (धर्मम्) स्वभाव अर्थात् गुरूत्व आकर्षण से (धास्यवे) धारण करके ताने अर्थात् कपड़े की तरह बुनकर रोके हुए है।

भावार्थ :- जगतपिता परमेश्वर ने अपनी शब्द शक्ति से राष्ट्री अर्थात् सबसे पहली माया राजेश्वरी उत्पन्न की तथा उसी पराशक्ति के द्वारा एक-दूसरे को आकर्षण शक्ति से रोकने वाले कभी न समाप्त होने वाले गुण से उपरोक्त सर्व ब्रह्मण्डों को स्थापित किया है।

काण्ड नं. 4 अनुवाक नं. 1 मंत्र नं. 3 :–

प्र यो जज्ञे विद्वानस्य बन्धुर्विश्वा देवानां जनिमा विवक्ति।
ब्रह्म ब्रह्मण उज्जभार मध्यान्नीचैरुच्चैः स्वधा अभि प्र तस्थौ।।3।।

संधिछेद :– प्र यः जज्ञे विद्वानस्य बन्धुः विश्वा देवानाम् जनिमा विवक्ति ब्रह्मः ब्रह्मणः उज्जभार मध्यात् निचैः उच्चैः स्वधा अभिः प्रतस्थौ। (3)

अनुवाद :– (प्र) सर्व प्रथम (देवानाम्) देवताओं व ब्रह्मण्डों की (जज्ञे) उत्पति के ज्ञान को (विद्वानस्य) जिज्ञासु भक्त का (यः) जो (बन्धुः) वास्तविक साथी (जनिमा) पूर्ण परमात्मा ही अपने निज सेवक को अपने द्वारा सजन किए हुए सर्व ब्रह्मण्डों तथा सर्व देवों अर्थात् आत्माओं के विषय में (विवक्ति) स्वयं ही ठीक–ठीक विस्तार पूर्वक बताता है कि (ब्रह्मणः) पूर्ण परमात्मा ने (मध्यात्) अपने मध्य से अर्थात् शब्द शक्ति से (ब्रह्मः) ब्रह्म/क्षर पुरूष अर्थात् काल को (उज्जभार) उत्पन्न करके (विश्वा) सारे संसार को अर्थात् सर्व लोकों को (उच्चैः) ऊपर सत्यलोक आदि (निचैः) नीचे परब्रह्म व ब्रह्म के सर्व ब्रह्मण्ड (स्वधा) अपनी धारण करने वाली (अभिः प्रतस्थौ) आकर्षण शक्ति से दोनों को अच्छी प्रकार स्थित किया।

भावार्थ :- पूर्ण परमात्मा अपने द्वारा रची सष्टि का ज्ञान तथा सर्व आत्माओं की उत्पत्ति का ज्ञान अपने निजी दास को स्वयं ही सही बताता है कि पूर्ण परमात्मा ने अपने मध्य अर्थात्

अपने शरीर से अपनी शब्द शक्ति के द्वारा ब्रह्म(क्षर पुरुष/काल) की उत्पत्ति की तथा सर्व ब्रह्मण्डों (ऊपर सतलोक, अलख लोक, अगम लोक, अनामी लोक आदि तथा नीचे परब्रह्म के सात संख ब्रह्मण्ड तथा ब्रह्म के 21 ब्रह्मण्डों) को अपनी धारण करने वाली आकर्षण शक्ति से ठहराया हुआ है।

जैसे पूर्ण परमात्मा कबीर परमेश्वर (कविर्देव) ने अपने निजी सेवक अर्थात् सखा श्री धर्मदास जी, आदरणीय गरीबदास जी आदि को अपने द्वारा रची सष्टि का ज्ञान स्वयं ही बताया। उपरोक्त वेद मंत्र भी यही समर्थन कर रहा है।

इस अथर्ववेद काण्ड 4 अनुवाक 1 मन्त्र 3 में स्पष्ट है कि ब्रह्म की उत्पति पूर्ण ब्रह्म से हुई है। यही प्रमाण आगे लिखे ऋग्वेद मण्डल 10 सुक्त 90 मन्त्र 5 में है तथा यही प्रमाण गीता अध्याय 3 मन्त्र 14-15 में है कि अविनाशी परमात्मा से ब्रह्म की उत्पति हुई है।

काण्ड नं. 4 अनुवाक नं. 1 मंत्र नं. 4

सः हि दिवः स पथिव्या ऋतस्था मही क्षेमं रोदसी अस्कभायत्।
महान् मही अस्कभायद् वि जातो द्यां सद्म पार्थिवं च रजः।।4।।

संधिछेद :– सः हि दिवः सः पथिव्या ऋतस्था मही क्षेमम् रोदसी अकस्भायत् महान् मही अस्कभायद विजातः धाम् सदम् पार्थिवम् च रजः। (4)

अनुवाद – (सः) वह वही परमात्मा है जिसने (हि) निःसंदेह ही (दिवः) ऊपर के चारों दिव्य लोक जैसे सत्य लोक, अलख लोक अगम लोक तथा अनामी/अकह लोक अर्थात् दिव्य गुणों युक्त लोकों को (ऋतस्था) सत्य स्थिर अर्थात् अविनाशी रूप से स्थिर किया है (सः) वह परमात्मा सर्व रचना करता है उसी ने उन्हीं के समान (मही) पथ्वी वाले नीचे के सर्व लोक जैसे परब्रह्म के सात संख तथा ब्रह्म/काल के इक्कीस ब्रह्मण्ड (पथिव्या) पथ्वी तत्व से (क्षेमम्) सुरक्षा के साथ (अस्कभायत्) ठहराया (रोदसी) आकाश तत्व तथा पथ्वी तत्व दोनों से ऊपर नीचे के ब्रह्माण्डों को उसी {**जैसे आकाश एक सुक्ष्म तत्व है, आकाश का गुण शब्द है, पूर्ण परमात्मा ने ऊपर के लोक शब्द रूप रचे जो तेजपुंज के बनाए हैं तथा नीचे के परब्रह्म/अक्षर पुरुष के सप्त संख ब्रह्मण्ड तथा ब्रह्म/क्षर पुरूष के इक्कीस ब्रह्मण्डों को पथ्वी तत्व से अस्थाई रचा**} (महान्) पूर्ण परमात्मा ने (पार्थिवम्) पथ्वी वाले (वि) भिन्न–भिन्न (धाम्) लोक (च) और (सदम्) आवास स्थान (मही) पथ्वी तत्व से (रजः) प्रत्येक ब्रह्मण्ड में छोटे–छोटे लोकों की (जातः) उसी परमात्मा ने रचना की तथा (अस्कभायत्) स्थिर किया।

भावार्थ :- ऊपर के चारों लोक सत्यलोक, अलख लोक, अगम लोक, अनामी लोक, यह तो अजर-अमर स्थाई अर्थात् अविनाशी रचे हैं तथा नीचे के ब्रह्म तथा परब्रह्म के लोकों को अस्थाई रचना करके तथा अन्य छोटे-छोटे लोक भी उसी परमेश्वर ने रचकर अस्थाई स्थापित किए।

काण्ड नं. 4 अनुवाक नं. 1 मंत्र 5

स बुध्न्यादाष्ट्र जनुषो भ्यग्रं बहस्पतिर्देवता तस्य सम्राट्।
अहर्यच्छुक्रं ज्योतिषो जनिष्टाथ द्युमन्तो वि वसन्तु विप्राः।।5।।

संधिछेद :– सः बुध्न्यात् आष्ट्र जनुषेः अभि अग्रम् बहस्पतिः देवता तस्य सम्राट अहः यत् शुक्रम् ज्योतिषः जनिष्ट अथ द्युमन्तः वि वसन्तु विप्राः। (5)

अनुवाद :– (सः) वह (बुध्न्यात्) मूल मालिक है जिस से (अभि–अग्रम्) सर्व प्रथम वाले सतलोक स्थान पर (आष्ट्र) अष्टँगी माया/दुर्गा अर्थात् प्रकति देवी (जनुषेः) उत्पन्न हुई क्योंकि नीचे के परब्रह्म व ब्रह्म के लोकों का प्रथम स्थान सतलोक है यह तीसरा धाम भी कहलाता है (तस्य) इस दुर्गा का भी मालिक यही (सम्राट) राजाधिराज (बहस्पतिः) सबसे बड़ा पति व जगतगुरु (देवता) परमेश्वर है। (यत्) जिस से (अहः)

सबका वियोग हुआ (अथ) इसके पश्चात् (ज्योतिषः) ज्योति रूप निरंजन अर्थात् काल के (शुक्रम्) वीर्य अर्थात् बीज शक्ति से (जनिष्ट) दुर्गा के उदर से उत्पन्न होकर (विप्राः) ब्राह्मण अर्थात् भक्त आत्माएं (द्युमन्तः) मनुष्य लोक तथा स्वर्ग लोक में ज्योति निरंजन के आदेश से दुर्गा ने कहा (वि) भिन्न–2 (वसन्तु) निवास करो, अर्थात् वे निवास करने लगी।

भावार्थ :- पूर्ण परमात्मा ने ऊपर के चारों लोकों में से जो नीचे से सबसे प्रथम अर्थात् सत्यलोक में आष्ट्रा अर्थात् अष्टंगी(प्रकति देवी/दुर्गा) की उत्पत्ति की। यही राजाधिराज, जगतगुरु, पूर्ण परमेश्वर(सतपुरुष) है जिससे सबका वियोग हुआ है। फिर सर्व प्राणी ज्योति निरंजन(काल) के (वीर्य) बीज से दुर्गा (आष्ट्रा) के गर्भ द्वारा उत्पन्न होकर स्वर्ग लोक व पथ्वी लोक पर निवास करने लगे।

काण्ड नं. 4 अनुवाक नं. 1 मंत्र 6

नूनं तदस्य काव्यो हिनोति महो देवस्य पूर्व्यस्य धाम।
एष जज्ञे बहुभिः साकमित्था पूर्वे अर्धे विषिते ससन् नु।।6।।

संधिछेद :– नूनम् तत् अस्य काव्यः महः देवस्य पूर्व्यस्य धाम हिनोति पूर्वे विषिते एष जज्ञे बहुभिः साकम् इत्था अर्धे ससन् नु। (6)

अनुवाद – (नूनम्) निसंदेह (तत्) वह पूर्ण परमेश्वर अर्थात् तत् ब्रह्म ही (अस्य) इस (काव्यः) भक्त आत्मा जो पूर्ण परमेश्वर की भक्ति विधिवत करता है को वापिस (महः) सर्वशक्तिमान (देवस्य) परमेश्वर के (पूर्व्यस्य) पहले के (धाम) लोक में अर्थात् सत्यलोक में (हिनोति) भेजता है (पूर्वे) पहले वाले (विषिते) विशेष चाहे हुए (एष) इस परमेश्वर को व (जज्ञे) संष्टि उत्पति के ज्ञान से यर्थाथता को जान कर (बहुभिः) बहुत आनन्द (साकम्) के साथ (अर्धे) आधा (ससन्) सोता हुआ (इत्था) विधिवत् इस प्रकार (नु) सच्ची लगन से स्तुति करता है।

भावार्थ :- वही पूर्ण परमेश्वर स्वयं जगतगुरु अर्थात् तत्वदर्शी सन्त के रूप में प्रकट होकर सत्य साधना करने वाले साधक को उसी पहले वाले स्थान (सत्यलोक) में ले जाता है, जहाँ से बिछुड़ कर आऐ थे। वहाँ उस वास्तविक सुखदाई प्रभु को प्राप्त करके खुशी से आत्म विभोर होकर मस्ती से स्तुति करता है कि हे परमात्मा असंख्य जन्मों के भूले-भटकों को वास्तविक ठिकाना मिल गया। इसी का प्रमाण पवित्र ऋग्वेद मण्डल 10 सूक्त 90 मंत्र 16 में भी है।

आदरणीय गरीबदास जी को इसी प्रकार पूर्ण परमात्मा कविर्देव (कबीर परमेश्वर) स्वयं सत्यभक्ति प्रदान करके सत्यलोक लेकर गए थे, तथा सत्य लोक दिखाकर वापस छोड़ा था। तब अपनी अमतवाणी में आदरणीय गरीबदास जी महाराज ने कहा :-

गरीब, अजब नगर में ले गए, हमकुँ सतगुरु आन। झिलके बिम्ब अगाध गति, सुते चादर तान।।

काण्ड नं. 4 अनुवाक नं. 1 मंत्र 7

यो थर्वाणं पित्तरं देवबन्धुं बहस्पतिं नमसाव च गच्छात्।
त्वं विश्वेषां जनिता यथासः कविर्देवो न दभायत् स्वधावान्।।7।।

संधिछेद :– यः अथर्वाणम् पित्तरम देवबन्धुम बहस्पतिम नमसा अव च गच्छात त्वम विश्वेषाम् जनिता यथा सः कविर्देवः न दभायत् स्वधावान्। (7)

अनुवाद :– (यः) जो (अथर्वाणम्) अचल अर्थात् अविनाशी (पित्तरम्) जगत पिता (देव बन्धुम्) भक्तों का वास्तविक साथी अर्थात् आत्मा का आधार (बहस्पतिम्) सबसे बड़ा मालिक अर्थात् परमेश्वर (च) तथा (नमसा) विनम्र पुजारी अर्थात् विधिवत् साधक को (अव) सुरक्षा के साथ (गच्छात्) सतलोक जा चुके हैं तथा अन्य को सतलोक ले जाने वाला (विश्वेषाम्) सर्व ब्रह्मण्डों को (जनिता) रचने वाला जगदम्बा अर्थात् माता वाले गुणों

से भी युक्त (न दभायत्) काल की तरह धोखा न देने वाले (स्वधावान्) स्वभाव अर्थात् गुणों वाला (यथा) ज्यों का त्यों अर्थात् वैसा ही (सः) वह (त्वम्) आप (कविर्देवः/ कविर्–देवः) कविर्देव है। भाषा भिन्न इसे कबीर परमेश्वर भी कहते हैं। क्योंकि कविर्=कबिर् फिर अपभ्रंश होकर कबीर कहा जाने लगा तथा देव=परमेश्वर अर्थ है। इसलिए कबीर परमेश्वर उसी काशी वाले जुलाहे का सम्बोधन वेदों में है।

भावार्थ :- इस मंत्र में यह भी स्पष्ट कर दिया कि उस परमेश्वर का नाम कविर्देव अर्थात् कबीर परमेश्वर है, जिसने सर्व रचना की है।

जो परमेश्वर अचल अर्थात् वास्तव में अविनाशी (गीता अध्याय 15 श्लोक 16-17 में भी प्रमाण है) सबसे बड़ा स्वामी अर्थात् परमेश्वर, आत्माधार, जो पूर्ण मुक्त होकर सत्यलोक गए हैं उनको सतलोक ले जाने वाला, सर्व ब्रह्मण्डों का रचनहार, काल(ब्रह्म) की तरह धोखा न देने वाला ज्यों का त्यों वह स्वयं कविर्देव अर्थात् कबीर प्रभु है। यही परमेश्वर सर्व ब्रह्मण्डों व प्राणियों को अपनी शब्द शक्ति से उत्पन्न करने के कारण (जनिता) माता भी कहलाता है तथा (पित्तरम्) पिता तथा (बन्धु) भाई भी वास्तव में यही है तथा (देव) परमेश्वर भी यही है। इसलिए इसी कविर्देव (कबीर परमेश्वर) की स्तुति किया करते हैं। त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव बन्धु च सखा त्वमेव, त्वमेव विद्या च द्रविणम् त्वमेव, त्वमेव सर्वं मम् देव देव। इसी परमेश्वर की महिमा का पवित्र ऋग्वेद मण्डल नं. 1 सूक्त नं. 24 में विस्तृत विवरण है।

"पवित्र ऋग्वेद में सष्टि रचना का प्रमाण"

मण्डल 10 सुक्त 90 मंत्र 1

सहस्रशीर्षा पुरूषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
स भूमिं विश्वतों वृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्।।1।।

संधिछेद :– सहस्रशिर्षा पुरूषः सहस्राक्षः सहस्रपात् स भूमिम् विश्वतः वृत्वा अत्यातिष्ठत् दशंगुलम्। (1)

अनुवाद :– (पुरूषः) विराट रूप काल भगवान अर्थात् क्षर पुरूष (सहस्रशिर्षा) हजार सिरों वाला (सहस्राक्षः) हजार आँखों वाला (सहस्रपात्) हजार पैरों वाला (स) वह काल (भूमिम्) पृथ्वी वाले इक्कीस ब्रह्मण्डों को (विश्वतः) सब ओर से (दशंगुलम्) दसों अंगुलियों से अर्थात् पूर्ण रूप से काबू किए हुए (वृत्वा) गोलाकार घेरे में घेर कर (अत्यातिष्ठत्) इस से बढ़कर अर्थात् अपने काल लोक में सबसे न्यारा भी इक्कीसवें ब्रह्मण्ड में ठहरा है अर्थात् रहता है।

भावार्थ :- इस मंत्र में विराट (काल-ब्रह्म) का वर्णन है। (गीता अध्याय 10-11 में भी इसी काल-ब्रह्म का ऐसा ही वर्णन है गीता अध्याय 11 श्लोक 46 में अर्जुन ने कहा है कि हे सहस्रबाहु अर्थात् हजार भुजा वाले आप अपने चतुर्भुज में दर्शन दीजिए। क्योंकि अर्जुन काल का वास्तविक रूप भी आँखों देख रहा था तथा अपनी बुद्धि से उसे कृष्ण अर्थात् विष्णु मान रहा था) जिसके हजारों हाथ, पैर, हजारों आँखे, कान आदि हैं वह विराट रूप काल प्रभु अपने आधीन सर्व प्राणियों को पूर्ण काबू करके अर्थात् 20 ब्रह्मण्डों को गोलाकार परिधी में रोककर स्वयं इनसे ऊपर (अलग) इक्कीसवें ब्रह्मण्ड में बैठा है।

मण्डल 10 सुक्त 90 मंत्र 2

पुरूष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति।।2।।

संधिछेद :– पुरूष एव इदम् सर्वम् यत् भूतम् यत् च भाव्यम् उत अमृतत्वस्य इशानः यत् अन्नेन अतिरोहति। (2)

अनुवाद :– (एव) परब्रह्म ही कुछ (पुरूष) भगवान जैसे लक्षणों युक्त है (च) और (इदम्) इस के लोक में यह

(यत्) जो (भूतम्) उत्पन्न हुआ है (यत्) जो (भाव्यम्) भविष्य में होगा (सर्वम्) सब (यत्) प्रयत्न से अर्थात् मेहनत द्वारा (अन्नेन) अन्न से (अतिरोहति) विकसित होता है। यह अक्षर पुरूष भी (उत) सन्देह युक्त (अमतत्वस्य) मोक्ष का (इशानः) स्वामी है। अर्थात् भगवान तो अक्षर पुरूष भी कुछ सही है परन्तु पूर्ण मोक्ष दायक नहीं है।

भावार्थ :- इस मंत्र में परब्रह्म (अक्षर पुरुष) का विवरण है जो कुछ भगवान वाले लक्षणों से युक्त है, परन्तु इसकी भक्ति से भी पूर्ण मोक्ष नहीं है, इसलिए इसे संदेहयुक्त मुक्ति दाता कहा है। इसे कुछ प्रभु के गुणों युक्त इसलिए कहा है कि यह काल की तरह तप्तशिला पर भून कर नहीं खाता। परन्तु इस परब्रह्म के लोक में भी प्राणियों को परिश्रम करके कर्माधार पर ही प्राप्त होता है तथा अन्न से ही सर्व प्राणियों के शरीर विकसित होते हैं, जन्म तथा मृत्यु का समय भले ही काल (क्षर पुरुष) से अधिक है, परन्तु फिर भी उत्पत्ति प्रलय तथा चौरासी लाख योनियों में यातना बनी रहती है।

मण्डल 10 सुक्त 90 मंत्र 3

एतावानस्य महिमातो ज्यायाँश्च पुरूषः।
पादो स्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामतं दिवि।।3।।

संधिछेद :- एतावान अस्य महिमा अतः ज्यायान् च पुरुषः पादः अस्य विश्वा भूतानि त्रि पाद् अस्य अमतम् दिवि। (3)

अनुवाद :- (अस्य) इस अक्षर पुरूष अर्थात् परब्रह्म की तो (एतावान्) इतनी ही (महिमा) प्रभुता है। (च) तथा (पुरूषः) वह परम अक्षर ब्रह्म अर्थात् पूर्ण ब्रह्म परमेश्वर तो (अतः) इससे भी (ज्यायान्) बड़ा है (विश्वा) समस्त (भूतानि) क्षर पुरूष तथा अक्षर पुरूष तथा इनके लोकों में तथा सत्यलोक तथा इन लोकों में जितने भी प्राणी हैं (अस्य) इस पूर्ण परमात्मा परम अक्षर पुरूष का (पादः) एक पैर मात्र है अर्थात् एक अंश मात्र है। (अस्य) इस परमेश्वर के (त्रि) तीन (दिवि) दिव्य लोक जैसे सत्यलोक– अलख लोक–अगम लोक (अमतम्) अविनाशी (पाद्) दूसरा पैर है अर्थात् जो भी सर्व ब्रह्मण्डों में उत्पन्न है वह सत्यपुरूष पूर्ण परमात्मा का ही अंश अर्थात् उन्हीं की रचना है।

भावार्थ :- इस उपरोक्त मंत्र 2 में वर्णित अक्षर पुरुष (परब्रह्म) की तो इतनी ही महिमा है तथा वह पूर्ण पुरुष कविर्देव तो इससे भी बड़ा है अर्थात् सर्वशक्तिमान है तथा सर्व ब्रह्मण्ड उसी के अंश मात्र पर ठहरे हैं। इस मंत्र में तीन लोकों का वर्णन इसलिए है क्योंकि चौथा अनामी(अनामय) लोक अन्य रचना से पहले का है। यही तीन प्रभुओं (क्षर पुरूष-अक्षर पुरूष तथा इन दोनों से अन्य परम अक्षर पुरूष) का विवरण श्रीमद्भगवत गीता अध्याय 15 संख्या 16-17 में तथा गीता अध्याय 7 श्लोक 24-25 तथा गीता अध्याय 8 श्लोक 18 से 22 में भी है इस प्रकार तीन अव्यक्त प्रभु हैं {इसी का प्रमाण आदरणीय गरीबदास साहेब जी कहते हैं कि :- *गरीब, जाके अर्ध रूम पर सकल पसारा, ऐसा पूर्ण ब्रह्म हमारा।।*

गरीब, अनन्त कोटि ब्रह्मण्ड का, एक रति नहीं भार। सतगुरु पुरुष कबीर हैं, कुल के सजनहार।।

इसी का प्रमाण आदरणीय दादू साहेब जी कह रहे हैं कि :-

जिन मोकुं निज नाम दिया, सोई सतगुरु हमार। दादू दूसरा कोए नहीं, कबीर सजनहार।।

इसी का प्रमाण आदरणीय नानक साहेब जी देते हैं कि :-

यक अर्ज गुफतम पेश तो दर कून करतार। हक्का कबीर करीम तू, बेएब परवरदिगार।।

(श्री गुरु ग्रन्थ साहेब, पृष्ठ नं. 721, महला 1, राग तिलंग)

कून करतार का अर्थ होता है सर्व का रचनहार, अर्थात् शब्द शक्ति से सर्व रचना करने के कारण शब्द स्वरूपी प्रभु। हक्का कबीर का अर्थ है सत् कबीर, करीम का अर्थ दयालु, परवरदिगार का अर्थ सर्व सुखदाई परमात्मा है।}

मण्डल 10 सुक्त 90 मंत्र 4

त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरूषः पादो स्येहाभवत्पुनः।
ततो विष्व ङ्व्यक्रामत्साशनानशने अभि।।4।।

संधिछेद :– त्रि पाद ऊर्ध्वः उदैत् पुरूषः पादः अस्य इह अभवत् पूनः ततः विश्वङ् व्यक्रामत् सः अशनानशने अभि। (4)

अनुवाद :– (पुरूषः) यह परम अक्षर ब्रह्म अर्थात् अविनाशी परमात्मा (ऊर्ध्वः) ऊपर (त्रि) तीन लोक जैसे सत्यलोक–अलख लोक–अगम लोक रूप (पाद) पैर अर्थात् ऊपर के हिस्से में (उदैत्) प्रकट होता है अर्थात् विराजमान है (अस्य) इसी परमेश्वर पूर्ण ब्रह्म का (पादः) एक पैर अर्थात् एक हिस्सा जगत रूप (पुनर्) फिर (इह) यहाँ (अभवत्) प्रकट होता है (ततः) इसलिए (सः) वह अविनाशी पूर्ण परमात्मा (अशनानशने) खाने वाले काल अर्थात् क्षर पुरूष व न खाने वाले परब्रह्म अर्थात् अक्षर पुरूष के भी (अभि)ऊपर (विश्वङ्)सर्वत्र (व्यक्रामत्)व्याप्त है अर्थात् उसकी प्रभुता सर्व ब्रह्माण्डों व सर्व प्रभुओं पर है वह कुल का मालिक है। जिसने अपनी शक्ति को सर्व के ऊपर फैलाया है।

भावार्थ :- यही सर्व सष्टि रचनहार प्रभु अपनी रचना के ऊपर के हिस्से में तीनों स्थानों (सतलोक, अलखलोक, अगमलोक) में तीन रूप में स्वयं प्रकट होता है अर्थात् स्वयं ही विराजमान है। यहाँ अनामी लोक का वर्णन इसलिए नहीं किया क्योंकि अनामी लोक में कोई रचना नहीं है तथा अनामी अर्थात् अकह लोक अन्य रचना से पूर्व का है। फिर कहा है कि उसी परमात्मा के सत्यलोक से बिछुड़ कर नीचे के ब्रह्म व परब्रह्म के लोक उत्पन्न होते हैं और वह पूर्ण परमात्मा खाने वाले ब्रह्म अर्थात् काल से (क्योंकि ब्रह्म/काल विराट शाप वश एक लाख मानव शरीर धारी प्राणियों को खाता है) तथा न खाने वाले परब्रह्म अर्थात् अक्षर पुरुष से (परब्रह्म प्राणियों को खाता नहीं, परन्तु जन्म-मत्यु, कर्मदण्ड ज्यों का त्यों बना रहता है) भी ऊपर सर्वत्र व्याप्त है। इस पूर्ण परमात्मा की प्रभुता सबके ऊपर है, कबीर परमेश्वर ही कुल का मालिक है। जिसने अपनी शक्ति को सर्व के ऊपर फैलाया है जैसे सूर्य अपने प्रकाश को सबके ऊपर फैलाकर प्रभावित करता है, ऐसे पूर्ण परमात्मा ने अपनी शक्ति रूपी रेंज(क्षमता) को सर्व ब्रह्मण्डों को नियंत्रित रखने के लिए सर्व ओर छोड़ा हुआ है। जैसे मोबाइल फोन का टावर एक देशीय होते हुए अपनी शक्ति अर्थात् मोबाइल फोन की रेंज(क्षमता) सर्वत्र अपनी सीमा में फैलाए रहता है। इसी प्रकार पूर्ण परमात्मा ने अपनी निराकार शक्ति को सर्वव्यापक किया है। जिससे पूर्ण परमात्मा सर्व ब्रह्मण्डों को एक स्थान पर बैठकर नियंत्रित रखता है।

उपरोक्त तीन प्रभुओं (1. क्षर पुरुष अर्थात् ब्रह्म, 2. अक्षर पुरुष अर्थात् परब्रह्म 3. परम अक्षर पुरुष अर्थात् पूर्ण ब्रह्म का प्रमाण पवित्र श्रीमद्भगवत् गीता अध्याय 15 श्लोक 16-17 तथा अध्याय 8 श्लोक 1,3 में भी है क्योंकि श्रीमद्भगवत् गीता जी पवित्र चारों वेदों का सारांश है।)

इसी का प्रमाण आदरणीय गरीबदास जी महाराज दे रहे हैं (अमतवाणी राग कल्याण)

तीन चरण चिन्तामणी साहेब, शेष बदन पर छाए।
माता, पिता, कुलन न बन्धु, ना किन्हें जननी जाये।।

मण्डल 10 सुक्त 90 मंत्र 5

तस्माद्विराळजायत विराजो अधि पूरूषः।
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः।।5।।

संधिछेद :– तस्मात् विराट अजायत विराजः अधि पुरुषः सः जातः अत्यरिच्यत पश्चात् भूमिम् अथः पुरः।(5)

अनुवाद :– (तस्मात्) उसके पश्चात् उस परमेश्वर सत्यपुरूष की शब्द शक्ति से (विराट्) विराट अर्थात्

ब्रह्म, जिसे क्षर पुरूष व काल भी कहते हैं (अजायत) उत्पन्न हुआ है (पश्चात्) इसके बाद (विराजः) विराट पुरूष अर्थात् काल भगवान से (अधि) बड़े (पुरूषः) परमेश्वर ने (भूमिम्) पथ्वी वाले लोक अर्थात् काल ब्रह्म तथा परब्रह्म के लोक को (अत्यरिच्यत) अच्छी तरह रचा (अथः) फिर (पुरः) अन्य छोटे–छोटे लोक (सः) वह (जातः) पूर्ण परमेश्वर ही उत्पन्न किया करता है अर्थात् उसी पूर्ण परमात्मा ने सर्व लोकों को स्थापित किया।

भावार्थ :- उपरोक्त मंत्र 4 में वर्णित तीनों लोकों (अगमलोक, अलख लोक तथा सतलोक) की रचना के पश्चात पूर्ण परमात्मा ने ज्योति निरंजन (ब्रह्म) की उत्पति की अर्थात् उसी सर्व शक्तिमान परमात्मा पूर्ण ब्रह्म कविर्देव(कबीर प्रभु) से ही विराट अर्थात् ब्रह्म(काल) की उत्पत्ति हुई। {यही प्रमाण गीता अध्याय 3 मन्त्र 14 में है कि अक्षर पुरूष से अर्थात् अविनाशी परमात्मा से ब्रह्म की उत्पत्ति हुई।} ***उस पूर्ण ब्रह्म ने भूमिम् अर्थात् पथ्वी तत्व से ब्रह्म तथा परब्रह्म के उसी ने छोटे-बड़े सर्व लोकों की रचना की। वह पूर्णब्रह्म इस विराट भगवान अर्थात् ब्रह्म से भी बड़ा है अर्थात् इसका भी मालिक है।***

इस ऋग्वेद मण्डल 10 सुक्त 90 मन्त्र 5 में स्पष्ट है कि ब्रह्म अर्थात् क्षर पुरूष/काल की उत्पति पूर्ण परमात्मा से हुई है। यही प्रमाण पूर्वोक्त अथर्ववेद काण्ड 4 में अनुवाक 1 मन्त्र 3 में है तथा यही प्रमाण श्री मद्भगवत् गीता अध्याय 3 मन्त्र 14-15 में है कि ब्रह्म की उत्पति अक्षरम् सर्वगतम् ब्रह्म अर्थात् अविनाशी सर्व व्यापक परमात्मा से हुई है।

मण्डल 10 सुक्त 90 मंत्र 15

सप्तास्यासन्परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कताः।
देवा यद्यज्ञं तन्वाना अबध्नन्पुरूषं पशुम्।।15।।

संधिछेद :– सप्त अस्य आसन् परिधयः त्रिसप्त समिधः कताः देवा यत् यज्ञम् तन्वानाः अबध्नन् पुरूषम् पशुम्।(15)

अनुवाद :– (सप्त) सात संख ब्रह्मण्ड तो परब्रह्म के तथा (त्रिसप्त) इक्कीस ब्रह्मण्ड काल ब्रह्म के (समिधः) कर्मदण्ड दुःख रूपी आग से दुःखी (कताः) करने वाले (परिधयः) गोलाकार घेरा रूप सीमा में (आसन्) विद्यमान हैं (यत्) जो (पुरूषम्) पूर्ण परमात्मा की (यज्ञम्) विधिवत् धार्मिक कर्म अर्थात् पूजा करता है (पशुम्) बलि के पशु रूपी काल के जाल में कर्म बन्धन में बंधे (देवा) भक्तात्माओं को (तन्वानाः) काल के द्वारा रचे अर्थात् फैलाये पाप कर्म बंधन जाल से (अबध्नन्) बन्धन रहित करता है अर्थात् बन्दी छुड़ाने वाला बन्दी छोड़ है।

भावार्थ :- वह पूर्ण परमात्मा सात संख ब्रह्मण्ड परब्रह्म के तथा इक्कीस ब्रह्मण्ड ब्रह्म के हैं जिन में गोलाकार सीमा में बंद पाप कर्मो की आग में जल रहे प्राणियों को वास्तविक पूजा विधि बता कर सही उपासना करवाता है जिस कारण से बली दिए जाने वाले पशु की तरह जन्म-मत्यु के काल (ब्रह्म) के खाने के लिए तप्त शिला के कष्ट से पीड़ित भक्तात्माओं को काल के कर्म बन्धन के फैलाए जाल को तोड़कर बन्धन रहित करता है अर्थात् बंध छुड़वाने वाला बन्दी छोड़ है। इसी का प्रमाण पवित्र यजुर्वेद अध्याय 5 मंत्र 32 में है कि कविरंघारिसि=(कविर्) कबिर परमेश्वर (अंघ) पाप का (अरि) शत्रु (असि) है अर्थात् पाप विनाशक कबीर है। बम्भारिसि=(बम्भारि) बन्धन का शत्रु अर्थात् बन्दी छोड़ कबीर परमेश्वर (असि) है।

मण्डल 10 सुक्त 90 मंत्र 16

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः।।16।।

संधिछेद :– यज्ञेन यज्ञम् अयजन्त देवाः तानि धर्माणि प्रथमानि आसन् ते ह नाकम् महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः।(16)

अनुवाद :– जो (देवाः) देव स्वरूप भक्तात्मायें (यज्ञेन) सत्य भक्ति धार्मिक कर्म के आधार से अर्थात् शास्त्रवर्णीत विधि अनुसार (यज्ञम्) यज्ञ रूपी धार्मिक (अयजन्त्) पूजा करते हैं (तानि) वे (धर्माणि) धार्मिक शक्ति सम्पन्न (प्रथमानि) मुख्य अर्थात् उत्तम (आसन्) हैं (ते ह) वे ही वास्तव में (महिमानः) महान भक्ति शक्ति युक्त होकर (साध्याः) सफल भक्त जन अपनी भक्ति कमाई के बल द्वारा(नाकम्) पूर्ण सुखदायक परमेश्वर को (सचन्त) भक्ति निमित कारण अर्थात् सत्भक्ति की कमाई से प्राप्त होते हैं, वे वहाँ चले जाते हैं। (यत्र) जहाँ पर (पूर्वे) पहले वाली सष्टि के (देवाः) देव स्वरूप भक्त आत्मायें (सन्ति) रहती हैं।

भावार्थ :- जो निर्विकार (जिन्होने मांस,शराब, तम्बाकू आदि नशीली व अखाद्य वस्तुओं का सेवन करना त्याग दिया है तथा अन्य बुराईयों से रहित है) देव स्वरूप भक्त आत्माऐं शास्त्रानुकूल साधना करते हैं वे भक्ति की कमाई से धनी होकर काल के ऋण से मुक्त होकर अपनी सत्य भक्ति की कमाई के कारण उस सर्व सुखदाई परमात्मा को प्राप्त करते हैं अर्थात् सत्यलोक में चले जाते हैं जहाँ पर सर्व प्रथम रची सष्टि के देव स्वरूप अर्थात् पाप रहित हंस आत्माऐं रहती हैं।

जैसे कुछ आत्माऐं तो काल (ब्रह्म) के जाल में फंस कर यहाँ आ गई, कुछ परब्रह्म के साथ सात संख ब्रह्मण्डों में आ गई, फिर भी असंखों आत्माऐं जिनका विश्वास पूर्ण परमात्मा में अटल रहा, जो पतिव्रता पद से नहीं गिरे वे वहीं रह गई, इसलिए यहाँ वही वर्णन पवित्र वेदों ने भी सत्य बताया है। यही प्रमाण गीता अध्याय 8 के श्लोक संख्या 8 से 10 में वर्णन है कि जो साधक उस पूर्ण परमात्मा (परम दिव्य पुरूष) की साधना अंतिम स्वांस तक करता है वह शास्त्र अनुकूल की गई साधना की कमाई के बल के कारण उस परमात्मा पूर्ण ब्रह्म को प्राप्त होता है अर्थात् उस परम दिव्य पुरूष के पास चला जाता है। इससे सिद्ध हुआ की तीन प्रभु हैं ब्रह्म - परब्रह्म - पूर्णब्रह्म। इन्हीं को 1. ब्रह्म=ईश - क्षर पुरुष 2. परब्रह्म=अक्षर पुरुष - अक्षर ब्रह्म तथा 3. पूर्ण ब्रह्म = परम अक्षर ब्रह्म - परमेश्वर - सतपुरुष आदि पर्यायवाची शब्दों से जाना जाता है।

यही प्रमाण ऋग्वेद मण्डल 9 सूक्त 96 मंत्र 16 से 20 में स्पष्ट है कि पूर्ण परमात्मा कविर्देव (कबीर परमेश्वर) शिशु रूप धारण करके प्रकट होता है तथा अपना निर्मल ज्ञान अर्थात् तत्वज्ञान (कविर्गीर्भिः) कबीर वाणी के द्वारा अपने अनुयाईयों को बोल-बोल कर वर्णन करता है। इस कारण से उस परमात्मा को महान कवि की उपाधी से जाना जाता है परन्तु वह कविर्देव वही परमात्मा होता है। वह कविर्देव (कबीर परमेश्वर) ब्रह्म (क्षर पुरुष) के धाम तथा परब्रह्म (अक्षर पुरुष) के धाम से भिन्न जो पूर्ण ब्रह्म (परम अक्षर पुरुष) का तीसरा ऋतधाम (सतलोक) है, उसमें नराकार में विराजमान है तथा सतलोक से चौथा अनामी लोक है, उसमें भी यही कविर्देव (कबीर परमेश्वर) अनामी पुरुष रूप में मनुष्य सदश अर्थात् नराकार में विराजमान है।

''पवित्र श्रीमद्देवी महापुराण में सष्टि रचना का प्रमाण''

(दुर्गा अर्थात् प्रकति तथा सदा शिव अर्थात् काल रूपी ब्रह्म की मैथुन क्रिया से ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव की उत्पत्ति)

पवित्र श्रीमद्देवी महापुराण तीसरा स्कन्द (गीताप्रैस गोरखपुर से प्रकाशित, अनुवाद कर्ता श्री हनुमान प्रसाद पोद्दार तथा चिमन लाल गोस्वामी जी, पष्ठ नं. 114 से)

पष्ठ नं. 114 से 118 तक विवरण है कि कितने ही आचार्य भवानी को सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण

करने वाली बताते हैं। वह प्रकृति कहलाती है तथा ब्रह्म के साथ अभेद सम्बन्ध है {जैसे पत्नी को अर्धांगनी भी कहते हैं अर्थात् दुर्गा, ब्रह्म (काल) की पत्नी है।} एक ब्रह्मण्ड की सृष्टि रचना के विषय में राजा श्री परिक्षित के पूछने पर श्री व्यास जी ने बताया कि मैंने श्री नारद जी से पूछा था कि हे देवर्षे ! इस ब्रह्मण्ड की रचना कैसे हुई ? मेरे इस प्रश्न के उत्तर में श्री नारद जी ने कहा कि मैंने अपने पिता श्री ब्रह्मा जी से पूछा था कि हे पिता श्री इस ब्रह्मण्ड की रचना आपने की या श्री विष्णु जी इसके रचयिता हैं या शिव जी ने रचा है ? सच-सच बताने की कृपा करें। तब मेरे पूज्य पिता श्री ब्रह्मा जी ने बताया कि बेटा नारद, मैंने अपने आपको कमल के फूल पर बैठा पाया था, मुझे ज्ञान नहीं, इस अगाध जल में मैं कहाँ से उत्पन्न हो गया? एक हजार वर्ष तक पृथ्वी का अन्वेषण करता रहा, कहीं जल का ओर-छोर नहीं पाया। फिर आकशवाणी हुई कि तप करो। एक हजार वर्ष तक तप किया। फिर सृष्टि करने की आकाशवाणी हुई। इतने में मधु और कैटभ नाम के दो राक्षए आए, उनके भय से मैं कमल का डण्ठल पकड़ कर नीचे उतरा। वहाँ भगवान विष्णु जी शेष शैय्या पर अचेत पड़े थे। उनमें से एक स्त्री (प्रेतवत प्रवेश दुर्गा) निकली। वह आकाश में आभूषण पहने दिखाई देने लगी। तब भगवान विष्णु होश में आए। अब मैं तथा विष्णु जी दो थे। इतने में भगवान शंकर भी आ गए। देवी ने हमें विमान में बैठाया तथा ब्रह्म लोक में ले गई। वहाँ एक ब्रह्मा, एक विष्णु तथा एक शिव और देखा। (यह ब्रह्म ही तीन रूप बना कर ऊपर लीला कर रहा है। देखें एक ब्रह्मण्ड का चित्र) फिर एक देवी देखी, उसे देख कर विष्णु जी ने विवेक पूर्वक निम्न वर्णन किया (ब्रह्म काल ने भगवान विष्णु को चेतना प्रदान कर दी, उसको अपने बाल्यकाल की याद आई तब बचपन की कहानी सुनाई)।

पृष्ठ नं. 119-120 पर भगवान विष्णु जी ने श्री ब्रह्मा जी तथा श्री शिव जी से कहा कि यह हम तीनों की माता है, यही जगत् जननी प्रकृति देवी है। मैंने इस देवी को तब देखा था जब मैं छोटा-सा बालक था, यह मुझे पालने में झुला रही थी।

तीसरा स्कंद पृष्ठ नं. 123 पर श्री विष्णु जी ने श्री दुर्गा जी की स्तुति करते हुए कहा - तुम शुद्ध स्वरूपा हो, यह सारा संसार तुम्हीं से उद्भासित हो रहा है, मैं (विष्णु), ब्रह्मा और शंकर हम सभी तुम्हारी कृपा से ही विद्यमान हैं। हमारा आविर्भाव (जन्म) और तिरोभाव (मृत्यु) हुआ करता है अर्थात् हम तीनों देवता नाशवान हैं, केवल तुम ही नित्य (अविनाशी) हो, जगत जननी हो, प्रकृति देवी हो।

भगवान शंकर बोले - देवी यदि महाभाग विष्णु तुम्हीं से प्रकट (उत्पन्न) हुए हैं तो उनके बाद उत्पन्न होने वाले ब्रह्मा भी तुम्हारे ही बालक हुए। फिर मैं तमोगुणी लीला करने वाला शंकर क्या तुम्हारी संतान नहीं हुआ अर्थात् मुझे भी उत्पन्न करने वाली तुम्हीं हो।

विचार करें :- उपरोक्त विवरण से सिद्ध हुआ कि श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी, श्री शिव जी नाशवान हैं। मृत्युंजय (अजर-अमर) व सर्वेश्वर नहीं हैं तथा दुर्गा (प्रकृति) के पुत्र हैं तथा काल ब्रह्म (सदाशिव) इनका पिता है।

तीसरा स्कंद पृष्ठ नं. 125 पर ब्रह्मा जी ने प्रश्न किया कि हे माता! वेदों में जो ब्रह्म कहा है वह आप ही हैं या कोई अन्य प्रभु है ? इसके उत्तर में यहाँ तो दुर्गा कह रही है कि मैं तथा ब्रह्म एक ही हैं। फिर इसी स्कंद के पृष्ठ नं. 129 पर कहा है कि अब मेरा कार्य सिद्ध करने के लिए विमान पर बैठ कर तुम लोग शीघ्र पधारो (जाओ)। कोई कठिन कार्य उपस्थित होने पर जब तुम मुझे याद करोगे, तब मैं सामने आ जाऊँगी। देवताओं मेरा (दुर्गा का) तथा ब्रह्म का ध्यान तुम्हें सदा करते

रहना चाहिए। हम दोनों का स्मरण करते रहोगे तो तुम्हारे कार्य सिद्ध होने में तनिक भी संदेह नहीं है।

उपरोक्त व्याख्या से स्वसिद्ध है कि दुर्गा (प्रकति) तथा ब्रह्म (काल) ही तीनों देवताओं के माता-पिता हैं तथा ये तीनों देवता, ब्रह्मा, विष्णु व शिव जी नाशवान हैं व पूर्ण शक्ति युक्त नहीं हैं।

तीनों देवताओं (श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी, श्री शिव जी) का विवाह दुर्गा (प्रकति देवी) ने किया। पष्ठ नं. 128-129 पर, तीसरे स्कंद में।

गीता अध्याय नं. 7 का श्लोक नं. 12

ये चैव सात्त्विका भावा राजसास्तामसाश्च ये।
मत्त एवेति तान्विद्धि न त्वहं तेषु ते मयि। १२।

ये, च, एव, सात्विकाः, भावाः, राजसाः, तामसाः, च, ये,
मतः, एव, इति, तान्, विद्धि, न, तु, अहम्, तेषु, ते, मयि।।12।।

अनुवाद : (च) और (एव) भी (ये) जो (सात्विकाः) सत्वगुण विष्णु जी से स्थिति (भावाः) भाव हैं और (ये) जो (राजसाः) रजोगुण ब्रह्मा जी से उत्पत्ति (च) तथा (तामसाः) तमोगुण शिव से संहार हैं (तान्) उन सबको तू (मतः,एव) मेरे द्वारा सुनियोजित नियमानुसार ही होने वाले हैं (इति) ऐसा (विद्धि) जान (तु) परंतु वास्तवमें (तेषु) उनमें (अहम्) मैं और (ते) वे (मयि) मुझमें (न) नहीं हैं।(12)

केवल हिन्दी अनुवाद : और भी जो सत्वगुण विष्णु जी से स्थिति भाव हैं और जो रजोगुण ब्रह्मा जी से उत्पत्ति तथा तमोगुण शिव से संहार हैं उन सबको तू मेरे द्वारा सुनियोजित नियमानुसार ही होने वाले हैं ऐसा जान परंतु वास्तवमें उनमें मैं और वे मुझमें नहीं हैं।(12)

भावार्थ :- गीता ज्ञान दाता ब्रह्म कह रहा है कि तीनों देवताओं (रजगुण ब्रह्मा, सतगुण विष्णु तथा तमगुण शिव) द्वारा जो भी उत्पति, स्थिति तथा संहार हो रहा है इसका निमित्त मैं ही हूँ। परन्तु मैं इनसे दूर हूँ। कारण है कि काल को शापवश एक लाख प्राणियों का आहार करना होता है। इसलिए मुख्य कारण अपने आप को कहा है तथा काल भगवान तीनों देवताओं से भिन्न ब्रह्म लोक में रहता है तथा इक्कीसवें ब्रह्मण्ड में रहता है। इसलिए कहा है कि मैं उनमें तथा वे मुझ में नहीं हैं।

श्रीमद्देवीभागवत से लेख :-(प्रथम स्कन्ध अध्याय 23,28,29,31,38,39, 41,42 पष्ठ 1 से 8)

(प्रथम स्कन्ध अध्याय 1 पष्ठ 23 से संक्षिप्त वर्णन) श्री सूत जी ने कहा :- पौराणिकों एवं वैदिकोंका कथन है तथा यह भलीभाँति विदित भी है कि ब्रह्मा जी इस अखिल जगत के सष्टा हैं। साथ ही वे यह भी कहते हैं कि ब्रह्माजी का जन्म भगवान् विष्णु के नाभिकमल से हुआ है। फिर ऐसी स्थिति में ब्रह्माजी जी स्वतन्त्र सष्टा कैसे ठहरे? भगवान् विष्णु को भी स्वतन्त्र सष्टा नहीं कह सकते। वे शेषनागकी शय्यापर सोये हुए थे। नाभिसे कमल निकला और उसपर ब्रह्मा जी प्रकट हुए। किंतु वे श्रीहरि भी तो किसी आधारपर अवलम्बित थे। उनके आधारभूत क्षीरसमुद्र को भी स्वतन्त्र सष्टा नहीं माना जा सकता; क्योंकि वह रस है। रस बिना पात्र के ठहरता नहीं, कोई न कोई रसका आधार रहना ही चाहिये। अतएव चराचर जगत् की आधारभूता भगवती जगदम्बिका ही सष्टा रूप में निश्चित हुई।

(प्रथम स्कन्ध, अध्याय 8 पष्ठ 41 पर) ऋषियों ने पूछा - महाभाग सूत जी! इस कथा प्रसङ्गको जानकर तो हमें बड़ा ही आश्चर्य हो रहा है; क्योंकि वेद, शास्त्र, पुराण और विज्ञजनों ने सदा यही निर्णय किया है कि ब्रह्मा, विष्णु और शंकर–ये ही तीनों सनातन देवता हैं। इनसे बढ़कर इस ब्रह्माण्ड में दूसरा कोई देवता है ही नहीं।

ब्रह्माजी सारे संसार की सष्टि करते हैं। जगत् का संरक्षण भगवान् विष्णु के अधीन रहता है। प्रलय के अवसर पर शंकर जी उसका संहार किया करते हैं। इस जगत्प्रपञ्च के ये ही तीनों देवता कारण हैं। ये वास्तव में एक ही हैं, किंतु कार्यवश सत्त्व, रज और तम आदि गुणों को स्वीकार करके ब्रह्मा, विष्णु एवं शंकर नाम से विख्यात होते हैं। इन तीनों में परमपुरूष भगवान् विष्णु सबसे श्रेष्ठ हैं। वे जगत् के स्वामी और आदिदेव कहलाते हैं। उनमें सब कुछ करने की योग्यता है। दूसरा कोई भी देवता उन अतुल तेजस्वी श्रीविष्णु के समान शक्तिशाली नहीं है। फिर ऐसे सर्वसमर्थ परमप्रभु भगवान् श्री विष्णु योगमाया के अधीन होकर कैसे सो गये? महाभाग! हमें यह महान् संदेह हो रहा है! इस मङ्गलमय प्रसङ्ग को सुनाने की कपा कीजिये। सुव्रत! आप पहले जिसकी चर्चा कर चुके हैं तथा जिसने परमप्रभु विष्णु पर भी अधिकार जमा लिया, वह कौन–सी शक्ति है? कहाँ से उसकी सष्टि हुई, उसमें कैसे इतना पराक्रम हो गया और क्या उसका परिचय है – सब बताने की कपा करें।

सूत जी कहते हैं – मुनिवरो! चराचर सहित इस त्रिलोकीमें कौन ऐसा है, जो इस संदेहको दूर कर सके। ब्रह्माजी के पुत्र नारद, कपिल आदि दिव्य महापुरूष भी इस प्रश्न का समाधान करने में निरूपाय हो जाते हैं। महानुभावो ! यह प्रश्न बड़ा ही गहन और विचारणीय है। इसके सम्बन्ध में मैं क्या कह सकता हूँ।

(पष्ठ 42) विद्वान पुरूष ऐसा कहते हैं और पुराणों ने भी घोषणा की है कि ब्रह्मा में सष्टि करने की शक्ति है और विष्णु पालन करने में समर्थ हैं तथा शंकर संहार करने में कुशल है। सूर्य जगत् को प्रकाश देते हैं। शेष और कच्छप पथ्वी धारण किये रहते हैं। अग्नि में जलाने की और पवन में हिलाने–डुलाने की शक्ति है। सबमें जो शक्ति विराजमान है, वही आद्याशक्ति है। उसी के प्रभाव से शिव भी शिवता को प्राप्त होते हैं। जिसपर उस शक्ति की कपा न हुई, वह कोई भी हो, शक्तिहीन हो जाता है। बुधजन उसे असमर्थ कहते हैं। सबमें व्यापक रहने वाली जो आद्याशक्ति है, उसी का 'ब्रह्म' इस नाम से निरूपण किया गया है। अतएव विद्वान् पुरूषों को चाहिये कि भलीभाँति विचार करके सदा उसी शक्तिकी उपासना करे। विष्णु में सात्त्विकी शक्ति व्याप्त है। यदि वह उनसे अलग हो जाए तो विष्णु कुछ भी न कर सकें। ब्रह्मा में जो राजसी शक्ति है, उसके बिना वे सष्टि–कार्य में अयोग्य हैं। शिव में जो तामसी शक्ति है, उसी के प्रभाव से वे संहारलीला करते हैं। मनोयोग–पूर्वक इस प्रकार बार–बार विचार करके सारी बात समझ लेनी चाहिये। वही आद्याशक्ति इस अखिल ब्रह्माण्ड को उत्पन्न करती और उसका पालन भी करती है। वही इच्छा होने पर इस चराचर जगत् का संहार भी करने में संलग्न हो जाती है। **ब्रह्मा, विष्णु, शंकर, इन्द्र, अग्नि और पवन-ये सभी किसी प्रकार भी स्वतन्त्ररूप से अपने-अपने कार्य का सम्पादन नहीं कर सकते; किंतु जब वह आद्याशक्ति इन्हें सहयोग देती है, तभी ये अपने कार्य में सफल होते हैं।** अतः इन कार्य–कारणों से यही प्रत्यक्ष सिद्ध होता है कि वह शक्ति ही सर्वोपरि है।

(पहला स्कन्ध अध्याय 6 पष्ठ 38-39) ब्रह्मा जी के स्तुति करने पर भी भगवान् विष्णु की नींद नहीं टूटी। उन पर योगनिद्रा का पूरा अधिकार जम चुका था। तब ब्रह्मा जी सोचने लगे–'अब श्रीहरि शक्ति के प्रभाव से पूर्ण प्रभावित होकर खूब गाढ़ी नींद में मग्न हो गये हैं।

इससे सिद्ध हो गया, ये भगवती योगनिद्रा इन लक्ष्मीकान्त भगवान् विष्णु की भी अधिष्ठात्री हैं। लक्ष्मी जी भी इन्हीं के अधीन हो गयीं; क्योंकि पतिदेव विष्णु ही जब अधीन हो गये, तब उनकी अलग सत्ता कहाँ। इससे निश्चित होता है कि यह अखिल ब्रह्माण्ड भगवती योगनिद्रा के अधीन है। मैं (ब्रह्मा), विष्णु, शंकर, सावित्री, लक्ष्मी और उमा–सभी इन्हीं योगनिद्रा के शासनसूत्र में बँधे हैं।

ब्रह्मा जी बोले - देवी! मैं जान गया, तुम निश्चय ही इस जगत् की कारणस्वरूपा हो। सम्पूर्ण वेद–वचन इसे प्रमाणित कर रहे हैं। यही कारण है कि चराचर जगत् को प्रबुद्ध करने वाले परमपुरूष भगवान् विष्णु आज गाढ़ी नींद में मग्न हैं।

(पहला स्कन्ध अध्याय 4 पष्ठ 28-29) नारदजी ने कहा - महाभाग व्यासजी! तुम इस विषय में जो पूछ रहे हो, ठीक यही प्रश्न मेरे पिताजी ने भगवान् श्रीहरि से किया था। देवाधिदेव भगवान् जगत् के स्वामी हैं। लक्ष्मी जी

उनकी सेवा में उपस्थित रहती हैं। दिव्य कौस्तुभमणि उनकी शोभा बढ़ाती है। वे शङ्ख, चक्र और गदा लिये रहते हैं। पीताम्बर धारण करते हैं। चार भुजाएँ हैं। वक्षःस्थलपर श्रीवत्सका चिन्ह चमकता रहाता है। वे चराचर जगत् के आश्रयदाता हैं, जगत्गुरु एवं देवताओं के भी देवता हैं। ऐसे जगत्प्रभु भगवान् श्रीहरि महान् तप कर रहे थे। उनकी समाधि लगी थी। यह देखकर मेरे पिता जी ब्रह्माजी को बड़ा आश्चर्य हुआ। अतः उन्होंने उनसे जानने की इच्छा प्रकट की।

ब्रह्मा जी ने पूछा-प्रभो! आप देवताओं के अध्यक्ष, जगत् के स्वामी और भूत, भविष्य एवं वर्तमान—**सभी जीवों के एकमात्र शासक हैं। भगवन्! फिर आप क्यों तपस्या कर रहे हैं और किस देवता की आराधना में ध्यानमग्न हैं?** मुझे असीम आश्चर्य तो यह हो रहा हैं कि आप देवश्वर एवं सारे संसार के शासक होते हुए भी समाधि लगाये बैठे हैं।

ब्रह्माजी के ये विनीत वचन सुनकर भगवान् श्रीहरि (श्री विष्णु) उनसे कहने लगे-'ब्रह्मन्! सावधान होकर सुनो। मैं अपने मनका विचार व्यक्त करता हूँ। देवता, दानव और मानव—सब यही जानते हैं कि तुम सष्टि करते हो, मैं पालन करता हूँ और शंकर संहार किया करते हैं, किन्तु फिर भी वेद के पारगामी पुरूष अपनी युक्ति से यह सिद्ध करते हैं कि रचने, पालने और संहार करने की यह योग्यता जो हमें मिली है, इसकी अधिष्ठात्री शक्तिदेवी हैं। वे कहते हैं कि संसार की सष्टि करनेके लिये **तुममें राजसी शक्तिका संचार हुआ है, मुझे सात्त्विकी शक्ति मिली है और रूद्र में तामसी शक्ति का अविर्भाव हुआ है। उस शक्ति के अभाव में तुम इस संसार की सष्टि नहीं कर सकते, मैं पालन करने में सफल नहीं हो सकता और रूद्रसे संहारकार्य होना भी सम्भव नहीं।** ब्रह्माजी! हम सभी उस शक्ति के सहारे ही अपने कार्य में सदा सफल होते आये हैं। सुव्रत! प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों उदाहरण मैं तुम्हारे सामने रखता हूँ, सुनो। यह निश्चित बात है कि उस शक्ति के अधीन होकर ही मैं (प्रलयकालमें) इस शेषनाग की शय्यापर सोता हूँ और सष्टि करने का अवसर आते ही जग जाता हूँ। **मैं सदा तप करने में लगा रहता हूँ। उस शक्ति के शासन से कभी मुक्त नहीं रह सकता। कभी अवसर मिला तो लक्ष्मी के साथ सुख-पूर्वक समय बिताने का सौभाग्य प्राप्त होता है। मैं कभी तो दानवों के साथ युद्ध करता हूँ।** अखिल जगत् को भय पहुँचानेवाले दैत्यों के विकराल शरीरोंको शान्त करना मेरा परम कर्तव्य हो जाता है।

मुझे सब प्रकारसे शक्ति के अधीन होकर रहना पड़ता है। उन्हीं भगवती शक्ति का मैं निरन्तर ध्यान किया करता हूँ। ब्रह्माजी! मेरी जानकारी में इन भगवती शक्ति से बढ़कर दूसरे कोई देवता नहीं हैं।

(पहला स्कन्ध अध्याय 5 पष्ठ 31) सूतजी कहते हैं - इस प्रकार ब्रह्माजी के कहने पर उसी क्षण वम्री ने प्रत्यञ्चा को, जो नीचे भूमि पर थी, खा लिया। फिर तो बन्धन—मुक्त हो गया। प्रत्यञ्चा कटते ही दूसरी ओर की डोरी भी वैसे ही ढीली पड़ गयी। उस समय बड़े जोर से भयंकर शब्द हुआ, जिससे देवता भयभीत हो उठे। चारों ओर अन्धकार छा गया। सूर्य की प्रभा क्षीण हो गयी। फिर तो सभी देवता घबराकर सोचने लगे—'अहो, ऐसे भयंकर समय में पता नहीं क्या होने वाला है।' ऋषियों! समस्त देवता यों सोच रहे थे; इतने में पता नहीं, भगवान् विष्णुका मस्तक कुण्डल और मुकुटसहित कहाँ उड़कर चला गया। कुछ समय के बाद जब घोर अन्धकार शान्त हुआ, तब भगवान् शंकर और ब्रह्मा जी ने देखा श्रीहरिका श्रीविग्रह बिना मस्तक का पड़ा हुआ है। यह बड़े आश्चर्य की बात सामने आ गयी।

ब्रह्माजी ने कहा - कालभगवान् ने जैसा विधान रच रखा है, वैसा अवश्य ही होता है — यह बिलकुल असंदिग्ध बात है। जैसे बहुत पहले काल की प्रेरणा से भगवान् शंकर ने मेरा ही मस्तक काट दिया था। उसी तरह आज भगवान् विष्णु का भी मस्तक धड़ से अलग होकर समुद्र में जा गिरा है।

श्री देवी भागवत् पुराण से निष्कर्ष :-(1)अध्याय 1 प्रथम स्कन्ध पष्ठ 23 पर लिखे विवरण से स्पष्ट है कि श्री ब्रह्मा, श्री विष्णु तथा श्री शिव जी सष्टा नहीं है। सर्व शक्तिमान नहीं हैं।

2. श्री सूत जी अर्थात् पुराण ज्ञान वक्ता दुर्गा को सष्टा कह रहा है तथा यह भी कह रहा है कि जगदम्बा (दुर्गा) की उत्पति के विषय में कपिल जी तथा नारद जी भी नहीं जानते, मैं क्या

उत्तर दे सकता हूँ। इस से सिद्ध है कि पुराण वक्ता भी अल्पज्ञ है। इसलिए उसका ज्ञान जगदम्बा (दुर्गा) संष्टा है मान्य नहीं है।

3. प्रथम स्कन्ध अध्याय 4 पष्ठ 28-29 वाले लेख से स्पष्ट है कि (क) रजगुण ब्रह्मा, सतगुण विष्णु तथा तमगुण शिव जी है।(ख) श्री विष्णु जी भी दुर्गा देवी की पूजा करता है। (ग) श्री विष्णु जी तप करता है। (घ) श्री विष्णु जी स्वीकार करता है कि मैं महा दुःखी हूँ क्योंकि राक्षसों के साथ युद्ध करने में लगा रहता हूँ। कभी तप करके अपनी बैट्री चार्ज करता हूँ बहुत कम समय ही लक्ष्मी के साथ रहने को मिलता है। (ङ) श्री विष्णु जी दुर्गा देवी को सबसे बड़ा देवता (परमात्मा) मानते हैं। जो श्री विष्णु जी की अल्पज्ञता का प्रमाण है।

4. पहला स्कन्ध अध्याय 5 पष्ठ 31 वाले विवरण से स्पष्ट है कि ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव भी काल भगवान के आधीन हैं। वह इनको जो नाच नचाना चाहता है नचाता है।

5. पहला स्कन्ध अध्याय 8 पष्ठ 41 वाले विवरण में स्पष्ट है कि ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव समर्थ नहीं हैं।

''पवित्र शिव महापुराण में संष्टि रचना का प्रमाण''

(दुर्गा अर्थात् प्रकति तथा सदा शिव अर्थात् काल रूपी ब्रह्म की मैथुन क्रिया से ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव की उत्पत्ति)

यही प्रमाण पवित्र श्री शिव पुराण गीता प्रैस गोरखपुर से प्रकाशित, अनुवादकर्त्ता श्री हनुमान प्रसाद पोद्दार, इसके अध्याय 6 रूद्र संहिता, पष्ठ नं. 100 पर कहा है कि जो मूर्ति रहित परब्रह्म है, उसी की मूर्ति भगवान सदाशिव है। इनके शरीर से एक शक्ति निकली, वह शक्ति अम्बिका, प्रकति (दुर्गा), त्रिदेव जननी (श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी तथा श्री शिव जी को उत्पन्न करने वाली माता) कहलाई। जिसकी आठ भुजाऐं हैं। वे जो सदाशिव हैं, उन्हें शिव, शंभु और महेश्वर भी कहते हैं। (पष्ठ नं. 101 पर) वे अपने सारे अंगों में भस्म रमाये रहते हैं। उन काल रूपी ब्रह्म ने एक शिवलोक नामक क्षेत्र का निर्माण किया। फिर दोनों ने पति-पत्नी का व्यवहार किया जिससे एक पुत्र उत्पन्न हुआ। उसका नाम विष्णु रखा (पष्ठ नं. 102)।

फिर रूद्र संहिता अध्याय नं. 7 पष्ठ नं. 103 पर ब्रह्मा जी ने कहा कि मेरी उत्पत्ति भी भगवान सदाशिव (ब्रह्म-काल) तथा प्रकति (दुर्गा) के संयोग से अर्थात् पति-पत्नी के व्यवहार से ही हुई। फिर मुझे बेहोश कर दिया।

फिर रूद्र संहिता अध्याय नं. 9 पष्ठ नं. 110 पर कहा है कि इस प्रकार ब्रह्मा, विष्णु तथा रूद्र इन तीनों देवताओं में गुण हैं, परन्तु शिव (काल-ब्रह्म) गुणातीत माने गए हैं।

यहाँ पर चार सिद्ध हुए अर्थात् सदाशिव (काल-ब्रह्म) व प्रकति (दुर्गा) से ही उत्पन्न हुए हैं। तीनों भगवानों (श्री ब्रह्मा, श्री विष्णु तथा श्री शिव जी) की माता जी श्री दुर्गा जी तथा पिता जी श्री ज्योति निरंजन (ब्रह्म) है। यही तीनों प्रभु रजगुण-ब्रह्मा जी, सतगुण-विष्णु जी, तमगुण-शिव जी हैं।

कप्या पढ़ें अन्य प्रमाण जो स्वसम वेद (कविर्वाणी) में वर्णित। अन्तर इतना है कि पुराणों के वक्ता व ज्ञान दाता तथा लेखक तत्वज्ञान से अपरिचित थे। जिस कारण से काल ब्रह्म (क्षर पुरूष अर्थात् ज्योति निरंजन) के जाल को नहीं समझ सके। यही कारण रहा की सर्व ऋषिजन व देवता काल ब्रह्म को विष्णु या शिव या ब्रह्मा कह कर अखिल विश्व का संष्टा बताते रहे। जो ऋषि साधक उस काल ब्रह्म को शिव रूप में ईष्ट देव मानकर उपासना करता था। उसने श्री ब्रह्मा जी द्वारा

बताए सष्टि रचना के अधूरे ज्ञान के आधार पर श्री शिव पुराण की रचना की जिसमें वक्ता व ज्ञान दाता दोनों विचलित हैं। एक तरफ तो कहा है कि भगवान शिव ही श्री ब्रह्मा रूप धारण करके सष्टि करता है। विष्णु रूप धारण करके स्थिति बनाए रखता है या श्री शिव रूप धारण करके संहार करता है। फिर लिखा है (पष्ठ 19) जिन से ब्रह्मा, विष्णु तथा रूद्र (शिव) आदि पहले प्रकट हुए हैं। वे ही महादेव, सर्वज्ञ एवं सम्पूर्ण जगत के स्वामी हैं। शिव पुराण में ही फिर लिखा है (पष्ठ 86) :- हमने सुना है कि भगवान शिव शीघ्र प्रसन्न हो जाते हैं। वे महान दयालु हैं। ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश- ये तीनो देवता शिव के ही अंग से उत्पन्न हुए हैं। शिव पुराण में ही लिखा है (पष्ठ 131 पर) श्री ब्रह्मा जी ने कहा :- मुनि श्रेष्ठ नारद! इस प्रकार मैंने सष्टि क्रम का तुम से वर्णन किया है। ब्रह्माण्ड का यह सारा भाग भगवान् शिव की आज्ञा से मेरे द्वारा रचा गया है। भगवान शिव को परब्रह्म परमात्मा कहा गया है। मैं, विष्णु तथा रूद्र- ये तीनों देवता उन्हीं के भाग बताए गये हैं। वे मनोरम शिव लोक में शिवा (दुर्गा) के साथ स्वच्छन्द विहार करते हैं। भगवान् शिव स्वतन्त्र परमात्मा हैं। निगुर्ण और सर्गुण भी वे ही हैं। इसी शिव पुराण में (पष्ठ 115 पर) श्री ब्रह्मा जी ने कहा है कि नारद! जो स्फटिक मणी के समान निर्मल, निष्कल (आकार रहित) अविनाशी परम देव है, जो ब्रह्मा, रूद्र और विष्णु आदि देवताओं की भी दष्टि में नहीं आते। जिनकी शिवत्व नाम से ख्याती है। जो शिव लिंग के रूप में प्रतिष्ठित है। उन भगवान शिव का शिव लिंग के मस्तक पर प्रणव मन्त्र (ओम्) से ही पूजन करें।

➻ उपरोक्त विवरण श्री शिव पुराण से है। जिसमें स्पष्ट है कि श्री ब्रह्मा, श्री विष्णु तथा श्री शिव जी से भिन्न कोई अन्य प्रभु भी है। परन्तु ऋषिजन उस अन्य प्रभु (काल ब्रह्म) से अपरिचित है। इसीलिए कभी ब्रह्मा जी को सष्टा बताते हैं कभी विष्णु जी को तथा कभी शिव को सष्टा बताते हैं। श्री ब्रह्मा, श्री विष्णु तथा श्री शिव जी भी काल ब्रह्म (क्षर पुरूष) से अपरिचित हैं। पूर्वोक्त सष्टि रचना से आप पाठकों को काल ब्रह्म (क्षर पुरूष) परब्रह्म (अक्षर पुरूष) तथा इन से भी भिन्न परम अक्षर ब्रह्म अर्थात् पूर्ण परमात्मा का ज्ञान हुआ। कपया पढ़ें श्री शिव पुराण में सष्टि रचना का सांकेतिक ज्ञान जो श्री ब्रह्मा जी ने पूर्ण परमात्मा से सुना था। परन्तु काल ब्रह्म ने श्री ब्रह्मा जी को आकाशवाणी आदि करके भ्रम में डाल कर गलत ज्ञान से परिपूर्ण कर दिया जो पुराणों में वर्णित है। श्री शिव पुराण में श्री ब्रह्मा जी ने कुछ ज्ञान पूर्ण परमात्मा सतसुकत जी से सुना हुआ तथा कुछ अपने अनुभव का लिखा है तथा श्री ब्रह्मा जी से सुना हुआ ज्ञान अन्य वक्ताओं ने जो ज्ञान कहा है, लिखा गया है। यही दशा अन्य सत्तरह पुराणों के ज्ञान की है। श्री ब्रह्मा जी ने कुछ सत्य तथा कुछ असत्य तथा कुछ अपना अनुभव तथा कुछ पूर्ण परमात्मा के मुख से सुना ज्ञान पुराणों में कहा है। फिर भी यथार्थ ज्ञान को समझने व परखने के लिए पुराणों व वेदों तथा श्री मद्भगवत् गीता जी का ज्ञान बहुत सहयोगी है। कपया आगे पढ़ें श्री शिव पुराण से लेख :-

संक्षिप्त शिवपुराण, रूद्रसंहिता पष्ठ 99 से 110 :-

ब्रह्माजीने कहा - ब्रह्मन्! देवशिरोमणे! तुम सदा समस्त जगत् के उपकार में ही लगे रहते हो। तुमने लोगों के हित की कामना से यह बहुत उत्तम बात पूछी है।

जिस समय समस्त चराचर जगत् नष्ट हो गया था, सर्वत्र केवल अंधकार ही अंधकार था। न सूर्य दिखायी देते थे न चन्द्रमा। अन्यान्य ग्रहों और नक्षत्रों का भी पता नहीं था। न दिन होता था न रात; अग्नि, पथ्वी, वायु और जल की भी सत्ता नहीं थी।

उस समय 'तत्सद्ब्रह्म' इस श्रुति में जो 'सत्' सुना जाता है, एकमात्र वही शेष था। जिस परब्रह्म के विषय में ज्ञान और अज्ञान से पूर्ण उक्तियोंद्वारा इस प्रकार (ऊपर बताये अनुसार) विकल्प किये जाते हैं; उसने कुछ काल के बाद (सष्टिका समय आने पर) द्वितीय की इच्छा प्रकट की–उसके भीतर एकसे अनेक होने का संकल्प उदित हुआ। तब उस निराकार परमात्मा ने अपनी लीलाशक्ति से अपने लिये मूर्ति (आकार) की कल्पना की।

जो मूर्तिरहित परम ब्रह्म है, उसीकी मूर्ति (चिन्मय आकार) भगवान् सदाशिव हैं। अर्वाचीन और प्राचीन विद्वान् उन्हीं को ईश्वर कहते हैं। उस समय एकाकी रहकर स्वेच्छानुसार विहार करनेवाले **उन सदाशिव ने अपने विग्रहसे स्वयं ही एक स्वरूपभूता शक्ति की सष्टि की,** जो उनके अपने श्रीअंग से कभी अलग होनेवाली नहीं थी। **उस पराशक्ति को प्रधान, प्रकत्ति, गुणवती, माया, बुद्धितत्त्वकी जननी** तथा विकाररहित बताया गया है। **वह शक्ति अम्बिका कही गयी है। उसीको प्रकति, सर्वेश्वरी, त्रिदेवजननी, नित्या, और मूलकारण भी कहते हैं। सदाशिवद्वारा प्रकट की गयी उस शक्तिके आठ भुजाएँ हैं।**

नाना प्रकार के आभूषण उसके श्रीअंगोंकी शोभा बढ़ाते हैं। वह देवी नाना प्रकार की गतियों से सम्पन्न है और अनेक प्रकारके अस्त्र–शस्त्र धारण करती है। एकाकिनी होने पर भी वह माया संयोगवशात् अनेक हो जाती है।

वे जो सदाशिव हैं, उन्हें परमपुरूष, ईश्वर, शिव, शम्भु और महेश्वर कहते हैं। वे अपने सारे अंगों में भस्म रमाये रहते हैं। उन कालरूपी ब्रह्मने एक ही समय शक्ति के साथ 'शिवलोक' नामक क्षेत्र का निर्माण किया था। उस उत्तम क्षेत्र को ही काशी कहते हैं। वह परम निर्वाण या मोक्ष का स्थान है, जो सबसे ऊपर विराजमान है। **वे प्रिया-प्रियतमरूप शक्ति और शिव, जो परमानन्द स्वरूप हैं, उस मनोरम क्षेत्र में नित्य निवास करते हैं।** काशीपुरी परमानन्दरूपिणी है। मुने! शिव और शिवाने प्रलयकालमें भी कभी उस क्षेत्र को अपने सांनिध्यसे मुक्त नहीं किया है।

देवर्षे! एक समय उस आनन्दवन में रमण करते हुए शिवा और शिव के मन में यह इच्छा हुई कि किसी दूसरे पुरुष की भी सष्टि करनी चाहिए, जिसपर यह सष्टि–संचालनका महान् भार रखकर हम दोनों केवल काशीमें रहकर इच्छानुसार विचरें और निर्वाण धारण करें।

ऐसा निश्चय करके शक्तिसहित सर्वव्यापी परमेश्वर शिवने अपने वामभाग के दसवें अंगपर अमत मल दिया। फिर तो वहाँ से एक पुरूष प्रकट हुआ।

तदनन्तर उस पुरुष ने परमेश्वर शिव को प्रणाम करके कहा–'स्वामिन्! मेरे नाम निश्चित कीजिये और काम बताइये। उस पुरूष की यह बात सुनकर महेश्वर भगवान् शंकर हँसते हुए मेघके समान गम्भीर वाणी में उससे बोले–

शिव ने कहा- वत्स! व्यापक होने के कारण तुम्हारा विष्णु नाम विख्यात हुआ। इसके सिवा और भी बहुत–से नाम होंगे, जो भक्तों को सुख देने वाले होगें। तुम सुस्थिर उत्तम तप करो; क्योंकि वही समस्त कार्यों का साधन है।

ऐसा कहकर भगवान् शिवने श्वासमार्गसे श्री विष्णु को वेदों का ज्ञान प्रदान किया। तदनन्तर अपनी महिमा से कभी च्युत न होनेवाले श्रीहरि भगवान् शिवको प्रणाम करके बड़ी भारी तपस्या करने लगे और शक्तिसहित परमेश्वर शिव भी पार्षदगणों के साथ वहाँ से अदश्य हो गये। भगवान विष्णु ने सुदीर्घ काल तक बड़ी कठोर तपस्या की।

ब्रह्माजी कहते हैं - देवर्षे! तत्पश्चात् कल्याणकारी परमेश्वर साम्ब सदाशिव ने पूर्ववत् प्रयत्न करके मुझे अपने दाहिने अंग से उत्पन्न किया। मुने! उन महेश्वर ने मुझे तुरन्त ही अपनी माया से मोहित करके नारायण देव के नाभी कमल में डाल दिया और लीला पूर्वक मुझे वहाँ से प्रकट किया। इस प्रकार उस कमल

से पुत्र के रूप में मुझ हिरण्यगर्भ का जन्म हुआ।

मैंने उस कमल के सिवा दूसरे किसी को अपने शरीर का जनक या पिता नहीं जाना। मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ, मेरा कार्य क्या है, मैं किसका पुत्र होकर उत्पन्न हुआ हूँ और किसने इस समय मेरा निर्माण किया है–

ऐसा निश्चय करके मैंने अपने को कमल से नीचे उतारा। मुने! मैं उस कमल की एक–एक नाल में गया और सैकड़ों वर्षों तक वहाँ भ्रमण करता रहा, किन्तु कहीं भी उस कमल के उद्गम का उत्तम स्थान मुझे नहीं मिला। तब पुनः संशय में पड़कर मैं उस कमल पुष्प पर जाने को उत्सुक हुआ और नाल के मार्ग से उस कमल पर चढ़ने लगा। इस तरह बहुत ऊपर जाने पर भी मैं उस कमल के कोश को न पा सका। उस दशा में मैं और भी मोहित हो उठा। मुने! उस समय भगवान शिव की इच्छा से परम मंगलमयी उत्तम आकाशवाणी प्रकट हुई, जो मेरे मोहका विध्वंस करने वाली थी। उस वाणी ने कहा–'तप' (तपस्या करो)। उस आकाशवाणी को सुनकर मैंने अपने जन्मदाता पिता का दर्शन करने के लिए उस समय पुनः प्रयत्नपूर्वक बारह वर्षों तक घोर तपस्या की तब मुझपर अनुग्रह करने के लिये ही चार भुजाओं और सुन्दर नेत्रों से सुशोभित भगवान् विष्णु वहाँ सहसा प्रकट हो गये।

तदनन्तर उन नारायण देव के साथ मेरी बातचीत आरम्भ हुई। भगवान् शिव की लीला से वहाँ हम दोनों में कुछ विवाद छिड़ गया। इसी समय हम लोगों के बीच में एक महान अग्निस्तम्भ (ज्योतिर्मयलिंग) प्रकट हुआ। मैंने और विष्णु ने क्रमशः ऊपर और नीचे जाकर उसके आदि–अन्त का पता लगाने के लिए बड़ा प्रयत्न किया, परन्तु हमें कहीं भी उसका ओर–छोर नहीं मिला। मैं थककर ऊपर से नीचे लौट आया और भगवान् विष्णु भी उसी तरह नीचे से ऊपर आकर मुझसे मिले। हम दोनों शिव की माया से मोहित थे। श्री हरि ने मेरे साथ आगे–पीछे और अगल–बगल से परमेश्वर शिव को प्रणाम किया। फिर वे सोचने लगे–'यह क्या वस्तु है?' इसके स्वरूप का निर्देश नहीं किया जा सकता; क्योंकि न तो इसका कोई नाम है और न कर्म ही है। लिंग रहित तत्व ही यहाँ लिंगभाव को प्राप्त हो गया है। ध्यानमार्ग में भी इसके स्वरूप का कुछ पता नहीं चलता। इसके बाद मैं और श्रीहरि दोनों ने अपने चित्त को स्वस्थ करके उस अग्निस्तम्भ को प्रणाम करना आरम्भ किया।

हम दोनों बोले–महाप्रभो! हम आपके स्वरूप को नहीं जानते। आप जो कोई भी क्यों न हों, आपको हमारा नमस्कार है। महेशान! आप शीघ्र ही हमें अपने यथार्थ रूपका दर्शन कराइये।

मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार अहंकार से आविष्ट हुए हम दोनों ही वहाँ नमस्कार करने लगे। ऐसा करते हुए हमारे सौ वर्ष बीत गये।

ब्रह्माजी कहते हैं – मुनिश्रेष्ठ नारद! इस प्रकार हम दोनों देवता गर्व रहित हो निरन्तर प्रणाम करते रहे। हम दोनों के मन में एक ही अभिलाषा थी कि इस ज्योतिर्लिंग के रूपमें प्रकट हुए परमेश्वर प्रत्यक्ष दर्शन दें। भगवान शंकर दीनों के प्रतिपालक, अहंकारियों का गर्व चूर्ण करने वाले तथा सबके अविनाशी प्रभु हैं। वे हम दोनों पर दयालु हो गये। उस समय वहाँ उन सुरश्रेष्ठ से, 'ओ३म्' 'ओ३म्' ऐसा शब्द रूप नाद प्रकट हुआ, जो स्पष्टरूपसे सुनाई देता था।

तब वहाँ एक ऋषि प्रकट हुए, जो ऋषि समूह के परम साररूप माने जाते हैं। उन्हीं ऋषि के द्वारा परमेश्वर श्रीविष्णु ने जाना की इस शब्दब्रह्ममय शरीरवाले परम लिंगके रूप में साक्षात् परब्रह्मस्वरूप महादेवजी ही यहाँ प्रकट हुए हैं।

उस परब्रह्म परमात्मा शिव का वाचक एकाक्षर (प्रणव) ही है, वे इसके वाच्यार्थरूप हैं। वह परम कारण, ऋत,सत्य,आन्नद एवं अमतस्वरूप परात्पर परब्रह्म एकाक्षर वाच्य है।

तत्पश्चात् परमेश्वर भगवान् महेश प्रसन्न हो अपने दिव्य शब्दमय रूप को प्रकट करके हँसते हुए खड़े हो गये।

परमात्मा के शब्दमय रूप को भगवती उमा के साथ देखकर मैं और श्रीहरि दोनों कृतार्थ हो गये। इस तरह शब्द–ब्रह्ममय–शरीरधारी महेश्वर शिवका दर्शन पाकर मेरे साथ श्री हरि ने उन्हें प्रणाम किया और पुनः ऊपर की ओर देखा। उस समय उन्हें पाँच कलाओं से युक्त ॐकारजनित मन्त्र का साक्षात्कार हुआ। तत्पश्चात् महादेवजी का 'ॐ तत्वमसि' यह महावाक्य दृष्टिगोचर हुआ, जो परम उत्तम मन्त्र रूप है तथा शुद्ध स्फटिक के समान निर्मल है। फिर सम्पूर्ण धर्म और अर्थ का साधक तथा बुद्धिस्वरूप गायत्री नामक दूसरा महान् मन्त्र लक्षित हुआ, जिसमें चौबीस अक्षर हैं तथा जो चारों पुरूषार्थरूपी फल देने वाला है। तत्पश्चात् मृत्युंजय–मन्त्र फिर पञ्चाक्षर–मन्त्र तथा दक्षिणामूर्तिसंज्ञक चिन्तामणि–मन्त्रका साक्षात्कार हुआ। इस प्रकार पाँच मन्त्रों की उपलब्धि करके भगवान् श्रीहरि उनका जप करने लगे।

जो मुझ ब्रह्मा के भी अधिपति, कल्याणकारी तथा सृष्टि, पालन एवं संहार करने वाले हैं, उन वरदायक साम्बशिवका मेरे साथ भगवान् विष्णु ने प्रिय वचनों द्वारा संतुष्टचित्त से स्तवन किया।

तब पापहारी करूणाकर भगवान् महेश्वर ने प्रसन्नचित्त होकर उन श्रीविष्णुदेवको श्वासरूप से वेद का उपदेश दिया। मुने! उसके बाद शिव ने परमात्मा श्रीहरि को गुह्य ज्ञान प्रदान किया। फिर उन परमात्मा ने कृपा करके मुझे भी वह ज्ञान दिया। वेदका ज्ञान प्राप्त करके कृतार्थ हुए भगवान् विष्णु ने मेरे साथ हाथ जोड़कर महेश्वर को नमस्कार करके पुनः उनसे पूजन की विधि बताने तथा सदुपदेश देने के लिये प्रार्थना की।

ब्रह्मा जी कहते हैं - मुने! श्रीहरि की यह बात सुनकर अत्यंत प्रसन्न हुए कृपानिधान भगवान् शिवने प्रीतिपूर्वक यह बात कही।

श्री शिव बोले - सूरश्रेष्ठगण! मैं तुम दोनों की भक्ति से निश्चय ही बहुत प्रसन्न हूँ। तुमलोग मुझ महादेव की ओर देखो। इस समय तुम्हें मेरा स्वरूप जैसा दिखायी देता है, वैसे ही रूपका प्रयत्नपूर्वक पूजन–चिन्तन करना चाहिये। **तुम दोनों महाबली हो और मेरी स्वरूपभूता प्रकृति से प्रकट हुए हो।**

शम्भु की उपर्युक्त बात सुनकर मेरेसहित श्रीहरिने महेश्वर को हाथ जोड़ प्रणाम करके कहा ।

भगवान विष्णु बोले - प्रभो! यदि हमारे प्रति आपके हृदय में प्रीति उत्पन्न हुई है और यदि आप हमें वर देना आवश्यक समझते है तो हम यही वर माँगते है कि आपमें हम दोनों की सदा अनन्य एवं अविचल भक्ति बनी रहे।

श्रीमहेश्वर बोले - मै सृष्टि, पालन और संहारका कर्ता हूँ, सगुण और निर्गुण हूँ तथा सच्चिदानन्दस्वरूप निर्विकार परब्रह्म परमात्मा हूँ । विष्णो! सृष्टि, रक्षा और प्रलयरूप गुणों अथवा कार्यों के भेदसे मैं ही ब्रह्मा, विष्णु और रूद्र नाम धारण करके तीन स्वरूपों में विभक्त हुआ हूँ।

ब्रह्मन! मेरा ऐसा ही परम उत्कृष्ट रूप तुम्हारे शरीर से इस लोक में प्रकट होगा जो नाम से 'रूद्र' कहलायेगा।

मैं, तुम, ब्रह्मा तथा जो ये रूद्र प्रकट होंगे, वे सब-के-सब एकरूप हैं । ब्रह्मन्! इस कारण से तुम्हे ऐसा करना चाहिये। तुम तो इस सृष्टि के निर्माता बनो और श्रीहरि इसका पालन करें तथा मेरे अंशसे प्रकट होने वाले जो रूद्र हैं, वे इसका प्रलय करने वाले होंगे। ये जो 'उमा' नामसे विख्यात परमेश्वरी प्रकृति देवी है, इन्हीं की शक्तिभूता वाग्देवी ब्रह्माजी का सेवन करेगी। फिर इन प्रकृति देवी से वहाँ जो दूसरी शक्ति प्रकट होगी वे लक्ष्मी रूप से भगवान् विष्णु का आश्रय लेंगी। तदनन्तर पुनः काली नाम से जो तीसरी शक्ति प्रकट होगी, वे निश्चय ही मेरी अंश भूत रूद्रदेव को प्राप्त होंगी।

मैं ही सृष्टि, पालन और संहार करने वाले रज आदि त्रिविध गुणों द्वारा ब्रह्मा, विष्णु और रूद्रनाम से प्रसिद्ध हो तीन रूपों में पृथक–पृथक प्रकट होता हूँ। साक्षात् शिव गुणों से भिन्न हैं। वे प्रकृति और पुरूष से भी परे हैं–अद्वितीय, नित्य, अनन्त पूर्ण एवं निरंजन परब्रह्म परमात्मा हैं। तीनों लोकों का पालन करने वाले श्री हरि भीतर तमोगुण और बाहर सत्त्वगुण धारण करते हैं, त्रिलोकी का संहार करने वाले रूद्रदेव भीतर

सत्त्वगुण और बाहर तमोगुण धारण करते हैं तथा त्रिभुवन की सष्टि करने वाले ब्रह्माजी बाहर और भीतर से भी रजोगुणी ही है। **इस प्रकार ब्रह्मा, विष्णु तथा रूद्र-इन तीन देवताओं में गुण हैं, परंतु शिव गुणातीत माने गये हैं।**

परमेश्वर शिव बोले - उत्तम व्रतका पालन करने वाले हरे! विष्णो! अब तुम मेरी दूसरी आज्ञा सुनों। उसका पालन करने से तुम सदा समस्त लोकों में माननीय और पूजनीय बने रहोगे। ब्रह्माजी के द्वारा रचे गये लोक में जब कोई दुःख या संकट उत्पन्न हो, तब तुम उन सम्पूर्ण दुःखों का नाश करने के लिए सदा तत्पर रहना। तुम्हारे सम्पूर्ण दुस्सह कार्यों में मैं तुम्हारी सहायता करूँगा। तुम्हारे जो दुर्जेय और अत्यन्त उत्कट शत्रु होंगे, उन सबको मैं मार गिराऊँगा। हरे! तुम नाना प्रकार के अवतार धारण करके लोक में अपनी उत्तम कीर्तिका विस्तार करो और सबके उद्धार के लिये तत्पर रहो। तुम रूद्र के ध्येय हो और रूद्र तुम्हारे ध्येय हैं। तुममें और रूद्र में कुछ भी अन्तर नहीं है।

{विशेष :- इस उपरोक्त उल्लेख से दो बातें सिद्ध हुई :- 1. ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव से अन्य श्री महेश्वर है जो उपदेश दे रहा है। ब्रह्मा रजगुण, विष्णु सतगुण तथा शिव तमगुण है। 2. श्री महेश्वर से अन्य कोई प्रकति (दुर्गा) तथा पुरूष (काल पुरूष) से भी भिन्न कोई (एकम्) अद्वितीय, नित्य यानि शाश्वत् अनन्त यानि जिसकी शक्ति का वार-पार नहीं और वही ही निरंजन यानि माया से निर्लेप परब्रह्म यानि सबसे अन्य पूर्ण परमात्मा है।}

संक्षिप्त शिवपुराण, रूद्रसंहिता पष्ठ 114 से :-

'ॐ वामदेवाय नमः' इत्यादि वामदेव–मन्त्र से उन्हें आसनपर विराजमान करे।

संक्षिप्त शिवपुराण, रूद्रसंहिता पष्ठ 126 से :-

वे ब्रह्माण्ड से बाहर जाकर भगवान शिव की कपा प्राप्त करके वैकुण्ठधाम में जा पहुँचे और सदा वहीं रहने लगे। मैंने सष्टि की इच्छा से भगवान् शिव और विष्णु का स्मरण करके पहले के रचे हुए जल में अपनी अंजली डालकर जलको ऊपर की ओर उछाला। इससे वहाँ एक अण्ड प्रकट हुआ।

संक्षिप्त शिवपुराण, रूद्रसंहिता पष्ठ 130 से :-

उस जोड़े में जो पुरूष था, वही स्वायम्भुव मनु के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

विशेष प्रमाण :- श्री शिव महापुराण विद्येश्वर संहिता अध्याय 6 से 9 में (अनुवादकर्ता विद्यावारिधि पं. ज्वाला प्रसाद जी मिश्र, प्रकाशक-खेमराज श्रीकष्ण दास प्रकाशन बम्बई- 400004 इस शिवमहापुराण में मूल संस्कत भी विद्यमान है। परन्तु यहाँ पुस्तक विस्तार के कारण केवल हिन्दी अनुवाद ही लिखा गया है।) पष्ठ 11-13,14,17,18 से सारांश ज्ञान :- लिखा है कि ''एक समय श्री ब्रह्मा जी तथा श्री विष्णु जी में प्रभुता के कारण युद्ध हुआ। श्री ब्रह्मा जी ने कहा मैं सर्व सष्टि का रचनहार हूँ मैं ही आप (श्री विष्णु) का उत्पन्न कर्ता अर्थात् पिता हूँ। इसी का प्रत्युत्तर देते हुए श्री विष्णु जी ने श्री ब्रह्मा जी से कहा मैं आप (श्री ब्रह्मा जी) का उत्पन्नकर्ता अर्थात् पिता हूँ। इस बात पर दोनों का युद्ध हुआ।(पष्ठ 11 पर उपरोक्त विवरण है।)

उनके मध्य में एक प्रकाशमान स्तम्भ प्रकट हुआ। दोनों (ब्रह्मा–विष्णु) को उसके आदि अन्त का भेद नहीं पाया तब वह निराकार ब्रह्म शिव रूप में साकार हुआ तथा कहा ''मेरे सकल निष्कल भेद से दो स्वरूप हैं'' पहला स्तम्भ रूप और पीछे मूर्तिमान रूप धारण किया इसमें ब्रह्म निष्कल (निराकार) और ईशरूप सगुण (साकार) मेरे यह दोनों सिद्ध हैं। दूसरे किसी के नहीं। **इस कारण तुम दोनों को (ब्रह्मा व विष्णु को) अथवा दूसरों को ईश्वरत्व की प्राप्ति नहीं हो सकती तुमने (श्री ब्रह्मा तथा श्री विष्णु जी ने) जो अज्ञानता से अपने आप को ईश (भगवान) माना यह बड़ा अद्भुत हुआ उसके दूर करने को ही मैं रणस्थान मैं आया हूँ।** अब तुम अपना अभिमान त्याग कर मुझ ईश्वर में अपनी बुद्धि लगाओ मेरे प्रसाद से लोक में सब अर्थ

प्रकाश करते हैं। **मैं ही ब्रह्म हूँ और** मेरा ही कल–अकल रूप है, **ब्रह्म होने से मैं ईश्वर हूँ**। मैं इस सबका ईश्वर हूँ यह मेरा है मेरे सिवाय किसी दूसरे का नहीं है। प्रथम तो ब्रह्म ज्ञान के निमित्त निष्कल ब्रह्म का प्रादुर्भाव हुआ है। इसी से मैं अज्ञात स्वरूप हूँ पीछे तुम्हें प्रगट दर्शन देने के निमित्त साक्षात् ईश्वर तत्क्षण ही में सगुण रूप हुआ हूँ। (पृष्ठ18) हे पुत्रों ! **यह कृत्य (उत्पति व स्थिति का कार्य) आपने तप से प्राप्त किया है जो सृष्टि की उत्पति तथा पालन कहलाता है। सौ मैंने प्रसन्न होकर तुम्हें दिया है। इसी प्रकार से दूसरे दो कृत्य रूद्र और महेश को प्रदान किए हैं परंतु अनुग्रह कृत्य कोई भी पाने को समर्थ नहीं है।**

''श्री शिव पुराण के उपरोक्त लेखों का सारांश'' :-

उपरोक्त शिव पुराण से निम्न बातें स्पष्ट हुई :-

(1) सदाशिव अर्थात् काल रूपी ब्रह्म, श्री ब्रह्मा, श्री विष्णु तथा श्री महेश जी का जनक (पिता) है।

(2) प्रकृति अर्थात् दुर्गा जिसकी आठ भुजाऐं हैं यह श्री ब्रह्मा, श्री विष्णु तथा श्री शंकर (रूद्र) जी की जननी (माता) है।

(3) दुर्गा को प्रधान, प्रकृति, शिवा भी कहा जाता है।

(4) श्री ब्रह्मा, श्री विष्णु तथा श्री महेश ईश (भगवान) नहीं हैं क्योंकि खेमराज श्री कृष्ण दास प्रकाशन बम्बई वाली श्री शिवपुराण में श्री शिव अर्थात् काल ब्रह्म ने कहा है कि हे ब्रह्मा तथा विष्णु तुमने अपने आप को ईश (भगवान) माना है यह ठीक नहीं है अर्थात् तुम प्रभु नहीं हो।

(5) श्री शिव अर्थात् काल ब्रह्म से भिन्न तथा इसी के आधीन तीनों देवता (ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश/रूद्र) हैं।

ये तीनों देवता सक्षम नहीं हैं क्योंकि श्री महेश्वर ने कहा है कि हे विष्णु! तुम सम्पूर्ण दुःखों का नाश करने के लिए तत्पर रहना। तुम्हारे सम्पूर्ण दुस्सह कार्यों में मैं तुम्हारी सहायता करूंगा। तुम्हारे जो दुर्जेय और अत्यंत उत्कट शत्रु होंगे, उन सबको मैं मार गिराऊँगा।

(6) श्री ब्रह्मा, विष्णु ने जो उपाधी प्राप्त की है यह तप करके प्राप्त की है। जो ब्रह्म काल अर्थात् सदाशिव द्वारा तप के प्रतिफल में प्रदान की गई है।

(7) सदाशिव अर्थात् महाशिव ही ब्रह्म है यही काल रूपी ब्रह्म है। दुर्गा ने अपनी शब्द (वचन) शक्ति से सावित्री, लक्ष्मी, पार्वती को उत्पन्न किया।

(8) श्री ब्रह्मा जी से सावित्री, श्री विष्णु जी से लक्ष्मी तथा श्री महेश/रूद्र से पार्बती/काली का विवाह किया गया।

(9) श्री ब्रह्मा, श्री विष्णु तथा श्री महेश को क्षमा करने का अधिकार नहीं है। केवल कर्म फल ही प्रदान कर सकते हैं।

(10) श्री ब्रह्मा रजगुण, श्री विष्णु सतगुण तथा श्री महेश/रूद्र तमगुण युक्त हैं।

(11) जो ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव जी को उपदेश देने वाला श्री महेश्वर यानि सदाशिव है। वह कह रहा है कि मेरे से तथा ब्रह्मा, विष्णु व रूद्र यानि शिव जो रजगुण, सतगुण तथा तमगुण है, इनसे अतीत यानि परे साक्षात् शिव यानि मंगलकारी परमात्मा है जो अद्वितीय यानि गीता अध्याय 18 श्लोक 66 में कहा एकम् नित्य यानि शाश्वत्, अनन्त यानि जिसकी शक्ति का कोई वार-पार नहीं है, पूर्ण परमात्मा और निरंजन यानि मायारहित परब्रह्म यानि अन्य पूर्ण परमात्मा है।

''श्री विष्णु पुराण में सष्टि रचना का प्रमाण''

श्री विष्णु पुराण (प्रकाशक एवं मुद्रक गीता प्रैस गोरखपुर। अनुवाद :- श्री मुनिलाल गुप्त)

(उल्लेख संख्या - 1) अध्याय 2 श्लोक 1–2 (प्रथम अंश)

श्री पराशर उवाच

अविकाराय शुद्धाय नित्याय परमात्मने। सदैकरूपरूपाय विष्णवे सर्वजिष्णवे ।।1।।

नमो हिरण्यगर्भाय हरये शङ्कराय च। वासुदेवाय ताराय सर्गस्थित्यन्तकारिणे।।2।।

अनुवाद – श्री पराशरजी बोले– **जो ब्रह्मा, विष्णु और शंकर रूप से जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और संहार के कारण हैं** तथा अपने भक्तों को संसार–सागर से तारने वाले हैं, उन विकाररहित, शुद्ध, **अविनाशी, परमात्मा, सर्वदा एकरस, सर्वविजयी भगवान् वासुदेव विष्णु को नमस्कार है।**।1–2।।

(उल्लेख संख्या - 2) अध्याय 2 श्लोक 3 (प्रथम अंश)

एकानेकस्वरूपाय स्थूलसूक्ष्मात्मने नमः। अव्यक्तव्यक्तरूपाय विष्णवे मुक्तिहेतवे।।3।।

अनुवाद :– जो एक होकर भी नाना रूपवाले हैं, स्थूलसूक्ष्ममय हैं, अव्यक्त (कारण) एवं व्यक्त (कार्य) रूप हैं तथा {अपने अनन्य भक्तों की} मुक्ति के कारण हैं, {उन श्री विष्णु भगवान् को नमस्कार है}।।3।।

(उल्लेख संख्या - 3) अध्याय 2 श्लोक 9 (प्रथम अंश)

तैश्चोक्तं पुरुकुत्साय भूभुजे नर्मदातटे। सारस्वताय तेनापि मह्यं सारस्वतेन च ।।9।।

अनुवाद :- वह प्रसंग दक्ष आदि मुनियों ने नर्मदा-तटपर राजा पुरूकुत्स को सुनाया था तथा पुरूकुत्सने सारस्वत से और सारस्वत ने मुझसे कहा था।।9।।

(उल्लेख संख्या - 4) अध्याय 2 श्लोक 10-13 (प्रथम अंश)

परः पराणां परमः परमात्मात्मसंस्थितः। रूपवर्णादिनिर्देशविशेषणविवर्जितः।।10।।

अपक्षयविनाशाभ्यां परिणामर्धिजन्मभिः। वर्जितः शक्यते वक्तुं यः सदास्तीति केवलम्।।11।।

सर्वत्रासौ समस्तं च वसत्यत्रेति वै यतः। ततः स वासुदेवेति विद्वद्भिः परिपठ्यते।।12।।

तद्ब्रह्म परमं नित्यमजमक्षयमव्ययम्। एकस्वरूपं तु सदा हेयाभावाच्च निर्मलम्।।13।।

अनुवाद :- जो पर (प्रकति) से भी पर, परमश्रेष्ठ, अन्तरात्मा में स्थित परमात्मा, रूप, वर्ण, नाम और विशेषण आदि से रहित है; जिसमें जन्म, वद्धि, परिणाम, क्षय और नाश–इन छः विकारों का सर्वथा अभाव है; जिसको सर्वदा केवल 'है' इतना ही कह सकते हैं, तथा **जिनके लिये यह प्रसिद्ध है कि 'वे सर्वत्र हैं** और उनमें समस्त विश्व बसा हुआ है–**इसलिये ही विद्वान् जिसको वासुदेव कहते हैं' वही नित्य, अजन्मा,** अक्षय, अव्यय, एकरस और हेय गुणों के अभाव के कारण **निर्मल परब्रह्म है**।।10–13।।

(उल्लेख संख्या - 5) अध्याय 2 श्लोक 14 (प्रथम अंश)

तदेव सर्वमेवैतद्व्यक्ताव्यक्तस्वरूपवत्। तथा पुरुषरूपेण कालरूपेण च स्थितम्।।14।।

अनुवाद :- वही इन सब व्यक्त (कार्य) और अव्यक्त (कारण) जगत् के रूपसे, तथा इसके साक्षी पुरूष और महाकारण काल के रूप से स्थित है।।14।।

(उल्लेख संख्या - 6) अध्याय 2 श्लोक 15 (प्रथम अंश)

परस्य ब्रह्मणो रूपं पुरुषः प्रथमं द्विज। व्यक्ताव्यक्ते तथैवान्ये रूपे कालस्तथा परम्।।15।।

अनुवाद :- हे द्विज! परब्रह्म का प्रथम रूप पुरुष है, अव्यक्त (प्रकति) और व्यक्त (महदादि) उसके अन्य रूप हैं तथा {सबको क्षोभित करनेवाला होने से} **काल उसका परमरूप है**।।15।।

(उल्लेख संख्या - 7) अध्याय 2 श्लोक 16 (प्रथम अंश)

प्रधानपुरुषव्यक्तकालानां परमं हि यत्। पश्यन्ति सूरयः शुद्धं तद्विष्णोः परमं पदम्।।16।।

अनुवाद :- इस प्रकार जो प्रधान, पुरूष, व्यक्त और काल-इन चारों से परे है तथा जिसे पण्डितजन ही देख पाते हैं वही भगवान् विष्णु का परमपद है।।16।।

(उल्लेख संख्या - 8) अध्याय 2 श्लोक 17 (प्रथम अंश)

प्रधानपुरूषव्यक्तकालास्तु प्रविभागशः। रूपाणि स्थितिसर्गान्तव्यक्तिसद्भावहेतवः।।17।।

अनुवाद :– प्रधान, पुरूष, व्यक्त और काल–ये {भगवान विष्णु के} रूप पंथक्–पंथक् संसार की उत्पत्ति, पालन और संहार के प्रकाश तथा उत्पादन में कारण हैं।।17।।

(उल्लेख संख्या - 9 अध्याय 2 श्लोक 18 (प्रथम अंश)

व्यक्तं विष्णुस्तथाव्यक्तं पुरुषः काल एव च। क्रीडतो बालकस्येव चेष्टां तस्य निशामय।।18।।

अनुवाद :– भगवान् विष्णु जो व्यक्त, अव्यक्त, पुरूष और काल रूप से स्थित होते हैं, इसे उनकी बालवत् क्रीडा ही समझो।।18।।

(उल्लेख संख्या - 10) अध्याय 2 श्लोक 23 (प्रथम अंश)

नाहो न रात्रिर्न नभो न भूमि र्नासीत्तमोज्योतिरभूच्च नान्यत्।
श्रोत्रादिबुद्ध्यानुपलभ्यमेकं प्राधानिकं ब्रह्म पुमांस्तदासीत्।।23।।

अनुवाद :- 'उस समय (प्रलयकालमें) न दिन था, न रात्रि थी, न आकाश था, न पंथिवी थी, न अन्धकार था, न प्रकाश था और न इनके अतिरिक्त कुछ और ही था। बस, श्रोत्रादि इन्द्रियों और **बुद्धि आदि का अविषय एक प्रधान ब्रह्म और पुरूष ही था'**।।23।।

(उल्लेख संख्या - 11) अध्याय 2 श्लोक 24 (प्रथम अंश)

विष्णोः स्वरूपात्परतो हि ते द्वे रूपे प्रधानं पुरुषश्च विप्र।
तस्यैव ते न्येन धंते वियुक्ते रूपान्तरं तद्द्विज कालसंज्ञम्।।24।।

अनुवाद :- हे विप्र! विष्णु के परम (उपाधिरहित) स्वरूप से प्रधान और पुरूष-ये दो रूप हुए; उसी (विष्णु) के जिस अन्य रूप के द्वारा वे दोनों {संष्टि और प्रलयकाल में} संयुक्त और वियुक्त होते है, उस रुपान्तरका ही नाम 'काल' है।।24।।

(उल्लेख संख्या - 12) अध्याय 2 श्लोक 25 (प्रथम अंश)

प्रकंतौ संस्थितं व्यक्तमतीतप्रलये तु यत्। तस्मात्प्राकंतसंज्ञो यमुच्यते प्रतिसञ्चरः।।25।।

अनुवाद :– बीते हुए प्रलयकाल में यह व्यक्त प्रपञ्च प्रकंति में लीन था, इसलिये प्रपञ्चके इस प्रलय को प्राकंत प्रलय कहते हैं।।25।।

(उल्लेख संख्या - 13) अध्याय 2 श्लोक 26 (प्रथम अंश)

अनादिर्भगवान्कालो नान्तो स्य द्विज विद्यते। अव्युच्छिन्नास्ततस्त्वेते सर्गस्थित्यन्तसंयमाः।।26।।

अनुवाद :– हे द्विज! कालरूप भगवान् अनादि हैं, इनका अन्त नहीं है इसलिए संसार की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय भी कभी नहीं रूकते {वि प्रवाह रूप से निरन्तर होते रहते हैं}।।26।।

(उल्लेख संख्या - 14) अध्याय 2 श्लोक 27 (प्रथम अंश)

गुणसाम्ये ततस्तस्मिन्पंथक्पुंसि व्यवस्थिते। कालस्वरूपं तद्विष्णोर्मैत्रेय परिवर्त्तते।।27।।

अनुवाद :– हे मैत्रेय! प्रलयकाल में प्रधान (प्रकंति) के साम्यावस्था में स्थित हो जाने पर और पुरूष के प्रकंति से पंथक् स्थित हो जाने पर **विष्णु भगवान् का काल रूप** {इन दोनों को धारण करने के लिये} **प्रवंत्त होता है**।।27।।

(उल्लेख संख्या - 15) अध्याय 2 श्लोक 28–29 (प्रथम अंश)

ततस्तु तत्परं ब्रह्म परमात्मा जगन्मयः। सर्वगः सर्वभूतेशः सर्वात्मा परमेश्वरः।।28।।

प्रधानपुरूषौ चापि प्रविश्यात्मेच्छया हरिः। क्षोभयामास सम्प्राप्ते सर्गकाले व्ययाव्ययौ।।29।।

अनुवाद :– तदनन्तर {सर्गकाल उपस्थित होने पर} उन परब्रह्म परमात्मा विश्वरूप सर्वव्यापी सर्वभूतेश्वर सर्वात्मा **परमेश्वर ने अपनी इच्छा से विकारी प्रधान और अविकारी पुरूष में प्रविष्ट होकर उनको क्षोभित किया**।।28–29।।

(उल्लेख संख्या - 16) अध्याय 2 श्लोक 30 (प्रथम अंश)

यथा सन्निधिमात्रेण गन्धः क्षोभाय जायते। मनसो नोपकर्तत्वात्तथा सौ परमेश्वरः।।30।।

अनुवाद :– जिस प्रकार क्रियाशील न होने पर भी गन्ध अपनी सन्निधिमात्रसे ही मन को क्षुभित कर देता है **उसी प्रकार परमेश्वर अपनी सन्निधिमात्र से ही प्रधान और पुरुष को प्रेरित करते हैं**।।30।।

(उल्लेख संख्या - 17) अध्याय 2 श्लोक 31 (प्रथम अंश)

स एव क्षोभको ब्रह्मन् क्षोभ्यश्च पुरूषोत्तमः। स सङ्कोचविकासाभ्यां प्रधानत्वे पि च स्थितः।।31।।

अनुवाद :- **हे ब्रह्मन्! वह पुरूषोत्तम ही इनको क्षोभित करने वाले हैं** और वे ही क्षुब्ध होते हैं तथा संकोच (साम्य) और विकास (क्षोभ) युक्त प्रधानरूप से भी वे ही स्थित हैं।।31।।

(उल्लेख संख्या - 18) अध्याय 2 श्लोक 32 (प्रथम अंश)

विकासाणुस्वरूपैश्च ब्रह्मरूपादिभिस्तथा। व्यक्तस्वरूपश्च तथा विष्णुः सर्वेश्वरेश्वरः।।32।।

अनुवाद :- **ब्रह्मादि समस्त ईश्वरोंके ईश्वर वे विष्णु ही समष्टि-व्यष्टिरूप, ब्रह्मादि जीवरूप तथा महत्तत्त्वरूप से स्थित हैं**।।32।।

(उल्लेख संख्या - 19) अध्याय 2 श्लोक 55 (प्रथम अंश)

तत्क्रमेण विवद्धं सज्जलबुद्बुदवत्समम्। भूतेभ्यो ण्डं महाबुद्धे महत्तदुदकेशयम्।
प्राकतं ब्रह्मरूपस्य विष्णोः स्थानमनुत्तमम्।।55।।

अनुवाद :- **हे महाबुद्धे! जल के बुलबुले के समान क्रमशः भूतों से बड़ा हुआ वह गोलाकार और जलपर स्थित महान् अण्ड ब्रह्म (हिरण्यगर्भ) रूप विष्णु का अति उत्तम प्राकत आधार हुआ।**।55।।

(उल्लेख संख्या - 20) अध्याय 2 श्लोक 56 (प्रथम अंश)

तत्राव्यक्तस्वरूपो सौ व्यक्तरूपो जगत्पतिः। विष्णुर्ब्रह्मस्वरूपेण स्वयमेव व्यवस्थितः।।56।।

अनुवाद :- **उसमें वे अव्यक्त-स्वरूप जगत्पति विष्णु व्यक्त हरिण्यगर्भरूपसे स्वयं ही विराजमान हुए**।।56।।

(उल्लेख संख्या - 21) अध्याय 2 श्लोक 61 (प्रथम अंश)

जुषन् रजो गुणं तत्र स्वयं विश्वेश्वरो हरिः। ब्रह्मा भूत्वास्य जगतो विसष्टौ सम्प्रवर्त्तते।।61।।

अनुवाद :- **उसमें स्थित हुए स्वयं विश्वेश्वर भगवान् विष्णु ब्रह्मा होकर रजोगुण का आश्रय लेकर इस संसार की रचना में प्रवत्त होते हैं।**

(उल्लेख संख्या - 22) अध्याय 9 श्लोक 40 से 41 (प्रथम अंश)

नमामि सर्वं सर्वेशमनन्तमजमव्ययम्। लोकधाम धराधारमप्रकाशमभेदिनम्।।40।।
नारायणमणीयांसमशेषाणामणीयसाम्। समस्तानां गरिष्ठं च भूरादीनां गरीयसाम्।।41।।

अनुवाद :– ब्रह्मा जी कहने लगे–जो समस्त अणुओं से भी अणु और पथिवी आदि समस्त गुरुओं (भारी पदार्थों) से भी गुरु (भारी) है उन निखिललोकविश्राम, पथिवीके आधारस्वरूप, अप्रकाश्य, अभेद्य, सर्वरूप, सर्वेश्वर, अनन्त, अज और अव्यय नारायण को मैं नमस्कार करता हूँ।।40–41।।

(उल्लेख संख्या - 23) अध्याय 9 श्लोक 53 (प्रथम अंश)

यस्यायुतायुतांशांशे विश्वशक्तिरियं स्थिता। परब्रह्मस्वरूपं यत्प्रणमामस्तमव्ययम्।।53।।

अनुवाद :– जिसके अयुतांश (दस हजारवें अंश) के अयुतांश में यह विश्वरचना की शक्ति स्थित है तथा जो परब्रह्मस्वरूप है उस अव्ययको हम प्रणाम करते हैं ।।53।।

(उल्लेख संख्या - 24) अध्याय 9 श्लोक 54 (प्रथम अंश)

यद्योगिनः सदोद्युक्ताः पुण्यपापक्षये क्षयम्। पश्यन्ति प्रणवे चिन्त्यं तद्विष्णोः परमं पदम्।।54।।

अनुवाद :– नित्य–युक्त योगिगण अपने पुण्य–पापादिका क्षय हो जानेपर **ॐकारद्वारा चिन्तनीय जिस अविनाशी पदका साक्षात्कार करते हैं वही भगवान् विष्णु का परमपद है।।54।।**

(उल्लेख संख्या - 25) अध्याय 9 श्लोक 55 (प्रथम अंश)

यन्न देवा न मुनयो न चाहं न च शङ्करः।जानन्ति परमेशस्य तद्विष्णोः परमं पदम्।।55।।

अनुवाद :- जिसको देवगण, मुनिगण, शंकर और मैं-कोई भी नहीं जान सकते वही परमेश्वर श्री विष्णु का परमपद है।।55।।

(उल्लेख संख्या - 26) अध्याय 9 श्लोक 56 (प्रथम अंश)

शक्तयो यस्य देवस्य ब्रह्मविष्णुशिवात्मिकाः। भवन्त्यभूतपूर्वस्य तद्विष्णोः परमं पदम्।।56।।

अनुवाद :– जिस अभूतपूर्व देवकी ब्रह्मा, विष्णु और शिवरूप शक्तियाँ हैं वही भगवान् विष्णु का परमपद है।।56।।

(उल्लेख संख्या - 27) अध्याय 9 श्लोक 57 (प्रथम अंश)

सर्वेश सर्वभूतात्मन्सर्व सर्वाश्रयाच्युत। प्रसीद विष्णो भक्तानां व्रज नो दष्टिगोचरम्।।57।।

अनुवाद :– हे सर्वेश्वर! हे सर्व भूतात्मन्! हे सर्वरूप! हे सर्वाधार! हे अच्युत! हे विष्णो! हम भक्तोंपर प्रसन्न होकर हमें दर्शन दीजिये।।57।।

(उल्लेख संख्या - 28) अध्याय 6 श्लोक 32–33

संसिद्धायां तु वार्तायां प्रजाः सष्टा प्रजापतिः। मर्यादां स्थापयामास यथास्थानं यथागुणम्।।32।।

वर्णानामाश्रमाणां च धर्मान्धर्मभतां वर। लोकांश्च सर्ववर्णानां सम्यग्धर्मानुपालिनाम्।।33।।

अनुवाद :– हे धर्मवानोंमें श्रेष्ठ मैत्रेय! इस प्रकार कषि आदि जीविकाके साधनों के निश्चित हो जाने पर प्रजापति ब्रह्माजीने प्रजाकी रचना कर उनके स्थान और गुणों के अनुसार मर्यादा, वर्ण और आश्रमोंके धर्म तथा अपने धर्मका भली प्रकार पालन करनेवाले समस्त वर्णोंके लोक आदिकी स्थापना की।।32–33।।

उल्लेख संख्या - 29) अध्याय 6 श्लोक 34 (प्रथम अंश)

प्राजापत्यं ब्राह्मणानां स्मतं स्थानं क्रियावताम्।स्थानमैन्द्रं क्षत्रियाणां संग्रामेषवनिवर्तिनाम्।।34।।

अनुवाद :- कर्मनिष्ठ ब्राह्मणों का स्थान पितलोक है, युद्ध-क्षेत्र से कभी न हटनेवाले क्षत्रियों का इन्द्रलोक है।।34।।

(उल्लेख संख्या - 30) अध्याय 6 श्लोक 35 (प्रथम अंश)

वैश्यानां मारूतं स्थानं स्वधर्ममनुवर्तिनाम्। गान्धर्वं शुद्रजातीनां परिचर्यानुवर्तिनाम्।।35।।

अनुवाद :– तथा अपने धर्म का पालन करने वाले वैश्योंका वायुलोक और सेवाधर्मपरायण शुद्रोंका गन्धर्वलोक है।।35।।

(उल्लेख संख्या - 31) अध्याय 6 श्लोक 36 (प्रथम अंश)

अष्टाशीतिसहस्राणि मुनीनामूर्ध्वरेतसाम्। स्मतं तेषां तु यत्स्थानं तदेव गुरुवासिनाम्।।36।।

अनुवाद :- अट्ठासी हजार ऊर्ध्वरेता मुनि हैं; उनका जो स्थान बताया गया है वही गुरुकुलवासी ब्रह्मचारियों का स्थान है।।36।।

(उल्लेख संख्या - 32) अध्याय 6 श्लोक 37–38 (प्रथम अंश)

सप्तर्षीणां तु यत्स्थानं स्मतं तद्वै वनौकसाम्। प्राजापत्यं गहस्थानां न्यासिनां ब्रह्मसंज्ञितम्।।37।।

योगिनाममतं स्थानं स्वात्मसन्तोषकारिणाम्।।38।।

अनुवाद :- इसी प्रकार वनवासी वानप्रस्थोंका स्थान सप्तर्षिलोक, गहस्थोंका पितलोक और

संन्यासियों का ब्रह्मलोक है तथा आत्मानुभवसे तप्त योगियोंका स्थान अमरपद (मोक्ष) है।।37–38।।

(उल्लेख संख्या - 33) अध्याय 6 श्लोक 39 (प्रथम अंश)

एकान्तिनः सदा ब्रह्मध्यायिनो योगिनश्च ये। तेषां तु परमं स्थानं यत्तत्पश्यन्ति सूरयः।।39।।

अनुवाद :- जो निरन्तर एकान्तसेवी और ब्रह्मचिन्तनमें मग्न रहनेवाले योगिजन हैं उनका जो परमस्थान है उसे पण्डितजन ही देख पाते हैं।।39।।

(उल्लेख संख्या - 34) अध्याय 22 श्लोक 36 (प्रथम अंश)

कालेन न विना ब्रह्मा सष्टिनिष्पादको द्विज। न प्रजापतयः सर्वे ने चैवाखिलजन्तवः।।36।।

अनुवाद :- हे द्विज! काल के बिना ब्रह्मा, प्रजापति एवं अन्य समस्त प्राणी भी सष्टि-रचना नहीं कर सकते {अतः भगवान् कालरूप विष्णु ही सर्वदा सष्टिके कारण हैं}।।36।।

(उल्लेख संख्या - 35) अध्याय 22 श्लोक 53 (प्रथम अंश)

एवंप्रकारममलं नित्यं व्यापकमक्षयम्। समस्तहेयरहितं विष्ण्वाख्यं परमं पदम्।।53।।

अनुवाद :– इस प्रकार का वह निर्मल, नित्य, व्यापक, अक्षय और समस्त हेय गुणों से रहित **विष्णु नामक परमपद है।।53।।**

(उल्लेख संख्या - 36) अध्याय 22 श्लोक 54 (प्रथम अंश)

तद्ब्रह्म परमं योगी यतो नावर्त्तते पुनः। श्रयत्यपुण्योपरमे क्षीणक्लेशो तिनिर्मलः।।54।।

अनुवाद :- पुण्य-पापका क्षय और क्लेशों की निवत्ति होने पर जो अत्यन्त निर्मल हो जाता है वही योगी उस परब्रह्मका आश्रय लेता है जहाँसे वह फिर नहीं लौटता।।54।।

(उल्लेख संख्या - 37) अध्याय 22 श्लोक 55 (प्रथम अंश)

द्वे रूपे ब्रह्मणस्तस्य मूर्त्तं चामूर्तमेव च। क्षराक्षरस्वरूपे ते सर्वभूतेषव्वस्थिते।।55।।

अनुवाद :– उस ब्रह्मके मूर्त और अमूर्त दो रूप हैं, जो क्षर और अक्षररूपसे समस्त प्राणियों में स्थित हैं।।55।।

{विशेष :- इस (प्रथम अंश) अध्याय 22 श्लोक 55 का अनुवाद उचित नहीं किया गया है कप्या अनुवाद पढ़ें जो उचित है।

अनुवाद :- जिस तत् ब्रह्म अर्थात् परम अक्षर ब्रह्म के विषय में श्रीमद्भगवत् गीता अध्याय 7 श्लोक 29 अध्याय 8 श्लोक 1,3,8,9 तथा 10 अध्याय 15 श्लोक 1,4,16 तथा 17 में वर्णन है। उसी के विषय में श्री विष्णु पुराण (प्रथम अंश) अध्याय 22 श्लोक 54-55 में भी किया है श्लोक 54 में कहा है कि (तत् परमम् ब्रह्म) उस परम अक्षर ब्रह्म अर्थात् परम दिव्य पुरूष की साधना करने वाले योगी अर्थात् शास्त्रविधि अनुसार साधना करने वाले साधक पूर्ण मोक्ष प्राप्त करते हैं। जो फिर लौटकर संसार में कभी नहीं आते। उसी परम अक्षर ब्रह्म अर्थात् पुरूषोत्तम के विषय में श्लोक 55 में कहा है कि ''उस परम अक्षर ब्रह्म के दो रूप है मूर्त अर्थात् साकार तथा अमूर्त अर्थात् अव्यक्त क्योंकि पूर्ण ब्रह्म दूर देश में तेजोमय शरीर युक्त है। जब वह परम अक्षर ब्रह्म इस लोक में आता है तो अन्य हल्के तेज युक्त शरीर धारण करके आता है। इसलिए मूर्त तथा अमूर्त'' कहा है और वही परम अक्षर ब्रह्म ही क्षर पुरूष (ब्रह्म/काल) तथा अक्षर पुरूष (परब्रह्म) रूपी प्रभुओं तथा सर्व प्राणियों को व्यवस्थित किए हुए है। जैसे श्री मद् भगवत् गीता अध्याय 15 श्लोक 16-17 में कहा है क्षर पुरूष तथा अक्षर पुरूष दो प्रभु इस लोक में जाने जाते हैं। इसी प्रकार दो स्थिती इस लोक में प्राणियों की है कि स्थूल शरीर सबका नाशवान है आत्मा सब की अविनाशी है। (उत्तम पुरूष तू अन्यः) परन्तु वास्तव में श्रेष्ट परमात्मा तो इन दोनों से अन्य (भिन्न) है वही वास्तव में अविनाशी है तथा सर्व का पालन कर्ता है}

(उल्लेख संख्या - 38) अध्याय 22 श्लोक 56 (प्रथम अंश)

अक्षरं तत्वरं ब्रह्म क्षरं सर्वमिदं जगत्। एकदेशस्थितस्यागेन्ज्योत्स्ना विस्तारिणी यथा।
परसय ब्रह्मणः शक्तिस्तथेदमखिलं जगत्।।56।।

अनुवाद :- अक्षर ही वह परब्रह्म है और क्षर सम्पूर्ण जगत् है। जिस प्रकार एकदेशीय अग्निका प्रकाश सर्वत्र फैला रहता है। **उसी प्रकार यह सम्पूर्ण जगत् परब्रह्म की ही शक्ति है।**।56।।

(उल्लेख संख्या - 39) अध्याय 22 श्लोक 57 (प्रथम अंश)

तत्राप्यासन्नदूरत्वाद्बहुत्वस्वल्पतामयः। ज्योत्स्नाभेदो स्ति तच्छक्तेस्तनद्वन्मैत्रेय विद्यते।।57।।

अनुवाद :– हे मैत्रेय! अग्नि की निकटता और दूरताके भेदसे जिस प्रकार उसके प्रकाशमें भी अधिकता और न्यूनताका भेद रहता है। उसी प्रकार ब्रह्मकी शक्ति में भी तारतम्य है।।57।।

(उल्लेख संख्या - 40) अध्याय 22 श्लोक 58 (प्रथम अंश)

ब्रह्मविष्णुशिवा ब्रह्मन्प्रधाना ब्रह्मशक्तयः। ततश्च देवा मैत्रेय न्यूना दक्षादयस्ततः।।58।।

अनुवाद :- हे ब्रह्मन्! ब्रह्मा, विष्णु और शिव ब्रह्मकी प्रधान शक्तियाँ हैं उनसे न्यून देवगण हैं तथा उनके अनन्तर दक्ष आदि प्रजापतिगण हैं।।58।।

(उल्लेख संख्या - 41) अध्याय 22 श्लोक 59 (प्रथम अंश)

ततो मनुष्याः पशवो मंगपक्षिसरीसंपाः। न्यूनान्नयूनतराश्चैव वंक्ष गुल्मादयस्तथा।।59।।

अनुवाद :- उनसे भी न्यून मनुष्य, पशु, पक्षी, मंग और सरीसंपादि हैं तथा उनसे भी अत्यन्त न्यून वंक्ष, गुल्म और लता आदि हैं।।59।।

(उल्लेख संख्या - 42) अध्याय 22 श्लोक 63 (प्रथम अंश)

स परः परशक्तीनां ब्रह्मणः समनन्तरम्। मूर्तं ब्रह्म महाभाग सर्वब्रह्ममयो हरिः।।63।।

अनुवाद :- हे महाभाग! हे सर्वब्रह्ममय श्री विष्णुभगवान् समस्त परा शक्तियों में प्रधान और ब्रह्मके अत्यन्त निकटवर्ती मूर्त-ब्रह्मस्वरूप हैं।।63।।

(उल्लेख संख्या - 43) अध्याय 22 श्लोक 80 (प्रथम अंश)

भूर्लोको थ भुवर्लोकः स्वर्लोको मुनिसत्तम। महर्जनस्तपः सत्यं सप्त लोका इमे विभुः।।80।।

अनुवाद :– हे मुनिश्रेष्ठ! भूर्लोक, भुवर्लोक और स्वर्लोक तथा मह, जन, तप, और सत्य आदि सातों लोक भी सर्वव्यापक भगवान् ही हैं।।80।।

(उल्लेख संख्या - 44) अध्याय 22 श्लोक 81 (प्रथम अंश)

लोकात्ममूर्त्तिः सर्वेषां पूर्वेषामपि पूर्वजः। आधारः सर्वविद्यानां स्वयमेव हरिः स्थितः।।81।।

अनुवाद :- सभी पूर्वजों के पूर्वज तथा समस्त विद्याओं के आधार श्रीहरि ही स्वयं लोकमयस्वरूप से स्थित हैं।।81।।

(उल्लेख संख्या - 45) अध्याय 22 श्लोक 82 (प्रथम अंश)

देवमानुषपश्वादिस्वरूपैर्बहुभिः स्थितः। ततः सर्वेश्वरो नन्तो भूतमूर्तिरमूर्तिमान्।।82।।

अनुवाद :- निराकार और सर्वेश्वर श्रीअनन्त ही भूतस्वरूप होकर देव, मनुष्य और पुश आदि नानारूपोंसे स्थित हैं।।82।।

(उल्लेख संख्या - 46) अध्याय 7 श्लोक 40 (द्वितीय अंश)

स च विष्णुः परं ब्रह्म यतः सर्वमिदं जगत्। जगच्च यो यत्र चेदं यस्मिंश्च लयमेष्यति।।40।।

अनुवाद :– जिससे यह सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न हुआ है, जो स्वयं जगत्रूप से स्थित है, जिसमें यह स्थित है तथा जिसमें यह लीन हो जाऐगा, वह परब्रह्म ही विष्णुभगवान् हैं।।40।।

(उल्लेख संख्या - 47) अध्याय 7 श्लोक 41 (द्वितीय अंश)

तद्ब्रह्म तत्परं धाम सदसत्परमं पदम्। यस्य सर्वमभेदेन यतश्चैतच्चराचरम्।।41।।

अनुवाद :- वह ब्रह्म ही उन (विष्णु) का परमधाम (परस्वरूप) है, वह पद सत् और असत् दोनों से विलक्षण है तथा उससे अभिन्न हुआ ही यह सम्पूर्ण चराचर जगत् उससे उत्पन्न हुआ है।।41।।

(उल्लेख संख्या - 48) अध्याय 1 श्लोक 83 (चतुर्थ अंश)

न ह्यादिमध्यान्तमजस्य यस्य विझ्मो वयं सर्वमयस्य धातुः।

न च स्वरूपं न परं स्वभावं न चैव सारं परमेश्वरस्य।।83।।

अनुवाद :- श्रीब्रह्माजीने कहा-जिस अजन्मा, सर्वमय, विधाता परमेश्वर का आदि, मध्य, अन्त, स्वरूप, स्वभाव और सार हम नहीं जान पाते।।83।।

(उल्लेख संख्या - 49) अध्याय 1 श्लोक 84 (चतुर्थ अंश)

कलामुहूर्तादिमयश्च कालो न यद्विभूतेः परिणामहेतुः।

अजन्मनाशस्य सदैकमूर्तेरनामरूपस्य सनातनस्य।।84।।

अनुवाद :– कलामुहूर्त्तादिमय काल भी जिसकी विभूतिके परिणाम का कारण नहीं हो सकता, जिसका जन्म और मरण नहीं होता, जो सनातन और सर्वदा एकरूप है तथा जो नाम और रूपसे रहित है।।84।।

(उल्लेख संख्या - 50) अध्याय 1 श्लोक 85 (चतुर्थ अंश)

यस्य प्रसादादहमच्युतस्य भूतः प्रजासष्टिकरो न्तकारी।

क्रोधाच्च रूद्रः स्थितिहेतुभूतो यस्माच्च मध्ये पुरुषः परस्मात्।।85।।

अनुवाद :- जिस अच्युतकी कपासे मैं प्रजाका उत्पत्तिकर्ता हूँ, जिसके क्रोध से उत्पन्न हुआ रूद्र सष्टिका अन्तकर्त्ता है तथा जिस परमात्मासे मध्यमें जगत्स्थितिकारी विष्णुरूप पुरूषका प्रादुर्भाव हुआ है।।85।।

(उल्लेख संख्या - 51) अध्याय 1 श्लोक 86 (चतुर्थ अंश)

मद्रूपमास्थाय सजत्यजो यः स्थितौ च यो सौ पुरूषस्वरूपी।

रूद्रस्वरूपेण च यो त्ति विश्वं धत्तें तथानन्तवपुस्समस्तम्।।86।।

अनुवाद :- जो मेरा रूप धारणकर संसारकी रचना करता है, स्थितिके समय जो पुरूषरूप (विष्णु) है तथा जो रूद्ररूप से सम्पूर्ण विश्वका ग्रास कर जाता है एवं अनन्तरूपसे सम्पूर्ण जगत् को धारण करता है।।86।।

(उल्लेख संख्या - 52) अध्याय 1 श्लोक 35 (पंचम अंश)

द्वे विद्ये त्वमनामनाय परा चैवापरा तथा।त एव भवतो रूपे मूर्तामूर्तात्मिके प्रभो।।35।।

अनुवाद :– ब्रह्माजी बोले–हे वेदवाणीके अगोचर प्रभो! परा और अपरा–ये दोनों विद्याएँ आप ही हैं। हे नाथ! वे दोनों आपहीके मूर्त और अमूर्त रूप हैं।।35।।

(उल्लेख संख्या - 53 अध्याय 1 श्लोक 36 (पंचम अंश)

द्वे ब्रह्मणी त्वणीयो तिस्थूलात्मन्सर्व सर्ववित्। शब्दब्रह्म परं चैव ब्रह्म ब्रह्ममयस्य यत्।।36।।

अनुवाद :- हे अत्यन्त सुक्ष्म! हे विराट्स्वरूप! हे सर्व! हे सर्वज्ञ! शब्दब्रह्म और परब्रह्म-ये दोनों आप ब्रह्ममय के ही रूप हैं।।36।।

(उल्लेख संख्या - 54) अध्याय 7 श्लोक 1 (द्वितीय अंश)

श्रीमैत्रय उवाच

कथितं भूतलं ब्रह्मन्ममैतदखिलं त्वया। भुवर्लोकादिकाँल्लोकाञ्छ्रोतुमिच्छाम्यहं मुने।।1।।

अनुवाद :– श्री मैत्रेयजी बोले–ब्रह्मन्! आपने मुझसे समस्त भूमण्डलका वर्णन किया। हे मुने! अब मैं भुवर्लोक आदि समस्त लोकोंके विषयमें सुनना चाहता हूँ।।1।।

(उल्लेख संख्या - 55) अध्याय 7 श्लोक 2 (द्वितीय अंश)

तथैव ग्रहसंस्थानं प्रमाणानि यथा तथा। समाचक्ष्व महाभाग तन्मह्यं परिपच्छते।।2।।

अनुवाद :– हे महाभाग! मुझ जिज्ञासु से आप ग्रहगणकी स्थिति तथा उनके परिणाम आदि का यथावत् वर्णन कीजिये।।2।।

(उल्लेख संख्या - 56) अध्याय 7 श्लोक 3 (द्वितीय अंश)

श्रीपराशर उवाच

रविचन्द्रमसोर्यावन्मयूखैरवभास्यते। ससमुद्रसरिच्छैला तावती पथिवी स्मता।।3।।

अनुवाद :– श्री पराशरजी बोले–जितनी दूरतक सूर्य और चन्द्रमा की किरणों का प्रकाश जाता है; समुद्र, नदी और पर्वतादिसे युक्त उतना प्रदेश पथिवी कहलाता है।।3।।

(उल्लेख संख्या - 57) अध्याय 7 श्लोक 4 (द्वितीय अंश)

यावत्प्रमाणा पथिवी विस्तारपरिमण्डलात्। नभस्तावत्प्रमाणं वै व्यासमण्डलतो द्विज।।4।।

अनुवाद :– हे द्विज! जितना पथिवीका विस्तार और परिमण्डल (घेरा) है उतना ही विस्तार और परिमण्डल भुवर्लोकका भी है।।4।।

(उल्लेख संख्या - 58) अध्याय 7 श्लोक 5 (द्वितीय अंश)

भूमेर्योजनलक्षे तु सौरं मैत्रेय मण्डलम्। लक्षाद्दिवाकरस्यापि मण्डलं शशिनः स्थितम्।।5।।

अनुवाद :– हे मैत्रेय! **पथिवी से एक लाख योजन दूर सूर्यमण्डल है और सूर्यमण्डल से भी एक लक्ष योजनके अन्तरपर चन्द्रमण्डल है**।।5।।

(उल्लेख संख्या - 59) अध्याय 7 श्लोक 6 (द्वितीय अंश)

पूर्णे शतसहस्रे तु योजनानां निशाकरात्। नक्षत्रमण्डलं कत्स्नमुपरिष्टात्प्रकाशते।।6।।

अनुवाद :- चन्द्रमा से पूरे सौ हजार (एक लाख) योजन ऊपर सम्पूर्ण नक्षत्रमण्डल प्रकाशित हो रहा है।।6।।

(उल्लेख संख्या - 60) अध्याय 7 श्लोक 7 (द्वितीय अंश)

द्वे लक्षे चोत्तरे ब्रह्मन् बुधो नक्षत्रमण्डलात्। तावत्प्रमाणभागे तु बुधस्याप्युशनाः स्थितः।।7।।

अनुवाद :– हे ब्रह्मन्! नक्षत्रमण्डल से दो लाख योजन ऊपर बुध और बुध से भी दो लक्ष योजन ऊपर शुक्र स्थित है।।7।।

(उल्लेख संख्या - 61) अध्याय 7 श्लोक 8 (द्वितीय अंश)

अङ्गारको पि शुक्रस्य तत्प्रमाणे व्यवस्थितः। लक्षद्वये तु भौमस्य स्थितो देवपुरोहितः।।8।।

अनुवाद :– शुक्र से इतनी ही दूरी पर मंगल है और मंगल से भी दो लाख योजन ऊपर बहस्पतिजी हैं।।8।।

(उल्लेख संख्या - 62) अध्याय 7 श्लोक 9 (द्वितीय अंश)

शौरिर्बहस्पतेश्चोर्ध्वं द्विलक्षे समवस्थितः। सप्तर्षिमण्डलं तस्माल्लक्षमेकं द्विजोत्तम।।9।।

अनुवाद :– हे द्विजोत्तम! बहस्पतिजी से दो लाख योजन ऊपर शनि हैं और शनि से एक लक्ष योजनके अन्तर पर सप्तर्षिमण्डल है।।9।।

(उल्लेख संख्या - 63) अध्याय 7 श्लोक 10 (द्वितीय अंश)

ऋषिभ्यस्तु सहस्राणां शतादूर्ध्वं व्यवस्थितः।मेढीभूतः समस्तस्य ज्योतिश्चक्रस्य वै ध्रुवः।।10।।

अनुवाद :– तथा सप्तर्षियों से भी सौ हजार योजन ऊपर समस्त ज्योतिश्चक्रकी नाभिरूप ध्रुवमण्डल स्थित है।।10।।

(उल्लेख संख्या -64) अध्याय 7 श्लोक 11 (द्वितीय अंश)

त्रैलोक्यमेतत्कथितमुत्सेधेन महामुने। इज्याफलस्य भूरेषा इज्या चात्र प्रतिष्ठिता।।11।।

अनुवाद :- हे महामुने! मैंने तुमसे यह त्रिलोकी की उच्चता के विषय में वर्णन किया। यह त्रिलोकी यज्ञफलकी भोग-भूमि है और यज्ञानुष्ठानकी स्थिति इस भारतवर्षमें ही है।।11।।

(उल्लेख संख्या - 65) अध्याय 7 श्लोक 12 (द्वितीय अंश)

ध्रुवादूर्ध्वं महर्लोको यत्र ते कल्पवासिनः। एकयोजनकोटिस्तु यत्र ते कल्पवासिनः।।12।।

अनुवाद :- ध्रुव से एक करोड़ योजन ऊपर महर्लोक है, जहाँ कल्पान्त-पर्यन्त रहने वाले भृगु आदि सिद्धगण रहते हैं।।12।।

(उल्लेख संख्या - 66) अध्याय 7 श्लोक 13 (द्वितीय अंश)

द्वे कोटी तु जनो लोको यत्र ते ब्रह्मणः सुताः। सनन्दनाद्याः प्रथिता मैत्रेयामलचेतसः।।13।।

अनुवाद :– हे मैत्रेय! उससे भी दो करोड़ योजन ऊपर जनलोक है जिसमें ब्रह्माजी के प्रख्यात पुत्र निर्मलचित्त सनकादि रहते हैं।।13।।

(उल्लेख संख्या - 67) अध्याय 7 श्लोक 14 (द्वितीय अंश)

चतुर्गुणोत्तरे चोर्ध्वं जनलोकात्तपः स्थितम्। वैराजा यत्र ते देवाः स्थिता दाहविवर्जिताः।।24।।

अनुवाद :– जनलोकसे चौगुना अर्थात् आठ करोड़ योजन ऊपर तपलोक है; वहाँ वैराज नामक देवगणों का निवास है जिनका कभी दाह नहीं होता।।14।।

(उल्लेख संख्या - 68) अध्याय 7 श्लोक 15 (द्वितीय अंश)

षड्गुणेन तपोलोकात्सत्यलोको विराजते। अपुनर्मारका यत्र ब्रह्मलोको हि स स्मृतः।।15।।

अनुवाद :- तपलोकसे छः गुना अर्थात् बारह करोड़ योजनके अन्तरपर सत्यलोक सुशोभित है जो ब्रह्मलोक भी कहलाता है और जिसमें फिर न मरनेवाले अमरगण निवास करते हैं।।15।।

(उल्लेख संख्या - 69) अध्याय 7 श्लोक 16 (द्वितीय अंश)

पादगम्यन्तु यत्किञ्चिद्वस्त्वस्ति पृथिवीमयम्। स भूर्लोकः समाख्यातो विस्तरो स्य मयोदितः।।16।।

अनुवाद :– जो भी पार्थिव वस्तु चरणसञ्चार के योग्य है वह भुर्लोक ही है। उसका विस्तार मैं कह चुका।।16।।

(उल्लेख संख्या - 70) अध्याय 7 श्लोक 17 (द्वितीय अंश)

भूमिसूर्यान्तरं यच्च सिद्धादिमुनिसेवितम्। भुवर्लोकस्तु सो प्युक्तो द्वितीयो मुनिसत्तम।।17।।

अनुवाद :– हे मुनिश्रेष्ठ! पृथिवी और सूर्य के मध्यमें जो सिद्धगण और मुनिगण–सेवित स्थान है, वही दूसरा भुवर्लोक है।।17।।

(उल्लेख संख्या - 71) अध्याय 7 श्लोक 18 (द्वितीय अंश)

ध्रुवसूर्यान्तरं यच्च नियुतानि चतुर्दश। स्वर्लोकः सो पि गदितो लोकसंस्थानचिन्तकैः।।18।।

अनुवाद :- सूर्य और ध्रुव के बीच में जो चौदह लक्ष योजनका अन्तर है, उसीको लोकस्थितिका विचार करने वालोंने स्वर्लोक कहा है।।18।।

(उल्लेख संख्या - 72) अध्याय 7 श्लोक 19 (द्वितीय अंश)

त्रैलोक्यमेतत्कृतकं मैत्रेय परिपठ्यते। जनस्तपस्तथा सत्यमिति चाकृतकं त्रयम्।।19।।

अनुवाद :– हे मैत्रेय! ये (भूः, भुवः, स्वः) 'कृतक' त्रैलोक्य कहलाते हैं और जन, तप तथा सत्य–ये तीनों 'अकृतक' लोक हैं।।19।।

(उल्लेख संख्या - 73) अध्याय 7 श्लोक 20 (द्वितीय अंश)

कृतकाकृतयोर्मध्ये महर्लोक इति स्मृतः। शून्यो भवति कल्पान्ते यो त्यन्तं न विनश्यति।।20।।

अनुवाद :– इन कृतक और अकृतक त्रिलोकियों के मध्यमें **महर्लोक कहा जाता है, जो कल्पान्त में केवल जनशून्य हो जाता है,** अत्यन्त नष्ट नहीं होता इसलिए यह 'कृतकाकृत' कहलाता है।।20।।

(उल्लेख संख्या - 74) अध्याय 7 श्लोक 21 (द्वितीय अंश)

एते सप्त मया लोका मैत्रेय कथितास्तव। पातालानि च सप्तैव ब्रह्माण्डस्यैष विस्तरः।।21।।

अनुवाद :– हे मैत्रेय! इस प्रकार मैंने तुमसे **ये सात लोक और सात ही पाताल कहे। इस ब्रह्माण्ड का बस इतना ही विस्तार है।**।21।।

(उल्लेख संख्या - 75) अध्याय 7 श्लोक 22 (द्वितीय अंश)

एतदण्डकटाहेन तिर्यक् चोर्ध्वमधस्तथा। कपित्थस्य यथा बीजं सर्वतो वै समावृतम्।।22।।

अनुवाद :– यह ब्रह्माण्ड कपित्थ (कैथे) के बीजके समान ऊपर–नीचे सब ओर अण्डकटाहसे घिरा हुआ है।।22।।

(उल्लेख संख्या - 76) अध्याय 7 श्लोक 23 (द्वितीय अंश)

दशोत्तरेण पयसा मैत्रेयाण्डं च तद्वृतम्। सर्वो म्बुपरिधानो सौ वह्निना वेष्टितो बहिः।।23।।

अनुवाद :– हे मैत्रेय! यह अण्ड अपने से दसगुने जल से आवृत है और वह जलका सम्पूर्ण आवरण अग्नि से घिरा हुआ है।।23।।

(उल्लेख संख्या - 77) अध्याय 7 श्लोक 24 (द्वितीय अंश)

वह्निश्च वायुना वायुमैत्रेय नभसा वृतः। भूतादिना नभः सो पि महता परिवेष्टितः।

दशोत्तराण्यशेषाणि मैत्रेयैतानि सप्त वै।।24।।

अनुवाद :– अग्नि वायु से और वायु आकाश से परिवेष्टित है तथा आकाश भूतों के कारण तामस अहंकार और अहंकार महत्तत्वसे घिरा हुआ है। हे मैत्रेय! ये सातों उत्तरोत्तर एक–दूसरे से दसगुने हैं।।24।।

(उल्लेख संख्या - 78) अध्याय 7 श्लोक 25–26 (द्वितीय अंश)

महान्तं च समावृत्य प्रधानं समवस्थितम्। अनन्तस्य न तस्यान्तः संख्यानं चापि विद्यते।।25।।

तदनन्तमसंख्यातप्रमाणं चापि वै यतः। हेतुभूतमशेषस्य प्रकृतिः सा परा मुने।।26।।

अनुवाद :– महत्तत्वको भी प्रधानने आवृत कर रखा है। वह अनन्त है; तथा उसका न कभी अन्त (नाश) होता है और न कोई संख्या ही है; क्योंकि हे मुने! वह अनन्त, असंख्येय, अपरिमेय और सम्पूर्ण जगत्का कारण है और वही परा प्रकृति है।।25–26।।

(उल्लेख संख्या - 79) अध्याय 7 श्लोक 27 (द्वितीय अंश)

अण्डानां तु सहस्राणां सहस्राण्ययुतानि च। ईदृशानां तथा तत्र कोटिकोटिशतानि च।।27।।

अनुवाद :- उसमें ऐसे-ऐसे हजारों, लाखों तथा सैकड़ों करोड़ ब्रह्माण्ड हैं।।27।।

''श्री विष्णु पुराण के उपरोक्त उल्लेखों का सारांश''

उपरोक्त श्री विष्णु पुराण के लेख से निम्न तथ्य स्पष्ट हुए :- 1. श्री विष्णु पुराण के वक्ता श्री पारासर जी हैं जो श्री कृष्णद्वैपायन अर्थात् वेदव्यास जी के पुज्य पिता जी हैं। श्री वेद व्यास जी अठारह पुराणों के लेखक हैं। सर्व पुराणों तथा चारों वेदों, श्री मद्भगवत् गीता तथा श्री मद्भागवत सुधासागर के लेखक भी श्री वेद व्यास जी हैं। सर्व पुराणों का ज्ञान दाता श्री ब्रह्मा जी (पुत्र श्री काल रूपी ब्रह्म) हैं। अठारह पुराणों का ज्ञान एक बोध है अर्थात् एक ही ज्ञान है। जो ब्रह्मा जी द्वारा कहा गया है। उसी ज्ञान को अन्य ऋषियों ने श्री ब्रह्मा जी से सुना फिर उन्होंने अन्य को बताया फिर आगे से आगे वक्ता इस ज्ञान का प्रचार करने लगे तथा कुछ अपना अनुभव भी मिलाने लगे। श्री विष्णु पुराण में पुराण वक्ता श्री पारासर जी ने कहा है कि यह ज्ञान दक्षादि ऋषियों ने राजा पुरूकुत्स को सुनाया, पुरूकुत्स ने सारस्वत को सुनाया तथा सारस्वत ने मुझे (पारासर जी को) सुनाया जो श्री विष्णु पुराण नाम से श्री व्यास जी ने लीपिबद्ध

किया। श्री विष्णु पुराण (प्रथम अंश) अध्याय 9 श्लोक 56 में लिखा है कि ''जिस अभूतपूर्व देव की ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव रूप शक्तियाँ हैं वही भगवान विष्णु का परमपद है'' फिर (प्रथम अंश) अध्याय 22 श्लोक 58 में लिखा है कि ''ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव, ब्रह्म की प्रधान शक्तियाँ हैं'' फिर (प्रथम अंश) अध्याय 1 श्लोक 36 में लिखा है कि ''शब्द ब्रह्म तथा परब्रह्म आप ब्रह्ममय अर्थात् ब्रह्म के ही रूप हैं'' फिर (द्वितीय अंश) अध्याय 7 श्लोक 41 में लिखा है कि वह ब्रह्म (तत् ब्रह्म) ही उन (विष्णु) का परम धाम है। वह पद सत् (अक्षर पुरूष) तथा असत् (क्षर पुरूष) से विलक्षण है तथा उस से भिन्न हुआ ही यह सम्पूर्ण चराचर जगत् उसी से उत्पन्न हुआ है।'' फिर (चतुर्थ अंश) अध्याय 1 श्लोक 85 में लिखा है कि ''श्री विष्णु पुराण के वक्ता श्री पारासर जी ने कहा है कि श्री ब्रह्मा जी ने कहा ''मैं जो प्रजा की उत्पति करता हूँ तथा रूद्र जो संहार करता है तथा जो विष्णु स्थिति करता है, हम उसी परमात्मा ब्रह्म से उत्पन्न हुए हैं'' फिर (प्रथम अंश) अध्याय 9 श्लोक 54 में लिखा है कि योगीजन ओंकार अर्थात् ओ3म् नाम द्वारा जिस का साक्षात्कार करते हैं वह श्री विष्णु का परमपद है।'' फिर (प्रथम अंश) अध्याय 9 श्लोक 55 में लिखा है कि ''जिसको देवगण, मुनिगण, शंकर और मैं (ब्रह्मा) कोई भी नहीं जानते वह श्री विष्णु का परमपद है।''

श्री विष्णु पुराण के लेख से निष्कर्ष निकला कि :-

1. श्री ब्रह्मा जी (जिसने सर्व पुराणों का ज्ञान कहा है उसी को अन्य ने आगे से आगे बताया है) अल्पज्ञ हैं। क्योंकि वे कह रहे हैं (क) कि श्री विष्णु के परमपद के विषय मैं क्या शंकर व देवता व मुनिगण कोई नहीं जानते। यह भी सिद्ध हुआ कि श्री शंकर जी व अन्य देवगण तथा मुनिजन भी अल्पज्ञ हैं अर्थात् पूर्ण ज्ञानी नहीं हैं।

(ख) उल्लेख संख्या (58-59) में श्री विष्णु पुराण के वक्ता अर्थात् श्री परासर जी ने कहा है कि पथ्वी से एक लाख योजन अर्थात् 12 लाख किलोमीटर दूर सूर्य है सूर्य से एक लाख योजन अर्थात् 12 लाख किलो मीटर दूर चन्द्रमा है। इस प्रकार चन्द्रमा की पथ्वी से दूरी 24 लाख कि.मी. बनती है। जो श्री पारासर की प्रत्यक्ष अज्ञानता का प्रमाण। जिसमें सूर्य को पथ्वी के अति निकटवर्ति कहा तथा चन्द्रमा को सूर्य से भी 12 लाख कि.मी. दूर कहा है। जबकि वर्तमान में खगोलविद्धों ने सिद्ध किया है कि चाँद, पथ्वी के अति निकट है तथा पथ्वी का उपग्रह है जो धरती के चारों और चक्र लगाता रहा है।

प्रमाण :- उपरोक्त श्री विष्णु पुराण उल्लेख संख्या 46, 48, 58, 59 में

2. श्री ब्रह्मा, श्री विष्णु तथा श्री शिव का उत्पति करता ब्रह्म है जिस ब्रह्म की प्रधान शक्तियाँ ब्रह्मा-विष्णु-शिव हैं। भावार्थ है कि ब्रह्म अर्थात् क्षर पुरूष, ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव से अन्य तथा शक्तिशाली है तथा ब्रह्मा,विष्णु व महेश का उत्पति कर्ता अर्थात् पिता है।

प्रमाण :- उपरोक्त श्री विष्णु पुराण उल्लेख संख्या 26, 40, 42, 47, 50 में है।

3. अक्षर पुरूष को परब्रह्म कहते हैं।

प्रमाण :- उल्लेख संख्या 38 में।

4. ब्रह्म लोक को सत्यलोक (सतलोक) कहते हैं।

प्रमाण :- उल्लेख संख्या 68 में।

5. काल भगवान ही अपने अन्य ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव के रूप धारण करके धोखा देता है।

प्रमाण :- उल्लेख संख्या :- 51,1 में।

6. क्षर पुरूष अर्थात् ब्रह्म काल (जिसे असत् भी कहते हैं) तथा अक्षर पुरूष अर्थात् परब्रह्म (जिसे सत् भी कहते हैं) से अन्य परम अक्षर ब्रह्म है जो इन दोनों से विलक्षण अर्थात् निराला व समर्थ है। उसी परम अक्षर ब्रह्म से सर्व चराचर जगत् भिन्न हुआ है। श्री विष्णु पुराण का वक्ता श्री पारासर ऋषि तत्वज्ञानहीन है जिस कारण से ब्रह्म, को ही परब्रह्म तथा विष्णु तथा परम अक्षर ब्रह्म को भी ब्रह्म काल ही कह रहा है परन्तु तथ्य स्पष्ट करते हैं कि पूर्ण परमात्मा अर्थात् परम अक्षर ब्रह्म सर्व शक्तिमान सर्व का उत्पति करता तथा सर्व को व्यवस्थित करने वाला है वही सर्व का पालन करता है तथा ब्रह्म काल (क्षर पुरूष) तथा परब्रह्म (अक्षर पुरूष) से अन्य (भिन्न) है। उसी परमदिव्य पुरूष अर्थात् पूर्ण ब्रह्म (सत्यपुरूष) से सर्व चराचर जगत् उत्पन्न हुआ तथा भिन्न हुआ है। परमेश्वर कबीर बन्दी छोड़ द्वारा बताई संष्टि रचना का पूर्ण समर्थन श्री विष्णु पुराण में वर्णित है। इससे सिद्ध हुआ कि बन्दी छोड़ कबीर परमेश्वर जी द्वारा दिया गया संष्टि रचना का ज्ञान सत्य है। जिसे वर्तमान तक कोई भी ऋषि, देव तथा गुरु, पण्डित कोई भी नहीं बता सका। इससे यह भी सिद्ध हुआ कि सर्व ऋषि व गुरु जन तत्वज्ञानहीन थे तथा मानव समाज को दिशा भ्रष्ट करते रहे। जिस कारण से मानवता का ह्रास हुआ है।

{विशेष :- (प्रथम अंश) अध्याय 22 श्लोक 55 का अनुवाद उचित नहीं किया गया है कंप्या अनुवाद पढ़ें जो उचित है।

अनुवाद :- जिस तत् ब्रह्म अर्थात् परमअक्षर ब्रह्म के विषय में श्रीमद्भगवत् गीता अध्याय 7 श्लोक 29 अध्याय 8 श्लोक 1,3,8,9 तथा 10 अध्याय 15 श्लोक 1,4,16 तथा 17 में वर्णन है। उसी के विषय में श्री विष्णु पुराण (प्रथम अंश) अध्याय 22 श्लोक 54-55 में भी किया है श्लोक 54 में कहा है कि (तत् परमम् ब्रह्म) उस परम अक्षर ब्रह्म अर्थात् परम दिव्य पुरूष की साधना करने वाले योगी अर्थात् शास्त्रविधि अनुसार साधना करने वाले साधक पूर्ण मोक्ष प्राप्त करते हैं। जो फिर लौटकर संसार में कभी नहीं आते। उसी परम अक्षर ब्रह्म अर्थात् पुरूषोत्तम के विषय में श्लोक 55 में कहा है कि ''उस परम अक्षर ब्रह्म के दो रूप है मूर्त अर्थात् साकार तथा अमूर्त अर्थात् अव्यक्त क्योंकि पूर्ण ब्रह्म दूर देश में तेजोमय शरीर युक्त है। जब वह परम अक्षर ब्रह्म इस लोक में आता है तो अन्य हल्के तेज युक्त शरीर धारण करके आता है। इसलिए मूर्त तथा अमूर्त'' कहा है और वही परम अक्षर ब्रह्म ही क्षर पुरूष (ब्रह्म/काल) तथा अक्षर पुरूष (परब्रह्म) रूपी प्रभुओं तथा सर्व प्राणियों को व्यवस्थित किए हुए है। जैसे श्री मद् भगवत् गीता अध्याय 15 श्लोक 16-17 में कहा है क्षर पुरूष तथा अक्षर पुरूष दो परमात्मा इस लोक में जाने जाते हैं। इसी प्रकार दो स्थिती इस लोक में प्राणियों की है। कि स्थूल शरीर सबका नाशवान है आत्मा सब की अविनाशी है। (उत्तम पुरूषः तू अन्यः) परन्तु वास्तव में श्रेष्ट परमात्मा तो इन दोनों से अन्य (भिन्न) है वही वास्तव में अविनाशी है तथा सर्व का पालनकर्ता है।}

7. अनेक ब्रह्मण्डों का प्रमाण :- उल्लेख संख्या 79 में।

8. ब्राह्मण मोक्ष प्राप्त नहीं करते अपितु पितं बनकर पितंलोक में निवास करते हैं :- प्रमाण :- उल्लेख संख्या 29 में।

9. गंहस्थों का स्थान भी पितं लोक है जो पितं पूजते हैं क्योंकि गीता अध्याय 9 श्लोक 25 प्रमाण है कि जो पितं पूजते हैं वे पितरों को प्राप्त होते हैं अर्थात् पितं लोक में चले जाते हैं। मोक्ष प्राप्त नहीं करते।

प्रमाण :- उल्लेख संख्या 32 में।

10. अठासी हजार ऋषियों का स्थान अठासी हजार खेड़े हैं वही स्थान गुरुकुल वासियों का है अर्थात् ये सर्व मोक्ष से वंचित रह जाते हैं।

प्रमाण :- उल्लेख संख्या 31,32 में।

11. वानप्रस्थों का स्थान सप्तऋषि लोक है तथा सन्यासियों का स्थान ब्रह्मलोक है। गीता अध्याय 8 श्लोक 16 में कहा है कि ब्रह्मलोक प्रयन्त सर्व लोक पुनरावत्ति में हैं अर्थात् ब्रह्मलोक में गए साधक भी जन्म-मरण के चक्र में ही रहते हैं मोक्ष प्राप्त नहीं करते।

प्रमाण :- उल्लेख संख्या 32 में।

12. जल में एक अण्डा उत्पन्न हुआ उस अण्ड में ब्रह्म काल विराजमान था। उसी ब्रह्म काल अर्थात् महाविष्णु ने ब्रह्मा रूपधारण किया।

प्रमाण :- उल्लेख 19,20,21 में।

''पवित्र श्रीमद्भगवत गीता में सष्टि रचना का प्रमाण''

(दुर्गा तथा काल ब्रह्म की मैथुन क्रिया से ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव की उत्पत्ति)

इसी का प्रमाण पवित्र गीता जी अध्याय 14 श्लोक 3 से 5 तक है। ब्रह्म (काल) कह रहा है कि प्रकति (दुर्गा) तो मेरी पत्नी है, मैं ब्रह्म(काल) इसका पति हूँ। हम दोनों के संयोग से सर्व प्राणियों सहित तीनों गुणों (रजगुण - ब्रह्मा जी, सतगुण - विष्णु जी, तमगुण - शिवजी) की उत्पत्ति हुई है। मैं (ब्रह्म) सर्व प्राणियों का पिता हूँ तथा प्रकति (दुर्गा) इनकी माता है। मैं इसके उदर में बीज स्थापना करता हूँ जिससे सर्व प्राणियों की उत्पत्ति होती है।

यही प्रमाण अध्याय 15 श्लोक 1 से 4 तथा 16, 17 में भी है।

गीता अध्याय नं. 15 का श्लोक नं. 1

ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित्।१।

ऊर्ध्वमूलम्, अधःशाखम्, अश्वत्थम्, प्राहुः, अव्ययम्,
छन्दांसि, यस्य, पर्णानि, यः, तम्, वेद, सः, वेदवित्।।1।।

अनुवाद : (ऊर्ध्वमूलम्) ऊपर को पूर्ण परमात्मा आदि पुरुष परमेश्वर रूपी जड़ वाला (अधःशाखम्) नीचे को शाखा वाला (अव्ययम्) अविनाशी (अश्वत्थम्) विस्तारित, पीपल का वक्ष रूप संसार है (यस्य) जिसके (छन्दांसि) छोटे–छोटे हिस्से या टहनियाँ (पर्णानि) पत्ते (प्राहुः) कहे हैं (तम्) उस संसार रूप वक्षको (यः) जो (वेद) सर्वांगों सहित जानता है (सः) वह (वेदवित्) पूर्ण ज्ञानी अर्थात् तत्वदर्शी है। (1)

केवल हिन्दी अनुवाद : गीता का ज्ञान सुनाने वाले प्रभु ने कहा कि ऊपर को पूर्ण परमात्मा आदि पुरुष परमेश्वर रूपी जड़ वाला नीचे को शाखा वाला अविनाशी विस्तारित, पीपल का वक्ष रूप संसार है जिसके छोटे-छोटे हिस्से या टहनियाँ पत्ते कहे हैं उस संसार रूप वक्ष को जो सर्वांगों सहित जानता है वह पूर्ण ज्ञानी अर्थात् तत्वदर्शी है। (1)

भावार्थ : ***गीता अध्याय 4 श्लोक 34 में जिस तत्वदर्शी संत के विषय में कहा है, उसकी पहचान अध्याय 15 श्लोक 1 में बताई है कि वह तत्वदर्शी संत कैसा होगा जो संसार रूपी वक्ष का पूर्ण विवरण बता देगा कि मूल तो पूर्ण परमात्मा है, तना अक्षर पुरुष अर्थात् परब्रह्म है, डार ब्रह्म अर्थात् क्षर पुरुष है तथा शाखा तीनों गुण (रजगुण ब्रह्मा जी, सतगुण विष्णु जी, तमगुण शिव जी)है तथा पात रूप संसार अर्थात् सर्व ब्रह्मण्डों का विवरण बताएगा वह तत्वदर्शी संत है।***

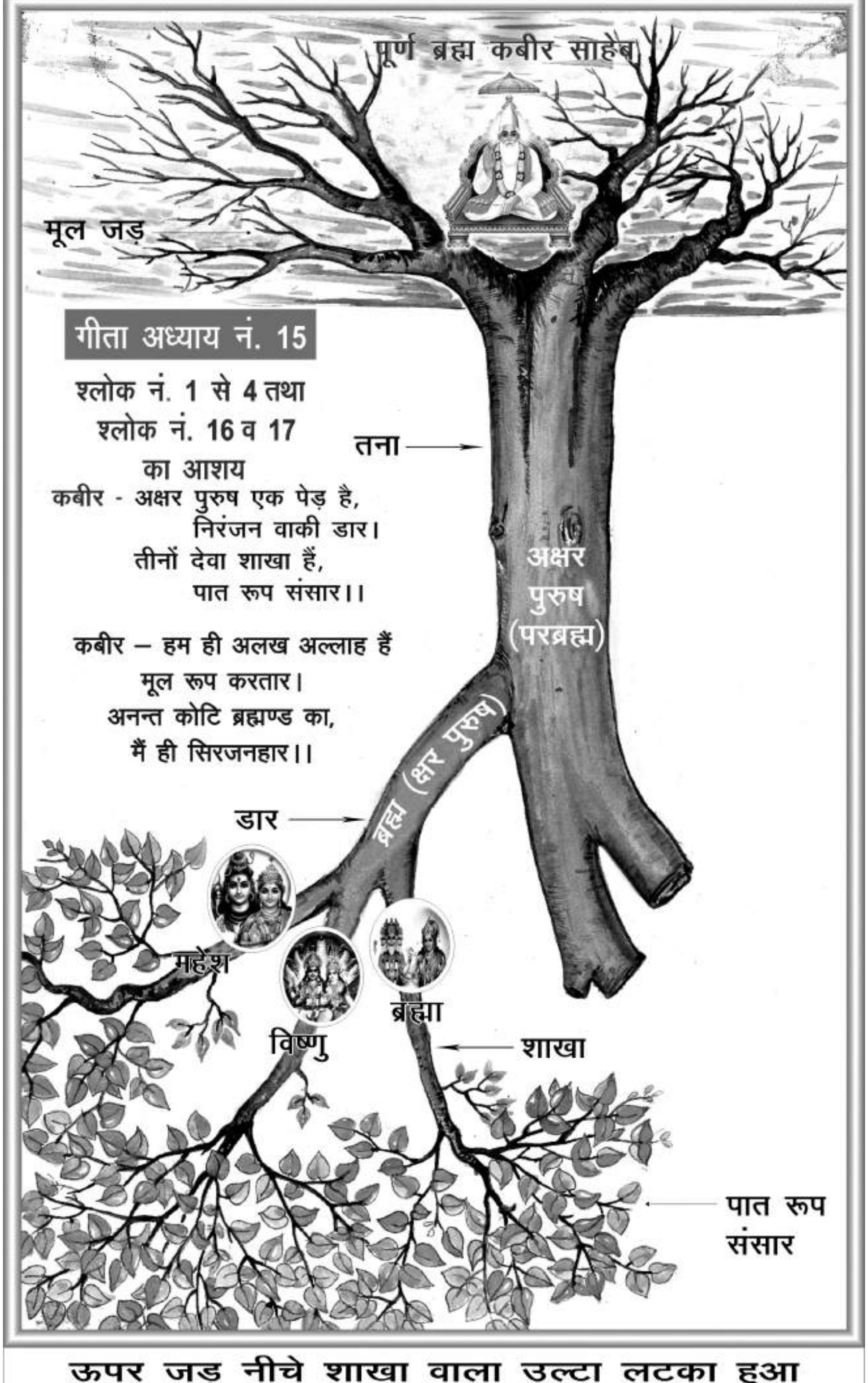

ऊपर जड़ नीचे शाखा वाला उल्टा लटका हुआ संसार रूपी वृक्ष का चित्र

गीता अध्याय नं. 15 का श्लोक नं. 2

अधश्चोर्ध्वं प्रसृतास्तस्य शाखा
गुणप्रवृद्धा विषयप्रवालाः।
अधश्च मूलान्यनुसन्ततानि
कर्मानुबन्धीनि मनुष्यलोके ।२।

अधः, च, ऊर्ध्वम्, प्रसताः, तस्य, शाखाः, गुणप्रवद्धाः, विषयप्रवालाः, अधः, च, मूलानि, अनुसन्ततानि, कर्मानुबन्धीनि, मनुष्यलोके।।2।।

अनुवाद : (तस्य) उस वक्षकी (अधः) नीचे (च) और (ऊर्ध्वम्) ऊपर (गुणप्रवद्धाः) तीनों गुणों ब्रह्मा–रजगुण, विष्णु–सतगुण, शिव–तमगुण रूपी (प्रसता) फैली हुई (विषयप्रवालाः) विकार– काम क्रोध, मोह, लोभ अहंकार रूपी कोपल (शाखाः) डाली ब्रह्मा, विष्णु, शिव (कर्मानुबन्धीनि) जीवको कर्मोमें बाँधने की (अपि) भी (मूलानि) जड़ें मुख्य कारण हैं (च) तथा (मनुष्यलोके) मनुष्यलोक अर्थात् पथ्वी लोक में (अधः) नीचे – नरक, चौरासी लाख जूनियों में (ऊर्ध्वम्) ऊपर स्वर्ग लोक आदि में (अनुसन्ततानि) व्यवस्थित किए हुए हैं।(2)

केवल हिन्दी अनुवाद : उस वक्षकी नीचे और ऊपर तीनों गुणों ब्रह्मा-रजगुण, विष्णु-सतगुण, शिव-तमगुण रूपी फैली हुई डाली जीवको कर्मों में बाँधने की भी मुख्य कारण हैं तथा मनुष्य लोक अर्थात् पथ्वी लोक में, नीचे नरक, चौरासी लाख जूनियों में ऊपर स्वर्ग लोक आदि में व्यवस्थित किए हुए हैं।(2)

गीता अध्याय नं. 15 का श्लोक नं. 3

न रूपमस्येह तथोपलभ्यते
नान्तो न चादिर्न च सम्प्रतिष्ठा।
अश्वत्थमेनं सुविरूढमूल-
मसङ्गशस्त्रेण दृढेन छित्त्वा।३।

न, रूपम्, अस्य, इह, तथा, उपलभ्यते, न, अन्तः, न, च, आदिः, न, च,
सम्प्रतिष्ठा, अश्वत्थम्, एनम्, सुविरूढमूलम्, असंगशस्त्रेण, दढेन, छित्वा।।3।।

अनुवाद : (अस्य) इस रचना का (न) नहीं (आदिः) शुरूवात (च) तथा (न) नहीं (अन्तः) अन्त है (न) नहीं (तथा) वैसा (रूपम्) स्वरूप (उपलभ्यते) पाया जाता है (च) तथा (इह) यहाँ विचार काल में अर्थात् मेरे द्वारा दिया जा रहा गीता ज्ञान में पूर्ण जानकारी मुझे भी (न) नहीं है (सम्प्रतिष्ठा) क्योंकि सर्वब्रह्मण्डों की रचना की अच्छी तरह स्थिति है का मुझे भी ज्ञान नहीं है (एनम्) इस (सुविरूढमूलम्) अच्छी तरह स्थाई स्थिति वाला (अश्वत्थम्) मजबूत स्वरूप वाले (असंङ्गशस्त्रेण) पूर्ण ज्ञान रूपी शस्त्र द्वारा (दढेन्) दढ़ता से सूक्षम वेद अर्थात् तत्वज्ञान के द्वारा जानकर अर्थात् तत्वज्ञान रूपी शस्त्र से (छित्वा) काटकर अर्थात् निरंजन की भक्ति को क्षणिक अर्थात् क्षण भंगुर जानकर ब्रह्मा, विष्णु, शिव, ब्रह्म तथा परब्रह्म से भी आगे पूर्णब्रह्म की तलाश करनी चाहिए।(3)

केवल हिन्दी अनुवाद : गीता ज्ञान देने वाले प्रभु ने कहा कि इस रचना का न ही शुरूवात तथा न ही अन्त है नहीं वैसा स्वरूप पाया जाता है तथा यहाँ विचार काल में अर्थात् मेरे द्वारा दिया जा रहा गीता ज्ञान में पूर्ण जानकारी मुझे भी नहीं है क्योंकि सर्वब्रह्मण्डों की रचना की अच्छी तरह स्थिति है का मुझे भी ज्ञान नहीं है इसे तत्वज्ञान रूपी शस्त्र द्वारा काटकर अर्थात् सूक्ष्म वेद (तत्वज्ञान के) द्वारा जानकर उसे तत्वज्ञान रूपी शस्त्र से काटकर।(3)

गीता अध्याय नं. 15 का श्लोक नं. 4

ततः पदं तत्परिमार्गितव्यं-
यस्मिन्गता न निवर्तन्ति भूयः।
तमेव चाद्यं पुरुषं प्रपद्ये
यतः प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी।४।

ततः, पदम्, तत्, परिमार्गितव्यम्, यस्मिन्, गताः, न, निवर्तन्ति, भूयः,
तम्, एव्, च, आद्यम्, पुरुषम्, प्रपद्ये, यतः, प्रवतिः, प्रसता, पुराणी ।।4।।

अनुवाद : जब तत्वदर्शी संत मिल जाए तत्वज्ञान से सर्व स्थिति को समझ कर (ततः) इसके पश्चात् (तत्) उस परमात्माके (पदम्) पद स्थान अर्थात् सतलोक को (परिमार्गितव्यम्) भलीभाँति खोजना चाहिए (यस्मिन्) जिसमें (गताः) गये हुए साधक (भूयः) फिर (न, निवर्तन्ति) लौटकर संसारमें नहीं आते (च) और (यतः) जिस परमात्मा–परम अक्षर ब्रह्म से (पुराणी) आदि (प्रवतिः) रचना–सष्टि (प्रसता) उत्पन्न हुई है (तम्) उस (आद्यम्) सनातन (पुरुषम्) पूर्ण परमात्मा की (एव) ही (प्रपद्ये) शरण में रहकर उसी की पूजा करें अर्थात् उसी पूर्ण परमात्मा की मैं भी पूजा करता हूँ।(4)

केवल हिन्दी अनुवाद : (जब तत्वदर्शी संत मिल जाए तत्वज्ञान से सर्व स्थिति को समझ कर) इसके पश्चात् उस परमात्माके परमपद अर्थात् सतलोक को भलीभाँति खोजना चाहिए जिसमें गये हुए साधक फिर लौटकर संसारमें नहीं आते और जिस परमात्मा-परम अक्षर ब्रह्म से आदि रचना-सष्टि उत्पन्न हुई है। उस पूर्ण परमात्मा की ही शरण में रहकर उसी की भक्ति करें अर्थात् उसी पूर्ण परमात्मा की मैं भी पूजा करता हूँ।(4)

गीता अध्याय नं. 15 का श्लोक नं. 16

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते। १६।

द्वौ, इमौ, पुरुषौ, लोके, क्षरः, च, अक्षरः, एव, च,
क्षरः, सर्वाणि, भूतानि, कूटस्थः, अक्षरः, उच्यते ।।16।।

अनुवाद : (लोके) इस संसारमें (द्वौ) दो प्रकारके (क्षरः) नाशवान् (च) और (अक्षरः) अविनाशी (पुरुषौ) प्रभु हैं (एव) इसी प्रकार (इमौ) इन दोनों प्रभुओं के लोकों में (सर्वाणि) सम्पूर्ण (भूतानि) प्राणियोंके शरीर तो (क्षरः) नाशवान् (च) और (कूटस्थः) जीवात्मा (अक्षरः) अविनाशी (उच्यते) कहा जाता है।(16)

केवल हिन्दी अनुवाद : इस संसार में क्षर पुरुष (ब्रह्म) तथा अक्षर पुरुष (परब्रह्म) दो प्रकार के प्रभु हैं। इसी प्रकार इन दोनों प्रभुओं के लोकों में सम्पूर्ण प्राणियोंके शरीर तो नाशवान् और जीवात्मा अविनाशी कहा जाता है।(16)

गीता अध्याय नं. 15 का श्लोक नं. 17

उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः।
यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः। १७।

उत्तमः, पुरुषः, तु, अन्यः, परमात्मा, इति, उदाहृतः,
यः, लोकत्रयम् आविश्य, बिभर्ति, अव्ययः, ईश्वरः ।।17।।

अनुवाद : गीता ज्ञान बोलने वाले ने स्पष्ट कहा कि (उत्तमः) उत्तम (पुरुषः) प्रभु (तु) तो (अन्यः) उपरोक्त दोनों प्रभुओं (क्षर पुरूष तथा अक्षर पुरूष) से भी अन्य ही है (इति) यह वास्तव में (परमात्मा) परमात्मा (उदाहृतः) कहा गया है (यः) जो (लोकत्रयम्) तीनों लोकों में (आविश्य) प्रवेश करके (बिभर्ति) सबका धारण पोषण करता है एवं (अव्ययः) अविनाशी (ईश्वरः) ईश्+वर =प्रभु श्रेष्ठ अर्थात् समर्थ प्रभु है।(17)

केवल हिन्दी अनुवाद : उत्तम प्रभु यानि पुरूषोत्तम तो उपरोक्त दोनों प्रभुओं से भी अन्य ही है यह वास्तव में परमात्मा कहा गया है जो तीनों लोकों में प्रवेश करके सबका धारण पोषण करता है एवं अविनाशी (ईश्+वर) = प्रभु श्रेष्ठ अर्थात् समर्थ प्रभु है।(17)

''सर्व प्रभुओं की आयु''

अध्याय 8 का श्लोक 17

सहस्त्रयुगपर्यन्तमहर्यद्ब्रह्मणो विदुः।
रात्रिं युगसहस्त्रान्तां तेऽहोरात्रविदो जनाः।।१७।

सहस्त्रयुगपर्यन्तम्, अहः,यत्,ब्रह्मणः, विदुः,रात्रिम्,
युगसहस्त्रान्ताम्, ते, अहोरात्रविदः, जनाः।।17।।

अनुवाद : (ब्रह्मणः) अक्षर पुरूष यानि परब्रह्म का (यत्) जो (अहः) एक दिन है उसको (सहस्त्रयुगपर्यन्तम्) एक हजार युग की अवधिवाला और (रात्रिम्) रात्रिको भी (युगसहस्त्रान्ताम्) एक हजार युगतकको अवधिवाली (विदुः) तत्वसे जानते हैं (ते) वे (जनाः) तत्वदर्शी संत (अहोरात्रविदः) दिन–रात्री के तत्वको जाननेवाले हैं। (17)

केवल हिन्दी अनुवाद : अक्षर पुरूष यानि परब्रह्म का जो एक दिन है उसको एक हजार युग की अवधिवाला और रात्रिको भी एक हजार युगतककी अवधिवाली तत्वसे जानते हैं वे तत्वदर्शी संत परब्रह्म के दिन-रात्री के तत्वको जाननेवाले हैं। (17)

विशेषः- सात त्रिलोकिय ब्रह्मा (काल के रजगुण पुत्र) की मत्यु के बाद एक त्रिलोकिय विष्णु जी की मत्यु होती है तथा सात त्रिलोकिय विष्णु (काल के सतगुण पुत्र) की मत्यु के बाद एक त्रिलोकिय शिव (ब्रह्म-काल के तमोगुण पुत्र) की मत्यु होती है। ऐसे 70000 (सतर हजार अर्थात् 0.7 लाख) त्रिलोकिय शिव की मत्यु के उपरान्त एक ब्रह्मलोकिय महाशिव (सदाशिव अर्थात् काल ब्रह्म) की मत्यु होती है। एक ब्रह्मलोकिय महाशिव की आयु जितना एक युग परब्रह्म (अक्षर पुरूष) का हुआ। ऐसे एक हजार युग अर्थात् एक हजार ब्रह्मलोकिय शिव (ब्रह्मलोक में स्वयं काल ही महाशिव रूप में रहता है) की मत्यु के बाद काल के इक्कीस ब्रह्मण्डों का विनाश हो जाता है। इसलिए यहाँ पर परब्रह्म के एक दिन जो एक हजार युग का होता है तथा इतनी ही रात्री होती है। लिखा है।

(1) रजगुण ब्रह्मा की आयु :- *ब्रह्मा का एक दिन एक हजार चतुर्युग का है तथा इतनी ही रात्री है। (एक चतुर्युग में 43,20,000 मनुष्यों वाले वर्ष होते हैं) एक महिना तीस दिन रात का है, एक वर्ष बारह महिनों का है तथा सौ वर्ष की ब्रह्मा जी की आयु है। जो सात करोड़ बीस लाख चतुर्युग की है।*

(2) सतगुण विष्णु की आयु :- *श्री ब्रह्मा जी की आयु से सात गुणा अधिक श्री विष्णु जी की आयु है अर्थात् पचास करोड़ चालीस लाख चतुर्युग की श्री विष्णु जी की आयु है।*

(3) तमगुण शिव की आयु :- *श्री विष्णु जी की आयु से श्री शिव जी की आयु सात गुणा अधिक है अर्थात् तीन अरब बावन करोड़ अस्सी लाख चतुर्युग की श्री शिव की आयु है।*

(4) काल ब्रह्म अर्थात् क्षर पुरूष की आयु :- *सात त्रिलोकिय ब्रह्मा (काल के रजगुण पुत्र) की मत्यु के बाद एक त्रिलोकिय विष्णु जी की मत्यु होती है तथा सात त्रिलोकिय विष्णु (काल के सतगुण पुत्र) की मत्यु के बाद एक त्रिलोकिय शिव (ब्रह्म/काल के तमोगुण पुत्र) की मत्यु होती है। ऐसे 70000 (सतर हजार अर्थात् 0.7 लाख) त्रिलोकिय शिव की मत्यु के उपरान्त एक ब्रह्मलोकिय महा शिव (सदाशिव अर्थात् काल) की मत्यु होती है। एक ब्रह्मलोकिय महाशिव की आयु जितना एक युग परब्रह्म (अक्षर पुरूष) का हुआ। ऐसे एक हजार युग का परब्रह्म का एक दिन*

होता है। परब्रह्म के एक दिन के समापन के पश्चात् काल ब्रह्म के इक्कीस ब्रह्मण्डों का विनाश हो जाता है तथा काल व प्रकति देवी(दुर्गा) की मत्यु होती है। परब्रह्म की रात्री (जो एक हजार युग की होती है) के समाप्त होने पर दिन के प्रारम्भ में काल व दुर्गा का पुनर् जन्म होता है फिर ये एक ब्रह्मण्ड में पहले की भांति सष्टि प्रारम्भ करते हैं। इस प्रकार परब्रह्म अर्थात् अक्षर पुरूष का एक दिन एक हजार युग का होता है तथा इतनी ही रात्रि है।

अक्षर पुरूष अर्थात् परब्रह्म की आयु :- *परब्रह्म का एक युग ब्रह्मलोकीय शिव अर्थात् महाशिव (काल ब्रह्म) की आयु के समान होता है। परब्रह्म का एक दिन एक हजार युग का तथा इतनी ही रात्री होती है। इस प्रकार परब्रह्म का एक दिन-रात दो हजार युग का हुआ। एक महिना 30 दिन का एक वर्ष 12 महिनों का तथा परब्रह्म की आयु सौ वर्ष की है। इस से सिद्ध है कि परब्रह्म अर्थात् अक्षर पुरूष भी नाशवान है। इसलिए गीता अध्याय 15 श्लोक 16-17 तथा अध्याय 8 श्लोक 20 से 22 में किसी अन्य पूर्ण परमात्मा के विषय में कहा है जो वास्तव में अविनाशी है।*

नोट :- गीता जी के अन्य अनुवाद कर्ताओं ने ब्रह्मा का एक दिन एक हजार चतुर्युग का लिखा है जो उचित नहीं है। क्योंकि मूल संस्कत में सहंसर युग लिखा है न की चतुर्युग। तथा ब्रह्मणः लिखा है न कि ब्रह्मा। तत्वज्ञान के अभाव से अर्थो का अनर्थ किया है।

भावार्थ - गीता ज्ञान दाता प्रभु ने केवल इतना ही बताया है कि यह संसार उल्टे लटके वक्ष तुल्य जानो। ऊपर जड़ें (मूल) तो पूर्ण परमात्मा है। नीचे टहनीयां आदि अन्य हिस्से जानों। इस संसार रूपी वक्ष के प्रत्येक भाग का भिन्न-भिन्न विवरण जो संत जानता है वह तत्वदर्शी संत है जिसके विषय में गीता अध्याय 4 श्लोक नं. 34 में कहा है। गीता अध्याय 15 श्लोक नं. 2-3 में केवल इतना ही बताया है कि तीन गुण रूपी शाखा हैं। यहां विचारकाल में अर्थात् गीता में आपको में (गीता ज्ञान दाता) पूर्ण जानकारी नहीं दे सकता क्योंकि मुझे इस संसार की रचना के आदि व अंत का ज्ञान नहीं है। उस के लिए गीता अध्याय 4 श्लोक नं. 34 में कहा है कि किसी तत्वदर्शी संत से उस पूर्ण परमात्मा का ज्ञान जानों इस गीता अध्याय 15 श्लोक 1 में उस तत्वदर्शी संत की पहचान बताई है कि वह संसार रूपी वक्ष के प्रत्येक भाग का ज्ञान कराएगा। उसी से पूछो। गीता अध्याय 15 के श्लोक 4 में कहा है कि उस तत्वदर्शी संत के मिल जाने के पश्चात् उस परमेश्वर के परम पद की खोज करनी चाहिए अर्थात् उस तत्वदर्शी संत के बताए अनुसार साधना करनी चाहिए जिससे पूर्ण मोक्ष(अनादि मोक्ष) प्राप्त होता है। गीता ज्ञान दाता ने कहा है कि मैं भी उसी की शरण में हूँ। गीता अध्याय 15 श्लोक 16-17 में स्पष्ट किया है कि तीन प्रभु हैं एक क्षर पुरूष (ब्रह्म) दूसरा अक्षर पुरूष (परब्रह्म) तीसरा परम अक्षर पुरूष (पूर्ण ब्रह्म)। क्षर पुरूष तथा अक्षर पुरूष वास्तव में अविनाशी नहीं हैं। वह अविनाशी परमात्मा तो इन दोनों से अन्य ही है। वही तीनों लोकों में प्रवेश करके सर्व का धारण पोषण करता है। उस संसार रूपी वक्ष का चित्र देखें इसी पुस्तक की पष्ठ संख्या 71 पर तथा संक्षिप्त विवरण निम्न पढ़ें :-

उपरोक्त श्रीमद्भगवत गीता अध्याय 15 श्लोक 1 से 4 तथा 16-17 में यह प्रमाणित हुआ कि उलटे लटके हुए संसार रूपी वक्ष की मूल अर्थात् जड़ तो परम अक्षर ब्रह्म अर्थात् पूर्ण ब्रह्म है जिससे पूर्ण वक्ष का पालन होता है तथा वक्ष का जो हिस्सा पथ्वी के बाहर जमीन के साथ दिखाई देता है वह तना होता है उसे अक्षर पुरुष अर्थात् परब्रह्म जानों। उस तने से ऊपर चल कर अन्य मोटी डार निकलती है उनमें से एक डार को ब्रह्म अर्थात् क्षर पुरुष जानों तथा उसी डार से अन्य तीन शाखाऐं निकलती हैं उन्हें ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव जानों तथा शाखाओं से आगे पत्ते रूप में सांसारिक प्राणी

जानों। उपरोक्त गीता अध्याय 15 श्लोक 16-17 में स्पष्ट है कि क्षर पुरुष (ब्रह्म) तथा अक्षर पुरुष (परब्रह्म) तथा इन दोनों के लोकों में जितने प्राणी हैं उनके स्थूल शरीर तो नाशवान हैं तथा जीवात्मा अविनाशी है अर्थात् उपरोक्त दोनों प्रभु व इनके अन्तर्गत प्राणी नाशवान हैं। भले ही अक्षर पुरुष(परब्रह्म) को अविनाशी कहा है परन्तु वास्तव में अविनाशी परमात्मा तो इन दोनों से अन्य है। वह तीनों लोकों में प्रवेश करके सबका पालन-पोषण करता है। उपरोक्त विवरण में तीन प्रभुओं का भिन्न-भिन्न विवरण दिया है।

उपरोक्त तीनों परमात्माओं की स्थिती को स्पष्ट करने के लिए उदाहरण :- (1)जैसे एक चाय पीने का प्याला होता है जो सफेद मिट्टी का बना होता है। जो हाथ से छुटते ही जमीन पर गिरते ही टुकड़े-2 हो जाता है। यह क्षर प्याला जानो। ऐसी स्थिती ब्रह्म अर्थात् क्षर पुरूष की जाने। (2) एक प्याला इस्पात (स्टील) का बना होता है। जो मिट्टी के प्याले से अधिक स्थाई है। परन्तु विनाश इस्पात का भी होता है। भले ही समय अधिक लगता है। इसी प्रकार परब्रह्म को अक्षर पुरूष अर्थात् अविनाशी प्रभु कहा है क्योंकि परब्रह्म की मत्यु उस समय होती है जिस समय तक क्षर पुरूष अर्थात् काल की मत्यु 36000 (छःत्तीस हजार) बार हो चुकी होती है। परन्तु फिर भी अक्षर पुरूष वास्तव में अविनाशी नहीं है।

इसलिए गीता अध्याय 15 श्लोक 17 में कहा है कि वास्तव में अविनाशी परमात्मा तो इन दोनों (क्षर पुरूष तथा अक्षर पुरूष) से दूसरा ही है वही तीनों लोकों में प्रवेश करके सर्व का धारण पोषण करता है वही वास्तव में परमात्मा कहा जाता है।

यह प्रमाण गीता अध्याय 8 श्लोक 20,21,22 में भी है कि गीता ज्ञान दाता ने कहा है कि अध्याय 8 श्लोक 18 में जिस अव्यक्त के विषय में कहा है उससे दुसरा जो सनातन अव्यक्त भाव है वह परम दिव्य पुरूष सब प्राणियों के नष्ट होने पर भी नष्ट नहीं होता। (श्लोक 20) वही अव्यक्त अक्षर इस नाम से कहा गया है उसी पूर्ण परमात्मा की प्राप्ति को परम गति कहते हैं। जिस सनातन अव्यक्त परमात्मा को प्राप्त होकर साधक वापस नहीं आते वह मेरा भी परम धाम है अर्थात् मेरा भी उपेक्षित धाम है। (21) हे पार्थ जिस परमात्मा के अन्तर्गत सर्व प्राणी आते हैं जिस परम पुरुष से यह समस्त जगत परिपूर्ण है वह सनातन अव्यक्त अर्थात् परम पुरूष तो अनन्य भक्ति से ही प्राप्त होने योग्य है। यही प्रमाण गीता अध्याय 3 श्लोक 14-15 में भी है कहा है कि सम्पूर्ण प्राणी अन्न से उत्पन्न होते है अन्न की उत्पति वर्षा से होती है। वर्षा यज्ञ से होती है। यज्ञ अर्थात् धार्मिक अनुष्ठान शास्त्रविधि अनुसार कर्मों से होती है। कर्म ब्रह्म अर्थात् क्षर पुरुष से उत्पन्न हुए क्योंकि हम ब्रह्म काल के लोक में आए तो कर्म करने पड़े क्योंकि यहां कर्म फल ही मिलता है। सतलोक में बिना कर्म ही सर्व फल प्रभु कपा से प्राप्त होता है। ब्रह्म अर्थात् क्षर पुरूष की उत्पत्ति भी अविनाशी परमात्मा से हुई। इससे स्पष्ट है कि सर्वव्यापी परम अक्षर परमात्मा सदा ही यज्ञ में प्रतिष्ठीत है परम अक्षर परमात्मा के विषय में गीता अध्याय 8 श्लोक 1,8,9,10 में वर्णन हैं

उपरोक्त गीता अध्याय 3 श्लोक 14 से 15 में भी स्पष्ट है कि ब्रह्म काल की उत्पति परम अक्षर पुरुष से हुई वही परम अक्षर ब्रह्म ही यज्ञों में पूज्य है।

"पवित्र बाईबल तथा पवित्र कुर्आन शरीफ में सष्टि रचना का प्रमाण"

इसी का प्रमाण पवित्र बाईबल में तथा पवित्र कुर्आन शरीफ में भी है।

कुर्आन शरीफ में पवित्र बाईबल का भी ज्ञान है, इसलिए इन दोनों पवित्र सद्ग्रन्थों ने

मिल-जुल कर प्रमाणित किया है कि कौन तथा कैसा है संष्टि रचनहार तथा उसका वास्तविक नाम क्या है?

पवित्र बाईबल (उत्पत्ति ग्रन्थ पंष्ठ नं. 2 पर, अ. 1:20 - 2:5 पर)

छटवां दिन :– प्राणी और मनुष्य :

अन्य प्राणियों की रचना करके 26. फिर परमेश्वर ने कहा, हम मनुष्य को अपने स्वरूप के अनुसार अपनी समानता में बनाएं, जो सर्व प्राणियों को काबू रखेगा। 27. तब परमेश्वर ने मनुष्य को अपने स्वरूप के अनुसार उत्पन्न किया, अपने ही स्वरूप के अनुसार परमेश्वर ने उसको उत्पन्न किया, नर और नारी करके मनुष्यों की संष्टि की।

29. प्रभु ने मनुष्यों के खाने के लिए जितने बीज वाले छोटे पेड़ तथा जितने पेड़ों में बीज वाले फल होते हैं वे भोजन के लिए प्रदान किए हैं, (मांस खाना नहीं कहा है।)

सातवां दिन :– विश्राम का दिन :

परमेश्वर ने छः दिन में सर्व संष्टि की उत्पत्ति की तथा सातवें दिन विश्राम किया।

पवित्र बाईबल ने सिद्ध कर दिया कि परमेश्वर ने मनुष्य को अपने स्वरूप (आकार) जैसा बनाया। इसलिए सिद्ध हुआ कि परमात्मा नराकार अर्थात् मानव सदंश शरीर युक्त है, जिसने छः दिन में सर्व संष्टि की रचना की तथा फिर विश्राम किया।

पवित्र कुर्आन शरीफ (सुरत फुर्कानि 25, आयत नं. 52, 58, 59)

आयत 52 :– फला तुतिअल् – काफिरन् व जहिद्हुम बिही जिहादन् कबीरा (कबीरन्) ।52।

इसका भावार्थ है कि हजरत मुहम्मद जी का खुदा (प्रभु) कह रहा है कि हे पैगम्बर ! आप काफिरों (जो एक प्रभु की भक्ति त्याग कर अन्य देवी–देवताओं तथा मूर्ति आदि की पूजा करते हैं) का कहा मत मानना, क्योंकि वे लोग कबीर को पूर्ण परमात्मा नहीं मानते। आप मेरे द्वारा दिए इस कुर्आन के ज्ञान के आधार पर अटल रहना कि कबीर ही पूर्ण प्रभु है तथा कबीर अल्लाह के लिए संघर्ष करना(लड़ना नहीं) अर्थात् अडिग रहना।

आयत 58 :– व तवक्कल् अलल् – हय्यिल्लजी ला यमूतु व सब्बिह् बिहम्दिही व कफा बिही बिजुनूबि अिबादिही खबीरा(कबीरा) ।58।

भावार्थ है कि हजरत मुहम्मद जी जिसे अपना प्रभु मानते हैं वह अल्लाह (प्रभु) किसी और पूर्ण प्रभु की तरफ संकेत कर रहा है कि ऐ पैगम्बर उस कबीर परमात्मा पर विश्वास रख जो तुझे जिंदा महात्मा के रूप में आकर मिला था। वह कभी मरने वाला नहीं है अर्थात् वास्तव में अविनाशी है। तारीफ के साथ उसकी पाकी(पवित्र महिमा) का गुणगान किए जा, वह कबीर अल्लाह (कविर्देव) पूजा के योग्य है तथा अपने उपासकों के सर्व पापों को विनाश करने वाला है।

आयत 59 :– अल्ल्जी खलकस्समावाति वल्अर्ज व मा बैनहुमा फी सित्तति अय्यामिन् सुम्मस्तवा अलल्अर्शि अर्रहमानु फस्अल् बिही खबीरन् (कबीरन्) ।59।।

भावार्थ है कि हजरत मुहम्मद को कुर्आन शरीफ बोलने वाला प्रभु (अल्लाह) कह रहा है कि वह कबीर प्रभु वही है जिसने जमीन तथा आसमान के बीच में जो भी विद्यमान है सर्व संष्टि की रचना छः दिन में की तथा सातवें दिन ऊपर अपने सत्यलोक में सिंहासन पर विराजमान हो (बैठ) गया। उसके विषय में जानकारी किसी (बाखबर) तत्वदर्शी संत से प्राप्त करो। इस से यह भी सिद्ध हुआ कि कुरान ज्ञान दाता बाखबर अर्थात् पूर्ण ज्ञानी नहीं है।

उस पूर्ण परमात्मा की प्राप्ति कैसे होगी? तथा वास्तविक ज्ञान तो किसी तत्वदर्शी संत (बाखबर) से पूछो, मैं (कुरान ज्ञान दाता) नहीं जानता।

उपरोक्त दोनों पवित्र धर्मों (ईसाई तथा मुस्लमान) के पवित्र शास्त्रों ने भी मिल-जुल कर

प्रमाणित कर दिया कि सर्व सष्टि रचनहार, सर्व पाप विनाशक, सर्व शक्तिमान, अविनाशी परमात्मा मानव सदश शरीर में आकार में है तथा सत्यलोक में रहता है। उसका नाम कबीर है, उसी को अल्लाहु अकबिरू अर्थात् अल्लाहु अक्बर भी कहते हैं।

आदरणीय धर्मदास जी ने पूज्य कबीर प्रभु से पूछा कि हे सर्वशक्तिमान आज तक यह तत्वज्ञान किसी ने नहीं बताया, वेदों के मर्मज्ञ ज्ञानियों ने भी नहीं बताया। इससे सिद्ध है कि चारों पवित्र वेद तथा चारों पवित्र कतेब (कुर्आन शरीफ आदि) झूठे हैं। पूर्ण परमात्मा कबीर जी ने कहा :-

कबीर, बेद कतेब झूठे नहीं भाई, झूठे हैं जो समझे नाहिं।

भावार्थ है कि चारों पवित्र वेदों (ऋग्वेद - अथर्ववेद - यजुर्वेद - सामवेद) तथा पवित्र चारों कतेबों (कुर्आन शरीफ - जबूर - तौरात - इंजिल) का ज्ञान गलत नहीं हैं। परन्तु जो इनको नहीं समझ पाए वे नादान हैं।

"पूज्य कबीर परमेश्वर (कविर् देव) जी की अमतवाणी में सष्टि रचना"

विशेष :- परमेश्वर कबीर जी विक्रमी संवत् 1455 सन् 1398 को प्रकट हुए। निम्न अमतवाणी जब परमेश्वर पाँच वर्ष की आयु से{जब पूज्य कविर्देव (कबीर परमेश्वर) लीलामय शरीर में पाँच वर्ष के हुए} सन् 1518 {जब कविर्देव (कबीर परमेश्वर) मगहर स्थान से सशरीर सतलोक गए} के बीच में लगभग 550 वर्ष पूर्व सन् 1450 में परम पूज्य कबीर परमेश्वर (कविर्देव) जी द्वारा अपने निजी सेवक (दास भक्त) आदरणीय धर्मदास साहेब जी को सुनाई थी तथा धनी धर्मदास साहेब जी ने लिपिबद्ध की थी। परन्तु उस समय के पवित्र हिन्दुओं तथा पवित्र मुस्लमानों के नादान गुरुओं (नीम-हकीमों) ने कहा कि यह धाणक (जुलाहा) कबीर झूठा है। किसी भी सद् ग्रन्थ में श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी तथा श्री शिव जी के माता-पिता का नाम नहीं है तथा ये तीनों प्रभु अविनाशी है। इनका जन्म मत्यु कभी नहीं होता न ही पवित्र वेदों व पवित्र कुर्आन शरीफ आदि में कबीर परमेश्वर का प्रमाण है। कहते थे कि सर्वशास्त्रों में परमात्मा तो निराकार लिखा है।

भोली आत्माओं ने उन विचक्षणों (चतुर) गुरुओं पर विश्वास कर लिया कि सचमुच यह कबीर धाणक तो अशिक्षित है तथा गुरु जी शिक्षित हैं, सत्य कह रहे होंगे। आज वही सच्चाई प्रकाश में आ रही है तथा अपने सर्व पवित्र धर्मों के पवित्र सद्ग्रन्थ साक्षी हैं। कि परमात्मा साकार है। वही पूर्ण परमात्मा ही जब चाहे प्रकट हो जाता है। वही परमात्मा काशी में कबीर नाम से प्रकट हुआ था। इससे सिद्ध है कि पूर्ण परमेश्वर, सर्व सष्टि रचनहार, कुल करतार तथा सर्वज्ञ कविर्देव (कबीर परमेश्वर) ही है जो काशी (बनारस) में कमल के फूल पर प्रकट हुए तथा 120 वर्ष तक वास्तविक तेजोमय शरीर के ऊपर मानव सदश शरीर हल्के तेज का बना कर रहे तथा अपने द्वारा रची सष्टि का ठीक-ठीक (वास्तविक तत्व) ज्ञान देकर सशरीर सतलोक चले गए।

कपा प्रेमी पाठक पढ़ें निम्न अमतवाणी परमेश्वर कबीर जी द्वारा उच्चारित :-

धर्मदास यह जग बौराना। कोइ न जाने पद निरवाना।।

यहि कारन मैं कथा पसारा। जगसे कहियो एक राम नियारा।।

यही ज्ञान जग जीव सुनाओ। सब जीवोंका भरम नशाओ।।

अब मैं तुमसे कहों चिताई। त्रयदेवनकी उत्पति भाई।।
कुछ संक्षेप कहों गुहराई। सब संशय तुम्हरे मिट जाई।।
भरम गये जग वेद पुराना। आदि रामका का भेद न जाना।।
राम राम सब जगत बखाने। आदि राम कोइ बिरला जाने।।
ज्ञानी सुने सो हिरदै लगाई। मूर्ख सुने सो गम्य ना पाई।।
मां अष्टंगी पिता निरंजन। वे जम दारुण वंशन अंजन।।
पहिले कीन्ह निरंजन राई। पीछेसे माया उपजाई।।
माया रूप देख अति शोभा। देव निरंजन तन मन लोभा।।
कामदेव धर्मराय सत्ताये। देवी को तुरतही धर खाये।।
पेट से देवी करी पुकारा। साहब मेरा करो उबारा।।
टेर सुनी तब हम तहाँ आये। अष्टंगी को बंद छुड़ाये।।
सतलोक में कीन्हा दुराचारि, काल निरंजन दिन्हा निकारि।।
माया समेत दिया भगाई, सोलह संख कोस दूरी पर आई।।
अष्टंगी और काल अब दोई, मंद कर्म से गए बिगोई।।
धर्मराय को हिकमत कीन्हा। नख रेखा से भगकर लीन्हा।।
धर्मराय किन्हाँ भोग विलासा। मायाको रही तब आसा।।
तीन पुत्र अष्टंगी जाये। ब्रह्मा विष्णु शिव नाम धराये।।
तीन देव विस्तार चलाये। इनमें यह जग धोखा खाये।।
पुरुष गम्य कैसे को पावै। काल निरंजन जग भरमावै।।
तीन लोक अपने सुत दीन्हा। सुन्न निरंजन बासा लीन्हा।।
अलख निरंजन सुन्न ठिकाना। ब्रह्मा विष्णु शिव भेद न जाना।।
तीन देव सो उसको धावें। निरंजन का वे पार ना पावें।।
अलख निरंजन बड़ा बटपारा। तीन लोक जिव कीन्ह अहारा।।
ब्रह्मा विष्णु शिव नहीं बचाये। सकल खाय पुन धूर उड़ाये।।
तिनके सुत हैं तीनों देवा। आंधर जीव करत हैं सेवा।।
अकाल पुरुष काहू नहिं चीन्हां। काल पाय सबही गह लीन्हां।।
ब्रह्म काल सकल जग जाने। आदि ब्रह्मको ना पहिचाने।।
तीनों देव और औतारा। ताको भजे सकल संसारा।।
तीनों गुणका यह विस्तारा। धर्मदास मैं कहों पुकारा।।
गुण तीनों की भक्ति में, भूल परो संसार।
कहै कबीर निज नाम बिन, कैसे उतरैं पार।।

उपरोक्त अमृतवाणी में परमेश्वर कबीर साहेब जी सद्ग्रन्थों के वास्तविक ज्ञान को पांच वर्ष की आयु में सन् 1403 में कविर्गिर्भी अर्थात् कबीर वाणी द्वारा बोलना प्रारम्भ कर दिया था। फिर मथुरा में भक्त धर्मदास जी से मिलने के उपरान्त अपने निजी सेवक श्री धर्मदास साहेब जी को कहा है कि धर्मदास यह सर्व संसार तत्वज्ञान के अभाव से विचलित है। किसी को पूर्ण मोक्ष मार्ग तथा पूर्ण सृष्टि रचना का ज्ञान नहीं है। इसलिए मैं आपको मेरे द्वारा रची सृष्टि की कथा सुनाता हूँ। बुद्धिमान व्यक्ति तो तुरंत समझ जायेंगे। परन्तु जो सर्व प्रमाणों को देखकर भी नहीं मानेंगे तो वे भोले प्राणी काल से प्रभावित हैं, वे भक्ति योग्य नहीं। अब मैं (परमेश्वर

कबीर जी) बताता हूँ कि तीनों भगवानों (रजगुण ब्रह्मा जी, सतगुण विष्णु जी तथा तमगुण शिव जी) की उत्पत्ति कैसे हुई? इनकी माता जी तो अष्टंगी (दुर्गा) है तथा पिता ज्योति निरंजन (ब्रह्म/काल) है। पहले ब्रह्म की उत्पत्ति अण्डे से हुई। फिर दुर्गा की उत्पत्ति हुई। दुर्गा के रूप पर आसक्त होकर काल (ब्रह्म) ने गलती (छेड़-छाड़)की, तब दुर्गा (प्रकति) ने इसके पेट में शरण ली। मैं वहाँ गया जहाँ ज्योति निरंजन काल था। तब भवानी को ब्रह्म के उदर से निकाल कर इक्कीस ब्रह्मण्ड समेत सतलोक से 16 संख कोस की दूरी पर भेज दिया।

ज्योति निरंजन (धर्मराय) ने प्रकति देवी (दुर्गा) के साथ भोग-विलास किया। इन दोनों के संयोग से तीनों गुणों (रजगुण श्री ब्रह्मा जी,सतुगुण श्री विष्णु जी तथा तमगुण श्री शिव जी) की उत्पत्ति हुई। इन्हीं तीनों गुणों (रजगुण ब्रह्मा जी, सतगुण विष्णु जी, तमगुण शिव जी) की ही साधना करके सर्व प्राणी काल जाल में फंसे हैं। जब तक वास्तविक मंत्र नहीं मिलेगा, पूर्ण मोक्ष कैसे होगा?

तीनों देवता (श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी, श्री शिव जी) भी इस ब्रह्म अर्थात् काल प्रभु की साधना करते है। यह ब्रह्म इनको भी नहीं मिला है क्योंकि इसने सौंगन्ध खाई है कि मैं किसी भी वेद वर्णीत विधि से या अन्य किसी जप, तप साधना क्रिया से किसी को दर्शन नहीं दूंगा। प्रमाण गीता अध्याय 11 श्लोक 47-48 में है। परमेश्वर कबीर जी ने बताया है कि सब व्यक्ति ब्रह्म की महिमा से परिचित है परन्तु आदि ब्रह्म अर्थात् परम अक्षर ब्रह्म को कोई नहीं जानता। तीनों देवताओं तथा ब्रह्म (काल) को सब पूज रहे हैं। जिसके कारण से काल जाल में ही रह जाते हैं। यह ब्रह्म काल अपने पुत्रों (ब्रह्मा, विष्णु, शिव) को भी खाता है। फिर नए ब्रह्मा, विष्णु, शिव उत्पन्न कर लेता है। इस प्रकार अपने ब्रह्मण्डों में सर्व को धोखे में रखता है। स्वयं उपर शुन्य स्थान पर भिन्न रहता है। यह कबीर परमेश्वर जी ने सर्व काल का जाल बताया है।

विशेषः- प्रिय पाठक विचार करें कि श्री ब्रह्मा जी श्री विष्णु जी तथा श्री शिव जी की स्थिती अविनाशी बताई गई थी। सर्व हिन्दु समाज अभी तक तीनों परमात्माओं को अजर, अमर व जन्म-मत्यु रहित मानते रहे जबकि ये तीनों नाशवान हैं। इन के पिता काल रूपी ब्रह्म तथा माता दुर्गा (प्रकति/अष्टांगी) हैं जैसा आप ने पूर्व प्रमाणों में पढ़ा यह ज्ञान अपने शास्त्रों में भी विद्यमान है परन्तु हिन्दु समाज के कलयुगी गुरुओं, ऋषियों, सन्तों को ज्ञान नहीं। जो अध्यापक पाठ्यक्रम (सलेबस) से ही अपरिचित है वह अध्यापक ठीक नहीं (विद्वान नही) है, विद्यार्थीयों के भविष्य का शत्रु है। इसी प्रकार जिन गुरुओं को अभी तक यह नहीं पता कि श्री ब्रह्मा, श्री विष्णु तथा श्री शिव जी के माता-पिता कौन हैं? तो वे गुरु, ऋषि,सन्त ज्ञान हीन हैं। जिस कारण से सर्व भक्त समाज को शास्त्र विरूद्ध ज्ञान (लोक वेद अर्थात् दन्त कथा) सुना अज्ञान से परिपूर्ण कर दिया। शास्त्रविधि विरूद्ध भक्तिसाधना करा के परमात्मा के वास्तविक लाभ (पूर्ण मोक्ष) से वंचित रखा सबका मानव जन्म नष्ट करा दिया क्योंकि श्री मद्भगवत गीता अध्याय 16 श्लोक 23-24 में यही प्रमाण है कि जो शास्त्रविद्यी त्यागकर मनमाना आचरण पूजा करता है। उसे कोई लाभ नहीं होता पूर्ण परमात्मा कबीर जी ने सन् 1403 से ही सर्व शास्त्रों युक्त ज्ञान अपनी अमतवाणी (कविरवाणी) में बताना प्रारम्भ किया था। परन्तु उन अज्ञानी गुरुओं ने यह ज्ञान भक्त समाज तक नहीं जाने दिया। जो अब स्पष्ट हो रहा है इससे सिद्ध है कि कविर्देव (कबीर प्रभु) तत्वदर्शी सन्त रूप में स्वयं पूर्ण परमात्मा ही आए थे।

“आदरणीय गरीबदास साहेब जी की अमतवाणी में सष्टि रचना का प्रमाण”

सन्त गरीबदास जी की आत्मा को परमेश्वर कबीर जी सत्यलोक लेकर गए तथा सर्व ब्रह्मण्डों के दर्शन कराए। तत्वज्ञान से परिचित कराए फिर उनकी आत्मा को शरीर में पुनर् से प्रवेश किया उस के पश्चात् सन्त गरीबदास जी ने आँखों देखा तथा कबीर परमेश्वर से सुने यथार्थ ज्ञान को अपनी वाणी में वर्णन किया।

आदि रमैणी (सद् ग्रन्थ पष्ठ नं. 690 से 692 तक)

आदि रमैंणी अदली सारा। जा दिन होते धुंधुंकारा।।1।।
सत्त पुरुष कीन्हा प्रकाशा। हम होते तखत कबीर खवासा ।।2।।
मन मोहिनी सिरजी माया। सतपुरुष एक ख्याल बनाया।।3।।
धर्मराय सिरजे दरबानी। चौसठ जुगतप सेवा ठांनी।।4।।
पुरुष पथिवी जाकूं दीन्ही। राज करो देवा आधीनी।।5।।
ब्रह्मण्ड इकीस राज तुम्ह दीन्हा। मन की इच्छा सब जुग लीन्हा।।6।।
माया मूल रूप एक छाजा। मोहि लिये जिनहूँ धर्मराजा।।7।।
धर्म का मन चंचल चित धार्‌या। मन माया का रूप बिचारा।।8।।
चंचल चेरी चपल चिरागा। या के परसे सरबस जागा।।9।।
धर्मराय कीया मन का भागी। विषय वासना संग से जागी।।10।।
आदि पुरुष अदली अनरागी। धर्मराय दिया दिल सें त्यागी।।11।।
पुरुष लोक सें दीया ढहाही। अगर द्वीप चलि आये भाई।।12।।
सहज दास जिस द्वीप रहंता। कारण कौंन कौंन कुल पंथा।।13।।
धर्मराय बोले दरबानी। सुनो सहज दास ब्रह्मज्ञानी।।14।।
चौसठ जुग हम सेवा कीन्ही। पुरुष पथिवी हम कूं दीन्ही।।15।।
चंचल रूप भया मन बौरा। मनमोहिनी ठगिया भौंरा।।16।।
सतपुरुष के ना मन भाये। पुरुष लोक से हम चलि आये।।17।।
अगर द्वीप सुनत बड़भागी। सहज दास मेटो मन पागी।।18।।
बोले सहजदास दिल दानी। हम तो चाकर सत सहदानी।।19।।
सतपुरुष सें अरज गुजारूं। जब तुम्हारा बिवाण उतारूं।।20।।
सहज दास को कीया पीयाना। सत्यलोक लीया प्रवाना।।21।।
सतपुरुष साहिब सरबंगी। अविगत अदली अचल अभंगी।।22।।
धर्मराय तुम्हरा दरबानी। अगर द्वीप चलि गये प्रानी।।23।।
कौंन हुकम करी अरज अवाजा। कहां पठावौ उस धर्मराजा।।24।।
भई अवाज अदली एक साचा। विषय लोक जा तीन्यूं बाचा।।25।।
सहज विमांन चले अधिकाई। छिन में अगर द्वीप चलि आई।।26।।
हमतो अरज करी अनरागी। तुम्ह विषय लोक जावो बड़भागी।।27।।
धर्मराय के चले विमाना। मानसरोवर आये प्राना।।28।
मानसरोवर रहन न पाये। दरै कबीरा थांना लाये।।29।।
बंकनाल की विषमी बाटी। तहां कबीरा रोकी घाटी।।30।।

ब्रह्मा विष्णु महेश्वर रु माया। धर्मराय का राज पठाया।।31।।
इन पाँचों मिलि जगत बंधाना। लख चौरासी जीव संताना।।32।।
यौह खोखा पुर झूठी बाजी। भिसति बैकुण्ठ दगासी साजी।।33।।
कृतिम जीव भुलांनें भाई। निज घर की तो खबरि न पाई।।34।।
सवा लाख उजपें नित हंसा। एक लाख विनशें नित अंसा।।35।।
उपति खपति याह प्रलय फेरी। हर्ष शोक जौंरा जम जेरी।।36।।
पाँचों तत्त्व हैं प्रलय मांही। सत्त्वगुण रजगुण तमगुण झांई।।37।।
आठों अंग मिली है माया। पिण्ड ब्रह्मण्ड सकल भरमाया।।38।।
या में सुरति शब्द की डोरी। पिण्ड ब्रह्मण्ड लगी है खोरी।।39।।
श्वासा पारस मन गह राखो। खोल्हि कपाट अमीरस चाखो।।40।।
सुनाऊं हंस शब्द सुन दासा। सत्य लोक है अग है बासा।।41।।
भवसागर जम दण्ड जमाना। धर्मराय का है तलबांना।।42।।
पाँचों ऊपर पद की नगरी। बाट बिहंगम बंकी डगरी।।43।।
हमरा धर्मराय सों दावा। भवसागर में जीव भरमावा।।44।।
हम तो कहैं अगम की बानी। जहां अविगत अदली आप बिनानी।।45।।
बंदी छोड़ हमारा नामं। अजर अमर है अस्थीर ठामं।।46।।
जुगन जुगन हम कहते आये। जम जौंरा सें हंस छुटाये।।47।।
जो कोई मानें शब्द हमारा। भवसागर नहीं भरमें धारा।।48।।
या में सुरति शब्द का लेखा। तन अंदर मन कहो कीन्ही देखा।।49।।
दास गरीब अगम की बानी। खोजा हंसा शब्द सहदानी।।50।।

भावार्थ :- उपरोक्त अमृतवाणी का भावार्थ है कि परमेश्वर कबीर जी से प्राप्त ज्ञान के आधार पर आदरणीय गरीबदास साहेब जी ने कहा है कि यहाँ पहले केवल अंधकार था तथा पूर्ण परमात्मा कबीर साहेब जी सत्यलोक में तख्त (सिंहासन) पर विराजमान थे। हम वहाँ ख्वास अर्थात् चाकर थे। परमात्मा ने ज्योति निरंजन को उत्पन्न किया। फिर उसके तप के प्रतिफल में इक्कीस ब्रह्मण्ड प्रदान किए। फिर माया (प्रकृति) की उत्पत्ति की। युवा दुर्गा के रूप पर मोहित होकर ज्योति निरंजन (ब्रह्म) ने दुर्गा (प्रकृति) से बलात्कार करने की चेष्टा की। ब्रह्म को उसकी सजा मिली। उसे सत्यलोक से निकाल दिया तथा शाप लगा कि एक लाख मानव शरीर धारी प्राणियों का आहार करेगा, सवा लाख उत्पन्न करेगा। यहाँ सर्व प्राणी जन्म-मृत्यु का कष्ट उठा रहे हैं। यदि कोई पूर्ण परमात्मा का वास्तविक शब्द (सच्चानाम जाप मंत्र) हमारे से प्राप्त करेगा, उसको काल की बंद से छुड़वा देंगे। बन्दी छोड़ कबीर जी ने कहा है कि हमारा बन्दी छोड़ नाम है। आदरणीय गरीबदास जी अपने गुरु व प्रभु कबीर परमात्मा के आधार पर कह रहे हैं कि सच्चे मंत्र अर्थात् सत्यनाम व सारशब्द की प्राप्ति कर लो, पूर्ण मोक्ष हो जायेगा। नहीं तो नकली नाम दाता संतों व महन्तों की मीठी-मीठी बातों में फंस कर शास्त्र विधि रहित साधना करके काल जाल में रह जाओगे। फिर कष्ट पर कष्ट उठाओगे।

।।सन्त गरीबदास जी महाराज की वाणी।।
(सत ग्रन्थ साहिब पष्ठ नं. 690 से सहाभार)

माया आदि निरंजन भाई, अपने जाऐ आपै खाई।
ब्रह्मा विष्णु महेश्वर चेला, ऊँ सोहं का है खेला।।
सिखर सुन्न में धर्म अन्यायी, जिन शक्ति डायन महल पठाई।।
लाख ग्रास नित उठ दूती, माया आदि तख्त की कुती।।
सवा लाख घड़िये नित भांडे, हंसा उतपति परलय डांडे।
ये तीनों चेला बटपारी, सिरजे पुरुषा सिरजी नारी।।
खोखापुर में जीव भुलाये, स्वपन बहिस्त वैकुंठ बनाये।
यो हरहट का कुआ लोई, या गल बंधा है सब कोई।।
कीड़ी कुजंर और अवतारा, हरहट डोरी बंधे कई बारा।
अरब अलील इन्द्र हैं भाई, हरहट डोरी बंधे सब आई।।
शेष महेश गणेश्वर ताहिं, हरहट डोरी बंधे सब आहिं।
शुक्रादिक ब्रह्मादिक देवा, हरहट डोरी बंधे सब खेवा।।
कोटिक कर्ता फिरता देख्या, हरहट डोरी कहूँ सुन लेखा।
चतुर्भुजी भगवान कहावैं, हरहट डोरी बंधे सब आवैं।।
यो है खोखापुर का कुआ, या में पड़ा सो निश्चय मुवा।

उपरोक्त वाणी का भावार्थ :- ज्योति निरंजन (कालबलि) के वश होकर के ये तीनों देवता (रजगुण-ब्रह्मा, सतगुण-विष्णु, तमगुण-शिव) अपनी महिमा दिखाकर जीवों को स्वर्ग नरक तथा भवसागर में (लख चौरासी योनियों में) भटकाते रहते हैं। ज्योति निरंजन अपनी पत्नी दुर्गा अर्थात् माया के संयोग से नागिनी की तरह जीवों को पैदा करता है और फिर मार देता है। जिस प्रकार नागिनी अपनी कुण्डली बनाती है तथा उसमें अण्डे देती है और फिर उन अण्डों पर अपना फन मारती है। जिससे अण्डा फूट जाता है और उसमें से बच्चा निकल जाता है। उसको नागिनी खा जाती है। फन मारते समय कई अण्डे फूट जाते हैं क्योंकि नागिनी के काफी अण्डे होते हैं। जो अण्डे फूटते हैं उनमें से बच्चे निकलते हैं यदि कोई बच्चा कुण्डली (सर्पनी की दुम का घेरा) से बाहर निकल जाता है तो वह बच्चा बच जाता है नहीं तो कुण्डली में वह (नागिनी) छोड़ती नहीं। जितने बच्चे उस कुण्डली के अन्दर होते हैं उन सबको खा जाती है।

माया काली नागिनी, अपने जाये खात। कुण्डली में छोड़े नहीं, सौ बातों की बात।।

इसी प्रकार यह कालबली का जाल है। निरंजन तक की भक्ति संत से नाम लेकर करेगें तो भी इस निरंजन की कुण्डली (इक्कीस ब्रह्मण्डों) से बाहर नहीं निकल सकते। स्वयं ब्रह्मा, विष्णु, महेश, आदि माया शेराँवाली भी निरंजन की कुण्डली में है। ये बेचारे अवतार धार कर आते हैं और जन्म-मत्यु का चक्कर काटते रहते हैं। इसलिए विचार करें सोहं जाप जो कि ध्रूव व प्रहलाद व शुकदेव ऋषि ने जपा। वह भी पार नहीं हुए। काल लोक में ही रहे तथा 'ऊँ नमः भगवते वासुदेवायः' मन्त्र जाप करने वाले भक्त भी कष्ण तक की भक्ति कर रहे हैं, वे भी चौरासी लाख योनियों के चक्कर काटने से नहीं बच सकते। यह परम पूज्य कबीर साहिब जी व आदरणीय गरीबदास साहेब जी महाराज की वाणी प्रत्यक्ष प्रमाण देती है।

अनन्त कोटि अवतार हैं, माया के गोविन्द। कर्ता हो हो अवतरे, बहुर पड़े जग फंध।।

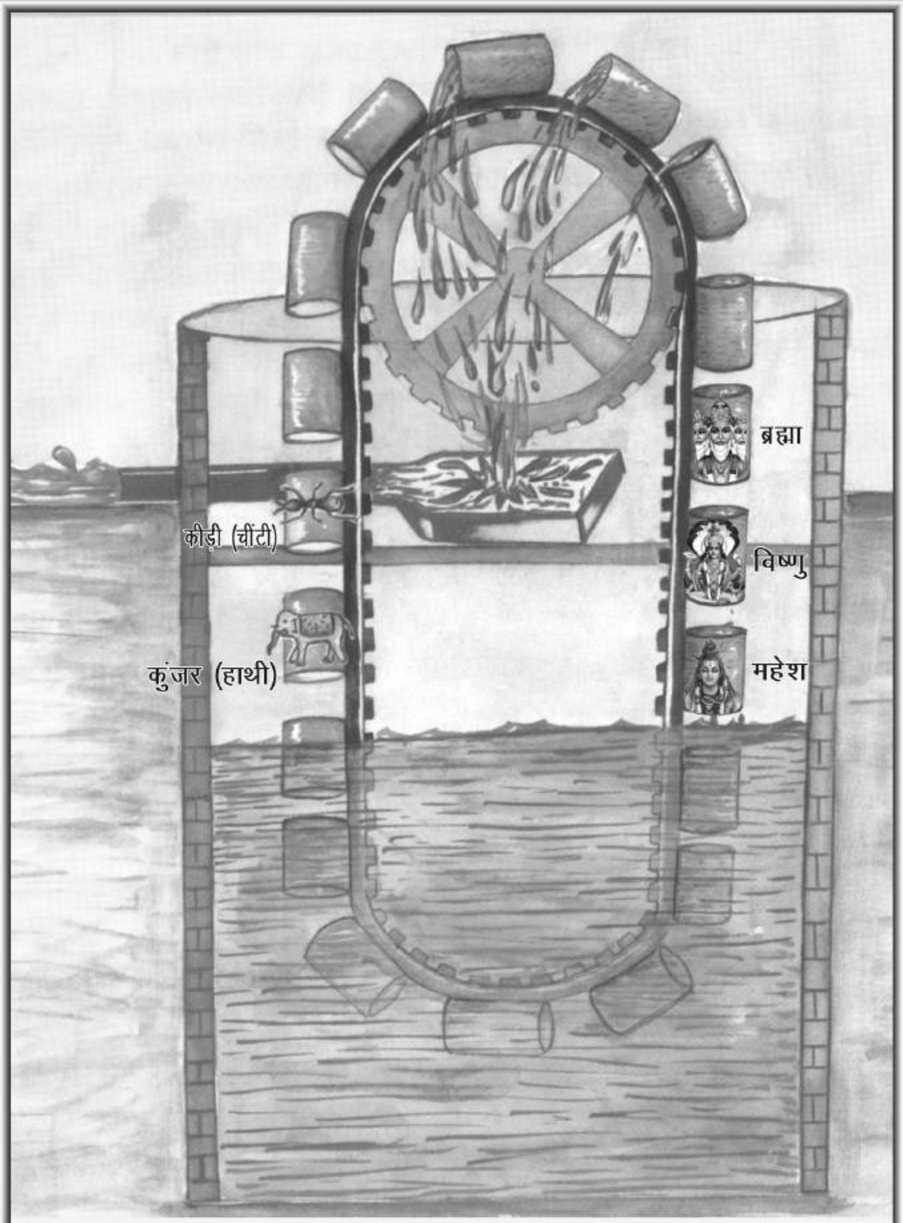

योह हरहट का कुआँ लोई, या गल बंध्या है सब कोई।
कीड़ी कुंजर और अवतारा, हरहट डोरी बंधे कई बारा।।

काल लोक में जन्म–मरण रूपी हरहट (चक्र)

भावार्थ :- सतपुरुष कबीर साहिब जी की भक्ति से ही जीव मुक्त हो सकता है।

जब तक जीव सतलोक में वापिस नहीं चला जाएगा तब तक काल लोक में इसी तरह कर्म करेगा और की हुई नाम व दान धर्म के भक्ति धन के स्वर्ग रूपी होटलों में समाप्त कर के वापिस कर्माधार से चौरासी लाख प्रकार के प्राणियों के शरीर में कष्ट उठाने वाले कर्म आधार से काल लोक में चक्कर काटता रहेगा। माया (दुर्गा) से उत्पन्न हो कर करोड़ों गोबिन्द (ब्रह्मा-विष्णु-शिव) मर चुके हैं। भगवान का अवतार बन कर आये थे। फिर कर्म बन्धन में बन्ध कर कर्मों को भोग कर चौरासी लाख योनियों में चले गए। जैसे भगवान विष्णु जी को देवर्षि नारद का शाप लगा। वे श्री रामचन्द्र रूप में अयोध्या में आए। फिर श्री राम जी रूप में बाली का वध किया था। उस कर्म का दण्ड भोगने के लिए श्री कष्ण जी का जन्म हुआ। फिर बाली वाली आत्मा शिकारी बना तथा अपना प्रतिशोद्ध लिया। श्री कष्ण जी के पैर में विषाक्त तीर मार कर वध किया। महाराज गरीबदास जी अपनी वाणी में कहते हैं :-

ब्रह्मा विष्णु महेश्वर माया, और धर्मराय कहिये।
इन पाँचों मिल परपंच बनाया, वाणी हमरी लहिये।।
इन पाँचों मिल जीव अटकाये, जुगन–जुगन हम आन छुटाये।
बन्दी छोड़ हमारा नामं, अजर अमर है अस्थिर ठामं।।
पीर पैगम्बर कुतुब औलिया, सुर नर मुनिजन ज्ञानी।
येता को तो राह न पाया, जम के बंधे प्राणी।।
धर्मराय की धूमा–धामी, जम पर जंग चलाऊँ।
जौरा को तो जान न दूगां, बांध अदल घर ल्याऊँ।।
काल अकाल दोहूँ को मोसूं, महाकाल सिर मूंडू।
मैं तो तख्त हजूरी हुकमी, चोर खोज कूं ढूंढू।।
मूला माया मग में बैठी, हंसा चुन–चुन खाई।
ज्योति स्वरूपी भया निरंजन, मैं ही कर्ता भाई।।
एक न कर्ता दो न कर्ता दश ठहराए भाई।
दशवां भी धूंध्र में मिलसी सत कबीर दुहाई।।
संहस अठासी द्वीप मुनीश्वर, बंधे मुला डोरी।
ऐत्यां में जम का तलबाना, चलिए पुरुष कीशोरी।।
मूला का तो माथा दागूं, सतकी मोहर करूंगा।
पुरुष दीप कूं हंस चलाऊँ, दरा न रोकन दूंगा।।
हम तो बन्दी छोड़ कहावां, धर्मराय है चकवै।
सतलोक की सकल सुनावां, वाणी हमरी अखवै।।
नौ लख पटट्न ऊपर खेलूं, साहदरे कूं रोकूं।
द्वादस कोटि कटक सब काटूं, हंस पठाऊँ मोखूं।।
चौदह भुवन गमन है मेरा, जल थल में सरबंगी।
खालिक खलक खलक में खालिक, अविगत अचल अभंगी।।
अगर अलील चक्र है मेरा, जित से हम चल आए।
पाँचों पर प्रवाना मेरा, बंधि छुटावन धाये।।
जहां ओंकार निरंजन नाहीं, ब्रह्मा विष्णु शिव नहीं जाहीं।

जहां कर्त्ता नहीं अन्य भगवाना, काया माया पिण्ड न प्राणा।।
पाँच तत्व तीनों गुण नाहीं, जौरा काल उस द्वीप नहीं जाँहीं।
अमर करूं सतलोक पठाँऊ, तातैं बन्दी छोड़ कहाऊँ।।
बन्दी छोड़ कबीर गुसांइ। झिलमलै नूर द्रव झांइ।।

भावार्थ :- सन्त गरीब दास जी ने परमेश्वर कबीर बन्दी छोड़ जी से तत्वज्ञान प्राप्त होने के पश्चात् बताया कि श्री ब्रह्मा, श्री विष्णु, श्री शिव तथा माया अर्थात् दुर्गा देवी व ज्योति निरंजन अर्थात् काल, इन पांचों ने मिल कर सर्व प्राणियों को जाल में फंसाए रखने का षड़यंत्र रचा है। हम जो वचन कह रहे हैं इनको ध्यान पूर्वक सुनों तथा गहराई से विचार करो। परमेश्वर बन्दी छोड़ जी हैं। उनका सत्यलोक स्थान शाशवत अर्थात् अविनाशी है। सुर नर अर्थात् देव लोग व मुनि -ज्ञानी अर्थात् परमात्मा प्राप्ति में लगे मनशील ज्ञानीजन इन सर्व को पूर्ण मोक्ष मार्ग प्राप्त नहीं हुआ। इसलिए सर्व ऋषिजन व देवता काल जाल में ही फंसे हैं। गीता अध्याय 7 श्लोक 18 में गीता ज्ञान दाता ब्रह्म ने कहा है कि यह ज्ञानी आत्माएं जो परमात्मा प्राप्ति के लिए प्रयत्न शील है ये हैं तो नेक परन्तु तत्वदर्शी सन्त के अभाव से मेरी अनुत्तम (अश्रेष्ठ) साधना में लीन हैं। यही प्रमाण कबीर जी ने दिया है :- कबीर, सुर नर मुनि जन तेतीस करोड़ी, बन्धे सबै निरंजन डोरी।

भावार्थ है कि सर्व मुनि, ऋषि तथा तेतीस करोड़ देवता काल साधना करके काल की डोरी से ही बन्धे हैं अर्थात् ब्रह्म काल के नियमानुसार जन्म मत्यु तथा कर्मदण्ड भोगते रहते हैं। पूर्ण मोक्ष प्राप्त नहीं होता। परमेश्वर कबीर बन्दी छोड़ जी ने कहा है कि जो निरधारित समय अनुसार छोटी आयु में मत्यु को प्राप्त होते या निरधारित समय से पहले अर्थात् अकाल मत्यु को प्राप्त होते, उन दोनों प्रकार की मत्यु को टाल कर पूरा जीवन अपनी कपा से प्रदान कर देता है तथा इस काल मत्यु तथा अकाल मत्यु का मुख्य कारण महाकाल अर्थात् ज्योति निरंजन जो इक्कीसवें ब्रह्मण्ड में वास्तविक काल रूप में विराजमान है उस चोर को ढूढ़ लिया है उस का प्रभाव भी अपने साधक से समाप्त कर दूगाँ। काल ने अपनी पत्नी दुर्गा द्वारा जाल फैलवाया है। जिस कारण से प्राणी पूर्ण परमात्मा तक नहीं जा पाते इस दुर्गा को भी दण्ड देता हूँ। तब अपना नाम व सारनाम देकर पार करता हूँ।

कबीर परमेश्वर (कविर्देव) की महिमा बताते हुए आदरणीय गरीबदास साहेब जी कह रहे हैं कि हमारे प्रभु कविर् (कविर्देव) बन्दी छोड़ हैं। (बन्दी छोड़ का भावार्थ है काल की कारागार से छुटवाने वाला,) काल ब्रह्म के इक्कीश ब्रह्मण्डों में सर्व प्राणी पापों के कारण काल के बंदी हैं। पूर्ण परमात्मा (कविर्देव) कबीर साहेब पाप का विनाश कर देता है। पापों का विनाश न ब्रह्म, न परब्रह्म, न ही ब्रह्मा, न विष्णु, न शिव जी कर सकते। केवल जैसा कर्म है, उसका वैसा ही फल दे देते हैं। इसीलिए यजुर्वेद अध्याय 5 के मन्त्र 32 में लिखा है 'कविरंघारिरसि' कविर्देव पापों का शत्रु है, 'बम्भारिरसि' बन्धनों का शत्रु अर्थात् बन्दी छोड़ है।

इन पाँचों (ब्रह्मा-विष्णु-शिव-माया और धर्मराय) से उपर सतपुरुष परमात्मा (कविर्देव) है। जो सतलोक का मालिक है। शेष सर्व परब्रह्म-ब्रह्म तथा ब्रह्मा-विष्णु-शिव जी व आदि माया नाशवान परमात्मा हैं। महाप्रलय में ये सब तथा इनके लोक समाप्त हो जाएंगे। आम जीव से कई हजार गुणा ज्यादा लम्बी इनकी आयु है। परन्तु जो समय निर्धारित है वह एक दिन पूरा अवश्य होगा। आदरणीय गरीबदास जी महाराज कहते हैं :

शिव ब्रह्मा का राज, इन्द्र गिनती कहां। चार मुक्ति वैकुंण्ठ समझ, येता लह्या।।

संख जुगन की जुनी, उम्र बड़ धारिया। जा जननी कुर्बान, सु कागज पारिया।।
येती उम्र बुलंद मरैगा अंत रे। सतगुरु लगे न कान, न भैंटे संत रे।।

चाहे संख युग की लम्बी उम्र भी क्यों न हो वह एक दिन समाप्त अवश्य होगी। यदि सतपुरुष परमात्मा (कविर्देव) कबीर साहेब के नुमांयदे पूर्ण संत (सतगुरु) जो तीन नाम का मंत्र (जिसमें एक ओ3म तथा तत् + सत् सांकेतिक हैं) देता है तथा उसे पूर्ण संत द्वारा नाम दान करने का आदेश है, उससे उपदेश लेकर नाम की कमाई करेंगे तो हम सतलोक के अधिकारी हंस हो सकते हैं। सत्य साधना बिना बहुत लम्बी उम्र कोई काम नहीं आएगी क्योंकि निरंजन लोक में दुःख ही दुःख है।

कबीर, जीवना तो थोड़ा ही भला, जै सत सुमरन होय। लाख वर्ष का जीवना, लेखै धरै ना कोय।।

कबीर साहिब अपनी (पूर्णब्रह्म की) जानकारी स्वयं बताते हैं कि इन परमात्माओं से ऊपर असंख भुजा का परमात्मा सतपुरुष है जो सत्यलोक (सच्च खण्ड, सतधाम) में रहता है तथा उसके अन्तर्गत सर्वलोक [ब्रह्म (काल) के 21 ब्रह्मण्ड व ब्रह्मा, विष्णु, शिव शक्ति के लोक तथा परब्रह्म के सात संख ब्रह्मण्ड व अन्य सर्व ब्रह्मण्ड] आते हैं और वहाँ पर सत्यनाम-सारनाम के जाप द्वारा जाया जाएगा जो पूरे गुरु से प्राप्त होता है। सच्चखण्ड (सतलोक) में जो आत्मा चली जाती है उसका पुनर्जन्म नहीं होता। सतपुरुष (पूर्णब्रह्म) कबीर साहेब (कविर्देव) ही अन्य लोकों में स्वयं ही भिन्न-भिन्न नामों से विराजमान है। जैसे अलख लोक में अलख पुरुष, अगम लोक में अगम पुरुष तथा अकह लोक में अनामी पुरुष रूप में विराजमान है। ये तो उपमात्मक नाम हैं, परन्तु वास्तविक नाम उस पूर्ण पुरुष का कविर्देव (भाषा भिन्न होकर कबीर साहेब) है।

"आदरणीय नानक साहेब जी की वाणी में सष्टि रचना का संकेत"

श्री नानक साहेब जी की अमतवाणी, महला 1, राग बिलावलु, अंश 1 (गु.ग्र. पं. 839)

आपे सचु कीआ कर जोड़ि। अंडज फोड़ि जोडि विछोड़।।
धरती आकाश कीए बैसण कउ थाउ। राति दिनंतु कीए भउ–भाउ।।
जिन कीए करि वेखणहारा। (3)
त्रितीआ ब्रह्मा–बिसनु–महेसा। देवी देव उपाए वेसा।। (4)
पउण पाणी अगनी बिसराउ। ताही निरंजन साचो नाउ।।
तिसु महि मनुआ रहिआ लिव लाई। प्रणवति नानकु कालु न खाई।। (10)

उपरोक्त अमतवाणी का भावार्थ है कि सच्चे परमात्मा (सतपुरुष) ने स्वयं ही अपने हाथों से सर्व सष्टि की रचना की है। उसी ने अण्डा बनाया फिर फोड़ा तथा उसमें से ज्योति निरंजन निकला। उसी पूर्ण परमात्मा ने सर्व प्राणियों के रहने के लिए धरती, आकाश, पवन, पानी आदि पाँच तत्व रचे। अपने द्वारा रची सष्टि का स्वयं ही साक्षी है। दूसरा कोई सही जानकारी नहीं दे सकता। फिर अण्डे के फूटने से निकले निरंजन के बाद तीनों श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी तथा श्री शिव जी की उत्पत्ति हुई तथा अन्य देवी-देवता उत्पन्न हुए तथा अनगिन जीवों की उत्पत्ति हुई। उसके बाद अन्य देवों के जीवन चरित्र तथा अन्य ऋषियों के अनुभव के छः शास्त्र तथा अठारह पुराण बन गए। पूर्ण परमात्मा के सच्चे नाम (सत्यनाम) की साधना अनन्य मन से करने से तथा गुरु मर्यादा में रहने वाले (प्रणवति) को श्री नानक जी कह रहे हैं कि काल नहीं खाता।

राग मारु (अंश) अमतवाणी महला 1 (गु.ग्र.प. 1037)

सुनहु ब्रह्मा, बिसनु, महेसु उपाए। सुने वरते जुग सबाए।।
इसु पद बिचारे सो जनु पुरा। तिस मिलिए भरमु चुकाइदा।। (3)
साम वेदु, रुगु जुजरु अथरबणु। ब्रहमें मुख माइआ है त्रैगुण।।
ता की कीमत कहि न सकै। को तिउ बोले जिउ बुलाईदा।। (9)

उपरोक्त अमतवाणी का सारांश है कि जो संत पूर्ण सष्टि रचना सुना देगा तथा बताएगा कि अण्डे के दो भाग होकर कौन निकला, जिसने फिर ब्रह्मलोक की सुन्न में अर्थात् गुप्त स्थान पर ब्रह्मा-विष्णु-शिव जी की उत्पत्ति की तथा वह परमात्मा कौन है जिसने ब्रह्म (काल) के मुख से चारों वेदों (पवित्र ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद) को उच्चारण करवाया, वह पूर्ण परमात्मा जैसा चाहे वैसे ही प्रत्येक प्राणी को बुलवाता है। इस सर्व ज्ञान को पूर्ण बताने वाला सन्त मिल जाए तो उसके पास जाइए तथा जो सर्व शंकाओं का पूर्ण निवारण करता है, वही पूर्ण सन्त अर्थात् तत्वदर्शी है।

श्री गुरु ग्रन्थ साहेब पष्ठ 929 अमत वाणी श्री नानक साहेब जी की राग रामकली महला 1 दखणी ओअंकार

ओअंकारि ब्रह्मा उतपति। ओअंकारू कीआ जिनि चित। ओअंकारि सैल जुग भए। ओअंकारि बेद निरमए। ओअंकारि सबदि उधरे। ओअंकारि गुरुमुखि तरे। ओनम अखर सुणहू बीचारु। ओनम अखरु त्रिभवण सारु।

उपरोक्त अमतवाणी में श्री नानक साहेब जी कह रहे हैं कि ओंकार अर्थात् ज्योति निरंजन (काल) से ब्रह्मा जी की उत्पत्ति हुई। कई युगों मस्ती मार कर ओंकार (ब्रह्म) ने वेदों की उत्पत्ति की जो ब्रह्मा जी को प्राप्त हुए। तीन लोक की भक्ति का केवल एक ओ३म् मंत्र ही वास्तव में जाप करने का है। इस ओ३म् शब्द को पूरे संत से उपदेश लेकर मन्त्र जाप करने से उद्धार होता है।

विशेष :– श्री नानक साहेब जी ने तीनों मंत्रों (ओ३म् + तत् + सत्) का स्थान - स्थान पर रहस्यात्मक विवरण दिया है। उसको केवल पूर्ण संत (तत्वदर्शी संत) ही समझ सकता है तथा तीनों मंत्रों के जाप को उपदेशी को समझाया जाता है।

(प. 1038) उत्तम सतिगुरु पुरुष निराले, सबदि रते हरि रस मतवाले।
रिधि, बुधि, सिधि, गिआन गुरु ते पाइए, पूरे भाग मिलाईदा।। (15)
सतिगुरु ते पाए बीचारा, सुन समाधि सचे घरबारा।
नानक निरमल नादु सबद धुनि, सचु रामैं नामि समाइदा (17)।।5।।17।।

उपरोक्त अमतवाणी का भावार्थ है कि वास्तविक ज्ञान देने वाले सतगुरु तो निराले ही हैं, वे केवल नाम जाप को जपते हैं, अन्य हठयोग साधना नहीं बताते। यदि आप को धन दौलत, पद, बुद्धि या भक्ति शक्ति भी चाहिए तो वह भक्ति मार्ग का ज्ञान पूर्ण संत ही पूरा प्रदान करेगा, ऐसा पूर्ण संत बड़े भाग्य से ही मिलता है। वही पूर्ण संत विवरण बताएगा कि ऊपर सुन्न (आकाश) में अपना वास्तविक घर (सत्यलोक) परमेश्वर ने रच रखा है।

उसमें एक वास्तविक सार नाम की धुन (आवाज) हो रही है। उस आनन्द में अविनाशी परमेश्वर के सार शब्द से समाया जाता है अर्थात् उस वास्तविक सुखदाई स्थान में वास हो सकता है, अन्य नामों तथा अधूरे गुरुओं से नहीं हो सकता।

आंशिक अमृतवाणी महला पहला (श्री गु. ग्र. पृ. 359-360)

सिव नगरी महि आसणि बैसउ कलप त्यागी वादं। (1)
सिंडी सबद सदा धुनि सोहै अहिनिसि पूरै नादं। (2)
हरि कीरति रह रासि हमारी गुरु मुख पंथ अतीत (3)
सगली जोति हमारी संमिआ नाना वरण अनेकं।
कह नानक सुणि भरथरी जोगी पारब्रह्म लिव एकं। (4)

उपरोक्त अमृतवाणी का भावार्थ है कि श्री नानक साहेब जी कह रहे हैं कि हे भरथरी योगी जी आप की साधना भगवान शिव तक है, उससे आप को शिव नगरी (लोक) में स्थान मिला है और शरीर में जो सिंगी शब्द आदि हो रहा है वह इन्हीं कमलों का है तथा टेलीविजन की तरह प्रत्येक देव के लोक से शरीर में सुनाई दे रहा है।

हम तो एक परमात्मा पारब्रह्म अर्थात् सर्व के पार अन्य किसी और एक परमात्मा में लौ (अनन्य मन से लग्न) लगाते हैं।

हम ऊपरी दिखावा (भस्म लगाना, हाथ में दंडा रखना) नहीं करते। मैं तो सर्व प्राणियों को एक पूर्ण परमात्मा (सतपुरुष) की सन्तान समझता हूँ। सर्व उसी शक्ति से चलायमान हैं। हमारी मुद्रा तो सच्चा नाम जाप गुरु से प्राप्त करके करना है तथा क्षमा करना हमारा बाणा (वेशभूषा) है। मैं तो पूर्ण परमात्मा का उपासक हूँ तथा जो साधना आप करते हैं पूर्ण सतगुरु का भक्ति मार्ग इससे भिन्न है।

अमृत वाणी राग आसा महला 1 (श्री गु. ग्र. पृ. 420)

।।आसा महला 1।। जिनी नामु विसारिआ दूजै भरमि भुलाई। मूलु छोड़ि डाली लगे किआ पावहि छाई।।1।। साहिबु मेरा एकु है अवरु नहीं भाई। किरपा ते सुखु पाइआ साचे परथाई।।3।। गुर की सेवा सो करे जिसु आपि कराए। नानक सिरु दे छूटीऐ दरगह पति पाए।।8।।18।।

उपरोक्त वाणी का भावार्थ है कि श्री नानक साहेब जी कह रहे हैं कि जो पूर्ण परमात्मा का वास्तविक नाम भूल कर अन्य भगवानों के नामों के जाप में भ्रम रहे हैं वे तो ऐसा कर रहे हैं कि मूल (पूर्ण परमात्मा) को छोड़ कर डालियों (तीनों गुण रूप रजगुण-ब्रह्मा, सतगुण-विष्णु, तमगुण-शिवजी) की सिंचाई (पूजा) कर रहे हैं। उस साधना से कोई सुख नहीं हो सकता अर्थात् पौधा सूख जाएगा तो छाया में नहीं बैठ पाओगे। भावार्थ है कि शास्त्र विधि रहित साधना करने से व्यर्थ प्रयत्न है। कोई लाभ नहीं। इसी का प्रमाण पवित्र गीता अध्याय 16 श्लोक 23-24 में भी है। उस पूर्ण परमात्मा को प्राप्त करने के लिए मनमुखी (मनमानी) साधना त्याग कर पूर्ण गुरुदेव को समर्पण करने से तथा सच्चे नाम के जाप से ही मोक्ष संभव है, नहीं तो मृत्यु के उपरांत नरक जाएगा।

(श्री गुरु ग्रन्थ साहेब पृष्ठ नं. 843-844)

।।बिलावलु महला 1।। मैं मन चाहु घणा साचि विगासी राम। मोही प्रेम पिरे प्रभु अबिनासी राम।। अविगतो हरि नाथु नाथह तिसै भावै सो थीऐ। किरपालु सदा दइआलु दाता जीआ अंदरि तूं जीऐ। मैं आधारु तेरा तू खसमु मेरा मै ताणु तकीआ तेरओ। साचि सूचा सदा नानक गुरसबदि झगरु निबेरओ।।4।।2।।

उपरोक्त अमृतवाणी में श्री नानक साहेब जी कह रहे हैं कि अविनाशी पूर्ण परमात्मा नाथों का भी नाथ है अर्थात् देवों का भी देव (सर्व प्रभुओं श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी, श्री शिव जी तथा ब्रह्म व परब्रह्म पर भी नाथ है अर्थात् स्वामी है) मैं तो सच्चे नाम को हृदय में समा चुका

हूँ। हे परमात्मा ! सर्व प्राणी का जीवन आधार भी आप ही हो। मैं आपके आश्रित हूँ आप मेरे मालिक हो। आपने ही गुरु रूप में आकर सत्यभक्ति का निर्णायक ज्ञान देकर सर्व झगड़ा निपटा दिया अर्थात् सर्व शंका का समाधान कर दिया।

(श्री गुरु ग्रन्थ साहेब पष्ठ नं. 721, राग तिलंग महला 1)

यक अर्ज गुफतम् पेश तो दर कून करतार।
हक्का कबीर करीम तू बेअब परवरदिगार।
नानक बुगोयद जन तुरा तेरे चाकरां पाखाक।

उपरोक्त अमतवाणी में श्री सन्त नानक जी ने स्पष्ट कर दिया कि हे (हक्का कबीर) सत्कबीर आप (कून करतार) शब्द शक्ति से रचना करने वाले शब्द स्वरूपी प्रभु अर्थात् सर्व सष्टि के रचन हार हो, आप ही (बेएब) निर्विकार (परवरदिगार) सर्व के पालन कर्ता दयालु प्रभु हो, मैं आपके दासों का भी दास हूँ।

(श्री गुरु ग्रन्थ साहेब पष्ठ नं. 24, राग सीरी महला 1)

तेरा एक नाम तारे संसार, मैं ऐहा आस ऐहो आधार।
नानक नीच कहै बिचार, धाणक रूप रहा करतार।।

उपरोक्त अमतवाणी में प्रमाण किया है कि जो काशी में धाणक (जुलाहा) है यही (करतार) कुल का सजनहार है। अति आधीन होकर श्री नानक साहेब जी कह रहे हैं कि मैं सत् कह रहा हूँ कि यह धाणक अर्थात् कबीर जुलाहा ही पूर्ण ब्रह्म (सतपुरुष) है।

विशेष :- उपरोक्त प्रमाणों के सांकेतिक ज्ञान से प्रमाणित हुआ सष्टि रचना कैसे हुई? अब पूर्ण परमात्मा की प्राप्ति करनी चाहिए।

''राधा स्वामी व धन-धन सतगुरु सच्चा सौदा पन्थों के सन्तों तथा अन्य संतों द्वारा सष्टि रचना की दन्त कथा''

अन्य संतों द्वारा जो सष्टि रचना का ज्ञान बताया है वह कैसा है? कप्या निम्न पढ़ें :-

पवित्र पुस्तक जीवन चरित्र परम संत बाबा जयमल सिंह जी महाराज'' पष्ठ नं. 102-103 से ''सष्टि की रचना'' (सावन कपाल पब्लिकेशन, दिल्ली)

''पहले सतपुरुष निराकार था, फिर इजहार (आकार) में आया तो ऊपर के तीन निर्मल मण्डल (सतलोक – अलखलोक – अगमलोक) बन गया तथा प्रकाश तथा मण्डलों का नाद (धुनि) बन गया।''

पवित्र पुस्तक सारवचन (नसर) प्रकाश राधास्वामी सत्संग सभा, दयालबाग आगरा, ''सष्टि की रचना'' पष्ठ 81,

''प्रथम धूंधूकार था। उसमें पुरुष सुन्न समाध में थे। जब कुछ रचना नहीं हुई थी। फिर जब मौज हुई तब शब्द प्रकट हुआ और उससे सब रचना हुई, पहले सतलोक और फिर सतपुरुष की कला से तीन लोक और सब विस्तार हुआ।''

यह ज्ञान तो ऐसा है। एक समय कोई बच्चा नौकरी लगने के लिए साक्षात्कार (इन्टरव्यू) के लिए गया। अधिकारी ने पूछा कि आप ने महाभारत पढ़ा है। लड़के ने उत्तर दिया कि उंगलियों पर रट रखा है। अधिकारी ने प्रश्न किया कि पाँचों पाण्डवों के नाम बताओ। लड़के ने उत्तर दिया कि एक भीम था, एक उसका बड़ा भाई था, एक उससे छोटा था, एक और था तथा एक का नाम मैं भूल गया। उपरोक्त सष्टि रचना का ज्ञान तो ऐसा है।

यथार्थ जानकारी के लिए कृप्या पढ़ें पूर्वोक्त सृष्टि रचना।

सतपुरुष व सतलोक की महिमा बताने वाले व पाँच नाम (औंकार - ज्योति निरंजन - ररंकार - सोहं - सत्यनाम) देने वाले व तीन नाम (अकाल मूर्ति - सतपुरुष - शब्द स्वरूपी राम) देने वाले संतों द्वारा रची पुस्तकों से कुछ निष्कर्ष।

संतमत प्रकाश भाग 3 पृष्ठ 76 पर लिखा है कि ''सच्चखण्ड या सतनाम चौथा लोक है'', यहाँ पर 'सतनाम' को स्थान कहा है। फिर इस सन्तमत प्रकाश पुस्तक के पृष्ठ नं. 79 पर लिखा है कि ''एक राम दशरथ का बेटा, दूसरा राम 'मन', तीसरा राम 'ब्रह्म', चौथा राम 'सतनाम', यह असली राम है।'' फिर पुस्तक संतमत प्रकाश पहला भाग पृष्ठ नं. 17 पर लिखा है कि ''वह सतलोक है, उसी को सतनाम कहा जाता है।'' पवित्र पुस्तक 'सार वचन नसर यानि वार्तिक' पृष्ठ नं. 3 पर लिखा है कि ''अब समझना चाहिए कि राधा स्वामी पद सबसे उच्चा मुकाम है कि जिसको संतों ने सतलोक और सच्चखण्ड और सार शब्द और सत शब्द और सतनाम और सतपुरुष करके ब्यान किया है।'' पुस्तक सार वचन (नसर) आगरा से प्रकाशित पृष्ठ नं. 4 पर भी उपरोक्त ज्यों का त्यों वर्णन है। पुस्तक 'सच्चखण्ड की सड़क' पृष्ठ नं. 226 ''संतों का देश सच्चखण्ड या सतलोक है, उसी को सतनाम- सतशब्द-सारशब्द कहा जाता है।''

विशेष :- उपरोक्त व्याख्या ऐसी लगी जैसे किसी ने जीवन में न तो शहर देखा, न कार देखी और न पैट्रोल देखा है, न ड्राईवर का ज्ञान हो कि ड्राईवर किसे कहते हैं और वह व्यक्ति अन्य साथियों से कहे कि मैं शहर में जाता हूँ, कार में बैठ कर आनंद मनाता हूँ। फिर साथियों ने पूछा कि कार कैसी है, पैट्रोल कैसा है और ड्राईवर कैसा है, शहर कैसा है? उस गुरु जी ने उत्तर दिया कि शहर कहो चाहे कार एक ही बात है, शहर भी कार ही है, पैट्रोल भी कार को ही कहते हैं, ड्राईवर भी कार को ही कहते हैं, सड़क भी कार को ही कहते हैं।

आओ विचार करें - सतपुरुष तो पूर्ण परमात्मा है, सतनाम वह दो मंत्र का नाम है जिसमें एक ओ३म् तथा तत् सांकेतिक है तथा इसके बाद सारनाम साधक को पूर्ण गुरु द्वारा दिया जाता है। ये सतनाम तथा सारनाम दोनों स्मरण करने के नाम हैं। सतलोक वह स्थान है जहां सतपुरुष रहता है। सर्व पुण्यात्माओं से प्रार्थना है कि सत्य का ग्रहण करें असत्य का परित्याग करें।

❑❑❑

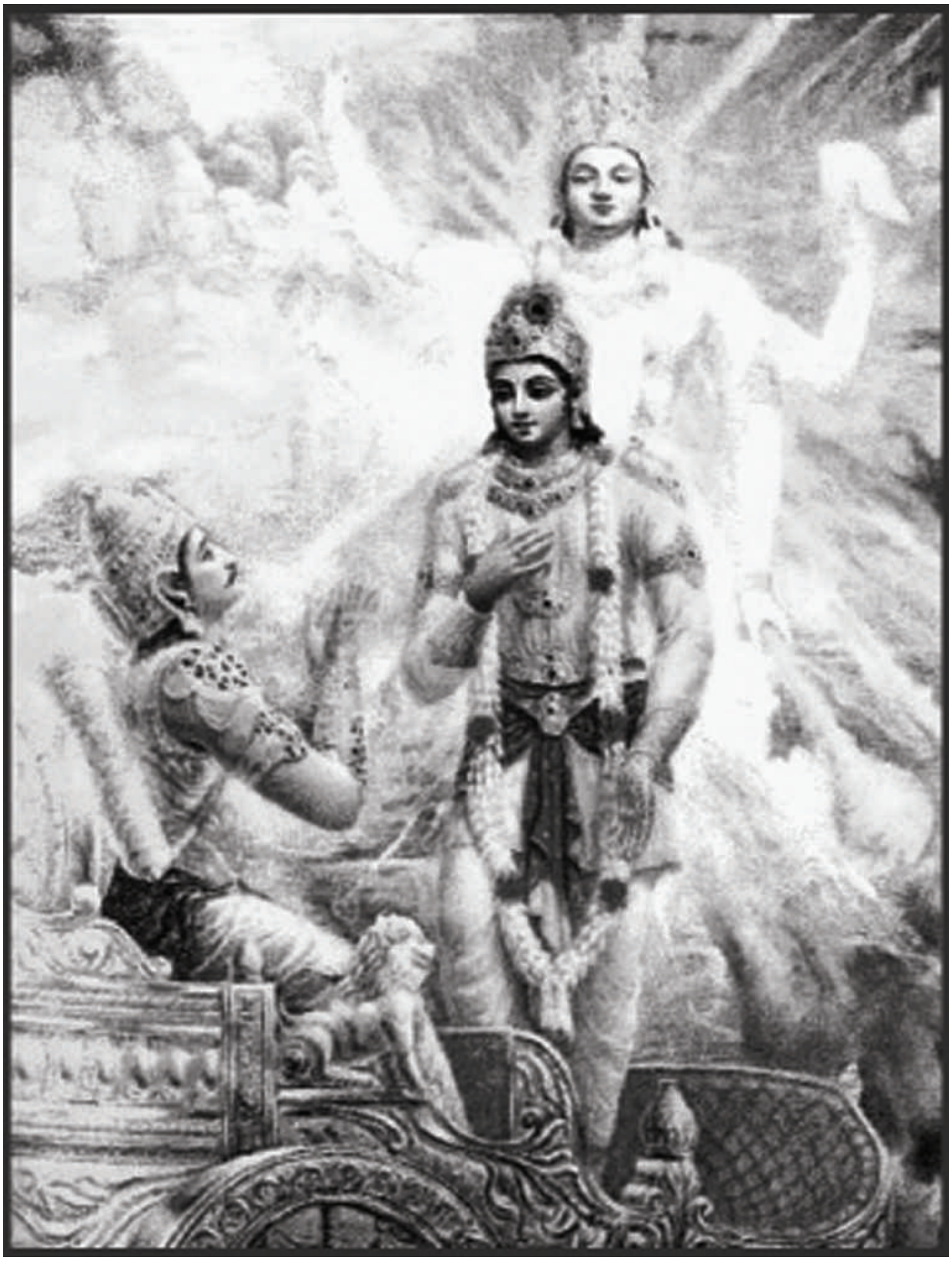

प्रथम अध्याय

।। दिव्य सारांश ।।

गीता जी के अध्याय 1 के श्लोक 1 से 19 तक इन श्लोकों में संजय धृतराष्ट्र को सेना की स्थिति तथा सेना में आए गणमान्य योद्धाओं के बारे में जानकारी दे रहा है। गीता अध्याय 1 के श्लोक 20 से 23 श्लोकों में अर्जुन कह रहा है कि भगवन्! मेरे रथ को दोनों सेनाओं के मध्य में ले चलो ताकि देख लूं कि मेरे सामने टिकने वाले कौन-2 से योद्धा हैं।

गीता अध्याय 1 के श्लोक 24-25 में वर्णन है कि भगवान कृष्ण ने रथ को दोनों सेनाओं के मध्य में खड़ा करके अर्जुन से कहा कि देख सामने खड़े राजाओं तथा कुरुवंशियों को। गीता अध्याय 1 के श्लोक 26 से 45 तक के श्लोकों में वर्णन है कि अर्जुन ने युद्ध के लिए तत्पर अपने ही सम्बन्धियों, पुत्रों व पौत्रों, साले तथा ससुरों को मरने-मारने के लिए आए हुए देखा तो श्री कृष्ण जी से विशेष विवेक से कहा कि सामने खड़े मासूम बच्चों, अपने साथी व चचेरे भाईयों व सम्बन्धियों को देखकर मेरा शरीर काँप रहा है। धनुष हाथ से गिर रहा है। मैं खड़ा भी नहीं रह पा रहा हूँ। अपने ही जनों को मारना अच्छा महसूस नहीं कर रहा हूँ। हे कृष्ण! न तो मैं विजय चाहता हूँ, न ही राज्य का सुख। चूंकि उनको जो स्वयं अपने राज्य व जान की परवाह (चिंता) न करके मरने को तैयार हैं उन्हें मार कर मैं राज्य नहीं चाहता। मैं बन्धुओं व पुत्र तथा पौत्रों को मारना नहीं चाहता। चाहे मुझे तीनों लोकों का राज्य भी क्यों न मिलता हो, फिर पृथ्वी के राज्य के लिए तो क्यों पाप करूँ? इनको मारने से तो पाप ही लगेगा। ऐसे कुकर्म करके हम कैसे सुखी हो सकते हैं? ये सामने खड़े राजा लोग तो मोह माया में अंधे हो रहे हैं। फिर हमें तो ज्ञान है। ऐसा क्यों करें कि कुल का नाश होने पर दूसरे दुष्कर्मी लोग हमारी स्त्रियों को बलात तंग करेंगे। वर्णशंकर संतान हो जाएगी। पतिव्रता धर्म नष्ट हो जाएगा तथा धर्म कर्म न करने से नरक के भागी हो जाएंगे। वास्तव में हम बहुत पापी हैं जो अपने ही बन्धुओं को स्वार्थ वश मारने को तैयार हो गये हैं। गीता अध्याय 1 के श्लोक 46 में अर्जुन ने कहा कि भगवन इस पाप को बचाने के लिए यदि धृतराष्ट्र के पुत्र मुझ निहत्थे को मार दें और युद्ध न हो, तो भी मैं स्वयं मरना बेहतर समझता हूँ कि एक मेरे मरने से लाखों बहन विधवा होने से बच जाएंगी तथा लाखों मासूम बच्चे अनाथ होने से बच जाएंगे। गीता अध्याय 1 के श्लोक 47 में यह कह कर अर्जुन दुःखी मन से रथ के बीच वाले हिस्से में बैठ गया तथा धनुष को रख दिया।

इस अध्याय में कुल 47 श्लोक हैं जिनमें से दो श्लोक (24-25) श्री कृष्ण ने बोले हैं। शेष संजय तथा अर्जुन ने कहे हैं।

❑❑❑

।।प्रथम अध्याय के अनुवाद सहित श्लोक।।

परमात्मने नमः

श्रीमद्भगवद्गीता

अथ प्रथमोऽध्यायः

अध्याय 1 का श्लोक 1 (धृतराष्ट्र उवाच)

धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः।
मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत सञ्जय।१।

धर्मक्षेत्रे, कुरुक्षेत्रे, समवेताः, युयुत्सवः,
मामकाः, पाण्डवाः, च, एव, किम्, अकुर्वत, सञ्जय।।1।।

अनुवाद : (सञ्जय) हे संजय! (धर्मक्षेत्रे) धार्मिक पथ्वी (कुरुक्षेत्रे) कुरुक्षेत्रमें (समवेताः) इकट्ठे हुए (युयुत्सवः) युद्ध के अभिलाषी (मामकाः) मेरे (च) और (एव) यहाँ (पाण्डवाः) पाण्डुके पुत्रोंने (किम्) क्या (अकुर्वत) किया? (1)

अध्याय 1 का श्लोक 2

(सञ्जय उवाच) संजय ने कहा :-

दृष्ट्वा तु पाण्डवानीकं व्यूढं दुर्योधनस्तदा।
आचार्यमुपसङ्गम्य राजा वचनमब्रवीत्।२।

दृष्ट्वा, तु, पाण्डवानीकम्, व्यूढम्, दुर्योधनः, तदा,
आचार्यम्, उपसङ्गम्य, राजा, वचनम्, अब्रवीत्।।2।।

अनुवाद : (तदा) उस समय (राजा) राजा (दुर्योधनः) दुर्योधनने (व्यूढम्) व्यूहरचनायुक्त (पाण्डवानीकम्) पाण्डवोंकी सेनाको (दृष्ट्वा) देखकर (तु) तो तुरंत (आचार्यम्) द्रोणाचार्यके (उपसङ्गम्य) पास जाकर यह (वचनम्) वचन (अब्रवीत्) कहा। (2)

अध्याय 1 का श्लोक 3

पश्यैतां पाण्डुपुत्राणामाचार्य महतीं चमूम्।
व्यूढां द्रुपदपुत्रेण तव शिष्येण धीमता।३।

पश्य, एताम्, पाण्डुपुत्राणाम्, आचार्य, महतीम्, चमूम्,
व्यूढाम्, द्रुपदपुत्रेण, तव, शिष्येण, धीमता।।3।।

अनुवाद : (आचार्य) हे आचार्य! (तव) आपके (धीमता) बुद्धिमान् (शिष्येण) शिष्य (द्रुपदपुत्रेण) द्रुपदपुत्र धष्टद्युम्न द्वारा (व्यूढाम्) किलेनुमा खड़ी की हुई (पाण्डुपुत्राणाम्) पाण्डु-पुत्रोंकी (एताम्) इस (महतीम्) बड़ी भारी (चमूम्) सेनाको (पश्य) देखिये। (3)

अध्याय 1 का श्लोक 4-5-6

अत्र शूरा महेष्वासा भीमार्जुनसमा युधि।
युयुधानो विराटश्च द्रुपदश्च महारथः।४।
धृष्टकेतुश्चेकितानः काशिराजश्च वीर्यवान्।
पुरुजित्कुन्तिभोजश्च शैब्यश्च नरपुङ्गवः।५।

युधामन्युश्च विक्रान्त उत्तमौजाश्च वीर्यवान्।
सौभद्रो द्रौपदेयाश्च सर्व एव महारथाः।६।

अत्र, शूराः, महेष्वासाः, भीमार्जुनसमाः, युधि,
युयुधानः, विराटः, च, द्रुपदः, च, महारथः।।4।।
धष्टकेतुः, चेकितानः, काशिराजः, च, वीर्यवान्
पुरुजित्, कुन्तिभोजः, च, शैब्यः, च, नरपुङ्गवः।।5।।
युधामन्युः, च, विक्रान्तः, उत्तमौजाः, च, वीर्यवान्,
सौभद्रः, द्रौपदेयाः, च, सर्वे, एव, महारथाः।।6।।

अनुवाद : (अत्र) इस सेनामें (महेष्वासाः) बड़े-बड़े धनुषोंवाले (च) तथा (युधि) युद्धमें (भीमार्जुनसमाः) भीम और अर्जुनके समान (शूराः) शूरमा (युयुधानः) सात्यकि (च) और (विराटः) विराट (च) तथा (महारथः) महारथी (द्रुपदः) द्रुपद {4}(धष्टकेतुः) धष्टकेतु (च) और (चेकितानः) चेकितान (च) तथा (वीर्यवान्) बलवान् (काशिराजः) काशिराज (पुरुजित्) पुरुजित् (कुन्तिभोजः) कुन्तिभोज (च) और (नरपुङ्गवः) नर श्रेष्ठ (शैब्यः) शैब्य {5} (विक्रान्तः) पराक्रमी (युधामन्युः) युधामन्यु (च) तथा (वीर्यवान्) बलवान् (उत्तमौजाः) उत्तमौजा (सौभद्रः) सुभद्रापुत्र अभिमन्यु (च) एवं (द्रौपदेयाः)द्रौपदीके पाँचों पुत्र ये (सर्वे, एव)सभी (महारथाः) महारथी हैं। {6}

अध्याय 1 का श्लोक 7

अस्माकं तु विशिष्टा ये तान्निबोध द्विजोत्तम।
नायका मम सैन्यस्य सञ्ज्ञार्थं तान्ब्रवीमि ते। ७ ।

अस्माकम्, तु, विशिष्टाः, ये, तान्, निबोध, द्विजोत्तम,
नायकाः, मम, सैन्यस्य, स ज्ञार्थम्, तान्, ब्रवीमि, ते।।7।।

अनुवाद : (द्विजोत्तम) हे विप्र श्रेष्ठ! (अस्माकम्) अपने पक्षमें (तु) भी (ये) जो (विशिष्टाः) मुख्य हैं (तान्) उनको आप (निबोध) समझ लीजिये। (ते) आपकी (स ज्ञार्थम्) जानकारीके लिए (मम) मेरी (सैन्यस्य) सेनाके जो-जो (नायकाः) सेनापति हैं (तान्) उनको (ब्रवीमि) बतलाता हूँ।(7)

अध्याय 1 का श्लोक 8

भवान्भीष्मश्च कर्णश्च कृपश्च समितिञ्जयः।
अश्वत्थामा विकर्णश्च सौमदत्तिस्तथैव च। ८ ।

भवान्, भीष्मः, च, कर्णः, च, कपः, च, समिति जयः,
अश्वत्थामा, विकर्णः, च, सौमदत्तिः, तथा, एव, च।।8।।

अनुवाद : (भवान्) आप-द्रोणाचार्य (च) और (भीष्मः) भीष्म (च) तथा (कर्णः) कर्ण (च) और (समिति जयः) संग्रामविजयी (कपः) कपाचार्य (च) तथा (तथा) और (एव) इसी प्रकार (अश्वत्थामा) अश्वत्थामा (विकर्णः) विकर्ण (च) और (सौमदत्तिः) सोमदत्तका पुत्र भूरिश्रवा। (8)

अध्याय 1 का श्लोक 9

अन्ये च बहवः शूरा मदर्थे त्यक्तजीविताः।
नानाशस्त्रप्रहरणाः सर्वे युद्धविशारदाः। ९ ।

अन्ये, च, बहवः, शूराः, मदर्थे, त्यक्तजीविताः,
नानाशस्त्रप्रहरणाः, सर्वे, युद्धविशारदाः।।9।।

अनुवाद : (अन्ये) और (च) भी (मदर्थे) मेरे लिये (त्यक्तजीविताः) जीवन की आशा त्याग

देनेवाले (बहवः)बहुत-से (शूराः) शूरमा (नानाशस्त्रप्रहरणाः) अनेक प्रकार के शस्त्रों से सुसज्जित और (सर्वे) सब-के-सब (युद्धविशारदाः)युद्ध में चतुर हैं। (9)

अध्याय 1 का श्लोक 10

ग्यारह क्षौणी सेना होते हुए भी दुर्योधन को अपनी हार पहले ही महसूस हो रही थी। इसीलिए अपनी सेना बल को अपर्याप्त कह रहा है। कहा कि :-

अपर्याप्तं तदस्माकं बलं भीष्माभिरक्षितम्।
पर्याप्तं त्विदमेतेषां बलं भीमाभिरक्षितम्।१०।

अपर्याप्तम्, तत्, अस्माकम्, बलम्, भीष्माभिरक्षितम्,
पर्याप्तम्, तु, इदम्, एतेषाम्, बलम्, भीमाभिरक्षितम्।।10।।

अनुवाद : (भीष्माभिरक्षितम्)भीष्मपितामह द्वारा रक्षित (अस्माकम्)हमारी (तत्)वह (बलम्)सेना (अपर्याप्तम्) अपर्याप्त है यानि कम है (तु) और (भीमाभिरक्षितम्) भीमद्वारा रक्षित (एतेषाम्) इन लोगोंकी (इदम्) यह (बलम्) सेना (पर्याप्तम्) पर्याप्त है यानि बहुत है। (10)

अध्याय 1 का श्लोक 11

भयभीत दुर्योधन ने कहा है कि आप भीष्म पितामह की रक्षा करना। जबकि भीष्म पितामह तो सबसे बलवान था जो अगले श्लोक 12 में स्वीकारा है कि पितामह भीष्म वद्ध होते हुए भी बड़े प्रतापी हैं। दुर्योधन ने आगे कहा कि :-

अयनेषु च सर्वेषु यथाभागमवस्थिताः।
भीष्ममेवाभिरक्षन्तु भवन्तः सर्व एव हि।११।

अयनेषु, च, सर्वेषु, यथाभागम्, अवस्थिताः,
भीष्मम्, एव, अभिरक्षन्तु, भवन्तः, सर्वे, एव, हि।।11।।

अनुवाद : (च) इसलिए (सर्वेषु) सब (अयनेषु) मोर्चोंपर (यथाभागम्) अपनी-अपनी जगह (अवस्थिताः) स्थित रहते हुए (भवन्तः) आपलोग (सर्वे, एव) सभी (हि) निःसन्देह (भीष्मम्) भीष्मपितामहकी (एव) ही (अभिरक्षन्तु) सब ओरसे रक्षा करें। (11)

अध्याय 1 का श्लोक 12

दुर्योधन को डरा हुआ जानकर उसका साहस बढ़ाने के लिए भीष्म ने शंख बजाया :-

तस्य सञ्जनयन्हर्षं कुरुवृद्धः पितामहः।
सिंहनादं विनद्योच्चैः शङ्खं दध्मौ प्रतापवान्।१२।

तस्य, स जनयन्, हर्षम्, कुरुवद्धः, पितामहः,
सिंहनादम्, विनद्य, उच्चैः, शङ्खम्, दध्मौ, प्रतापवान्।।12।।

अनुवाद : (कुरुवद्धः) कौरवोंमें वद्ध (प्रतापवान्) बड़े प्रतापी (पितामहः) पितामह भीष्मने (तस्य) उस दुर्योधन के हृदयमें (हर्षम्) हर्ष (स जनयन्) उत्पन्न करते हुए (उच्चैः) उच्च स्वरसे (सिंहनादम्) सिंहकी दहाड़ के समान (विनद्य) गरजकर (शङ्खम्) शंख (दध्मौ) बजाया। (12)

अध्याय 1 का श्लोक 13

ततः शङ्खाश्च भेर्यश्च पणवानकगोमुखाः।
सहसैवाभ्यहन्यन्त स शब्दस्तुमुलोऽभवत्।१३।

ततः, शङ्खाः, च, भेर्यः, च, पणवानकगोमुखाः,
सहसा, एव, अभ्यहन्यन्त, सः, शब्दः, तुमुलः, अभवत्।।13।।

अनुवाद : (ततः) इसके पश्चात् (शङ्खाः) शंख (च) और (भेर्यः) नगारे (च) तथा (पणवानक गोमुखाः) ढोल, मदंग और नरसिंघे आदि बाजे (सहसा) अचानक एक साथ (एव) ही (अभ्यहन्यन्त) बज उठे। उनका (सः) वह (शब्दः) शब्द (तुमुलः) बड़ा भयंकर (अभवत्) हुआ।(13)

अध्याय 1 का श्लोक 14

ततः श्वेतैर्हयैर्युक्ते महति स्यन्दने स्थितौ।
माधवः पाण्डवश्चैव दिव्यौ शङ्खौ प्रदध्मतुः।१४।

ततः, श्वेतैः, हयैः, युक्ते, महति, स्यन्दने, स्थितौ,
माधवः, पाण्डवः, च, एव, दिव्यौ, शङ्खौ, प्रदध्मतुः।।14।।

अनुवाद : (ततः) इसके अनन्तर (श्वेतैः) सफेद (हयैः) घोड़ोंसे (युक्ते) युक्त (महति) उत्तम (स्यन्दने) रथमें (स्थितौ) बैठे हुए (माधवः) श्रीकष्ण (च) और (पाण्डवः) पाण्डव पुत्र अर्जुन ने (एव) भी (दिव्यौ) अलौकिक (शङ्खौ) शंख (प्रदध्मतुः) बजाये। (14)

अध्याय 1 का श्लोक 15

पाञ्चजन्यं हृषीकेशो देवदत्तं धनञ्जयः।
पौण्ड्रं दध्मौ महाशङ्खं भीमकर्मा वृकोदरः।१५।

पा चजन्यम्, हृषीकेशः, देवदत्तम्, धन जयः,
पौण्ड्रम्, दध्मौ, महाशङ्खम्, भीमकर्मा, वकोदरः।।15।।

अनुवाद : (हृषीकेशः) श्रीकष्ण जी ने (पाँचजन्यम्) पाँचजन्य नामक (धन जयः) अर्जुनने (देवदत्तम्) देवदत्त नामक और (भीमकर्मा) भयानक कर्मवाले (वकोदरः) पेटू भीमसेन ने (पौण्ड्रम्) पौण्ड्र नामक (महाशङ्खम्) महाशंख (दध्मौ) बजाया। (15)

अध्याय 1 का श्लोक 16

अनन्तविजयं राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः।
नकुलः सहदेवश्च सुघोषमणिपुष्पकौ।१६।

अनन्तविजयम्, राजा, कुन्तीपुत्रः, युधिष्ठिरः,
नकुलः, सहदेवः, च, सुघोषमणिपुष्पकौ।।16।।

अनुवाद : (कुन्तीपुत्रः) कुन्तीपुत्र (राजा) राजा (युधिष्ठिरः) युधिष्ठिरने (अनन्तविजयम्) अनन्तविजय नामक और (नकुलः) नकुल (च) तथा (सहदेवः) सहदेवने (सुघोषमणिपुष्पकौ) सुघोष और मणिपुष्पक नामक शंख बजाये। (16)

अध्याय 1 का श्लोक 17-18

काश्यश्च परमेष्वासः शिखण्डी च महारथः।
धृष्टद्युम्नो विराटश्च सात्यकिश्चापराजितः।१७।

काश्यः, च, परमेष्वासः, शिखण्डी, च, महारथः,
धष्टद्युम्नः, विराटः, च, सात्यकिः, च, अपराजितः।।17।।

द्रुपदो द्रौपदेयाश्च सर्वशः पृथिवीपते।
सौभद्रश्च महाबाहुः शङ्खान्दध्मुः पृथक् पृथक्।१८।

द्रुपदः, द्रौपदेयाः, च, सर्वशः, पथिवीपते,
सौभद्रः, च, महाबाहुः, शङ्खान्, दध्मुः, पथक्, पथक्।।18।।

अनुवाद : (परमेष्वासः) श्रेष्ठ धनुषवाले (काश्यः) काशिराज (च) और (महारथः) महारथी

(शिखण्डी) शिखण्डी (च) एवं (धष्टद्युम्नः) धष्टद्युम्न (च) तथा (विराटः) राजा विराट (च) और (अपराजितः) अजेय (सात्यकिः) सात्यकि (द्रुपदः) राजा द्रुपद (च) एवं (द्रौपदेयाः) द्रौपदी के पाँचों पुत्र (च) और (महाबाहुः) बड़ी भुजावाले (सौभद्रः) सुभद्रापुत्र अभिमन्यु इन सभी ने (पथिवीपते) हे महीपति यानि राजन्! (सर्वशः) सब ओर से (पथक्-पथक्) अलग-अलग (शङ्खान्) शंख (दध्मुः) बजाये।(18)

अध्याय 1 का श्लोक 19

स घोषो धार्तराष्ट्राणां हृदयानि व्यदारयत्।
नभश्च पृथिवीं चैव तुमुलो व्यनुनादयन्।१९।

सः, घोषः, धार्तराष्ट्राणाम्, हृदयानि, व्यदारयत्,
नभः, च, पथिवीम्, च, एव, तुमुलः, व्यनुनादयन्।।19।।

अनुवाद : (च) और (सः) उस (तुमुलः) भयानक (घोषः) शब्दने (नभः) आकाश (च) और (पथिवीम्) पथ्वी को (एव) भी (व्यनुनादयन्) गुँजाते हुए (धार्तराष्ट्राणाम्) धतराष्ट्र के यानि आपके पक्षवालों के (हृदयानि) हृदय (व्यदारयत्) विदीर्ण कर दिये। (19)

अध्याय 1 का श्लोक 20-21

अथ व्यवस्थितान्दृष्ट्वा धार्तराष्ट्रान् कपिध्वजः।
प्रवृत्ते शस्त्रसम्पाते धनुरुद्यम्य पाण्डवः।२०।

अथ, व्यवस्थितान्, दष्टवा, धार्तराष्ट्रान्, कपिध्वजः,
प्रवत्ते, शस्त्रसम्पाते, धनुः, उद्यम्य, पाण्डवः।।20।।

हृषीकेशं तदा वाक्यमिदमाह महीपते।
सेनयोरुभयोर्मध्ये रथं स्थापय मेऽच्युत।२१।

हृषीकेशम्, तदा, वाक्यम्, इदम्, आह, महीपते,
सेनयोः, उभयोः, मध्ये, रथम्, स्थापय, मे, अच्युत।।21।।

अनुवाद : (महीपते) हे पथ्वीपति! (अथ) इसके बाद (कपिध्वजः) कपिध्वज (पाण्डवः) अर्जुनने (व्यवस्थितान्) मोर्चा बाँधकर डटे हुए (धार्तराष्ट्रान्) धतराष्ट्र सम्बन्धियोंको (दष्टवा) देखकर (तदा) उस (शस्त्रसम्पाते) शस्त्र चलने की तैयारी के (प्रवत्ते) समय (धनुः) धनुष (उद्यम्य) उठाकर (हृषीकेशम्) हृषीकेश श्रीकष्ण से (इदम्) यह (वाक्यम्) वचन (आह) कहा (अच्युत) हे श्रेष्ठ! (मे) मेरे (रथम्) रथ को (उभयोः) दोनों (सेनयोः) सेनाओं के (मध्ये) बीच में (स्थापय) खड़ा कीजिये। (20-21)

अध्याय 1 का श्लोक 22 (अर्जुन उवाच)

यावदेतान्निरीक्षेऽहं योद्धुकामानवस्थितान्।
कैर्मया सह योद्धव्यमस्मिन्रणसमुद्यमे।२२।

यावत्, एतान्, निरीक्षे, अहम्, योद्धुकामान्, अवस्थितान्,
कैः, मया, सह, योद्धव्यम्, अस्मिन्, रणसमुद्यमे।।22।।

अनुवाद : (यावत्) जब तक कि (अहम्) मैं (अवस्थितान्) युद्ध-क्षेत्रमें डटे हुए (योद्धुकामान्) युद्धके अभिलाषी (एतान्) इन विपक्षी योद्धओं को (निरीक्षे) भली प्रकार देख लूँ कि (अस्मिन्) इस (रणसमुद्यमे) युद्धरूप व्यापार में (मया) मेरे द्वारा (कैः) किन-किनके (सह) साथ (योद्धव्यम्) युद्ध करना योग्य है। (22)

अध्याय 1 का श्लोक 23

योत्स्यमानानवेक्षेऽहं य एतेऽत्र समागताः।
धार्तराष्ट्रस्य दुर्बुद्धेर्युद्धे प्रियचिकीर्षवः। २३।

योत्स्यमानान्, अवेक्षे, अहम्, ये, एते, अत्र, समागताः,
धार्तराष्ट्रस्य, दुर्बुद्धेः, युद्धे, प्रियचिकीर्षवः।।23।।

अुवाद : (दुर्बुद्धेः) दुर्बुद्धि (धार्तराष्ट्रस्य) धतराष्ट्र का (युद्धे) युद्धमें (प्रियचिकीर्षवः) हित चाहनेवाले (ये) जो-जो (एते) ये राजालोग (अत्र) इस सेना में (समागताः) आये हैं इन (योत्स्यमानान्)युद्ध करने वालोंको (अहम्) मैं (अवेक्षे) देखूँगा। (23)

अध्याय 1 का श्लोक 24-25

(संजय उवाच)

एवमुक्तो हृषीकेशो गुडाकेशेन भारत।
सेनयोरुभयोर्मध्ये स्थापयित्वा रथोत्तमम्। २४।

एवम्, उक्तः, हृषीकेशः, गुडाकेशेन, भारत,
सेनयोः, उभयोः, मध्ये, स्थापयित्वा, रथोत्तमम्।।24।।

भीष्मद्रोणप्रमुखतः सर्वेषां च महीक्षिताम्।
उवाच पार्थ पश्यैतान् समवेतान्कुरूनिति। २५।

भीष्मद्रोणप्रमुखतः, सर्वेषाम्, च, महीक्षिताम्,
उवाच, पार्थ, पश्य, एतान्, समवेतान्, कुरून्, इति।।25।।

अनुवाद : (भारत) हे भरत के वंशज धतराष्ट्र! (गुडाकेशेन) अर्जुनद्वारा (एवम्) इस प्रकार (उक्तः) कहे हुए (हृषीकेशः) श्रीकष्णचन्द्र ने (उभयोः) दोनों (सेनयोः) सेनाओंके (मध्ये) बीचमें (भीष्मद्रोणप्रमुखतः) भीष्म और द्रोणाचार्यके सामने (च) तथा (सर्वेषाम्) सम्पूर्ण (महीक्षिताम्) राजाओंके सामने (रथोत्तमम्) उत्तम रथ को (स्थापयित्वा) खड़ा करके (इति) इस प्रकार (उवाच) कहा कि (पार्थ) हे पार्थ! युद्ध के लिये (समवेतान्) जुटे हुए (एतान्) इन (कुरून्) कौरवों को (पश्य) देख। (24-25)

अध्याय 1 का श्लोक 26-27

तत्रापश्यत्स्थितान् पार्थः पितॄनथ पितामहान्।
आचार्यान्मातुलान्भ्रातॄन्पुत्रान्पौत्रान्सखींस्तथा। २६।

तत्र, अपश्यत्, स्थितान्, पार्थः, पितृन्, अथ, पितामहान्,
आचार्यान्, मातुलान्, भ्रातृन्, पुत्रान्, पौत्रान्, सखीन्,तथा (26)

श्वशुरान् सुहृदश्चैव सेनयोरुभयोरपि।
तान्समीक्ष्य स कौन्तेयः सर्वान्बन्धूनवस्थितान्। २७।

श्वशुरान्, सुहृदः, च, एव, सेनयोः, उभयोः, अपि,
तान्, समीक्ष्य, सः, कौन्तेयः, सर्वान्, बन्धून्, अवस्थितान्,।। (27)

अनुवाद : (अथ) इसके बाद (पार्थः) पथापुत्र अर्जुनने (तत्र) उन (उभयोः) दोनों (एव) ही (सेनयोः) सेनाओंमें (स्थितान्) स्थित (पितृन्) ताऊ-चाचों को (पितामहान्) दादों-परदादों को (आचार्यान्) गुरुओं को (मातुलान्) मामाओं को (भ्रातृन्) भाइयोंको (पुत्रान्) पुत्रों को (पौत्रान्) पौत्रों को (तथा) तथा (सखीन्) मित्रों कों (श्वशुरान्) ससुरों को (च) और (सुहृदः) शुभचिंतको को

(अपि) भी (अपश्यत्) देखा। (तान्) उन (अवस्थितान्) उपस्थित (सर्वान्) सम्पूर्ण (बन्धून्) बन्धुओंको (समीक्ष्य) देखकर (सः) उस (कौन्तेयः) कुन्तीपुत्र अर्जुन ने। (26-27)

अध्याय 1 का श्लोक 28

(अर्जुन उवाच)

कृपया परयाविष्टो विषीदन्निदमब्रवीत्।
दृष्ट्वेमं स्वजनं कृष्ण युयुत्सुं समुपस्थितम्। २८।

कपया, परया, आविष्टः, विषीदन्, इदम्, अब्रवीत्,
दष्टवा, इमम्, स्वजनम्, कष्ण, युयुत्सुम्, समुपस्थितम्।।28।।

अनुवाद : (परया) अत्यन्त (कपया) करुणासे (आविष्टः) युक्त होकर (विषीदन्) शोक करते हुए (इदम्) यह वचन (अब्रवीत्) बोले। (कष्ण) हे कष्ण! युद्ध-क्षेत्रमें (समुपस्थितम्) डटे हुए (युयुत्सुम्) युद्धके अभिलाषी (इमम्) इस (स्वजनम्) स्वजन-समुदायको (दष्टवा) देखकर (28)

अध्याय 1 का श्लोक 29

सीदन्ति मम गात्राणि मुखं च परिशुष्यति।
वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते। २९।

सीदन्ति, मम, गात्राणि, मुखम्, च, परिशुष्यति,
वेपथुः, च, शरीरे, मे, रोमहर्षः, च, जायते।।29।।

अनुवाद :(मम) मेरे (गात्राणि) शरीर के अंग (सीदन्ति) शिथिल हुए जा रहे हैं। (च) और (मुखम्) मुख (परिशुष्यति) सूखा जा रहा है (च) तथा (मे) मेरे (शरीरे) शरीरमें (वेपथुः) कम्पन (च) एवं (रोमहर्षः) रोमांच (जायते) हो रहा है। (29)

अध्याय 1 का श्लोक 30

गाण्डीवं स्रंसते हस्तात्त्वक्चैव परिदह्यते।
न च शक्नोम्यवस्थातुं भ्रमतीव च मे मनः। ३०।

गाण्डीवम्, स्त्रंसते, हस्तात्, त्वक्, च, एव, परिदह्यते,
न, च, शक्नोमि, अवस्थातुम्, भ्रमति, इव, च, मे, मनः।।30।।

अनुवाद : (हस्तात्) हाथसे (गाण्डीवम्) गाण्डीव धनुष (स्त्रंसते) गिर रहा है (च) और (त्वक्) त्वचा (एव) भी (परिदह्यते) बहुत जल रही है (च) तथा (मे) मेरा (मनः) मन (भ्रमति, इव) भ्रमित-सा हो रहा है (च) तथा इसलिए मैं (अवस्थातुम्) खड़ा रहने को (न शक्नोमि) समर्थ नहीं हूँ।(30)

अध्याय 1 का श्लोक 31

निमित्तानि च पश्यामि विपरीतानि केशव।
न च श्रेयोऽनुपश्यामि हत्वा स्वजनमाहवे। ३१।

निमित्तानि, च, पश्यामि, विपरीतानि, केशव,
न, च, श्रेयः, अनुपश्यामि, हत्वा, स्वजनम्, आहवे।।31।।

अनुवाद : (केशव) हे केशव! मैं (निमित्तानि) लक्षणोंको (च) भी (विपरीतानि) विपरीत ही (पश्यामि) देख रहा हूँ (च) तथा (आहवे) युद्ध में (स्वजनम्) स्वजनसमुदायको (हत्वा) मारकर (श्रेयः) कल्याण (न) नहीं (अनुपश्यामि) देखता। (31)

अध्याय 1 का श्लोक 32

न काङ्क्षे विजयं कृष्ण न च राज्यं सुखानि च।
किं नो राज्येन गोविन्द किं भोगैर्जीवितेन वा। ३२।

न, काङ्क्षे, विजयम्, कष्ण, न, च, राज्यम्, सुखानि, च,
किम्, नः, राज्येन, गोविन्द, किम्, भोगैः, जीवितेन, वा।।32।।

अनुवाद : (कष्ण) हे कष्ण! मैं (न) न तो (विजयम्) विजय (काङ्क्षे) चाहता हूँ (च) और (न) न (राज्यम्) राज्य (च) तथा (सुखानि) सुखोंको ही (गोविन्द) हे गोविन्द! (नः) हमें ऐसे (राज्येन) राज्यसे (किम्) क्या प्रयोजन है (वा) अथवा ऐसे (भोगैः) भोगोंसे और (जीवितेन) जीवनसे भी (किम्) क्या लाभ है?। (32)

अध्याय 1 का श्लोक 33

येषामर्थे काङ्क्षितं नो राज्यं भोगाः सुखानि च।
त इमेऽवस्थिता युद्धे प्राणांस्त्यक्त्वा धनानि च। ३३।

येषाम्, अर्थे, काङ्क्षितम्, नः, राज्यम्, भोगाः, सुखानि, च,
ते, इमे, अवस्थिताः, युद्धे, प्राणान्, त्यक्त्वा, धनानि, च।।33।।

अनुवाद : (नः) हमें (येषाम्) जिनके (अर्थे) लिये (राज्यम्) राज्य (भोगाः) भोग (च) और (सुखानि) सुखादि (काङ्क्षितम्) अभीष्ट हैं (ते) वे ही (इमे) ये सब (धनानि) धन (च) और (प्राणान्) जीवन की आशा को (त्यक्त्वा) त्यागकर (युद्धे) युद्धमें (अवस्थिताः) खड़े हैं। (33)

अध्याय 1 का श्लोक 34

आचार्याः पितरः पुत्रास्तथैव च पितामहाः।
मातुलाः श्वशुराः पौत्राः श्यालाः सम्बन्धिनस्तथा। ३४।

आचार्याः, पितरः, पुत्राः, तथा, एव, च, पितामहाः,
मातुलाः, श्वशुराः, पौत्राः, श्यालाः, सम्बन्धिनः, तथा।।34।।

अनुवाद : (आचार्याः) गुरुजन (पितरः) ताऊ-चाचे (पुत्राः) लड़के (च) और (तथा, एव) उसी प्रकार (पितामहाः) दादे (मातुलाः) मामे (श्वशुराः) ससुर (पौत्राः) पोते (श्यालाः) साले (तथा) तथा और भी (सम्बन्धिनः) सम्बन्धी लोग हैं। (34)

अध्याय 1 का श्लोक 35

एतान्न हन्तुमिच्छामि घ्नतोऽपि मधुसूदन।
अपि त्रैलोक्यराज्यस्य हेतोः किं नु महीकृते। ३५।

एतान्, न, हन्तुम्, इच्छामि, घ्नतः, अपि, मधुसूदन,
अपि त्रैलोक्यराज्यस्य, हेतोः, किम्, नु, महीकते।।35।।

अनुवाद : (मधुसूदन) हे मधुसूदन! भले ही मुझे (घ्नतः) मार डालें (अपि) तो भी अथवा (त्रैलोक्यराज्यस्य) तीनों लोकोंके राज्यके (हेतोः) लिये (अपि) भी मैं (एतान्) इन सबको (हन्तुम्) मारना (न) नहीं (इच्छामि) चाहता फिर (महीकते) पथ्वीके लिये तो (नु किम्) कहना ही क्या है?(35)

अध्याय 1 का श्लोक 36

निहत्य धार्तराष्ट्रान्नः का प्रीतिः स्याज्जनार्दन।
पापमेवाश्रयेदस्मान्हत्वैतानाततायिनः ।३६।

निहत्य, धार्तराष्ट्रान्, नः, का, प्रीतिः, स्यात्, जनार्दन,
पापम्, एव, आश्रयेत्, अस्मान्, हत्वा, एतान्, आततायिनः।।36।।

अनुवाद : (जनार्दन) हे जनार्दन! (धार्तराष्ट्रान्) धतराष्ट्रके पुत्रोंको (निहत्य) मारकर (नः) हमें (का) क्या (प्रीतिः) प्रसन्नता (स्यात्) होगी? (एतान्) इन (आततायिनः) आततायियों को यानि अपराधियों को (हत्वा) मारकर तो (अस्मान्) हमें (पापम्) पाप (एव) ही (आश्रयेत्) लगेगा। (36)

अध्याय 1 का श्लोक 37

तस्मान्नार्हा वयं हन्तुं धार्तराष्ट्रान् स्वबान्धवान्।
स्वजनं हि कथं हत्वा सुखिनः स्याम माधव।३७।

तस्मात्, न, अर्हाः, वयम्, हन्तुम्, धार्तराष्ट्रान्, स्वबान्धवान्,
स्वजनम्, हि, कथम्, हत्वा, सुखिनः, स्याम, माधव।।37।।

अनुवाद : (तस्मात्) अतएव (माधव) हे माधव! (स्वबान्धवान्) अपने ही बान्धव (धार्तराष्ट्रान्) धतराष्ट्रके पुत्रोंको (हन्तुम्) मारनेके लिये (वयम्) हम (न अर्हाः) योग्य नहीं हैं (हि) क्योंकि (स्वजनम्) अपने ही कुटुम्बको (हत्वा) मारकर हम (कथम्) कैसे (सुखिनः) सुखी (स्याम) होंगे?(37)

अध्याय 1 का श्लोक 38-39

यद्यप्येते न पश्यन्ति लोभोपहतचेतसः।
कुलक्षयकृतं दोषं मित्रद्रोहे च पातकम्।३८।

कथं न ज्ञेयमस्माभिः पापादस्मान्निवर्तितुम्।
कुलक्षयकृतं दोषं प्रपश्यद्भिर्जनार्दन।३९।

यद्यपि, एते, न, पश्यन्ति, लोभोपहतचेतसः,
कुलक्षयकतम्, दोषम्, मित्रद्रोहे, च, पातकम्।।38।।
कथम्, न, ज्ञेयम्, अस्माभिः, पापात्, अस्मात्, निवर्तितुम्,
कुलक्षयकतम्, दोषम्, प्रपश्यभ्दिः, जनार्दन।।39।।

अनुवाद : (यद्यपि) यद्यपि (लोभोपहतचेतसः) लोभ से भ्रष्टचित हुए (एते) ये लोग (कुलक्षयकतम्) कुलके नाशसे उत्पन्न (दोषम्) दोषको (च) और (मित्रद्रोहे) मित्रों से विरोध करने में (पातकम्) पाप को (न) नहीं (पश्यन्ति) देखते तो भी (जनार्दन) हे जनार्दन! (कुलक्षयकतम्) कुलके नाश से उत्पन्न (दोषम्) दोष को (प्रपश्यभ्दिः) जाननेवाले (अस्माभिः) हम लोगों को (अस्मात्) इस (पापात्) पाप से (निवर्तितुम्) हटने के लिये (कथम्) क्यों (न) नहीं (ज्ञेयम्) विचार करना चाहिये?(38-39)

अध्याय 1 का श्लोक 40

कुलक्षये प्रणश्यन्ति कुलधर्माः सनातनाः।
धर्मे नष्टे कुलं कृत्स्नमधर्मोऽभिभवत्युत।४०।

कुलक्षये, प्रणश्यन्ति, कुलधर्माः, सनातनाः,
धर्मे, नष्टे, कुलम्, कत्स्नम्, अधर्मः, अभिभवति, उत।।40।।

अनुवाद : (कुलक्षये) कुलके नाशसे (सनातनाः) सनातन (कुलधर्माः) कुलधर्म (प्रणश्यन्ति) नष्ट हो जाते हैं (धर्मे) धर्मके (नष्टे) नाश हो जानेपर (कत्स्नम्) सम्पूर्ण (कुलम्) कुलमें (अधर्मः) पाप (उत) भी (अभिभवति) बहुत फैल जाता है। (40)

अध्याय 1 का श्लोक 41

अधर्माभिभवात्कृष्ण प्रदुष्यन्ति कुलस्त्रियः।
स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्णसङ्करः।४१।

अधर्माभिभवात्, कष्ण, प्रदुष्यन्ति, कुलस्त्रियः,
स्त्रीषु, दुष्टासु, वार्ष्णेय, जायते, वर्णसंकरः।।41।।

अनुवाद : (कष्ण) हे कष्ण! (अधर्माभिभवात्) पापके अधिक बढ़ जानेसे (कुलस्त्रियः) कुलकी स्त्रियाँ (प्रदुष्यन्ति) अत्यन्त दूषित हो जाती हैं और (वार्ष्णेय) हे वार्ष्णेय! (स्त्रीषु) स्त्रियोंके (दुष्टासु) दूषित चरित्र वाली हो जानेपर (वर्णसंकर) वर्णशंकर संतान (जायते) उत्पन्न होती है। (41)

अध्याय 1 का श्लोक 42

सङ्करो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च।
पतन्ति पितरो ह्येषां लुप्तपिण्डोदकक्रियाः।४२।

संकरः, नरकाय, एव, कुलघ्नानाम्, कुलस्य, च,
पतन्ति, पितरः, हि, एषाम्, लुप्तपिण्डोदकक्रियाः।।42।।

अनुवाद : (संकरः) वर्णसंकर (कुलघ्नानाम्) कुलघातियोंको (च) और (कुलस्य) कुलको (नरकाय) नरकमें ले जानेके लिये (एव) ही होता है (लुप्तपिण्डोदक) गुप्त शारीरिक विलास जो नर-मादा के बीज और रज रूप जल की (क्रियाः) क्रियासे (एषाम्) इनके (पितरः) वंश (हि) भी (पतन्ति) अधोगतिको प्राप्त होते हैं। (42)

अध्याय 1 का श्लोक 43

दोषैरेतैः कुलघ्नानां वर्णसङ्करकारकैः।
उत्साद्यन्ते जातिधर्माः कुलधर्माश्च शाश्वताः।४३।

दोषैः, एतैः, कुलघ्नानाम्, वर्णसंकरकारकैः,
उत्साद्यन्ते, जातिधर्माः, कुलधर्माः, च, शाश्वताः।।43।।

अनुवाद : (एतैः) इन (वर्णसंकरकारकैः) वर्णसंकरकारक (दोषैः) दोषोंसे (कुलघ्नानाम्) कुलघातियोंके (शाश्वताः) सनातन (कुलधर्माः) कुल-धर्म (च) और (जातिधर्माः) जाति- धर्म (उत्साद्यन्ते) नष्ट हो जाते हैं। (43)

अध्याय 1 का श्लोक 44

उत्सन्नकुलधर्माणां मनुष्याणां जनार्दन।
नरकेऽनियतं वासो भवतीत्यनुशुश्रुम।४४।

उत्सन्नकुलधर्माणाम्, मनुष्याणाम्, जनार्दन,
नरके, अनियतम्, वासः, भवति, इति, अनुशुश्रुम।।44।।

अनुवाद : (जनार्दन) हे जनार्दन! (उत्सन्नकुल धर्माणाम्) जिनका कुल-धर्म नष्ट हो गया है

ऐसे (मनुष्याणाम्) मनुष्यों का (अनियतम्) अनिश्चित काल तक (नरके) नरक में (वासः) वास (भवति) होता है (इति) ऐसा हम (अनुशुश्रुम) सुनते आये हैं। (44)

अध्याय 1 का श्लोक 45

अहो बत महत्पापं कर्तुं व्यवसिता वयम्।
यद्राज्यसुखलोभेन हन्तुं स्वजनमुद्यताः।४५।

अहो, बत, महत्, पापम्, कर्तुम्, व्यवसिताः, वयम्,
यत्, राज्यसुखलोभेन, हन्तुम्, स्वजनम्, उद्यताः।।45।।

अनुवाद : (अहो) हा! (बत) शोक! (वयम्) हमलोग बुद्धिमान् होकर भी (महत्) बहुत बड़ा (पापम्) पाप (कर्तुम्) करनेको (व्यवसिताः) तैयार हो गये हैं (यत्) जो (राज्यसुखलोभेन) राज्य और सुखके लोभसे (स्वजनम्) स्वजनोंको (हन्तुम्) मारनेके लिये (उद्यताः) उद्यत हो गये हैं। (45)

अध्याय 1 का श्लोक 46

यदि मामप्रतीकारमशस्त्रं शस्त्रपाणयः।
धार्तराष्ट्रा रणे हन्युस्तन्मे क्षेमतरं भवेत्।४६।

यदि, माम्, अप्रतीकारम्, अशस्त्रम्, शस्त्रपाणयः,
धार्तराष्ट्राः, रणे, हन्युः, तत्, मे, क्षेमतरम्, भवेत्।।46।।

अनुवाद : (यदि) यदि (माम्) मुझ (अशस्त्रम्) शस्त्ररहित एवं (अप्रतीकारम्) सामना न करनेवालेको (शस्त्रपाणयः) शस्त्र हाथमें लिये हुए (धार्तराष्ट्राः) धतराष्ट्रके पुत्र (रणे) रणमें (हन्युः) मार डालें तो (तत्) वह मरना भी (मे) मेरे लिये (क्षेमतरम्) अधिक कल्याण-कारक (भवेत्) होगा।(46)

अध्याय 1 का श्लोक 47

एवमुक्त्वार्जुनः सङ्ख्ये रथोपस्थ उपाविशत्।
विसृज्य सशरं चापं शोकसंविग्नमानसः।४७।

एवम्, उक्त्वा, अर्जुनः, सङ्ख्ये, रथोपस्थे, उपाविशत्,
विसज्य, सशरम्, चापम्, शोकसंविग्नमानसः।।47।।

अनुवाद : (सङ्ख्ये) रणभूमिमें (शोकसंविग्न) शोकसे उद्विग्न (मानसः) मनवाला (अर्जुनः) अर्जुन (एवम्) इस प्रकार (उक्त्वा) कहकर (सशरम्) बाणसहित (चापम्) धनुषको (विसज्य) त्यागकर (रथोपस्थे) रथके पिछले भागमें (उपाविशत्) बैठ गया।(47)

(इति अध्याय प्रथम)

❑❑❑

दूसरा अध्याय

।। दिव्य सारांश ।।

अध्याय 2 के श्लोक 1 से 3 में वर्णन है कि दुःखी व रोते हुए अर्जुन को देख कर श्री कृष्ण के शरीर में प्रवेश ''काल'' (ब्रह्म) ने कहा कि इस अवसर पर आपका कायरता दिखाना न तो स्वर्ग प्राप्ति है, न कीर्ति प्राप्ति है तथा श्रेष्ठ व्यक्तियों का काम नहीं है। इसलिए हे अर्जुन नपुसंकता को त्याग कर युद्ध के लिए तैयार हो जा।

❖ *अध्याय 2 के श्लोक 4 से 6 में अर्जुन कह रहा है कि भगवन अपने पूजनीय बड़ों (द्रोणाचार्य, धृतराष्ट्र) व बन्धुओं को मार कर पाप का भागी होने से अच्छा तो हम भिक्षा का अन्न खाना उचित समझते हैं और इस रक्त से युक्त राज को भोग कर तो पाप ही प्राप्त करेंगे। फिर न जाने कौन मरे और कौन बचे?*

❖ *अध्याय 2 के श्लोक 7 से 9 में अर्जुन कहता है मैं आपका शिष्य हूँ तथा आपकी शरण में हूँ। मेरी बुद्धि काम करना बन्द कर चुकी है। जो मेरे हित में हो वही सलाह (राय) दीजिए। यदि मुझे कोई सारी पृथ्वी का राज्य प्रदान करे तथा देवताओं के स्वामी अर्थात् इन्द्र का शासन भी प्रदान करे तो भी युद्ध करके पाप का भार सिर पर रखना नहीं चाहूंगा अर्थात् मुझे कोई कितना ही लालच दे, परंतु मैं नहीं देखता हूँ कि आपकी कोई शिक्षा मुझे शोक मुक्त कर देगी अर्थात् युद्ध के लिए तैयार कर देगी। (मैं युद्ध नहीं करूंगा।) इस प्रकार यह कह कर अर्जुन चुप हो कर रथ के पिछले भाग में बैठ गया।*

''गीता ज्ञान बोलने वाले के भी जन्म-मृत्यु होते हैं''

❖ *अध्याय 2 के श्लोक 10 से 16 में वर्णन है कि अर्जुन को दुःख में ग्रस्त देख कर मुस्कराते हुए भगवान बोले कि हे अर्जुन शोक न करने वाली बात का शोक कर रहा है तथा ज्ञान कह रहा है पंडितों जैसा। विद्वान लोग मरने जीने की चिंता नहीं करते। श्लोक 12 में काल ब्रह्म ने कहा है कि हे अर्जुन! ऐसा नहीं है कि हम तुम और ये सभी सैनिक पहले कभी नहीं थे या आगे न होंगे। इसलिए दुःख-सुख सहन करने की हिम्मत रख और मैं, तू तथा ये सब सदा जन्म-मरण में ही हैं।*

❖ *विशेष विवेचन :- गीता अध्याय 2 के श्लोक 16 में वर्णन है कि असत् यानि नाशवान का आस्तित्व चिर काल तक नहीं रहता तथा सत् यानि अविनाशी का आस्तित्व सदा रहता है। अविनाशी परमात्मा है। उसका अंश आत्मा भी अविनाशी है। परमात्मा से संपूर्ण संसार व्याप्त है यानि विस्तार को प्राप्त हुआ है। उस अविनाशी परमात्मा का अभाव (अनुपस्थिति) किसी समय में नहीं होता है। गीता अध्याय 2 श्लोक 17 में उसी अविनाशी परमात्मा की महिमा बताई है कि परमात्मा के अतिरिक्त कोई भी नित्य नहीं है क्योंकि आत्मा की उत्पत्ति परमात्मा ने अपने वचन से अपने शरीर से की है। उत्पत्ति से पहले आत्मा का अभाव था। भले ही वर्तमान में आत्मा भी अविनाशी है, परंतु परमात्मा का उस समय भी अभाव नहीं था।*

गीता अध्याय 2 श्लोक 17 के एस्कोन वाले श्री प्रभुपाद द्वारा किए अनुवाद में गड़बड़ी की है। आत्मा की महिमा बताई है जबकि मूल पाठ उस अविनाशी परमात्मा का गुणगान कर रहा है। (येन्) जिससे (सर्व इदम् ततम्) यह सम्पूर्ण जगत् यानि दृश्य वर्ग व्याप्त है यानि विद्यमान है। एस्कोन वालों ने अनुवाद गलत किया है। शब्दों के अर्थ अनुवाद से पहले लिखे हैं जिनमें ''येन्''

शब्द का अर्थ तो ठीक किया ''जिससे'', परंतु अनुवाद में कर दिया ''जो''। उनके द्वारा किया अनुवाद इस प्रकार है :- जो सारे शरीर में व्याप्त है, उसे ही तुम अविनाशी समझो। उस अव्यय आत्मा को नष्ट करने में कोई भी समर्थ नहीं है। (अध्याय 2 श्लोक 17)

इसी गीता अध्याय 2 श्लोक 17 का अनुवाद गीता प्रेस गोरखपुर से मुद्रित व प्रकाशित तथा जयदयाल गोयन्दका द्वारा अनुवादित में ठीक किया है जो इस प्रकार है :-

नाशरहित तो उसको जान (येन्) जिससे यह सम्पूर्ण जगत यानि दृश्य वर्ग व्याप्त है। उस अविनाशी का विनाश करने में कोई भी समर्थ नहीं है। (अध्याय 2 श्लोक 17)

दोनों अनुवाद ऊपर लिखे हैं, पाठकजन स्वयं निर्णय कर सकते हैं सत्य तथा असत्य का। वर्तमान में एस्कोन वालों की श्री प्रभुपाद जी द्वारा अनुवादित गीता का अधिक प्रचार हो रहा है जिसके प्रथम पष्ठ पर लिखा है ''श्रीमद्भगवत गीता यथारूप''। श्रद्धालुजन ''यथारूप'' शब्द देखकर आकर्षित होकर इस अनुवादित गीता को मोल लेते हैं जिसमें यथारूप के स्थान पर गलत अनुवाद अधिक है। अन्य उदाहरण :- गीता अध्याय 18 श्लोक 66 के अनुवाद में भी यही गलती कर रखी है। शब्दों के अर्थ में ''व्रज'' शब्द का अर्थ ''जाओ'' ठीक किया है, परंतु अनुवाद में ''आओ'' किया है जो स्पष्ट गलती है। आश्यर्च की बात तो यह है कि सन् 1983 से सन् 2012 तक 29 वर्षों में अड़तालीस (48) संस्करणों में कुल 6806000 (अड़सठ लाख छः हजार) गीता भारत में वितरित हो चुकी हैं जिनके प्रचार से गीता का बिगड़ा रूप पाठकों को पढ़ने को मिल रहा है। ''यथारूप'' की आड़ में गीता के ज्ञान को अज्ञान बनाकर जनता में फैलाया जा रहा है जो एक अपराध है, भोली जनता के साथ धोखा है। वैसे तो मेरे (रामपाल के) अतिरिक्त सर्व अनुवादकों ने गीता शास्त्र का अनुवाद व भावार्थ गलत किया है। परंतु एस्कोन वालों ने तो और अधिक बिगाड़ दिया है। पाठकजन गीता का यथारूप इस पुस्तक ''गहरी नजर गीता में'' में पढ़ेंगे। गीता अध्याय 2 श्लोक 18-20 में जीवात्मा का वर्णन है। गीता अध्याय 2 श्लोक 16 में कहा कि सत् तथा असत् को तत्वदर्शी संत ही ठीक-ठीक बताते हैं। उन्होंने दोनों को देखा है यानि जाना है।

''अविनाशी प्रभु तो गीता ज्ञान दाता से अन्य है''

❖ *अध्याय 2 के श्लोक 17 का भावार्थ है कि गीता ज्ञान दाता काल भगवान ने ऊपर के श्लोकों में कहा है कि अर्जुन! हम सब (मैं और तू तथा सर्व प्राणी) जन्म-मरण में हैं। श्लोक 17 में कहा है कि वास्तव में अविनाशी तो उसी परमेश्वर (पूर्ण ब्रह्म) को ही जान जिससे यह सर्व ब्रह्मण्ड व्याप्त (व्यवस्थित) हैं। उस अविनाशी (सतपुरुष) का कोई नाश नहीं कर सकता। उसी की शक्ति प्रत्येक जीव में और कण-2 में विद्यमान है। जैसे सूर्य दूर स्थान पर होते हुए भी उसका प्रकाश व उष्णता पथ्वी पर प्रभाव बनाए हुए है। जैसे सौर ऊर्जा के संयन्त्र को शक्ति दूरस्थ सूर्य से प्राप्त होती है। उस संयन्त्र से जुड़े सर्व, पंखें, व प्रकाश करने वाले बल्ब आदि कार्य करते रहते हैं। इसी प्रकार पूर्ण परमात्मा सत्यलोक में दूर विराजमान होकर सर्व प्राणियों के आत्मा रूपी संयन्त्र को शक्ति प्रदान कर रहा है। उसी की शक्ति से सर्व प्राणी व भूगोल गति कर रहे हैं। जिन शास्त्रविरूद्ध साधकों को परमात्मा का लाभ प्राप्त नहीं हो रहा उनके अन्तकरण पर पाप कर्मों के बादल छाए होते हैं। सतगुरू शरण में आने के पश्चात् सत्य साधना (शास्त्र विधि अनुसार) करने से वे पाप कर्मों के बादल समाप्त हो जाते हैं। जिस कारण से पूर्ण सन्त की शरण में रह कर मर्यादावत् साधना करने से परमात्मा से मिलने वाली शक्ति प्रारम्भ हो जाती है। कबीर परमेश्वर के शिष्य गरीबदास जी ने*

कहा है :-

जैसे सूरज के आगे बदरा ऐसे कर्म छया रे। प्रेम की पवन करे चित मन्जन झल्के तेज नया रे।।

सरलार्थ :-- जैसे सूर्य के सामने बादल होते है ऐसे पाप कर्मों की छाया जीव व परमात्मा के मध्य हो जाती है। पूर्ण सन्त की शरण में शास्त्रविधि अनुसार साधना करने से, प्रभु की भक्ति रूपी मन्जन से प्रभु प्रेम रूपी हवा चलने से पाप कर्म रूपी बादल हट कर भक्त के चेहरे पर नई चमक दिखाई देती है। अर्थात् परमात्मा से मिलने वाला लाभ प्रारम्भ हो जाता है। यही प्रमाण गीता अध्याय 18 श्लोक 61 में है कि पूर्ण परमात्मा प्रत्येक प्राणी को उसके कर्मों के अनुसार यन्त्र (मशीन) की तरह भ्रमण करवाता है तथा जैसे पानी के भरे मटकों में सूर्य प्रत्येक में दिखाई देता है, ऐसे परमात्मा जीव के हृदय में दिखाई देता है। गीता अध्याय 18 श्लोक 46 में भी यही प्रमाण है। लिखा है कि जिस परमेश्वर से सम्पूर्ण प्राणियों की उत्पत्ति हुई है और जिससे यह समस्त जगत व्याप्त है, उस परमेश्वर की अपने वास्तविक कर्मों द्वारा पूजा करके मानव (स्त्री-पुरूष) परम सिद्धि को प्राप्त हो जाता है।(18/46)

अध्याय 2 के श्लोक 18-20 का अनुवाद है कि यह पंच भौतिक शरीर नाशवान है। अविनाशी परमात्मा नाश रहित, प्रमाण रहित अर्थात् सामान्य साधक नहीं समझ सकता, जीवात्मा के साथ नित्य रहने वाला कहा गया है। जैसे उपरोक्त उदाहरण में सूर्य, सौर ऊर्जा संयन्त्र से अभेद रहता है उसी की शक्ति से ऊर्जा ग्रहण हो रही है। जिसे वैज्ञानिक ही जानते हैं। साधारण व्यक्ति नहीं समझ सकता की ये सर्व पंखे आदि कैसे कार्य कर रहे हैं। [गीता जी के अध्याय 13 के श्लोक 21-22-23 में और गीता जी के अध्याय 15 के श्लोक 8 में] इसलिए हे भरतवंशी अर्जुन! युद्ध कर।

अध्याय 13 के श्लोक 21 का अनुवाद : परमात्मा अपनी सर्वव्यापकता से प्रकति अर्थात् दुर्गा में भी विद्यमान है इसलिए प्रकति से उत्पन्न तीनों गुणों अर्थात् रजगुण ब्रह्मा, सतगुण विष्णु तथा तमगुण शिव को भी गति उसी से मिलती है जिस कारण जीवात्मा को कर्मानुसार भोग भोगवाने के कारण भोगता है और इन गुणों का संग ही इस जीवात्मा के अच्छी-बुरी योनियों में जन्म लेने का कारण है। जैसे सौर ऊर्जा का प्रयोग कोई पशु काटने की मशीन चलाने में प्रयोग करता है कोई जूस (रस) निकालने की मशीन चलाने में प्रयोग करता है। यह सर्व कार्य सौर ऊर्जा से ही होता है। इसी प्रकार परमात्मा की शक्ति युक्त साधक उसका जैसा प्रयोग करता है व श्रेय परमात्मा के गुण अर्थात् शक्ति को ही जाता है।

अध्याय 13 के श्लोक 22 का अनुवाद : इस देह में स्थित यह (परः पुरुषः) अन्य परमेश्वर यानि सतपुरुष वास्तव में परमात्मा ही है वही साक्षी होने से उपद्रष्टा और यथार्थ सन्मति देने वाला होनेसे अनुमन्ता, सबका धारण-पोषण करनेवाला होने से भर्ता, यज्ञों यानि धार्मिक अनुष्ठानों में भोग लगाने से भोक्ता ब्रह्म व परब्रह्म आदि का भी स्वामी होने से महेश्वर और परमात्मा ऐसा कहा गया है। अध्याय 13 के श्लोक 23 का अनुवाद : इस प्रकार सतपुरुष को, काल भगवानको और गुणोंके सहित मायाको जो तत्वसे जानता है वह सब प्रकारसे कर्तव्य कर्म करता हुआ भी फिर नहीं जन्मता। अध्याय 15 के श्लोक 8 का अनुवाद : हवा गन्धको ले जाती है क्योंकि गंध की वायु मालिक है, ऐसे परमात्मा भी सूक्ष्म शरीर युक्त जीवात्मा जिस पुराने शरीरको त्याग कर और जिस नए शरीरको प्राप्त होता है, ले जाता है।

भावार्थ :- परमात्मा की निराकार शक्ति आत्मा के साथ ऐसे जानों जैसे मोबाइल फोन रेंज से ही कार्य करता है। टॉवर एक स्थान पर होते हुए भी अपनी रेंज से अपने क्षेत्र वाले मोबाईल फोन

के साथ अभेद है। इसको वही समझ सकता है जिसके पास मोबाईल फोन है। इसी प्रकार परमात्मा अपने निज स्थान सत्यलोक में रहता है या जहाँ भी आता जाता है अपनी निराकार शक्ति की रेंज को उसी तरह प्रत्येक ब्रह्मण्ड के प्रत्येक प्राणी व स्थान अर्थात् जड़ व चेतन पर फैलाए रहता है, जैसे सूर्य दूर स्थान पर रहते हुए भी अपना प्रकाश व अदश्य उष्णता (गर्मी) को अपने पहुँच वाले क्षेत्र पर कण-कण में फैलाए रहता है। इसी प्रकार परमात्मा के शरीर से निकल रहा प्रकाश व अदश्य शक्ति सर्व जड़ व चेतन को व्यवस्थित किए हुए है। यही प्रमाण गीता अध्याय 18 श्लोक 61 में है कि पूर्ण परमात्मा प्रत्येक प्राणी को यन्त्र (मशीन) की तरह चलाता है। जैसे भिन्न-2 मटकों में सूर्य प्रत्येक में दिखाई देता है। ऐसे परमात्मा प्रत्येक प्राणी के हृदय में दिखाई देता है। परन्तु वास्तव में वह बहुत दूर स्थित होता है। इस प्रकार सर्व को व्यवस्थित किए है।

अध्याय 2 के श्लोक 19 से 21 तक का भाव है कि सर्वव्यापक पूर्ण परमात्मा आत्मा के साथ ऐसे रहता है जैसे वायु में कहीं-2 गन्ध होती है। वायु का और गंध का कभी न अलग होने वाला सम्बन्ध है। परंतु गंध का स्थानान्तरण होता है तब वायु साथ ही रहती है। इसी प्रकार वायु तो परमात्मा जानो और गंध को आत्मा समझो। जैसे सुगंध अच्छी आत्मा तथा दुर्गंध दुष्ट आत्मा जानो। फिर भी परमात्मा उन्हें कर्मों के अनुसार नए शरीरों में ले जाता है और फिर भी साथ होता है। जैसे सूर्य प्रत्येक प्राणी को अपने साथ ही नजर आता है। दूर रहते हुए भी सूर्य के निराकार प्रभाव उष्णता से प्रत्येक प्राणी प्रभावित रहता है। इसी प्रकार परमेश्वर सत्यलोक में विराजमान होकर सर्व प्राणियों को ऐसे व्यवस्थित रखता है। ठीक इसी प्रकार यह अध्याय 2 के श्लोक 17 से 21, 22-23 व 24-25 का भिन्न-2 भाव से अर्थ समझना है।

❖ *अध्याय 2 श्लोक 22-23 में जीवात्मा की स्थिति बताई है।*

❖ *अध्याय 2 के श्लोक 22 का अनुवाद : जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्यागकर दूसरे नये वस्त्रों को ग्रहण करता है। वैसे ही जीवात्मा पुराने शरीरों को त्यागकर दूसरे नये शरीरों को प्राप्त होता है।*

अध्याय 2 के श्लोक 23 का अनुवाद : इस जीवात्मा को शस्त्र नहीं काट सकते, इसको आग नहीं जला सकती, इसको जल नहीं गला सकता और वायु नहीं सूखा सकती। ईश्वरीय गुणों (शक्ति) से युक्त होते हुए भी आत्मा का अस्तित्व भिन्न बहुत न्यून है।

❖ *24-25 में फिर उस सर्वव्यापक परमात्मा की महिमा कही है।*

विशेष विवेचन :- गीता अध्याय 2 श्लोक 24-25 के अनुवाद में एस्कोन वालों सहित अन्य सबने गलत अनुवाद किया है। इन दोनों श्लोकों में परमात्मा का वर्णन है। श्लोक 24 में "सर्वगतः" शब्द है जिसका अर्थ तो "सर्वव्यापी" सभी अनुवादकों ने ठीक किया है, परंतु आत्मा को सर्वव्यापी बताया है। इसी एक शब्द से भावार्थ बदल जाता है। आत्मा सर्वव्यापी नहीं है। परमात्मा सर्वव्यापी है। अधिक स्पष्ट जानकारी गीता अध्याय 13 के श्लोक 22 में पढ़ने को मिलेगी। बुद्धिमान को संकेत ही बहुत होता है।

अध्याय 2 के श्लोक 24 का अनुवाद : यह अच्छेद्य है यह परमात्मा अदाह्य अक्लेद्य और निःसंदेह अशोष्य है तथा यह परमात्मा नित्य सर्वव्यापी अचल स्थिर रहने वाला और सनातन है।

अध्याय 2 के श्लोक 25 का अनुवाद : यह परमात्मा गुप्त है परन्तु तेजोमय सूक्ष्म शरीर सहित है यह अचिन्त्य है और यह विकाररहित कहा जाता है। इससे हे अर्जुन! इस परमात्मा को जो आत्मा के साथ अभेद रूप से रहता है, जिससे आत्मा विनाश रहित है। इस प्रकार से जानकर तू शोक करने के योग्य नहीं है अर्थात तुझे शोक करना उचित नहीं है क्योंकि परमात्मा का साथ होने से आत्मा मरती नहीं है। गीता अध्याय 7 श्लोक 25 में गीता ज्ञान दाता काल ब्रह्म ने कहा है कि मैं

अपनी योग माया से छुपा रहता हूँ। सब के सामने प्रकट नहीं होता मुझ अव्यक्त (छुपे हुए) को यह अज्ञानी प्राणी कष्ण रूप में व्यक्ति आया मानते हैं। गीता अध्याय 8 श्लोक 20 में कहा है कि उस अव्यक्त से भी परे जो आदि अव्यक्त पूर्ण परमात्मा है वह सर्व प्राणियों के नष्ट होने पर भी नष्ट नहीं होता।

अध्याय 2 श्लोक 12 से 25 तक का भाव है कि अर्जुन सर्व प्राणी (मैं तथा तू) जन्म-मरण में हैं परंतु अविनाशी तो उसे जान जिससे सम्पूर्ण जगत व्याप्त है इस अविनाशी (पूर्ण ब्रह्म) का विनाश करने में कोई भी समर्थ नहीं है। वह परमात्मा इस जीवात्मा के साथ ऐसे रहता है जैसे वायु में गंध है। वायु गंध का मालिक है। अच्छी आत्मा (सुगंध) तथा दुष्ट आत्मा (दुर्गन्ध) होती है। परंतु शुद्ध वायु निर्लेप है और दोनों यानि परमात्मा तथा आत्मा व वायु तथा गंध का अभेद सम्बन्ध है। इसी प्रकार जीवात्मा परमात्मा के गुणों वाली ही है। फिर भी कर्म-भोग भोगती है। जैसे व्यक्ति पुराने वस्त्र त्याग कर नए वस्त्र पहन लेता है, इसी प्रकार जीवात्मा कर्मानुसार स्वर्ग-नरक, चौरासी लाख जूनियों में सुख व कष्ट पाती है परंतु परमात्मा को कष्ट नहीं है। जीवात्मा दुःखी व सुखी अवश्य होती है। यहाँ पर यह बात याद रखना जरूरी है कि गीता जी के अध्याय 13 के श्लोक 22-23 में तथा गीता जी के अध्याय 15 के श्लोक 8 में प्रमाण है कि पूर्ण परमात्मा का अंश जीवात्मा है। इसी के साथ सतपुरुष का अभेद सम्बन्ध है। जीवात्मा अपने कर्मों के अनुसार फल भोगती है। दुःख-सुख को महसूस करती है परंतु परमात्मा (सतपुरुष) इससे परे है, निर्लेप है। इसलिए प्रिय पाठको यह भेद समझना जरूरी है। अमर-अछेद्य तो जीवात्मा भी है परंतु कर्मों के वश है तथा परमात्मा लिप्त नहीं है तथा समर्थ है। यह गहरा भेद समझ कर गीता जी के निर्मल ज्ञान का पूर्ण लाभ उठा पाओगे।

❖ *अध्याय 2 के श्लोक 26 से 30 का सारांश :- श्लोक 22 में कहा है कि जीव आत्मा शरीर न रहने पर भी नहीं मरती है। चूंकि परमात्मा इसके साथ अदश्य रूप से रहता है। जिस प्रकार पुराने कपड़े उतार कर नए पहन ले ऐसे ही यह शरीर समझ। जीव आत्मा को न काटा जा सकता है, न जलाया जा सकता है, न जल में डूबोया जा सकता है, न वायु सुखा सकती है, यह अमर है। यह परमात्मा जो जीवात्मा के साथ उपद्रष्टा रूप में रहता है जो निर्विकार है। यदि जीवात्मा को नित्य मरने-जन्मने वाली भी मानें तो भी दुःखी नहीं होना चाहिए। चूंकि पुराने वस्त्र त्याग कर नए पहन लिए इसलिए शोक मत कर। जिसका जन्म हुआ है वह अवश्य मरेगा तथा जो मरेगा उसका जन्म अवश्य है। भगवान कह रहा है तू तथा मैं तथा ये सर्व प्राणी पहले भी थे तथा आगे भी होंगे। फिर क्यों चिंता करें?*

❖ *विशेष विवेचन व तर्क-वितर्क :- गीता अध्याय 13 श्लोक 22 को एस्कोन वालों ने श्लोक 23 बनाया है। इस श्लोक 22 (23) का अनुवाद एस्कोन वालों ने कुछ ठीक किया है जो इस प्रकार है :-*

शब्दार्थ :- (उपदष्टा) साक्षी, (अनुमन्ता) अनुमति देने वाला, (च) भी, (भर्ता) स्वामी, (भोक्ता) परम भोक्ता, (महेश्वरः) महा ईश्वर, (परम-आत्मा) परमात्मा, (इति) भी, (च) तथा, (अपि) निःसंदेह, (उक्तः) कहा गया है, (देहे) शरीर में, (अस्मिन्) अस, (पुरुषः) भोक्ता, (पराः) दिव्य।

अनुवाद :- तो भी इस शरीर में एक अन्य दिव्य भोक्त है जो ईश्वर है, परम स्वामी है और साक्षी तथा अनुमति देने वाले के रूप में विद्यमान है और जो परमात्मा कहलाता है।

❖ *गीता प्रेस गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित, श्री जयदयाल गोयन्दका द्वारा अनुवादित गीता पदच्छेद अन्वय साधारण भाषा टीका सहित में व अन्य सब अनुवादकों ने गलत अर्थ किया है जो इस प्रकार है :- इस देह में स्थित यह आत्मा वास्तव में (परः) परमात्मा ही है। साक्षी होने से*

उपदृष्टा और यथार्थ सम्मति देने वाला होने से अनुमन्ता सबका धारण-पोषण करने वाला होने से भर्ता, जीव रूप से भोक्ता (महेश्वरः) ब्रह्मादि का भी स्वामी होने से महेश्वर और (परमात्मा) शुद्ध सच्चिदानंद घन होने से परमात्मा ऐसे कहा गया है।

तर्क :- इस अनुवाद में जीवात्मा को परमात्मा कहा है तथा ब्रह्मादि यानि ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव का भी स्वामी होने से महेश्वर भी आत्मा को ही कहा है जो अज्ञान के अतिरिक्त कुछ नहीं है। इसका यथार्थ सारांश इसी पुस्तक में गीता अध्याय 13 के दिव्य सारांश में पढ़ें।

विशेष विवेचन :- गीता ज्ञान दाता ने अर्जुन को युद्ध करने के लिए प्रेरित करते हुए आगे फिर कहा कि :-

गीता अध्याय 2 श्लोक 26 :- यदि तू इस आत्मा को सदा मरने वाला व जन्म लेने वाला मानता है तो भी शोक करने योग्य नहीं है।

गीता अध्याय 2 श्लोक 27 :- क्योंकि यह विधान है कि जन्मे हुए की मृत्यु और मरे हुए का जन्म निश्चित है। इस बिना उपाय वाले विषय में तू शोक करने के योग्य नहीं है।

विशेष :- इसी तथ्य का समर्थन गीता अध्याय 2 श्लोक 12,22, अध्याय 4 श्लोक 5, अध्याय 10 श्लोक 2 में भी है। गीता ज्ञान बोलने वाले काल ब्रह्म ने कहा है कि हे अर्जुन! तेरे और मेरे बहुत जन्म हो चुके हैं। तू नहीं जानता, मैं जानता हूँ। तू, मैं और ये राजा व सेना के लोग पहले भी जन्मे थे, आगे भी जन्मेंगे, वर्तमान में भी जन्मे हैं। गीता अध्याय 2 श्लोक 22 में स्पष्ट कर दिया है कि यह विधान है कि मृत्यु के पश्चात् जीवात्मा इस शरीर को उस समय छोड़ती है जब उसका अन्य शरीर में जाना तय हो जाता है। उदाहरण भी दिया है कि जैसे व्यक्ति फटे-पुराने वस्त्र को त्यागकर नए वस्त्र धारण करता है, ऐसे ही जीवात्मा वृद्ध शरीर त्यागकर नया शरीर प्राप्त करती है। कुछ गीता प्रवक्ता उदाहरण भी देते हैं कि एक कीट एक टहनी से दूसरी पर जाता है तो पहले अगले पैर से टहनी को दृढ़ता से पकड़कर फिर पिछली टहनी को छोड़ता है यानि पिछले पैर उठाता है। इस अध्याय 2 के श्लोक 27 में भी वही विधान दोहराया है।

गीता अध्याय 2 श्लोक 28 :- ये सर्व प्राणी जन्म से पहले भी प्रकट थे, मरने के बाद भी प्रकट होंगे, बीच में भी हैं। ऐसे में भी क्या शोक करना?

गीता अध्याय 2 श्लोक 29 :- इस श्लोक में कहा है कि कोई महापुरूष ही इस आत्मा के विज्ञान को जानने की कोशिश करता है।

गीता अध्याय 2 श्लोक 30 :- हे भारतवंशी अर्जुन! यह आत्मा परमात्मा के सानिध्य में इस शरीर में है। इसलिए यह अवध्य यानि इसका वध नहीं किया जा सकता। इसलिए सर्व प्राणियों यानि सामने उपस्थित सैनिकों तथा कुल के व्यक्तियों, रिश्तेदारों के मरने पर तू शोक करने के योग्य नहीं है।

❖ तर्क :- इन श्लोकों की काल ब्रह्म की प्रेरणा पर विचार करते हैं। युद्ध में अभिमन्यु की मौत के समय सर्व पाण्डव विलाप करने लगे। सुभद्रा रोई। श्री कृष्ण भी महादुःखी हुए। द्रोणाचार्य तो विद्वान थे, गुरू थे। वे भी अपने पुत्र अश्वथामा के मरने का समाचार सुनकर कलेजा पकड़कर बैठ गए, युद्ध नहीं कर सके। फिर अर्जुन कौन-से खेत की मूली थी जो स्वजनों की मौत पर दुःखी न हो। यह सब काल ब्रह्म की चाल थी। उकसाकर अर्जुन को युद्ध के लिए तैयार किया। परंतु ''जाको लागे वो तन जाने।'' पढ़ें कथा :-

।। नकली संत की कथा।।

हरियाणा प्रांत के जीन्द जिले में एक पिण्डारा नामक तीर्थ है। वहां पर दो आश्रम हैं। एक समय वहां पर कोई पांच दिवसीय वार्षिक सतसंग उत्सव मनाया जा रहा था। उसमें यह दास भी श्रोता रूप में उपस्थित था। वहां पर 10-12 प्रवक्ता एक लम्बी स्टेज पर बैठे तथा प्रवचन शुरु हुए। सभी ने अपने-अपने विचार व्यक्त किए। एक महात्मा जिसकी जानकारी स्टेज सैक्ट्री ने दी थी कि यह महापुरुष पहुँचे हुए विद्वान आत्मतत्व में प्रवेश हैं व गीता के मर्मज्ञ ज्ञाता हैं। उस महात्मा जी ने अपने वचन सुनाए। यह आत्मा अजर-अमर है। यह न मरती है और न जन्मती है और न ही सुख-दुःख का भोक्ता है। आत्मा को कोई कष्ट नहीं होता। यह अज्ञानी जन समूह अज्ञान वश दुःखी-सुखी होते हैं। जो भी कष्ट है वह शरीर को उसके कर्म का दण्ड होता है। मानो कोई हानि होती है तो तेरा क्या गया? इसलिए शोक क्या? तू क्या लेकर आया था जो तेरा नुकसान मानता है? लाभ होता है तो मेरा है ही नहीं। सुख-दुःख व लाभ-हानि को त्याग कर कर्म करो और कोई शारीरिक कष्ट है तो समझो शरीर ही दुःखी है क्योंकि आप शरीर नहीं आत्मा हैं। आपको क्या है? बस फिर आत्म तत्व में पहुँच गए। मुक्ति निश्चित है।

सर्व उपस्थित संगत उसकी विद्वता तथा ज्ञान के वचनों पर सबसे ज्यादा प्रभावित हो गई। उसने तीन दिन तक रात्रि व दिन के सतसंग ऐसे ही किये। उसने बताया कि मैंने देखा एक व्यक्ति रो रहा है। कारण पूछा तो बताया कि मेरे पैर में असहनीय पीड़ा हो रही है इसलिए रो रहा हूँ। वह संत कहता है कि मैंने उस मूर्ख को कहा- क्यों चिल्लाता है, अज्ञानी? यह कष्ट तो शरीर को है। तुझे क्या है? बस यह विचार कर। वह दुःखी व्यक्ति चुप हो गया। फिर नहीं रोया। दुःख का अंत हुआ। इसी प्रकार अज्ञान वश यह नादान प्राणी कष्ट पाता है। यही ज्ञान भगवान श्री कष्ण ने अर्जुन को श्री गीता जी के माध्यम से दिया है।

चौथे दिन रात्रि में भी उस महात्मा जी ने ऐसे ही ज्ञान योग से मुक्ति का मार्ग बताया। सतसंग रात्रि का था जो रात्रि के 1 बजे समाप्त हो गया। रात्रि के दो बजे उसी महात्मा के पेट में दर्द हो गया। बुरी तरह रोने लगा - मर गया-मर गया की आवाज सुन कर काफी भक्त वन्द वहां एकत्रित हुए। सलाह बनी की जल्दी ही जीन्द हॉस्पिटल में ले चलो। दर्द जान लेवा लग रहा है। दूसरे आश्रम से कार मंगवाई। तुरंत हॉस्पिटल में ले गए जो तीन कि.मी. पर ही था। सुबह 6 बजे वापिस आया। आराम हो गया। उसके पास अन्य महात्मा जो उनके सामने ज्ञान में फीके पड़ गए थे उस ज्ञानी पुरुष से कहने लगे संत जी आप कह रहे थे कि दुःख तो शरीर को होता है आत्मा को नहीं। फिर आप क्यों रो रहे थे? इस पर वह अज्ञानी महात्मा क्रोध वश बोला ''ज्यादा मत बोलो, अपना काम करो।''

यहां गरीबदास जी महाराज कहते हैं कि :-

गरीब, बीजक की बांता करैं, बीजक नाहीं हाथ। पथ्वी डोबन उतरे, कह–कह मीठी बात।।
गरीब, बीजक की बातां कहै , बीजक नाहीं पास।औरों को प्रमोद ही, आपन चले निरास।।
कबीर, करनी तज कथनी कथें, अज्ञानी दिन रात। कुकर ज्यों भोंकत फिरें, सुनी सुनाई बात।।

वाणियों का भावार्थ :- तत्वज्ञानहीन व्यक्ति तो कहते हैं कि हम अध्यात्म ज्ञान के गूढ़ रहस्यों को जानते हैं, परंतु उनके पास बीजक यानि तत्वज्ञान नहीं है। वे जनता को अज्ञान भरी मीठी-मीठी बातें कहकर काल जाल में फाँस देते हैं। यह सब अज्ञानी वक्ता पथ्वी को डुबोने यानि

मानव का नाश करने के लिए उत्पन्न होते हैं। ये अन्य को मार्गदर्शन करते हैं, प्रवचन करते हैं, परंतु स्वयं भी भक्तिहीन होकर संसार से जाऐंगे। इनको भी निराशा ही हाथ लगेगी। वे सत्य भक्ति नहीं करते। केवल झूठा ज्ञान तथा सुना-सुनाया ज्ञान अन्य को प्रवचन करके बताते फिरते हैं। स्वयं अमल नहीं करते। ये कुत्तों की तरह केवल भौंकते फिरते हैं। जिस ज्ञान का कोई आधार नहीं है।

केवल कहने मात्र से बात नहीं बनती। परमात्मा प्राप्ति तथा मुक्ति पाने के लिए शास्त्रानुकूल साधना करनी होती है। जिस कारण से प्रारब्धवश जीवन में आने वाला संकट टल जाता है। तब बात बनेगी, केवल ज्ञान कथने से नहीं।

❖ *अध्याय 2 के श्लोक 31 से 38 में कहा है कि क्षत्री का धर्म नहीं है कि युद्ध में कायरता दिखाए और फिर युद्ध में मर भी गया तो स्वर्ग का दरवाजा खुला है। जीत गया तो राज्य का सुख भोगेगा। ऐसा अवसर बड़े भाग्य से मिलता है। अर्जुन! तेरे तो दोनों हाथों में लड्डू हैं। क्षत्री की अपकिर्ती मरने से भी दुस्तर होती है। इसलिए अर्जुन मान जा मेरी बात, युद्ध करले।*

❖ *अध्याय 2 के श्लोक 38 में कहा है कि हार-जीत, दुःख-सुख, लाभ-हानि को समान समझ कर युद्ध कर तुझे पाप नहीं लगेंगे।*

❖ *कपया पाठक विचार करें- बिना लाभ-हानि के युद्ध हो सकता है? क्या आवश्यकता पड़ी छाती में तीर खाने की? फिर स्वयं काल भगवान लाभ-हानि का लालच भी लगा रहे हैं (अध्याय 2 के श्लोक 37 में कहा है कि या तो तू युद्ध में मारा जा कर स्वर्ग प्राप्त करेगा या जीत कर पथ्वी का राज करेगा। गीता जी के अध्याय 2 के श्लोक 32 में कहा है कि अपने आप खुले हुए स्वर्ग के द्वार को भाग्यशाली क्षत्री ही प्राप्त करते हैं कि युद्ध में मर कर स्वर्ग प्राप्ति तो निश्चित है।) श्लोक 38 में लाभ-हानि को त्यागने को कहा है। काल ब्रह्म ने अपना स्वार्थ सिद्ध करने यानि महाभारत का युद्ध करवाने के लिए पूरा जोर लगाया। झूठ-सच का भी सहारा लिया।*

विचारणीय विषय यह है कि यदि श्री कष्ण जी यह ज्ञान कहते तो कालयवन के साथ युद्ध छोड़कर नहीं भागते क्योंकि वे भी क्षत्री थे। अपने क्षत्रिय धर्म को त्यागकर करोड़ों व्यक्तियों की जान बचा दी। कालयवन को मुचकन्द से मरवाकर जनहानि नहीं होने दी। यदि वे विचार करते कि मैं क्षत्री हूँ। आत्मा अमर है। ये सब मरेंगे तो फिर जन्म ले लेंगे, क्या हानि है तो सर्वनाश हो जाता। यह काल की चाल है जो युद्ध करवाना चाहता था। अध्याय 2 के श्लोक 45 का अनुवाद - हे अर्जुन! तीनों गुणों (रजगुण - ब्रह्मा, सतगुण - विष्णु, तमगुण - शिव) के द्वारा दिए जाने वाले लाभ के ज्ञान से तीनों गुणों से ऊपर उठकर हर्ष शोक आदि द्वन्द्वों से रहित स्थाई वस्तु पूर्ण परमात्मा में स्थित योग क्षेम को न चाहने वाला आत्म तत्व को जानने वाला हो।

❖ *अध्याय 2 के श्लोक 39 से 45 तक का अर्थ है समबुद्धि होकर कर्मबन्धन से मुक्त हो जा, ऐसे डगमग बुद्धि वाले कामयाब नहीं होते, राग-द्वेष मत रख तथा तीनों गुणों (ब्रह्मा-रजगुण, विष्णु-सतगुण, शिव-तमगुण की भक्ति) से भी रहित हो जा। योग क्षेम से भी रहित हो जा तथा पूर्ण परमात्मा के परायण (आश्रित) हो जा। नोट :- कप्या गुणों को समझने के लिए पढ़ें इसी पुस्तक के पष्ठ 26 पर।*

जो व्यक्ति वेदों यानि ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद (वेदवाद रताः) की वाणी यानि मंत्रों पर वाद-विवाद करते रहते हैं। उनको वेदों का पूर्ण ज्ञान नहीं होता। वे संसारिक वस्तुओं की कामना करते रहते हैं। उनकी बुद्धि स्वर्ग से ऊपर कुछ नहीं मानती। वे जन्म-मरण के चक्र में रहते हैं। उनका चित तीनों गुणों (रजगुण ब्रह्मा, सतगुण विष्णु तथा तमगुण शिव) से मिलने वाले लाभ

की वाणी यानि अज्ञान से हर लिया गया है। ऐसे व्यक्तियों की साधना में निश्चयात्मिक बुद्धि नहीं होती।

''पूर्ण परमात्मा की साधना करने तथा समर्थता का सटीक वर्णन''

अध्याय 2 के श्लोक 46 का अनुवाद - जिस प्रकार सब ओर से (पूर्ण रूप से) परिपूर्ण (बहुत बड़े पानी से भरे) जलाशय (तालाब) को प्राप्त हो जाने पर छोटे से तलईया (जलाशय) के प्रति जो आस्था रह जाती है इसी प्रकार तत्व ज्ञान को प्राप्त तत्वदर्शी सन्त की आस्था अन्य ज्ञानों में रह जाती है। तत्वज्ञान के आधार से तत्वदृष्टा सन्त को पूर्ण परमात्मा की जानकारी हो जाती है। जिस कारण से उसकी अन्य प्रभुओं (ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा क्षर ब्रह्म - परब्रह्म व देवी-देवताओं) में आस्था कम रह जाती है अर्थात् वह विद्वान पूर्ण परमात्मा के आश्रित हो जाता है। तीन लोक की साधना त्याग कर सतलोक की साधना करता है। पूर्व समय में सिंचाई तथा पीने के पानी का स्रोत जलाशय ही होता था। जो परिवार किसी छोटे तालाब पर निर्वाह कर रहा हो जिसका जल ग्रीष्म ऋतु में सूख जाता हो, वर्षा होने पर जल से भरता हो। यदि वर्षा न हो तो जल के अभाव से संकट निश्चित होता है। उस परिवार को बहुत बड़ा जलाशय (झील) प्राप्त हो जाए जिसका जल दस वर्ष वर्षा न होने पर भी समाप्त न हो। फिर उस परिवार की आस्था पहले वाले छोटे जलाशय में जैसी रह जाती है, वह छोटा जलाशय बुरा नहीं लगता परंतु उसकी क्षमता का ज्ञान है कि यह तो अस्थाई लाभ है तथा बड़ा जलाशय (झील) स्थाई लाभदायक है। वह परिवार तुरंत बड़े जलाशय के निकट अपना डेरा डाल लेता है। इसी प्रकार पूर्ण परमात्मा सतपुरुष (कविर्देव) के लाभ को दिलाने वाला तत्वदर्शी संत मिलने के पश्चात् साधक की आस्था अन्य प्रभुओं में जैसे उपरोक्त छोटे जलाशय में रह जाती है, ऐसे रह जाती है। अन्य प्रभु बुरे भी नहीं लगते, परंतु उनकी क्षमता (शक्ति) का ज्ञान हो जाने से पूर्ण परमात्मा में स्वतः श्रद्धा अधिक बन जाती है। फिर साधक पूर्ण परमात्मा से ही लाभ प्राप्ति का प्रयत्न करता है, अन्य प्रभुओं की प्राप्ति की इच्छा नहीं करता। इसीलिए गीता ज्ञान दाता प्रभु ने श्रीमद्भगवत् गीता अध्याय 18 श्लोक 62 में कहा है कि हे अर्जुन! तू सर्व भाव से उस परमात्मा की शरण में जा जिस की कृपा से तू परम शान्ति तथा शाश्वत् स्थान अर्थात् सत्यलोक (अविनाशी लोक) को प्राप्त होगा।

❖ *अध्याय 2 के श्लोक 47 में कहा है कि कर्म कर फल की इच्छा मत कर।*

❖ *गीता अध्याय 2 श्लोक 48 से 50 तक का भाव है कि शास्त्र विधि अनुसार भक्ति कर्म एक प्रभु का ही करना श्रेयकर है। आपको सिद्धि प्राप्त हो या न हो, इस बात को भूल जा, प्रभु जो करता है वह अच्छा ही होता है, यह ध्यान में रखकर साधना करता रह। पहले वाले सर्व शास्त्रविरूद्ध भक्ति कर्म त्याग दे, चाहे वे तुझे अच्छे भी लगते हैं तथा अन्य दुषित कर्म जैसे मास- मदिरा, तम्बाखु, चोरी-ठगी, व्याभीचार आदि भी त्याग कर तत्वदर्शी संत द्वारा बताए भक्ति मार्ग के प्रत्येक नियम का पालन करते हुए साधना करना ही बुद्धिमता है। सुकृत अर्थात् अच्छे कर्म जो चाहे साधक के दृष्टिकोण से अच्छे भी लगते हों उन्हें गुरु आदेश से त्याग देने से ही लाभ है (जैसे किसी को बुलाकर पाठ आदि करवाना, भिखारी को पैसे देना, वह भिखारी उन पैसों की शराब सेवन कर लेता है तो आपको ही दोष लगेगा।) एक भिखारी को एक धार्मिक व्यक्ति ने सौ रूपये अच्छे कर्म (पुण्य) जान कर दे दिए। पहले वह पाव (बोतल का चौथा भाग) शराब पीता था। उस दिन आधी बोतल उस भिखारी ने मदिरा सेवन किया तथा अपनी पत्नी को पीट डाला। उसकी पत्नी बच्चों सहित कुएँ में गिरकर मत्यु को प्राप्त हुई। ऐसा अपनी सूझ-बूझ का अच्छा कर्म अर्थात् पुण्य भी नहीं*

करना चाहिए। केवल गुरुदेव के आदेश का पालन करना ही सत्य भक्ति में हितकर है।

अनामी (अनामय) लोक का प्रमाण अध्याय 2 के श्लोक 51 में।

अध्याय 2 के श्लोक 51 में स्पष्ट है कि जो भजन अभ्यास शास्त्रानुकूल अर्थात् मतानुसार (मतपरायण होकर) मेरे बताए अनुसार करता है वह सतलोक में जाकर फिर वहाँ से आगे अनामी (अनायम् पदम् गच्छन्ति) लोक को चला जाता है अर्थात् अनामी परमात्मा को प्राप्त हो जाता है अर्थात् जन्म-मरण का रोग समाप्त हो जाता है। अनामी पुरुष का प्रमाण कृप्या देखें इसी पुस्तक के पृष्ठ नं. 177 पर शब्द 'कर नैनों दीदार महल में प्यारा है' की 29 नं. कड़ी -

तापर अकह लोक है भाई, पुरुष अनामी तहाँ रहाई। जो पहुँचेगे जानेगा वाही, कहन सुनन ते न्यारा है।।29।।

जैसे साधक चार पदों (मुक्ति स्थानों) की प्राप्ति कर सकता है।

1. देवी-देवताओं, पितरों, भूतों की साधना से इन्हीं को प्राप्त होता है। परंतु यह सबसे घटिया साधना पद (मुक्ति स्थान) प्राप्ति है। अध्याय 9 के श्लोक 25 के अनुसार। अध्याय 9 के श्लोक 25 का अनुवाद : देवताओं को पूजने वाले देवताओं को प्राप्त होते हैं पितरों को पूजने वाले पितरों को प्राप्त होते हैं, भूतों को पूजने वाले भूतों को प्राप्त होते हैं और मतानुसार अर्थात् शास्त्र अनुसार पूजन करने वाले भक्त मुझको ही प्राप्त होते हैं।

2. दूसरी गति या पद (मुक्ति स्थान) प्राप्ति तीनों गुणों (रजगुण-ब्रह्मा, सतगुण-विष्णु, तमगुण-शिव) तथा अन्य देवी-देवताओं की पूजा है। यह पद (मुक्ति स्थान) प्राप्ति पूर्ण नहीं है अर्थात् घटिया है। अध्याय 7 श्लोक 12 से 15 तथा 20-23 तथा अध्याय 14 के श्लोक 5 से 9 तक।

कृप्या तीनों गुण क्या हैं? पढ़ें इसी पुस्तक के पृष्ठ 26 पर।

अध्याय 14 के श्लोक 5 का अनुवाद : हे अर्जुन! सत्वगुण विष्णु, रजोगुण ब्रह्मा, तमगुण शिव, ये प्रकृति से उत्पन्न तीनों गुण अविनाशी जीवात्मा को शरीर में बाँधते हैं।

अध्याय 14 के श्लोक 6 का अनुवाद : हे निष्पाप! उन तीनों गुणों में सत्वगुण तो निर्मल होने के कारण प्रकाश करने वाला और विकार रहित माना गया है। वह सुख के सम्बन्ध से और ज्ञान के सम्बन्ध से अर्थात् उसके अभिमान से बाँधता है।

अध्याय 14 के श्लोक 7 का अनुवाद : हे अर्जुन! रागरूप रजोगुण को कामना और आसक्ति से उत्पन्न जान वह इस जीवात्मा को कर्मों के और उनके फल के सम्बन्ध से बाँधता है।

अध्याय 14 के श्लोक 8 का अनुवाद : हे अर्जुन! सब शरीरधारियों को मोहित करने वाले तमोगुण को तो अज्ञान से उत्पन्न जान। वह इस जीवात्मा को प्रमाद, आलस्य और निंद्रा के द्वारा बाँधता है।

अध्याय 14 के श्लोक 9 का अनुवाद : हे अर्जुन! सतगुण सुख में लगाता है और रजोगुण कर्म में तथा तमोगुण तो ज्ञान को ढककर प्रमाद में भी लगाता है।

3. तीसरी गति अर्थात् पद (मुक्ति स्थान) प्राप्ति ब्रह्म साधना है जो वेदों व गीता जी के अनुसार करनी चाहिए। सर्व देवी-देवताओं तथा ब्रह्मा, विष्णु, महेश की अर्थात् तीनों गुणों की साधना त्याग कर एक ऊँ (ओंकार) नाम का जाप गुरु धारण करके करते हुए ब्रह्म लोक (महास्वर्ग) में साधक चला जाता है जो हजारों युगों तक वहाँ ब्रह्म लोक में आनन्द मनाता है। फिर पुण्यों के समाप्त होने पर मृतलोक में चौरासी लाख जूनियों में चक्र लगाता रहता है। यह भी गति-पद (मुक्ति) अच्छी नहीं है। इससे भी जीव पूर्ण रूप से सुखी नहीं। पूर्ण शांति को प्राप्त नहीं अर्थात् पूर्ण मुक्त नहीं है। परंतु इस ब्रह्म (काल) साधना से प्राणी अन्य पूजाओं से सौ गुणा सुखी है परंतु फिर भी

काल (ब्रह्म-क्षर पुरुष) के जाल से मुक्त नहीं है। यह मुक्ति अच्छी नहीं अपितु व्यर्थ है। गीता जी के अध्याय 7 के श्लोक 18 में स्वयं काल कह रहा है कि ये सर्व ज्ञानी आत्मा हैं तो उदार, परंतु ये भी मेरी (अनुत्तमाम्) अति घटिया (गतिम्) मुक्ति में ही आश्रित हुए प्रसन्न हैं।

4. चौथी गति यानि मुक्ति स्थान :- (गति-पद) है परब्रह्म (अक्षर पुरुष) की भक्ति से चौथी गति (पद यानि मुक्ति स्थान) को प्राप्त होता है। लेकिन परब्रह्म की साधना का ज्ञान वेदों व गीता जी में नहीं है। इनमें केवल ब्रह्म (क्षर पुरुष) तक की भक्ति तथा इसी की प्राप्ति का ज्ञान है। जैसे ऊँ मन्त्र का जाप केवल ब्रह्म साधना है। इसलिए जो साधक परब्रह्म की भक्ति निर्गुण मान कर करते हैं वे भी काल के जाल में ब्रह्म लोक में ही चले जाते हैं। क्योंकि निर्गुण उपासक ऋषि जन मान लेते हैं कि हम परब्रह्म साधना कर रहे हैं, परंतु काल (ब्रह्म) तक का ही लाभ प्राप्त करते हैं। काल प्रभु ने महास्वर्ग में भिन्न-भिन्न प्रकार के लोकों की व्यवस्था कर रखी है। ब्रह्मलोक की प्राप्ति तीन लोक में सबसे उत्तम मानते हैं।

5. पाँचवीं गति यानि मुक्ति स्थान :- पूर्ण परमात्मा का ज्ञान होने पर उसी परमात्मा प्राप्ति की साधना करते हैं। इसी प्रकार यह आत्मा तत्वदर्शी संत से उपदेश मंत्र प्राप्त करके सत्य भक्ति की कमाई करके उसके आधार से सतलोक चली जाती है। यह वह स्थान है जहाँ प्राणी मानव रूप में आकार में रहता है। तेज पुंज का शरीर हो जाता है। इतना नूरी शरीर बन जाता है मानो 16 सूर्यों जितनी रोशनी हो। यहाँ पर गए प्राणी (आत्मा) कभी नहीं मरते। सतलोक में हंस पुरूष को तथा हंसनी स्त्री को कहते हैं।

सतलोक वह स्थान है जिसमें हंस आत्मा आकार में मौज करती है। सतलोक से आगे अलख लोक है, अलख लोक में अलख पुरुष का राज्य है, अलख लोक से आगे अगम लोक है, अगम लोक में अगम पुरुष का राज्य है। अगम लोक से आगे अकह लोक अर्थात् अनामी लोक है। इसमें अनामी परमात्मा (पुरुष) का राज्य है। ऊपर के तीनों लोकों में एक ही परमात्मा (पूर्णब्रह्म कविर्देव) है वह तीन स्थितियों में रहता है। जैसे भारत के प्रधान मंत्री जी के शरीर का नाम कुछ और होता है, परंतु प्रधान मंत्री उनका पद का उपमात्मक नाम होता है। कई बार प्रधान मंत्री जी अपने पास अन्य विभाग रख लेता है। जैसे गंह विभाग अपने पास रख लिया। जब गंह मंत्रालय के दस्तावेजों पर हस्ताक्षर करता है तो अपने को गंह मंत्री लिखता है, उस समय उनकी शक्ति प्रधान मंत्री वाले हस्ताक्षरों से कहीं कम होती है। ठीक इसी प्रकार पूर्ण ब्रह्म सतपुरुष का वास्तविक नाम कविर्देव भाषा भिन्न होने से कबीर,कबीरन्, खबीरा, हक्का कबीर, सत कबीर वास्तविक नाम है तथा उपमात्मक नाम से वह परमात्मा अलख लोक में अलख पुरुष बन कर, अगम लोक में अगम पुरुष बन कर, अकह लोक में अनामी (अनामय) बन कर रहता है जो आत्मा सतलोक में जा कर अनामी पुरुष की साधना करती है वह आत्मा भक्ति के कारण उस परमात्मा (अनामी-अनामय) की परम गति को प्राप्त हो कर भगवान में लीन हो जाती है। अध्याय 2 के श्लोक 51 में - 'अनामयम् पदम् गच्छन्ति' अर्थात् पूर्ण रूप से जन्म-मरण रूपी दीर्घ रोग से रहित हो कर अनामी (अनामय) पद यानि मुक्ति स्थान को प्राप्त हो जाता है इसको अनामय पद प्राप्ति कहा है। यहाँ प्रत्येक ब्रह्मण्ड में क्षर पुरुष (काल) ने सतलोक की नकल करके नकली (Duplicate) लोक बना रखे हैं। ज्योति निरंजन (ब्रह्म) ने प्रत्येक ब्रह्मण्ड में एक ब्रह्मलोक की रचना करवा रखी है। इसी ब्रह्मलोक में तीन गुप्त स्थानों की भी रचना करवा रखी है। एक सतोगुण प्रधान, दूसरा रजोगुण प्रधान, तीसरा तमोगुण प्रधान। इसी ब्रह्मलोक में एक महास्वर्ग की रचना करवा रखी है। उसी महास्वर्ग में नकली

सतलोक, नकली अलख लोक, नकली अगम लोक व नकली अनामी लोक की रचना भी प्रकति दुर्गा से करवा रखी है। इक्कीसवें ब्रह्मण्ड में भी नकली चारों लोकों की रचना करवा रखी है। यह प्राणियों को धोखे में रख कर वास्तविकता का पता नहीं लगने देता है। स्वयं कविर्देव (कबीर परमेश्वर) आकर अपनी सर्व जानकारी देते हैं।

प्रश्न :- मुक्तियों के विषय में तो शास्त्रों में लिखा है कि मुक्ति चार है।

(1) सालोक्य=ईश्वर के लोक में निवास करना (2) सारूप्य = जैसा उपासनीय देव की आकति वैसा बन जाना (3) सामिप्य=सेवक के समान उपासनीय देव के पास रहना (4) सायुज्य=उपास्य देव के साथ संयुक्त हो जाना। आप ने चार मुक्ति भिन्न बताई हैं तथा पाँचवी मुक्ति भी बताई है। जिस के विषय में कभी नहीं सुना व कहीं नहीं पढा।

उत्तर :- जो ये चार मुक्तियाँ बताई हैं, वे उपास्य देव की साधना से होती हैं। इसलिए बताई हैं। प्रत्येक प्रभु या देवताओं की साधना से ये चारों उपरोक्त (जो प्रश्न में बताई हैं) मुक्तियों में से एक साधक को प्राप्त होती है तथा पांचवी मुक्ति का ज्ञान स्वसम वेद में है।

-: शब्द :-

सतलोक में चल मेरी सुरतां, मत न लावै देरी। साच कहूँ न झूठ रति भर, तू बात मान ले मेरी।।टेक।।
प्रथम जाना सतसंग के में चर्चा सुनिए आत्म ज्ञान की, सुनकै सतसंग जागी नहीं तो पूछ श्वान की।
तीर्थ व्रत ये पित्र पूजा कोन्या किसे काम की, लै कै नाम गुरु से भक्ति करिए कबीर भगवान की।।
मत सुनना मन सैतान की, ये चौकस घालै घेरी।।1।।
काल लोक में कष्ट उठावै यह कोन्या तेरा ठिकाना, मात पिता संतान सम्पति का झूठा बुन रही ताना।
जाप अजपा मिल जावै जब सुमरण में मन लाना, सार शब्द तेरे काटे बंधन आकाशै उड जाना।।
त्रिकुटी में आना हे सुरतां, मतना भटकै बेरी।।2।।
त्रिकुटी में पहुँच कै सुरतां चारों ओर लखावै, शब्द गुरु फिर प्रकट होवे उसते ब्याह करवावै।
नूरी रूप गुरु का होकै तेरै आगे–आगे जावै, सतलोक में सेज बिछी तेरे चौकस लाड लडावै।।
जन्म मरन मिट जावै हे सुरतां, हो आनन्द काया तेरी।।3।।
सतलोक में जा कै हे सुरतां संकट कट जां सारे, अलख लोक और अगम लोक के दिखैं सभी नजारे।
लोक अनामी जावैगी वहां कोन्या मिलैं चौबारे, आत्मा और परमात्मा वहां भी रहते न्यारे–न्यारे।।
रामपाल प्रीतम प्यारे की आत्मा, अब पूर्ण आनन्द लेरी।।4।।

भावार्थ :- भक्त/भक्तमति को समझाने के लिए अपनी सुरति जो आत्मा की आँख है, दूसरे शब्दों में अप्रत्यक्ष रूप से आत्मा को सुरतां नाम से संबोधित करके पूर्णमोक्ष यानि पाँचवीं मुक्ति को प्राप्त करने की प्रेरणा लेखक ने की है और पाँचवीं मुक्ति कैसे मिलेगी, उसकी प्राप्ति में क्या बाधा आती है, सब बताया है। कहा है कि मेरी सुरति यानि ध्यान सतलोक वाले सुख को प्राप्त करने के लिए उस ओर चल यानि लगन लगा। भक्त/भक्तमति अपनी आस्था पूर्ण मोक्ष प्राप्ति के लिए दढ़ कर। विलम्ब न कर। मैं सत्य कह रहा हूँ कि सत्यलोक में सर्व सुख हैं। इसी को गीता अध्याय 18 श्लोक 62 में शाश्वतं स्थानम् यानि सनातन परम धाम कहा है। वहाँ परमशांति बताई है। जिज्ञासु को सर्वप्रथम संत का सत्संग सुनना चाहिए जो पूर्ण आत्मज्ञान करवाता है। बताता है कि आत्मा क्या है? मानव जीवन प्राप्त आत्मा का क्या लक्ष्य है? जीव को जन्म-मरण का चक्र किस कारण से है? इस कष्ट से कैसे छुटकारा मिल सकता है? यह आत्मज्ञान है। परमात्मा ज्ञान (परमात्म ज्ञान) वह है जिसमें परमेश्वर जी की महिमा, गुण तथा पहचान बताई जाती है। उसकी प्राप्ति का मार्ग

शास्त्रोक्त बताया जाता है। यह सर्व ज्ञान पूर्ण संत ही बताता है। पूर्ण संत जो यह ज्ञान बताता है, वह सुदुर्लभ है। गीता अध्याय 7 श्लोक 19 में यही बताया है कि जो संत यह ज्ञान करवाता है कि वासुदेव का अर्थ है कि जिसका वास सब स्थानों पर है यानि सर्व का स्वामी जो सर्व ब्रह्माण्डों में अपनी सत्ता जमाए है। वह ही सब कुछ है यानि वही विश्व का उत्पत्तिकर्ता, पालनकर्ता, मोक्षदाता है। वह संत बहुत दुर्लभ है। {सूक्ष्मवेद में कहा है कि ऐसे संत करोड़ों में नहीं मिलेगा, अरबों व्यक्तियों में एक मिलता है। वर्तमान में यानि सन् 2012 में मेरे (रामपाल दास के) अतिरिक्त सात अरब मनुष्यों में कोई भी वह संत नहीं है।} उस संत का सत्संग सुनो। यदि उसका सत्संग सुनकर भी भक्ति की प्रेरणा नहीं बनती है तो वह जीव कुत्ते की दुम के समान है जो बारह वर्ष तक बाँस की नली में डालकर रखने के पश्चात् भी सीधी नहीं होती। बाहर निकालते हैं तो उसी स्थिति में हो जाती है। वह संत शास्त्र प्रमाणित ज्ञान बताता है कि जो लोक वेद यानि दंत कथाओं के आधार से तीर्थ, भ्रमण, व्रत रखना, पितर पूजा यानि श्राद्ध कर्म करना आदि-आदि साधना का साधक को लाभ के स्थान पर हानि मिलती है, यह नहीं करनी चाहिए। गीता अध्याय 9 श्लोक 25 में भी यह बताया है कि भूत पूजने वाले भूत बनते हैं। पितर पूजने वाले पितर बनते हैं। इसलिए पितर पूजा (श्राद्ध करना), भूत पूजा (तेरहवीं, सतरहवीं, वर्षी आदि-आदि कर्मकाण्ड क्रियाऐं) नहीं करनी चाहिऐं। ये सब अध्यात्म में बाधक हैं। पूर्ण संत यानि सतगुरू से दीक्षा लेकर कबीर परमेश्वर जी को ईष्ट मानकर साधना करने से पूर्ण मोक्ष होगा। सत्य मार्ग पर चलने के पश्चात् मन जो काल ब्रह्म का एजेंट है, यह भ्रमित करेगा। भय भी उत्पन्न करेगा कि वर्षो से करते आ रहे थे, उस साधना को त्यागने से हानि हो सकती है। अन्य गलतियाँ करने को प्रेरित करेगा जो भक्ति खंडित करती हैं। इसलिए मन शैतान की मिथ्या कल्पनाओं की ओर ध्यान नहीं देना है। गुरू जी के बताए मार्ग पर निर्भय होकर चलते रहना है।

काल के इक्कीस ब्रह्माण्डों में सर्व प्राणी जन्म-मरण तथा कर्मों का कष्ट झेल रहे हैं। यह जीव का वास्तविक निवास नहीं है। देवताओं तक की भी मत्यु होती है और जन्म होता है। नरक में भी गिरना होता है। अन्य प्राणियों के शरीरों में कर्मानुसार कष्ट भोगना पड़ता है। आज हम जिस परिवार व संपत्ति को अपना मानते हैं, यह अपना नहीं है। यह भारी धोखा काल ने किया है। अपनी मत्यु हो जाएगी। परिवार व संपत्ति व निवास छूट जाएगा। यह अपना निज ठिकाना नहीं है। केवल सतलोक (सनातन परम धाम) प्रत्येक जीव का ठिकाना है जहाँ कभी मत्यु-वद्धावस्था तथा कष्ट नहीं होता। उस सतलोक को प्राप्त करने के लिए प्रथम उपदेश जो सात नामों का है, उसका सुमरण उच्चारण करके या मानसिक करना होता है। दूसरा उपदेश श्वासों से करना होता है। इसलिए अजप्पा जाप (स्मरण) कहा जाता है। तीसरी बार में सारनाम प्रदान गुरू जी करते हैं। तीनों उपदेशों का स्मरण करना है। सारनाम से जन्म-मरण का कष्ट समाप्त होता है। मत्यु के पश्चात् मर्यादा में रहकर भक्ति करने वाली आत्मा कर्म बन्धन से मुक्त होकर आकाश में उड़ जाती है। जैसे तोते को पिंजरे से निकाल दिया जाता है तो वह तीव्र गति से आकाश में उड़ जाता है। वह सावधानी नहीं करेगा तो फिर से बंदी बन सकता है। इसीलिए कहा है कि हे आत्मा! आप यदि सावधानी नहीं करोगी तो फिर से बंधन में फँस जाओगी। इसलिए आन-उपासना न करना। फिर से अपनी परंपरागत साधना करने बेरी वाली माता पर न चली जाना। न पिण्ड-दान करने गंगासागर वाली बेरी पर भी न जाना। शरीर में बने कमलों का मार्ग प्रथम मंत्र खोल देता है। फिर दूसरे मंत्र यानि सतनाम की भक्ति की शक्ति (सिद्धि) के कारण जीव त्रिकुटी कमल में जाता है। वहाँ जाने

को कहा है।

त्रिकुटी ऐसा स्थान है जैसे अंतर्राष्ट्रीय हवाई अड्डा होता है जहाँ से जिस देश में जाने की टिकट है, वहाँ से हवाई जहाज मिलता है। जिस साधक ने जिस भी ईष्ट की भक्ति की है, वह सर्वप्रथम त्रिकुटी स्थान पर जाता है। वहाँ से उसको गुरु के रूप में उसका ईष्ट देव मिलता है। अपने गुरू को पहचानकर साधक उसके साथ ईष्ट धाम में चला जाता है। जो परमेश्वर कबीर जी के भक्त होते हैं, उनके साथ काल ब्रह्म (ज्योति निरंजन) छल करता है। काल ब्रह्म कबीर भक्त के गुरू जी का रूप बना लेता है। जिनको विवेक नहीं होता, वे बिना परीक्षा किए उसके साथ चल पड़ता है जिसे नकली सतलोक में छोड़ा जाता है। वह काल का ब्रह्मलोक यानि महास्वर्ग है। जिस कारण से वह साधक काल जाल में ही रह जाता है।

❖ परीक्षा कैसे करनी है? परिक्षा विधि :- भक्त को चाहिए कि गुरु जी के दर्शन करते वक्त सत्यनाम व सारनाम का स्मरण करे। यदि नकली गुरु यानि काल होगा तो उसका स्वांग समाप्त हो जाएगा यानि गुरु का रूप नहीं रहेगा। उसका असली स्वरूप प्रत्यक्ष हो जाएगा। यदि असली गुरू जी होगा तो वास्तविक स्वरूप (चेहरा) बना रहेगा। त्रिकुटी स्थान पर जाकर चारों ओर दष्टि घुमाकर अपने गुरूदेव को खोजे। जब जीवात्मा को शब्द गुरू यानि दीक्षा देने वाला अविनाशी गुरू दिखाई दे तो उससे विवाह करावे यानि उसका पल्ला पकड़े। भावार्थ है कि जैसे लड़की का विवाह जिस लड़के से कर दिया जाता है तो वह उसकी पहचान कर लेती है। सबको त्यागकर उसके साथ चल पड़ती है। रास्ते में किसी अन्य से नाता नहीं जोड़ती। वह पति के घर चली जाती है। इसी प्रकार आत्मा अपने गुरु जी के साथ-साथ रहे, गुरु जी के रूप में परमेश्वर कबीर जी आगे-आगे चलेंगे। आत्मा दुल्हन की भांति पीछे-पीछे चले। वह आत्मा अपने पति परमेश्वर के घर यानि सतलोक में सर्व सुख प्राप्त करेगी। परमात्मा मोक्ष प्राप्त आत्मा को बहुत लाड़-प्यार देता है। प्रशंसा करता है। सतलोक में जाने के पश्चात् सर्व संकट समाप्त हो जाते हैं। सत्यलोक में जीव को हंस कहते हैं। हंसात्मा स्त्री-पुरुष रूप में रहते हैं। स्त्री को हंसनी तथा पुरूष को हंस कहते हैं। जैसे यहाँ भक्त तथा भगतनी या भक्तमति कहते हैं। सतलोक में हंसात्माओं को दिव्य दष्टि प्राप्त हो जाती है। जिसके द्वारा ऊपर के दोनों लोक (अलख लोक और अगम लोक) देखे जा सकते हैं। परंतु अकह लोक यानि अनामी लोक को तो वहीं जाकर देखा जाता है। वहाँ पर भी परमात्मा तथा आत्मा भिन्न-भिन्न निवास करते हैं। सत्यलोक में हंसात्मा अपने पति परमेश्वर यानि परमहंस के लोक में सर्व सुख प्राप्त कर रही होती है। अनामी लोक में कोई मकान नहीं है। अन्य तीनों लोकों में सुंदर महल प्रत्येक परिवार को प्राप्त हैं।

❖ गीता अध्याय 2 श्लोक 46-53 का अनुवाद :-

❖ गीता अध्याय 2 श्लोक 46 का अनुवाद :- सब ओर से परिपूर्ण जलाशय के प्राप्त होने पर छोटे तालाब में मनुष्य का जितना प्रयोजन रह जाता है, विद्वान पुरूष का उतना ही प्रयोजन तत्वज्ञान की प्राप्ति के पश्चात् अन्य (सर्वेषु वेदेषु) सब ज्ञानों में उतना ही प्रयोजन रह जाता है।(2/46)

❖ गीता अध्याय 2 श्लोक 47 :- तेरा कर्म करना अधिकार है, फल की इच्छा मत कर। इसलिए कर्तव्य कर्म बिना आसक्ति के कर।(2/47)

❖ गीता अध्याय 2 श्लोक 48 :- हे धनंजय! तू आसक्ति को त्यागकर सिद्धि यानि जय तथा असिद्धि यानि पराजय में समबुद्धि होकर योग यानि सत्य साधना में लगा हुआ भक्ति कर्म कर। यही (समत्वम् योगः उच्यते) निःइच्छा साधना कहते हैं।

समत्व का भावार्थ है परमात्मा की इच्छा पर आश्रित रहकर फल की इच्छा न करे।(2/48)

❖ गीता अध्याय 2 श्लोक 49 :- तत्वज्ञान से प्राप्त बुद्धि से समझ ले कि इच्छा रखकर किए गए भक्ति कर्म अत्यंत निम्न श्रेणी के हैं। हे धनंजय! इसलिए बुद्धिमता से काम ले। तत्वदर्शी संत की शरण में जाने का मार्ग खोज क्योंकि फल की इच्छा रखने वाला तो कपण यानि कंजूस जैसा है जो धन का यथार्थ प्रयोग न करके धन जोड़कर छोड़कर चला जाता है जो उसके कुछ काम नहीं आता।(2/49)

❖ गीता अध्याय 2 श्लोक 50 :- तत्वज्ञान प्राप्त साधक पाप तथा पुण्य की कामना न करके केवल मोक्ष उद्देश्य से भक्ति करता है तथा पाप-पुण्य को यहीं त्याग देता है। इसलिए तू भी ऐसी साधना को अपना। भक्ति करने में ही कुशलता है, यही समझदारी है।(2/50)

❖ गीता अध्याय 2 श्लोक 51 :- (हि) क्योंकि (बुद्धियुक्ता) तत्वज्ञान प्राप्त (मनीषिणः) ज्ञानी महात्मा (कर्मजम्) कर्मों से उत्पन्न (फलम्) फल को (त्यक्त्वा) त्यागकर (जन्म बन्ध विनिर्मुक्ता) जन्म व मत्यु रूप बंधन से पूर्ण रूप मुक्त होकर (अनामयम्) जन्म-मरण के रोग रहित अनामी (पदम्) परम पद को (गच्छन्ति) प्राप्त हो जाते हैं यानि उस सनातन परम धाम में चले जाते हैं जहाँ पर परम शांति है तथा उस स्थान पर गए साधक फिर लौटकर संसार में नहीं आते।(2/51)

❖ गीता अध्याय 2 श्लोक 52 :- काल ब्रह्म ने कहा है कि (यदा) जब (ते बुद्धि) तेरी बुद्धि (मोहमलिलम्) मोह रूप दलदल से (व्यतितरिष्यति) भली-भांति पार कर जाएगी। (तदा) तब तेरे सामने एक समस्या आएगी कि यथार्थ अध्यात्म ज्ञान न मिलने के कारण (श्रुतस्य) सुने हुए (च) और (श्रोतव्यस्य) सुनने में आने वाले यानि सुने-सुनाए शास्त्रविरूद्ध (निर्वेदम्) अज्ञान को प्राप्त हो जाएगा। वेद का अर्थ है ज्ञान और निर्वेद यानि जो यथार्थ ज्ञान नहीं यानि अज्ञान। भावार्थ है कि लोकवेद से यह तो प्रेरणा मिल जाती है कि यह संसार स्वार्थी है। कोई सदा नहीं रहेगा। मानव शरीर केवल परमात्मा की भक्ति करके अपना जीव का कल्याण करवाने हेतु प्राप्त है। जो भक्ति नहीं करता, उसका मानव जीवन व्यर्थ है। इस प्रकार के ज्ञान से पूर्व संस्कारी जीव का मोह तो संसार से हट जाता है, परंतु यथार्थ भक्ति ज्ञान यानि तत्वज्ञान के अभाव से साधक अज्ञानी संतों के सुने-सुनाए ज्ञान के कारण अज्ञान को ज्ञान मानकर ग्रहण कर लेता है।(2/52)

❖ गीता अध्याय 2 श्लोक 53 :- तत्वज्ञान प्राप्त होने के पश्चात् भाँति-भाँति के वचनों यानि अज्ञान से विचलित हुई तेरी बुद्धि जब परमात्मा के ध्यान में पूर्ण रूप से निश्चल रूप से स्थाई स्थिर हो जाएगी, तब तू (योगम्) योग को यानि यथार्थ भक्ति को (अवाप्स्यसि) प्राप्त हो जाएगा यानि तब तू भक्त बनेगा।(2/53)

❖ अध्याय 2 के श्लोक 46 से 53 का सारांश :- इन श्लोकों का भावार्थ है कि वास्तव में पाप-पुण्य को भूल कर अर्थात् पाप-पुण्य का फल इसी लोक में त्याग कर पूर्ण परमात्मा की साधना में लग जा। यही प्रमाण गीता अध्याय 18 श्लोक 66 में काल ब्रह्म ने कहा है कि मेरे स्तर की मेरी सर्व धार्मिक पूजा को मेरे में त्याग कर उस एक सर्वशक्तिमान परमात्मा की शरण में जा फिर मैं तुझे सर्व पापों से मुक्त कर दूंगा। यही भाव यहाँ पर है। कहा है कि कर्मों में योग (भक्ति) करना कुशलता है। इसलिए योग (पूर्ण परमात्मा की भक्ति) में लगजा। समझदार साधक कर्मों से होने वाले फल को भी त्याग कर जन्म-मरण रूपी कर्मबन्धन से मुक्त हो जाते हैं। हे अर्जुन! जब तू मोह रहित हो जाएगा, उसी वैराग्य को प्राप्त हो जाएगा। जब तेरी बुद्धि नाना प्रकार के मत भेदी शास्त्रों के ज्ञान से विचलित न रह कर एक तत्वज्ञान पर आधारित हो जाएगी, फिर तू योगी (भक्त) बनेगा

जैसे छोटे तालाब (तलईया) के प्रति मनुष्य का मन अपने आप हट जाता है जब उसे बड़े तालाब (जलाशय) की प्राप्ति हो जाती है। इसी प्रकार पूर्ण परमात्मा का ज्ञान हो जाने के बाद छोटे भगवानों ब्रह्मा, विष्णु, महेश, देवी-देवताओं, माता तथा काल (ब्रह्म) तथा परब्रह्म आदि से मन हट कर पूर्ण परमात्मा की भक्ति करके उसके अनामी (अनामय) परम पद को अर्थात् सतलोक से भी आगे अनामी लोक में चला जाता है। जन्म-मरण से पूर्ण रूप से छूट जाता है। इसलिए तू पूर्ण परमात्मा का भक्त (योगी) हो जा। तब तू योगी अर्थात् सही भक्त होगा।

❖ *अध्याय 2 के श्लोक 54 में अर्जुन ने प्रश्न किया है कि पूर्ण रूप से एक पूर्ण परमात्मा में आश्रित अर्थात् पूर्ण परमात्मा में स्थिर बुद्धि रखने वाले भक्त के क्या लक्षण होते हैं? उसका बोलना-चलना बैठना आदि कैसा होता है?*

गरीबदास जी महाराज ने इसका उत्तर भी यही बताया है कि :-

गरीब, राजिक रमता राम की, रजा धरै जो शीश। दास गरीब दर्श पर्श, तिस भेंटै जगदीश।।

भावार्थ :- 1. वह भक्त परमात्मा पर पूर्ण विश्वास करता है कि भक्त के लिए परमात्मा जो करता है, वह सही करता है। उसकी रजा में प्रसन्न रहता है। ऐसे साधक को परमात्मा मिलता है।

2. साधक सामाजिक कुरीतियों से बचता है। 3. नशीले पदार्थों का सेवन नहीं करता। 4. माँस नहीं खाता। 5. कोई बुराई जैसे व्याभीचार, चोरी-रिश्वतखोरी, डाके आदि नहीं करता।

❖ *गीता अध्याय 2 श्लोक 55-68 का अनुवाद :-*

❖ *गीता अध्याय 2 श्लोक 55 :- अर्जुन ने श्लोक 54 में प्रश्न किया है कि जो साधक परमात्मा पर पूर्ण रूप से समर्पित हो चुका है, उसका ध्यान केवल परमात्मा प्राप्ति पर स्थाई रूप से स्थिर है, उसकी पहचान (लक्षण) क्या है? उसका कैसे पता चलता है? इसका उत्तर इस प्रकार दिया है कि हे अर्जुन! जब साधक मन की उपज कामनाओं को भली-भांति त्याग देता है, स्वयं संतुष्ट रहता है, तब वह स्थित प्रज्ञ यानि निश्चल बुद्धि कहा जाता है।*

❖ *गीता अध्याय 2 श्लोक 56 :- इसके अतिरिक्त सुख-दुःख में विचलित नहीं है, जिसके राग, भय और क्रोध नष्ट हो गए हैं। वह मुनि यानि भक्त स्थिर बुद्धि कहा जाता है।*

❖ *गीता अध्याय 2 श्लोक 57-58 :- इन श्लोकों में भी स्थिर बुद्धि वाले साधक के लक्षण बताए हैं। कहा है कि शुभ-अशुभ परमात्मा की देन मानकर विचलित नहीं होता। भौतिक जगत से प्रेम न रखकर परमात्मा में रूचि रहता है। राग-द्वेष रहित होता है। जैसे कछुआ अपने सर्व अंगों को समेटकर छुपा लेता है, उसी प्रकार भक्त अपनी इन्द्रियों को शांत कर लेता है।*

❖ *गीता अध्याय 2 श्लोक 59-60 :- इन श्लोकों में कहा है कि जो व्यक्ति हठपूर्वक इन्द्रियों को विषयों से दूर रखता है। उसकी स्थिति ऐसी होती है जैसे कोई व्यक्ति निराहार यानि भोजन के बिना रहता है। उसने पदार्थों के खाने से संयम कर लिया, परंतु उन पदार्थों के स्वाद में आसक्ति बनी रहती है। इसी प्रकार इन्द्रियों को हठपूर्वक विषयों से रोकने से संयम तो कर लिया, आसक्ति समाप्त नहीं हुई। जब तक भोजन नहीं खाता, तब तक पूर्ण रूप से संयम है। साधक की विषयों का रस यानि आनंद लेने वाली आसक्ति काल ब्रह्म से (परम्) पर यानि अन्य परमात्मा को (दंष्टवा) देखकर यानि सत्य साधना से परमात्मा का साक्षात्कार हो जाता है जिससे वह आसक्ति (निवर्तते) निवंत हो जाती है।*

भावार्थ :- साधक जब तक पेटभर भोजन नहीं खाता, तब तक इन्द्रियाँ शिथिल पड़ जाने से विकार मर जाते हैं। परंतु भोजन खाना प्रारम्भ करने से विकार फिर से सक्रिय हो जाते हैं।

उदाहरण :- श्रंगी ऋषि ने निराहार रहकर मान लिया था कि उसने इन्द्रियों को वश कर लिया है, विकार रहित हो गया है। परंतु राजा दशरथ की बेटी शांता ने शहद तथा खीर, भोजन खिलाने के पश्चात् श्रंगी में सब विकार सक्रिय हो गए और शांता से विवाह किया।

❖ *हे अर्जुन! जिनको तत्वज्ञान प्राप्त नहीं हुआ, उन्होंने यदि हठ करके इन्द्रियों की विषयों भोगों से रोक भी ली तो भी इन्द्रियाँ बुद्धिमान पुरूष के मन को हर लेती हैं। उदाहरण :- श्रंगी ऋषि ने अपनी इन्द्रियों को हठयोग से रोका था। उसके लिए वर्षों हठ करके निराहार रहा। एकांतवास वन में किया। परंतु पूर्ण परमात्मा के सत्य मंत्रों की साधना के अभाव के कारण राजा दशरथ की बेटी शांता के रूप पर आसक्त होकर सर्व रसों के भोग का आनंद लिया, विवाह किया। इन श्लोकों में यही बताया है कि गीता ज्ञान दाता यानि काल ब्रह्म तक की साधना से साधक के विकार समाप्त नहीं होते। कुछ दिन दबे रहते हैं। अवसर मिलते ही पहले से भी प्रबल वेग से सक्रिय हो जाते हैं। जैसे अग्नि को राख में दबा दिया जाता है। ऊपर हाथ रखकर जाँच करने से भी गर्म नहीं लगती। परंतु कुछ समय उपरांत भी राख ऊपर से हटाने के पश्चात् पहले से अधिक गर्म होती है। यही दशा काल ब्रह्म से अन्य परमात्मा की साधना न करने वालों की है।*

अगले श्लोक 61 में स्पष्ट किया है :-

❖ *गीता अध्याय 2 श्लोक 61 :- सब इन्द्रियों को वश में करके (मत्परः) मेरे से दूसरे परमात्मा (आसीत युक्तः) की साधना में साधक लगे क्योंकि उसी की सत्य मंत्रों की साधना से मन वश होता है। मन के आधीन इन्द्रियाँ हैं। जिस साधक की इन्द्रियाँ वश में होती हैं, उसकी (प्रज्ञा) बुद्धि (प्रतिष्ठिता) पूर्ण रूप से स्थिर हो जाती हैं।*

❖ *गीता अध्याय 2 श्लोक 62-63 :- इन श्लोकों में बताया है कि विषयों यानि विकारों का चिंतन करने वाले व्यक्ति की उन विषयों में आसक्ति हो जाती है। आसक्ति से उनको प्राप्त करने की कामना उत्पन्न होती है। कामना पूर्ण न होने से क्रोध उत्पन्न होता है। क्रोध से मूर्खता उत्पन्न होती है। मूढ़भाव से स्मरण शक्ति में भ्रम हो जाता है। स्मति में भ्रम हो जाने से बुद्धि यानि विवेक का नाश हो जाता है। बुद्धि का नाश होने से व्यक्ति मानवता से गिर जाता है।*

❖ *गीता अध्याय 2 श्लोक 64-65 :- इन श्लोकों में कहा है = परंतु (विधेय आत्मा = विधेयात्मा) शास्त्रविधि अनुसार पूर्ण परमात्मा की साधना करने वाला साधक सत्य साधना से अपने वश में की हुई राग-द्वेष रहित की हुई इन्द्रियों द्वारा विषयों में विचरण करता हुआ यानि संसार में रहकर कर्म करता हुआ परिवार पोषण करता हुआ भी (प्रसादम्) परमात्मा प्राप्ति रूपी कपा प्रसाद को यानि पूर्ण सुखदायी मोक्ष को (अधिगच्छति) प्राप्त हो जाता है।*

❖ *(प्रसादे) परमात्मा की कपा से परमात्मा की प्राप्ति होने पर इस साधक (सर्वदुःखानाम्) सब दुःखों की हानि हो जाती है। वह सदा प्रसन्न चित्त रहता है। प्रसन्न चित्त वाले साधक की बुद्धि शीघ्र ही सब ओर से हटकर परमात्मा के स्मरण में पूर्ण रूप से स्थिर हो जाती है।*

❖ *गीता अध्याय 2 श्लोक 66-68 :- जिसको तत्वदर्शी संत नहीं मिला, वह परमात्मा के स्मरण में स्थिर नहीं हो सकता क्योंकि उसका मन वश नहीं है। उस अयुक्त यानि परमात्मा पर न टिके मन वाले पुरूष में बुद्धि स्थिर नहीं होती और उस अयुक्त यानि परमात्मा में दढ़ता से न लगे अभक्त के अंदर भक्ति भाव नहीं होता और बिना भाव के व्यक्ति को परमात्मा के स्मरण से मिलने वाली शांति नहीं मिलती। अशांत मनुष्य को सुख कैसे हो सकता है? अर्थात् वह कभी सुखी नहीं हो सकता।*

❖ क्योंकि पूर्ण संत रूपी खेवट नाव के साथ नहीं है तो उस नाव को जल में वायु हर लेती है यानि अपनी इच्छा अनुसार भटकाती है। वैसे ही पूर्ण संत के अभाव से तत्वज्ञान न होने से जल में नाव की भाँति विषयों में विचरती हुई इन्द्रियों में से मन जिस इन्द्री के साथ लगा है, वह एक ही इन्द्रिय उस अभक्त की बुद्धि को हर लेती है।

❖ इसलिए हे महाबाहो! जिस व्यक्ति की इन्द्रियाँ इन्द्रियों के विषयों यानि विकारों (काम, क्रोध, मोह, लोभ) से सब प्रकार से निग्रह की हुई है यानि पूर्ण से संयमित है। उसी की बुद्धि स्थिर है।

❖ अध्याय 2 के श्लोक 55 से 68 में कहा है कि जब भक्त (योगी) इच्छाओं से रहित हो कर भाग्य पर संतुष्ट हैं, उस समय वह स्थिर बुद्धि वाला है। दुःख-सुख को बराबर समझता है व राग-द्वेष से रहित होता है। जिसने इन्द्रियों का दमन कर लिया है। क्योंकि बुरे विचारों से इच्छाऐं (कामना) उत्पन्न होती हैं फिर क्रोध से अज्ञान और अज्ञान से अहंकार, फिर ज्ञान नष्ट हो जाने से बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है इसके बाद पतन निश्चित है। जो तत्वज्ञानी योग युक्त है वह शास्त्र अनुकूल भक्ति कर्म करता हुआ भी इन्द्रियों के वश नहीं होता। जल्दी ही स्थिर बुद्धि हो जाती है और उसके सर्व दुःखों का अंत हो जाता है। जब तक प्राणी निःइच्छा नहीं होता तब तक सुख कैसा? इन्द्रियाँ मन को ऐसे विवश कर लेती हैं जैसे पानी में नौका वायु के वश हो जाती है अर्थात् जिसकी इन्द्रियाँ वश हैं उनकी बुद्धि स्थिर जान।

पाठकजनों! उपरोक्त स्थिति तत्वदर्शी संत से दीक्षा लेकर ही प्राप्त हो सकती है। तत्वदर्शी संत तत्वज्ञान यानि सूक्ष्मवेद से सम्पूर्ण ज्ञान तथा सम्पूर्ण भक्ति विधि बताता है। उसके अभाव से चारों वेदों में वर्णित ज्ञान व साधना से उपरोक्त स्थिति यानि स्थिर बुद्धि नहीं हो सकती, विकार नहीं मरते। यही कारण रहा कि ऋषि वेदों अनुसार साधना करके भी काम, क्रोध, अहंकार आदि के वश ही रहे। उदाहरण रूप में निम्न कथाऐं :-

।। वेदों में वर्णित साधना विधि से विकार नहीं मरते ।।

एक समय एक चुणक नामक ऋषि वेदों तथा गीता जी के अध्याय 2 के श्लोक 55 से 68 तक वर्णित साधना विधि के (मतानुसार) अनुसार अपने मन व इन्द्रियों को काबू करके कई हजार वर्षों तक साधना करता रहा। उस समय वे महायोगी माने जाते थे। बहुत मदुभाषी, दुःख-सुख में एक रस रहने वाले तथा केवल एक लंगोटी (कोपीन) व एक झोंपड़ी (कुटिया) में रहा करते थे। जो मिल जाता उसी में संतुष्ट रहते थे। पूर्ण सिद्धि युक्त महापुरुष माने जाते थे।

एक मानधाता चकवै (चक्रवर्ती) राजा था। (चक्रवर्ती राजा उसे कहते हैं जिसका सम्पूर्ण पथ्वी पर राज्य हो)। मानधाता के मन में आई कि देखना चाहिए कि कोई छोटा राजा मेरे सामने सिर उठाने वाला तो नहीं हो गया है। इसके लिए राजा ने एक घोड़ा छोड़ा, जिसके गले में एक लकड़ी का बोर्ड (फट्टी) लटकाया जिस पर यह लिख दिया कि यह घोड़ा राजा मानधाता चकवै (चक्रवर्ती) का है। जिस किसी राजा को महाराजा मानधाता की आधीनता स्वीकार नहीं है वह इस घोड़े को पकड़ कर बाँध ले उसको राजा के साथ युद्ध करना पड़ेगा। साथ में सैकड़ों सैनिक भी अन्य घोड़ों पर सवार हो कर उस घोड़े के साथ-2 चल दिए। घोड़ा सारी पथ्वी पर घूमकर वापिस आ रहा था किसी ने उस घोड़े को पकड़ने का साहस नहीं किया। चूंकि राजा मानधाता के पास 72 क्षौहिणी (एक करोड़ 56 लाख 96 हजार) सेना थी। जब वे सैनिक तथा वही घोड़ा परम ऋषि चुणक के पास से निकलने लगे तो ऋषि ने सैनिकों से पूछा कि - कौन हो? कहाँ से आए हो और

कहाँ जा रहे हो? यह खाली घोड़ा किस लिए है। इस पर कोई सवार क्यों नहीं? कृप्या बतलाईए। अभिमानी राजा के अभिमानी सैनिकों ने कहा तेरे मतलब की बात नहीं है। ऋषि जी बोले - राह-रस्ते व आने-जाने वालों से पूछ ही लिया करते हैं। बताईए क्या माजरा है? सैनिक कहने लगे यह राजा मानधाता चक्रवर्ती (चकवै) का घोड़ा है। इसको जो कोई पकड़ लेगा उसे राजा से युद्ध करना होगा। ऋषि ने पूछा क्या किसी ने नहीं पकड़ा? कुछ सैनिकों ने कहा कि सारी पृथ्वी पर किसी की हिम्मत ही नहीं पड़ी इसे पकड़ने की। कुछ दूसरों ने कहा कि कोई कैसे पकड़ेगा? राजा के पास 72 क्षोहिणी सेना है। चुणक ऋषि ने कहा कि यदि किसी ने भी नहीं बाँधा तो मैं बाँध लेता हूँ। यह कहते ही सैनिकों ने वह घोड़ा उसी वृक्ष से बाँध दिया जिसके नीचे ऋषि की कुटिया थी और कहा कि रे कंगाल, तेरे पास खाने के लिए तो अन्न (दाने) भी नहीं है और युद्ध करेगा राजा मानधाता चकवै से? क्यों तेरी सामत आई है। ऋषि बोला मेरे भाग्य में ऐसा ही है। जाओ कह दो अपने राजा से कि ऋषि युद्ध के लिए तैयार है। जब सैनिकों ने राजा से बताया कि आपका घोड़ा चुणक नाम के ऋषि ने बाँध लिया है और युद्ध के लिए तैयार है। राजा ने एक व्यक्ति को मारने के लिए 18 क्षौहिणी सेना भेजी। ऐसे अपनी सेना की 18-18 क्षौहिणी की चार टुकड़ियाँ बनाई। उधर चुणक ऋषि ने अपनी ब्रह्म (काल) साधना से प्राप्त सिद्धि से चार पुतलियाँ बनाई। ऋषि ने एक पुतली राजा की सेना पर छोड़ी जिसने 18 क्षौहिणी सेना को समाप्त कर दिया। ऐसे चारों पुतलियों ने 72 क्षौहिणी सेना का सर्व नाश कर दिया। (नोट :- एक क्षौहिणी में लगभग दो लाख अठारह हजार सैनिक होते हैं जिनमें से कुछ पैदल सैनिक, कुछ घोड़ों पर सवार, कुछ हाथियों पर सवार, कुछ रथों पर सवार होते हैं।)

पूर्ण ब्रह्म की साधना के अतिरिक्त परब्रह्म, ब्रह्म, अन्य श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी तथा श्री शिव जी देवताओं व अन्य देवी देवताओं की पूजा से जैसा कर्म किया है वैसा ही फल मिलता है, पुण्य भोग स्वर्ग में तथा पाप भोग नरक में तथा चौरासी लाख प्राणियों के शरीर में भी यातना सहनी पड़ती है। महर्षि चुणक जी ब्रह्म (काल) उपासक थे तथा वेदों में वर्णित विधि अनुसार साधना की। जिस कारण से पुण्यों का भोग महास्वर्ग (जो ब्रह्म लोक में बना है) में भोग कर पाप कर्मों का फल नरक तथा फिर पशु आदि के शरीर में भोगना पड़ेगा। जब यह चुणक ऋषि कुत्ता आदि बनेगा तो इसके सिर में जख्म होगा तथा कीड़े चलेंगे। जितने सैनिकों का वध वचन रूपी तीर से किया था वह अपना प्रतिशोध लेंगे। इसी लिए पवित्र गीता अध्याय 7 श्लोक 18 में स्वयं गीता जी को बोलने वाला ब्रह्म (काल) ने कहा है कि ये ज्ञानी आत्मा उदार हैं जिनको वेद पढकर यह ज्ञान तो हो गया कि एक प्रभु की भक्ति से पूर्ण मोक्ष होगा परंतु तत्वदर्शी संत न मिलने से स्वयं निकाले निष्कर्ष के आधार पर कि ओ३म् नाम का जाप तथा पाँचों यज्ञ तथा घोर तप ही पूर्ण ब्रह्म की साधना मान ली। परंतु यह साधना केवल काल ब्रह्म तक की है। पूर्ण ब्रह्म (परम अक्षर ब्रह्म) की साधना तो तत्वदर्शी संत ही बताएगा (गीता अध्याय 4 श्लोक 34 तथा यजुर्वेद अध्याय 40 मन्त्र 10 व 13 में)। इसलिए वे उदार ज्ञानी आत्मा मेरी (ब्रह्म-काल कह रहा है) अति अश्रेष्ठ (अनुत्तमाम्) गति (मुक्ति) में ही आश्रित रही। विशेष :- अब पाठक वृन्द स्वयं विचार करें कि इतने अच्छे साधक दिखाई देने वाले ऋषि को क्या उपलब्धि हुई?

क्योंकि वेदों व गीता जी में ज्ञान तो श्रेष्ठ है कि जो साधक काम, क्रोध, मोह, लोभ, अहंकार, राग-द्वेष रहित हो जाता है वही पूर्ण मुक्त है। परंतु भक्ति की साधना केवल काल (ब्रह्म) प्राप्ति की है जिससे विकार रहित नहीं हो सकता। उस परमात्मा को प्राप्त होने योग्य ''मन्त्र के

जाप से हो सकता है। वह किसी शास्त्र में नहीं है। वह मन्त्र केवल साहेब कबीर का पूर्ण संत ही बता सकता है। लाभ भी उसी संत से नाम लेने से होगा जिसे उपदेश देने का आदेश प्राप्त हो। फिर सारा जीवन गुरु मर्यादा में रह कर भक्ति करता हुआ सार नाम की प्राप्ति गुरु जी से करें। तब साधक सतलोक जा सकता है तथा विषयों (विकारों) को त्याग सकता है।

विशेष : ऋषि चुणक एक उदार ज्ञानी आत्मा परमात्मा को चाहने वाले थे। जैसा मार्गदर्शन अपने आप निष्कर्ष निकालने से शास्त्रों से हुआ तथा जैसा गुरु मिला उसके आधार पर वेदों में वर्णित मतानुसार हजारों वर्ष साधना की। फिर भी अभिमान (अहंकार) नहीं गया। मानधाता राजा का सर्वनाश किया तथा अपनी भक्ति की कमाई कम की और पाप के भागी बने। यह ब्रह्म साधना की घटिया गति (स्थिति) है। जिसका प्रमाण स्वयं ब्रह्म भगवान देते हैं (गीता जी के अध्याय 7 के श्लोक 18 में)। आदरणीय गरीबदास जी महाराज कहते हैं कि -

गरीब, बहतर क्षौणी खा गया, चुणक ऋषिश्वर एक। देह धारें जौरा फिरैं, सभी काल के भेख।।

भावार्थ :- चुणक ऋषि काल ब्रह्म की साधना से काल रूप हो गया। सिद्धियाँ प्राप्त की। उससे बहत्तर क्षौहिणी यानि एक करोड़ *56* लाख *96* हजार सैनिकों को खा गया अर्थात् मार डाले। ये सिद्धि प्राप्त ऋषि मानव शरीर में जौरा यानि चलती-फिरती मत्यु हैं। ये सब भेष यानि पंथ काल प्रेरित हैं। काल ब्रह्म इनको भ्रमित किए है।

जैसे गीता जी के अध्याय 14 के श्लोक 2 में कहा है कि मेरी भक्ति वेदों व गीता में वर्णित विधि से करता है वह मेरे भाव में ही भावित रहता है तथा मेरे जैसे गुणों वाला अर्थात् काल का दूसरा रूप हो जाता है जैसे चुणक ऋषि। पुनर् जन्म जब मानव का होता है तो वह साधक उसी भाव में भावित रहता है अर्थात् अन्य देवों की उपासना नहीं करता, फिर भी वेदों अनुसार मेरी साधना करता है। यह भी बहुत जन्मों के उपरान्त मेरी साधना पर लगता है, यही संकेत गीता अध्याय 7 श्लोक 19 में भी दिया है कि बहुत जन्म-जन्मान्तर के पश्चात् कोई ज्ञानी आत्मा जो पहले मेरे भाव में भावित था, मेरी साधना करता है और यह बताने वाला कि पूर्ण परमात्मा ही वासुदेव है अर्थात् सर्वव्यापक सर्व का पालन कर्त्ता वही पूजा के योग्य है, वह महात्मा तो अति दुर्लभ है।

❖ *गीता अध्याय 2 श्लोक 69-72 का अनुवाद :- श्लोक 69 में कहा है कि रात्रि में दो प्रकार के व्यक्ति जागते हैं। एक तो संसारिक भोगों की इच्छा वाला सोते हुए भी स्वपन में उन्हीं में भटकता रहता है। दूसरा परमात्मा की भक्ति में लगा स्थिर बुद्धि वाला साधक रात्रि में स्वपन में भी परमात्मा का विचार रखता है। वह तत्वदर्शी साधक संसार के नाशवान पदार्थों की इच्छा नहीं रखता। उनकी प्राप्ति से आँख बंद किए होता है। उसके लिए दिन भी रात्रि के समान है।*

भावार्थ :- जो संसारिक व्यक्ति भौतिक पदार्थों की प्राप्ति के लिए दिनभर भटकता है। संयमी साधक की इच्छा उन पदार्थों की नहीं होती। उनकी प्राप्ति की इच्छा न करके उनकी ओर से आँखें बंद किए हैं। उसके लिए वह दिन भी रात्रि के समान है। अन्य लोग तो संसारिक पदार्थों की प्राप्ति के लिए सजग रहते हैं, परंतु स्थिर बुद्धि वाला उनसे मुख मोड़े रहता है। वह रात्रि में सोने के तुल्य विकारों से परे है, वह सोया हुआ है।

❖ *श्लोक 70 :- तत्वज्ञान से परिचित स्थिर बुद्धि वाले का विश्वास ऐसा अचल होता है जैसे जल से पूर्ण रूप से परिपूर्ण अचल प्रतिष्ठा वाले समुद्र में अनेकों नदियाँ समा जाती हैं। उनसे समुद्र विचलित नहीं होता। वैसे ही स्थिर बुद्धि वाले में भोग समा जाते हैं यानि गहस्थी साधक संतान उत्पत्ति भी करता है, परंतु अन्य स्त्रियों को माता, बहन-बेटी की दष्टि से देखता है। अपने धर्म से*

गिरता नहीं। उसमें सब भोग समा जाते हैं। वही साधक शांति को प्राप्त हो जाता है। भोग-विलास में लिप्त साधक शांति नहीं प्राप्त कर सकता।

❖ *श्लोक 71 :- जो पवित्रात्मा सम्पूर्ण कामनाओं को त्यागकर ममता रहित, अहंका रहित और स्पहा रहित यानि इच्छा रहित जीवन यापन करता है, वह शांति को प्राप्त होता है।*

❖ *श्लोक 72 :- हे अर्जुन! यह उपरोक्त स्थिति परमात्मा प्राप्त साधक की स्थिति है। इस स्थिति को प्राप्त साधक अंत समय तक अज्ञानवश नहीं होता। अंत काल में भी इसी स्थिति में रहकर (ब्रह्म निर्वाणम् ऋच्छति) उस परमेश्वर के धाम को प्राप्त होता है।*

❖ *विशेष :- निर्वाण शब्द का अर्थ है जीवन का अंत होना, ऋच्छति का अर्थ वंचित होना। ''ब्रह्म निवाणम् त्रच्छति'' का अर्थ है कि काल ब्रह्म के लोक से जीवन का अंत होकर इससे वंचित हो जाना। जब काल ब्रह्म के लोक के कष्टमय समय का अंत होगा तो इससे वंचित होकर उपरोक्त स्थिर बुद्धि वाला साधक पूर्ण परमात्मा को प्राप्त होगा। ये गीता के गूढ़ रहस्य वाले शब्द हैं जिनको तत्वदर्शी जानता है।*

❖ *अध्याय 2 के श्लोक 69 से 72 में लिखा है कि रात्रि में दो प्रकार के प्राणी जागते हैं। एक विषयों का प्रेमी [काम (सैक्स) वश, चोर या ज्यादा धन इक्ट्ठा करने वाला] यानि विकारों में लीन जागता है। उसके लिए वह रात ही दिन के समान है। दूसरा परमात्मा प्रेमी जागता है। उसने उस रात का पूरा लाभ लिया। जैसे सर्व नदियाँ समुद्र में स्वतः गिर जाती हैं ऐसे ही दोनों प्रकार के प्राणी अपने बुरे व अच्छे कर्मो के आधार पर नरक तथा स्वर्ग में स्वतः चले जाते हैं। जो व्यक्ति परमात्म तत्व को जान चुका है वह विषय वासनाओं से रहित सुख-दुःख व लाभ-हानि में समान रहता है। जैसे समुद्र में नदियां गिर कर भी समुद्र को विचलित नहीं करती। इस प्रकार वह व्यक्ति सर्व इच्छा ममता व अहंकार रहित होकर ही शांति को प्राप्त होता है। जो साधक विषय विकार रहित होकर मन वश करके इन्द्रियों का दमन करे व काम क्रोध, मोह, लोभ, अहंकार को समाप्त करके अन्तिम समय (मत्यु बेला) में भी विचलित नहीं होता, केवल वही साधक ब्रह्म काल के कष्टमय समय का अंत होने से पूर्ण परमात्मा-पूर्ण ब्रह्म को प्राप्त हो सकता है, अन्यथा क्षमता रहित होने से पूर्ण परमात्मा को प्राप्त नहीं कर सकता।*

सार : यह क्षमता न विष्णु में, न ब्रह्मा में, न शिव में। फिर परमात्मा प्राप्ति असम्भव।

।। ब्रह्मा से मन व काम (सैक्स) वश नहीं हुआ।।

ब्रह्मा की कहानी सुनो :-ब्रह्मा जी बहुत ही विद्वान् देव हैं। चारों वेदों के ज्ञाता माने जाते हैं तथा ब्रह्मापुरी में देवताओं को ज्ञान सुनाया करते हैं।

एक दिन बहुत से नौजवान देव ब्रह्मा जी की सभा में ज्ञान सुनने हेतु आए हुए थे। ब्रह्मा जी कह रहे थे कि देवताओं हमारा सबसे पहला दुश्मन कामदेव (सैक्स) है। इससे बचने के लिए एक मात्र उपाय है कि दूसरे की पत्नी को माँ समान व पुत्री को बेटी समान समझें। यदि कोई ऐसा विचार नहीं रखता है तो वह नीच आत्मा है। उसके दर्शन भी अशुभ होते हैं आदि-आदि। ब्रह्मा जी की पुत्री सरस्वती जो कुंवारी थी को अपनी माता जी से गहस्थ का ज्ञान हुआ कि जवान लड़की ने शादी करके अपना घर बसाना चाहिए। नहीं तो स्त्री का आदर कम हो जाता है। इस बात को सुनकर सरस्वती हम उम्र सहेलियों (देव स्त्रियों) के पास गई। उसने उनको माता द्वारा शादी करने का वत्तांत सुनाया। तब सभी ने मिल कर कहा कि सरस्वती जवानी ढल जाने के बाद आपको

कोई देव स्वीकार नहीं करेगा। शादी के आनन्द से वंचित रहकर मानव शरीर का कोई लाभ नहीं है। अन्य बहुत अश्लील बातों से सरस्वती में पति प्राप्ति की प्रबल इच्छा प्रेरित की। साथ में कहा कि आज सुअवसर है कि सर्वदेव आपके पिता के दरबार में आए हुए हैं। अपना पति चुन ले। यह बात सुनकर सरस्वती (ब्रह्मा की पुत्री) स्नान आदि करके, हार सिंगार (श्रंगार) करके सुन्दर वस्त्र पहन कर पति प्राप्ति के लिए ब्रह्मा जी की सभा में गई। सर्व देवों को विशेष अदा के साथ देखती हुई चली। उसी समय ब्रह्मा जी अपनी पुत्री के यौवन को देखकर ज्ञान-ध्यान भूलकर अपनी बेटी पर मोहित होकर आसन छोड़कर कामवासना वश होकर सरस्वती की कौली (बाथ भरना - दोनों भुजाओं से दबोच लेना) भर ली। वासना विकार वश होकर दुष्कर्म पर उतारू हुआ ही था कि इतने में भगवान शिव ने ब्रह्मा जी के शिर पर थाप (थप्पड़) मारी और कहा क्या कर रहे हो? ऐसा अपराध! ब्रह्मा यह शरीर त्याग दे नहीं तो कुत्ते की जूनी में जाएगा। उसी समय ब्रह्मा जी योग ध्यान में आया। शरीर त्याग दिया। दुर्गा ने वचन शक्ति से उसी आत्मा को अन्य शरीर में प्रवेश कर दिया जो उसी आयु का शरीर था जो वर्तमान में ब्रह्मा रूप में विराजमान है। अब पाठकजन स्वयं विचार करें फिर आम (साधारण) जीव कैसे ज्ञान योगयुक्त व वासना विकार रहित हो सकता है। यह सब काल (महाविष्णु, ज्योति निरंजन) का जाल है। आदरणीय गरीबदास साहेबजी महाराज कहते हैं :-

गरीब, बीजक की बातां कहैं, बीजक नाहीं हाथ। पंथ्वी डोबन उतरे, कह–2 मीठी बात।।
कहन सुनन की करते बाता। कोई न देखा अमंत खाता।। ब्रह्मा पुत्री देख कर, हो गए डामा डोल।।

***भावार्थ :-** वेदों व गीता के श्लोकों को कंठस्थ करके उच्चारण करके भक्ति मार्ग बताते हैं, परंतु बीजक यानि वेदों व गीता के यथार्थ अर्थ तथा भावार्थ का ज्ञान नहीं है। ये कथित विद्वान बनकर पंथ्वी के सब मानवों को शास्त्रों के विपरित गलत ज्ञान बताकर जीवन नष्ट करने के लिए जन्में हैं। ये केवल बातें बनाते हैं कि हमने परमात्मा प्राप्त कर लिया है, बड़ा आनंद आ रहा है। इन्हें कुछ भी प्राप्त नहीं है। ब्रह्मा जी कितनी बातें बना रहे थे। अपनी ही पुत्री को देखकर डगमग हो गए। तत्वदर्शी संत से ज्ञान समझकर सत्य साधना से सर्व विकार सामान्य हो जाते हैं और मोक्ष भी मिलता है।*

❑❑❑

।।दूसरे अध्याय के अनुवाद सहित श्लोक।।

परमात्मने नमः

अथ द्वितीयोऽध्यायः

अध्याय 2 का श्लोक 1 (संजय उवाच) संजय बोला :-

तं तथा कृपयाविष्टमश्रुपूर्णाकुलेक्षणम्।
विषीदन्तमिदं वाक्यमुवाच मधुसूदनः।१।

तम्, तथा, कपया, आविष्टम्, अश्रु पूर्ण आकुल ईक्षणम्,
विषीदन्तम्, इदम्, वाक्यम्, उवाच, मधुसूदनः।।1।।

अनुवाद : (तथा) और उस प्रकार (कपया) करुणासे (आविष्टम्) व्याप्त और (अश्रु) आँसुओं से (पूर्ण) पूर्ण भरी (आकुल) व्याकुल (ईक्षणम्) नेत्रों वाले (विषीदन्तम्) शोकयुक्त (तम्) मोह रूपी अंधकार में डूबे उस अर्जुनके प्रति (मधुसूदनः) मधुसूदन ने (इदम्) यह (वाक्यम्) वचन (उवाच) कहा। (1) {मधु राक्षस को मारने के कारण श्री कष्ण को मधु सूदन कहा जाता है।}

अध्याय 2 का श्लोक 2 (भगवान उवाच) भगवान बोले :-

कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम्।
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन ।२।

कुतः, त्वा, कश्मलम्, इदम्, विषमे, समुपस्थितम्,
अनार्यजुष्टम्, अस्वर्ग्यम्, अकीर्तिकरम्, अर्जुन।।2।।

अनुवाद : (अर्जुन) हे अर्जुन! (त्वा) तुझे इस (विषमे) दुःखदाई असमयमें (इदम्) यह (कश्मलम्) मोह (कुतः) किस हेतुसे (समुपस्थितम्) प्राप्त हुआ? क्योंकि (अनार्य) यह अश्रेष्ठ पुरुषों का (जुष्टम्) आचरण है (अस्वर्ग्यम्) न स्वर्गको देनेवाला है अपितु (अकीर्तिकरम्) अपकीर्तिको करने वाला ही है। (2)

अध्याय 2 का श्लोक 3

क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप।३।

क्लैब्यम्, मा, स्म, गमः, पार्थ, न, एतत्, त्वयि, उपपद्यते,
क्षुद्रम् हृदयदौर्बल्यम्, त्यक्त्वा, उत्तिष्ठ, परन्तप।।3।।

अनुवाद : (पार्थ) हे अर्जुन! (क्लैब्यम्) नपुंसकताको (मा, स्म, गमः) मत प्राप्त हो (त्वयि) तुझमें (एतत्) यह (न, उपपद्यते) शोभा नहीं देता यानि उचित नहीं जान पड़ती। (परन्तप) हे परंतप! (हृदय) हृदय की (क्षुद्रम) तुच्छ (दौर्बल्यम्) दुर्बलता को (त्यक्त्वा) त्यागकर (उत्तिष्ठ) युद्धके लिये खड़ा हो जा। (3)

अध्याय 2 का श्लोक 4 (अर्जुन उवाच) अर्जुन बोला :-

कथं भीष्ममहं सङ्ख्ये द्रोणं च मधुसूदन।
इषुभिः प्रति योत्स्यामि पूजार्हावरिसूदन ।४।

कथम्, भीष्मम्, अहम्, सङ्ख्ये, द्रोणम्, च, मधुसूदन,
इषुभिः, प्रति, योत्स्यामि, पूजार्हौ, अरिसूदन।।4।।

अनुवाद : (मधुसूदन) हे मधुसूदन! (अहम्) मैं (सङ्ख्ये) रणभूमिमें (कथम्) किस प्रकार (इषुभिः) बाणोंसे (भीष्मम्) भीष्मपितामह (च) और (द्रोणम्) द्रोणाचार्यके (प्रति योत्स्यामि) विरुद्ध लड़ूँगा? क्योंकि (अरिसूदन) हे शत्रु को मारने वाले कष्ण! वे दोनों ही (पूजार्हौ) पूजनीय हैं। (4)

अध्याय 2 का श्लोक 5

गुरूनहत्वा हि महानुभावान्
श्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यमपीह लोके।
हत्वार्थकामांस्तु गुरूनिहैव
भुञ्जीय भोगान् रुधिरप्रदिग्धान्।५।

गुरुन्, अहत्वा, हि, महानुभावान्, श्रेयः, भोक्तुम्,
भैक्ष्यम्, अपि, इह, लोके, हत्वा, अर्थकामान्, तु,
गुरुन्, इह, एव, भु जीय, भोगान्, रुधिरप्रदिग्धान्,।।5।।

अनुवाद : (महानुभावान्) महानुभाव (गुरुन्) गुरुजनोंको (अहत्वा) न मारकर मैं (इह) इस (लोके) लोकमें (भैक्ष्यम्) भिक्षाका अन्न (अपि) भी (भोक्तुम्) खाना (श्रेयः) कल्याणकारक समझता हूँ (हि) क्योंकि (गुरुन्) गुरुजनोंको (हत्वा) मारकर भी (इह) इस लोकमें (रुधिरप्रदिग्धान्) रुधिरसे सने हुए (अर्थकामान्) अर्थ और कामरूप (भोगान् एव) भोगोंको ही (तु) तो (भु जीय) भोगूँगा। (5)

अध्याय 2 का श्लोक 6

न चैतद्विद्मः कतरन्नो गरीयो-
यद्वा जयेम यदि वा नो जयेयुः।
यानेव हत्वा न जिजीविषाम-
स्तेऽवस्थिताः प्रमुखे धार्तराष्ट्राः। ६।

न, च, एतत्, विध्मः, कतरत्, नः, गरीयः, यत्, वा,
जयेम, यदि, वा, नः, जयेयुः, यान् एव, हत्वा, न,
जिजीविषामः, ते, अवस्थिताः, प्रमुखे, धार्तराष्ट्राः।।6।।

अनुवाद : (च) तथा (एतत्) यह (न) नहीं (विध्मः) जानते कि (नः) हमारे लिये युद्ध करना और न करना इन (कतरत्) दोनोंमेंसे कौन-सा (गरीयः) श्रेष्ठ है (यत्, वा) अथवा यह भी नहीं जानते कि (जयेम) उन्हें हम जीतेंगे (यदि, वा) या (नः) हमको वे (जयेयुः) जीतेंगे। और (यान्) जिनको (हत्वा) मारकर हम (न, जिजीविषामः) जीना भी नहीं चाहते (ते) वे (एव) ही (धार्तराष्ट्राः) धतराष्ट्रके पुत्र (प्रमुखे) मुकाबलेमें (अवस्थिताः) खड़े हैं। (6)

अध्याय 2 का श्लोक 7

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः
पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेताः।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे
शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्। ७।

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः, पच्छामि, त्वाम्,
धर्मसम्मूढचेताः, यत्, श्रेयः, स्यात्, निश्चितम्, ब्रूहि,
तत्, मे, शिष्यः, ते, अहम्, शाधि, माम्, त्वाम्, प्रपन्नम्।।7।।

अनुवाद : (कार्पण्य) अर्थात् कायरता (दोष) दोष से (उपहत) ग्रस्त (स्वभाव) स्वभाव वाला तथा (धर्म सम्मूढ चेताः) धर्मके विषयमें मोहितचित्त हुआ मैं (त्वाम्) आपसे (पच्छामि) पूछता हूँ कि (यत्) जो साधन (निश्चितम्) निश्चित (श्रेयः) कल्याणकारक (स्यात्) हो (तत्) वह (मे) मेरे लिए (ब्रूहि) कहिये क्योंकि (अहम्) मैं (ते) आपका (शिष्यः) शिष्य हूँ इसलिए (त्वाम्) आपके (प्रपन्नम्) शरण हुए (माम्) मुझको (शाधि) शिक्षा दीजिये। (7)

अध्याय 2 का श्लोक 8

न हि प्रपश्यामि ममापनुद्याद्
यच्छोकमुच्छोषणमिन्द्रियाणाम्।
अवाप्य भूमावसपत्नमृद्धं-
राज्यं सुराणामपि चाधिपत्यम्। ८ ।

न, हि, प्रपश्यामि, मम, अपनुद्यात्, यत्, शोकम्, उच्छोषणम्, इन्द्रियाणाम्,
अवाप्य, भूमौ, असपत्नम्, ऋद्धम्, राज्यम्, सुराणाम्, अपि,च,आधिपत्यम्।।8।।

अनुवाद : (हि) क्योंकि (भूमौ) भूमिमें (असपत्नम्) निष्कण्टक (ऋद्धम्) धनधान्य-सम्पन्न (राज्यम्) राज्यको (च) और (सुराणाम्) देवताओंके (आधिपत्यम्) स्वामीपनको (अवाप्य) प्राप्त होकर (अपि) भी मैं उस उपाय को (न) नहीं (प्रपश्यामि) देखता हूँ (यत्) जो (मम) मेरी (इन्द्रियाणाम्) इन्द्रियोंके (उच्छोषणम्) सूखानेवाले (शोकम्) शोकको (अपनुद्यात्) समाप्त कर सकें। (8)

भावार्थ :- अर्जुन कह रहा है कि भगवन यदि मुझे सारी पथ्वी का राज्य प्राप्त हो चाहे देवताओं का भी स्वामी अर्थात् इन्द्र पद प्राप्त हो, मैं नहीं देखता हूं कि कोई मुझे युद्ध के लिए तैयार कर सकता है अर्थात् मैं युद्ध नहीं करूंगा, ऐसे कह कर चुप हो गया।

अध्याय 2 का श्लोक 9

एवमुक्त्वा हृषीकेशं गुडाकेशः परन्तप।
न योत्स्य इति गोविन्दमुक्त्वा तूष्णीं बभूव ह। ९ ।

एवम्, उक्त्वा, हृषीकेशम्, गुडाकेशः, परन्तप,
न, योत्स्ये, इति, गोविन्दम्, उक्त्वा, तूष्णीम्, बभूव, ह।।9।।

अनुवाद : (परन्तप) हे राजन्! (गुडाकेशः) निद्राको जीतनेवाले अर्जुन (हृषीकेशम्) अन्तर्यामी श्रीकष्ण महाराजके प्रति (एवम्) इस प्रकार (उक्त्वा) कहकर फिर (गोविन्दम्) श्रीगोविन्द भगवान्से (न, योत्स्ये) युद्ध नहीं करूँगा (इति) यह (ह) स्पष्ट (उक्त्वा) कहकर (तूष्णीम्) चुप (बभूव) हो गये। (9)

अध्याय 2 का श्लोक 10

तमुवाच हृषीकेशः प्रहसन्निव भारत।
सेनयोरुभयोर्मध्ये विषीदन्तमिदं वचः।१०।

तम्, उवाच, हृषीकेशः, प्रहसन्, इव, भारत,
सेनयोः, उभयोः, मध्ये, विषीदन्तम्, इदम्, वचः।।10।।

अनुवाद : (भारत) हे भरतवंशी धतराष्ट्र! (हृषीकेशः) अन्तर्यामी श्रीकष्ण महाराज (उभयोः) दोनों (सेनयोः) सेनाओंके (मध्ये) बीचमें (विषीदन्तम्) शोक करते हुए (तम्) उस अर्जुनको (प्रहसन्, इव) हँसते हुए से (इदम्) यह (वचः) वचन (उवाच) बोले। (10)

अध्याय 2 का श्लोक 11 भगवान उवाच- भगवान बोले

अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे।
गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः।११।

अशोच्यान्, अन्वशोचः, त्वम्, प्रज्ञावादान्, च, भाषसे,
गतासून्, अगतासून्, च, न, अनुशोचन्ति, पण्डिताः।।11।।

अनुवाद : (त्वम्) तू (अशोच्यान्) न शोक करने योग्य मनुष्योंके लिये (अन्वशोचः) शोक करता है (च) और (प्रज्ञावादान्) पण्डितों के से वचनों को (भाषसे) कहता है परंतु (गतासून्) जिनके प्राण चले गये हैं उनके लिये (च) और (अगतासून्) जिनके प्राण नहीं गये हैं उनके लिए भी (पण्डिताः) पण्डितजन (न, अनुशोचन्ति) शोक नहीं करते। (11)

अध्याय 2 का श्लोक 12

न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः।
न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम्।१२।

न, तु, एव, अहम्, जातु, न, आसम्, न, त्वम्, न, इमे, जनाधिपाः,
न, च, एव, न, भविष्यामः, सर्वे, वयम्, अतः, परम्।।12।।

अनुवाद : (न) न (तु) तो ऐसा (एव) ही है कि (अहम्) मैं (जातु) किसी कालमें (न) नहीं (आसम्) था अथवा (त्वम्) तू (न) नहीं था अथवा (इमे) ये (जन अधिपाः) राजालोग (न) नहीं थे (च) और (न) न ऐसा (एव) ही है कि (अतः) इससे (परम्) आगे (वयम्) हम (सर्वे) सब (न) नहीं (भविष्यामः) रहेंगे। (12)

अध्याय 2 का श्लोक 13

देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति।१३।

देहिनः, अस्मिन्, यथा, देहे, कौमारम्, यौवनम्, जरा,
तथा, देहान्तरप्राप्तिः, धीरः, तत्र, न, मुह्यति।।13।।

अनुवाद : (यथा) जैसे (देहिनः) जीवात्मा की (अस्मिन्) इस (देहे) देह में (कौमारम्) बालकपन (यौवनम्) जवानी और (जरा) वद्धावस्था होती है (तथा) वैसे ही (देह-अन्तर) अन्य शरीर की (प्राप्तिः) प्राप्ति होती है (तत्र) उस विषयमें (धीरः) धीर पुरुष (न, मुह्यति) मोहित नहीं होता। (13)

अध्याय 2 का श्लोक 14

मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुःखदाः।
आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत।१४।

मात्रास्पर्शाः, तु, कौन्तेय, शीतोष्णसुखदुःखदाः,
आगमापायिनः, अनित्याः, तान्, तितिक्षस्व, भारत।।14।।

अनुवाद : (कौन्तेय) हे कुन्तीपुत्र! (शीत) सर्दी (उष्ण) गर्मी और (सुख) सुख (दुःख) दुःख को देने वाले (मात्रास्पर्शाः) इन्द्रिय और विषयों के संयोग (तु) तो (आगम) आना (अपायिनः) जाना यानि उत्पत्ति विनाशशील और (अनित्याः) अनित्य हैं इसलिए (भारत) हे भारत! (तान्) उनको तू (तितिक्षस्व) सहन कर।(14)

अध्याय 2 का श्लोक 15

यं हि न व्यथयन्त्येते पुरुषं पुरुषर्षभ।
समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते।१५।

यम्, हि, न, व्यथयन्ति, एते, पुरुषम्, पुरुषर्षभ,
समदुःखसुखम्, धीरम्, सः, अमतत्वाय, कल्पते।।15।।

अनुवाद : (हि) क्योंकि (पुरुषर्षभ) हे पुरुषश्रेष्ठ! (समदुःखसुखम्) दुःख-सुखको समान समझनेवाले (यम्) जिस(धीरम्) धीर अर्थात् तत्वदर्शी (पुरुषम्) पुरुषको (एते) ये (न व्यथयन्ति) व्याकुल नहीं करते (सः) वह (अमतत्वाय) पूर्ण परमात्मा के आनन्द के (कल्पते) योग्य होता है।(15)

अध्याय 2 का श्लोक 16

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः।१६।

न, असतः, विद्यते, भावः, न, अभावः, विद्यते, सतः,
उभयोः, अपि, दष्टः, अन्तः, तु, अनयोः, तत्त्वदर्शिभिः।।16।।

अनुवाद : (असतः) असत् वस्तु की तो (भावः) सत्ता (न) नहीं (विद्यते) जानी जाती (तु) और (सतः) सत्का (अभावः) अभाव (न) नहीं (विद्यते) जाना जाता इस प्रकार (अनयोः) इन (उभयोः) दोनों की (अपि) भी (अन्तः) निष्कर्ष यानि वास्तविकता को (तत्त्वदर्शिभिः) तत्वज्ञानी अर्थात् तत्वदर्शी संतों द्वारा (दष्टः) देखा गया है। (इसी का प्रमाण गीता अध्याय 4 श्लोक 34 में है)।(16)

अध्याय 2 का श्लोक 17

अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम्।
विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति।१७।

अविनाशि, तु, तत्, विद्धि, येन्, सर्वम्, इदम्, ततम्,
विनाशम्, अव्ययस्य, अस्य, न, कश्चित्, कर्तुम्, अर्हति।।17।।

अनुवाद : (अविनाशि) नाशरहित (तु) तो तू (तत्) उस परमेश्वर को (विद्धि) जान (येन्) जिससे (इदम्) यह (सर्वम्) सम्पूर्ण जगत् दश्यवर्ग (ततम्) व्याप्त है। (अस्य) इस (अव्ययस्य) अविनाशीका (विनाशम्) विनाश (कर्तुम्) करनेमें (कश्चित) कोई भी (न, अर्हति) समर्थ नहीं है।।(यही प्रमाण गीता अध्याय 18 श्लोक 46,61,62, अध्याय 15 श्लोक 4 तथा 17 में भी है।)(17)

अध्याय 2 का श्लोक 18

अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः।
अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युध्यस्व भारत।१८।

अन्तवन्तः, इमे, देहाः, नित्यस्य, उक्ताः, शरीरिणः,
अनाशिनः, अप्रमेयस्य, तस्मात्, युध्यस्व, भारत।।18।।

अनुवाद : (इमे) ये (देहाः) पंच भौतिक शरीर (अन्तवन्तः) नाशवान् है (शरीरिणः) अविनाशी परमात्मा जो आत्मा सहित शरीर में नित्य रहता है। (अप्रमेयस्य) साधारण साधक पूर्ण परमात्मा व आत्मा के अभेद सम्बन्ध से अपरिचित है इसलिए प्रमाण रहित को (नित्यस्य) आत्मा के साथ नित्य रहने वाला (अनाशिनः) अविनाशी (उक्ताः) कहा गया हैं। (तस्मात्) इसलिये (भारत) हे भरतवंशी अर्जुन! (युध्यस्व) युद्ध कर। (18)

भावार्थ :- परमात्मा की निराकार शक्ति आत्मा के साथ ऐसे जानों जैसे मोबाइल फोन रेंज से ही कार्य करता है। टॉवर एक स्थान पर होते हुए भी अपनी रेंज से अपने क्षेत्र वाले मोबाईल फोन के साथ अभेद है। इसको वही समझ सकता है जो मोबाईल फोन रखता है। इसी प्रकार परमात्मा अपने निज स्थान सत्यलोक में रहता है या जहाँ भी आता जाता है अपनी निराकार शक्ति की रेंज को उसी तरह प्रत्येक ब्रह्मण्ड के प्रत्येक प्राणी व स्थान अर्थात् जड़ व चेतन पर फैलाए रहता है। जैसे सूर्य दूर स्थान पर रहते हुए भी अपना प्रकाश व अदृश्य उष्णता (गर्मी) को अपने क्षमता क्षेत्र सर्व ब्रह्मण्डों पर कण-कण में फैलाए रहता है। इसी प्रकार परमात्मा के शरीर से निकल रहा प्रकाश व अदृश्य शक्ति सर्व जड़ व चेतन को संभाले हुए है।

अध्याय 2 का श्लोक 19

य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम्।
उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते।१९।

यः, एनम्, वेत्ति, हन्तारम्, यः, च, एनम्, मन्यते, हतम्,
उभौ तौ, न, विजानीतः, न, अयम्, हन्ति, न, हन्यते।।19।।

अनुवाद : (यः) जो (एनम्) इसको (हन्तारम्) मारनेवाला (वेत्ति) समझता है (च) तथा (यः) जो (एनम्) इसको (हतम्) मरा (मन्यते) मानता है (तौ) वे (उभौ) दोनों ही (न) नहीं (विजानीतः) जानते क्योंकि (अयम्) वह वास्तवमें (न) न तो किसीको (हन्ति) मारता है और (न) न किसीके द्वारा (हन्यते) मारा जाता है। (19)

भावार्थ :- पूर्ण ब्रह्म का अभेद सम्बन्ध होने से यानि परमात्मा वाले गुण से युक्त होने से आत्मा मरती नहीं तथा पूर्ण प्रभु दयालु है वह किसी को मारता नहीं। जो कहे कि आत्मा मरती है व पूर्ण परमात्मा किसी को मारता है, वे दोनों ही अज्ञानी हैं।

विशेष :- आत्मा परमात्मा द्वारा उत्पन्न की गई है। इसलिए उसका अंश होने से परमात्मा वाला अविनाशी गुण युक्त तो है, परंतु परमात्मा जितना समर्थ नहीं है। जैसे गंगा दरिया का बोतल वाला जल गंगा जैसा तो है, परंतु गंगा जितना नहीं है।

अध्याय 2 का श्लोक 20

न जायते म्रियते वा कदाचि-
न्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो-
न हन्यते हन्यमाने शरीरे।२०।

न, जायते, म्रियते, वा, कदाचित्, न, अयम्, भूत्वा, भविता, वा, न,
भूयः, अजः, नित्यः, शाश्वतः, अयम्, पुराणः, न, हन्यते, हन्यमाने, शरीरे।।20।।

अनुवाद : (अयम्) यह (कदाचित्) किसी कालमें भी (न) न तो (जायते) जन्मता है (वा) और (न) न (म्रियते) मरता ही है (वा) तथा (न) न यह (भूत्वा) उत्पन्न होकर (भूयः) फिर (भविता) होनेवाला ही है क्योंकि (अयम्) यह (अजः) अजन्मा (नित्यः) नित्य (शाश्वतः) सनातन और (पुराणः) पुरातन है (शरीरे) शरीरके (हन्यमाने) मारे जानेपर भी यह (न) नहीं (हन्यते) मारा जाता। (20)

भावार्थ :- इस श्लोक नं. 20 में परमात्मा की महिमा बताई है। परमात्मा जन्म-मरण में कभी नहीं आता। अनादि है, शाश्वत है। शरीर समाप्त होने पर भी नहीं मरता। आत्मा भी परमात्मा की शक्ति से नहीं मरती।

अध्याय 2 का श्लोक 21

वेदाविनाशिनं नित्यं य एनमजमव्ययम्।
कथं स पुरुषः पार्थ कं घातयति हन्ति कम्।२१।

वेद, अविनाशिनम्, नित्यम्, यः, एनम्, अजम्, अव्ययम्,
कथम्, सः, पुरुषः, पार्थ, कम्, घातयति, हन्ति, कम्।।21।।

अनुवाद : (पार्थ) हे पथापुत्र अर्जुन! (यः) जो व्यक्ति (एनम्) इस आत्म सहित परमात्मा को (अविनाशिनम्) नाशरहित (नित्यम्) नित्य (अजम्) अजन्मा और (अव्ययम्) अविनाशी (वेद) जानता है (सः) वह (पुरुषः) व्यक्ति (कम्) किसको (घातयति) मरवाता है और (कथम्) कैसे (कम्) किसको (हन्ति) मारता है?

(अध्याय 2 श्लोक 22-23 में जीवात्मा की स्थिति बताई है।)(21)

अध्याय 2 का श्लोक 22

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही।२२।

वासांसि, जीर्णानि, यथा, विहाय, नवानि, गह्णतिः, नरः, अपराणि,
तथा, शरीराणि, विहाय, जीर्णानि, अन्यानि, संयाति, नवानि, देही।।22।।

अनुवाद : (यथा) जैसे (नरः) मनुष्य (जीर्णानि) जीर्ण हुए पुराने (वासांसि) वस्त्रोंको (विहाय) त्यागकर (अपराणि) दूसरे (नवानि) नये वस्त्रोंको (गह्णतिः) ग्रहण करता है (तथा) वैसे ही (देही) देहधारी जीवात्मा (जीर्णानि) पुराने (शरीराणि) शरीरोंको (विहाय) त्यागकर (अन्यानि) दूसरे (नवानि) नये शरीरोंको (संयाति) प्राप्त होता है। (22)

अध्याय 2 का श्लोक 23

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः। २३।

न, एनम्, छिन्दन्ति, शस्त्राणि, न, एनम्, दहति, पावकः,
न, च, एनम्, क्लेदयन्ति, आपः, न, शोषयति, मारुतः।।23।।

अनुवाद : (एनम्) इस आत्मा को (शस्त्राणि) शस्त्र (न) नहीं (छिन्दन्ति) काट सकते, (एनम्) इसको (पावकः) आग (न) नहीं (दहति) जला सकती, (एनम्) इसको (आपः) जल (न) नहीं (क्लेदयन्ति) गला सकता (च) और (मारुतः) वायु (न) नहीं (शोषयति) सूखा सकती। (23)

अध्याय 2 का श्लोक 24

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः। २४।

अच्छेद्यः, अयम्, अदाह्यः, अयम्, अक्लेद्यः, अशोष्यः, एव, च,
नित्यः, सर्वगतः, स्थाणुः, अचलः, अयम्, सनातनः।।24।।

अनुवाद : (अयम्) यह (अच्छेद्यः) अच्छेद्य है (अयम्) यह परमात्मा (अदाह्यः) अदाह्य (अक्लेद्यः) अक्लेद्य (च) और (एव) निःसंदेह (अशोष्यः) अशोष्य है तथा (अयम्) यह परमात्मा (नित्यः) नित्य (सर्वगतः) सर्वव्यापी (अचलः) अचल (स्थाणुः) स्थिर रहनेवाला और (सनातनः) सनातन है। (24)

अध्याय 2 का श्लोक 25

अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते।
तस्मादेवं विदित्वैनं नानुशोचितुमर्हसि। २५।

अव्यक्तः, अयम्, अचिन्त्यः, अयम्, अविकार्यः, अयम्, उच्यते,
तस्मात्, एवम्, विदित्वा, एनम्, न, अनुशोचितुम्, अर्हसि।।25।।

अनुवाद : (अयम्) यह परमात्मा इस आत्मा के साथ (अव्यक्तः) गुप्त रहता है (अयम्) यह (अचिन्त्यः) अचिन्त्य है और (अयम्) यह (अविकार्यः) विकाररहित (उच्यते) कहा जाता है। (तस्मात्) इससे हे अर्जुन! (एनम्) इस परमात्मा को (एवम्) इस प्रकारसे (विदित्वा) जानकर तू (अनुशोचितुम्) शोक करनेके (न, अर्हसि) योग्य नहीं है अर्थात् तुझे शोक करना उचित नहीं है। भावार्थ है कि जब परमात्मा जीव के साथ है तो जीव का अहित नहीं होता। (25)

अध्याय 2 का श्लोक 26

अथ चैनं नित्यजातं नित्यं वा मन्यसे मृतम्।
तथापि त्वं महाबाहो नैवं शोचितुमर्हसि। २६।

अथ, च, एनम्, नित्यजातम्, नित्यम्, वा, मन्यसे, मतम्,
तथापि त्वम्, महाबाहो, न, एवम्, शोचितुम्, अर्हसि।।26।।

अनुवाद : (च) और (अथ) यदि इसके बाद (त्वम्) तू (एनम्) इन्हें (नित्यजातम्) सदा जन्मनेवाला (वा) या (नित्यम्) सदा (मतम्) मरनेवाला (मन्यसे) मानता है (तथापि) तो भी (महाबाहो) हे महाबाहो! तू (एवम्) इस प्रकार (शोचितुम्) शोक करने को (न, अर्हसि) योग्य नहीं है। जिसे मरना है वह तो मरेगा ही, आज नहीं तो कल। (26)

अध्याय 2 का श्लोक 27

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि।२७।

जातस्य, हि, ध्रुवः, मत्युः, ध्रुवम्, जन्म, मतस्य, च,
तस्मात्, अपरिहार्ये, अर्थे, न, त्वम्, शोचितुम्, अर्हसि।।27।।

अनुवाद : (हि) क्योंकि (जातस्य) जन्मे हुएकी (मत्युः) मत्यु (ध्रुवः) निश्चित है (च) और (मतस्य) मरे हुएका (जन्म) जन्म (ध्रुवम्) निश्चित है। (तस्मात्) इससे भी इस (अपरिहार्ये) बिना उपायवाले (अर्थे) विषयमें (त्वम्) तू (शोचितुम्) शोक करनेके (न, अर्हसि) योग्य नहीं है (27)

विशेष :- इसी तथ्य का समर्थन गीता अध्याय 2 श्लोक 12,22, अध्याय 4 श्लोक 5, अध्याय 10 श्लोक 2 में भी है। गीता ज्ञान बोलने वाले काल ब्रह्म ने कहा है कि हे अर्जुन! तेरे और मेरे बहुत जन्म हो चुके हैं। तू नहीं जानता, मैं जानता हूँ। तू, मैं और ये राजा व सेना के लोग पहले भी जन्मे थे, आगे भी जन्मेंगे, वर्तमान में भी जन्मे हैं। गीता अध्याय 2 श्लोक 22 में स्पष्ट कर दिया है कि यह विधान है कि मत्यु के पश्चात् जीवात्मा इस शरीर को उस समय छोड़ती है जब उसका अन्य शरीर में जाना तय हो जाता है। उदाहरण भी दिया है कि जैसे व्यक्ति फटे-पुराने वस्त्र को त्यागकर नए वस्त्र धारण करता है, ऐसे ही जीवात्मा वद्ध शरीर त्यागकर नया शरीर प्राप्त करती है। कुछ गीता प्रवक्ता उदाहरण भी देते हैं कि एक कीट एक टहनी से दूसरी पर जाता है तो पहले अगले पैर से टहनी को दढ़ता से पकड़कर फिर पिछली टहनी को छोड़ता है यानि पिछले पैर उठाता है। इस अध्याय 2 के श्लोक 27 में भी वही विधान दोहराया है।

अध्याय 2 का श्लोक 28

अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत।
अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना।२८।

अव्यक्तादीनि, भूतानि, व्यक्तमध्यानि, भारत,
अव्यक्तनिधनानि, एव, तत्र, का, परिदेवना।।28।।

अनुवाद : (भारत) हे अर्जुन! (भूतानि) सम्पूर्ण प्राणी (अव्यक्तादीनि) जन्मसे पहले अप्रकट थे और (अव्यक्त निधनानि, एव) मरनेके बाद भी अप्रकट हो जानेवाले हैं केवल (व्यक्तमध्यानि) बीच में ही प्रकट हैं फिर (तत्र) ऐसी स्थितिमें (का) क्या (परिदेवना) शोक करना है?(28)

अध्याय 2 का श्लोक 29

आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेन-
माश्चर्यवद्वदति तथैव चान्यः।
आश्चर्यवच्चैनमन्यः शृणोति
श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित्।२९।

आश्चर्यवत्, पश्यति, कश्चित्, एनम्, आश्चर्यवत्,
वदति, तथा, एव, च, अन्यः, आश्चर्यवत्, च, एनम्, अन्यः,
श्रणोति, श्रुत्वा, अपि, एनम्, वेद, न, च, एव, कश्चित्।।29।।

अनुवाद : (कश्चित्) कोई एक ही (एनम्) इस परमात्मा सहित आत्मा को (आश्चर्यवत्) आश्चर्य की भाँति (पश्यति) देखता है (च) और (तथा) वैसे (एव) ही (अन्यः) दूसरा कोई महापुरुष

ही (आश्चर्यवत्) आर्श्चयकी भाँति (वदति) वर्णन करता है (च) तथा (अन्यः) दूसरा (एनम्) इसे (आश्चर्यवत्) आर्श्चय की भाँति (श्रणोति) सुनता है (च) और (कश्चित्) कोई (श्रुत्वा) सुनकर (अपि) भी (एनम्) इसको (न, एव) नहीं (वेद) जानता यानि इस गूढ़ रहस्य को नहीं समझ पाता।(29)

अध्याय 2 का श्लोक 30

देही नित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत।
तस्मात्सर्वाणि भूतानि न त्वं शोचितुमर्हसि। ३०।

देही, नित्यम्, अवध्यः, अयम्, देहे, सर्वस्य, भारत,
तस्मात्, सर्वाणि, भूतानि, न, त्वम्, शोचितुम्, अर्हसि।।30।।

अनुवाद : (भारत) हे अर्जुन! (अयम्) यह (देही) जीवाआत्मा परमात्मा के साथ (सर्वस्य) सबके (देहे) शरीरोंमें (नित्यम्) सदा ही (अवध्यः) अविनाशी है (तस्मात्) इस कारण (सर्वाणि) सम्पूर्ण (भूतानि) प्राणियोंके लिये (त्वम्) तू (शोचितुम्) शोक करनेको (न, अर्हसि) योग्य नहीं है।(30)

अध्याय 2 का श्लोक 31

स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकम्पितुमर्हसि।
धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत्क्षत्रियस्य न विद्यते। ३१।

स्वधर्मम्, अपि, च, अवेक्ष्य, न, विकम्पितुम्, अर्हसि,
धर्म्यात्, हि, युद्धात्, श्रेयः, अन्यत्, क्षत्रियस्य, न, विद्यते।।31।।

अनुवाद : (च) तथा (स्वधर्मम्) अपनी शास्त्र अनुकूल धार्मिक पूजाओं को (अवेक्ष्य) देखकर (अपि) भी तू (विकम्पितुम्) भय करने (न,अर्हसि) योग्य नहीं है (हि) क्योंकि (क्षत्रियस्य) क्षत्रियके लिये (धर्म्यात्) धर्मयुक्त (युद्धात्) युद्धसे बढ़कर (अन्यत्) दूसरा कोई (श्रेयः) कल्याणकारी कर्तव्य (न) नहीं (विद्यते) जाना जाता है। (31)

विशेष :- गीताप्रैस गोरखपुर से प्रकाशित गीता अध्याय 10 श्लोक 17 में विद्याम का अर्थ जानना अर्थात् जानूँ किया है। इसलिए विधाम का अर्थ जाना जाता है, करना गलत नहीं है।

अध्याय 2 का श्लोक 32

यदृच्छया चोपपन्नं स्वर्गद्वारमपावृतम्।
सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभन्ते युद्धमीदृशम्। ३२।

यदच्छया, च, उपपन्नम्, स्वर्गद्वारम्, अपावतम्,
सुखिनः, क्षत्रियाः, पार्थ, लभन्ते, युद्धम्, ईदशम्।।32।।

अनुवाद : (पार्थ) हे पार्थ! (यदच्छया) अपने-आप (उपपन्नम्) प्राप्त हुए (च) और (अपावतम्) खुले हुए (स्वर्गद्वारम्) स्वर्गके द्वाररूप (ईदशम्) इस प्रकारके (युद्धम्) युद्धको (सुखिनः) भाग्यवान् (क्षत्रियाः) क्षत्रियलोग ही (लभन्ते) पाते हैं। (32)

अध्याय 2 का श्लोक 33

अथ चेत्त्वमिमं धर्म्यं सङ्ग्रामं न करिष्यसि।
ततः स्वधर्मं कीर्तिं च हित्वा पापमवाप्स्यसि। ३३।

अथ, चेत्, त्वम्, इमम्, धर्म्यम्, सङ्ग्रामम्, न, करिष्यसि,
ततः, स्वधर्मम्, कीर्तिम्, च, हित्वा, पापम्, अवाप्स्यसि।।33।।

अनुवाद : (अथ) किंतु (त्वम्) तू (इमम्) इस (धर्म्यम्) धार्मिकता युक्त (चेत्) ज्ञान के आधार से (सङ्ग्रामम्) युद्धको (न) नहीं (करिष्यसि) करेगा (ततः) वही (स्वधर्मम्) स्वधर्म (च) और (कीर्तिम्) कीर्तिको (हित्वा) खोकर (पापम्) पापको (अवाप्स्यसि) प्राप्त होगा। (33)

अध्याय 2 का श्लोक 34

अकीर्तिं चापि भूतानि
कथयिष्यन्ति तेऽव्ययाम्।
सम्भावितस्य चाकीर्ति-
र्मरणादतिरिच्यते ।३४।

अकीर्तिम्, च, अपि, भूतानि, कथयिष्यन्ति, ते, अव्ययाम्,
सम्भावितस्य, च, अकीर्तिः, मरणात्, अतिरिच्यते।।34।।

अनुवाद : (च) तथा (भूतानि) सब लोग (ते) तेरी (अव्ययाम्) बहुत कालतक रहनेवाली (अकीर्तिम्) अपकीर्तिका (अपि) भी (कथयिष्यन्ति) कथन करेंगे (च) और (सम्भावितस्य) माननीय पुरुष के लिये (अकीर्तिः) अपकीर्ति (मरणात्) मरणसे भी (अतिरिच्यते) बढ़कर है। (34)

अध्याय 2 का श्लोक 35

भयाद्रणादुपरतं मंस्यन्ते त्वां महारथाः।
येषां च त्वं बहुमतो भूत्वा यास्यसि लाघवम्।३५।

भयात्, रणात्, उपरतम्, मंस्यन्ते, त्वाम्, महारथाः,
येषाम्, च, त्वम्, बहुमतः, भूत्वा, यास्यसि, लाघवम्।।35।।

अनुवाद : (च) और (येषाम्) जिनकी दष्टिमें (त्वम्) तू पहले (बहुमतः) बहुत सम्मानित (भूत्वा) होकर अब (लाघवम्) लघुताको (यास्यसि) प्राप्त होगा वे (महारथाः) महारथी लोग (त्वाम्) तुझे (भयात्) भयके कारण (रणात्) युद्धसे (उपरतम्) हटा हुआ (मंस्यन्ते) मानेंगे। (35)

अध्याय 2 का श्लोक 36

अवाच्यवादांश्च बहून्वदिष्यन्ति तवाहिताः।
निन्दन्तस्तव सामर्थ्यं ततो दुःखतरं नु किम्।३६।

अवाच्यवादान्, च, बहून्, वदिष्यन्ति, तव, अहिताः,
निन्दन्तः, तव, सामर्थ्यम्, ततः, दुःखतरम्, नु, किम्।।36।।

अनुवाद : (तव) तेरे (अहिताः) वैरी लोग (तव) तेरे (सामर्थ्यम्) सामर्थ्यकी (निन्दन्तः) निन्दा करते हुए तुझे (बहून्) बहुत-से (अवाच्यवादान्) न कहने योग्य वचन (च) भी (वदिष्यन्ति) कहेंगे (ततः) उससे (दुःखतरम्) अधिक दुःख (नु) और (किम्) क्या होगा?। (36)

अध्याय 2 का श्लोक 37

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः।३७।

हतः, वा, प्राप्स्यसि, स्वर्गम्, जित्वा, वा, भोक्ष्यसे, महीम्,
तस्मात्, उत्तिष्ठ, कौन्तेय, युद्धाय, कतनिश्चयः।।37।।

अनुवाद : (वा) या तो तू युद्धमें (हतः) मारा जाकर (स्वर्गम्) स्वर्गको (प्राप्स्यसि) प्राप्त होगा (वा) अथवा संग्राममें (जित्वा) जीतकर (महीम्) पथ्वीका राज्य (भोक्ष्यसे) भोगेगा। (तस्मात्) इस कारण (कौन्तेय) हे अर्जुन! तू (युद्धाय) युद्धके लिये (कतनिश्चयः) निश्चय करके (उत्तिष्ठ) खड़ा हो जा। (37)

अध्याय 2 का श्लोक 38

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि। ३८।

सुखदुःखे, समे, कत्वा, लाभालाभौ, जयाजयौ,
ततः, युद्धाय, युज्यस्व, न, एवम्, पापम्, अवाप्स्यसि।।38।।

अनुवाद : (जयाजयौ) जय-पराजय (लाभ अलाभौ) लाभ-हानि और (सुखदुःखे) सुख-दुःखको (समे) समान (कत्वा) समझकर (ततः) उसके बाद (युद्धाय) युद्धके लिये (युज्यस्व) तैयार हो जा (एवम्) इस प्रकार (पापम्) पापको (न) नहीं (अवाप्स्यसि) प्राप्त होगा। (38)

अध्याय 2 का श्लोक 39

एषा तेऽभिहिता साङ्ख्ये
बुद्धिर्योगे त्विमां शृणु।
बुद्ध्या युक्तो यया पार्थ
कर्मबन्धं प्रहास्यसि। ३९।

एषा, ते, अभिहिता, साङ्ख्ये, बुद्धिः, योगे, तु, इमाम्, श्रणु,
बुद्धया, युक्तः, यया, पार्थ, कर्मबन्धम्, प्रहास्यसि।।39।।

अनुवाद : (पार्थ) हे पार्थ! (एषा) यह (बुद्धिः) ज्ञानवाणी (ते) तेरे लिये (साङ्ख्ये) ज्ञानयोगके विषयमें (अभिहिता) कही गयी (तु) और अब तू (इमाम्) इसको (योगे) योगके विषयमें (श्रणु) सुन (यया) जिस (बुद्धया) बुद्धिसे (युक्तः) युक्त हुआ तू (कर्मबन्धम्) कर्मोके बन्धनको (प्रहास्यसि) भलीभाँति त्याग देगा यानी सर्वथा नष्ट कर डालेगा। गीता अध्याय 6 श्लोक 46 में कहा है कि ज्ञान योगियों और कर्मयोगियों से तत्वदर्शी सन्त अर्थात् योगी श्रेष्ठ है। गीता अध्याय 5 श्लोक 2 में शास्त्रविरूद्ध ज्ञान योगी अर्थात् सन्यासी तथा कर्मयोगी दोनों को ही अश्रेष्ठ कहा है। (39)

अध्याय 2 का श्लोक 40

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्। ४०।

न, इह, अभिक्रमनाशः, अस्ति, प्रत्यवायः, न, विद्यते,
स्वल्पम्, अपि, अस्य, धर्मस्य, त्रायते, महतः, भयात्।।40।।

अनुवाद : (इह) इस योगमें (अभिक्रमनाशः) आरम्भका अर्थात् बीजका नाश (न) नहीं (अस्ति) है और (प्रत्यवायः) उलटा फलरूप दोष भी (न) नहीं (विद्यते) जानते बल्कि (अस्य) इस योगरूप (धर्मस्य) धर्मका (स्वल्पम्) थोड़ा-सा भक्ति धन (अपि) भी (महतः) महान् (भयात्) भयसे (त्रायते) रक्षा कर लेता है। (40)

अध्याय 2 का श्लोक 41

व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनन्दन।
बहुशाखा ह्यनन्ताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम्। ४१।

व्यवसायात्मिका, बुद्धिः, एका, इह, कुरुनन्दन,
बहुशाखाः, हि, अनन्ताः, च, बुद्धयः, अव्यवसायिनाम्।।41।।

अनुवाद : (कुरुनन्दन) हे अर्जुन! (इह) इस योगमें (व्यवसायात्मिका) निश्चयात्मिका (बुद्धिः) बुद्धि व ज्ञान वाणी (एका) एक ही होती है किंतु (अव्यवसायिनाम्) अस्थिर विचारवाले विवेकहीन सकाम मनुष्योंकी (बुद्धयः) बुद्धियाँ अर्थात् ज्ञान विचार धाराऐं (हि) निश्चय ही (बहुशाखाः) बहुत भेदोंवाली (च) और (अनन्ताः) अनन्त होती है। (41)

अध्याय 2 का श्लोक 42-43-44

यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदन्त्यविपश्चितः।
वेदवादरताः पार्थ नान्यदस्तीति वादिनः। ४२।

याम्, इमाम्, पुष्पिताम्, वाचम्, प्रवदन्ति, अविपश्चितः,
वेदवादरताः, पार्थ, न, अन्यत्, अस्ति, इति, वादिनः।।42।।

कामात्मानः स्वर्गपरा जन्मकर्मफलप्रदाम्।
क्रियाविशेषबहुलां भोगैश्वर्यगतिं प्रति। ४३।

कामात्मानः, स्वर्गपराः, जन्मकर्मफलप्रदाम्,
क्रियाविशेषबहुलाम्, भोगैश्वर्यगतिम्, प्रति।।43।।

भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयापहृतचेतसाम्।
व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते। ४४।

भोगैश्वर्यप्रसक्तानाम्, तया, अपहृतचेतसाम्,
व्यवसायात्मिका, बुद्धिः, समाधौ, न, विधीयते।।44।।

अनुवाद : (पार्थ) हे अर्जुन! (कामात्मानः) जो भोगों में तन्मय हो रहे हैं (वेदवादरताः) वेद वाक्यों में ही प्रीति रखते हैं (स्वर्गपराः) जिनकी बुद्धिमें स्वर्ग ही परम प्राप्य वस्तु है (अन्यत्) दूसरी (न) नहीं (अस्ति) है (इति) ऐसा (वादिनः) कहनेवाले हैं (अविपश्चितः) वे अविवेकीजन (इमाम्) इस प्रकारकी (याम्) जिस (पुष्पिताम्) पुष्पित यानी दिखाऊ शोभायुक्त (वाचम्) वाणीको (प्रवदन्ति) कहा करते हैं (जन्मकर्मफलप्रदाम्) जन्मरूप कर्मफल देनेवाली (भोगैश्वर्यगतिम् प्रति) भोग तथा ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए (क्रियाविशेषबहुलाम्) बहुत-सी क्रियाओंको वर्णन करनेवाली है। (तया) उस वाणीद्वारा (अपहृतचेतसाम्) जिनका चित्त हर लिया गया है। (भोगैश्वर्यप्रसक्तानाम्) जो भोग और ऐश्वर्यमें अत्यन्त आसक्त हैं, उन पुरुषोंकी (समाधौ) परमात्मा के चिन्तन में (व्यवसायात्मिका) निश्चयात्मिका (बुद्धिः) बुद्धि (न) नहीं (विधीयते) जान पड़ती। (42-43-44)

अध्याय 2 का श्लोक 45

त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन।
निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान्। ४५।

त्रैगुण्यविषयाः, वेदाः, निस्त्रैगुण्यः, भव, अर्जुन,
निर्द्वन्द्वः, नित्यसत्त्वस्थः, निर्योगक्षेमः, आत्मवान्।।45।।

अनुवाद : (अर्जुन) हे अर्जुन! (त्रैगुण्यविषयाः) तीनों गुणों अर्थात् रजगुण-ब्रह्मा, सतगुण विष्णु, तमगुण शिव से प्राप्त होने वाले कर्म फल के भोगों के (वेदाः) ज्ञान से (निस्त्रैगुण्यः) तीनों गुणों से ऊपर उठ कर (निर्द्वन्द्वः) हर्ष-शोकादि द्वन्द्वोंसे रहित (नित्यसत्त्वस्थः) नित्यवस्तु सत्यपुरूष अर्थात् पूर्ण परमात्मामें स्थित (निर्योगक्षेमः) योग क्षेमको अर्थात् भक्ति के प्रतिफल में संसारिक सुख न चाहनेवाला (आत्मवान्) आत्म विश्वासी (भव) हो। (45)

अध्याय 2 का श्लोक 46

यावानर्थ उदपाने सर्वतः सम्प्लुतोदके।
तावान्सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः।४६।

यावान्, अर्थः, उदपाने, सर्वतः, सम्प्लुतोदके,
तावान्, सर्वेषु, वेदेषु, ब्राह्मणस्य, विजानतः।।46।।

अनुवाद : (सर्वतः) सब ओरसे (सम्प्लुतोदके) परिपूर्ण जलाशयके प्राप्त हो जाने पर (उदपाने) छोटे जलाशयमें मनुष्यका (यावान्) जितना (अर्थः) प्रयोजन रहता है पूर्ण परमात्माको (विजानतः) तत्वसे जाननेवाले (ब्राह्मणस्य) विद्वानका (सर्वेषु) समस्त (वेदेषु) ज्ञानों में (तावान्) उतना ही प्रयोजन रह जाता है। (46)

भावार्थ :- जिस प्रकार बहुत बड़े जलास्य (जिस का जल दस वर्ष वर्षा न होने पर भी समाप्त न हो) के प्राप्त हो जाने के पश्चात् छोटे जलास्य (जिस का जल एक वर्षा न होने पर समाप्त हो जाए) में जैसी श्रद्धा रह जाती है(छोटा जलास्य बुरा नहीं लगता परन्तु उसकी क्षमता का ज्ञान हो जाता है) इसी प्रकार तत्वज्ञान की प्राप्ति पर अन्य ज्ञानों (चारों वेदों अठारह पुराणों व गीता जी आदि) मैं ऐसी श्रद्धा रह जाती है। क्योंकि उनमें पर्याप्त ज्ञान नहीं है। इसी प्रकार तत्वज्ञान के आधार से पूर्ण परमात्मा के गुणों का ज्ञान हो जाने पर अन्य परमात्माओं (परब्रह्म, ब्रह्म तथा श्री ब्रह्मा, श्री विष्णु तथा श्री शिव व दुर्गा) में ऐसी ही श्रद्धा रह जाती है। ये अन्य देवता बुरे नहीं लगते परन्तु इनसे मिलने वाला लाभ पर्याप्त नहीं है। (46)

अध्याय 2 का श्लोक 47

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि।४७।

कर्मणि, एव, अधिकारः, ते, मा, फलेषु, कदाचन,
मा, कर्मफलहेतुः, भूः, मा, ते, संगः, अस्तु, अकर्मणि।।47।।

अनुवाद : (ते) तेरा (कर्मणि) कर्म करनेमें (एव) ही (अधिकारः) अधिकार है उसके (फलेषु) फलोंमें (कदाचन) कभी (मा) नहीं। इसलिए तू (कर्मफलहेतुः) कर्मोंके फलका हेतु (मा, भूः) मत हो तथा (ते) तेरी (अकर्मणि) कर्म न करनेमें भी (संगः) आसक्ति (मा) न (अस्तु) हो। (47)

अध्याय 2 का श्लोक 48

योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते। ४८।

योगस्थः, कुरु, कर्माणि, संगम्, त्यक्त्वा, धन जय,
सिद्धयसिद्धयोः, समः, भूत्वा, समत्वम्, योगः, उच्यते।।48।।

अनुवाद : (धन जय) हे धन जय! (संगम्) तू आसक्तिको (त्यक्त्वा) त्यागकर तथा (सिद्धयसिद्धयोः) सिद्धि और असिद्धिमें (समः) समान बुद्धिवाला (भूत्वा) होकर (योगस्थः) शास्त्रानुकूल भक्ति योगमें स्थित हुआ (कर्माणि) शास्त्र विधि अनुसार भक्ति कर्तव्यकर्मोको (कुरु) कर (समत्वम्) एक रूप ही (योगः) योग अर्थात् वास्तविक भक्ति (उच्यते) कहलाती है। (48)

अध्याय 2 का श्लोक 49

दूरेण ह्यवरं कर्म बुद्धियोगाद्धनञ्जय।
बुद्धौ शरणमन्विच्छ कृपणाः फलहेतवः।४९।

दूरेण, हि, अवरम्, कर्म, बुद्धियोगात्, धन जय,
बुद्धौ, शरणम्, अन्विच्छ, कपणाः, फलहेतवः।।49।।

अनुवाद : (बुद्धियोगात्) अपने आप अपनी बुद्धि से निकाला भक्ति मार्ग का निष्कर्ष यानि मनमाना आचरण अपनी बुद्धियोगसे (कर्म) भक्ति कर्म (दूरेण) अत्यन्त ही (अवरम्) निंदनीय है यानि निम्न श्रेणी का है। इसलिये (धन जय) हे धन जय! तू (बुद्धौ) एक पूर्ण परमात्मा का ज्ञान देने वाले तत्वदर्शी संत की (शरणम्) शरण (अन्विच्छ) ढूँढ़ अर्थात् तत्वदर्शी संतों द्वारा बताया एक पूर्ण प्रभु की भक्ति साधन का ही आश्रय ग्रहण कर (हि) क्योंकि (फलहेतवः) फलके हेतु बननेवाले (कपणाः) अत्यन्त दीन हैं। (49)

भावार्थ :- साधक को तत्वदर्शी संत से प्राप्त बुद्धि के योग से निश्चय ही निंदनीय शास्त्र विरूद्ध भक्ति कर्म दूर से ही त्याग देने चाहिऐं। कंजूस व्यक्ति कर्म फल के उद्देश्य से भक्ति कर्म करते हैं। उनको चाहिए कि वे बुद्धिमान यानि तत्वदर्शी संत की खोज करके उसकी शरण ग्रहण करें।

अध्याय 2 का श्लोक 50

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते।
तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम्।५०।

बुद्धियुक्तः, जहाति, इह, उभे, सुकतदुष्कते,
तस्मात् योगाय, युज्यस्व, योगः, कर्मसु, कौशलम्।।50।।

अनुवाद : (बुद्धियुक्तः) समबुद्धियुक्त अर्थात् तत्वदर्शी संत द्वारा बताया वास्तविक एक रूप शास्त्र अनुकूल भक्ति मार्ग पर लगा साधक (सुकतदुष्कते) अच्छे कर्म जैसे मनमानी पूजाऐं जो सुकत मान कर कर रहा था या मेरे बताए मार्ग अनुसार ओम् का जाप व यज्ञ आदि पुण्य करता था उस पुण्य को तथा बुरे कर्म जैसे मांस-मदिरा-तम्बाखु आदि नशीली वस्तुओं के सेवन रूपी दुष्कर्म पाप इन (उभे) दोनोंको (इह)इसी लोक में अर्थात् काल लोक में (जहाति) त्याग देता है अर्थात् जैसे पूर्ण संत कहता है वैसे ही करता है (तस्मात्) इसलिए तू (योगाय) शास्त्र विधि अनुसार साधना अर्थात् समत्वरूप योगमें (युज्यस्व) लग जा यह (योगः) तत्वदर्शी संत द्वारा बताया भक्ति मार्ग ही (कर्मसु) भक्ति कर्मों में (कौशलम्) कुशल है अर्थात् बुद्धिमत्तापूर्ण है। (50)

यही प्रमाण गीता अध्याय 18 श्लोक 66 में है जिसमें कहा है कि मेरी सर्व धार्मिक पूजाओं को मेरे में त्याग कर उस पूर्ण परमात्मा की शरण में जा तब मैं तुझे सर्व पापों से मुक्त कर दूंगा।

अध्याय 2 का श्लोक 51

कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः।
जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्त्यनामयम्।५१।

कर्मजम्, बुद्धियुक्ताः, हि, फलम्, त्यक्त्वा, मनीषिणः,
जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः, पदम्, गच्छन्ति, अनामयम्।।51।।

अनुवाद : (हि) क्योंकि (बुद्धियुक्ताः) तत्वज्ञान के आधार से समबुद्धिसे युक्त (मनीषिणः) ज्ञानीजन (कर्मजम्) कर्मोंसे उत्पन्न होने वाले (फलम्) फलको (त्यक्त्वा) त्यागकर (जन्मबन्ध विनिर्मुक्ताः) जन्म रूपबन्धनसे पूर्ण रूप से मुक्त हुए साधक (अनामयम्) अनामी अर्थात् जन्म-मरण रोग रहित (पदम्) परम पद अर्थात् सतलोक को (गच्छन्ति) चले जाते हैं अर्थात् पूर्ण मोक्ष को प्राप्त हो जाते हैं अर्थात् जन्म-मरण का रोग पूर्णरूप से समाप्त हो जाता है। (51)

अध्याय 2 का श्लोक 52

यदा ते मोहकलिलं बुद्धिर्व्यतितरिष्यति।
तदा गन्तासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च।५२।

यदा, ते, मोहकलिलम्, बुद्धिः, व्यतितरिष्यति,
तदा, गन्तासि, निर्वेदम्, श्रोतव्यस्य, श्रुतस्य, च।।52।।

अनुवाद : (यदा) जिस कालमें (ते) तेरी (बुद्धिः) बुद्धि (मोहकलिलम्) मोहरूप अर्थात् अज्ञान रूप दलदलको (व्यतितरिष्यति) भलीभाँति पार कर जाएगी अर्थात् आपको तत्वज्ञान हो जायेगा (तदा) उस समय तू (श्रुतस्य) सुने हुए (च) और (श्रोतव्यस्य) सुननेमें आनेवाले इस लोक और परलोक अर्थात् स्वर्ग-महास्वर्ग सम्बन्धी सभी भोगों का सुना सुनाया लोकवेद (निर्वेदम्)वेद विरुद्ध ज्ञान अर्थात् ज्ञानहीन वार्ता (गन्तासि) जैसा गया गुजरा महसूस होगा। (52)

अध्याय 2 का श्लोक 53

श्रुतिविप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला।
समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि।५३।

श्रुतिविप्रतिपन्ना, ते, यदा, स्थास्यति, निश्चला,
समाधौ, अचला, बुद्धिः, तदा, योगम्, अवाप्स्यसि।।53।।

अनुवाद : (श्रुतिविप्रतिपन्ना) भाँति-भाँतिके वचनोंको सुननेसे विचलित हुई (ते) तेरी (बुद्धिः) बुद्धि (अचला) स्थिर होकर (यदा) जब (समाधौ) तत्वज्ञान के आधार से एक परमात्मा के चिन्तन में (अचला)स्थाई रूप से (स्थास्यति) ठहर जायगी (तदा) तब तू (योगम्) योग अर्थात् भक्तिको (अवाप्स्यसि) प्राप्त हो जायगा। तब तेरी भक्ति प्रारम्भ हो जायेगी। अर्थात् तब तू योगी बनेगा। {गीता अध्याय 6 श्लोक 46 में कहा है कि अर्जुन तू योगी बन।} (53)

अध्याय 2 का श्लोक 54 (अर्जुन उवाच)

स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव।
स्थितधीः किं प्रभाषेत किमासीत व्रजेत किम्।५४।

स्थितप्रज्ञस्य, का, भाषा, समाधिस्थस्य, केशव,
स्थितधीः, किम्, प्रभाषेत, किम्, आसीत, व्रजेत, किम्।।54।।

अनुवाद : (केशव) हे केशव! (समाधिस्थस्य) सहज समाधिमें स्थित (स्थितप्रज्ञस्य) परमात्माको प्राप्त हुए स्थिरबुद्धि पुरुषका (का) क्या (भाषा) परिभाषा अर्थात् लक्षण है? वह (स्थितधीः) स्थिरबुद्धि पुरुष (किम्) कैसे (प्रभाषेत) बोलता है? (किम्) कैसे (आसीत) बैठता है? और (किम्) कैसे (व्रजेत) चलता है? (54)

अध्याय 2 का श्लोक 55 (भगवान उवाच)

प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान्।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते।५५।

प्रजहाति, यदा, कामान्, सर्वान्, पार्थ, मनोगतान्
आत्मनि, एव, आत्मना, तुष्टः, स्थितप्रज्ञः, तदा, उच्यते।।55।।

अनुवाद : (पार्थ) हे अर्जुन! (यदा) जिस कालमें यह पुरुष (मनोगतान्) मनमें स्थित (सर्वान्) सम्पूर्ण (कामान्) कामनाओंको (प्रजहाति) भलीभाँति त्याग देता है और (आत्मना) आत्मासे अर्थात् समर्पण भाव से (आत्मनि) आत्मा के साथ अभेद रूप में रहने वाले परमात्मा में (एव) ही (तुष्टः) संतुष्ट रहता है, (तदा) उस कालमें वह (स्थितप्रज्ञः) स्थितप्रज्ञ अर्थात् स्थाई बुद्धि वाला (उच्यते) कहा जाता है अर्थात् फिर वह विचलित नहीं होता, केवल तत्वदर्शी संत के तत्वज्ञान पर पूर्ण रूप से आधारित रहता है। वह योगी है। (55)

अध्याय 2 का श्लोक 56

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते।५६।

दुःखेषु, अनुद्विग्नमनाः, सुखेषु, विगतस्पहः,
वीतरागभयक्रोधः, स्थितधीः, मुनिः, उच्यते।।56।।

अनुवाद : (दुःखेषु) दुःखोंकी प्राप्ति होनेपर (अनुद्विग्नमनाः) जिसके मनमे उद्वेग नहीं होता (सुखेषु) सुखोंकी प्राप्तिमें (विगतस्पहः) जो सर्वथा इच्छा रहित है तथा (वीतरागभयक्रोधः) जिसके राग, भय और क्रोध नष्ट हो गये हैं ऐसा (मुनिः) मुनि अर्थात् साधक (स्थितधीः) स्थिरबुद्धि (उच्यते) कहा जाता है। (56)

अध्याय 2 का श्लोक 57

यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम्।
नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।५७।

यः, सर्वत्र, अनभिस्नेहः, तत्, तत्, प्राप्य, शुभाशुभम्,
न, अभिनन्दति, न, द्वेष्टि, तस्य, प्रज्ञा, प्रतिष्ठिता।।57।।

अनुवाद : (यः) जो (सर्वत्र) सर्वत्र (अनभिस्नेहः) स्नेहरहित हुआ (तत् तत्) उस-उस (शुभाशुभम्) शुभ या अशुभ वस्तु को (प्राप्य) प्राप्त होकर (न) न (अभिनन्दति) प्रसन्न होता है और (न) न (द्वेष्टि) द्वेष करता है। (तस्य) उसकी (प्रज्ञा) बुद्धि (प्रतिष्ठिता) स्थिर है। (57)

अध्याय 2 का श्लोक 58

यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।५८।

यदा, संहरते, च, अयम्, कूर्मः, अंगानि, इव, सर्वशः,
इन्द्रियाणि, इन्द्रियार्थेभ्यः, तस्य, प्रज्ञा, प्रतिष्ठिता।।58।।

अनुवाद : (च) और जिस प्रकार (कूर्मः) कछुआ (सर्वशः) सब ओर से अपने (अगांनि) अंगोंको (इव) जैसे समेट लेता है वैसे ही (यदा) जब (अयम्) यह पुरुष (इन्द्रियार्थेभ्यः) इन्द्रियों के विषयों से (इन्द्रियाणि) इन्द्रियों को (संहरते) सब प्रकार से हटा लेता है तब (तस्य) उसकी (प्रज्ञा) बुद्धि (प्रतिष्ठिता) स्थिर है ऐसा समझना चाहिए। (58)

अध्याय 2 का श्लोक 59

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते।५९।

विषयाः, विनिवर्तन्ते, निराहारस्य, देहिनः,
रसवर्जम्, रसः, अपि, अस्य, परम्, दृष्टवा, निवर्तते।।59।।

अनुवाद : (निराहारस्य) भोजन का पूर्ण रूप से त्याग कर देने वाले (देहिनः) देहधारी व्यक्ति के (विषयाः) विकार जब तक भोजन नहीं खाता (विनिवर्तन्ते) निवृत्त हो जाते हैं (रसवर्जम्) संसारिक भोगों के आनंद से आसक्ति निवृत्त नहीं होती। (अस्य) इस स्थिर बुद्धि वालेके (परम्) अन्य परमात्मा को (दृष्टवा) देखने यानि साक्षात्कार करने से विकारों से होने वाली हानि को जानने वाले के (रसः) संसारिक भोगों के आनंद से आसक्ति (अपि) भी (निवर्तते) निवृत्त हो जाती है।(59)

उदाहरण :- जैसे श्रंगी ऋषि जब तक निराहार रहे तो विकार शांत रहे। परंतु राजा दशरथ की पुत्री शांता द्वारा शहद, फिर खीर खिलाने से श्रंगी ऋषि में विकार सक्रिय हो गए और शांता से विवाह कर लिया।

अध्याय 2 का श्लोक 60

यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः।६०।

यततः, हि, अपि, कौन्तेय, पुरुषस्य, विपिश्चितः,
इन्द्रियाणि, प्रमाथीनि, हरन्ति, प्रसभम्, मनः।।60।।

अनुवाद : (कौन्तेय) हे अर्जुन! (हि) क्योंकि (प्रमाथीनि) ये प्रमथन स्वभाववाली (इन्द्रियाणि) इन्द्रियाँ (यततः) यतन करते हुए (विपिश्चितः) बुद्धिमान् (पुरुषस्य) पुरुषके (मनः) मनको (अपि) भी (प्रसभम्) बलात् (हरन्ति) हर लेती हैं। (60)

अध्याय 2 का श्लोक 61

तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः।
वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।६१।

तानि, सर्वाणि, संयम्य, युक्तः, आसीत, मत्परः,
वशे, हि, यस्य, इन्द्रियाणि, तस्य, प्रज्ञा, प्रतिष्ठिता।।61।।

अनुवाद : (तानि) उन (सर्वाणि) सम्पूर्ण इन्द्रियोंको (संयम्य) वशमें करके (युक्तः) समाहित चित्त हुआ (मत्परः) मेरे से अन्य परमात्मा की शास्त्रानुसार साधना (आसीत) में दृढता से लगे (हि) क्योंकि (यस्य) जिस साधक की (इन्द्रियाणि) इन्द्रियाँ (वशे) वश में होती है (तस्य) उसकी (प्रज्ञा)

बुद्धि, तत्वज्ञान से (प्रतिष्ठिता) स्थिर हो जाती है अर्थात् मन व इन्द्रियों के ऊपर बुद्धि की प्रभुत्ता रहती है। (61)

अध्याय 2 का श्लोक 62

ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते।
सङ्गात्सञ्जायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते। ६२।

ध्यायतः, विषयान्, पुंसः, संग, तेषु, उपजायते, संगात्,
स जायते, कामः, कामात्, क्रोधः, अभिजायते।।62।।

अनुवाद : (विषयान्) विषयोंका (ध्यायतः) चिन्तन करनेवाले (पुंसः) पुरुषकी (तेषु) उन विषयोंमें (संग) आसक्ति (उपजायते) उत्पन्न हो जाती है (संगात्) आसक्तिसे (कामः) उन विषयोंकी कामना (स जायते) उत्पन्न होती है और (कामात्) कामना में विघ्न पड़ने से (क्रोधः) क्रोध (अभिजायते) उत्पन्न होता है। (62)

अध्याय 2 का श्लोक 63

क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति। ६३।

क्रोधात्, भवति, सम्मोहः, सम्मोहात्, स्मतिविभ्रमः,
स्मतिभ्रंशात्, बुद्धिनाशः, बुद्धिनाशात्, प्रणश्यति।।63।।

अनुवाद : (क्रोधात्) क्रोधसे (सम्मोहः) अत्यन्त मूढ़भाव (भवति) उत्पन्न हो जाता है (सम्मोहात्) मूढ़भावसे (स्मतिविभ्रमः) स्मतिमें भ्रम हो जाता है (स्मतिभ्रंशात्) स्मतिमें भ्रम हो जानेसे (बुद्धिनाशः) बुद्धि अर्थात् ज्ञान-शक्तिका नाश हो जाता है। और (बुद्धिनाशात्) बुद्धिका नाश हो जानेसे यह पुरुष अपनी स्थितिसे (प्रणश्यति) गिर जाता है। (63)

अध्याय 2 का श्लोक 64

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति। ६४।

रागद्वेषवियुक्तैः, तु, विषयान्, इन्द्रियैः, चरन्,
आत्मवश्यैः, विधेयात्मा, प्रसादम्, अधिगच्छति।।64।।

अनुवाद : (तु) परंतु (विधेयात्मा) तत्वज्ञान से अधीन किये हुए अन्तःकरणवाला साधक (आत्मवश्यैः) अपने वशमें की हुई (रागद्वेषवियुक्तैः) राग-द्वेषसे रहित (इन्द्रियैः) इन्द्रियोंद्वारा (विषयान्) विषयोंमें (चरन्) विचरण करता हुआ भी उसमें लीन न होकर (प्रसादम्) परमात्मा के कपा प्रसाद से प्रसन्नता को (अधिगच्छति) प्राप्त होता है। (64)

अध्याय 2 का श्लोक 65

प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते। ६५।

प्रसादे, सर्वदुःखानाम्, हानिः, अस्य, उपजायते,
प्रसन्नचेतसः, हि, आशु, बुद्धिः, पर्यवतिष्ठते।।65।।

अनुवाद : (प्रसादे) अन्तःकरणकी प्रसन्नता होनेपर (अस्य) इसके (सर्वदुःखानाम्) सम्पूर्ण दुःखोंका (हानिः) अभाव (उपजायते) हो जाता है और उस (प्रसन्नचेतसः) प्रसन्न-चित्तवाले तत्वज्ञानी

कर्मयोगी की (बुद्धिः) बुद्धि (आशु) शीघ्र (हि) ही सब ओरसे हटकर एक परमात्मामें ही (परि वितिष्ठते = पर्यवतिष्ठते) भलीभाँति स्थिर हो जाती है। (65)

अध्याय 2 का श्लोक 66

नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना।
न चाभावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम्। ६६।

न, अस्ति, बुद्धिः, अयुक्तस्य, न, च, अयुक्तस्य, भावना,
न, च, अभावयतः, शान्तिः, अशान्तस्य, कुतः, सुखम्।।66।।

अनुवाद : (अयुक्तस्य) न जीते हुए मन और इन्द्रियोंवाले पुरुषमें (बुद्धिः) निश्चयात्मिका बुद्धि (न) नहीं (अस्ति) होती (च) और उस (अयुक्तस्य) अयुक्त मनुष्यके अन्तःकरणमें (भावना) भावना भी (न) नहीं होती (च) तथा (अभावयतः) भावनाहीन मनुष्यको (शान्तिः) शान्ति (न) नहीं मिलती और (अशान्तस्य) शान्तिरहित मनुष्यको (सुखम्) सुख (कुतः) कैसे मिल सकता है?(66)

भावार्थ :- जिस साधक का संशय निवार्ण नहीं हो जाता अर्थात् जिसे तत्वदर्शी संत नहीं मिलता जिससे उसकी बुद्धि एक परमात्मा की भक्ति के स्थान पर नाना प्रकार की साधना व कामना करता रहता है, उस साधक को कोई लाभ नहीं होता।

अध्याय 2 का श्लोक 67

इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनुविधीयते।
तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवाम्भसि। ६७।

इन्द्रियाणाम्, हि, चरताम्, यत्, मनः, अनु, विधीयते,
तत्, अस्य, हरति, प्रज्ञाम्, वायुः, नावम्, इव, अम्भसि।।67।।

अनुवाद : (हि) क्योंकि (इव) जैसे (अम्भसि) जलमें चलनेवाली (नावम्) नावको (वायुः) वायु (हरति) हर लेती है वैसे ही (चरताम्) विषयोंमें विचरती हुई (इन्द्रियाणाम्) इन्द्रियोंमेंसे (मनः) मन (यत्) जिस इन्द्रियके (अनु) निरंतर साथ (विधीयते) रहता है यानि उस इन्द्री के आनंद का ज्ञान होने से उसी पर आधारित रहता है (तत्) जिस कारण से (अस्य) इस अयुक्त पुरुष की (प्रज्ञाम्) बुद्धि हर ली जाती है। (67)

अध्याय 2 का श्लोक 68

तस्माद्यस्य महाबाहो निगृहीतानि सर्वशः।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता। ६८।

तस्मात् यस्य, महाबाहो, निगंहीतानि, सर्वशः,
इन्द्रियाणि, इन्द्रियार्थेभ्यः, तस्य, प्रज्ञा, प्रतिष्ठिता।।68।।

अनुवाद : (तस्मात्) इसलिये (महाबाहो) हे महाबाहो! (यस्य) जिस पुरुषकी (इन्द्रियाणि) इन्द्रियाँ तत्वज्ञान के आधार से (इन्द्रियार्थेभ्यः) इन्द्रियोंके विषयोंसे (सर्वशः) सब प्रकार (निगंहीतानि) निग्रह की हुई हैं (तस्य) उसीकी (प्रज्ञा) बुद्धि (प्रतिष्ठिता) स्थिर है। (68)

अध्याय 2 का श्लोक 69

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः। ६९।

या, निशा, सर्वभूतानाम्, तस्याम्, जागर्ति, संयमी,
यस्याम्, जाग्रति, भूतानि, सा, निशा, पश्यतः, मुनेः।।69।।

अनुवाद : (सर्वभूतानाम्) सम्पूर्ण प्राणियों के लिये (या) जो (निशा) रात्रिके समान है (तस्याम्) उस नित्य ज्ञानस्वरूप परमानन्दकी प्राप्तिमें (संयमी) स्थितप्रज्ञ योगी यानि संयमी (जाग्रति) जागता है और (यस्याम्) जिस नाशवान् सांसारिक सुखकी प्राप्ति में (भूतानि) सब प्राणी (जाग्रति) जागते हैं (पश्यतः) परमात्माके तत्वको जाननेवाले (मुनेः) मुनिके लिये (सा) वह (निशा) रात्रिके समान है यानि तत्वदर्शी साधक नाशवान पदार्थों की प्राप्ति के लिए आँखें बंद किए रहता है। उनकी इच्छा नहीं करता। उसके लिए दिन-रात ही रात्रि के समान हैं।(69)

भावार्थ :- जैसे विकारी व्यक्ति चोर, व्याभीचारी अथवा व्यापारी रात्रि में जागते हैं, वे संसारिक सुख की प्राप्ति के लिए जागते हैं। संयमी यानि तत्वज्ञान से मन व इन्द्रियों का निग्रह किया हुआ साधक परमात्मा के लिए रात्रि में जागता है। उसको परमात्मा के भजन-स्मरण की चिंता रहती है तथा मोक्ष की कामना के कारण जागता है। उसकी तड़फ में लगा हुआ रात्रि में जागता है। वह संसार के नाशवान पदार्थों की इच्छा नहीं रखता। उनकी तरफ से आँखें बंद किए है। उसके लिए दिन तथा रात्रि भी रात्रि के समान हैं।

अध्याय 2 का श्लोक 70

आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं-
समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत्।
तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे
स शान्तिमाप्नोति न कामकामी।७०।

आपूर्यमाणम्, अचलप्रतिष्ठम्, समुद्रम्, आपः, प्रविशन्ति, यद्वत्,
तद्वत्, कामाः, यम्, प्रविशन्ति, सर्वे, सः, शान्तिम्, आप्नोति, न, कामकामी।।70।।

अनुवाद : तत्वज्ञान से परिचित स्थिर बुद्धि वाले का विश्वास ऐसा दढ़ होता है (यद्वत्) जैसे भिन्न-भिन्न नदियों के (आपः) जल जब (आपूर्यमाणम्) सब ओरसे परिपूर्ण (अचलप्रतिष्ठम्) अचल प्रतिष्ठावाले (समुद्रम्) समुद्रमें उसको विचलित न करते हुए ही (प्रविशन्ति) समा जाते हैं (तद्वत्) वैसे ही (सर्वे) सब (कामाः) भोग (यम्) जिस स्थितप्रज्ञ पुरुषमें किसी प्रकारका विकार उत्पन्न किये बिना ही (प्रविशन्ति) समा जाते हैं (सः) वही पुरुष (शान्तिम्) परम शान्तिको (आप्नोति) प्राप्त होता है (कामकामी) भोगों को चाहनेवाला (न) नहीं। (70)

अध्याय 2 का श्लोक 71

विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः।
निर्ममो निरहङ्कारः स शान्तिमधिगच्छति।७१।

विहाय, कामान्, यः, सर्वान्, पुमान्, चरति, निःस्पहः,
निर्ममः, निरहंकारः, सः, शान्तिम्, अधिगच्छति।।71।।

अनुवाद : (यः) जो (पुमान्) पवित्रात्मा साधक (सर्वान्) सम्पूर्ण (कामान्) कामनाओंको (विहाय) त्यागकर (निर्ममः) ममता रहित (निरहंकारः) अहंकाररहित और (निःस्पहः) स्पहारहित हुआ (चरति) विचरता है (सः) वही (शान्तिम्) शान्तिको (अधिगच्छति) प्राप्त होता है अर्थात् वह शान्तिको प्राप्त है। (71)

अध्याय 2 का श्लोक 72

एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति।
स्थित्वास्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति। ७२।

एषा, ब्राह्मी, स्थितिः, पार्थ, न, एनाम्, प्राप्य, विमुह्यति,
स्थित्वा, अस्याम्, अन्तकाले, अपि, ब्रह्मनिर्वाणम्, ऋच्छति।।72।।

अनुवाद : (पार्थ) हे अर्जुन! (एषा) यह इच्छाओं आदि का त्याग, अहंकार रहित उपरोक्त स्थिति (ब्राह्मी) परमात्मा को प्राप्त साधक की (स्थितिः) स्थिति है। (एनाम्) इसको (प्राप्य) प्राप्त (न) न होकर साधक (विमुह्यति) विषयों में मोहित हो जाता है और (अन्तकाले) अन्त समय में (अस्याम्) जिस साधक के विकार समाप्त नहीं हुए वह इस स्थितिमें (स्थित्वा) स्थित होकर (अपि) भी (ब्रह्मनिर्वाणम्) काल ब्रह्म के लोक के जीवन का अंत होकर पूर्ण परमात्मा को प्राप्त रूप मोक्ष को (ऋच्छति) प्राप्त हो जाता है।(72)

भावार्थ :- जो साधक पूर्ण संत से उपदेश प्राप्त करके साधना सम्पन्न नजर आता है, परंतु विषय विकार त्याग नहीं करता, वह सर्व नाम प्राप्त करके भी पूर्ण परमात्मा की प्राप्ति से वंचित रह जाता है। गीता अध्याय 2 श्लोक 69 में दोनों प्रकार के व्यक्तियों के विषय में कहा गया है कि रात्रि में दो प्रकार के व्यक्ति जागते हैं एक विषयी (व्याभीचारी, चोर आदि-आदि), दूसरे परमात्मा को चाहने वाले। परमात्मा को चाहने वाले भी दो प्रकार के होते हैं एक निर्विकार, दूसरे भक्ति के साथ-साथ विषयों में भी लिप्त रहते हैं। ये विकारी साधक परमात्मा प्राप्ति से वंचित रह जाते हैं। इसलिए श्लोक 71 में विकार रहित साधक के विषय में कहा है तथा श्लोक 72 में विकारों में मोहित साधक के विषय में कहा है।

❖ निर्वाण शब्द का अर्थ है जीवन का अंत। ब्रह्म निर्वाण का अर्थ हुआ काल ब्रह्म के लोक के जीवन का अंत और ऋच्छाति का अर्थ है काल के लोक के जीवन से खाली होना यानि पूर्ण परमात्मा के सतलोक को प्राप्त होना। ये गीता के गूढ़ अर्थ हैं।

(इति अध्याय दूसरा)

❑❑❑

तीसरा अध्याय

।। दिव्य सारांश।।

गीता अध्याय 3 के श्लोक 1-2 में अर्जुन ने पूछा है कि हे जनार्दन! यदि आप कर्मो से बुद्धि (ज्ञान) को श्रेष्ठ मानते हो तो मुझे गुम राह किस लिए कर रहो हो? आप ठीक से सलाह दें जिससे मेरा कल्याण हो। आपकी बातों में विरोधाभास लग रहा है। आपकी ये दोतरफा (दोगली) बातें मुझे भ्रम में डाल रही हैं।

।। शास्त्र विधि रहित पूजा अर्थात् मनमाना आचरण का विवरण।।

गीता अध्याय 3 के श्लोक 3 से 8 में भगवान ने कहा है कि हे निष्पाप! (अर्जुन) इस लोक में ज्ञानी तो ज्ञान को श्रेष्ठ मानते हैं तथा योगी कर्म योग को फिर भी ऐसा कोई नहीं है जो कर्म किए बिना बचे। निष्कर्मता नहीं बन सकती और कर्म त्यागने मात्र से भी उद्देश्य प्राप्त नहीं हो सकता। अध्याय 3 श्लोक 4 में निष्कर्मता का भावार्थ है कि जैसे किसी व्यक्ति ने एक एकड़ गेहूँ की पक्की हुई फसल काटनी है तो उसे काटना प्रारम्भ करके ही फसल काटने वाला कार्य पूरा किया जाएगा तब कार्य शेष नहीं रहेगा इस प्रकार कार्य पूरा होने से ही निष्कर्मता प्राप्त होती है। ठीक इसी प्रकार शास्त्र विधि अनुसार भक्ति कर्म प्रारम्भ करने से ही परमात्मा प्राप्ति रूपी कार्य पूरा होगा। फिर निष्कर्मता बनेगी। कोई कार्य शेष नहीं रहेगा। यदि भक्ति कर्म नहीं करेगें तो यह त्रिगुण माया (रजगुण ब्रह्मा, सतगुण विष्णु तथा तमगुण शिव) बलपूर्वक अन्य व्यर्थ के कार्यों में लगाएगी। चूंकि स्वभाव वश माया (प्रकति) से उत्पन्न तीनों गुण (रज-ब्रह्मा, सत-विष्णु, तम-शिव) जीव से जबरदस्ती कर्म करवाते हैं। जैसे जूआ खेलना, शराब आदि नशीली वस्तुओं का सेवन करना, चोरी-लूट, व्याभीचार करना, अधिक धन उपार्जन के अर्थ पाप करना जैसे मिलावट-धोखाधड़ी आदि कर्म जीव तीनों देवताओं से निकल रहे गुणों के प्रभाव से करता है। जब तक मानव (स्त्री-पुरूष) पूर्ण गुरू धारण नहीं करता, तब तक वह ऐसा होता है जैसे बिना खेवटिया (मल्लाह) की नौका जो हवा के झोंकों तथा पानी की लहरों व दरिया के बहाव से प्रभावित होकर इधर-उधर जाती है। भंवर में फँसकर नष्ट हो जाती है। पूर्ण सतगुरू की शरण में जब मानव (स्त्री-पुरूष) आ जाता है तो वह मल्लाह वाली नौका बन जाता है। सतगुरू रूपी मल्लाह जीव रूपी नौका को संसार सागर में इधर-उधर बहने (भटकने) नहीं देता। अपनी कुशलता से चलाकर दरिया के उस पार सकुशल पहुँचा देता है। जिनको पूर्ण गुरू नहीं मिला। वे जो मनमुखी भक्तजन (साधक) कर्म इन्द्रियों को हठ पूर्वक रोक कर एक स्थान पर भजन पर बैठते हैं तो उनका मन ज्ञान इन्द्रियों के प्रभाव से प्रभावी रहता है। वे लोग दिखावा आडम्बर वश समाधिस्थ दिखाई देते हैं। वे पाखण्डी हैं अर्थात् कर्म त्याग से भजन नहीं बनता। करने योग्य कर्म करता रहे तथा ज्ञान से मन व इन्द्रियों को अच्छे कर्मों में संलग्न रखे। शास्त्रों में वर्णित विधि से करने योग्य कर्म करना श्रेष्ठ है यदि सांसारिक कर्म नहीं करेगा तो तेरा निर्वाह (परिवार पोषण) कैसे होगा?

❖ *अध्याय 3 के श्लोक 9 में कहा है कि निष्काम भाव से शास्त्र अनुकूल किये हुए धार्मिक कर्म (यज्ञ) लाभदायक हैं। यज्ञ यानि धार्मिक अनुष्ठान जैसे पाँचों यज्ञ तथा नाम जाप करने के अतिरिक्त जूआ खेलना, शराब, तम्बाकू, माँस सेवन करना, फिल्म देखना, निंदा करना,*

व्याभीचार करना आदि-आदि कर्मों को करने वाला व्यक्ति कर्मों में बँधता है। इसलिए परमात्मा के निमित शास्त्र वर्णित कर्तव्य कर्म कर।

विशेष :- उपरोक्त गीता अध्याय 3 श्लोक 6 से 9 तक एक स्थान पर एकान्त में विशेष आसन पर बैठ कर कान-आँखें आदि बंद करके हठयोग करने की मनाही की है तथा शास्त्रों में वर्णित भक्ति विधि अनुसार साधना करना श्रेयकर बताया है। प्रत्येक सद्ग्रन्थों में सांसारिक कार्य करते-करते नाम जाप व यज्ञादि करने का भक्ति विधान बताया है।

प्रमाण :- पवित्र गीता अध्याय 8 श्लोक 13 में कहा है कि मुझ ब्रह्म का उच्चारण करके सुमरण करने का केवल एक मात्र ओं (ॐ) अक्षर है जो इसका जाप अन्तिम स्वांस तक कर्म करते-करते भी करता है वह मेरे वाली परमगति को प्राप्त होता है।

❖ *अध्याय 8 श्लोक 7 में कहा है कि हर समय मेरा स्मरण भी कर तथा युद्ध भी कर। इस प्रकार मेरे आदेश का पालन करते हुए अर्थात् सांसारिक कर्म करते-करते साधना करता हुआ मुझे ही प्राप्त होगा। भले ही अपनी परमगति को गीता अध्याय 7 श्लोक 18 में अति अश्रेष्ठ अर्थात् अति व्यर्थ बताया है, परंतु ब्रह्म साधना की विधि यही है।*

❖ *फिर अध्याय 8 श्लोक 8 से 10 तक में गीता ज्ञान दाता ने कहा है कि जो गीता अध्याय 8 श्लोक 3 में परम अक्षर ब्रह्म कहा है, उस परमात्मा अर्थात् पूर्णब्रह्म की भक्ति करो, जिसका विवरण गीता अध्याय 8 श्लोक 8-10 में तथा अध्याय 18 श्लोक 62 व अध्याय 15 श्लोक 1 व 4 तथा 17 में दिया है। उसका भी यही विधान है कि जो साधक पूर्ण परमात्मा की साधना तत्वदर्शी संत से उपदेश प्राप्त करके नाम जाप करता हुआ तथा सांसारिक कार्य करता हुआ शरीर त्याग कर जाता है वह उस परम दिव्य पुरुष अर्थात् पूर्ण परमात्मा को ही प्राप्त होता है। तत्वदर्शी संत का संकेत गीता अध्याय 4 श्लोक 34 में दिया है। तत्वदर्शी सन्त की पहचान गीता अध्याय 15 श्लोक 1 में है यही प्रमाण पवित्र यजुर्वेद अध्याय 40 मंत्र 10 तथा 13 में दिया है।*

यजुर्वेद अध्याय 40 मंत्र 10 का भावार्थ :-

पवित्र वेदों को बोलने वाले ब्रह्म ने कहा कि पूर्ण परमात्मा के विषय में कोई तो कहता है कि वह अवतार रूप में उत्पन्न होता है अर्थात् आकार में कहा जाता है, कोई उसे कभी अवतार रूप में आकार में उत्पन्न न होने वाला अर्थात् निराकार कहता है। उस पूर्ण परमात्मा का तत्वज्ञान तो धीराणाम् अर्थात् तत्वदर्शी संत ही बताऐंगे कि वास्तव में पूर्ण परमात्मा का शरीर कैसा है? वह कैसे प्रकट होता है? पूर्ण परमात्मा की पूरी जानकारी धीराणाम् अर्थात् तत्वदर्शी संतों से सुनों। मैं वेद ज्ञान देने वाला ब्रह्म भी नहीं जानता। फिर भी अपनी भक्ति विधि को बताते हुए अध्याय 40 मंत्र 15 में कहा है कि मेरी साधना ओ3म् (ॐ) नाम का जाप कार्य करते-करते कर, विशेष आस्था के साथ सुमरण कर तथा मनुष्य जीवन का मुख्य कर्त्तव्य जान कर सुमरण कर, इससे मत्यु उपरान्त अर्थात् शरीर छूटने पर मेरे वाला अमरत्व अर्थात् परमगति को प्राप्त हो जाएगा। जैसे सूक्ष्म शरीर में कुछ शक्ति आ जाती है, कुछ समय तक अमर हो जाता है। जिस कारण स्वर्ग या महास्वर्ग यानि ब्रह्मलोक में चला जाता है। पुनः जन्म-मत्यु को प्राप्त हो जाता है।

❖ *विशेष :- एक राष्ट्र में खेल के नियम समान होते हैं। जो खिलाड़ी जिला स्तर पर खेलते हैं, उन पर भी वही नियम लागू होते हैं, जो राष्ट्रीय या अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर खेलते हैं, उन पर भी वही नियम लागू होते हैं। इसलिए भक्ति-साधना चाहे काल ब्रह्म स्तर की करो, चाहे परम अक्षर ब्रह्म यानि सतपुरूष स्तर की करो, नियम एक जैसे हैं।*

।। यज्ञों का लाभ केवल सांसारिक सुविधाएँ, मुक्ति नहीं।।

अध्याय 3 के श्लोक 10 में कहा है कि प्रजापति यानि कुल के मालिक ने कल्प के प्रारम्भ में कहा था कि सब प्रजा यज्ञ करें। इससे तुम्हें सांसारिक भोग प्राप्त होंगे, न कि मुक्ति। इसका जीवित प्रमाण है कि यज्ञों से सांसारिक भोगों व स्वर्ग प्राप्ति के अतिरिक्त कुछ नहीं। {यज्ञ भी आवश्यक हैं जैसे गेहूँ का बीज जमीन में बीजने के पश्चात् उसको सिंचाई के लिए जल तथा पोषण के लिए खाद की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार परमात्मा की भक्ति के लिए नाम मंत्र रूपी बीज आत्मा में डालने के पश्चात् उसमें यज्ञों (पाँचों यज्ञों = धर्म यज्ञ, हवन यज्ञ, ध्यान यज्ञ, प्रणाम यज्ञ, ज्ञान यज्ञ) रूपी जल व खाद की आवश्यकता होती है। परंतु पूर्ण गुरु से नाम ले कर गुरु मर्यादा में रहते हुए अंतिम समय तक अनन्य मन से नाम जाप (अभ्यास योग) करता रहे वह साधक अंत में अपने इष्ट लोक में चला जाता है तथा जब तक संसार में रहता है, उसको यज्ञों के फल रूप में संसारिक सुविधाऐं भी अधिक मिलती रहती हैं। वही यज्ञों में प्रतिष्ठित इष्ट (पूर्ण परमात्मा) ही मन इच्छित यज्ञों का फल देता है। प्रमाण के लिए गीता जी के अध्याय 3 के श्लोक 14-15 में देखें। अध्याय 3 के श्लोक 11 में कहा है कि देवता यज्ञ से उन्नत होकर आप को उन्नत करें अर्थात् धनवान बनाएगें। इस प्रकार एक दूसरे का सहयोग रखो।

अध्याय 3 का श्लोक 10

सहयज्ञाः, प्रजाः, सृष्टा, पुरा, उवाच, प्रजापतिः,
अनेन, प्रसविष्यध्वम्, एषः, वः, अस्तु, इष्टकामधुक् ।।10।।

अनुवाद : (प्रजापतिः) प्रजापति यानि कुल के मालिक ने (पुरा) कल्पके आदिमें (सहयज्ञाः) यज्ञसहित (प्रजाः) प्रजाओंको (सृष्टा) रचकर उनसे (उवाच) कहा कि (अनेन) अन्न द्वारा होने वाला धार्मिक कर्म जिसे धर्म यज्ञ कहते हैं, जिसमें भोजन–भण्डारे यानि लंगर करना है, इस यज्ञ के द्वारा (प्रसविष्यध्वम्) वृद्धि को प्राप्त होओ और (वः) तुम साधकों को (एषः) यह पूर्ण परमात्मा (इष्टकामधुक्) यज्ञ में प्रतिष्ठित इष्ट ही इच्छित भोग प्रदान करनेवाला (अस्तु) हो।(3/10)

भावार्थ :- प्रजापिता यानि पूर्ण परमात्मा ने कल्प के प्रारम्भ में यज्ञों यानि धार्मिक अनुष्ठानों का ज्ञान तथा प्रजा को उत्पन्न करके उनसे कहा था कि अन्न द्वारा होने वाले धार्मिक कर्म जिसे धर्म यज्ञ कहते हैं जिसमें भोजन-भण्डारा यानि लंगर करना। इस यज्ञ के द्वारा बुद्धि को प्राप्त होओ यानि धर्म करने से धन प्राप्त होता है। तुम साधकों को यज्ञ में पूज्य इष्ट देव ही मनवांछित भोग प्रदान करे। यानि धन चाहिए तो दान धर्म कर, मुक्ति चाहिए तो ''भज सतनाम'' वाले सिद्धांत अनुसार पूर्ण परमात्मा साधक को लाभ देता है, उसे प्राप्त करो।(3/10)

अध्याय 3 का श्लोक 11

देवान्, भावयत, अनेन, ते, देवाः, भावयन्तु, वः,
परस्परम् भावयन्तः, श्रेयः, परम्, अवाप्स्यथ ।।11।।

हिन्दी अनुवाद :- यज्ञ के द्वारा देवताओं अर्थात् संसार रूपी पौधे की शाखाओं को उन्नत करो और वे देवता अर्थात् शाखाऐं तुम लोगों को उन्नत करें यानि पौधा पेड़ बनेगा। शाखाऐं फल देंगी। इस प्रकार एक दूसरे को उन्नत करके परम कल्याण को प्राप्त हो जाओगे।(3/11)

नोट :- इस ज्ञान को समझने के लिए कृपा देखें इसी पुस्तक के पृष्ठ 152-153 पर संसार रूपी पौधे का चित्र। चित्रों के द्वारा गीता अध्याय 3 के श्लोक 10-15 तक को समझना सरल हो जाएगा।

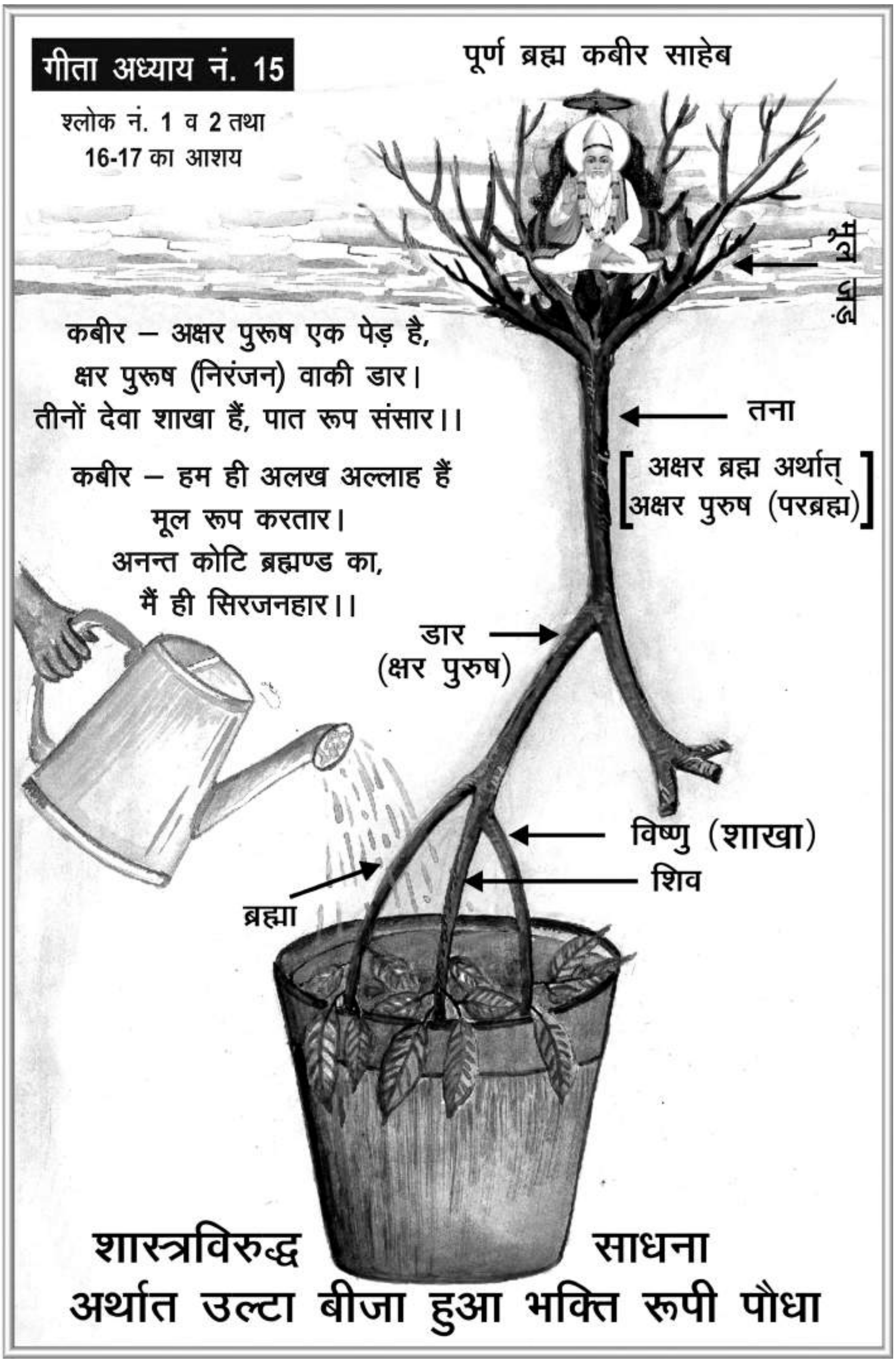
गीता अध्याय नं. 15
श्लोक नं. 1 व 2 तथा
16-17 का आशय
पूर्ण ब्रह्म कबीर साहेब
मूल जड़
कबीर – अक्षर पुरूष एक पेड़ है,
क्षर पुरूष (निरंजन) वाकी डार।
तीनों देवा शाखा हैं, पात रूप संसार।।
कबीर – हम ही अलख अल्लाह हैं
मूल रूप करतार।
अनन्त कोटि ब्रह्मण्ड का,
मैं ही सिरजनहार।।
तना
अक्षर ब्रह्म अर्थात्
अक्षर पुरुष (परब्रह्म)
डार
(क्षर पुरुष)
विष्णु (शाखा)
शिव
ब्रह्मा
शास्त्रविरुद्ध साधना
अर्थात उल्टा बीजा हुआ भक्ति रूपी पौधा

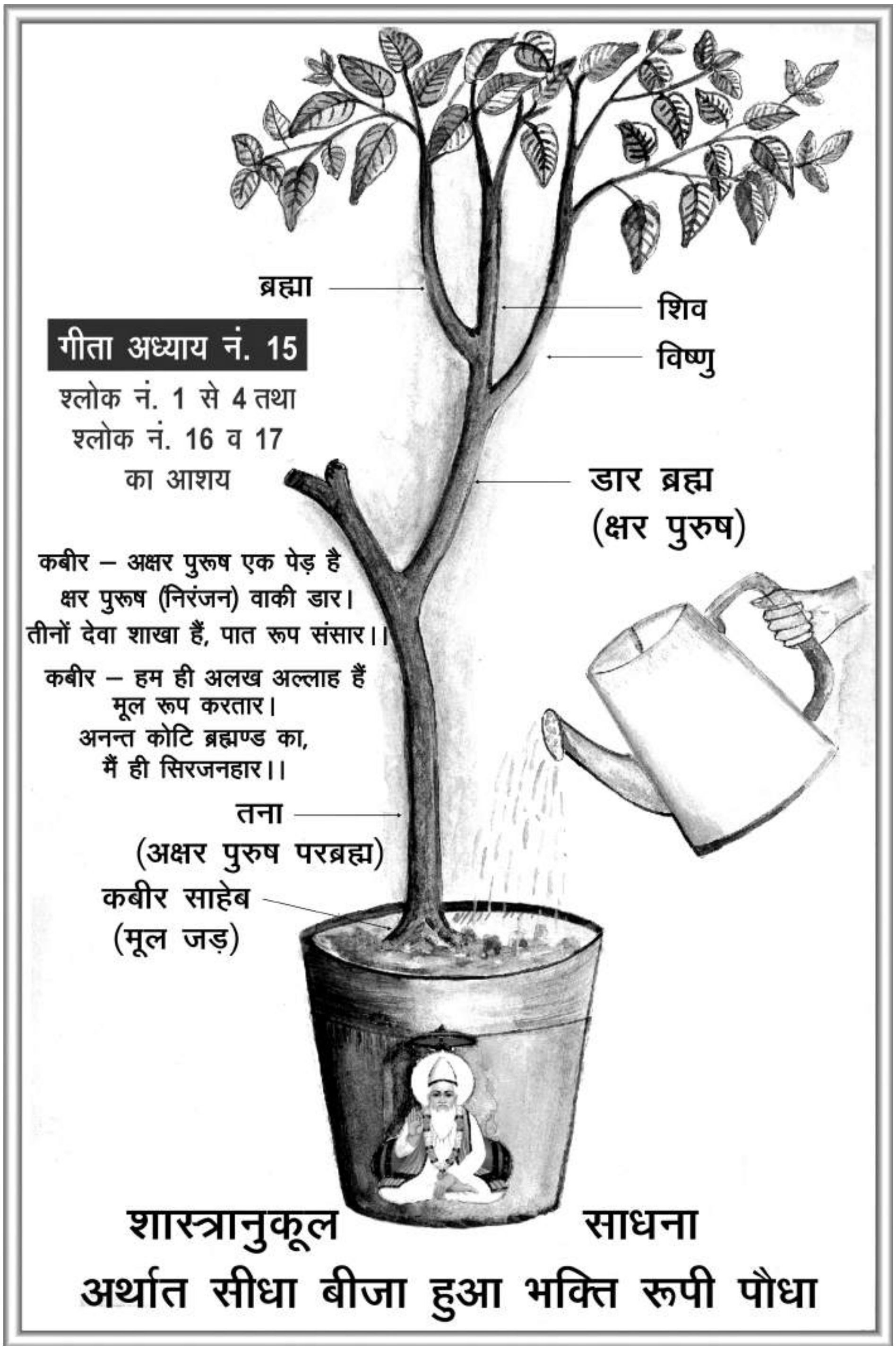
ब्रह्मा
शिव
गीता अध्याय नं. 15
विष्णु
श्लोक नं. 1 से 4 तथा
श्लोक नं. 16 व 17
का आशय
डार ब्रह्म
(क्षर पुरुष)
कबीर – अक्षर पुरूष एक पेड़ है
क्षर पुरुष (निरंजन) वाकी डार।
तीनों देवा शाखा हैं, पात रूप संसार।।
कबीर – हम ही अलख अल्लाह हैं
मूल रूप करतार।
अनन्त कोटि ब्रह्मण्ड का,
मैं ही सिरजनहार।।
तना
(अक्षर पुरुष परब्रह्म)
कबीर साहेब
(मूल जड़)
शास्त्रानुकूल साधना
अर्थात सीधा बीजा हुआ भक्ति रूपी पौधा

विशेष :- गीता अध्याय 15 श्लोक 1 से 4 में वर्णित उल्टा लटका हुआ संसार रूपी वक्ष है, उस की जड़ (मूल) तो पूर्ण परमात्मा है तथा तना परब्रह्म अर्थात् अक्षर पुरुष है तथा डार क्षर पुरुष (ब्रह्म) है व तीनों गुण अर्थात् रजगुण ब्रह्मा जी, सतगुण विष्णु जी, तमगुण शिव जी रूपी शाखायें हैं। वक्ष को मूल(जड़) से ही खुराक अर्थात् आहार प्राप्त होता है। जैसे हम आम का पौधा लगायेंगे तो मूल को सीचेंगे, जड़ से खुराक तना में जायेगी, तना से मोटी डार में, डार से शाखाओं में जायेगी, फिर उन शाखाओं को फल लगेंगे, फिर वह टहनियां अपने आप फल देंगी। इसी प्रकार पूर्णब्रह्म अर्थात् परम अक्षर ब्रह्म रूपी मूल की पूजा अर्थात् सिंचाई करने से अक्षर पुरुष अर्थात् परब्रह्म रूपी तना में संस्कार अर्थात् खुराक जायेगी, फिर अक्षर पुरुष से क्षर पुरुष अर्थात् ब्रह्म रूपी डार में संस्कार अर्थात् खुराक जायेगी। फिर ब्रह्म से तीनों गुण अर्थात् श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी, श्री शिव जी रूपी तीनों शाखाओं में संस्कार अर्थात् खुराक जायेगी। फिर इन तीनों देवताओं रूपी टहनियों को फल लगेंगे अर्थात् फिर तीनों प्रभु श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी, श्री शिव जी हमें संस्कार आधार पर ही कर्म फल देते हैं। यही प्रमाण गीता अध्याय 15 श्लोक 16 व 17 में भी है कि दो प्रभु इस पथ्वी लोक में हैं, एक क्षर पुरुष अर्थात् ब्रह्म, दूसरा अक्षर पुरुष अर्थात् परब्रह्म। ये दोनों प्रभु तथा इनके लोक में सर्व प्राणी तो नाशवान हैं, वास्तव में अविनाशी तथा तीनों लोकों में प्रवेश करके सर्व का धारण-पोषण करने वाला परमेश्वर परमात्मा तो उपरोक्त दोनों भगवानों से भिन्न है।

।। जो धर्म नहीं करते वे चोर व पापी प्राणी हैं।।

गीता अध्याय 3 के श्लोक 12 का हिन्दी अनुवाद :- यज्ञ यानि धार्मिक अनुष्ठानों के द्वारा बढ़ाए हुए देवता तुम साधकों को इच्छित भोग यानि सुख पदार्थ बिना माँगे निश्चय ही देते रहेंगे। भावार्थ है कि भक्ति रूपी पौधे के मूल की सिंचाई करके पेड़ बना लेते हैं। शाखाऐं बढ़ जाती हैं। उन शाखाओं को अपने-आप फल लगते हैं। बिना माँगे ही सेवक को फल देते हैं। इस प्रकार पूर्ण परमात्मा रूपी मूल यानि जड़ की ईष्ट रूप में प्रतिष्ठित करके पूजा करने वाले के शास्त्र अनुकूल भक्ति कर्मों का फल तीनों देवता (श्री ब्रह्मा, श्री विष्णु तथा श्री शिव) ही बिना माँगे देते रहते हैं। जो धन कर्मानुसार मानव को मिला है, यदि उसमें से दान-धर्म नहीं करते यानि देवताओं को नहीं बढ़ाते यानि मूल मालिक को ईष्ट देव रूप में प्रतिष्ठित करके दान नहीं देते, अपितु स्वयं ही भोगते हैं। वह तो परमात्मा का चोर है।(3/12)

गीता अध्याय 3 श्लोक 13 का अनुवाद :- जैसे गीता अध्याय 3 के श्लोक 12 में कहा है कि यज्ञ (शास्त्रविधि से किए धार्मिक अनुष्ठान) से पुष्ट(इष्ट) देवता आपको सांसारिक सुविधा कर्मफल के आधार पर देते हैं। फिर जो उसका कुछ अंश धर्म में नहीं लगाते अर्थात् जो धर्म यज्ञ आदि नहीं करते वे (संविधान तोड़े हुए हैं) पापी हैं, चोर हैं। गीता अध्याय 3 के श्लोक 13 में वर्णन है कि यज्ञ में प्रतिष्ठित (पूर्ण परमात्मा) इष्टदेव को भोग लगाकर फिर भण्डारा करें। वे साधक यज्ञ के द्वारा होने वाले लाभ को प्राप्त हो जाएंगे। [सर्व पापों से मुक्त होने का अभिप्राय यह है कि जो यज्ञ नहीं करते वे पापी कहे हैं और जो शास्त्र विधि के अनुसार (मतानुसार) यज्ञ करते हैं वे उन सर्व पापों से बच जाते हैं जो यज्ञ न करने से लगने थे] यदि कोई यज्ञ आदि धार्मिक अनुष्ठान नहीं करता, वह तो चोर बताया है। प्रतिदिन या सत्संग के समय भोजन प्रसाद बनता है। सर्व प्रथम कुछ भोजन अलग निकाल कर पूर्ण परमात्मा को भोग लगाया जाना चाहिए। उसके पश्चात् शेष भोजन भण्डारा वितरित किया जाना चाहिए। प्रभु के भोग से बचा शेष भोजन व प्रसाद खाने वाले के कुछ पाप

विनाश हो जाते हैं। इस प्रकार पूर्ण संत से उपदेश प्राप्त करके उसके बताए अनुसार सर्व भक्ति कार्य करने से साधक पूर्ण मुक्त हो जाता है।

''काल ब्रह्म का उत्पत्तिकर्ता तथा यज्ञों में प्रतिष्ठित पूर्ण परमात्मा है''

गीता अध्याय 3 के श्लोक 14-19 का हिन्दी अनुवाद :-

❖ *प्राणी अन्न से उत्पन्न होते हैं। अन्न वर्षा से उत्पन्न होता है। वृष्टि यज्ञ से यानि धार्मिक अनुष्ठान से होती है। यज्ञ यानि धार्मिक अनुष्ठान शास्त्र अनुकूल कर्मों से सफल होते हैं।(3/14)*

❖ *कर्मों को तू ब्रह्म यानि काल ब्रह्म से उत्पन्न जान क्योंकि जीव सतलोक को त्यागकर काल लोक में आए तो कर्म करके सर्व पदार्थ प्राप्त करते हैं। सतलोक में बिना कर्म किए सर्व पदार्थ प्राप्त होते हैं। वहाँ नैष्कर्मय मुक्ति जीव को प्राप्त होती है। इस श्लोक में आगे कहा है कि ब्रह्म यानि काल ब्रह्म की उत्पत्ति अविनाशी परमात्मा यानि परम अक्षर पुरूष से हुई है, ऐसा जान। इससे सिद्ध होता है कि (''सर्वगतम् ब्रह्म'') सर्वव्यापी परम अक्षर ब्रह्म सदा ही यज्ञों यानि धार्मिक अनुष्ठानों में प्रतिष्ठित है, ईष्ट रूप में पूज्य है।(3/15)*

❖ *हे पथ्यु पुत्र यानि पार्थ! जो व्यक्ति इस काल ब्रह्म के लोक में इस प्रकार प्रचलित विद्यान चक्र के अनुकूल नहीं बरतता यानि शास्त्रों में दिए व्याख्यान के अनुसार भक्ति कर्म नहीं करता, वह इन्द्रियों के भोगों में रमण करने वाला पापायु यानि जीवनभर पाप करने वाला व्यक्ति व्यर्थ ही जीवित रहता है।(3/16)*

❖ *परंतु जो मानव आत्मा यानि सच्चे मन से परमात्मा के विद्यान का पालन करता है और जो अपने शास्त्र अनुकूल कर्म से तृप्त है तथा जिसे अपनी आत्मा से किए शास्त्रानुकूल कर्म से संतुष्टि हो, उसके लिए अन्य पदार्थ की प्राप्ति के लिए कर्मों से कोई प्रयोजन नहीं रहता।(3/17)*

❖ *उस महापुरूष के लिए विश्व में न तो व्यर्थ के पाप कर्म करने से कोई प्रयोजन रह जाता है तथा न शास्त्रानुकूल धार्मिक कर्म न करने से कोई प्रयोजन रह जाता है यानि तत्वज्ञान परिचित व्यक्ति अशुभ कर्म कदापि नहीं करता तथा शुभ व शास्त्रोक्त साधना किए बिना भी नहीं रह सकता। वह केवल परमार्थ के कार्य ही करता है। किसी भी प्राणी से स्वार्थ सिद्धि के लिए ही सम्बन्ध नहीं रखता। वह सबका शुभचिंतक होता है।(3/18)*

❖ *इसलिए आप तथा अन्य साधक निरंतर आसक्ति रहित होकर सदा शास्त्रोक्त कर्तव्य कर्म को भली-भांति करते रहो क्योंकि काल लोक से आसक्ति हटाकर शास्त्रोक्त भक्ति कर्म करता हुआ साधक (परम् पुरूषः) गीता ज्ञान दाता से पर यानि दूसरे पुरूषः यानि परमात्मा को प्राप्त होता है।(3/19)*

विश्लेषण :- गीता अध्याय 3 के श्लोक 19 में मूल पाठ में लिखा है कि साधक शास्त्रोक्त साधना करके ''परम् आप्नोति पुरूषः'' अन्य परमात्मा को प्राप्त होता है। ''परम्'' का अर्थ अन्य गीता अनुवादकों ने ''परम्'' का अर्थ परमात्मा किया है। इन्हीं अनुवादकों ने इसी अध्याय 3 के श्लोक 42-43 में ''परम्'' का अर्थ ''पर'' किया है। ''पर'' का अर्थ ''श्रेष्ठ'' किया है। यदि हिन्दी की बात करें तो ''पर'' का अर्थ अन्य या आगे वाला (Next) होता है। जैसे दादा, फिर परदादा तथा ब्रह्म, फिर परब्रह्म यानि दूसरा ब्रह्म या अन्य ब्रह्म होता है। इन्हीं अनुवादकों ने गीता अध्याय 8 श्लोक 20 में ''परः'' का अर्थ परे किया है। अध्याय 8 के ही श्लोक 22 में ''परः'' का अर्थ ''परम'' किया है जबकि मूल पाठ से स्पष्ट है कि परः का अर्थ अन्य यानि दूसरा है, जैसे अध्याय 8 श्लोक

22 में परः का अर्थ अन्य, दूसरा सही है जो इस प्रकार है :-

पुरूषः सः परः पार्थ भक्त्या लभ्यः तु अनन्यया। यस्य अन्तः स्थानि भूतानि येन सर्वम् इदम् ततम्।।(8/22)

इस अध्याय 8 के श्लोक 22 का यथार्थ अनुवाद इस प्रकार है :- (पार्थ) हे पार्थ! (सः परः पुरूषः) वह मेरे से अन्य परमात्मा (तू) तो (अनन्या भक्तया लभ्यः) अनन्य भक्ति से प्राप्त होने योग्य है। जिस परमात्मा के आधीन सर्व प्राणी हैं और जिस सच्चिदानंद घन परमात्मा से यह सम्पूर्ण जगत परिपूर्ण है यानि जो सर्वगतम् यानि सर्वव्यापी परमात्मा है। वह गीता ज्ञान दाता से अन्य है।(8/22)

इन्हीं गीता के अनुवादकों ने गीता अध्याय 7 के श्लोक 13 में ''परम्'' का अर्थ परे किया है जो मूल पाठ व अनुवाद में इस प्रकार है :- (एभ्यः) इन तीनों गुणों से (परम्) परे (माम्) मुझ (अव्ययम्) अविनाशी को (न) नहीं (अभिजानाति) जानते तथा अध्याय 14 श्लोक 19 में भी ''परम्'' का अर्थ परे किया है। लेखक यह सिद्ध करना चाहता है कि मेरे अतिरिक्त विश्व में किसी को भी सम्पूर्ण आध्यात्मिक ज्ञान नहीं। जिस कारण से सबने अर्थों का अनर्थ करके गीता की गरिमा को गिराया है। श्री कष्ण उर्फ विष्णु को सर्व का मालिक परमात्मा बताया है जो स्पष्ट झूठ है। इसी कारण से जहाँ-जहाँ गीता में अस्पष्ट यानि सांकेतिक या संक्षिप्त में लिखा है कि पूर्ण परमात्मा गीता ज्ञान दाता से भिन्न है। वहाँ-वहाँ पर अनुवाद बिल्कुल गलत कर दिया। अर्थों का अनर्थ किया है। जिन श्लोकों में गीता ज्ञान देने वाले से अन्य पूर्ण परमात्मा का स्पष्ट वर्णन है, वहाँ अन्य अनुवादकर्ताओं ने स्पष्ट लिखना पड़ा, परंतु इनको पता नहीं वह कौन परमात्मा है?

जैसे गीता अध्याय 8 श्लोक 3, 8-10, 20, 21, 22 में, अध्याय 4 श्लोक 31-32 में, अध्याय 5 श्लोक 14-16, 19, 20, 24-26 , अध्याय 6 श्लोक 7, अध्याय 12 श्लोक 1-5, अध्याय 13 श्लोक 12-28, 30, 31, 34 में, अध्याय 18 श्लोक 46, 61, 62, 66 में गीता ज्ञान देने वाले से अन्य पूर्ण परमात्मा का वर्णन है।

❖ *उपरोक्त श्लोकों को आप इसी पुस्तक के उसी अध्याय के सारांश में पढ़ें जहाँ पर विस्तार से वर्णन है।*

उदाहरण के लिए गीता अध्याय 4 श्लोक 31 में अन्य परमात्मा का स्पष्ट वर्णन मूल पाठ में है तो अनुवादकों ने स्पष्ट लिखना पड़ा, परंतु श्लोक 32 में सांकेतिक वर्णन है। वहाँ अर्थ का अनर्थ करके गलत अनुवाद कर दिया। इसमें ''ब्रह्मणः'' शब्द का अर्थ वेद कर दिया जबकि इन्होंने ही गीता अध्याय 17 श्लोक 23 में ब्रह्मणः का अर्थ सच्चिदानंद घन ब्रह्म यानि पूर्ण ब्रह्म ठीक किया है। इसलिए अध्याय 4 श्लोक 32 में भी पूर्ण परमात्मा का वर्णन है। प्रसंग चल रहा है कि गीता अध्याय 3 के श्लोक 19 में ''परम् = पर'' का अर्थ अन्य अनुवादकों ने ''परम्'' यानि पर का अर्थ परमात्मा किया है तथा एस्कोन वालों ने ''परम्'' यानि पर का अर्थ परब्रह्म किया है। जिससे यह तो प्रमाणित होता है कि अनुवादक मानते हैं कि इस अध्याय 3 के श्लोक 19 में गीता ज्ञान दाता से अन्य (दूसरे) परमात्मा का वर्णन है। परब्रह्म का भी अर्थ अन्य यानि दूसरा ब्रह्म यानि अन्य परमात्मा बनता है, अनुवाद में गोलमाल करना चाहा है। परंतु सच्चाई छिपती नहीं है। मूल पाठ में ''परम् पुरूषः आप्नोति'' से स्पष्ट है कि गीता ज्ञान दाता से पर पुरूष यानि दूसरे परमात्मा को (आप्नोति) प्राप्त होता है। यह ठीक है। इस अध्याय 3 श्लोक 35 में ''पर धर्म'' का अर्थ दूसरे का धर्म इन्हीं अनुवादकों ने किया है। इसलिए यहाँ भी ''परम्'' का अर्थ दूसरा पुरूष यानि परमात्मा करना उचित है।

❖ *गीता अध्याय 3 के श्लोक 14-15 में कहा है कि सब प्राणी अन्न से उत्पन्न होते हैं। अन्न वर्षा से होता है, वर्षा यज्ञ से होती है, यज्ञ शुभ कर्मों से उत्पन्न होते हैं तथा कर्म, ब्रह्म (काल) द्वारा उत्पन्न हुए और ब्रह्म (काल) अविनाशी परमात्मा से उत्पन्न हुआ है। वही सर्वव्यापी अविनाशी परमात्मा सदा ही यज्ञों में प्रतिष्ठित है अर्थात् यज्ञों से होने वाला लाभ भी वही (सतपुरुष ही) देता है। इसलिए यज्ञों का भी पूर्ण लाभ पूर्ण परमात्मा से ही सिद्ध हुआ। इन दोनों श्लोकों में स्पष्ट है कि काल ब्रह्म की उत्पत्ति अविनाशी परमात्मा से हुई है। वही सर्वव्यापी परमात्मा ही यज्ञों द्वारा पूज्य है तथा वही फल देता है। 'सर्वगतम् ब्रह्म' का अर्थ है सर्वव्यापी भगवान यानि वासुदेव। जैसे काल ब्रह्म तो केवल इक्कीस ब्रह्मण्डों में व्यापक है। परब्रह्म केवल सात संख ब्रह्मण्डों में व्यापक है। परंतु पूर्णब्रह्म (सतपुरुष) असंख ब्रह्मण्डों (सर्व ब्रह्मण्डों) जिसमें ब्रह्म व परब्रह्म के ब्रह्मण्ड और अन्य ब्रह्मण्ड भी शामिल हैं, में व्यापक है। इसलिए सर्वव्यापक परमात्मा ''पूर्ण ब्रह्म'' हुआ जो सर्वव्यापक भगवान और कुल मालिक है। जैसे :-*

❖ *ईश = क्षर पुरुष = ब्रह्म (इक्कीस ब्रह्मण्ड में व्यापक है।)*

❖ *ईश्वर = अक्षर पुरुष = परब्रह्म (सात संख ब्रह्मण्ड में व्यापक है।)*

❖ *परमेश्वर = परम अक्षर पुरुष = पूर्णब्रह्म (सतपुरुष) जो अनन्त कोटि ब्रह्मण्डों में व्यापक है यानि सर्वव्यापक है।*

जैसे मन्त्री अपने विभाग में व्यापक है, मुख्य मन्त्री अपने राज्य (state) में व्यापक है और प्रधान मन्त्री पूरे देश (राष्ट्र) के सब राज्यों (states) में व्यापक है और राष्ट्रपति भी सर्व राष्ट्र में व्यापक है प्रत्येक प्रभु में शक्ति है परंतु कुल मालिक (पूर्ण शक्ति युक्त) प्रधान मन्त्री तथा राष्ट्रपति हैं। इसी प्रकार ब्रह्म (ईश/काल) के तीनों पुत्र (ब्रह्मा, विष्णु, शिव) प्रान्त अर्थात् एक ब्रह्मण्ड में विभागीय मन्त्री (स्वामी) हैं। ब्रह्मा सर्व जीवों को उत्पन्न करने वाले विभाग का मालिक है, परंतु सब का मालिक नहीं है। इसी प्रकार विष्णु स्थिती करने वाले विभाग में मालिक है, परंतु सब का मालिक नहीं है। इसी प्रकार शिव (संहार करने) विनाश करने के विभाग के मालिक हैं परंतु सब के मालिक नहीं हैं। इसी प्रकार ब्रह्म (ईश/ज्योतिनिरंजन/काल) केवल इक्कीस ब्रह्मण्ड के मालिक हैं, सब के मालिक नहीं हैं। इसी प्रकार अक्षर पुरुष (ईश्वर/परब्रह्म) केवल सात संख ब्रह्मण्ड के मालिक हैं सर्व के मालिक नहीं हैं।

हाँ, पूर्णब्रह्म (परमेश्वर/सतपुरुष) अनंत करोड़ ब्रह्मण्डों जिसमें ब्रह्मा-विष्णु-शिव के तीनों (स्वर्ग-मत्यु-पाताल) लोक, ब्रह्म के इक्कीस ब्रह्मण्ड व परब्रह्म के सात संख ब्रह्मण्ड भी शामिल हैं, का मालिक है अर्थात् कुल का मालिक सर्वव्यापक परमात्मा (सर्वगतम् ब्रह्म/ सतपुरुष) ही है जो सर्व साधनाओं का फल दाता है। जैसे वृक्ष की जड़ें (मूल) ही पूर्ण वृक्ष की पालन कर्त्ता हैं। ऐसे --

कबीर, अक्षर पुरुष एक पेड़ है, निरंजन वाकी डार। तीनों देवा साखा हैं, पात रूप संसार।।1।।
कबीर, एकै साधे सब सधै, सब साधे सब जाय। माली सीचैं मूल कूं, फूलै फलै अघाय।।2।।
कबीर, हम ही अलख अल्लाह हैं, मूल रूप करतार। अनंत कोटि ब्रह्मण्ड का, मैं ही सजनहार।।3।।

भावार्थ :- गीता अध्याय 15 श्लोक 1-4 में प्रमाण है, उसी का वर्णन परमेश्वर कबीर जी ने सम्पूर्ण तथा विस्तार से बताया है कि मैं (परम अक्षर पुरुष) तो संसार रूपी वृक्ष का मूल हूँ। मैं ही सर्व ब्रह्मण्डों का रचने वाला हूँ। मूल होने से सर्व का पोषण करता हूँ तथा अक्षर पुरूष संसार वृक्ष का तना जानो और क्षर पुरूष मोटी डारों में से एक डार जानो तथा तीनों देवताओं (ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव) को उस डार रूप क्षर पुरूष पर लगी तीन शाखा जानो। उन शाखाओं पर लगे पत्तों को

संसार के जीव-जंतु, मानव आदि प्राणी जानो। एक जड़ की सिंचाई करने से सर्व वक्ष फल-फूल जाता है। यदि शाखाओं को जमीन में रोपकर सिंचाई करेंगे तो पौधा नष्ट हो जाएगा। इसलिए एक पूर्ण परमात्मा को इष्ट रूप में पूजने से भक्ति रूपी पौधा फलता-फूलता है यानि सर्व लाभ मिलते हैं।

(गीता अध्याय 3 श्लोक 10-19 तक का भावार्थ जानने के लिए देखें भक्ति रूपी पौधे का चित्र इसी पुस्तक के पष्ठ 152-153 पर।)

गीता अध्याय 3 के श्लोक 16 में लिखा है कि जो यज्ञ नहीं करता वह व्यर्थ जीवन जी रहा है। जो व्यक्ति इस लोक में बने भक्ति नियमों (भजन करना, यज्ञ, दान, दया करना) का पालन नहीं करता, मौज मारता रहता है, वह पाप आत्मा संसार में व्यर्थ ही आया है।

संत गरीबदास जी महाराज कहते हैं कि :-

जिन पुत्र नहीं यज्ञ करी, पिंड प्रधान पराण। नाहक जग में अवतरे, जिनसे नीका श्वान।।

भावार्थ :- जिस पुत्र ने शास्त्रविधि अनुसार धार्मिक अनुष्ठान नहीं किए और शास्त्र विरूद्ध पिण्डदान, श्राद्ध आदि कर्मकाण्ड किए, उससे तो कुत्ता भी अच्छा यानि पिता की आत्मा धार्मिक पुत्र से प्रसन्न होती है। पिता या माता के जीवन काल में पुत्र को चाहिए कि गुरू जी की आज्ञा लेकर धर्म-कर्म करे। अन्यथा उस पुत्र से तो पशु भी अच्छा है।

[गुरू से दीक्षा लेकर नाम जाप न करके केवल यज्ञ करने से मुक्ति नहीं है बल्कि यह लेन-देन बताया। गीता जी के अध्याय 3 के श्लोक 9 से 16 तक का भावार्थ है कि यज्ञ करने से मात्र एक सांसारिक सुविधा उपलब्ध होती है, मुक्ति नहीं। परंतु यज्ञ मोक्ष में सहयोगी हैं। बिना नाम दीक्षा लिए की गई यज्ञ केवल संसारिक सुविधाऐं देती हैं। साथ में यह भी सिद्ध हुआ कि यह सर्व सुविधा भी पूर्णब्रह्म सतपुरुष (मूल=जड़ों) द्वारा दी जाती है जो स्वयं कबीर साहेब (कविर्देव) हैं।] मुझ दास (रामपाल दास) के अतिरिक्त श्रीमद्भगवद् गीता जी के सब अनुवादकर्ताओं ने भिन्न-भिन्न अध्यायों में ब्रह्म का अर्थ वेद तथा परमात्मा दोनों किया है। यह उनकी अल्पज्ञता का ही प्रमाण है, ब्रह्म का अर्थ परमात्मा होता है, वेद नहीं। जैसे एक तो राजा होता है, वह तो ब्रह्म जानों तथा एक उसके द्वारा बनाया गया संविधान होता है, वह वेद जानों। कोई अज्ञानी राजा का अर्थ नरेश न करके संविधान करे तो उचित नहीं। इसलिए ब्रह्म का अर्थ परमात्मा होता है। जैसे किसी उपायुक्त के कार्यालय के अन्य अधिकारी व कर्मचारी आपस में चर्चा करते समय बार-बार उपायुक्त साहेब न कह कर केवल साहेब ही प्रयोग करते हैं। उपायुक्त साहेब का कोई आदेश एक-दूसरे को सुनाते समय कहते हैं कि साहेब ने कहा है कि अमुक दस्तावेज तैयार करो। उनके लिए उपायुक्त साहेब स्वयं ही जाना माना होता है।

इसी प्रकार काल ब्रह्म (ज्योति निरंजन-काल) के इक्कीस ब्रह्मण्ड़ों में इसी क्षर पुरुष को साहेब अर्थात् ब्रह्म नाम से जाना जाता है। इसलिए उपरोक्त श्लोकों में जाना-माना होने के कारण लिखा है कि ब्रह्म की उत्पत्ति अविनाशी परमात्मा (सर्व व्यापक पूर्ण परमात्मा) से हुई है। वही सर्वगतम् ब्रह्म अर्थात् सर्वव्यापक परमात्मा ही यज्ञों में प्रतिष्ठित है यानि पूज्य है।

❖ *गीता अध्याय 3 के श्लोक 17-18 का भावार्थ है कि जो व्यक्ति आत्म-तत्व का ध्यान करता है उसे अन्य यज्ञों की भी आवश्यकता नहीं होती क्योंकि ध्यान भी एक यज्ञ है तथा ध्यान वही व्यक्ति अधिक करता है जो वान परस्थ हो जाता है जैसे श्रंगी ऋषि हुआ था। वह भी ध्यान में रहता था। फिर वह अन्य यज्ञ नहीं कर सकता। परंतु तत्वज्ञान हो जाने के पश्चात् साधक न तो शास्त्र विधि रहित साधना (मनमाना आचरण) करता है तथा न ही स्वार्थवश करवाता है। उसका उद्देश्य*

स्वार्थवश धन उपार्जन नहीं रहता। इसलिए कहा है कि कोई कार्य नहीं रहता अर्थात् निरंतर प्रभु चिन्तन में ही मग्न रहता है।

।। मनोकामना पूर्ति की इच्छा के बिना किया हुआ धर्म पूर्ण लाभदायक।।

गीता अध्याय 3 के श्लोक 20 में प्रमाण है कि -

बिन इच्छा जो देत है, सो दान कहावै। फल बाचैं नहीं तासका, सो अमरापुर जावै।

शब्दार्थ :- जो श्रद्धालु किसी मनोकामना की पूर्ति की इच्छा न रखकर अपना धार्मिक कर्तव्य जानकर दान करता है, वह वास्तविक दान है। ऐसा व्यक्ति पूर्ण गुरू से दीक्षा लेकर अमर लोक (शाशवत स्थान) में चला जाता है यानि मोक्ष प्राप्त करता है।

राजा जनक भी यज्ञ आदि करते थे परंतु इच्छा रूपी नहीं। मनुष्य का कर्तव्य समझ कर किया गया यज्ञ परमात्मा प्राप्ति में सहयोग देता है तथा यज्ञ का फल भी देता है।

।। कथनी और करनी में अंतर।।

(इन श्लोकों से भी स्पष्ट है कि गीता का ज्ञान काल ब्रह्म ने श्री कृष्ण जी में प्रवेश करके बोला था।)

❖ *गीता अध्याय 3 के श्लोक 21 से 24 में कहा है कि हे अर्जुन! ज्ञानी साधु संतों को अच्छे कर्म शास्त्र अनुकूल करने चाहिए, चूंकि उन्हीं (संत जनों) का अनुसरण अन्य समाज भी करता है। जबकि मुझे तीन लोक में कोई कर्म करने की आवश्यकता नहीं क्योंकि तीन लोक की सर्व सुविधा मैं बिन कर्म किए भी प्राप्त कर सकता हूँ। फिर भी अच्छे कर्म करता हूँ ताकि अन्य प्राणी भी मेरा अनुसरण करें, नहीं तो मैं समाज का नाश करने वाला वर्णशंकरता को पैदा करने वाला साबित हो जाऊँ।*

विचार करें :- श्री कृष्ण जी के चरित्र का अनुसरण करने से तो समाज में अराजकता, अश्लीलता का आलम हो जाएगा। जैसे कुंवारी राधा से रमण (काम क्रीड़ा), कुंवारी कुब्जा से भोग विलास, गोपियों के वस्त्र हरण करना तथा उनको जल से निःवस्त्र बाहर निकालना। गोपियों ने जल से बाहर आते समय एक हाथ से गुप्तांग को ढ़का हुआ था तथा दूसरे से अपनी छातियों को छुपा रखा था। फिर भी श्री कृष्ण भगवान बोले कि ऐसे नहीं, दोनों हाथ ऊपर करो, तब कपड़े मिलेंगे। जब सब गोपियों ने दोनों हाथ ऊपर किए, उस समय वे बिल्कुल नग्न थी। तब भगवान कृष्ण जी ने उनके कपड़े दिए। अधिक जानकारी के लिए पढ़ें ''श्री मद्भागवत सुधा सागर''।

❖ *रूकमणी को जबरदस्ती उठा कर भाग जाना और जब उसके भाई रूकमी ने अपनी बहन की इज्जत बचाने के लिए पीछा किया तो श्री कृष्ण जी ने उसे रथ से बाँध कर घसीटा।*

❖ *अर्जुन को क्षत्री धर्म पालन न करने से होने वाली हानि जोर देकर समझाना तथा स्वयं काल्यवन राजा के सामने युद्ध छोड़ कर भाग जाना, क्षत्रिय धर्म के विरुद्ध आचरण है।*

❖ *युधिष्ठिर से झूठ बुलवाना कि कह दे कि अश्वत्थामा (द्रोणाचार्य का पुत्र) मर गया आदि-2। कथनी और करनी में अंतर भी यह सिद्ध करता है कि भगवान कृष्ण जी ने श्रीमद् भगवद् गीता नहीं कही। गीता ज्ञान कहने वाला गीता जी में कहता है कि यदि सोच समझ कर कर्म न करुं तो मैं वर्णशंकरता का कारण साबित होऊँ। फिर कथन से विरूद्ध आचरण। पवित्र श्रीमद् भगवद् गीता जी श्री कृष्ण जी के शरीर में प्रविष्ट करके काल (ब्रह्म) भगवान ने अपना उल्लु सीधा (युद्ध करवा कर लाखों व्यक्तियों का संहार करवाना था) करने के लिए कही, क्योंकि काल (ब्रह्म) ने गीता*

अध्याय 11 श्लोक 48 में कहा है कि मैं किसी को किसी भी साधना से दर्शन नहीं दूंगा। परंतु सर्व कार्य मेरे द्वारा गुप्त शक्ति (निराकार शक्ति) से किए जाएंगे। गीता अध्याय 7 श्लोक 24-25 में भी स्पष्ट कहा है कि मैं अपनी योगमाया से छिपा रहता हूँ। यह मेरा अटल अनुत्तम यानि घटिया नियम है। मैं कभी किसी के प्रत्यक्ष नहीं होता। यदि श्री कृष्ण गीता बोल रहे होते तो यह नहीं कहते। वे तो सर्व के समक्ष उपस्थित थे।

इससे सिद्ध हुआ कि गीता का ज्ञान काल ब्रह्म ने श्री कृष्ण जी के शरीर में प्रवेश करके कहा था। गीता अध्याय 3 के श्लोक 21-25 का हिन्दी अनुवाद :-

❖ *श्रेष्ठ व्यक्ति जैसा आचरण करते हैं, अन्य व्यक्ति भी वैसा ही आचरण करते हैं। वह जैसा भी प्रमाण जनता के समक्ष कर देता है, उस क्षेत्र के अन्य व्यक्ति समुदाय उसके अनुसार बरतने लगते हैं।(3/21)*

❖ *हे पार्थ यानि हे अर्जुन! मेरे लिए तीनों लोकों में न तो कुछ कर्तव्य है और न कोई प्राप्त करने योग्य वस्तु अप्राप्त है। फिर भी मैं (गीता ज्ञान दाता) कर्मों में ही बरतता हूँ।(3/22)*

❖ *क्योंकि हे पार्थ! यदि कदाचित मैं सावधान होकर कर्मों में न बरतूँ तो बड़ी हानि हो जाए क्योंकि मनुष्य सब प्रकार से मेरे ही मार्ग का अनुसरण करते हैं।(3/23)*

❖ *यदि मैं सावधान होकर शुभ कर्म न करूँ तो ये सब मनुष्य नष्ट-भ्रष्ट हो जायें और मैं यानि गीता ज्ञान दाता संकरता करने वाला होऊँ। इस लोक की समस्त प्रजा को नष्ट करने वाला बनूँ।(3/24)*

❖ *हे भारत यानि भरतवंशी अर्जुन! कर्मों में आसक्त हुए अज्ञानी जन जिस प्रकार दृढ़तापूर्वक कर्म करते हैं। आसक्ति रहित विद्वान व्यक्ति को चाहिए कि लोक संग्रह करता हुआ यानि शुभ कर्मों का प्रचार करके तथा स्वयं अच्छा आचरण करके अपने अनुयाई बनाने के लिए उसी प्रकार दृढ़ता से कर्म करे। जैसे अज्ञानी गलत को पूरी लगन से करता है, मुड़कर नहीं देखता। उसी प्रकार परमार्थी को परमार्थ पर लगना चाहिए।(3/25)*

।। विद्वानों (शिक्षित) व्यक्तियों को चाहिए कि वे शास्त्रों अनुसार साधना करें।।

❖ *गीता अध्याय 3 श्लोक 25 से 29 तक का भावार्थ :- पवित्र यजुर्वेद अध्याय 40 श्लोक 13 में वेद ज्ञान दाता ब्रह्म ने कहा है कि जिस व्यक्ति को अक्षर ज्ञान है उसे विद्वान कहते हैं जिसे अक्षर ज्ञान नहीं है उसे अविद्वान कहते हैं। परन्तु विद्वान तथा अविद्वान की वास्तविक जानकारी तत्वदर्शी सन्त ही बताते हैं उनसे सुनों। पूर्ण परमात्मा कविर्देव जी ने अपनी अमृतवाणी (कविर्वाणी) में विद्वान तथा अविद्वान की परिभाषा बताई है। कहा है कि जिसे तत्वज्ञान है वह वास्तव में विद्वान है। केवल अक्षर ज्ञान (किसी भाषा का ज्ञान) होने से विद्वान नहीं होता। क्योंकि जो संस्कृत भाषा में विद्वान माना जाता है, वह पंजाबी भाषा को न जानने वाला उस भाषा में अविद्वान है।*

इसी आधार से गीता अध्याय 3 श्लोक 25 से 29 तक के ज्ञान को जानना है। श्लोक 25 में कहा है कि शास्त्रअनुकूल साधना रूपी कर्तव्य कर्म में आसक्त अविद्वान अर्थात् अशिक्षित् जिस प्रकार भक्ति कर्त्तव्य कर्म करते हैं। विद्वान (शिक्षित्) भी लोक संग्रह अर्थात् अधिक अनुयाई इकट्ठे करना चाहता हुआ उसी प्रकार करे (जैसे अविद्वान अर्थात् भोले भाले अशिक्षित शास्त्रानुकूल साधना तत्वदर्शी सन्त से प्राप्त करके करते हैं इस प्रकार पाप को प्राप्त नहीं होगा।)

❖ *अध्याय 3 श्लोक 26 का भावार्थ है कि तत्वदर्शी सन्त द्वारा शास्त्रविधि अनुसार साधना प्राप्त अशिक्षित व्यक्ति की बुद्धि में शिक्षित (अक्षर ज्ञान युक्त) व्यक्ति भ्रम उत्पन्न न करे अपितु स्वयं भी शास्त्रअनुसार साधना करे तथा उनको भी प्रोत्साहित करे। जैसे परमेश्वर कबीर बन्दी छोड़ जी तत्वदर्शी संत की भूमिका करने के लिए काशी नगर में जुलाहा जाति में प्रकट हुए। लोग उन्हें अशिक्षित अर्थात् अविद्वान मानते थे। परन्तु वे सर्व विद्वानों के विद्वान तथा सर्व भगवानों के भगवान हैं। अन्य अशिक्षित व्यक्तियों को शास्त्रविधि अनुसार साधना प्रदान करते थे। अन्य अक्षर ज्ञानयुक्त व्यक्ति (ब्राह्मण) उन मन्दबुद्धि वाले भोले-भाले व्यक्तियों की बुद्धि में भ्रम उत्पन्न कर देते थे कहा करते यह जुलाहा तो अशिक्षित है। यह क्या जाने शास्त्रों के गूढ़ रहस्य को तुम्हारी साधना व्यर्थ है। वे भोले-भाले अशिक्षित विचलित हो जाते थे तथा मार्ग भ्रष्ट होकर जीवन व्यर्थ कर लेते थे। गीता अध्याय 3 श्लोक 26 में यही कहा है कि वह विद्वान (शिक्षित व्यक्ति) यदि जनता को शिष्य रूप में इकट्ठा करना चाहता है तो स्वयं भी शास्त्रअनुसार साधना करे तथा उन भोले भालो से भी करावे।(3/26)*

❖ *अध्याय 3 श्लोक 27 से 29 का भावार्थ है कि प्राणी जब तक पूर्ण सन्त की शरण ग्रहण नहीं करता तब तक अपने संस्कार ही प्राप्त करता है। संस्कार का फल तीनों भगवानों (रजगुण ब्रह्मा, सतगुण विष्णु तथा तमगुण शिव) द्वारा दिया जाता है तीनों गुणों (रजगुण ब्रह्मा,सतगुण विष्णु तथा तमगुण शिव) प्रकृति अर्थात् दुर्गा से उत्पन्न है। वह शिक्षित व्यक्ति तत्वज्ञान से अपरिचित होने से मूढ़ कहा जाता है फिर वह अहंकार वश अपने को कर्मों का कर्त्ता मानता है। अहंकार वश सर्व शास्त्रों को तत्वज्ञानी द्वारा अच्छी तरह समझ कर भी अपने अहंकार युक्त हठ को स्वभाव वश नहीं छोड़ता अर्थात् वास्तविक्ता को आँखों देखकर भी स्वीकार नहीं करता परन्तु तत्वदर्शी सन्त तत्वज्ञान के आधार से प्रत्येक प्रभु की शक्ति से परिचित होकर इन भगवानों व शास्त्रों विरूद्ध साधना पर आसक्त नहीं होता। वे शिक्षित परन्तु तत्वज्ञान से अपरिचित स्वयं तो तीनों प्रभुओं में अपने स्वभाव वश आसक्त रहते हैं उनको चाहिए कि वे उन पूर्णतया न समझने वाले मन्द बुद्धि अर्थात् भोले-भाले अशिक्षितों को पूर्णतय शास्त्र समझ कर भी अहंकार वश सत्य न स्वीकार करने वाले विद्वान अर्थात् शिक्षित जन विचलित न करें। इसलिए उन अशिक्षितों को श्लोक 35 में सावधान किया है कि दूसरों की शास्त्रविरूध साधना जो गुण रहित है चाहे कितनी ही तड़क-भड़क वाली व देखने व सुनने में अच्छी हो उसे स्वीकार न करें। अपनी शास्त्र अनुकूल साधना को मरते दम तक करता रहे। दूसरों की साधना भय उत्पन्न कर देती है जिस कारण मन्द बुद्धि व्यक्ति वास्तविक साधना को त्यागकर गुण रहित धर्म (धार्मिक क्रिया) को स्वीकार कर लेते हैं जो बहुत हानिकारक होती है।*

❖ *गीता अध्याय 3 के श्लोक 30 में कहा है कि अर्जुन अब ज्ञान योग द्वारा मेरे पर आश्रित होकर अर्थात् सर्व धार्मिक कर्मों को मुझमें त्यागकर निःइच्छा, ममता रहित युद्ध में होने वाले संभावित दुःख को त्यागकर युद्ध कर।*

विचार करें :-- गीता अध्याय 3 के श्लोक 31-32 का सार है कि जो ऊपर लिखे मेरे मत का अनुसरण करते हैं वे बुरे कर्मों से बच जाते हैं। जो ऐसा नहीं करते वे मूर्ख-अज्ञानी हैं। वे सर्व शास्त्र विरूद्ध ज्ञानों पर आसक्त हैं जो हानिकारक है। उनका पतन निश्चय है। ऊपर लिखे मत (सलाह) से तात्पर्य यह है कि देवी-देवताओं, प्रेतों व पित्रों की पूजा न करके केवल परमात्मा की आराधना करनी चाहिए। यज्ञ व ऊँ नाम का जाप भी निष्काम भाव से अपना मानव कर्तव्य जान कर तथा पूरा

गुरु बनाकर शास्त्र अनुकूल करना चाहिए। शिक्षित व्यक्तियों को शास्त्रविधि अनुसार साधना कर रहे अशिक्षितों को भ्रमित नही करना चाहिए अपितु स्वयं भी उसी शास्त्रविधि अनुसार साधना को स्वीकार करके आत्मकल्याण कराना चाहिए।

❖ *विचार करें :-- गीता अध्याय 3 के श्लोक 33-34 में कहा है कि शिक्षित व्यक्ति जो तत्वज्ञान हीन हैं वे मूढ़ स्वभाव वश आँखों देखकर भी सत्य को स्वीकार नहीं करते तथा उन चातुर (शिक्षित) व्यक्तियों के अनुयाई भी अपने स्वभाववश सत्य को स्वीकार न करके उन चालाक गुरूओं के साथ ही चिपके रहते हैं वे भी मूढ़ हैं। समझाने से भी नहीं मानते। हठ करके भी उन्हें समझाना अति कठिन है। कबीर परमेश्वर से तत्वज्ञान प्राप्त करके सन्त गरीबदास जी महाराज ने कहा है :-*

गरीब चातुर प्राणी चोर हैं, मूढ़ मुगध हैं ठोठ। सन्तों के नहीं काम के इनको दे गल जोट।।

भावार्थ :- जो व्यक्ति तत्वज्ञान को सुनकर सद्ग्रन्थों में आँखों देखकर भी अभिमानवश यथार्थ भक्ति मार्ग स्वीकार नहीं करते, वे चालाक प्राणी परमात्मा के चोर हैं। जो उनके अनुयाई हैं, वे भी सत्य को आँखों देखकर भी उन चालाक गुरूओं को नहीं त्यागते। वे मूढ़ हैं। ऐसे व्यक्ति संतों के काम के नहीं हैं। परमात्मा उनको एक-दूसरे से बाँधे रखे अर्थात् वे शुभ कर्महीन हैं। उनके भाग्य में सत्य साधना नहीं है। तत्वदर्शी संतों को चाहिए कि उनके साथ अधिक ज्ञान चर्चा न करें। कबीर जी ने कहा है कि :-

कबीर, मूर्ख के समझावतें, ज्ञान गांठी का जाय। कोयला ना उजला, चाहे सौ मन साबुन लाय।।

भावार्थ :- कबीर परमेश्वर जी ने कहा है कि मूर्ख को समझाने से अपने तत्वज्ञान को न गवाऐं यानि चतुर लोग आपके तत्वज्ञान को सुनकर स्वयं वक्ता बनकर जनता को ठगेंगे। मूर्ख मानेगा नहीं। जैसे कोयला अंदर तक काला होता है। कोयले को चाहे सौ मन (400 कि.ग्रा.) साबुन लगाकर साफ करना चाहे तो भी सफेद नहीं होगा। इसी प्रकार मूर्ख व्यक्ति तत्वज्ञान नहीं समझेगा।

इसी अध्याय 3 श्लोक 33-34 में यह भी कहा है कि राग द्वेष नहीं करना चाहिए। स्वयं भगवान कृष्ण जी पाण्डवों के राग में महाभारत के युद्ध के दौरान अश्वत्थामा (द्रौणाचार्य के पुत्र) के बारे में युधिष्ठिर से भी झूठ बुलवाई तथा बबरिक (जिसे श्याम जी भी कहते हैं) का सिर कटवाया कहीं बबरिक पाण्डवों को पराजित न कर दे। क्योंकि बबरिक एक बलशाली योद्धा तथा धनुषधारी था जिसने एक ही तीर से पीपल के पेड़ के सभी पत्ते छेद दिए थे और प्रतिज्ञा कर रखी थी कि जो सेना हारती दिखाई देगी, उसी के पक्ष में युद्ध करूंगा। कृष्ण जी में प्रवेश काल ने पाण्डवों को विजयी करना था।

एक समय भस्मागिरी ने भगवान शिव को वचन बद्ध करके भस्म कंडा मांग कर शिव को मारना चाहा था। पार्वती को पत्नी बनाने का दुषविचार करके शिव के पीछे भागा तो भगवान श्री विष्णु जी ने शिव जी के राग में पार्वती का रूप बनाया तथा भस्मागिरी को गंडहथ नाच नचा कर भस्म किया। "गरीब, शिव शंकर के राग में, बहे कृष्ण मुरारी।" *राग द्वेष से भगवान भी नहीं बचे क्योंकि पाण्डवों से राग तो कौरवों से द्वेष तथा शिवजी से राग तो भस्मागिरी से द्वेष स्वयं सिद्ध है। आम प्राणी (अर्जुन) कैसे राग द्वेष से बच सकता है? द्वेष बिना युद्ध हो ही नहीं सकता। इससे सिद्ध है कि गीता जी में अध्यात्म ज्ञान तो काल भगवान (ब्रह्म) ने सही दिया परंतु जीव में विकार (काम, क्रोध, मोह, लोभ, अहंकार, राग-द्वेष तथा शब्द-स्पर्श, रूप, रस, गंध) भर दिए जिनसे परवश होकर भगवान काल के अवतार भी विवश हो गए जिसके कारण काल जाल से नहीं निकल सकते। इसको*

(काल को) डर बना रहता है कि कहीं जीव तेरे जाल से निकल न जाएं। इसलिए तत्वज्ञान सुनकर पूर्ण सन्त की शरण ग्रहण करके पूर्ण परमात्मा की भक्ति करो, तब राग-द्वेष समाप्त होंगे।

।। दूसरों की दिखावटी घटिया साधना से अपनी शास्त्रविधि अनुसार साधना अच्छी।।

गीता अध्याय 3 श्लोक 35 का भावार्थ :- गीता अध्याय 3 के श्लोक 35 में कहा है कि दूसरों की गलत साधना (गुण रहित) जो शास्त्रानुकूल नहीं है। चाहे वह कितनी ही अच्छी नजर आए या वे अज्ञानी चाहे आपको कितना ही डराये उनकी साधना भयवश होकर स्वीकार नहीं करनी चाहिए। अपनी शास्त्रानुकूल गुरु जी द्वारा दिया गया उपदेश पर दृढ़ विश्वास के साथ लगे रहना चाहिए। विचलित नहीं होना चाहिए। अपनी सत्य पूजा अंतिम स्वांस तक करनी चाहिए तथा अपनी सत्य साधना में मरना भी बेहतर है। उदाहरण के लिए पढ़ें यह सत्य कथा :-

।। एक दुःखी परिवार की कहानी।।

उदाहरण :- भक्त रमेश जैन पुत्र श्री ओमप्रकाश जैन, शांती नगर, पटियाला चौंक, जीन्द (हरियाणा) में रहता है। इसकी पत्नी का नाम भक्तमति कमलेश है तथा चार संतान हैं - दो लड़की तथा छोटे दो जुड़वा लड़के (सुनिल व अनिल) हैं। इस परिवार पर कर्मदण्ड की मार इतनी थी कि सुनकर भी कलेजा काँप उठता है। भक्त रमेश जैन की पटियाला चौंक, जीन्द (हरियाणा) में रंग रोगन की दुकान है। इसकी पत्नी कमलेश को दमा बहुत वर्षों से था। एक लड़की बड़ी से छोटी जो उस समय 8 वर्ष की थी को बचपन से दौरे पड़ते थे। सब जगह डॉ. व हस्पतालों से ईलाज करवा लिया था। लेकिन आराम नहीं मिला। अपनी परम्परागत पूजा जैन धर्म की भी करते थे। इसके साथ-साथ अन्य संतों, सेवड़ों व झाड़ा आदि लगाने वालों से भी राहत चाही। देवी-देवताओं की पूजा, पित्रों की पूजा, गुगा पीर की पूजा, हनुमान की पूजा, राम-कष्ण की पूजा, मन्दिर में मूर्ति पूजा, श्राद्ध निकालना आदि सब करते थे। दोनों लड़के (सुनिल-अनिल) जन्म से बीमार रहते थे। उस समय (जब यह परिवार जनवरी 1995 में नाम लेकर कबीर साहिब की शरण में इस दास के माध्यम से आया) जुड़वाँ बच्चों की आयु 5 वर्ष की थी। भक्त रमेश व बहन कमलेश ने बताया कि इन लड़कों पर दवाई खर्च लगभग तीन लाख रूपए हो चुका है और कमलेश व लड़की की बीमारी का खर्च अलग था। एक साधारण दुकानदार भला इतने खर्च को किस प्रकार सहन करे? जो पैसा बचता सब बीमार पर लग जाता था। कर्ज भी काफी हो गया था। फिर उन्होंने सतसंग सुना कि दुःखी जीव जो परमात्मा कबीर साहिब की शरण में आकर ठीक हो गए और सत भक्ति पूर्ण परमात्मा (सतपुरुष कबीर साहिब) की कर रहे हैं। अन्य सर्व पूजा जो काल तक की करते थे त्याग कर सुखी हो गए, उनकी जुबानी सुन कर विश्वास हो गया कि अब हमें सही ठिकाना (सतमार्ग) पाया है और जनवरी 1995 में उन्होंने नाम ले लिया। अपने पूर्ण ब्रह्म कबीर साहिब के चरणों में सच्चे दिल से भक्ति करने लग गए और शास्त्रानुकूल साधना गुरु जी के बताए अनुसार शुरु कर दी।

कुछ दिनों बाद बहन कमलेश को दमा नहीं रहा, न ही लड़की को दौरे तथा दोनों लड़के भी पूर्णरूप से स्वस्थ हो गए। उन्होंने सुख की स्वांस ली। फिर लगभग नौ महीने के बाद गुगापीर की पूजा का दिन आ गया। उस दिन कमलेश की पड़ोसन ने आकर कहा 'क्या कमलेश गुगा पीर की पूजा नहीं करनी?' बहन कमलेश ने कहा 'हमने कबीर साहिब की शरण (नाम मन्त्र) ले रखी है और हमारे गुरु जी ने सर्व देवी-देवताओं की शास्त्रविधि विरूद्ध पूजा तथा व्रत आदि मना कर रखे

हैं।' यह सुन कर पड़ोसन ने कहा 'हे बहन! अपनी पुरानी साधना नहीं छोड़ा करते। मैंने भी अमूक संत से नाम ले रखा है। मैं तो सारी पूजा करती हूँ। एक हमारे रिस्तेदार ने गुगापीर की पूजा नहीं की थी। उसका एक ही लड़का था वही मर गया। अब तूँ देख ले।' इस बात से भयभीत हो कर भक्तमति कमलेश ने गुगापीर की पूजा कर ली। अगले ही दिन लड़की को दौरा आ गया, दोनों लड़के सिविल हस्पताल (जीन्द) में दाखिल हो गए और कमलेश को दमा फिर शुरु हो गया। कबीर साहिब कहते हैं :-

कबीर, सौ वर्ष तो गुरु की पूजा, एक दिन आन–उपासी। वो अपराधी आत्मा, पड़े काल की फांसी।

भावार्थ :- सतगुरू की शरण में सौ वर्ष से शास्त्र विधि अनुसार साधना कर रहा साधक यदि एक दिन आन-उपासना कर लेता है यानि अन्य देवी-देवता की शास्त्र विरूद्ध पूजा करता है तो उसका नाम खंडित हो जाता है। उसको काल के लोक में अनेकों कष्ट उठाने पड़ते हैं। परमात्मा उसकी सहायता नहीं करते।

भक्त रमेश का सारा परिवार फिर मेरे (संत रामपाल दास के) पास आया। अपनी गलती की क्षमा याचना की। फिर दोबारा उपदेश (नाम) दिया। उसके बाद वह पूरा परिवार बिल्कुल स्वस्थ है। कोई आन उपासना नहीं करते हैं। पुराना मकान बेच कर नई कोठी बना ली है और कर्ज मुक्त भी हो गए हैं। आज (दिनांक : 02-01-2012) सोलह वर्ष से ज्यादा हो चुके हैं। सबको कहते हैं कि हमारे जैसा दुःखी कोई नहीं था। जैसी कबीर साहिब ने हमारी प्रार्थना सुनी ऐसी सब जीवों की सुनें और गुरुदेव जी (रामपाल दास महाराज) से नाम लेकर अपना जीवन धन्य बनाएँ तथा काल-जाल से निकलें।

।। मान बड़ाई जान की दुश्मन।।

विचार करें :-- गीता अध्याय 3 के श्लोक 33, 34 का भावार्थ है कि सर्व प्राणी प्रकृति (माया) के वश ही हैं। स्वभाववश कर्म करते हैं। ऐसे ही ज्ञानी भी अपनी आदत वश कर्म करते हैं फिर हठ क्या करेगा?

सार : -- अज्ञानी अपनी गलत पूजा को नहीं त्यागते चाहे कितना आग्रह करें, चाहे सद्ग्रन्थों के प्रमाण भी दिखा दिए जाऐं वे नहीं मानते। इसी प्रकार ज्ञानी-विद्वान पुरुष मान वश पैसा प्राप्ति व अधिक शिष्य बनाने की इच्छा के कारण गलत त्यागकर सच्चाई का अनुसरण नहीं करते। दोनों (ज्ञानी व अज्ञानी) स्वभाव वश चल रहे हैं। इसलिए भक्ति मार्ग गलत दिशा पकड़ चुका है। इन दोनों को समझाना व्यर्थ है।

गरीब, चातूर प्राणी चोर हैं, मूढ मुग्ध हैं ठोठ। संतों के नहीं काम के, इनकूं दे गल जोट।।

भावार्थ :- संत गरीबदास जी ने बताया है कि तत्वज्ञानहीन गुरूजन शास्त्रों को ठीक से न समझकर उनके विपरित अध्यात्म ज्ञान बताते हैं तथा शास्त्रों के विरूद्ध भक्ति विधि बताते हैं। उनके अनुयाई अपने अज्ञानी गुरूजनों द्वारा बताए ज्ञान तथा साधना पर लगे हैं। तत्वदर्शी संत उन अज्ञानी गुरूओं से निवेदन करता है कि आप शास्त्र विरूद्ध अपनी इच्छा से मनमाना आचरण कर रहे हो। शास्त्रों से प्रमाण दिखाता है। प्रमाणों को आँखों देखकर भी अज्ञानी गुरूजन सत्य को स्वीकार नहीं करते। अपना अपमान होने के भय से अपने अनुयाईयों को भी भ्रमित करते हैं कि यह संत झूठ बोल रहा है। इसकी बातों में न आना। हम जो ज्ञान तथा समाधान बता रहे हैं, यह सब शास्त्र प्रमाणित है। तत्वदर्शी संत उनके अनुयाईयों को शास्त्रों के प्रमाण दिखाकर उनकी भक्ति विधि को गलत सिद्ध करता है तो भी वे मूढ़ अंध श्रद्धालु कहते हैं कि हमारे गुरू जी जो साधना

बताते हैं, वह सत्य है। ऐसे व्यक्तियों के विषय में संत गरीबदास जी ने बताया है कि वे फर्जी संत तो चातुर हैं यानि हेराफेरी मास्टर हैं। वे अपनी दुकान चलाने के लिए आँखों देखकर भी सत्य स्वीकार नहीं करते और अपनी प्रत्यक्ष झूठी साधना को सत्य मानते हैं। वे परमात्मा नहीं चाहते। वे मान-बड़ाई तथा धन के लोभी चतुर व्यक्ति हैं तथा अनुयाई उनके ऊपर मोहित हैं। सत्य देखकर भी नहीं मानते। वे ठेठ मूढ़ हैं यानि पूर्ण रूप से मूर्ख हैं। ऐसे व्यक्ति तत्वदर्शी संतों के काम के नहीं हैं। उन दोनों गुरू-शिष्यों को समझाना व्यर्थ में समय व्यर्थ करना है। उनका गला जोट दो यानि उनको एक-दूसरे से चिपके रहने दो। गल जोट करने का भावार्थ है जैसे व्यापारी लोग काटड़ों (भैंस के नर बच्चों) को गाँव से मोल लेकर कसाईयों को बेचने के लिए जाते थे। उस समय व्यापारी लोग पशुओं को पैदल लाते-ले जाते थे क्योंकि वाहन नहीं बने थे तो पशुओं (काटड़ों व जो भैंस बांझ होती थी, उनको) को रस्से के साथ एक-दूसरे को गले से बाँध देते थे। कारण था कि इस प्रकार बाँधने से वे इधर-उधर भागकर मालिक को परेशान नहीं कर पाते थे। ऐसे गुरू तथा शिष्य काल कसाई के पास जाते हैं। ये ऐसे-ऐसे इकट्ठे रहेंगे तो तत्वदर्शी संतों को बाधा नहीं करेंगे यानि इनके साथ अधिक छेड़छाड़ करना ठीक नहीं।

विवेचन :- मेरे यानि रामपाल दास के अतिरिक्त अन्य सब अनुवादकों ने गीता अध्याय 3 श्लोक 35 का अर्थ गलत किया है जो इस प्रकार किया है :-

अच्छी प्रकार में लाये हुए दूसरे के धर्म से गुण रहित भी अपना धर्म अति उत्तम है। अपने धर्म में मरना भी कल्याणकारक है। दूसरे का धर्म भय देने वाला है।

विचार करें कि यदि यह अनुवाद सही है तो गीता के अठारह अध्यायों के ज्ञान की क्या आवश्यकता थी? फिर तो जो जैसी साधना कर रहा है, करता रहे। गीता अध्याय 7 श्लोक 12-15 तथा 20-23 में कहा है कि तीनों गुणों यानि श्री ब्रह्मा, श्री विष्णु तथा श्री शिव से मिलने वाले लाभ के द्वारा जिनका ज्ञान हरा जा चुका है यानि जो इन देवताओं की पूजा पर दढ़ हैं। अन्य किसी की बात नहीं सुनते। वे राक्षस स्वभाव को धारण किए हुए मनुष्यों में नीच, दूषित कर्म करने वाले मूर्ख मेरी भक्ति भी नहीं करते। जिन देवताओं की भक्ति अज्ञानी जन करते हैं। उनकों मैंने ही कुछ शक्ति दे रखी है, परंतु उन अज्ञानियों को उस साधना का फल क्षणिक यानि शीघ्र समाप्त होने वाला है।

फिर गीता अध्याय 16 श्लोक 23-24 में यह ज्ञान देने की क्या आवश्यकता थी कि शास्त्रविधि को त्यागकर अपनी इच्छा से मनमाना आचरण करते हैं, उनको न तो सुख प्राप्त होता है, न सिद्धि प्राप्त होती है, उन उनकी गति यानि मुक्ति होती है अर्थात् व्यर्थ साधना है। गीता अध्याय 16 श्लोक 24 में कहा है कि इससे तेरे लिए अर्जुन कर्तव्य अर्थात् जो आध्यात्मिक कर्म करने चाहिऐं तथा अकर्तव्य अर्थात् जो कर्म नहीं करने चाहिऐं, की व्यवस्था में शास्त्र ही प्रमाण हैं। पाठकों से निवेदन है कि गीता अध्याय 3 श्लोक 35 का वास्तविक अर्थ पहले किया है, वह ठीक है।

❖ *अध्याय 3 श्लोक 36-43 तक का भावार्थ है कि श्लोक 36 में अर्जुन ने प्रश्न किया कि ''हे भगवान! यह मनुष्य न चाहता हुआ भी परवश हुआ पाप आचरण में कैसे लग जाता है?'' गीता ज्ञान दाता ने श्लोक नं. 37 से 43 में उत्तर दिया है कि तीनों गुणों (रजगुण ब्रह्मा, सतगुण विष्णु तथा तमगुण शिव) के प्रभाव से प्रेरित होकर मानव अज्ञान को प्राप्त हो जाता है। फिर काम (Sex), क्रोध, मोह, लोभ, अहंकार वश होकर पाप आचरण करता है। मन इन सब पापों को करवाने वाला इन्द्रियों का मुखिया है। इस मन रूपी शत्रु को तत्वज्ञान से मार डाल।*

नकली नामों से मुक्ति नहीं

एक सुशिक्षित सभ्य व्यक्ति मेरे पास आया। वह उच्च अधिकारी भी था तथा किसी अमुक पंथ व संत से नाम भी ले रखा था व प्रचार भी करता था वह मेरे (संत रामपाल दास) से धार्मिक चर्चा करने लगा। उसने बताया कि ''मैंने अमूक संत से नाम ले रखा है, बहुत साधना करता हूँ। उसने कहा मुझे पाँच नामों का मन्त्र (उपदेश) प्राप्त है जो काल से मुक्त कर देगा।'' मैंने (रामपाल दास ने) पूछा कौन-2 से नाम हैं। वह भक्त बोला यह नाम किसी को नहीं बताने होते। उस समय मेरे पास बहुत से हमारे कबीर साहिब के यथार्थ ज्ञान प्राप्त भक्त जन भी बैठे थे जो पहले नाना पंथों से नाम उपदेशी थे। परंतु सच्चाई का पता लगने पर उस पंथ को त्याग कर इस दास (रामपाल दास) से नाम लेकर अपने भाग्य की सराहना कर रहे थे कि ठीक समय पर काल के जाल से निकल आए। पूरे परमात्मा (पूर्ण ब्रह्म) को पाने का सही मार्ग मिल गया। नहीं तो अपनी गलत साधना वश काल के मुख में चले जाते।

उन्हीं भक्तों में से एक ने कहा कि मैं भी पहले उसी पंथ से नाम उपदेशी (नामदानी) था। यही पाँच नाम मैंने भी ले रखे थे परंतु वे पाँचों नाम काल साधना के हैं, सतपुरुष प्राप्ति के नहीं हैं। वे पाँचों नाम मैंने [भक्त जो दूसरे पंथ से आया था अब कबीर साहिब के अनुसार इस दास (रामपाल दास) से नाम ले रखा है कह रहा है उस अमुक संत-पंथ के उपदेशी सभ्य व्यक्ति को] भी ले रखे थे। वे नाम हैं - 1. ज्योति निरंजन 2. औंकार 3. रंरकार 4. सोहं 5. सतनाम।

तब मैंनें उस पुण्यात्मा को समझाया कि आप जरा विचार करो। संतमत सतसंग साहिब कबीर से चला है। साहिब कबीर स्वयं पूर्ण परमात्मा हैं। उन्होंने ही इस काल लोक में आकर अपनी जानकारी आप ही देनी पड़ी। क्योंकि काल ने साहिब कबीर का ज्ञान गुप्त कर रखा है। चारों वेदों, अठारह पुराणों, गीता जी व छः शास्त्रों में केवल ब्रह्म (काल ज्योति निरंजन) की उपासना की जानकारी है। सतपुरुष की उपासना का ज्ञान नहीं है।

❖ *इसी पंथ (पाँच नाम देने वाले पंथ) से निकली शाखा जो हरियाणा में एक शहर में सन् 1948 से चली है। वे पहले वाले संत तो यह पाँच नाम देते थे। परंतु दूसरी गद्दी वाले ने तीन अन्य नाम प्रारम्भ कर दिए। 1. सतपुरूष, 2. अकाल मूर्त, 3. शब्द स्वरूपी राम। ये तीनों भी व्यर्थ हैं।*

एक तुलसी दास जी हाथ रस वाले (जिनको उस तुलसी दास जिसने रामायण का हिन्दी निरूपण किया का अवतार मानते हैं) ने कबीर सागर, कबीर वाणी साखी व बीजक पढ़ा। फिर उसने उसमें से यही पाँच नाम निकाल लिए। वास्तव में इन पाँच नामों में सतनाम की जगह 'शक्ति' शब्द है। परंतु तुलसी दास (हाथरस वाले) ने शक्ति शब्द की जगह सतनाम जोड़ कर पाँच नाम का मन्त्र बनाकर काल साधना ही समाज में प्रवेश कर दी। अपने द्वारा रची घट रामायण प्रथम भाग पृष्ठ 27 पर स्वयं इन्हीं पाँचों नामों को काल के नाम कहा है तथा सत्यनाम तथा आदिनाम (सारनाम) बिना सत्यलोक प्राप्ति नहीं हो सकती, कहा है। इन्हीं पाँचों नामों को कबीर साहिब ने भी काल साधना के बताए हैं। इन्हीं पाँचों नामों की साधना के आधार से श्री शिवदयाल सिंह सेठ आगरा पन्नी गली वाले ने अपना राधा स्वामी पंथ बिना गुरु बनाए प्रारम्भ किया था। उसके पश्चात् उसके अनुयाईयों के बड़े-2 भक्तजन समूह इकत्रित हो गए जो मुक्त नहीं हो सकते और कबीर साहेब ने कहा है कि इनसे न्यारा नाम सत्यनाम है उसका जाप पूरे अधिकारी गुरु से लेकर पूरा जीवन गुरु मर्यादा में रहते हुए सार नाम की प्राप्ति पूरे गुरु से करनी चाहिए।

सतनाम के प्रमाण के लिए कबीर पंथी शब्दावली (पृष्ठ नं. 266-267) से सहाभार

अक्षर आदि जगत में, जाका सब विस्तार। सतगुरु दया सो पाइये, सतनाम निजसार।।112।।

सतगुरुकी परतीति करि, जो सतनाम समाय। हंस जाय सतलोक को, यमको अमल मिटाय।।117।।

वह सतनाम-सारनाम उपासक सतलोक चला जाता है। उसका पुनर्जन्म नहीं होता। हम सबने कबीर साहिब के ज्ञान को पुनः पढ़ना चाहिए तथा सोचना चाहिए कि सतलोक प्राप्ति केवल कबीर साहिब के द्वारा दिए गए मन्त्र से होगी।

।।धर्मदास को सतनाम कबीर साहेब ने दिया।।

जो मन्त्र (नाम) साहिब कबीर ने धर्म दास जी को दिया। प्रमाण :-

कबीर पंथी शब्दावली (पृष्ठ नं. 284-285) से सहाभार

(चौका आरती)

प्रथमहिं मंदिर चौक पुराये। उत्तम आसन श्वेत बिछाये।। हंसा पग आसन पर दीन्हा। सतकबीर कही कह लीन्हा।।

नाम प्रताप हंस पर छाजे। हंसहि भार रती नहिं लागे।। कहै कबीर सुनो धर्मदासा। ॐ-सोहं शब्द प्रगासा।।

(कबीर शब्दावली से लेख समाप्त)

ऊपर के शब्द चौका आरती में साहेब कबीर ने धर्मदास जी को सत्यनाम दिया। वह -

''कहै कबीर सुनो धर्मदासा, ॐ सोहं शब्द प्रगासा''

यह ''<u>ॐ-सोहं</u>'' सत्यनाम स्वयं साहेब कबीर ने धर्मदास जी को दिया। इससे प्रमाणित है कि इस नाम के जाप से जीवात्मा सार शब्द पाने योग्य बनेगी। यदि सार शब्द पाने के योग्य नहीं बना तथा सतगुरु ने सारशब्द नहीं दिया तो आपका जीवन व्यर्थ गया। चूंकि सत्यनाम (ॐ-सोहं) से आप कई मानव शरीर भी पा सकते हो। स्वर्ग में भी वर्षों तक रह सकते हो, यह इतना उत्तम नाम है। परंतु सार शब्द मिले बिना सतलोक प्राप्ति नहीं अर्थात् पूर्ण मुक्ति नहीं।

पवित्र कबीर सागर के अध्याय ''ज्ञान प्रकाश'' पृष्ठ 62 पर भी संत धर्मदास जी को सतनाम देने का प्रकरण है जिसमें ये ही दो अक्षर लिखे हैं:- *ॐ-सोहं जावन बीरू, धर्मदास सों कह कबीरू।।*

।। सतनाम का गरीबदास जी महाराज की वाणी में प्रमाण।

गरीबदास जी महाराज कहते हैं कि :

ॐ सोहं पालड़े रंग होरी हो, चौदह भवन चढावै राम रंग होरी हो।

तीन लोक पासंग धरै रंग होरी हो, तो न तुलै तुलाया राम रंग होरी हो।।

इसका अर्थ है सत्यनाम (ॐ-सोहं) यदि भक्त आत्मा को मिल गया, वह (स्वाँसों से सुमरण होता है) एक स्वाँस-उस्वाँस भी इस मन्त्र का जाप हो गया तो उसकी कीमत इतनी है कि एक स्वाँस-उस्वाँस ॐ-सोहं के मन्त्र का एक जाप तराजू के एक पलड़े में = दूसरे पलड़े में चौदह भुवनों को रख दें तथा तीन लोकों को तुला की त्रुटि ठीक करने के लिए अर्थात् पलड़े समान करने के लिए रख दे तो भी एक स्वाँस का (सत्यनाम) जाप की कीमत ज्यादा है अर्थात् बराबर भी नहीं है। पूर्ण संत से उपदेश प्राप्त करके नाम जाप करने से लाभ होगा अर्थात् बिना गुरु बनाए स्वयं सत्यनाम

जाप व्यर्थ है। जैसे रजिस्ट्री पर तहसीलदार हस्ताक्षर करेगा तो काम बनेगा, कोई स्वयं ही हस्ताक्षर कर लेगा तो व्यर्थ है। इसी का प्रमाण साहेब कबीर देते हैं -

कबीर, कहता हूँ कही जात हूँ, कहूँ बजा कर ढोल। स्वाँस जो खाली जात है, तीन लोक का मोल।।

कबीर, स्वाँस उस्वाँस में नाम जपो, व्यर्था स्वाँस मत खोय। न जाने इस स्वाँस को, आवन होके न होय।।

इसलिए यदि गुरु मर्यादा में रहते हुए सत्यनाम जपते-2 भक्त प्राण त्याग जाता है, सारनाम प्राप्त नहीं हो पाता, उसको भी सांसारिक सुख सुविधाएँ, स्वर्ग प्राप्ति और लगातार कई मनुष्य जन्म भी मिल सकते हैं और यदि पूर्ण संत न मिले तो फिर चौरासी लाख जूनियों व नरक में चला जाता है। यदि अपना व्यवहार ठीक रखते हुए गुरु जी को साहेब का रूप समझ कर आदर करते हुए सतनाम प्राप्त कर लेता है व प्राणी जीवन भर मन्त्र का जाप करता हुआ तथा गुरु वचन में चलता रहेगा। फिर गुरु जी सारनाम देगें। वह सत्यलोक अवश्य जाएगा। जो कोई गुरु वचन नहीं मानेगा, नाम लेकर भी अपनी चलाएगा, वह गुरु निन्दा करके नरक में जाएगा और गुरु द्रोही हो जाएगा। गुरु द्रोही को कई युगों तक मानव शरीर नहीं मिलता। वह चौरासी लाख जूनियों में भ्रमता रहता है। कबीर साहिब ने सत्यनाम गरीबदास जी [छुड़ानी (हरियाणा) वाले] को दिया, घीसा संत जी (खेखड़े वाले) को दिया, नानक जी (तलवंडी जो अब पाकिस्तान में है) को दिया।

।। श्री नानक साहेब की वाणी में सतनाम का प्रमाण।।

प्रमाण के लिए पंजाबी गुरु ग्रन्थ साहिब के पृष्ठ नं. 59-60 पर सिरी राग महला 1 (शब्द नं. 11)

बिन गुर प्रीति न ऊपजै हउमै मैलु न जाइ।।
सोहं आपु पछाणीऐ सबदि भेदि पतीआइ।।
गुरमुखि आपु पछाणीऐ अवर कि करे कराइ।।
मिलिआ का किआ मेलीऐ सबदि मिले पतीआइ।।
मनमुखि सोझी न पवै वीछुड़ि चोटा खाइ।।
नानक दरु घरु एकु है अवरु न दूजी जाइ।।

भावार्थ :- नानक साहेब स्वयं प्रमाणित करते हैं कि शब्दों (नामों) का भिन्न ज्ञान होने से विश्वास हुआ कि सच्चा नाम 'सोहं' है। यही सतनाम कहलाता है। पूर्ण गुरु के शिष्य की भ्रमणा मिट जाती है। वह फिर और कोई करनी (साधना) नहीं करता। मनमुखी (मनमानी साधना करने वाला) साधक या जिसको पूरा संत नहीं मिला वह अधूरे गुरु का शिष्य पूर्ण ज्ञान नहीं होने से जन्म-मरण लख चौरासी के कष्टों को उठाएगा। नानक साहेब कहते हैं कि पूर्ण परमात्मा कुल का मालिक एक अकाल पुरुष है तथा एक घर (स्थान) सतलोक है और दूजी कोई वस्तु नहीं है।

प्राण संगली-हिन्दी - के पृष्ठ नं. 84 पर राग भैरव - महला 1 - पौड़ी नं. 32

साध संगति मिल ज्ञानु प्रगासै। साध संगति मिल कवल बिगासै।।
साध संगति मिलिआ मनु माना। न मैं नाह ऊँ–सोहं जाना।।
सगल भवन महि एको जोति। सतिगुर पाया सहज सरोत।।
नानक किलविष काट तहाँ ही। सहजि मिलै अंमित सीचाही।।32।।

भावार्थ :- नानक साहेब कह रहे हैं कि नामों में नाम ''ऊँ-सोहं'' यही सतनाम है। इसी से पाप कटते हैं। (किलविष कटे ताहीं)

सहज समाधि से अमृत (पूर्ण परमात्मा का पूर्ण आनन्द) प्राप्त हुआ अर्थात् केवल ऊँ-सोहं के जाप से पूर्ण परमात्मा की प्राप्ति संभव है अन्यथा नहीं।

अन्य प्रमाण :- ''जन्म साखी श्री गुरू नानक साहेब जी की'' भाई बाले वाली पुस्तक में ''साखी समन्दर की चली'' नामक अध्याय में प्रमाण है कि श्री नानक जी स्वयं ॐ(ओम्)-सोहं नाम को जपते हुए समन्दर के जल पर थल की तरह चल रहे थे। उनके साथ दोनों सेवक भाई बाला तथा मर्दाना भी श्री गुरू नानक जी के आशीर्वाद से उनके पीछे-पीछे चल रहे थे।

जो इन सर्व संतों की वाणी (ग्रन्थों) में प्रमाण है तथा कबीर पंथी शब्दावली में सत्यनाम 'ॐ–सोहं' के जाप का प्रमाण है। वह भी पूरे संत जिसको नाम देने का अधिकार हो, से ही लेना चाहिए।

प्रमाण :– कबीर पंथी शब्दावली (पृष्ठ नं. 220) से सहाभार

बहुत गुरु संसार रहित, घर कोइ न बतावै।
आपन स्वारथ लागि, सीस पर भार चढावै।।
सार शब्द चीन्हे नहीं, बीचहिं परे भुलाय।
सत्त सुकृत चीन्हे बिना, सब जग काल चबाय।।18।।
यह लीला निर्वान, भेद कोइ बिरला जानै।
सब जग भरमें डार, मूल कोइ बिरला माने।।
मूल नाम सत पुरुष का, पुहुप द्वीपमें बास।
सतगुरु मिलैं तो पाइये, पूरन प्रेम बिलास।।19।।
नाम सनेही होय, दूत जम निकट न आवै।
परमतत्त्व पहिचानि, सत्त साहेब गुन गावै।।
अजर अमर विनसे नहीं, सुखसागरमें बास।
केवल नाम कबीर है, गावे धनिधर्मदास।।20।।

भावार्थ :- धर्मदास जी कहते हैं कि संसार में गुरुओं की कमी नहीं। मान बड़ाई, स्वार्थ के लिए गुरु बन कर अपने सिर पर भार धर रहे हैं। सार शब्द जब तक प्राप्त नहीं होता वह गुरु नरक में जाएगा। जिसे गुरुदेव जी ने नाम-दान देने की अनुमति नहीं दे रखी तथा अपने आप गुरु बन कर नाम देता है वह काल का दूत है। काल के मुख में ले जाएगा। परमात्मा का मुख्य नाम एक ही है उसका भेद किसी बिरले को है। बाकी सब डार (देवी-देवताओं, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, माता, ब्रह्म) पर ही लटक रहे हैं।

समै – कबीर, वेद हमारा भेद है, हम नहीं वेदों माहिं।
जौन वेद में हम रहैं, वो वेद जानते नाहीं।

भावार्थ :- कबीर परमेश्वर जी ने धर्मदास जी को बताया कि चारों वेदों में मुझ कबीर परमात्मा का भेद यानि ज्ञान है, परंतु मेरे पाने की विधि वेदों में नहीं है। जिस सूक्ष्म पाँचवें वेद से मेरी प्राप्ति होती है, उसका ज्ञान चारों वेदों (ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद) में नहीं है।

रमैनी 36 -

घर घर होय पुरुषकी सेवा। पुरुष निरंजन कहे न भेवा।।
ताकी भगति करे संसारा। नर नारी मिल करें पुकारा।।
सनकादिक नारद मुख गावें। ब्रह्मा विष्णु महेश्वर ध्यावें।
मुनी व्यास पारासर ज्ञानी। प्रहलाद और बिभीषण ध्यानी।।
द्वादस भगत भगती सो रांचे। दे तारी नर नारी नाचे।।
जुग जुग भगतभये बहुतेरे। सबे परे काल के घेरे।।
काहू भगत न रामहिं पाया। भगती करत सर्व जन्म गंवाया।।

भावार्थ :- सर्व प्राणी भगवान की साधना करते हैं, परंतु काल प्रभु यानि ज्योति निरंजन किसी को भी पूर्ण परमात्मा के भेद नहीं देता। संसार के नर-नारी, सनक, सनन्दन, सनातन तथा सन्त कुमार तथा नारद जी व्यास जी, उनके पिता ऋषि परासर जी, प्रहलाद तथा मुनिन्द्र ऋषि जो स्वयं परमात्मा कबीर जी ही थे। उनके मिलने से पहले विभीषण जैसे ध्यान लगाने वाले बारह भक्त विशेष थे। वे तथा सर्व नर-नारी नाच-कूदकर तालियाँ बजा-बजाकर काल साधना करते थे। अनेक भक्त हो चुके हैं। सब काल साधना करके जन्म नष्ट कर रहे हैं। ब्रह्मा, विष्णु, महेश भी भजन करते हैं, परंतु किसी को भी पूर्ण परमात्मा (राम) नहीं मिला। काल साधना करके जन्म खो दिया।

(कबीर पंथी शब्दावली के पृष्ठ नं. 279, 294, 305 व 498 से सहाभार)

सुकृत नाम अगुवा भये, सत्तनामकी डोर।
मूल शब्द पर बैठिके, निरखो वस्तू अंजोर।।
साहब कबीर कहि दीहल, सुन सुकृत चितलाय।
पुहुप दीप पर हंस है, बहुर न आवे जाय।।26।।
अगम चरित चेतावनी, अधर अनूपम धाम।
अजर अमर है सोई, सेवही निर्गुन नाम।।
मूल बांध गढ साजहू, आपा मेट गढ लेहु।
गुरुके शब्द गढ तोरहू, सत्त शब्द मन देहु।।
सत्तनाम है सबते न्यारा। निर्गुन सर्गुन शब्द पसारा।।
निर्गुन बीज सर्गुन फल फूला। साखा ज्ञान नाम है मूला।।8।।
मूल गहेते सब सुख पावै। डाल पातमें सर्वस गँवावै।।
सतगुरु कही नाम पहिचानी। निर्गुन सर्गुन भेद बखानी।।9।।
दोहा – नाम सत्त संसारमें, और सकल है पोच।
कहना सुनना देखना, करना सोच असोच।।3।।
सबही झूठ झूठ कर जाना। सत्त नामको सत कर माना।।
निस बासर इक पल नहिं न्यारा। जाने सतगुरु जानन हारा।।10।।
सुरत निरत ले राखै जहवाँ। पहुँचै अजर अमर घर तहवाँ।।
सत्तलोकको देय पयाना। चार मुक्ति पावै निर्वाना।।11।।
दोहा – सतलोकै सब लोक पति, सदा समीप प्रमान।
परमजोतसो जोत मिलि, प्रेम सरूप समान।।5।।
अंस नामतें फिर फिर आवै। पूर्ण नाम परमपद पावै।।
नहिं आवै नहिं जाय सो प्रानी। सत्यनामकी जेहि गति जानी।।12।।
सत्तनाममें रहै समाई। जुग जुग राज करै अधिकाई।।
सतलोकमें जाय समाना। सत पुरुषसों भया मिलाना।।13।।
हंस सुजान हंसही पावा। जोग संतायन भया मिलावा।।
हंस सुघर दरस दिखलावा। जनम जनमकी भूख मिटावा।।14।।
सुरत सुहागिन भइ आगे ठाढी। प्रेम सुभाव प्रीति अति बाढी।।
पुहुपदीपमें जाय समाना। बास सुवास चहूँ दिस आना।।15।।
दोहा – सुख सागर सुख बिलसई, मानसरोवर न्हाय।
कोट काम–सी कामिनी, देखत नैन अघाय।।6।।

सुरति नाम सुनै जब काना। हंसा पावै पद निर्बाना।।
अब तो कंपा करी गुरु देवा। तातें सुफल भई सब सेवा।।16।।
नाम दान अब लेय सुभागी। सतनाम पावै बड़ भागी।
मन बचन कर्म चित्त निश्चय राखै। गुरुके शब्द अमीरस चाखै।।17।।
आदि अंत वहँ भेदै पावै। पवन आड़में ले बैठावै।।
सब जग झूठ नाम इक साँचा। श्वास श्वासमें साचा राचा।।18।।
झूठा जान जगत सुख भोगा। साँचा साधू नाम सँजोगा।।
यह तन माटी इन्द्री छारी। सतनाम सांचा अधिकारी।।19।।
नाम प्रताप जुगै जुग भाखी। साध संत ले हिरदे राखी।।
कहँ कबीर सुन धर्मनि नागर। सत्यनाम है जगत उजागर।।20।।

भावार्थ :- कबीर साहेब अपने परम शिष्य धर्मदास जी को समझा रहे हैं कि सतनाम सब नामों से न्यारा है और पूर्ण परमात्मा की साधना से जीव सुखी होगा। (डाल-पत्तों) काल, ब्रह्म तथा तीनों देवताओं (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) व देवी-देवताओं की साधना से जीवन व्यर्थ जाएगा। केवल सतनाम व सारनाम से मुक्ति है। बाकी साधना जैसे कहना (कथा करना), सुनना (कान बंद करके धुनि सुनना), सोच (चिन्तन करना), असोच (व्यर्थ) है। एक सतनाम को त्याग कर यह साधना केवल लिपा-पोती है अर्थात् दिखावटी है। अंश नाम (अधूरे मन्त्र) से जीव जन्म-मरण व चौरासी लाख जूनियों में ही भटकता रहेगा। केवल पूर्ण नाम (सतनाम व सारनाम) से जीव मुक्ति पाएगा। फिर पूर्ण गुरु (सुरति नाम सुनै जब काना) अपने शिष्य को सारशब्द प्राप्त करवाएगा। तब यह जीव निर्वाण ब्रह्म अर्थात् पूर्ण परमात्मा को प्राप्त होगा।

(पष्ठ नं. 38-39)

शब्द हमारा आदि का, सुनि मत जाहु सरख।
जो चाहो निज तत्व को, शब्दे लेहु परख।।9।।
शब्द विना सुरति आँधरी, कहो कहाँको जाय।
द्वार न पावे शब्द का, फिर फिर भटका खाय।।10।।
शब्द शब्द बहुअन्तरा, सार शब्द मथि लीजे।
कहँ कबीर जहँ सार शब्द नहीं, धिग जीवन सो जीजे।।11।।
सार शब्द पाये बिना, जीवहिं चैन न होय।
फन्द काल जेहि लखि पडे, सार शब्द कहि सोय।।12।।
सतगुरु शब्द प्रमान है, कह्यो सो बारम्बार।
धर्मनिते सतगुरु कहै, नहिं बिनु शब्द उबार।।13।।
धर्मनि सार भेद अव खोलौं। शब्दस्वरूपी घटघट बोलौं।।
शब्दहिं गहे सो पंथ चलावै। बिना शब्द नहिं मारग पावै।।
प्रगटे वचन चूरामनि अंशू। शब्द रूप सब जगत प्रशंसू।।
शब्दे पुरुष शब्द गुरुराई। विना शब्द नहिं जिवमुकताई।।
जेहिते मुक्त जीव हो भाई। मुकतामनि सो नाम कहाई।।

भावार्थ :- कबीर साहेब ने कहा कि जो सारनाम आपको दिया जाता है, यही नाम सदा का है परंतु काल भगवान ने इसे छुपा रखा है। अब इस नाम को सुनकर खिसक (नाम त्याग मत जाना) मत जाना। यह न मान लेना कि यह कैसा आदि नाम यानि सारनाम है। विश्वास करना

मेरा नाम आदि का है। यह सारनाम है। इसके पश्चात् आपको सार शब्द प्राप्त कराया जाएगा। यदि सार शब्द प्राप्त नहीं हुआ तो उसका जीवन धिक्कार है और जो मनमुखी गुरु बने फिरते हैं वे नरक के भागी होंगे। जिस नाम से जीव मुक्त होते हैं उसको मुक्तामनी अर्थात् जीव मुकताने वाली मणी (जड़ी) कहते हैं, वही सार नाम कहलाता है। भावार्थ है कि जिस सारनाम से जीव की मुक्ति हो उसे मुक्ता मणी समझो।

ऊपर के शब्दों में साहेब कबीर प्रमाण दे रहे हैं कि यदि सार शब्द गुरु जी से प्राप्त नहीं किया उसका जन्म धिक्कार है। सार नाम को सतसुकत नाम भी कहते हैं। वह पूर्ण गुरु के पास ही होता है जिसको गुरु ने आगे नाम दान की आज्ञा दे रखी हो। नाम-नाम में बहुत अन्तर है। सत्यनाम का जहाँ तक काम है वह अपने स्थान पर सही है। केवल सत्यनाम से जीव का काल लोक से बन्धन नहीं छूटेगा, जब तक सार शब्द नहीं मिलेगा। सत्यनाम के जाप (अभ्यास) बिना सारनाम काम नहीं करेगा।

जैसे हैंड पम्प (पानी का नलका) लगाना है। उसकी तीन स्थिति हैं। प्रथम पाईप तथा बोकी (पाईप को जमीन तक पहुँचाने का यन्त्र) खरीद कर लाने के लिए पैसे वह नाम है - ब्रह्म गायत्री मन्त्र। जिसकी कमाई से ''सत्यनाम'' की प्राप्ति होवेगी। वही साहेब कबीर व गरीबदास जी ने अपनी वाणी में प्रमाणित किया है --

ज्ञान सागर अति उजागर, निर्विकार निरंजनं।
ब्रह्मज्ञानी महाध्यानी, सत सुकत दुःख भंजनं।1।
मूल चक्र गणेश बासा, रक्त वर्ण जहां जानिये।
किलियं जाप कुलीन तज सब, शब्द हमारा मानिये।2।
स्वाद चक्र ब्रह्मादि बासा, जहां सावित्री ब्रह्मा रहैं।
ओ3म जाप जपंत हंसा, ज्ञान जोग सतगुरु कहैं।3।
नाभि कमल में विष्णु विशम्भर, जहां लक्ष्मी संग बास है।
हरियं जाप जपन्त हंसा, जानत बिरला दास है।4।
हृदय कमल महादेव देवं, सती पार्वती संग है।
सोहं जाप जपंत हंसा, ज्ञान जोग भल रंग है।5।
कंठ कमल में बसै अविद्या, ज्ञान ध्यान बुद्धि नासही।
लील चक्र मध्य काल कर्मम्, आवत दम कुं फांसही।6।
त्रिकुटी कमल परम हंस पूर्ण, सतगुरु समरथ आप है।
मन पौना सम सिंध मेलो, सुरति निरति का जाप है।7।
सहंस कमल दल आप साहिब, ज्यूं फूलन मध्य गन्ध है।
पूर रह्या जगदीश जोगी, सत् समरथ निर्बन्ध है।।8।।

भावार्थ :- यह मानसिक जाप गुरु जी से लेकर करना होता है। इसकी कमाई से नलका लगाने का सामान पाईप व बोकी प्राप्त होगा। फिर (सत्यनाम का जाप करना है) स्वाँस-उस्वाँस रूपी बोकी एक बार ऊपर उठाते हैं फिर बोकी को जमीन में मारते हैं। ऐसा बार-2 करते रहते हैं तथा पाईप को साथ-2 नीचे पहुँचाते रहते हैं। जब पानी तक पहुँच गए फिर रूक जाते हैं। यहाँ तक सत्यनाम का काम है। यदि ऊपर पानी निकालने वाली मशीन (हैंड पम्प) नहीं लगाई तो वह पानी तक पहुँचाया हुआ पाईप व्यर्थ है। यदि सत्यनाम का जाप मिला हुआ वह भी पूर्ण गुरु द्वारा कुछ काम अवश्य करेगा परंतु पूर्ण लाभ (उद्देश्य) सार नाम से प्राप्त होगा।

गरीब, सतगुरु सोहं नाम दे, गुझ बिरज विस्तार। बिन सोहं सिझे नहीं, मूल मन्त्र निजसार।।

मूल मन्त्र यहाँ पर सार नाम को कहा है तथा सोहं के बिना सार शब्द भी कामयाब नहीं है। दसवीं (मैट्रिक) किए बिना आगे वाली कक्षा में प्रवेश नहीं मिलता। इसलिए कबीर साहेब कहते हैं --

कबीर सोहं सोहं जप मुए, वथा जन्म गवाया। सार शब्द मुक्ति का दाता, जाका भेद नहीं पाया।।

कबीर जो जन होए जौहरी, सो धन ले विलगाय। सोहं सोहं जपि मुए, मिथ्या जन्म गंवाया।।

कबीर कोटि नाम संसार में, इनसे मुक्ति न होय। आदि नाम (सारनाम) गुरु जाप है, बुझै बिरला कोय।।

विशेष प्रमाण के लिए कबीर पंथी शब्दावली पष्ठ नं. 51

ऊँ–सोहं, सोहं सोई। ऊँ – सोहं भजो नर लोई।।

भावार्थ :- धर्मदास को सत्य शब्द (सत्यनाम) सुनाया सतगुरु सत्य कबीर। कबीर साहेब ने धर्मदास को सत्य शब्द (सत्यनाम) दिया वह 'ऊँ-सोहं' है तथा इसका भजन करना। फिर बाद में सार शब्द दिया और कहा कि ''धर्मदास तोहे लाख दोहाई। सार शब्द कहीं बाहर न जाई।।'' यह इतना कीमती नाम है कि किसी काल के उपासक के हाथ न लग जाए। इसलिए गरीबदास जी ने कहा है -

गरीब, सोहं शब्द हम जग में लाए, सार शब्द हम गुप्त छुपाए।।

कबीर साहेब कहते हैं - इसी शब्द रमैणी में -

शब्द–शब्द बहु अंतरा, सार शब्द मथि लीजै। कहैं कबीर जहाँ सार शब्द नहीं, धिक जीवन सो जीजै।।

।।शब्द।।

संतो शब्दई शब्द बखाना।। टेक।। शब्द फांस फँसा सब कोई शब्द नहीं पहचाना।।
प्रथमहिं ब्रह्म स्व इच्छा ते पांचौ शब्द उचारा। सोहं, निरंजन, रंरकार, शक्ति और ओंकारा।।
पांचौ तत्व प्रकति तीनों गुण उपजाया। लोक द्वीप चारों खान चौरासी लाख बनाया।।
शब्दइ काल कलंदर कहिये शब्दइ भर्म भुलाया। पांच शब्द की आशा में सर्वस मूल गंवाया।।
शब्दइ ब्रह्म प्रकाश भैंट के बैठे मूंदे द्वारा। शब्दइ निरगुण शब्दइ सरगुण शब्दइ वेद पुकारा।।
शुद्ध ब्रह्म काया के भीतर बैठा एक स्थाना। ज्ञानी योगी पंडित औ सिद्ध शब्द में उरझाना।।
पाँचइ शब्द पाँच हैं मुद्रा काया बीच ठिकाना। जो जिही का आराधन करता सो तिहि करत बखाना।।
शब्द निरंजन चांचरी मुद्रा है नैनन के माँही। ताको जाने गोरख योगी महा तेज तप माँही।।
शब्द ओंकार भूचरी मुद्रा त्रिकुटी है स्थाना। व्यास देव ताहि पहिचाना चांद सूर्य तिहि जाना।।
सोहं शब्द अगोचरी मुद्रा भंवर गुफा स्थाना। शुकदेव मुनी ताहि पहिचाना सुन अनहद को काना।।
शब्द रंरकार खेचरी मुद्रा दसवें द्वार ठिकाना। ब्रह्मा विष्णु महेश आदि लो रंरकार पहिचाना।।
शक्ति शब्द ध्यान उनमुनी मुद्रा बसे आकाश सनेही। झिलमिल झिलमिल जोत दिखावे जाने जनक विदेही।।
पाँच शब्द पाँच हैं मुद्रा सो निश्चय कर जाना। आगे पुरुष पुरान निःअक्षर तिनकी खबर न जाना।।
नौ नाथ चौरासी सिद्धि लो पाँच शब्द में अटके। मुद्रा साध रहे घट भीतर फिर ओंधे मुख लटके।।
पाँच शब्द पाँच है मुद्रा लोक द्वीप यमजाला। कहैं कबीर अक्षर के आगे निःअक्षर उजियाला।।

भावार्थ :- जैसा कि इस शब्द ''संतो शब्दई शब्द बखाना'' में लिखा है कि सभी संत जन शब्द की महिमा गाते हैं। महाराज कबीर साहिब ने बताया है कि शब्द सतपुरुष का भी है जो कि सतपुरुष का प्रतीक है व निरंजन (काल) का प्रतीक भी शब्द ही है। जैसे शब्द ज्योति निरंजन यह चांचरी मुद्रा को प्राप्त करवाता है, इसको गोरख योगी ने बहुत अधिक तप करके प्राप्त किया जो कि आम (साधारण) व्यक्ति के बस की बात नहीं है और फिर गोरख नाथ काल तक ही साधना

करके सिद्ध बन गए। मुक्त नहीं हो पाए। जब कबीर साहिब ने सार नाम दिया तब काल से छुटकारा गोरख नाथ जी का हुआ। इसीलिए ज्योति निरंजन नाम का जाप करने वाले काल जाल से नहीं बच सकते अर्थात् सत्यलोक नहीं जा सकते। शब्द ओंकार (ओ३म) का जाप करने से भूंचरी मुद्रा की स्थिति में साधक आ जाता है। जो कि वेद व्यास ने साधना की और काल जाल में ही रहा। सोहं नाम के जाप से अगोचरी मुद्रा की स्थिति हो जाती है और काल के लोक में बनी भंवर गुफा में पहुंच जाते हैं। जिसकी साधना सुखदेव ऋषि ने की और केवल स्वर्ग तक पहुँचा। शब्द ररंकार खेचरी मुद्रा से दसमें द्वार (सुष्मणा) तक पहुंच जाते हैं। ब्रह्मा विष्णु महेश तीनों ने ररंकार को ही सत्य मान कर काल के जाल में उलझे रहे। शक्ति (श्रीयम्) शब्द ये उनमनी मुद्रा को प्राप्त करवा देता है जिसको राजा जनक ने प्राप्त किया परंतु मुक्ति नहीं हुई। कई संतों ने पांच नामों में शक्ति की जगह सत्यनाम जोड़ दिया है। सत्यनाम कोई जाप नहीं है। ये तो सच्चे नाम की तरफ इशारा है जैसे सत्यलोक को सच्च खण्ड भी कहते हैं ऐसे ही सत्यनाम व सच्चा नाम है। सत्यनाम जाप करने का नहीं है। अकाल मूरत, शब्द स्वरूपी राम, सतपुरुष ये नाम मुक्ति प्राप्त करने के नहीं हैं क्योंकि ये तो पूर्ण ब्रह्म परमात्मा के पर्यायवाची शब्द हैं जैसे अकाल मूरत वह परमात्मा जिसका काल न हो यानि अविनाशी। सतपुरुष वह सच्चा परमात्मा जिसका नाश न हो यानि अविनाशी। शब्द स्वरूपी राम वह परमात्मा जिसका वास्तविक रूप शब्द है और शब्द खण्ड नहीं होता व नाश में नहीं आता यानि अविनाशी। उस परमात्मा को जो अविनाशी है जिसको शब्द स्वरूपी राम, अकाल मूरत व सतपुरुष आदि नामों से जाना जाता है, को तो पाना है। यह तो इस प्रकार है जैसे जल के तीन पर्यायवाची नाम जैसे - जल-पानी-नीर। ऐसे कहते रहने से जल प्राप्त नहीं हो सकता उसके लिए हैंड पम्प लगाना पड़ता है तब पानी प्राप्त होता है। इसी प्रकार अकाल मूरत परमात्मा को प्राप्त करने की विधि भिन्न है। वे जाप करने के मंत्र भिन्न हैं जिनके विषय में कहा है कि ''सोई गुरू पूरा कहावै, जो अखर (अक्षर) का नाम बतावै''*। श्री नानक जी ने कहा है कि* ''जे तू पढ़िया पंडित बिन दोई अखर बिन दोई नावां।'' ***कबीर जी ने कहा है कि*** ''कबीर अखर दोई भाख, होगा खसम तो लेगा राख।'' ***दो अखर सतनाम में हैं जिनमें एक ॐ (ओम्) नाम है, दूसरा केवल उपदेशी को बताया जाता है। श्री नानक जी ने भी सतनाम के दूसरे मंत्र को गुप्त रखा था। जैसे वे कहते थे*** ''एक ओंकार'' ***तथा लिखते थे*** ''1 ॐ''***। जो यह 1 है, यह सतनाम के दूसरे अक्षर की ओर संकेत है। गीता अध्याय 17 श्लोक 23 में ''ॐ'' तो स्पष्ट लिखा है, परंतु दूसरा तथा तीसरा मंत्र सांकेतिक लिखा है।***

।। सार शब्द बिना सतनाम भी व्यर्थ।।

उसके लिए सत्यनाम यानि सच्चा नाम देने वाला गुरु मिले और स्वांस द्वारा अजपा-जाप करने को कहे। स्वांस उस्वांस रूपी बोकी लगे और फिर उसमें सार नाम रूपी नलका लगाया जाए तो पानी प्राप्त होता है अर्थात् वह अकाल मूर्ति (सतपुरुष) प्राप्त होता है। कई भक्तों ने बताया कि गरीबदास जी महाराज के अनुयाई संत भी केवल ओ३म-सोहं या केवल सोहं या ओ३म भागवदे वासुदेवाय नमः आदि-आदि नाम देते हैं जो कि मुक्ति के नहीं हैं। क्योंकि गरीबदास जी महाराज जी ने कहा है कि :--

सोहं अक्षर खण्ड है भाई, तातें निःक्षर रहो लौ लाई। सोहं में थे ध्रु प्रहलादा, ओ३म सोहं वाद विवादा।।

अर्थात् सोहं मन्त्र का जाप करने वाले प्रहलाद भी मुक्त नहीं हुए। जैसा कि शब्द 'कोई है रे परले पार का, भेद कहै झनकार का' में लिखा है कि वारिही (अंदर वाले किनारे) यानि काल लोक

में ही रहे। बन्दी छोड़ गरीबदास जी महाराज अपनी वाणी में लिखते हैं कि :

गरीब, सोहं ऊपर और है, सत सुकत एक नाम। सब हंसों का बंस है, नहीं बसती नहीं ठाम।।

गरीब, सतगुरु सोहं नाम दे, गुझ बीरझ विस्तार। बिन सोहं सीझे नहीं, मूल मन्त्र निजसार।।

गरीब, नामा छीपा ओ3म् तारी, पीछे सोहं भेद विचारी। सार शब्द पाया जद् लोई, आवागवन बहुर न होई।।

गरीब, सोहं शब्द हम जग में लाए, सार शब्द हम गुप्त छिपाए।।

महाराज गरीबदास जी ने बताया कि सोहं शब्द के ऊपर एक अन्य कल्याणकारक यानि मोक्षदायक नाम है जिससे सर्व का उद्धार संभव है। पूर्ण गुरू सोहं नाम देकर उसका गुप्त गूढ़ भेद विस्तार से बताता है। सारनाम भी सोहं के बिना लाभ नहीं देता। इसलिए पूर्ण संत ही सर्व नाम दान करके स्मरण की विधि बताता है। जैसे कि नामदेव संत ओ3म् जाप करते थे इसके बाद कबीर साहिब की कप्या से सोहं का ज्ञान हुआ फिर भी मुक्ति नहीं होनी थी। जब सार नाम कबीर साहिब ने दिया तब उसकी मुक्ति हुई। फिर नामदेव जी ने खुशी में यह शब्द गाया --

।। नामदेव जी की वाणी में सतनाम का प्रमाण।।

एजी–एजी साधो, सार शब्द मोहे पाया।
कलह कल्पना मन की मेटी, भय और कर्म नशाया।।टेक।।
रूप न रेख कछु ना वाके, सोहं ध्यान लगाया।
अजर अमर अविनाशी देखा, सिंधु सरोवर न्हाया।।1।।
शब्द ही शब्द भया उजियारा, सतगुरु भेद बताया।
अपने को आपे में पाया, न कहीं गया न आया।।2।।
ज्यों कामनी कंठ का हीरा, आभूषण विसराया।
संग की सहेली भेद बताया, जीव का भरम नशाया।।3।।
जैसे मग नाभी कस्तूरी, बन–बन डोलत धाया।
नासा स्वांस भई जब आगे, पलट निरंतर आया।।4।।
कहा कहूं वा सुख की महिमा, गूंगे को गुड़ खाया।
'नामदेव' कहै गुरु कपा से, ज्यों का त्यों दर्शाया।।5।।
कबीर, सोहं सोहं जप मुवे वथा जन्म गवांया।
सार शब्द मुक्ति का दाता, जाका भेद नहीं पाया।।

भावार्थ :- श्री नामदेव संत जी ने खुशी जताई है कि कहा है कि हे साध संगत! मैंने गुरू जी से सारशब्द प्राप्त कर लिया है। मन में जो भी शंका व कल्पनाऐं थी कि परमात्मा कैसे मिलेगा? वह अब सब समाप्त हो गई हैं। सारनाम तथा सतनाम के जाप से सर्व पापकर्म नष्ट हो गए हैं। मोक्ष न होने का भय था, वह भी मिट गया है क्योंकि पूर्ण गुरू तथा पूर्ण मंत्र मिल गए हैं। अब मोक्ष में कोई संशय नहीं है। सतगुरू जी ने साधना का गूढ़ भेद बता दिया है। कहीं बाहर भटकने की आवश्यकता नहीं है। अपने मानव शरीर में ही भक्ति करने से परमात्मा प्राप्त होता है। सतगुरू ने मानव को उसी के श्वासों द्वारा स्मरण करने का भेद बताकर अनमोल मोक्ष रूपी आभूषण मिला दिया जैसे एक युवती ने स्वर्ण का आभूषण गले में पहन रखा था। भूल गई थी कि मेरा गहना मेरे ही गले में है। वह उसे खोज रही थी। दूसरी सहेली (मित्र) ने बताया कि जिस आभूषण को खोज रही है, वह तेरे गले में है। इसी प्रकार सतगुरू जी ने श्वासों के जाप का महत्व बताकर कतार्थ किया

है। अन्य व्यक्ति पूछ रहे हैं कि सतनाम व सारनाम को श्वांस से जाप करने में कैसा आनंद आता है। इसके उत्तर में संत नामदेव जी ने अपने सतगुरू कबीर जी से प्राप्त ज्ञान के द्वारा बताया कि जैसे गूंगा व्यक्ति गुड़ खा रहा था। वह उसके आनंद को बोलकर नहीं बता पा रहा था, केवल खुशी से सिर-गर्दन हिला-हिलाकर आनंद प्रकट कर रहा था। इसी प्रकार श्वांस के स्मरण का आनंद सतनाम-सारनाम प्राप्त भक्त-भक्तमति ही महसूस कर सकते हैं, बताया नहीं जा सकता। अन्य उदाहरण दिया है कि जैसे किसी-किसी हिरण की नाभि में कस्तूरी होती है। उससे सुगंध निकलती है। हिरण जब घास चरता है तो उसके श्वासों द्वारा वह महक घास व पथ्वी से टकराकर हिरण के द्वारा लिए गए श्वांस में महसूस होती है। भूलवश वह हिरण समझता है कि यह महक घास के अंदर से आ रही है। वह कस्तूरी को घास में खोजने लगता है। इधर-उधर घास को सूंघता फिरता है। अंत में थककर बैठ जाता है। उसको फिर भी वह महक आ रही होती है। तब वह भटकना छोड़कर अपने श्वासों से अपने अंदर की कस्तूरी की सुगंध का आनंद लेता है। इसी प्रकार पूर्ण सतगुरू श्वांसों का स्मरण बताकर तत्वज्ञान समझाकर भक्त-भक्तमति का नकली संतों व आन-उपासना के लिए भटकना समाप्त कर देता है। मोक्ष प्राप्त करा देता है।

।। गलत नाम मूर्खों की उपासना ।।

कई भक्तों ने बताया कि हमारे गुरुदेव जी केवल राधा स्वामी नाम देते हैं जबकि यह नाम कबीर साहिब ने कहीं भी अपने शास्त्र में वर्णन नहीं कर रखा। न ही किसी अन्य शास्त्र (वेद-गीता जी आदि) में प्रमाण है। इसलिए शास्त्र से विपरीत साधना होने से नरक प्राप्ति है। वाणी है :--

कबीर, दादू धारा अगम की, सतगुरु दई बताय। उल्ट ताही सुमरण करे, स्वामी संग मिल जाय।।

टिप्पणी :-- कहते हैं कि कबीर साहिब ने दादू साहिब को कहा कि धारा शब्द का उल्टा *राधा बनाओ और स्वामी के साथ मिला लो यह राधा स्वामी मन्त्र हो गया। प्रथम तो यह वाणी दादू साहिब की है न कि कबीर साहिब की। और इस साखी का अर्थ बनता है कि दादू साहिब कहते हैं कि मेरे सतगुरु (कबीर साहिब) ने मुझे तीन लोक से आगे (अगम) की धारा (विधि) बताई कि तीन लोक की साधना को छोड़कर (उल्ट कर) जो सत्यनाम व सारनाम दिया है वह आपको सतपुरुष से मिला देगा। इसीलिए भक्तजनों मनुष्य जन्म का मिलना अति दुर्लभ है। इसको अनजान साधनाओं में नहीं खोना चाहिए। पूरे गुरु की तलाश करें जो कि आज के दिन मेरे पूज्य गुरुदेव स्वामी रामदेवानन्द जी महाराज की कप्या से यह दोनों मन्त्र उपलब्ध हैं जिनकी विधि पूर्वक गुरु मर्यादा में रह कर साधना (जाप) करने से बड़े सहजमय सतपुरुष प्राप्ति हो जाती है।*

।। काल के जाल का वर्णन ।।

कबीर पंथी शब्दावली (पष्ठ नं. 550, 551, 557) से सहाभार

रमैनी 61 – निरगुन पुरुष निरंजन देवा। सब जग करे ताहिकी सेवा।।
अपन अपन मत कीन्ह बिचारी। बात न बूझै कोई हमारी।।
बैरागी कहे लेउ बैरागा। ब्रह्मचारी तीरथ व्रत लागा।।
संन्यासी सर्वनास कराया। योग जुगति कर प्रान चढाया।
जिंदा पड़ा कुरानके फंदा। भा छानबे झूठ पाखंडा।
भेष धरी यहि गुरुवा दिखलावे। आप गुरु होय जगत बतावे।।

***भावार्थ :-** कबीर परमात्मा जी ने बताया है कि काल ब्रह्म यानि ज्योति निरंजन अव्यक्त*

रहता है। इसलिए उसे निर्गुण (निराकार) मान रखा है। सर्व जगत उसी की भक्ति कर रहा है। किसी को यथार्थ अध्यात्म ज्ञान नहीं है। सब अपना-अपना मन यानि विधान बताते हैं। कोई भी मेरे ज्ञान को नहीं सुनना चाहता। जो भी जैसी साधना कर रहा है, वह अन्य को उसी के करने की राय देता है। जैसे वैरागी कहते हैं कि सब वैराग्य धारण करो। जो ब्रह्मचारी हैं, वे तीर्थ-व्रत को महत्व देते हैं। सन्यासियों ने समाधि लगाने का अभ्यास करके अपने जीवन को नष्ट कर लिया। मुसलमान धर्म के जिंदा संत कुरान में फँसकर अधूरी साधना कर रहे हैं। सब पंथों के अनुयाई भिन्न-भिन्न वेशभूषा पहनकर तथा अन्य भिन्न पहचान बनाकर अपने को सत्य साधक मानते हैं। उनके गुरूजन भी उसी प्रकार की वेशभूषा धारण करके अपने पंथ का प्रचार करके भोले जीवों को अपने जाल में फँसाकर काल ब्रह्म का आहार तैयार कर रहे हैं। पूर्ण संत बिना मोक्ष नहीं हो सकता।

।। कबीर साहेब का शब्द ।।

कर नैनों दीदार महलमें प्यारा है।। टेक।।
काम क्रोध मद लोभ बिसारो, शील सँतोष क्षमा सत धारो।
मद मांस मिथ्या तजि डारो, हो ज्ञान घोडै असवार, भरम से न्यारा है।।1।।
धोती नेती बस्ती पाओ, आसन पदम जुगतसे लाओ।
कुम्भक कर रेचक करवाओ, पहिले मूल सुधार कारज हो सारा है।।2।।
मूल कँवल दल चतूर बखानो, किलियम जाप लाल रंग मानो।
देव गनेश तहँ रोपा थानो, रिद्धि सिद्धि चँवर ढुलारा है।।3।।
स्वाद चक्र षटदल विस्तारो, ब्रह्म सावित्री रूप निहारो।
उलटि नागिनी का सिर मारो, तहाँ शब्द ओंकारा है।।4।।
नाभी अष्ट कमल दल साजा, सेत सिंहासन बिष्णु बिराजा।
हरियम् जाप तासु मुख गाजा, लछमी शिव आधारा है।।5।।
द्वादश कमल हृदयेके माहीं, जंग गौर शिव ध्यान लगाई।
सोहं शब्द तहँ धुन छाई, गन करै जैजैकारा है।।6।।
षोड्श कमल कंठ के माहीं, तेही मध बसे अविद्या बाई।
हरि हर ब्रह्म चँवर ढुराई, जहँ श्रीयम् नाम उचारा है।।7।।
तापर कंज कमल है भाई, बग भौंरा दुइ रूप लखाई।
निज मन करत वहाँ ठकुराई, सो नैनन पिछवारा है।।8।।
कमलन भेद किया निर्वारा, यह सब रचना पिंड मँझारा।
सतसँग कर सतगुरु शिर धारा, वह सतनाम उचारा है।।9।।
आँख कान मुख बन्द कराओ, अनहद झिंगा शब्द सुनाओ।
दोनों तिल इक तार मिलाओ, तब देखो गुलजारा है।।10।।
चंद सूर एक घर लाओ, सुषमन सेती ध्यान लगाओ।
तिरबेनीके संधि समाओ, भौर उतर चल पारा है।।11।।
घंटा शंख सुनो धुन दोई, सहस्र कमल दल जगमग होई।
ता मध करता निरखो सोई, बंकनाल धस पारा है।।12।।
डाकिनी शाकनी बहु किलकारे, जम किंकर धर्म दूत हकारे।
सत्तनाम सुन भागे सारें, जब सतगुरु नाम उचारा है।।13।।
गगन मँडल बिच उर्धमुख कुइया, गुरुमुख साधू भर भर पीया।

निगुरो प्यास मरे बिन कीया, जाके हिये अँधियारा है।।14।।
त्रिकुटी महलमें विद्या सारा, धनहर गरजे बजे नगारा।
लाल बरन सूरज उजियारा, चतूर दलकमल मंझार शब्द ओंकारा है।।15।।
साध सोई जिन यह गढ लीनहा, नौ दरवाजे परगट चीन्हा।
दसवाँ खोल जाय जिन दीन्हा, जहाँ कुलुफ रहा मारा है।।16।।
आगे सेत सुन्न है भाई, मानसरोवर पैठि अन्हाई।
हंसन मिलि हंसा होई जाई, मिलै जो अमी अहारा है।।17।।
किंगरी सारंग बजै सितारा, क्षर ब्रह्म सुन्न दरबारा।
द्वादस भानु हंस उँजियारा, षट दल कमल मँझार शब्द ररंकारा है।।18।।
महा सुन्न सिंध बिषमी घाटी, बिन सतगुरु पावै नहिं बाटी।
व्याघर सिहं सरप बहु काटी, तहँ सहज अचिंत पसारा है।।19।।
अष्ट दल कमल पारब्रह्म भाई, दहिने द्वादश अंचित रहाई।
बायें दस दल सहज समाई, यो कमलन निरवारा है।।20।।
पाँच ब्रह्म पांचों अँड बीनो, पाँच ब्रह्म निःअच्छर चीन्हों।
चार मुकाम गुप्त तहँ कीन्हो, जा मध बंदीवान पुरुष दरबारा है।। 21।।
दो पर्वतके संध निहारो, भँवर गुफा तहां संत पुकारो।
हंसा करते केल अपारो, तहाँ गुरन दर्बारा है।।22।।
सहस अठासी दीप रचाये, हीरे पन्ने महल जड़ाये।
मुरली बजत अखंड सदा ये, तँह सोहं झनकारा है।।23।।
सोहं हद तजी जब भाई, सत्तलोककी हद पुनि आई।
उठत सुगंध महा अधिकाई, जाको वार न पारा है।।24।।
षोडस भानु हंसको रूपा, बीना सत धुन बजै अनूपा।
हंसा करत चँवर शिर भूपा, सत्त पुरुष दर्बारा है।।25।।
कोटिन भानु उदय जो होई, एते ही पुनि चंद्र लखोई।
पुरुष रोम सम एक न होई, ऐसा पुरुष दिदारा है।।26।।
आगे अलख लोक है भाई, अलख पुरुषकी तहँ ठकुराई।
अरबन सूर रोम सम नाहीं, ऐसा अलख निहारा है।।27।।
ता पर अगम महल इक साजा, अगम पुरुष ताहिको राजा।
खरबन सूर रोम इक लाजा, ऐसा अगम अपारा है।।28।।
ता पर अकह लोक है भाई, पुरुष अनामि तहां रहाई।
जो पहुँचा जानेगा वाही, कहन सुनन ते न्यारा है।।29।।
काया भेद किया निरुवारा, यह सब रचना पिंड मँझारा।
माया अविगत जाल पसारा, सो कारीगर भारा है।।30।।
आदि माया कीन्ही चतूराई, झूठी बाजी पिंड दिखाई।
अवगति रचना रची अँड माहीं, ताका प्रतिबिंब डारा है।।31।।
शब्द बिहंगम चाल हमारी, कहैं कबीर सतगुरु दई तारी।
खुले कपाट शब्द झनकारी, पिंड अंडके पार सो देश हमारा है।।32।।

(कबीर शब्दावली से लेख समाप्त)

शब्दः-- ''कर नैनों दीदार महल में प्यारा है'' इसमें साहेब कबीर ने काल के जाल का पूरा विवरण दिया है। स्थूल शरीर (पाँच तत्व से बना मनुष्य) को एक टेलिविजन जानो। इसमें चैनल लगे हैं।

	कमल	देवता
1	मूल कमल	गणेश
2	स्वाद चक्र	ब्रह्मा–सावित्री
3	नाभि कमल	विष्णु–लक्ष्मी
4	हृदय कमल	शिव–पार्वती
5	कंठ कमल	अविद्या (प्रकंति)

त्रिकुटी दो दल (काला व सफेद रंग) का कमल है। इसे एयरपोर्ट जानों जैसे हवाई अड्डा हो। वहाँ से जहाँ भी जाना है वही जहाज उपलब्ध होगा। चूंकि सर्व संत यहीं से अपना आगे जाने का मार्ग लेते हैं। वहाँ पर परमात्मा (भक्त जिस इष्ट का उपासक है) गुरु का रूप (शब्द स्वरूपी गुरु या शब्द गुरु कहिए) बना कर आता है तथा अपने हंस को अपने साथ ले कर स्वस्थान (स्वलोक) में ले जाता है। यहाँ पर निजमन (पारब्रह्म) रहता है। वह जीव के साथ किसी प्रकार का धोखा नहीं होने देता। जैसे हवाई अड्डे पर जाने से पहले जिस देश में जाना है उसका पासपोर्ट, बीजा व टिकट पहले ही प्राप्त कर लिया जाता है। वहाँ पर जाते ही उसी जहाज में बैठा दिया जाता है। जिसने जिस इष्ट लोक में जाने की तैयारी गुरु बना कर नाम स्मरण करके कर रखी है वह उसी लोक में त्रिकुटी से अपने शब्द गुरु के साथ चला जाता है। इससे आगे सहंस्रार कमल है तथा ज्योति नजर आती है ब्रह्म उपासक इस ज्योति को देख कर अपने धन्य भाग समझते हैं। यहीं तक की जानकारी पंताजली योग दर्शन व अन्य योगियों का अनुभव है। इससे आगे किसी प्रमाणित शास्त्र में ज्ञान नहीं है। यह काल का प्रथम जाल है।

जिन भक्त आत्माओं को पूर्ण सतगुरु मिल गया, उसने सतसंग सुन कर सतनाम ले लिया। वह इस जाल को समझ गया तथा नाम जपने लग गया।

काल का दूसरा जाल है कि सतलोक, अलख लोक, अगम लोक व अनामी लोक यह सब पूर्णब्रह्म की रचना की झूठी नकल कर रखी है {उसका प्रतिबिम्ब डारा है}। नकली शब्द बना रखे हैं। उनको सुनने का तरीका है आँख-कान-मुख हाथ की उँगलियों से बन्द करके फिर उसमें कानों पर ध्यान लगाओ। एक झंगा कीट होता है वह झीं-झीं की आवाज करता रहता है। उस से मिलती जुलती आवाज है। उसे अनहद शब्द कहते हैं, इसे सुनो।

दूसरी साधना - दोनों आँखों की पुतलियों (सैलियों के निचे) को दबाओ। उसमें से नाना प्रकार का प्रकाश (गुलजारा) दिखाई देगा।

फिर तीसरी साधना बताई - ठण्डा स्वांस चन्द (बांई नाक वाली स्वांस) व सूर (सूर्य) गर्म स्वांस (दांई नाक वाली स्वांस) को इक्ट्ठा करके सुषमना में प्रवेश करो। यह प्राणायाम विधि है। फिर आगे चलो त्रिवैणी पर। यह सब काल रचित है। जब साधक त्रिवैणी पर चले जाते हैं। वहाँ तीन रास्ते होते हैं। दांई ओर सहंस्रार (एक हजार कमल दल) दल वाला कमल है। वह काल (ज्योति निरंजन) का महास्वर्ग है। इसमें घंटा तथा शंख की आवाज होती सुनाई देवेगी तथा फिर झिलमिल-झिलमिल प्रकाश नजर आएगा। वहाँ निराकार रूप में (काल) कर्त्ता रहता है ऐसा साधक मानते हैं परंतु वास्तव में महाब्रह्मा-महाविष्णु व महाशिव रूप में आकार में है। दांई ओर बारह भक्त

काल (ब्रह्म) के हुए हैं। वे वहाँ पर निश्चिंत रहते हैं। उनको महा प्रलय तक मत्यु की चिंता नहीं है। परंतु महा प्रलय में फिर समाप्त हो जाएंगे। काल जब दोबारा सष्टि रचेगा तो फिर चौरासी लाख योनियों में कर्म कष्ट भोगने के लिए चले जाएंगे। जब यह साधक ब्रह्मरन्द्र की ओर चलता है तो वहाँ पर बहुत भयंकर आकतियाँ वाली स्त्रियों (डाकनी) की व यम दूतों की पूरी फौज रहती है। उस कटक दल (काल सेना) को न तो ऊँ नाम से जीता जा सकता, न किलियम् से, न हरियम् से, न सोहं से, न ही ज्योति निरंजन-रंरकार-ओंकार-सोहं-शक्ति (श्रीयम्) से, न ही राधास्वामी नाम से, न हीं अकाल मूर्त-शब्द स्वरूपी राम या सतपुरुष या अन्य मनमुखी नामों से जीता जा सकता है। वह केवल पूर्ण संत से उपदेश प्राप्त करके सतनाम सच्चा नाम (ऊँ-सोहं) स्वांस के स्मरण करने से उनको तीर से लगते हैं। जिससे वे भाग जाते हैं। रास्ता खाली हो जाता है, ब्रह्मरन्द्र खुल जाता है तथा साधक काल के असली (विराट रूप में जहाँ रहता है) स्वरूप को देख कर उसके सिर पर पैर रखकर ग्यारहवें द्वार [जो काल ने अपने सिर से बन्द कर रखा है जो सतगुरु के सत्यनाम व सारनाम के दबाव से काल का सिर स्वतः झुक जाता है और वह द्वार खुल जाता है। इस प्रकार यह हंस परब्रह्म के लोक] में प्रवेश कर जाता है। वहाँ काल की माया का दबाव नहीं है। उसके बाद अपने आप केवल सोहं शब्द व सारनाम स्मरण शुरु हो जाता है। ऊँ का जाप उच्चारण नहीं होता। चूंकि वहाँ सूक्ष्म शरीर छूट जाता है अर्थात् ओ३म मंत्र की कमाई ब्रह्म (काल) को छोड़ दी जाती है। कारण व महाकारण शरीर भी सारनाम के स्मरण से (जो केवल सुरति निरति से शुरु हो जाता है) समाप्त हो जाते हैं। उस समय केवल कैवल्य शरीर रह जाता है। उस समय जीव की स्थिति बारह सूर्यों के प्रकाश के समान हो जाती है, इतना तेजोमय हो जाता है। सतगुरु वहाँ पूछते हैं कि हे हंस आत्मा! आपका किसी जीव में, वस्तु में, सम्पत्ति में मोह तो नहीं है। यदि है तो फिर वापिस काल लोक में जाना होगा। परंतु उस समय यह जीवात्मा काल का पूर्ण जाल पार कर चुकी होती है। वापिस जाने को आत्मा नहीं मानती। तब कह देती है कि नहीं सतगुरु जी, अब उस नरक में नहीं जाऊँगा। तब सतगुरु उस हंस को अमत मानसरोवर में स्नान करवाते हैं। उस समय उस हंस का कैवल्य शरीर तथा सर्व आवरण समाप्त होकर आत्म तत्व में आ जाता है। यह मानसरोवर परब्रह्म के लोक तथा सतलोक के बीच में बने सुन्न स्थान में है जहाँ से भंवर गुफा प्रारम्भ होती है। उस भंवर गुफा में आत्मा का स्वरूप 16 सूर्यों जितना तेजोमय हो जाता है तथा बारहवें द्वार को पार कर सत्यलोक में प्रवेश कर सदा पूर्णब्रह्म के आनन्द को पाती है। यह पूर्ण मुक्ति है।

यह आत्मा भूल कर भी वापिस काल के जाल में नहीं आती। जैसे बच्चे का एक बार आग में हाथ जल जाए तो वह फिर उधर नहीं जाता। उसे छूने की कोशिश भी नहीं करता।

कड़ी नं. 14 में साहेब कबीर बता रहे हैं कि यह संसार उल्टा लटक रहा है। जैसे किसी कुँए में अमत भरा है अर्थात् परमात्मा का आनन्द इस शरीर में है। वह दसवें द्वार के पार ही है जो इस शरीर के अन्दर नीचे को मुख वाला सुषमना द्वार है। जो सुषमणा में से पार हो जाता है वही भक्त लाभ प्राप्त करता है यह साधना नाम व गुरु धारण करके ही बनती है।

कड़ी नं. 15 में सतगुरु कबीर साहेब जी भेद दे रहे हैं कि जब काल साधक ऊँ नाम का जाप परमात्मा को निर्गुण जान कर गुरु धारण करके करता है तो काल स्वयं उस साधक के गुरु का (नकली शब्द रूप) रूप बनाकर आता है तथा महास्वर्ग (महाइन्द्रलोक) में ले जाता है। जब वह महाइन्द्र लोक के निकट जाते हैं तो बहुत जोर से बादल की गर्जना जैसा भयंकर शब्द होता है। जो साधक डर जाता है वह वापिस चौरासी में चला जाता है और जो नहीं डरता है वह अपने गुरु के

साथ आगे बढ़ जाता है। उसे फिर सुहावना नंगारा बजता हुआ सुनाई देता है। चार पंखड़ी वाला कमल का लाल रंग का एक और कमल है उसमें ओंकार धुनि हो रही हो जो महास्वर्ग में है।

कड़ी नं. 16 का अर्थ है कि संत वह है जो दशवें दरवाजे पर काल द्वारा लगाए ताले को सत्यनाम की चाबी से खोल कर आगे ग्यारहवाँ द्वार जो काल ने नकली सतलोक आदि बीस ब्रह्मण्डों के पार इक्कीसवें ब्रह्मण्ड में बनाकर बन्द कर रखा है उसे भी खोल कर परब्रह्म (अक्षर ब्रह्म) के लोक में चला जाता है। क्योंकि नौ द्वार (दो नाक, दो कान, दो आँखें, मुख, गुदा-लिंग ये नौ) प्रगट दिखाई देते हैं। दसवें द्वार पर (जो सुषमना खुलने पर आता है) ताला लगा रखा है तथा ग्यारहवां द्वार परब्रह्म के लोक में प्रवेश करने वाले स्थान पर बना रखा है। जहाँ स्वयं काल भगवान सशरीर विराजमान है।

कड़ी नं. 17 आगे सेत सुन्न है (जो काल भगवान ने नकली बना रखी है) वहाँ एक नकली मानसरोवर बना रखा है तथा जो निर्गुण यानि निराकार मानकर साधना करने वाले जो उपासक ब्रह्म के होते हैं, उन्हें इस सरोवर में स्नान कराने के बाद नकली परब्रह्म के लोक में जो महास्वर्ग में रच रखा है भेज देता है। वे अन्य साधकों की दिव्य दृष्टी से दूर हो जाते हैं। उन्हें ब्रह्म लीन मान लिया जाता है। इस स्थान को काल ने गुप्त रखा हुआ है। जो इसमें पहुँच गए वह पूर्व पहुँचे हंसों को मिलकर आन्नदित होते हैं। जैसे पित्र-पित्रों को मिलकर तथा भूत भूतों को मिल कर। इसमें रंरकार धुनि चल रही है। जिन साधकों ने खेचरी मुद्रा लगा कर साधना ररंकार जाप से की वे महाविष्णु (ब्रह्म-काल) के महास्वर्ग में चले जाते हैं। फिर काल निर्मित महासुन्न है, उसको बिना सतनाम-सारनाम वाले हंस पार नहीं कर सकते। वहाँ पर काल ने मायावी सिंह, व्याध व सर्प छोड़ रखे हैं वे बिना सतनाम-सारनाम के हंस को काटते हैं। इसलिए भक्ति चाहे काल लोक की करो, चाहे सतलोक की, लेकिन गुरु बनाना जरूरी है। यह सहज दास वाले द्वीप की नकल वाला सुखदाई विस्तार है।

यह जो कमल वर्णन किए जा रहे हैं यह सूक्ष्म शरीर के हैं तथा सूक्ष्म शरीर भी काल द्वारा जीव पर चढाया गया है। इसलिए यह सब काल की नकली रचना का वर्णन सतगुरु कबीर जी ने बताया है। अष्ट पंखड़ी वाला एक और कमल है, वह परब्रह्म का लोक कहा है। वास्तव में यह वह स्थान है जहाँ पर पूर्ण ब्रह्म अन्य रूप में निवास करता है तथा वहाँ न ब्रह्म (काल) जा सकता है तथा न तीनों देव ही जा सकते हैं। इसलिए इसे भी परब्रह्म कहा जाता है। उसके दांए हिस्से में बारह भक्त रहते हैं। उसके बांए में दस दल का कमल है जिसमें कर्म सन्यासी निर्गुण उपासक रहते हैं। ऐसे-2 काल ने पाँच ब्रह्म (अपने स्वरूप जैसे अन्य प्रभु) व पाँच अण्ड मण्डल बना रखे हैं। उनको अपनी ओर से निःअक्षर की उपाधी दे रखी है। और चार स्थान गुप्त रखे हैं जिनमें वे भक्त जो सतगुरु कबीर के उपासक होते हैं तथा फिर दोबारा काल भक्ति करने लगते हैं। उनसे काल (ब्रह्म-निरंजन) इतना नाराज हो जाता है कि उन्हें कैदी बनाकर इन गुप्त स्थानों पर रख देता है तथा वहाँ महाकष्ट देता है। आगे दो पर्वत हैं। उनके बीचों बीच एक रास्ता है। वहाँ काल के उपासक जो गुरुपद पर होते हैं उन्हें कुछ दिन इस स्थान पर रखता है। इसे भंवर गुफा भी कहते हैं। वहाँ पर ये हंस (गुरुजन) अपने भक्ति कर्मों के फलरूप सुख भोगते हैं तथा वहाँ सोहं शब्द की स्वतः धुनि चल रही है और मुरली की मीठी-2 धुनि भी चल रही होती है तथा उस स्थान में हीरे-पन्ने जड़े हुए हैं। बहुत ही मनोरम स्थान बना रखा है। इस सोहं मन्त्र द्वारा किए जाप से अक्षर पुरूष (परब्रह्म) के लोक से पार होने पर नकली सतलोक आता है। परब्रह्म रूप धार कर काल ही धोखा

दे रहा है। उसमें महक उठती रहती है। जो बहुत विस्तत स्थान है। यहाँ पर काल उपासक विशेष साधक (मार्कण्डेय ऋषि जैसे) ही पहुँच पाते हैं। यहाँ काल स्वयं सतपुरुष बना बैठा है परंतु गुप्त ही रहता है। वहाँ पर अपने आप धुनि हो रही है। वहाँ पहुँचे हंस उस महाविष्णु रूप में बैठे नकली सतपुरुष पर आदर से चँवर करते हैं तथा आनन्दित होते हैं। उस काल रूपी सतपुरुष का रूप हजारों सूर्य और चन्द्रमाओं की रोशनी हो ऐसा सतपुरुष से कुछ मिलता जुलता रूप बना रखा है।

फिर स्वयं ही अलख पुरुष बना बैठा है तथा अलख लोक बना रखा है। फिर स्वयं ही अगम पुरुष बनकर अगम लोक में व अनामी पुरुष बनकर अकह लोक में सबको धोखा दिए बैठा है तथा कहता है कि वह तो अवर्णननीय है। यह वही जानेगा जो वहां पहुँचेगा।

कबीर साहेब जी ने शब्द के अंत में कहा कि यह सब काया स्थूल व सूक्ष्म शरीर के कमलों का न्यारा-2 विवरण आपके सामने कर दिया। यह सब वर्णन रचना का भेद आपको बताया है यह (दोनों शरीर स्थूल व सूक्ष्म के अन्दर है) काया के अन्दर ही है। इस काल की माया (प्रकति) ने अपनी चतुराई से झूठी रचना करके सतलोक की रचना जैसी ही अण्ड (ब्रह्मण्ड) में नकली रचना कर रखी है। फिर भी इसमें और वास्तविक सतलोक में दिन और रात का अन्तर है। जैसे बारीक नमक तथा बूरा में कोई अंतर दिखाई नहीं देता परंतु स्वाद भिन्न है। कबीर साहेब कहते हैं कि हमारा मार्ग विहंगम (पक्षी) की तरह है। जैसे पक्षी जमीन से उड़ कर सीधा वक्ष की चोटी पर पहुँच जाता है। काल साधकों का मार्ग पपील मार्ग है। जैसे चींटी जमीन से चल कर वक्ष के तने से फिर डार व टहनियों पर से ऊपर जाती है। त्रिकुटी से कबीर साहेब के हंस विमान में बैठ कर उड़ जाते हैं। परंतु ब्रह्म (काल) के उपासक चींटी की तरह चल कर अपने-अपने इष्ट स्थान पर जाते हैं। सारनाम रूपी विमान से ही साधक सतलोक जा सकता है। अन्य किसी उपासना या मंत्र से नहीं जाया जा सकता। जैसे समुद्र को समुद्री जहाज या हवाई जहाज से ही पार किया जा सकता है, तैर कर नहीं। इसलिए पूज्य कबीर साहेब जी ने कहा है कि हम व हमारे हंस आत्मा शब्द (सत्यनाम व सार नाम) के स्मरण से प्राप्त सिद्धि यानि आध्यात्मिक शक्ति से उड़कर सतलोक चले जाते हैं। वहाँ पर आत्मा के शरीर का प्रकाश सोलह सूर्यों के प्रकाश तुल्य हो जाता है। मनुष्य जैसा ही अमर शरीर आत्मा को प्राप्त होता है। सतलोक में जीव नहीं कहलाता, परमात्मा जैसे गुणों युक्त अमर होकर हंस कहलाता है तथा परमात्मा ऊपर के सर्व लोकों में परमहंस कहा जाता है, अनामी लोक में भी परमात्मा तथा आत्मा का अस्तित्व भिन्न रहता है। तत्वज्ञान के आधार से साधक कमलों में नहीं उलझते। चूंकि सतगुरु जी सार शब्द रूपी कुंजी दे देता है, जिससे काल के सर्व ताले अपने आप खुलते चले जाते हैं तथा वास्तविक शब्द की झनकार (धुनि) होने लगती है जो इस शरीर के बाहर सत्यलोक में हो रही है। सत्यलोक पिंड (शरीर) व अण्ड (ब्रह्मण्ड) के पार है। वहां जा कर आत्मा पूर्ण मुक्ति प्राप्त करती है।

।। नकली गुरु को त्याग देना पाप नहीं।।

यह सारी सच्चाई समझ कर वह अन्य गुरू का शिष्य पुण्यात्मा काफी प्रभावित हुआ तथा कहा कि आपके द्वारा बताया गया ज्ञान सही है और हमारी साधना ठीक नहीं है। वह लगातार तीन बार सतसंग सुनने आया तथा कहा कि दिल तो कहता है कि मैं भी नाम ले लूं लेकिन मेरे सामने एक दीवार खड़ी है।

1. एक तो कहते हैं गुरु नहीं बदलना चाहिए, पाप होता है।

2. दूसरे मैंने लगभग 400-500 (चार सौ-पांच सौ) भक्तों को इसी पंथ के संत से उपदेश दिलवा रखा हैं वे मुझे अपना सरदार तथा पूर्ण ज्ञान युक्त समझते हैं। अब मुझे शर्म लगती है कि वे क्या कहेंगें? अर्थात् मुझे धिक्कारेंगे।

मैंने (संत रामपाल दास ने) उस भक्त आत्मा को बताया :-- कबीर साहिब व सर्व संत यही कहते हैं कि झूठे गुरु को तुरंत त्याग दे।

प्रमाण के लिए कबीर पंथी शब्दावली पष्ठ नं. 263 से सहाभार --

झूठे गुरु के पक्ष को, तजत न कीजै बार। राह न पावै शब्द का, भटकै द्वारहिं द्वार।।

जैसे एक वैद्य (डॉक्टर) से इलाज नहीं हो तो दूसरा वैद्य (डॉक्टर) ढूंढना चाहिए। गलत डॉ. के आश्रित रह कर अपने प्राण नहीं गंवाने चाहिए।

दूसरा आपने उनको स्पष्ट बताना चाहिए कि अपनी साधना ठीक नहीं है। आप भी यहां से दोबारा नाम ले लो तथा उन 400-500 प्राणियों का भी उद्धार करवाओ। इस पर वह ज्ञानी पुरुष जो प्रवक्ता भी बना हुआ था बोला कि मैं गुरु नहीं बदल सकता। मेरा मान घट जाएगा तथा वे लोग मुझे बुरा-भला कहेंगे। बेशक नरक में जाऊँ, मैं मार्ग नहीं बदल सकता। इस प्रकार जीव कहीं मान वश तो कहीं अज्ञान वश काल के जाल में फंसा ही रहता है। इस से आप भक्त जन गीता जी के ज्ञान को समझें तथा कबीर साहिब का उपदेश मुझ दास से प्राप्त करके कल्याण करवाऐं।

।। सतनाम का विशेष प्रमाण।।

उस भगवान (पूर्णब्रह्म) को पाने का मन्त्र सत्यनाम (स्वासों द्वारा किया जाने वाला अजपा जाप) व फिर सारनाम व सारशब्द की प्राप्ति पूर्णब्रह्म की सच्ची नाम साधना व उसका परिणाम समझो। देखें - कबीर पंथी शब्दावली पष्ठ नं. 51, 52, 53, 55, 56, 57 । इनमें स्पष्ट लिखा है कि कबीर साहेब ने धर्मदास जी को सत्यनाम (ओ३म-सोहं) दिया है। कहा - ''ऊँ-सोहं भजो नर लोई'' फिर कहा है - ''सोहं शब्द अजपा जाप, साहेब कबीर सो आपै आप'' ।

कबीर पंथी शब्दावली से सहाभार

(प्रमाण के लिए सतगुरु की वाणी) (पष्ठ नं. 51)

चितगुण चित बिलास दास सो अंतर नाहीं।
आदि अंत में मध्य गोसाई अगह गहन में नाहीं।
गहनीगहिए सो कैसा, सोहं शब्दसमान आदिब्रह्म जैसेका तैसा।।
कहें कबीर हम खेलैं सहज सुभावा, अकह अडोल अबोल सोहं समिता।
तामो आन बसा एकरमिता।।
वा रमता को लखे जो कोई। ता को आवागमन न होई।।
ऊँ–सो हं, सोहं सोई ऊँ–सो हं भजो नर लोई।।
ऊँ कीलक सोहं वाला। ऊँ–सोहं बोले रिसाला।।
किलक, कमत, कंमोद, कंकवत, ये चारों गुरु पीर।।
धर्मदास को सत शब्द सुनायो, सतगुरु सत्य कबीर।।
बाजा नाद भया पर तीत। सतगुरु आये भौजल जीत।।
बाजबाज साहब का राज मारा कूटा दगाबाज।।
हाजिरको हजूर गाफिलको दूर हिंदूका गुरु मुसलमानका पीर।'
'सात द्वीपनौखंड में , सोहं सत्यकबीर''।।

(पष्ठ नं. 55)

पल जब पीव से लागा। धोखा तब दिलों का भागा।।
चेतावनी चित विलास। जबलग रहे पिंजर श्वास।।
सोहंशब्द अजपाजाप साहब कबीरसो आपहिं आप।।
चेतावनि चितलागि रहे, यह गति लखै न कोय।
अगम पन्थ के महल में, अनहद बानी होय।।
नाम नैन में रमि रहा, जाने बिरला कोय।
जाको सतगुरु मिलिया, ताको मालुम होय।।
झण्डा रोपा गैब का, दोय परवत के सन्ध।
साधु पहिचाने शब्द को, दष्टि कमल कर बन्ध।।
झलके जोती झिलमिला, बिन बाती विन तेल।।
चहुँदिशि सूरज ऊगिया, ऐसा अदभुत खेल।।
जागत रूपी रहत है, सतमत गहिर गंभीर।
अजर नाम बिनसे नहीं, सो हं सत्य कबीर।।

''परमेश्वर कबीर जी ने धर्मदास जी को सतनाम दिया। उसका वर्णन इस आरती चौंका में है।''

आरती चौंका

प्रथमहिं मंदिर चौक पुराये। उत्तम आसन श्वेत बिछाये।।
हंसा पग आसन पर दीन्हा। सत्तकवीर कही कह लीन्हा।।
नाम प्रताप हंस पर छाजे। हंसहि भार रती नहिं लागे।।
भार उतार आप सिर लीन्हा। हंस छुडाय कालसों लीन्हा।।
साधसंत मिलि बैठे आई। बहु बिध भक्ति करे चितलाई।।
पान सुपारी नारियर केरा। लौंग लायची किसमिस मेवा।।
सवा सेर आनो मिष्टाँना। सत सवासा उत्तम पाना।।
सात हाथ बस्तर परवाना। सो सतगुरुके आगे आना।।
इतना होय और नहीं भाई। जासों काल दगा मिट जाई।।
धन्य संत जिन आरति साजा। दुख दारिद्र वाके घरसे भागा।।
कहें कबीर सुनो धर्मदासा। ओहं–सोहं शब्द प्रगासा।।

आरती चौकें (प्रथम मंदिर चौंका पुराये –––) में लिखा है ''कहै कबीर सुनों धर्मदासा। ऊँ सोहं शब्द प्रगासा।।'' यह सतनाम (ऊँ–सोहं) है।

(शब्द)

अवधु अविगत से चल आया, कोई मेरा भेद मर्म नहीं पाया।।टेक।।
ना मेरा जन्म न गर्भ बसेरा, बालक है दिखलाया।
काशी नगर जल कमल पर डेरा, तहाँ जुलाहे ने पाया।।
माता–पिता मेरे कछु नहीं, ना मेरे घर दासी।
जुलहा को सुत आन कहाया, जगत करे मेरी है हांसी।।
पांच तत्व का धड़ नहीं मेरा, जानूं ज्ञान अपारा।
सत्य स्वरूपी नाम साहिब का, सो है नाम हमारा।।
अधर दीप (सतलोक) गगन गुफा में, तहां निज वस्तु सारा।

ज्योति स्वरूपी अलख निरंजन (ब्रह्म) भी, धरता ध्यान हमारा।।
हाड चाम लोहू नहीं मोरे, जाने सत्यनाम उपासी।
तारन तरन अभै पद दाता, मैं हूं कबीर अविनासी।।

(शब्द)

होत अनंद अनंद भजनमें, बरषत शब्द अमीकी बादर, भींजत हैं कोई संत।।
अग्रबास जहँ तत्त्वकी नदियां, मानो अठारा गंग।
कर अस्नान मगन है बैठे, चढत शब्दके रंग।।
पियत सुधारस लेत नामरस, चुवत अग्रके बुंद।
रोम रोम सब अमृत भीजे, पारस परसत अंग।।
श्वासा सार रचे मोरे साहब, जहां न माया मोहं।
कहें कबीर सुनो भाई साधू, जपो ओ3म–सोहं।।

(शब्द)

नाम सनेह न छांडिये, भावे तन मन धन जर जाय हो।।
पानीसे पैदा किया, नख सिख सीस बनाय।
वह साहबको बिसारिया, तेरो गाढो होत सहाय।।
महल चुने खाई खने, ऊँचे ऊँचे धाम।
जब जम बैठे कंठमें तेरो, कोई न आवे काम।।
मात पिता सुत बंधुवा, और दुलारी नार।
यह सब हिलमिल बीछुरे, तेरी शोभा है दिन चार।।
जैसे लागी औरसे, दिन दिन दूनी प्रीत।
नाम कबीर न छांडिये, भावे हार होयके जीत।।

साहेब कबीर ने कहा है कि शब्द *(हम अविगत से चल आए ––––––)* ***में*** *''न मेरे हाड चाम न लोहु, जाने सतनाम उपासी। तारन तरन अभय पद दाता, मैं हूँ कबीर अविनाशी''* ***इसका अर्थ है कि कबीर साहेब कहते हैं कि सतनाम का जाप तारन-तरन (पार करने) वाला है। फिर प्रमाणित किया है कि (स्वांसा सार रचे मोरे साहेब, जहां न माया मोहं। कह कबीर सुनों भई साधो, जपो ऊँ सोहं) स्वांसों के द्वारा सत्यनाम ऊँ-सोहं का जाप करो। इससे काल द्वारा लगाए विकार माया मोह आदि भी समाप्त हो कर सार नाम प्राप्ति के योग्य हो जाओगे। यदि सारशब्द नहीं प्राप्त हुआ तो भी मुक्ति शेष रह जाती है। उपरोक्त सत्यनाम भी पूर्ण गुरु से प्राप्त करके जाप करने से लाभ होता है, अन्यथा कोई लाभ नहीं। जैसे कोई अपने आप नौकरी लगने वाला प्रमाण-पत्र (Appointment letter) तैयार करके आप ही हस्ताक्षर कर लेगा। उसे कोई लाभ नहीं। ठीक इसी प्रकार भक्ति मार्ग पर विधिवत् चलना है, तभी सफलता मिलेगी।***

(कबीर पंथी शब्दावली पृष्ठ नं. 425, 426, 427)

(शब्द)

तीन लोक जम जाल पसारा। नेम धर्म षटकर्म अचारा।।
आचारे सब दुनी भुलानी। सार शब्द कोउ विरले जानी।।1।।
सत्तपुरुषको जानै कोई। तीन लोक जाते पुनि होई।।
करम भरम तजि शब्द समावे। इस्थिर ज्ञान अमरपद पावे।।2।।
सत्यशब्द को करे विचारा। सो छूटे जमजाल अपारा।।

कहै कबीर जिन तत्त विचारा। सोहं शब्द है अगम अपारा।।3।।
शब्द हमारा सत्य है, सुनि मत जाहु सरख।
जो चाहे निज मुक्तिको, लीजो शब्दहिं परख।।4।।

उपरोक्त शब्द में कहा है (तीन लोक यम जाल पसारा ---। कोई शब्द सार निःअक्षर सोई में) सत्यनाम का अभ्यास भली प्रकार हो जाने पर पूरा गुरु आपको सार शब्द देवेगा। इस सार शब्द को प्राप्त करने योग्य बहुत कम भक्तजन होते हैं। प्रमाण है कि साहेब कबीर के चौसठ लाख शिष्यों में से केवल धर्मदास साहेब ही सारशब्द के अधिकारी हुए थे अन्य नहीं। जिस समय साहेब कबीर ने धर्मदास जी को सारशब्द प्राप्त कराया उस समय कहा था ''धर्मदास तोहे लाख दुहाई, सार शब्द कहीं बाहर न जाई'' । सार शब्द पूरा (पूर्ण) गुरु देवेगा।

(शब्द)

नाम अमलमें रहे मतवाला। प्रेम अमीका पीवे प्याला।।
ज्ञान दीप निज भीतर बारा। सो कहिये सांचा कडिहारा।।1।।
और अमलको रंग न करई। माया ममताको पर हरई।।
सार शब्दमें ध्यान लगावे। सो कडिहार जम जाल बचावे।।2।।
दया छमा और शील विचारा। धीरज धरम संतोष अचारा।।
यह सब धरे ममता मारे। सो कडिहार जगत जल तारे।।3।।
शब्द सरोतर हिरदय सांचा। छाड़ि परपंच सत्यसे राँचा।।
सत्यनाम मो रहै न काँचा। सो कडिहार जगत सो बाँचा।।4।।
कुल करन को मेटै धोखा। समता ज्ञान सु अंतर पोखा।।
ज्ञान रतनके पूरे नौका। सो कड़िहार बैठि है चौका।।5।।
दया छिमा संतोष विचारा। शील वैराग ज्ञान अधारा।।
काम क्रोध चिन्ता नहिं परई। सो कड़िहार आरति करई।।6।।
आसा वासा मनको नासे। माया मोह न फटके पासे।।
कर्म कला सो तिनका तोरे। सो कडिहार नारियल मोरे।।7।।
सिख साखा सब प्रेम बढावैं। बहुत भांति ते सेवा लावें।।
कोटिक शिष्य करै सनमाना। रह कडिहार शब्द लपटाना।।8।।
गुरुका शब्द सदा परकासे। भेद भरम का दुविधा नासे।।
नहिं तो कालरूप कडिहारा। सब जीवनका करै अहारा।।9।।
लोभ मोहकी धरै सगाई। शब्द छाड़ि जग करै ठगाई।।
शब्द चाल हिरदे नहिं आवे। सो कडिहार कैसे लोक सिधावे।।10।।
आसन चाँपे फूलके, भरै जो जु जमको भाव।
कहैं कबीर तब जानि है, पडै बज्रको घाव।।

फिर (नाम अमलमें रहै मतवाला -----) इसमें कहा है कि पूर्ण गुरु (कड़िहार) जो जीव को काल के लोक से निकाल कर सतलोक (सत्यनाम व सारनाम-सारशब्द के आधार) ले जाता है वह कड़िहार (काड़ने/निकालने वाला) कहलाता है। यदि सत्यनाम (ऊँ-सोहं) नहीं देता तथा फिर सारनाम नहीं देता वह काल का स्वरूप गुरु (नकली कड़िहार) है अर्थात् काल साधना करवा कर नरक भिजवा देगा, वह काल का ऐजेंट है। नाम देने का अधिकारी वही है जिसको गुरु जी ने आदेश दे रखा है तथा सत्यनाम व सारनाम साधना बताता है।

(शब्द)

सतगुरु सो सतनाम सुनावे। और गुरु कोइ काम न आवे।।
तीरथ सोई जो मोछै पापा। मित्र सोई जो हरै संतापा।।1।।
जोगी सो जो काया सोधे। बुद्धि सोई जो नाहि विरोधे।।
पण्डित सोई जो आगम जानै। भक्त सोई जो भय नहिं आनै।।2।।
दातै जो औगुन परहरई। ज्ञानी सोइ जीवता मरई।।
मुक्ता सोई सतनाम अराधे। श्रोता सोई जो सुरतिहिं साधै।।3।।
सेवक सोई गहै विश्वासा। निसिदिन राखै संतन आसा।।
सतगुरु का लोपै नहि बाचा। कहै कबीर सो सेवक सांचा।।4।।

''सतगुरु सो सतनाम सुनावै'' इसमें कहा है कि वही सतगुरु है जो सत्यनाम देता है अन्य नाम देने वाला गुरु कोई काम नहीं आवेगा। उल्ट काल के मुख में ले जावेगा। वह शिष्य पार होएगा जो गुरु वचन को मान कर गुरु जी के अनुसार चलेगा।

(कबीर पंथी शब्दावली पष्ठ नं. 353)

दुनिया अजब दिवानी, मोरी कही एक न मानी।।टेक।।
तजि प्रत्यक्ष सतगुरु परमेश्वर, इत उत फिरत भुलानी।।
तीरथ मूरति पूजत डोले, कंकर पत्थर पानी।।1।।
विषय वासनाके फन्दे परि, मोहजाल उरझानी।।
सुखको दुख दुखको सुख माने, हित अनहित नहिं जानी।।2।।
औरनको मूरख ठहरावत, आप बनत है सयानी।।
साँच कहौं तौ मारन धावे, झूठेको पतियानी।।3।।
तीन गुणों की करत उपासना, भ्रमित फिरें अज्ञानी।
गीता कहे इन्हें मत पूजो, पूर्ण ब्रह्म पिछानी।।4।।
ब्रह्म उपासत ऋषि मुनि, भ्रमत चारों खानी।।
कहैं कबीर कहां लग बरणों , अद्धभुत खेल बखानी।।5।।

''दुनियां अजब दिवानी ------'' में कहा है कि भक्तजनों ने मेरे द्वारा बताई गई भक्ति की विधि नहीं मानी। गुरु रूपी प्रत्यक्ष परमात्मा को छोड़कर तीर्थ यात्रा, पत्थर पूजा, पित्र पूजा आदि पूजन करते हैं। श्री मदभगवत गीता अध्याय 7 श्लोक 12 से 15,20 से 23 में स्पष्ट किया है कि तीनों गुणों (रजगुण ब्रह्मा, सतगुण विष्णु, तमगुण शिव) की उपासना करने वाले मूर्ख हैं वे राक्षस स्वभाव को धारण किए हुए मनुष्यों में नीच दुष्कर्म करने वाले हैं वे मेरी (गीता ज्ञान दाता ब्रह्म की) पूजा भी नहीं करते। फिर गीता अध्याय 7 श्लोक 18 में ब्रह्म साधना को अनुत्तम (अश्रेष्ठ) कहा है क्योंकि पूर्ण मोक्ष नहीं होता। इसलिए ऋषि-मुनि जन ब्रह्म साधना करके भी काल जाल में जन्म-मत्यु में ही रह जाते है। इसलिए गीता अध्याय 18 श्लोक 62 में कहा है कि पूर्ण मोक्ष के लिए उस पूर्ण परमात्मा की शरण ग्रहण करो। काल के दबाव में आकर सच्चाई को तो झूठ मानते हैं और झूठ को सच। सच्चाई बतावें तो मारने दौड़ते हैं। कबीर परमेश्वर जी स्वयं परमात्मा आए थे। इसलिए कहा है कि मैं पूर्ण परमात्मा स्वयं सतगुरू भेष में कह रहा हूँ मेरी एक नहीं मानता अन्य भ्रमित करने वालों की बातें मान कर इधर-उधर भटकते रहते हैं। पूर्ण सतगुरू का मार्ग ग्रहण करने से मोक्ष सम्भव है परमात्मा कबीर जी का संकेत है कि जब भी पूर्ण सन्त सतगुरू प्रकट होता है उसके द्वारा बताए मार्ग पर लग कर मोक्ष प्राप्त करना ही बुद्धिमता है।

(कबीर पंथी शब्दावली के पृष्ठ नं. 271 से 275 तक)

स्वासा सुमिरण होत है, ताहि न लागै बार।
पल पल बन्दगी साधना, देखो दृष्टि पसार।।173।।
सत्य नामको खोजिले, जाते अग्नि बुझाय।
बिना सतनाम बांचे नहीं, धरमराय धरि खाय।।184।।
कबिरा सुमिरण सार है, और सकल जंजाल।
आदि अंत मध सोधिया, दूजा देखा काल।।192।।
नाम लिया जिन सब लिया, सकल वेदका भेद।
बिना सतनाम नरके पड़ा, पढता चारु वेद।।198।।
राम नाम निज औषधी, सतगुरु दई बताय।
औषध खाय रु पथ रहै, ताको वेदन जाय।।201।।
आदि नाम निज सार है, बूझि लेहु हो हंस।
जिन जाना निज नामको, अमर भयो स्यों बंस।।205।।
आदि नाम निज मूल है, और मंत्र सब डार।
कहै कबीर निज नाम बिन, बूडि मुआ संसार।।206।।
आदि नामको खोजहू, जो है मुक्ति को मूल।
ये जियरा जप लीजियो, भर्म मता मत भूल।।207।।
कहै कबीर निज नाम बिन, मिथ्या जन्म गवांय।
निर्भय मुक्ति निःअक्षरा, गुरु विन कबहुँ न पाय।।208।।
जो जन होवे जौहरी, सो धन ले बिलगाय।
सोहं सोहं जपि मुये, मिथ्या जन्म गँवाय।।218।।
सबको नाम सुनावहू, जो आवे तूव पास।
शब्द हमारो सत्य है, दृढ राखो विश्वास।।220।।
होय विवेकी शब्दका, जाय मिलै परिवार।
नाम गहै सो पहुँचिहैं, मानहु कहा हमार।।221।।
आदि नाम पारस अहे, मन है मैला लोह।
परसतही कंचन भया, छूटा बंधन मोह।।222।।
सुरति समावे नामसे, जगसे रहै उदास।
कहै कबीर गुरु चरणमें, दृढ राखै विश्वास।।223।।
ज्ञान दीप प्रकाश करि, भीतर भवन जराय।
बैठे सुमरे पुरुषको, सहज समाधि लगाय।।229।।
अछय बक्षकी डोर गहि, सो सतनाम समाय।
सत्य शब्द प्रमाण है, सत्यलोक कहँ जाय।।230।।
कोइ न यम सो बाचिया, नाम बिना धरिखाय।
जे जन बिरही नामके, ताको देखि डराय।।232।।
कर्म करै देही धरै, औ फिरि फिरि पछताय।
बिना नाम बांचे नहीं, जिव यमरा लै जाय।।233।।

(स्वांसा सुमरण होत है ....) इन दोहों में कहा है कि सत्यनाम (ऊँ-सोहं) स्वांसो द्वारा होता है, उसकी खोज करो अर्थात् इस मंत्र को देने वाला पूर्ण गुरु मिले उससे उपदेश लो तथा स्मरण करो। फिर पूर्ण गुरु आपको सारनाम देवेगा। यदि सारनाम नहीं मिला तो आपका जीवन निष्फल

है। हाँ, सत्यनाम के आधार से आपको मनुष्य जन्म मिल जाएगा। परंतु सत्यलोक प्राप्ति नहीं।

इसलिए कहा है कि जो ज्ञान योगयुक्त होगा वही हमारे सारनाम को पाने की लग्न लगाएगा अन्यथा केवल सत्यनाम (ऊँ-सोहं) से भी जीव छुटकारा नहीं है।

इस स्थिति में गीता जी में कहा है कि मूढ (मूर्ख) जिन्हें सच्चाई का ज्ञान नहीं है, वे तो वैसे ही अनजानपने में सतमार्ग स्वीकार नहीं कर सकते। इसलिए उनको बार-2 कहना हानिकारक हो सकता है। कबीर साहेब कहते हैं :--

कबीर सीख उसी को दीजिए, जाको सीख सुहाय। सीख दयी थी वानरा, बइयाँ का घर जाय।।

अर्थात् वे उल्टे गले पड़ जाएंगे। मरने मारने को तैयार हो जाएंगे। जैसे साहेब कबीर के पीछे काशी के पाण्डे व काजी मुल्ला पड़ गए थे लेकिन सच्चाई स्वीकार नहीं की।

जो ज्ञानी पुरुष है जो समझते भी हैं कि हम गलत साधना स्वयं कर रहे हैं तथा अनुयाईयों को भी गलत मार्ग दर्शन कर रहे हैं वे अपनी मान बड़ाई वश नहीं मानते। वे चातुर (चतुर) प्राणी कहे हैं। इसलिए दोनों ही भक्ति अधिकारी नहीं हैं।

यथार्थ साधना : जो सोहं का जाप दो हिस्से करके स्वांस-उस्वांस से करते हैं वे किसी उपास्य इष्ट की प्राप्ति या निर्गुण ब्रह्म की प्राप्ति के लिए करते हैं वह इसका अर्थ लगाता है कि सो - अहमं [वह (इष्ट-भगवान जिसके वे उपासक हैं मान कर जपते हैं)] और सोचते हैं कि वह ईश्वर (अहम्) मैं ही हूँ। इसका ही दूसरा अर्थ लगाते हैं कि अहम् ब्रह्मास्मि। वे भक्त महिमा तो गाते हैं विष्णु भगवान की और नाम जपते हैं सोहं। यह साधना उन्हें स्वर्ग प्राप्ति करवा कर फिर चौरासी लाख योनियों में भरमाती है।

ऊँ और सोहं का इकट्ठा जाप 'सत्यनाम' कहलाता है। यह स्वांसों द्वारा जपा जाता है। इसे 'अजपा जाप' भी कहते हैं। इसी का प्रमाण कबीर साहेब की वाणी में है जिसमें धर्मदास को नाम दिया है। कबीर पंथी शब्दावली में पष्ठ नं. 51 पर वाणी में लिखा है ''ओ3म-सोहं भजो नर लोई'', यही सत्यनाम है।

फिर कबीर पंथी शब्दावली के पष्ठ नं. 52-53 पर लिखा है।

श्रोता वक्ता की अधिक महिमा, विचार कुण्ड नहाईए। सारशब्द निबेर लीजे, बहुरि न भवजल आईए।।
सर्वसाधु संत समाज मध्ये, भक्ति मुक्ति दढाईए। सुमिरण कर सतलोक पहुँचे, बहुरि न भवजल आईए।।
सोहं शब्द अजपा जाप, साहेब कबीर सो आपही आप। सोहं शब्द से कर प्रीति, अनभय अखण्ड घर को जीत।।
तन की खबर कर भाई, जा में नाम रूसनाई।।

फिर ''ज्ञानगुदरी'' कबीर पंथी शब्दावली के पष्ठ नं. 55 पर।

इसमें लिखा है :-- मन को मारने का साधन सत्यनाम (ऊँ-सोहं) है केवल ऊँ मन्त्र नहीं। सत्यनाम स्वांसों से सुमरण होता है। ॐ शब्द का जाप काल लोक पार करने के बाद अपने आप बन्द हो जाता है तथा सोहं मन्त्र का जाप प्रारम्भ रहता है। परब्रह्म के लोक को पार करके भंवर गुफा आती है वहां तक सोहं शब्द के जाप की कमाई ले जाती है। आगे सत्यलोक में सारशब्द की कमाई ले जाती है।

निहचे धोति पवन जनेऊ, अजपा जाप जपे सो जाने भेऊ। इंगला, पिंगला के घर जाई, सुषमना नीर रहा ठहराई।।
ऊँ–सोहं तत्त्व विचारा, बंकनाल में किया संभारा।।
मनको मार गगन चढिजाई, मानसरोवर पैठ नहाई।।

❖ *संत गरीबदास जी को परमेश्वर कबीर जी सतलोक लेकर गए थे। उनको सतलोक*

दिखाकर तत्वज्ञान बताकर पथ्वी पर छोड़ा था। इसी का प्रमाण महाराज गरीबदास साहेब जी (छुड़ानी, हरियाणा) ने अपनी वाणी में दिया है। सतग्रन्थ साहिब पष्ठ नं. 425 पर ।

राम नाम जप कर थीर होई। ऊँ–सोहं मन्त्र दोई।।
कहा पढो भागवत गीता, मनजीता जिन त्रिभुवन जीता।
मनजीते बिन झूठा ज्ञाना , चार वेद और अठारा पुराना।।

भावार्थ :- राम (ब्रह्म-अल्लाह-रब) का नाम जप कर निश्चल हो जाओ। भ्रमों भटको मत। वह राम का नाम ऊँ-सोहं है इसी से मन जीता जा सकता है। यदि यह सत्यनाम (ऊँ-सोहं) पूर्ण गुरु से प्राप्त नहीं हुआ चाहे आपको इस पुस्तक के पढ़ने से ज्ञान भी हो जाए कि सत्यनाम यह 'ऊँ-सोहं' है तथा नाम जाप भी करने लग जाएँ तो भी कोई लाभ नहीं है। या नकली गुरु बन कर यह नाम देने लग जाए। वह पाखंडी स्वयं नरक में जाएगा तथा अनुयाईयों को भी डुबोएगा। वर्तमान में सत्यनाम व सारनाम दान करने का केवल मुझ दास (संत रामपाल दास) को आदेश मिला है। एक समय में एक ही तत्वदर्शी संत आता है, जो पूर्ण परमात्मा कबीर साहेब (कविर्देव) का कप्या पात्र होता है। अन्य कोई उपरोक्त नामदान करता है तो उसे नकली जानों।

इसलिए इस सतनाम के जाप से मन जीता जा सकता है। इसके प्राप्त हुए बिना चाहे ब्रह्मा जैसा विद्वान हो वह भी मन के आधीन रहेगा। फिर सारनाम व सारशब्द पूरा गुरु प्रदान करके पार करेगा।

विशेष वर्णन :-- गरीबदास जी कत सतग्रन्थ साहिब के पष्ठ नं. 423 से 427 और 431 से 437 से सहाभार

सौ करोर दे यज्ञ आहूती, तौ जागै नहीं दुनिया सूती।
कर्म काण्ड उरले व्यवहारा, नाम लग्या सो गुरु हमारा।।
शंखौं गुणी मुनी महमंता, कोई न बूझै पदकी संथा।।
शंखौं मौनी मुद्रा धारी, पावत नांही अकल खुमारी।
शंखौं तपी जपी और जोगी, कोईन अमी महारस भोगी।।
शंखौं उर्ध्वमुखी आकाशा, पावत नांही पदहि निवासा।
शंखौं करै आचार बिचारा, सोतो जांहि धर्म दरबारा।।
शंखौं बहु विधि भेष बनावै, साक्षी भूत कोई नहीं पावै।
शंखौं जोगी जोग जुगंता, पावत नांही पदकी संथा।।
शंखौं जती सती जरि जांही, सो पावै नहीं पदकी छांही।
शंखौं दानी भुगतै दाना, पावत नांही पद निर्वाना।।
शंख अश्वमेघ खड़ी दरबारा, है कोई हमकूं त्यारन हारा।
शंखौं गंगा और किदारा, परम पदारथ इनसैं न्यारा।।
शंखौं वेद पाठ धुनि होई, उस पदकूं बांचै नहीं काई।
तीरथ शंख नदी बहु भांती, वा पद सेती कोई न राती।।
शंखौं शालिग पूजनहारा, कोई न पावै पद दीदारा।।
गरीब, शालिग पूजि दुनिया मुई, प्रतिमा पानी लाग।
चेतन होय जड पूजहीं, फूटे जिनके भाग।।81।।
शंखौं नेमी नेम करांही, भक्ति भाव बिरलै उर आंही।
उस समर्थ का शरणा लैरे, चौदा भुवन कोटि जय जय रे।।

ऊपर की साखियों चौपाईयों में संत गरीबदास जी महाराज जो कबीर साहेब के शिष्य हैं, वे

कह रहे हैं कि :-

ज्ञानहीन प्राणी नहीं समझते कि सच्चे नाम व सच्चे (अविनाशी) भगवान (सत साहेब) के भजन व शरण बिना चाहे करोड़ों यज्ञ करो। संखों विद्वान (गुणी) महंत व ऋषि अपने स्वभाव वश सच्चाई (सत्य साधना) को स्वीकार नहीं करते। अपने मान वश शास्त्र विधि रहित पूजा (साधना) करते हैं तथा नरक के भागी होते हैं। गीता जी के अध्याय 16 के श्लोक 23-24 में यही प्रमाण है।

संखों मौनी (मौन धारण करने वाले) तथा पाँचों मुद्रा प्राप्ति (चांचरी-भूचरी, खेंचरी-अगोचरी, ऊनमनी) किए हुए भी काल जाल में ही रहते हैं। शंखों जप (केवल ऊँ नाम का व ऊँ नमो भागवते वासुदेवाय नमः, ऊँ नमो शिवाय, राधा स्वामी नाम व पाँचों नाम-ओंकार, ज्योति निंरजन, रंरकार, सोहं, सतनाम जाप या अन्य नाम जो पवित्र गीता जी व पवित्र वेदों तथा परमेश्वर कबीर साहेब जी की अमतवाणी व अन्य प्रभु प्राप्त संतों की अमतवाणी से भिन्न हैं) करने वाले तथा तपस्वी व योगी भी पूर्ण मुक्त नहीं हैं। पूर्ण लाभ प्राप्त नहीं है। नाना प्रकार के भेष (वस्त्र भिन्न गैरुवे वस्त्र पहनना, जटा रखना या पत्थर पूजने वाले, मूंढ मुंडवाना, नाना पंथों के अनुयायी बन जाना) भी व आचार-विचार करने वाले यानि स्वयं कुछ भक्ति के नियम बनाकर नित्य उनका पालन करने वाले तथा कर्मकाण्ड करने वाले, शंखों दानी दान करने वाले व गंगा-किदार नाथ गया आदि अड़सठ तीर्थ या चारों धामों की यात्रा करने वाले भी परमात्मा का तत्वज्ञान न होने से ईश्वरीय आनन्द का लाभ प्राप्त नहीं कर सकते। पूर्ण मुक्त नहीं हो सकते। श्री गीता जी के अध्याय 11 के श्लोक 48 में स्पष्ट कहा है कि अर्जुन मेरे इस वास्तविक ब्रह्म (काल-विराट) रूप को कोई न तो पहले देख पाया न ही आगे देख सकेगा। चूंकि मेरा यह रूप (अर्थात् ब्रह्म-काल प्राप्ति) न तो यज्ञों से, न ही तप से, न ही दान से, न ही जप से, न ही वेद पढ़ने से, अर्थात् वेदों में वर्णित विधि से न ही क्रियाओं से देखा जा सकता अर्थात् परमात्मा{जो यहाँ तीन लोक व इक्कीस ब्रह्मण्ड का भगवान (काल) है} की प्राप्ति किसी भी साधना से नहीं हो सकती। पवित्र गीता जी में वर्णित पूजा (उपासना) विधि से सिद्धियाँ प्राप्ति, चार मुक्ति (जो स्वर्ग में रहने की अवधि भिन्न होती है तथा कुछ समय इष्ट देव के पास उसके लोक में रह कर फिर चौरासी लाख जूनियों में भ्रमणा-भटकणा बनी रहेगी)। जिसमें काल (ब्रह्म) भगवान कह रहा है कि मेरी शरण में आ जा। तुझे मुक्त कर दूंगा। वह काल (ब्रह्म) भजन के आधार पर कुछ अधिक समय स्वर्ग में रख कर फिर नरक में भेज देता है। क्योंकि पवित्र गीता जी में कहा है कि जैसे कर्म प्राणी करेगा (जैसे का भाव है पुण्य भी तथा पाप भी दोनों भोग्य हैं) वे उसे भोगने पड़ेंगे। फिर कहा है कि कल्प के अंत में सर्व (ब्रह्मलोक पर्यान्त) लोकों के प्राणी नष्ट हो जाएंगे। उस समय स्वर्ग व नरक समाप्त हो जाएंगे, फिर सष्टि रचूँगा। वे प्राणी फिर कर्माधार पर जन्मते मरते रहेंगे। विचार करें पाठकजन! पूर्ण मुक्ति कहाँ? श्री गीता जी के अध्याय 9 का श्लोक 7 में प्रमाण है।

इसमें साफ लिखा है कि प्रलय के समय सर्व भूत प्राणी नष्ट हो जाएंगे। फिर अर्जुन कहाँ बचेगा? इसलिए गरीबदास जी महाराज कहते हैं कि उस पूर्ण परमात्मा (समर्थ) पूर्ण ब्रह्म (कबीर साहेब) की शरण में जाओ जिसको प्राप्त कर फिर सदा के लिए जन्म-मरण मिट जाएगा। पूर्ण मुक्त हो जाओगे। इसी का प्रमाण श्री गीता जी में है। अध्याय 18 श्लोक 46, 62,66 और अध्याय 8 के श्लोक 8, 9, 10 और अध्याय 2 का श्लोक 17 में प्रमाण है।

सोहं मंत्र कल्प किदारा, अमर कछ होय पिंड तुमारा।।

ऊँ आदि अनादि लीला, या मंत्र मैं अजब करीला।

सोहं सुरति लगै सहनांना, टूटै चौदा लोक बंधाना।।
राम नाम जपि करि थिर होई, ॐ सोहं मंत्र दोई।
गगन मंडलमें सुंनि अधारी, शंखौं कल्प लगी जुग तारी।
अनंत कोटि जाकै अवतारा, राम कष्ण ठाडे दरबारा।।
ब्रह्माविष्णु और शंकर जोगी, अनंत कोटि रसिया रस भोगी।
परानंदनी नाद बजावै, तास पुरुष शिर चौंर ढुरावे।।
कोटि रामायण गीता गावैं, ठारा पुराण पढै चित्तलावैं।
ऋग यजु साम अथर्वण पढिया, एकै पैंड पंडित नहीं चढिया।।
दिव्य दष्टिकूं दर्शन होई, चौदाह भुवन फिरौं क्यौं न कोई।
सतगुरु बिना सुरति नहीं लागै, जरै मरै कुल देही त्यागै।।
सतगुरु बतलावै ठौर ठिकाना, को मारै प्रबीन निशाना।।
सुख निधान है सुरति सनेही, प्रगट बोलै पुरुष विदेही।
निजानंद निर्गुणनिःकामी, पूरण ब्रह्म परमगुरु स्वामी।।
सोहं सुरति निरति सैं सेवै, आप तरै औरनकूं खेवै।
परमहंस वीर्य बिस्तारा, ॐ मंत्र कीन्ह उचारा।।
सोहं सुरति लगावै तारी, काल बलीसैं जाइ न टारी।।
गरीब, कालबली कलि खात है, संतौं कौं प्रणाम।
आदि अंत आदेश है, ताहि जपै निज नाम।।92।।
गिरिवर नदी निवासा, ठार भार बनमाला।
ॐ सोहं श्वासा, कर्म कुसंगति काला।।11।।
सुख सागर आनंदा, सुमरथ शब्द सनेही।
मेटत है दुःख दुंदा, पूरण ब्रह्म विदेही।।13।।
ॐ सोहं मूलं, मध्य सलहली सूतं।
बिनशत यौह अस्थूलं, न्यारा पद अनभूतं।।48।।
ॐ सोहं दालं, अकंडा बीज अंकूरं।
ऊगै कला कर्त्तारं, नाद बिन्द सुर पूरं।।49।।
ॐ सोहं सीपं, स्वांति बिना क्या होई।
निपजत है दिल दीपं, स्वाती बून्द परोई।।51।।
सुकच मीन होय संगी, मोती सिन्धु पठावै।
झूठी प्रीति इकंगी, सतगुरु शब्द मिलावै।।55।।
सत्य सुकत संगाती, छाड़ि दिया निज नामा।
देवल धामौं जाती, भूलि गये औह धामा।।79।।
षट् शास्त्र संगीता, पढे बनारस जाई।
पंडित ज्ञानी रीता, औह अक्षर इहां नांही।।86।।
कोटि ज्ञान बकि मूवा, ब्रह्म रंद्र नहीं जाना।
जैसे सिंभल सूंवा, शीश धुनि पछिताना।।87।।
कर्मकाण्ड व्यवहारा, दीन्हा होय सो पावै।
नहीं प्राण निस्तारा, भवसागर में आवै।।93।।

उस समर्थ (परमात्मा-परमेश्वर-पूर्ण ब्रह्म) को प्राप्ति की विधि सत्यनाम व सारनाम है। सत्यनाम (ऊँ-सोहं) का काम है, कि ऊँ मन्त्र स्वर्ग व महास्वर्ग तक की प्राप्ति करवा देता है, इस मन्त्र की यह करामात है, साथ में सोहं मन्त्र का जाप चौदह लोकों के बन्धन से मुक्त कर देता है। फिर सार शब्द प्राप्ति कर पूर्ण मुक्त हो जाता है। ऊँ मन्त्र से काल का ऋण उतारना है तथा साथ में सोहं मन्त्र के जाप को सारनाम में लौ लगा के जपै तो कालबलि (ब्रह्म) से रूक नहीं सकता। वह हंस पार हो जाएगा। सारनाम बिना केवल ॐ तथा सोहं मंत्र से भी लाभ नहीं है, जैसे ॐ तो सीप की काया जानों, सोहं सीप में जीव जानों, यदि सारनाम रूपी स्वांति नहीं मिली तो मुक्ति रूपी मोती नहीं बनेगा। सारनाम तो छोड़ दिया। छः शास्त्रों, गीता जी में, वेदों में सोहं का जाप नहीं है। इसलिए विद्वान (पंडित) ऋषि, मुनि सर्व पूर्ण मोक्ष से वंचित हैं पूर्ण मुक्त नहीं हैं।

निम्नलिखित वाणियाँ कबीर सागर के ज्ञान बोध से ली गई हैं।

।। कबीर साहेब का शब्द।।

ऐसा राम कबीर ने जाना। धर्मदास सुनियो दै काना।।
सुन्न के परे पुरुष को धामा। तहँ साहब है आदि अनामा।।
ताहि धाम सब जीवका दाता। मैं सबसों कहता निज बाता।।
रहत अगोचर (अव्यक्त)सब के पारा। आदि अनादि पुरुष है न्यारा।।
आदि ब्रह्म इक पुरुष अकेला। ताके संग नहीं कोई चेला।।
ताहि न जाने यह संसारा। बिना नाम है जमके चारा।।
नाम बिना यह जग अरुझाना। नाम गहे सौ संतसुजाना।।
सच्चा साहेब भजु रे भाई। यहि जगसे तुम कहो चिताई।।
धोखा में जिव जन्म गँवाई। झूठी लगन लगाये भाई।।
ऐसा जग से कहु समझाई। धर्मदास जिव बोधो जाई।।
सज्जन जिव आवै तुम पासा। जिन्हें देवैं सतलोकहि बासा।
भ्रम गये वे भव जलमाहीं। आदि नाम को जानत नाहीं।।
पीतर पाथर पूजन लागे। आदि नाम घट ही से त्यागे।।
तीरथ बर्त करे संसारे। नेम धर्म असनान सकारे।।
भेष बनाय विभूति रमाये। घर घर भिक्षा मांगन आये।।
जग जीवन को दीक्षा देही। सत्तनाम बिन पुरुषहि द्रोही।।
ज्ञान हीन जो गुरु कहावै। आपन भूला जगत भूलावै।।
ऐसा ज्ञान चलाया भाई। सत साहबकी सुध बिसराई।।
यह दुनियां दो रंगी भाई। जिव गह शरण असुर (काल) की जाई।।
तीरथ व्रत तप पुन्य कमाई। यह जम जाल तहाँ ठहराई।।
यहै जगत ऐसा अरुझाई। नाम बिना बूड़ी दुनियाई।।
जो कोई भक्त हमारा होई। जात वरण को त्यागै सोई।।
तीरथ व्रत सब देय बहाई। सतगुरु चरणसे ध्यान लगाई।।
मनहीं बांध स्थिर जो करही। सो हंसा भवसागर तरही।।
भक्त होय सतगुरुका पूरा। रहै पुरुष के नित्त हजूरा।।
यही जो रीति साधकी भाई। सार युक्ति मैं कहूँ गुहराई।।

सतनाम निज मूल है, कह कबीर समझाय।
दोई दीन खोजत फिरें, परम पुरुष नहिं पाय।।
गहै नाम सेवा करै, सतनाम चित लावै।
सतगुरु पद विश्वास दंढ़, सहज परम पद पावै।।
ऐसे जग जिव ज्ञान चलाई। धर्मदास तोहि कथा सुनाई।।
यही जगत की उलटी रीती, नाम न जाने कालसों प्रीती।।
वेद रीति सुनयो धर्मदासा। मैं सब भाख कहों तुम पासा।।
वेद पुराण में नामहि भाषा। वेद लिखा जानो तुम साखा।।
चीन्हों है सो दूसर होई। भर्म विवाद करें सब कोई।।

''संसार रूप वंक्ष के मूल, तना, डार, शाखा, तथा पत्तों का वर्णन''

मूल नाम न काहू पाये। साखा पत्र गह जग लपटाये।।
डार शाख को जो हृदय धरहीं। निश्चय जाय नरकमें परहीं।।
भूले लोग कहे हम पावा। मूल वस्तू बिन जन्म गमावा।।
जीव अभागि मूल नहिं जाने। डार शाख को पुरुष बखाने।।
कबीर, अक्षर पुरूष एक पेड़ है, क्षर पुरूष वाकि डार। तीनों देवा शाखा हैं, पात रूप संसार।
कबीर, हम ही अलख अल्लाह हैं, मूल रूप करतार। अनन्त कोटि ब्रह्मण्ड का, मैं ही सिरजनहार।।
पढ़े पुराण और वेद बखाने। सतपुरुष जग भेद न जाने।।
वेद पढ़े और भेद न जाने। नाहक यह जग झगड़ा ठाने।।
वेद पुराण यह करे पुकारा। सबही से इक पुरुष नियारा।
तत्वदंष्टा को खोजो भाई, पूर्ण मोक्ष ताहि तैं पाई।
कविः नाम जो बेदन में गावा, कबीरन् कुरान कह समझावा।
वाही नाम है सबन का सारा, आदि नाम वाही कबीर हमारा।।

''गीता में भी संसार वंक्ष का वर्णन''

गीता अध्याय 15 श्लोक 1-4 तथा 16-17 में स्पष्ट कहा है कि इस संसार रूप पीपल का वंक्ष की मूल तो ऊपर पूर्ण परमात्मा है तथा जो संत इस संसार वंक्ष के सर्व भागों (मूल कौन प्रभु है, तना, डार, शाखा कौन प्रभु हैं तथा पत्ते कौन कहे जाते हैं, इनका) का विस्तार से वर्णन बताए तो (सः वेद वित्) वह वेद के तात्पर्य को जानने वाला है यानि वह तत्वदर्शी संत है। यह वर्णन स्वयं परमेश्वर कबीर जी ने तत्वदर्शी संत की भूमिका करके बताया है जो ऊपर वर्णन है। कहा है कि अक्षर पुरूष तो तना है, क्षर पुरूष उस पेड़ की मोटी डार है। उस डार से निकली तीनों गुण रूपी शाखाऐं यानि रजगुण ब्रह्मा जी, सतगुण विष्णु जी तथा तमगुण शिव जी रूपी शाखाऐं हैं। इन शाखाओं पर लगे पत्ते रूप संसार है।

कबीर परमेश्वर जी ने स्पष्ट किया है कि उस संसार रूप वंक्ष की मूल (जड़) रूप मैं हूँ। मैं ही अलख (अव्यक्त) अल्लाह (परमात्मा) हूँ। सर्व की रचना करने वाला, धारण-पोषण करने वाला भी मैं हूँ।

गीता अध्याय 15 के श्लोक 16

द्वौ, इमौं, पुरुषौ, लोके, क्षरः, च अक्षरः, एव, च,

क्षरः, सर्वाणि, भूतानि, कूटस्थः, अक्षरः, उच्यते।।

अनुवाद : (लोके) इस संसारमें (द्वौ) दो प्रकारके (पुरुषौ) प्रभु हैं। (क्षरः) नाशवान् प्रभु अर्थात् ब्रह्म(च) और (अक्षरः) अविनाशी प्रभु अर्थात् परब्रह्म (एव) इसी प्रकार (इमौ) इन दोनों के लोक में (सर्वाणि) सम्पूर्ण (भूतानि) प्राणियोंके शरीर तो (क्षरः) नाशवान् (च) और (कूटस्थः) जीवात्मा (अक्षरः) अविनाशी (उच्यते) कहा जाता है।

अध्याय 15 के श्लोक 17

उत्तमः, पुरुषः तु, अन्यः, परमात्मा, इति, उदाहृतः।

यः लोकत्रयम्, आविश्य, बिभर्ति, अव्ययः, ईश्वरः।।

अनुवाद : (उत्तम) उत्तम (पुरुषः) प्रभु (तु) तो उपरोक्त क्षर पुरूष अर्थात् ब्रह्म तथा अक्षर पुरूष अर्थात् परब्रह्म से (अन्यः) अन्य ही है (परमात्मा) परमात्मा (इति) इस प्रकार (उदाहृतः) कहा गया है (यः) जो (लोकत्रयम्) तीनों लोकोंमें (आविश्य) प्रवेश करके (बिभर्ति) सबका धारण–पोषण करता है एवं (अव्ययः) अविनाशी (ईश्वरः) उपरोक्त प्रभुओं से श्रेष्ठ प्रभु अर्थात् परमेश्वर है।

अध्याय 15 के श्लोक 18

यस्मात्, क्षरम् अतीतः, अहम्, अक्षरात् अपि च उत्तम।

अतः अस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः।।

अनुवाद : (यस्मात्) क्योंकि (अहम्) मैं काल – ब्रह्म(क्षरम्) नाशवान् स्थूल शरीर धारी प्राणियों से (अतीतः) श्रेष्ठ (च) और (अक्षरात्) अविनाशी जीवात्मासे (अपि) भी (उत्तमः) उत्तम हूँ (च) और (अतः) इसलिये (लोके, वेद) लोक वेद में अर्थात् कहे सुने ज्ञान के आधार से (पुरुषोत्तमः) श्रेष्ठ भगवान अर्थात् कुल मालिक नामसे (प्रथितः) प्रसिद्ध (अस्मि) हूँ। परन्तु वास्तव में कुल मालिक तो अन्य ही है जिसका वर्णन श्लोक 17 में है।

शेष वाणी :- ताहि न यह जग जाने भाई। तीन देव में ध्यान लगाई।।

तीन देव की करहीं भक्ति। जिनकी कभी न होवे मुक्ति।।

तीन देव का अजब खयाला। देवी–देव प्रपंची काला।।

इनमें मत भटको अज्ञानी। काल झपट पकड़ेगा प्राणी।।

तीन देव पुरुष गम्य न पाई। जग के जीव सब फिरे भुलाई।।

जो कोई सतनाम गहे भाई। जा कहैं देख डरे जमराई।।

ऐसा सबसे कहीयो भाई। जग जीवों का भरम नशाई।।

कह कबीर हम सत कर भाखा, हम हैं मूल शेष डार, तना रू शाखा।।

साखी :-

रूप देख भरमो नहीं, कहैं कबीर विचार। अलख पुरुष हृदये लखे, सोई उतरि है पार।।

भावार्थ :- परमेश्वर कबीर साहेब जी अपने परम शिष्य धर्मदास जी से कहा कि ध्यानपूर्वक सुन वह पूर्ण ब्रह्म (परम अक्षर पुरुष) परमात्मा मैंने (कबीर साहेब ने) पाया(अपनी महिमा आप ही कहनी पड़ी क्योंकि सतपुरुष को कोई साधक नहीं जानता था। स्वयं कबीर साहेब ही भक्त तथा संत व परमात्मा की भूमिका निभा रहे हैं) उस परमात्मा (पूर्णब्रह्म) का सर्व ब्रह्मण्डों से पार स्थान है वहां पर वह आदि परमात्मा (सतपुरुष) रहता है। वही सर्व जीवों का दाता है (इसी का प्रमाण गीता जी के अध्याय 15 के श्लोक 17 में दिया है) जो उसी सतधाम में सबसे न्यारा रहता है (इसी का प्रमाण यजुर्वेद के अध्याय 5 के श्लोक 32 में भी है) उस परमात्मा(इसी का प्रमाण गीता जी के अध्याय 18 के श्लोक 46 व 61, 62,66 में, अध्याय 8 के श्लोक 1, 3, 8, 9, 10 तथा 17 से 22 व अध्याय 2 के श्लोक 17 में पूर्ण प्रमाण है) को कोई नहीं जानता तथा उसकी प्राप्ति की विधि भी किसी शास्त्र में वर्णित नहीं है। इसलिए सतनाम व सारनाम के स्मरण के बिना काल साधना(केवल

ॐ मन्त्र जाप) करके काल का ही आहार बन जाते हैं।

सच्चा साहेब(अविनाशी परमात्मा) भजो। उसकी साधना सतनाम व सारनाम से होती है। इसका ज्ञान न होने से ऋषि व संतजन लगन भी खूब लगाते हैं। हजारों वर्ष वेदों में वर्णित साधना भी करते हैं परंतु व्यर्थ रहती है। पूर्ण मुक्त नहीं हो पाते। धर्मदास जी को साहेब कबीर कह रहे हैं कि जो सज्जन व्यक्ति आत्म कल्याण चाहने वाले अपनी गलत साधना त्याग कर तत्वदंष्टा सन्त के पास नाम लेने आएंगे। उनको सतनाम व सारनाम मन्त्र दिया जाता है। जिससे वे काल जाल से निकल कर सतलोक में चले जाएंगे। फिर जन्म-मरण रहित हो कर पूर्ण परमात्मा का आनन्द प्राप्त करेंगे। सही रास्ता (पूजा विधि) न मिलने के कारण नादान आत्मा पत्थर पूजने लग गई, व्रत, तीर्थ, मन्दिर, मस्जिद आदि में ईश्वर को तलाश रही हैं जो व्यर्थ है यह सब स्वार्थी अज्ञानियों व नकली गुरुओं द्वारा चलाई गई है। जो गुरु सतनाम व सारनाम नहीं देता वह सतपुरुष (कबीर साहेब) का दुश्मन है जो गलत साधना कर व करवा के स्वयं को भी तथा अनुयाईयों को भी नरक में ले जा रहा है। जो आप ही भूला है तथा नादान भोली-भाली आत्माओं को भी भुला रहा है।

वेदों व गीता जी में ॐ नाम की महिमा बताई है कि यह भी मूल नाम नहीं है। सारनाम के बिना अधूरे नाम को अंश नाम कहा है जो पूर्ण मुक्ति का नहीं है। इसी के बारे में कहा है कि शाखा (ब्रह्मा-विष्णु-शिव व ब्रह्म-काल तथा माता की साधना को शाखा कहा है) व पत्र (देवी-देवताओं की पूजा का ईशारा किया है) में जगत उलझा हुआ है। जो इनकी साधना करता है वह नरक में जाता है। इसी का प्रमाण गीता जी के अध्याय 14 के श्लोक 5 में तथा अध्याय 9 के श्लोक 25 में है तथा पवित्र गीता अध्याय 7 श्लोक 12 से 15 तथा 20 से 23 तक है।

पूर्ण परमात्मा को संसार वंक्ष का मूल कहा है कि उस परमात्मा तथा उसकी उपासना को कोई नहीं जानता। कबीर जी ने यह भी स्पष्ट किया है कि संसार का मूल मैं ही हूँ। अज्ञानतावश ब्रह्मा-विष्णु-शिव और श्री राम व श्री कंष्ण जी को ही अविनाशी परमात्मा मानते हैं। ''जीव अभागे मूल नहीं जाने, डार-शाखा को पुरुष बखाने'' संसार के साधक वेद शास्त्रों को पढ़ते भी हैं परंतु समझ नहीं पाते। व्यर्थ में झगड़ा करते हैं। जबकि पवित्र वेद व गीता व पुराण भी यही कहते हैं कि अविनाशी परमात्मा कोई और ही है। प्रमाण के लिए गीता जी के अध्याय 15 के श्लोक 16-17 में पूर्ण वर्णन किया गया है। जो इन तीन देवों (ब्रह्मा, विष्णु, शिव) की भक्ति करते हैं उनकी मुक्ति कभी नहीं हो सकती। हे नादान प्राणियों! इनकी उपासना में मत भटको। पूर्ण परमात्मा की साधना करो। धर्मदास से साहेब कबीर कह रहे हैं कि यह सब जीवों को बताओ, उनका भ्रम मिटाओ तथा सतपुरुष की पूजा व महिमा का ज्ञान कराओ।

सतमार्ग दर्शन

चौपाई :

जो जो वस्तू दंष्टि में आई, सोई सबहि काल धर खाई।।
मूरति पूजैं मुक्त न होई, नाहक जन्म अकारथ खोई।।

कबीर पंथी शब्दावली (पंष्ठ नं. 541 से 544) से सहाभार

।। रमैनी ।।

रमैनी 21 - मैं तोहि पूंछो पडित ज्ञानी। पंथ्वी आकाश रहे नहिं पानी।।

सूक्ष्म स्थूल रहे नहिं कोई। बिराट सहित परले सब होई।।
तबहिं बिराट काहि अधारा। तब वेद जाप जर होवे छारा।।
होय अलोप जब रवि औ चन्दा। तब कापर रहे बाल मुकुन्दा।।
यह अचरज मोहिं निसि दिन भाई। दुरमत मेट मोहिं देहु बताई।।

इस रमैणी नं. 21 में साहेब कबीर कह रहे हैं कि हे वेदों व शास्त्रों के ज्ञाता (पंडित) मुझे बताओ कि जब महाप्रलय परब्रह्म द्वारा की जाएगी उसमें सुक्ष्म-स्थूल आदि शरीर समाप्त हो जाएंगे तथा यह ब्रह्म काल (विराट रूप) भी नहीं रहेगा। इसलिए आप पूर्ण परमात्मा का मार्ग प्राप्त करो। यह सही मार्ग सब भूल गए हैं जिसके कारण पूर्ण शांति नहीं।

।। रमैनी।।

रमैनी 23 — वेद कतेब झूठे ना भाई। झूठे हैं जो समझे नाहीं।।
नरकी नारी जो मर जाई। के जन्मे के स्वर्ग—नरक समाई।।
पिंडा तरपन जब तुम कीन्हा। कहो पंडित उन कैसे लीना।।
कुंभक भरभर जल ढरकावे। जिवत न मिले मरे का पावे।।
जलसे जल ले जलमें दीन्हा। पित्रन जल पिंडा कब लीन्हा।।
वनखंड मांझ परा सब कोई। मनकी भटक तजे न सोई।।
आपनके छुंवन करे बिचारा। करता न लखा परा भर्म जारा।।
परमपरा जैसी चलि आई। तामें सभन रहा बिलमाई।।

इस रमैणी नं. 23 में साहेब कबीर कह रहे हैं कि वेद (चारों वेद व गीता आदि) तथा कतेब (चार धार्मिक पुस्तक मुसलमान धर्म की तथा बाईबल आदि) झूठे नहीं है। जिन्होंने पूर्ण ज्ञान नहीं हुआ। वे झूठे है सर्व समाज को अधूरा मार्ग दे दिया। मानो किसी की पत्नी मर जाती है। वह मरने के बाद या तो दूसरा जन्म ले लेती है या नरक या स्वर्ग चली जाती है या प्रेत बन जाती है। फिर तुमने जो पिण्ड अर्पण किया उस बेचारी ने कैसे आ कर लिया? अब लोटा भर-भर कर डाल रहे हो। यदि कोई व्यक्ति अपने घर पर है उसके निमित जल डालो फिर देखों उसे मिला या नहीं। जब जीवित को नहीं मिला तो मरे हुए को कैसे प्राप्त हो सकता है? अपने हाथों शरीर जलाकर बनखण्ड में समशान में डाल आए। फिर उसे पिण्ड दान करते हो। जीवित की सेवा करनी चाहिए मरने के बाद क्या लाभ?

कबीर साहेब द्वारा अंध विश्वास का निवार्ण करना

।। पितरों को जल देना व्यर्थ ।।

एक समय साहेब कबीर जी काशी में गंगा दरिया के किनारे पर गए तो देखा बहुत से व्यक्ति गंगा जल का लोटा भर कर सूर्य की तरफ मुख करके वापिस ही जल में डाल रहे हैं, कुछ बाहर पटरी पर डाल रहे हैं। इस अज्ञानता को हटाने के लिए कबीर साहेब दोनों हाथों से गंगा जल बाहर फेंकने लगे। यह देखकर उन शास्त्रविरूद्ध साधकों ने साहेब कबीर से पूछा यह क्या कर रहे हो? कबीर साहेब जी ने पूछा आप क्या कह रहे हो? उन नादानों ने उत्तर दिया कि हम अपने पितरों को स्वर्ग में जल भेज रहे हैं। कबीर साहेब जी ने कहा कि मैंने अपनी झौंपड़ी के पास बगीचा लगाया है। उसकी सिंचाई कर रहा हूँ। यह सुन कर वे भोले व्यक्ति हँसते हुए बोले रे मूर्ख कबीर! यह जल आधा कोस (1.5 कि.मी.) कैसे जाएगा? यह तो यहीं पर जमीन सोख रही है। साहेब कबीर जी ने उत्तर दिया कि यदि आपका जल करोड़ों-अरबों कोस दूर पितर लोक में आपके पितरों को प्राप्त हो सकता है तो मेरा बगीचा तो अवश्य पानी से भरा मिलेगा तथा कहा कि हे नादानों! आप कह रहे हो कि स्वर्ग में पानी भेज रहे हैं। क्या स्वर्ग में जल नहीं है? फिर स्वर्ग कहाँ वह तो नरक कहो। इस सारी लीला का तात्पर्य समझ कर उन मार्ग से विचलित साधकों ने साहेब कबीर जी का उपदेश लिया तथा अपना कल्याण करवाया।

विशेष :- अध्याय 3 का श्लोक 36 में अर्जुन पूछता है कि न चाहते हुए भी मनुष्य पाप कर्म कर देता है। जैसे कोई बलपूर्वक (जबरदस्ती) करवा रहा हो, कृप्या इसका कारण बताईए?

विशेष विवरण :-अध्याय 3 का श्लोक 37 से 43 तक का उत्तर है कि काम (सैक्स) जीव की बुद्धि पर छा जाता है, जिस कारण से ज्ञान समाप्त हो जाता है। इसलिए बुद्धि द्वारा मन को वश कर काम (सैक्स) को मार। विचार करें कि :-

।।भगवान शंकर के भी मन व काम (सैक्स) वश नहीं हुआ।।

एक समय भगवान रामचन्द्र पुत्र श्री दशरथ अयोध्या वासी को उनकी मौसी केकई से वचनबद्ध होकर राजा दशरथ ने बनवास देना पड़ा। रामचन्द्र के वियोग में अपने प्राण भी त्याग दिए। भगवान रामचन्द्र जी सीता जी व छोटे भाई (मौसी के पुत्र) लक्ष्मण जी के साथ वन में पंचवटी नामक स्थान पर एक कुटिया बना कर रह रहे थे।

एक दिन लंका के राजा रावण ने साधु के भेष में आकर सीता जी का हरण कर लिया। सीता की तलाश में श्री रामचन्द्र जी बावलों की तरह कभी रो रहे थे, कभी जंगली पेड़-पौधों व पशु-पक्षियों से पूछ रहे थे कि तुमने मेरी सीता देखी! विलाप कर रहे थे। आकाश से भगवान शिव व महादेवी जी यह सब देख रहे थे। देखते-देखते भगवान शिवजी ने प्रणाम किया तथा देवी के पूछने पर कि आप किसे प्रणाम कर रहे हैं भगवान शिव ने कहा यह परब्रह्म प्रभु है। (तीन लोक के उपासक तो ज्योति निरंजन को ही परब्रह्म मानते हैं क्योंकि उस समय वह काल भगवान ही श्री रामचन्द्र में प्रवेश करके तड़फा रहा था। यही मन है जो मोह को पैदा करके श्री रामचन्द्र भगवान की बुद्धि को खो कर आम जीव की तरह रूला रहा था) प्रभु शिव जी ने कहा आपकी महिमा कोई नहीं जान सका। चूंकि भगवान शिव को श्री रामचन्द्र जी के शरीर में प्रवेश ज्योति निरंजन की परम तेजोमय शक्ति का आभास हो रहा था, उमा को नहीं। उसे केवल रामचन्द्र पुत्र राजा दशरथ ही नजर आ रहा था।

क्योंकि यह सर्व काल (ज्योति निरंजन) के वश है। वह जिसकी बुद्धि जब चाहे कम कर देता है और जिसकी चाहे विकसित कर देता है। उस समय उमा की बुद्धि तो क्षीण कर दी और श्री शिव जी की बुद्धि विकसित कर दी। जिसके परिणामस्वरूप गोरी ने प्रणाम नहीं किया। फिर भगवान शिव से कहने लगी कि यह तो राजा दशरथ का पुत्र श्री रामचन्द्र है। इसको आप भगवान कह रहे हो। भगवान शिव बोले उमा (पार्वती) आप नहीं जानती। यह विष्णु भगवान के अवतार ही रामचन्द्र जी हैं। इनकी पत्नी को कोई उठा ले गया है। इसलिए ये विलाप व तलाश कर रहे हैं।

उमा (गोरी) बोली भगवान कभी रोते हैं क्या? मैं तो इनकी परीक्षा लूंगी। तब इसको प्रणाम करूँ। भगवान शिव बोले कि परीक्षा मत लेना। उमा ने उपरले मन से कहा कि अच्छा परीक्षा नहीं लूंगी। परंतु शिव जी के दूर जाते ही छिपकर सीता जी का रूप बनाकर यह सोचकर कि मुझे सीता जानकर प्यार व संतोष करेगा, श्री रामचन्द्र जी के सामने आई। बात इसके विपरीत हुई। श्री रामचन्द्र जी बोले - हे दक्ष की पुत्री! आप भगवान शिव को कहाँ छोड़ आई?[क्योंकि यहां काल (महाविष्णु) ने श्री राम (विष्णु) की बुद्धि को खोल दिया तथा उसे देवी का असली रूप दर्शा दिया]

यह जानकर देवी बहुत शर्मिन्दा हुई तथा कहा कि भगवान शिव तो ठीक ही प्रणाम कर रहे थे। आप तो सचमुच भगवान हो। फिर अपने घर कैलाश पर्वत पर आ गई। उधर से काल (मन) ने शिवजी को उकसाया तथा पूछ बैठा कि ले आई परीक्षा। सती जी ने झूठ बोलते हुए कहा कि नहीं, मैंने कोई परीक्षा नहीं ली। परंतु शिव अन्दर ही अन्दर दक्ष पुत्री देवी से नाराज हो जाते हैं तथा कहते हैं कि आपने सीता माता {क्योंकि बड़ी भाभी (बड़े भाई की पत्नी) माँ समान आदरणीय होती है तथा छोटे भाई की पत्नी बहन समान या बेटी समान होती है। ये तीन भाई हैं। बड़ा ब्रह्मा, मंझला विष्णु और सबसे छोटा शिव (शंकर)है} का रूप बनाया है। इसलिए मैं आपको पत्नी रूप में स्वीकार नहीं कर सकता तथा पति-पत्नी का व्यवहार बन्द कर दिया। उमा को मालूम था कि भोले नाथ अपनी बात के पक्के हैं। पथ्वी दिशा बदल सकती है परंतु शिव अपनी जिद्द को नहीं छोड़ सकते। अकेलापन तथा हर समय अपनी भूल के पश्चाताप से तंग आकर उमा ने सोचा कि क्यों न अपने पिता के पास चलें। बच्चा कितनी ही गलती क्यों न कर दे आखिरकार माता-पिता क्षमा कर ही देते हैं। [क्योंकि राजा दक्ष के मना करने पर भी उमा ने शिव से शादी की थी। जिससे राजा दक्ष ने कहा था कि आज के बाद मेरे घर नहीं आएगी और न ही इस शिव जी को लाएगी। इसलिए उमा पहले कभी अपने पिता के घर नहीं गई थी।]

यह सोच कर उमा अपने पिता राजा दक्ष के घर पर चली गई। वहां देखा कि यज्ञ का अनुष्ठान राजा दक्ष के द्वारा किया जा रहा है। सारे यज्ञ मण्डप में घूम कर देखा तो पाया कि जो मेहमान आए हैं उनको उचित आदर से आसन दे रखा है, जो नहीं आए हैं उनका आसन लगा है तथा उनका हिस्सा भी निकाल कर आसन के पास रखा है। परंतु भगवान शिव (जो राजा दक्ष के दामाद थे) का न तो कहीं आसन है और न ही हिस्सा। यह सब देखकर अपनी माता के पास जा कर नाराजगी व्यक्त करती हुई बोली - आपने अपने दामाद शिव का न तो हिस्सा रखा है और न ही आदर से आसन दे रखा है। (लड़की की पार माता पर ही बसाती है। क्योंकि मां बेटी से विशेष प्यार करती है)। यह सुनकर माता ने कहा कि मेरी बात न तो तू मानती है। मैंने तेरे से कहा था कि बेटी मात-पिता का वचन मानने में ही भलाई है। आपने अपनी इच्छा से शादी करवाई। अब न तेरे पिता जी मेरी बात मानते हैं। सौ बार कहा है कि बेटी को बुला लो लेकिन नहीं मानें। अब तू जाने तथा तेरे पिता जी जाने।

माता के मुख से यह वचन सुन कर उमा अपने पिता राजा दक्ष के पास गई और कहा कि आपने न तो अपने दामाद शिव को बुलाया और न ही हिस्सा (भाग) निकाला। यह सुनकर राजा दक्ष नाराजगी व्यक्त करते हुए बोला कि तेरे को यहां किसने बुलाया है? किस लिए आई हो?

इस बात का दुःख मानकर देवी उमा ने यज्ञ के हवन कुण्ड में छलांग लगा कर आत्महत्या कर ली। इस बात का पता शिव को लगा तो शिवजी ने अपनी जटा से एक बाल उखाड़ कर जमीं पर दे मारा। उससे एक लम्बे चौड़े विकराल रूप का व्यक्ति सामने खड़ा हो गया। उसका नाम वीरभद्र (कालभद्र) कहा तथा शिव ने आदेश दिया कि सर्व भूत व गण सेना ले जा कर राजा दक्ष का सिर काट दो। उस समय राजा दक्ष की यज्ञ में ब्रह्मा-विष्णु भी राजा की विशेष प्रार्थना पर आए हुए थे। क्योंकि राजा दक्ष को भय था कि कहीं शिव को यज्ञ में आमन्त्रित न करने के कारण नाराज होकर यज्ञ को भंग न कर दे। शिव से अपनी व यज्ञ की रक्षा के लिए ब्रह्माजी व विष्णु जी बुला रखे थे।

जब उन दोनों (ब्रह्मा-विष्णु) को यह मालूम हुआ कि वीरभद्र पूरी सेना लेकर आ रहा है, जिसकी शक्ति हमसे ज्यादा है, जान का खतरा है। दोनों खिसकने की तैयारी करने लगे। इससे पहले ही अन्य राजा लोग वीरभद्र के भय से खिसक चुके थे। तब राजा दक्ष ने अपनी रक्षा की भीख मांगते हुए ब्रह्मा जी व विष्णु जी को याद दिलाया कि आप कह रहे थे कि हमारे रहते आपको कोई भय नहीं है। अब आप भी जा रहे हो। मेरी सुरक्षा आपके अतिरिक्त कौन कर सकता है? ब्रह्मा तो राजा दक्ष की बात को अनसुना करके चला गया परंतु भगवान विष्णु रूक गया। वीरभद्र आया, विष्णु से युद्ध हुआ। विष्णु को वीरभद्र ने ऐसा तीर मारा कि विष्णु स्तब्ध रह गया अर्थात् खम्भे की भांति खड़ा रहा। हिलना-डुलना भी बंद हो गया। उस समय उपस्थित वेद मन्त्र पढ़ रहे ब्राह्मणों ने वेद मन्त्र बोल कर विष्णु जी की स्तब्धता समाप्त की तथा विष्णु जी युद्ध छोड़ कर भाग गया।

फिर वीरभद्र ने शिव की आज्ञानुसार राजा दक्ष का सिर काट डाला। तत्पश्चात् शिवजी उमा के शव को लेने के लिए राजा दक्ष के यहाँ पहुँचे तो सर्व उपस्थित महर्षियों की प्रार्थना पर राजा दक्ष को बकरे का शीश लगा कर जीवित किया। फिर उमा के शव को देखा जो केवल अस्थि-पिंजर रूप में बकाया पड़ा था। उस अस्थि-पिंजर को कंधे पर रख कर मोहवश अंधा होकर उसे उमा जानकर दस हजार वर्षों तक पागलों की तरह लिए घूमता रहा व उमा समझकर उन्हीं हड्डियों को प्यार करता रहा। मुख को चूमता रहा। एक दिन नारद जी के कहने पर भगवान विष्णु ने सुदर्शन चक्र से देवी के कंकाल (हड्डियों) के टुकड़े-2 कर डाले। (जहां आँखें गिरी वहां नैना देवी के नाम से मन्दिर बनाया है, जहाँ धड़ गिरा वहां वैष्णों देवी मन्दिर की स्थापना बाद में की जा चुकी है तथा जहाँ जिह्वा गिरी वहाँ ज्वाला देवी मन्दिर बाद में बनाया गया।) ये मन्दिर एक यादगार बनाई थी कि घटना का प्रमाण बना रहे। बाद में पूजाऐं शुरु हो गई। तब कुछ समय रो कर शिव के मोह का नशा उतरा। तब सर्व हालातों को जानकर भगवान शंकर जी ने यह निर्णय लिया कि मुझे कामदेव (सैक्स) ने सताया तो शादी की इच्छा हुई। दक्ष पुत्री से विवाह हुआ। फिर उमा पर पूरा विश्वास किया कि यह मेरी प्राण प्यारी है, मुझे स्वप्न में भी धोखा नहीं दे सकती। इसने भी मुझे धोखा दिया, झूठ बोला कि मैंने श्री राम की परीक्षा नहीं ली। अब संसार में ऐसा कौन है जिस पर विश्वास किया जाए? यह विचार कर शिव ने फैसला किया कि ''न रहेगा बांस, न बजेगी बांसुरी''। मैं अपने कामदेव (सैक्स) को ही समाप्त कर देता हूँ जो मेरा सबसे बड़ा दुश्मन बना है। लोक वेद के आधार पर शास्त्र विधि त्याग कर मनमाना आचरण अर्थात् हठ करके इन्द्रियों व मन को वश करने के लिए शिवजी ने अठासी हजार वर्ष तक घोर तप व ऊँ मन्त्र का जाप करके

यह मान लिया कि अब मन मार लिया है तथा काम (सैक्स) व इन्द्रियों को काबू कर लिया है।

काल भगवान (महाविष्णु-ज्योति निरंजन) ने सोचा यदि संसार के प्राणी ऐसी साधना करने लग गए तो मेरी क्षुधा कैसे मिटेगी? यह तो काल को मालूम है कि ये साधनाएँ जो वेदों में, गीता जी आदि शास्त्रों में मन मारने की वर्णित हैं। इनसे मन काबू नहीं आ सकता। फिर भी यदि शिव की देखा-देखी सब साधना करने लग जाएंगे व हजारों वर्ष समाधी में बैठे रहेगें। मेरे खाने के लिए संतान उत्पत्ति नहीं कर पाएगें। यह सोच कर क्यों न बुराई को आरम्भ में काट डालूं। (Nip the evil in the bud)

फिर कोई मन व कामदेव (सैक्स) को मारने की कोशिश ही नहीं करेगा। सोचेगा कि जब शिव जैसे साधक ही असफल हैं तो मेरे जैसा साधारण व्यक्ति कैसे सफल हो सकता है? भगवान शिव के मन में काल (ज्योति निरंजन) ने प्रेरणा दी कि आज भगवान विष्णु से यह जानना चाहिए कि आपने 'समुद्र मन्थन' के समय राक्षसों से अमत का कलश लेने के लिए स्त्री का रूप बनाया था। वह मुझे दिखाओ। क्योंकि मैं विष (जो समुन्द्र मन्थन में निकला था जिससे शिव ने अपने कण्ठ में ठहराया था। जिससे उन्हें नीलकंठ के नाम से भी जाना जाने लगा) के प्रभाव के कारण नहीं देख पाया था। यह विचार करके भगवान विष्णु के पास जा कर कहा कि क्प्या वही मोहिनी रूप मुझे फिर से दिखाईए। मेरी प्रबल इच्छा है। भगवान विष्णु ने कहा कि छोड़ो भोले नाथ जी, गड़े मूर्दे नहीं उखाड़ा करते अर्थात् बीती बातों को नहीं दोहराया करते। समय न जाने क्या करवा देता है। उस समय मजबूरी थी। यदि मैं मोहिनी (स्त्री जिसका रूप मन को मोह ले) रूप बना कर राक्षसों में नहीं जाता तो वे अमत पी कर लम्बी आयु वाले हो जाते तथा भक्तों व ऋषियों को दुःखी करते रहते। मैंने उन्हें शराब का कलश दे दिया जिसे पी कर मद्यहोश हो गए तथा अमत का घड़ा छीन कर देवताओं को दे दिया। वे सब राक्षस मुझे स्त्री रूप में देखकर मोहित हो गए तभी मैंने अवसर पा कर कलश बदल दिए थे। भगवान शिव ने कहा कि मैं आपका वही स्त्री रूप देखना चाहता हूँ। आप बहुत ही अच्छे लग रहे होंगे। जब तक आप मेरी इच्छा पूर्ण नहीं करोगे मैं आपके द्वार पर ही बैठ कर प्रार्थना करता रहूँगा। विष्णु जी ने सोचा यह तो 88 हजार वर्ष तक बैठने वाला साधक यदि यहां पर बैठ गया तो उठने का नाम नहीं लेगा। यह विचार कर भगवान विष्णु अन्तर्ध्यान हो गए। कुछ दूरी पर एक सुन्दर युवा स्त्री के रूप में अर्ध नग्न शरीर युक्त पोशाक पहने हुए दिखाई दिए। शिवजी इतने काम प्रेरित हो गए कि उस लड़की के पीछे-2 भाग लिए। जब लड़की का हाथ पकड़ा उस समय तक शिवजी का वीर्य पात हो चुका था। भगवान विष्णु अपने रूप में प्रकट हो गए। उस समय शिव के हाथ में भगवान विष्णु का हाथ था तथा विष्णु जी कह रहे थे कि मैंने राक्षसों को ऐसे मूर्ख बनाया जिससे आप जैसे त्रिकाल दर्शी योगी भी चक्र में पड़ गए। मन व काम (सैक्स) को शिव जैसे भगवान व साधक भी नहीं वश कर पाए तो साधारण जीव व साधक कैसे सफल हो सकता है। इस महान शत्रु को तो केवल शास्त्र विधि अनुसार भक्ति साधना तत्वदर्शी संत से प्राप्त करके ही पराजित किया जा सकता है। गरीबदास जी महाराज जो कबीर साहिब जी के शिष्य थे अपनी वाणी में कह रहे हैं :-

गरीब, जैसे अग्नि काष्ट के मांही, है व्यापक पर दिखे नाहीं। ऐसे काम देव प्रचण्डा, व्यापक सकल द्वीप नौ खण्डा।।

जैसे लकड़ी में अग्नि होती है परंतु वह दिखाई नहीं देती। ऐसे ही काम (सैक्स) हर प्राणी में विद्यमान रहता है। जब भी कोई स्त्री-पुरुष का सानिध्य होता है तो काम (सैक्स) रूपी अग्नि प्रज्वलित हो जाती है। जैसे काष्ठ को आग लगा दी जाए तो न दिखाई देने वाली अग्नि दिखाई देने

लगती है। कबीर साहेब जी कहते हैं :-

कबीर सत्यनाम सुमरण बिन, मिटे न मन का दाग। विकार मरे मत जानियो, ज्यों भूभल में आग।।

जो भी साधक जैसी साधना कर रहा है वही उसके पूरी होने पर समझ बैठता है कि मैंने मन-इन्द्रियाँ जीत ली हैं। यही भ्रम एक बार परम ऋषि नारद जी को भी हुआ था। आदरणीय गरीबदास जी कबीर पंथी संत, छुड़ानी (हरियाणा) वाले की अमृतवाणी -

गरीब, कुरंग, मतंग, पतंग, श्रृंग और भ्ररंगा। इन्द्री एक ठग्यो तिस अंगा।।

गरीब, तुम्हरे संग पांचों प्रकासा। योग युक्त की झूठी आशा।।

कुरंग कहते हैं हिरण को। हिरण में शब्द का रस लेने वाली श्रवण इन्द्री प्रबल होती है जिसके वश होकर शिकारी (जो एक विशेष धुन बनाकर शारंगी से शब्द गुंजार करता है)के पास अपने आप शब्द के आनन्द वश होकर अपने प्राणोंकी परवाह न करके चला जाता है जिस कारण मारा जाता है।

मतंग कहते हैं हाथी को। इसमें काम वासना (Sex) की अधिकता होती है जो उपस्थ इन्द्री के वश होकर अपनी जान शिकारी के हाथों सौंप देता है।

हाथी पकड़ने वाले शिकारी एक हथिनी को विशेष शिक्षा देकर रखते हैं। जंगल में जाकर एक गहरा गड्डा खोद कर उस पर लम्बे बांसों से छत दे देते हैं। उसके ऊपर मिट्टी डाल कर घास जमा देते हैं जिससे देखने में जमीन प्रतीत होती है। फिर उस शिक्षित हथिनी को हाथियों के झुण्ड की ओर भेज देते हैं। हथिनी किसी एक हाथी से अपना शरीर स्पर्श करके उसे काम (सैक्स) प्रेरित करती है। जब वह कामुक हाथी कोशिश करता है तब वह हथिनी भाग लेती है। पीछे-2 हाथी भागता है। वह हथिनी वहीं पर जहां गड्डा खोदा हुआ होता है के समीप आकर स्वयं बराबर से निकल कर फिर सीधा भाग लेती है। हाथी कामवस अंधा होकर सीधा ही भागता रहता है तथा उस सुनियोजित विधि से बनाए गड्डे में गिर कर कहीं निकलने का रास्ता न पा कर चिंघाड़ें मार-2 कर निर्बल हो जाता है तथा शिकारी पकड़ लेता है । फिर सारी उम्र परवश होकर भूखा प्यासा गाँव-2 में मांगने वाले के साथ भ्रमता रहता है।

रूप (नेत्र इन्द्री) के वश होकर एक पतंगा दीपक के रूप (रोशनी) पर आसक्त होकर जल मरता है। रस (जिह्वा इन्द्री) के वश होकर मच्छली एक छोटे से मांस के टुकड़े को खाने की कोशिश करती है जो शिकारी ने एक लोहे की तीखी नोक वाले आगे से मुड़े हुए तार (कांटे) में उलझा रखा होता है। वह कांटा उसके मुख में फंस जाता है। फिर मच्छिहारा झटका मार कर उसे पानी से बाहर पटक देता है। वह मच्छली तड़फ-2 कर मर जाती है। गंध (नाक इन्द्री) के वश होकर भंवरा किसी फूल पर बैठ जाता है तथा इतना विवश हो जाता है कि वह फूल शाम को बन्द हो जाता है भंवरा अपने प्राण त्याग देता है। तुम्हारे संग पाँचों प्रकासा। योग युक्त की झूठी आशा।।''

संत गरीबदास जी ने कहा है कि मनुष्य के साथ उपरोक्त पाँचों ज्ञान इन्द्रीयाँ अपना प्रभाव जमाए हैं तो योग युक्त अर्थात् साधना में लीन होने की व्यर्थ आशा है। जैसे गीता अध्याय 3 श्लोक 4 से 6 में कहा है कि जो पाखण्डी साधक एक स्थान पर बैठ कर हठपूर्वक कर्म इन्द्रीयों को रोकर साधनारत दिखाई देता है वह दम्भ (पाखण्ड) कर रहा होता है क्योंकि उस की ज्ञान इन्द्रियाँ निश्चल नहीं रहती। इसलिए वह योग युक्त नहीं हो सकता।

2. नारद जी से मन वश नहीं हुआ :- नारद जी को मनमानी साधना करके अभिमान हो गया था कि मैंने मन वश कर लिया। जब परीक्षा हुई तो विवाह के लिए तड़फ गए और बन्दर का

मुख लगवाकर झुलूस निकलवाया।

3. स्वयं कष्ण (विष्णु) जी के मन व काम (सैक्स) वश नहीं हुआ।

सर्व विदित है कि भगवान कष्ण जी ने मन व काम (सैक्स) के वश होकर हजारों गोपियों व राधा जी, कुब्जा से तथा आठ विवाहित पत्नियों से काम (सैक्स) क्रीड़ा की। एक बार एक राक्षस देवताओं से मारा नहीं जा रहा था। एक ऋषि ने बताया कि इसकी पत्नी पतिव्रता है। इसलिए यह नहीं मर रहा है। उसका पतिव्रत धर्म भंग किया जाए तब यह मरे। इसके लिए सर्व देवताओं ने भगवान विष्णु के पास जा कर प्रार्थना की तब विष्णु जी बोले- आपकी प्रार्थना स्वीकार हुई। भगवान विष्णु ने उस राक्षस का रूप बनाया तथा धोखा करके राक्षस की पत्नी के साथ काम (सैक्स) क्रीड़ा की। तब वह राक्षस मारा गया।

तो क्या अर्जुन मन को वश कर सकता है या आम जीव कर सकता है? यह सर्व काल जाल है। जो जीव से न चाहते हुए भी पाप करवा देता है। मन स्वयं काल ब्रह्म है। काल परमेश्वर कबीर जी से भय मानता है। गरीबदास जी ने बताया है कि :-

काल डरै करतार से, जय जय जय जगदीश। जौरा जोड़े झाड़ता, पग रज डारे शीश।।1

काल जो पीसै पीसना, जौरा है पनिहार। ये दो असल मजूर हैं, सतगुरू के दरबार।।2

भावार्थ :- वाणी नं. 1 :- काल ब्रह्म केवल कबीर करतार से डरता है। परमात्मा की जय जयकार करता है और जौर यानि मत्यु भी कबीर परमात्मा के आधीन है। वह भी कबीर जी के जोड़े यानि जूते झाड़ती यानि साफ करती है अर्थात् मत्यु भी परमात्मा कबीर जी की नौकर है। नौकर मालिक के आदेश का पालन करता है यानि कबीर जी के भक्त की मत्यु संस्कारवश नहीं हो सकती। परमात्मा कबीर जी की आज्ञा से उचित समय पर होगी।

वाणी नं. 2 का भी यही भावार्थ है कि सतगुरू कबीर जी के सामने काल ब्रह्म ऐसा है जैसे बहुत बड़े धनी का नौकर होता है। जैसे पूर्व समय में हाथ से चक्की चलाकर आटा बनाया जाता था। नौकर कणक को चक्की में पीसता था। आटे के लिए तैयार की गई कणक (गेहूँ-बाजरा) को पीसना कहते हैं। काल तो कबीर जी का पीसना पीसता है। मौत पानी भरने वाली पनिहार जैसी नौकरानी है। परमेश्वर कबीर जी के दरबार यानि कार्यालय में ये दोनों असली मजदूर हैं अर्थात् ये परमात्मा कबीर जी के सामर्थ्य के सामने इतने कम हैं। इसलिए कबीर जी द्वारा बताई यथार्थ साधना से मन (काल) वश होता है।

इसलिए परम पूज्य परमेश्वर कबीर (कविर्देव) जी यह कहना चाहते हैं कि मानव आपको काल ने इन पाँचों विकारों से प्रभावित कर रखा है। आप योग युक्त अर्थात् एक स्थान पर बैठकर हठ योग करके साधना की निष्फल कोशिश भला क्यों करते हो? कर्म करते-करते साधना करो जैसे गीता अध्याय 8 श्लोक 7 में कहा है कि अर्जुन तू मेरा भजन भी कर तथा युद्ध भी कर। युद्ध से अधिक किसी भी कार्य में जीव व्यस्त नहीं होता। इसलिए गीता ज्ञान से सिद्ध है कि हठ योग करना व्यर्थ है। संसारिक कर्त्तव्य कर्म करते हुए। पूर्ण सतगुरु से सत्यनाम ले कर भजन करो तथा काल-जाल से मुक्त हो जाओ। पूर्ण परमात्मा की साधना से मन वश होता है। इसी सत्यनाम से विकार समाप्त हो जाते हैं, मन वश होता है तथा सार शब्द से पूर्ण परमात्मा की प्राप्ति हो जाती है। जन्म-मरण से पूर्ण छुटकारा मिल जाता है।

❑❑❑

।।तीसरे अध्याय के अनुवाद सहित श्लोक।।

परमात्मने नमः

अथ तृतीयोऽध्यायः

अध्याय 3 का श्लोक 1 (अर्जुन उवाच)

ज्यायसी चेत्कर्मणस्ते मता बुद्धिर्जनार्दन।
तत्किं कर्मणि घोरे मां नियोजयसि केशव।१।

ज्यायसी, चेत्, कर्मणः, ते, मता, बुद्धिः, जनार्दन,
तत्, किम्, कर्मणि, घोरे, माम्, नियोजयसि, केशव।।1।।

अनुवाद : (जनार्दन) हे जनार्दन! (चेत्) यदि (ते) आपको (कर्मणः) कर्मकी अपेक्षा (बुद्धिः) तत्वदर्शी द्वारा दिया ज्ञान (ज्यायसी) श्रेष्ठ (मता) मान्य है (तत्) तो फिर (केशव) हे केशव! (माम्) मुझे एक स्थान पर बैठ कर इन्द्रियों को रोक कर, गर्दन व सिर को सीधा रख कर गीता अध्याय 6 श्लोक 10 से 15 तक वर्णित (घोरे) तथा युद्ध करने जैसे भयंकर (कर्मणि) तुच्छ कर्ममें (किम्) क्यों (नियोजयसि) लगाते हैं। (1)

अध्याय 3 का श्लोक 2

व्यामिश्रेणेव वाक्येन बुद्धिं मोहयसीव मे।
तदेकं वद निश्चित्य येन श्रेयोऽहमाप्नुयाम्।२।

व्यामिश्रेण, इव, वाक्येन, बुद्धिम्, मोहयसि, इव, मे,
तत्, एकम्, वद, निश्चित्य, येन, श्रेयः, अहम्, आप्नुयाम्।।2।।

अनुवाद : (व्यामिश्रेण,इव) इस प्रकार आप मिले हुए से अर्थात् दो तरफा (वाक्येन) वचनोंसे (मे) मेरी (बुद्धिम्) बुद्धि (मोहयसि,इव) भ्रमित हो रही है इसलिए (तत्) उस (एकम्) एक बातको (निश्चित्य) निश्चित करके (वद) कहिये (येन) जिससे (अहम्) मैं (श्रेयः) कल्याणको (आप्नुयाम्) प्राप्त हो जाऊँ। (2)

अध्याय 3 का श्लोक 3 (श्री भगवान उवाच)

लोकेऽस्मिन्द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ।
ज्ञानयोगेन साङ्ख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम्।३।

लोके, अस्मिन्, द्विविधा, निष्ठा, पुरा, प्रोक्ता, मया, अनघ,
ज्ञानयोगेन, साङ्ख्यानाम्, कर्मयोगेन, योगिनाम्।।3।।

अनुवाद : (अनघ) हे निष्पाप! (अस्मिन्) इस (लोके) लोकमें (द्विविधा) दो प्रकारकी (निष्ठा) निष्ठा (मया) मेरे द्वारा (पुरा) पहले (प्रोक्ता) कही गयी है उनमेंसे (साङ्ख्यानाम्) ज्ञानियों की निष्ठा तो (ज्ञानयोगेन) ज्ञानयोग अर्थात् अपनी ही सूझ-बूझ से निकाले भक्ति विधि के निष्कर्ष में और (योगिनाम्) योगियोंकी निष्ठा (कर्मयोगेन) कर्मयोगसे अर्थात् सांसारिक कार्य करते हुए साधना करने में होती है। (3)

अध्याय 3 का श्लोक 4

न कर्मणामनारम्भान्नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते।
न च सन्न्यसनादेव सिद्धिं समधिगच्छति।४।

न, कर्मणाम्, अनारम्भात्, नैष्कर्म्यम्, पुरुषः, अश्नुते,
न, च, सन्न्यसनात्, एव, सिद्धिम्, समधिगच्छति।।4।।

अनुवाद : (न) न तो (कर्मणाम्) कर्मोंका (अनारम्भात्) आरम्भ किये बिना (नैष्कर्म्यम्) शास्त्रों में वर्णित शास्त्र अनुकुल साधना जो संसारिक कर्म करते-करते करने से पूर्ण मुक्ति होती है वह गति अर्थात् (पुरुषः) परमात्मा (अश्नुते) प्राप्त होता है जैसे किसी ने एक एकड़ गेहूँ की फसल काटनी है तो वह काटना प्रारम्भ करने से ही कटेगी। फिर काटने वाला कर्म शेष नही रहेगा (च) और (एव) इसलिए (सन्न्यसनात्) कर्मोंके केवल त्यागमात्रसे एक स्थान पर बैठ कर विशेष आसन पर बैठ कर संसारिक कर्म त्यागकर हठ योग से (सिद्धिम्) सिद्धि (न समधिगच्छति) प्राप्त नहीं होती है। (4)

अध्याय 3 का श्लोक 5

न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः।५।

न, हि, कश्चित्, क्षणम्, अपि, जातु, तिष्ठति, अकर्मकत्,
कार्यते, हि, अवशः, कर्म, सर्वः, प्रकतिजैः, गुणैः।।5।।

अनुवाद : (हि) निःसन्देह (कश्चित्) कोई भी मनुष्य (जातु) किसी भी कालमें (क्षणम्) क्षणमात्र (अपि) भी (अकर्मकत्) बिना कर्म किये (न) नहीं (तिष्ठति) रहता (हि) क्योंकि (सर्वः) सारा मनुष्य समुदाय (प्रकतिजैः) प्रकति अर्थात् दुर्गा जनित (गुणैः) रजगुण ब्रह्मा, सतगुण विष्णु, तमगुण शिव जी गुणोंद्वारा (अवशः) परवश हुआ (कर्म) कर्म करनेके लिये (कार्यते) बाध्य किया जाता है। (5)(इसी का प्रमाण अध्याय 14 श्लोक 3 से 5 में भी है।)

अध्याय 3 का श्लोक 6

कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन्।
इन्द्रियार्थान्विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते।६।

कर्मेन्द्रियाणि, संयम्य, यः, आस्ते, मनसा, स्मरन्,
इन्द्रियार्थान्, विमूढात्मा, मिथ्याचारः, सः, उच्यते।।6।।

अनुवाद : (यः) जो (विमूढात्मा) महामूर्ख मनुष्य (कर्मेन्द्रियाणि) समस्त कर्म इन्द्रियोंको हठपूर्वक ऊपरसे (संयम्य) रोककर (मनसा) मनसे उन (इन्द्रियार्थान्) ज्ञान इन्द्रियोंके विषयोंका (स्मरन्) चिन्तन करता (आस्ते) रहता है, (सः) वह (मिथ्याचारः) मिथ्याचारी अर्थात् दम्भी (उच्यते) कहा जाता है(6)(इसी का विस्तत वर्णन गीता अध्याय 17 श्लोक 19 में है।)

अध्याय 3 का श्लोक 7

यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन।
कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते। ७।

यः, तु, इन्द्रियाणि, मनसा, नियम्य, आरभते, अर्जुन,
कर्मेन्द्रियैः, कर्मयोगम्, असक्तः, सः, विशिष्यते।।7।।

अनुवाद : (तु) किंतु (अर्जुन) हे अर्जुन! (यः) जो पुरुष (मनसा) मनसे (इन्द्रियाणि) इन्द्रियोंको (नियम्य) नियन्त्रित अर्थात् वशमें करके (असक्तः) अनासक्त हुआ (कर्मेन्द्रियैः) समस्त कर्म इन्द्रियोंद्वारा (कर्मयोगम्) शास्त्र विधि अनुसार संसारी कार्य करते-करते भक्ति कर्म अर्थात् कर्मयोगका (आरभते) आचरण करता है (सः) वही (विशिष्यते) श्रेष्ठ है। (7)

विशेष :- उपरोक्त न करने वाले हठयोग को गीता अध्याय 6 श्लोक 10 से 15 में करने को कहा है। इसलिए अर्जुन इसी अध्याय 3 के श्लोक 2 में कह रहा है कि आप की दोगली बातें मुझे भ्रम में डाल रही हैं।

अध्याय 3 का श्लोक 8

नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः।
शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्ध्येदकर्मणः। ८ ।

नियतम्, कुरु, कर्म, त्वम्, कर्म, ज्यायः, हि, अकर्मणः,
शरीरयात्रा, अपि, च, ते, न, प्रसिद्धयेत्, अकर्मणः।।8।।

अनुवाद : (त्वम्) तू (नियतम्) शास्त्रविहित (कर्म) कर्म (कुरु) कर (हि) क्योंकि (अकर्मणः) कर्म न करनेकी अपेक्षा अर्थात् एक स्थान पर एकान्त स्थान पर विशेष कुश के आसन पर बैठ कर भक्ति कर्म हठपूर्वक करने की अपेक्षा (कर्म) संसारिक कर्म करते-करते भक्ति कर्म करना (ज्यायः) श्रेष्ठ है (च) तथा (अकर्मणः) कर्म न करनेसे अर्थात् हठयोग करके एकान्त स्थान पर बैठा रहेगा तो (ते) तेरा (शरीरयात्रा) शरीर-निर्वाह अर्थात् तेरा परिवार पोषण (अपि) भी (न) नहीं (प्रसिद्धयेत्) सिद्ध होगा। (8)

अध्याय 3 का श्लोक 9

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः।
तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसङ्गः समाचर। ९ ।

यज्ञार्थात्, कर्मणः, अन्यत्र, लोकः, अयम्, कर्मबन्धनः,
तदर्थम्, कर्म, कौन्तेय, मुक्तसंगः, समाचर।।9।।

अनुवाद : (यज्ञार्थात्) यज्ञ अर्थात् धार्मिक अनुष्ठान के निमित किये जानेवाले (कर्मणः) शास्त्र विधि अनुसार कर्मोसे अतिरिक्त (अन्यत्र) शास्त्र विधि त्याग कर दूसरे कर्मोमें लगा हुआ ही (अयम्) इस (लोकः) संसार में (कर्मबन्धनः) कर्मोसे बँधता है अर्थात् चौरासी लाख योनियों में यातनाऐं सहन करता है।। इसलिए (कौन्तेय) हे अर्जुन! तू (मुक्तसंगः) आसक्तिसे रहित होकर (तदर्थम्) उस शास्त्रानुकूल यज्ञके निमित ही भलीभाँति (कर्म) भक्ति के शास्त्र विधि अनुसार करने योग्य कर्म अर्थात् कर्तव्यकर्म (समाचर) संसारिक कर्म करता हुआ शास्त्र अनुकूल अर्थात् विधिवत् साधना कर। (9)

विशेष :- उपरोक्त गीता अध्याय 3 श्लोक 6 से 9 तक एक स्थान पर एकान्त में विशेष आसन पर बैठ कर कान-आंखें आदि बन्द करके हठ करने की मनाही की है तथा शास्त्रों में वर्णित भक्ति विधि अनुसार साधना करना श्रेयकर बताया है।

प्रत्येक सद्ग्रन्थों में संसारिक कार्य करते-करते नाम जाप व यज्ञादि करने का भक्ति विद्यान बताया है।

प्रमाण :- पवित्र गीता अध्याय 8 श्लोक 13 में कहा है कि मुझ ब्रह्म का उच्चारण करके सुमरण करने का केवल एक मात्र ओ३म् अक्षर है जो इसका जाप अन्तिम स्वांस तक कर्म

करते-करते भी करता है वह मेरे वाली परमगति को प्राप्त होता है।

फिर अध्याय 8 श्लोक 7 में कहा है कि हर समय मेरा सुमरण भी कर तथा युद्ध भी कर। इस प्रकार मेरे आदेश का पालन करते हुए अर्थात् संसारिक कर्म करते-करते साधना करता हुआ मुझे ही प्राप्त होगा। भले ही अपनी परमगति को गीता अध्याय 7 मंत्र 18 में अति अश्रेष्ठ अर्थात् अति व्यर्थ बताया है। फिर भी भक्ति विधि यही है।

फिर अध्याय 8 श्लोक 8 से 10 तक विवरण दिया है कि चाहे उस परमात्मा अर्थात् पूर्णब्रह्म की भक्ति करो, जिसका विवरण गीता अध्याय 17 श्लोक 23 तथा अध्याय 18 श्लोक 62 व अध्याय 15 श्लोक 1 से 4 में दिया है। उसका भी यही विधान है कि जो साधक पूर्ण परमात्मा की साधना तत्वदर्शी संत से उपदेश प्राप्त करके नाम जाप करता हुआ तथा संसारिक कार्य करता हुआ शरीर त्याग कर जाता है वह उस परम दिव्य पुरुष अर्थात् पूर्ण परमात्मा को ही प्राप्त होता है। तत्वदर्शी संत का संकेत गीता अध्याय 4 श्लोक 34 में दिया है।

यही प्रमाण पवित्र यजुर्वेद अध्याय 40 मंत्र 10 तथा 15 में दिया है।

यजुर्वेद अध्याय 40 मंत्र 10 का भावार्थ :- पवित्र वेदों को बोलने वाला ब्रह्म कह रहा है कि पूर्ण परमात्मा के विषय में कोई तो कहता है कि वह अवतार रूप में उत्पन्न होता है अर्थात् आकार में कहा जाता है, कोई उसे कभी अवतार रूप में आकार में न आने वाला अर्थात् निराकार कहता है। उस पूर्ण परमात्मा का तत्वज्ञान तो कोई धीराणाम् अर्थात् तत्वदर्शी संत ही बताऐंगे कि वास्तव में पूर्ण परमात्मा का शरीर कैसा है? वह कैसे प्रकट होता है? पूर्ण परमात्मा की पूरी जानकारी उसी धीराणाम् अर्थात् तत्वदर्शी संत से सुनों। मैं वेद ज्ञान देने वाला ब्रह्म भी नहीं जानता।

फिर भी अपनी भक्ति विधि को बताते हुए अध्याय 40 मंत्र 15 में कहा है कि मेरी साधना ओ३म् नाम का जाप कर्म करते-करते कर, विशेष आस्था के साथ सुमरण कर तथा मनुष्य जीवन का मुख्य कर्त्तव्य जानकर सुमरण कर इससे मत्यु उपरान्त अर्थात् शरीर छूटने पर मेरे वाला अमरत्व अर्थात् मेरी परमगति को प्राप्त हो जाएगा। जैसे सूक्ष्म शरीर में कुछ शक्ति आ जाती है, कुछ समय तक अमर हो जाता है जिससे स्वर्ग में चला जाता है। फिर जन्म-मत्यु को प्राप्त होता है।

❖ विशेष :- एक राष्ट्र में खेल के नियम समान होते हैं। जो खिलाड़ी जिला स्तर पर खेलते हैं, उन पर भी वही नियम लागू होते हैं, जो राष्ट्रीय या अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर खेलते हैं, उन पर भी वही नियम लागू होते हैं। इसलिए भक्ति-साधना चाहे काल ब्रह्म स्तर की करो, चाहे परम अक्षर ब्रह्म यानि सतपुरूष स्तर की करो, नियम एक जैसे हैं।

अध्याय 3 का श्लोक 10

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक्।१०।

सहयज्ञाः, प्रजाः, सष्ट्वा, पुरा, उवाच, प्रजापतिः,
अनेन, प्रसविष्यध्वम्, एषः, वः, अस्तु, इष्टकामधुक्।।10।।

अनुवाद : (प्रजापतिः) प्रजापति यानि कुल के मालिक ने (पुरा) कल्पके आदिमें (सहयज्ञाः) यज्ञसहित (प्रजाः) प्रजाओंको (सष्ट्वा) रचकर उनसे (उवाच) कहा कि (अनेन) अन्न द्वारा होने वाला धार्मिक कर्म जिसे धर्म यज्ञ कहते हैं, जिसमें भण्डारे करना आदि है, इस यज्ञ के द्वारा (प्रसविष्यध्वम्) वद्धि को प्राप्त होओ और (वः) तुम को (एषः) यह पूर्ण परमात्मा (इष्टकामधुक्) यज्ञ में प्रतिष्ठित इष्ट ही इच्छित भोग प्रदान करनेवाला (अस्तु) हो। (10)

अध्याय 3 का श्लोक 11

देवान्भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ।११।

देवान्, भावयत, अनेन, ते, देवाः, भावयन्तु, वः,
परस्परम् भावयन्तः, श्रेयः, परम्, अवाप्स्यथ।।11।।

विशेष :- गीता अध्याय 15 श्लोक 1 से 4 में वर्णित उल्टा लटका हुआ संसार रूपी वक्ष है, उस की जड़ (मूल) तो पूर्ण परमात्मा है तथा तना परब्रह्म अर्थात् अक्षर पुरुष है तथा डार क्षर पुरुष (ब्रह्म) है व तीनों गुण अर्थात् रजगुण ब्रह्मा जी, सतगुण विष्णु जी, तमगुण शिव जी रूपी शाखायें हैं। वक्ष को मूल(जड़) से ही खुराक अर्थात् आहार प्राप्त होता है। जैसे हम आम का पौधा लगायेंगे तो मूल को सीचेंगे, जड़ से खुराक तना में जायेगी, तना से मोटी डार में, डार से शाखाओं में जायेगी, फिर उन शाखाओं को फल लगेंगे, फिर वह टहनियां अपने आप फल देंगी। इसी प्रकार पूर्णब्रह्म अर्थात् परम अक्षर ब्रह्म रूपी मूल की पूजा अर्थात् सिंचाई करने से अक्षर पुरुष अर्थात् परब्रह्म रूपी तना में संस्कार अर्थात् खुराक जायेगी, फिर अक्षर पुरुष से क्षर पुरुष अर्थात् ब्रह्म रूपी डार में संस्कार अर्थात् खुराक जायेगी। फिर ब्रह्म से तीनों गुण अर्थात् श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी, श्री शिव जी रूपी तीनों शाखाओं में संस्कार अर्थात् खुराक जायेगी। फिर इन तीनों देवताओं रूपी टहनियों को फल लगेंगे अर्थात् फिर तीनों प्रभु श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी, श्री शिव जी हमें संस्कार आधार पर ही कर्म फल देते हैं। यही प्रमाण गीता अध्याय 15 श्लोक 16 व 17 में भी है कि दो प्रभु इस पथ्वी लोक में है, एक क्षर पुरुष अर्थात् ब्रह्म, दूसरा अक्षर पुरुष अर्थात् परब्रह्म। ये दोनों प्रभु तथा इनके लोक में सर्व प्राणी तो नाशवान हैं, वास्तव में अविनाशी तथा तीनों लोकों में प्रवेश करके सर्व का धारण-पोषण करने वाला परमेश्वर परमात्मा तो उपरोक्त दोनों भगवानों से भिन्न है। कप्या देखें चित्र सीधा बीजा हुआ भक्तिरूपी पौधा इसी पुस्तक के पष्ठ 153 पर।

अनुवाद : (अनेन) इस यज्ञके द्वारा (देवान्) देवताओं अर्थात् शाखाओं को (भावयत) उन्नत करो और (ते) वे (देवाः) देवता अर्थात् शाखायें (वः) तुमलोगोंको (भावयन्तु) उन्नत करें अर्थात् संस्कार वश फल प्रदान करें। इस प्रकार निःस्वार्थभावसे (परस्परम्) एक-दूसरेको (भावयन्तः) उन्नतकरते हुए (परम्) परम (श्रेयः) कल्याणको (अवाप्स्यथ) प्राप्त हो जाओगे। (11)

अध्याय 3 का श्लोक 12

इष्टान्भोगान्हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः।
तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुङ्क्ते स्तेन एव सः।१२।

इष्टान् भोगान्, हि, वः, देवाः, दास्यन्ते, यज्ञभाविताः,
तैः दत्तान्, अप्रदाय, एभ्यः, यः, भुङ्क्ते, स्तेनः, एव, सः।।12।।

अनुवाद : (हि) क्योंकि (इष्टान्) उस यज्ञों धार्मिक अनुष्ठानों में प्रतिष्ठित इष्ट देव अर्थात् पूर्ण परमात्मा को (भोगान्) भोग लगाने से मिलने वाले प्रतिफल रूप भोगों को (वः) तुमको (यज्ञभाविताः) यज्ञों के द्वारा उन्नत यानि फले (देवाः) देवता (दास्यन्ते) इसका प्रतिफल देते रहेगें। (तैः) उनके द्वारा (दत्तान्) दिये हुए भौतिक सुख को (यः) जो (एभ्यः) इनको (अप्रदाय) बिना दिये अर्थात् यज्ञ दान आदि नहीं करते (भुङ्क्ते) स्वयं ही खा जाते हैं, (सः) वह (एव) वास्तव में (स्तेनः) चोर है। (12)

अध्याय 3 का श्लोक 13

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः।
भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्।१३।

यज्ञशिष्टाशिनः, सन्तः, मुच्यन्ते, सर्वकिल्बिषैः,
भु जते, ते, तु, अघम्, पापाः, ये, पचन्ति, आत्मकारणात्।।13।।

अनुवाद : (यज्ञ शिष्ट) यज्ञ में प्रतिष्ठित इष्ट अर्थात् पूर्ण परमात्मा को भोग लगाने के बाद बने प्रसाद को (अशिनः) खाने वाले (सन्तः) साधु (सर्वकिल्बिषैः) यज्ञादि न करने से होने वाले सब पापोंसे (मुच्यन्ते) बच जाते हैं और (ये) जो (पापाः) पापीलोग (आत्मकारणात्) अपना शरीर पोषण करनेके लिये ही (पचन्ति) अन्न पकाते हैं (ते) वे (तु) तो (अघम्) पापको ही (भु जते) खाते हैं। (13)

अध्याय 3 का श्लोक 14-15

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः।१४।

अन्नात्, भवन्ति, भूतानि, पर्जन्यात्, अन्नसम्भवः,
यज्ञात्, भवति, पर्जन्यः, यज्ञः, कर्मसमुद्भवः।।14।।

कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम्।
तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम्।१५।

कर्म, ब्रह्मोद्भवम्, विद्धि, ब्रह्म, अक्षरसमुद्भवम्,
तस्मात्, सर्वगतम्, ब्रह्म, नित्यम्, यज्ञे, प्रतिष्ठितम्।।15।।

अनुवाद : (भूतानि) प्राणी (अन्नात्) अन्नसे (भवन्ति) उत्पन्न होते हैं, (अन्नसम्भवः) अन्नकी उत्पत्ति (पर्जन्यात्) व ष्टिसे होती है (पर्जन्यः) व ष्टि (यज्ञात्) यज्ञ यानि धार्मिक अनुष्ठान से (भवति) होती है और (यज्ञः) यज्ञ (कर्मसमुद्भवः) विहित कर्मोंसे उत्पन्न होनेवाला है। (कर्म) कर्मको तू (ब्रह्मोद्भवम्) ब्रह्मसे उत्पन्न और (ब्रह्म) ब्रह्म अर्थात् क्षर पुरुष को (अक्षरसमुद्भवम्) अविनाशी परमात्मासे उत्पन्न हुआ (विद्धि) जान। (तस्मात्) इससे सिद्ध होता है कि (सर्वगतम्) सर्वव्यापी (ब्रह्म) परमात्मा (नित्यम्) सदा ही (यज्ञे) यज्ञमें (प्रतिष्ठितम्) प्रतिष्ठित है अर्थात् यज्ञों का भोग लगा कर फल दाता भी वही पूर्णब्रह्म है। (इसी का प्रमाण पवित्र गीता अध्याय 4 श्लोक 13 में है कि गुणों के आधार से कर्म लगाकर चार वर्ण बनाए हैं तथा कर्म का लगाने वाला मैं ब्रह्म ही हूँ, परंतु वास्तव में करतार यानि स ष्टि का कर्ता नहीं हूँ। स ष्टिकर्ता तो अविनाशी परमात्मा है।)(14-15)

अध्याय 3 का श्लोक 16

एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयतीह यः।
अघायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति।१६।

एवम्, प्रवर्तितम्, चक्रम्, न, अनुवर्तयति, इह, यः,
अघायुः, इन्द्रियारामः, मोघम्, पार्थ, सः, जीवति।।16।।

अनुवाद : (पार्थ) हे पार्थ! (यः) जो पुरुष (इह) इस लोकमें (एवम्) इस प्रकार परम्परासे (प्रवर्तितम्) प्रचलित (चक्रम्) स ष्टिचक्रके (न, अनुवर्तयति) अनुकूल नहीं बरतता अर्थात् अपने कर्त्तव्यका पालन नहीं करता (सः) वह (इन्द्रियारामः) इन्द्रियोंके द्वारा भोगोंमें रमण करनेवाला (अघायुः) पापी पुरुष (मोघम्) व्यर्थ ही (जीवति) जीवित है। (16)

अध्याय 3 का श्लोक 17

यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः।
आत्मन्येव च सन्तुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते।१७।

यः, तु, आत्मरतिः, एव, स्यात्, आत्मतप्तः, च, मानवः,
आत्मनि, एव, च, सन्तुष्टः, तस्य, कार्यम्, न, विद्यते।।17।।

अनुवाद : (तु) परंतु (यः) जो (मानवः) मनुष्य (एव) वास्तव में (आत्मरतिः) आत्मा के साथ अभेद रूप में रहने वाले परमात्मा में लीन रहने वाला ही रमण (च) और (आत्मतप्तः) परमात्मा में ही तप्त (च) तथा (आत्मनि एव) अन्तर्आत्मा से परमात्मा में ही (सन्तुष्टः) संतुष्ट (स्यात्) हो, (तस्य) उसके लिये (कार्यम्) कोई कर्त्तव्य (न) नहीं (विद्यते) जान पड़ता। (17)

अध्याय 3 के श्लोक 18

नैव तस्य कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चन।
न चास्य सर्वभूतेषु कश्चिदर्थव्यपाश्रयः।१८।

न, एव, तस्य, कतेन, अर्थः, न, अकतेन, इह, कश्चन,
न, च, अस्य, सर्वभूतेषु, कश्चित्, अर्थव्यपाश्रयः।।18।।

अनुवाद : (तस्य) उस महापुरुषका (इह) इस विश्वमें (न) न तो (कतेन) कर्म करनेसे (कश्चन) कोई (अर्थः) प्रयोजन रहता है और (न) न (अकतेन) कर्मोंके न करनेसे (एव) ही कोई प्रयोजन रहता है (च) तथा (सर्वभूतेषु) सम्पूर्ण प्राणियोंमें भी (अस्य) इसका (कश्चित्) किंचितमात्र भी (अर्थव्यपाश्रयः) स्वार्थका सम्बन्ध (न) नहीं रहता। क्योंकि वह स्वार्थ रहित होने से किसी को शास्त्र विधि रहित भक्ति कर्म नहीं करवाता, न ही स्वयं करता है। वह धन उपार्जन के उद्देश्य से साधना नहीं करता या करवाता। (18)

अध्याय 3 का श्लोक 19

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर।
असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पूरुषः।१९।

तस्मात्, असक्तः, सततम्, कार्यम्, कर्म, समाचर,
असक्तः, हि, आचरन्, कर्म, परम्, आप्नोति, पूरुषः।।19।।

अनुवाद : (तस्मात्) इसलिये तू (सततम्) निरन्तर (असक्तः) आसक्तिसे रहित होकर सदा (कार्यम् कर्म) शास्त्र विधि अनुसार कर्तव्यकर्मको (समाचर) भलीभाँति करता रह। (हि) क्योंकि (असक्तः) इच्छासे रहित होकर (कर्म) भक्ति कर्म (आचरन्) करता हुआ (परम् पूरुषः) काल ब्रह्म से अन्य पूर्ण परमात्मा को (आप्नोति) प्राप्त हो जाता है।(19)

विश्लेषण :- गीता अध्याय 3 के श्लोक 19 में मूल पाठ में लिखा है कि साधक शास्त्रोक्त साधना करके ''परम् आप्नोति पुरुषः'' अन्य परमात्मा को प्राप्त होता है। ''परम्'' का अर्थ अन्य गीता अनुवादकों ने ''परम्'' का अर्थ परमात्मा किया है। इन्हीं अनुवादकों ने इसी अध्याय 3 के श्लोक 42-43 में ''परम्'' का अर्थ ''पर'' किया है। ''पर'' का अर्थ ''श्रेष्ठ'' किया है। यदि हिन्दी की बात करें तो ''पर'' का अर्थ अन्य या आगे वाला (Next) होता है। जैसे दादा, फिर परदादा तथा ब्रह्म, फिर परब्रह्म यानि दूसरा ब्रह्म या अन्य ब्रह्म होता है। इन्हीं अनुवादकों ने गीता अध्याय 8 श्लोक 20 में ''परः'' का अर्थ परे किया है। अध्याय 8 के ही श्लोक 22 में ''परः'' का अर्थ ''परम'' किया है जबकि मूल पाठ से स्पष्ट है कि परः का अर्थ अन्य यानि दूसरा है, जैसे अध्याय 8 श्लोक

22 में परः का अर्थ अन्य, दूसरा सही है जो इस प्रकार है :-

पुरूषः सः परः पार्थ भक्त्या लभ्यः तु अनन्यया। यस्य अन्तः स्थानि भूतानि येन सर्वम् इदम् ततम्।।(8/22)

इस अध्याय 8 के श्लोक 22 का यथार्थ अनुवाद इस प्रकार है :- (पार्थ) हे पार्थ! (सः परः पुरूषः) वह मेरे से अन्य परमात्मा (तू) तो (अनन्या भक्तया लभ्यः) अनन्य भक्ति से प्राप्त होने योग्य है। जिस परमात्मा के आधीन सर्व प्राणी हैं और जिस सच्चिदानंद घन परमात्मा से यह सम्पूर्ण जगत परिपूर्ण है यानि जो सर्वगतम् यानि सर्वव्यापी परमात्मा है। वह गीता ज्ञान दाता से अन्य है।(8/22)

इन्हीं गीता के अनुवादकों ने गीता अध्याय 7 के श्लोक 13 में ''परम्'' का अर्थ परे किया है जो मूल पाठ व अनुवाद में इस प्रकार है :- (एभ्यः) इन तीनों गुणों से (परम्) परे (माम्) मुझ (अव्ययम्) अविनाशी को (न) नहीं (अभिजानाति) जानते तथा अध्याय 14 श्लोक 19 में भी ''परम्'' का अर्थ परे किया है। लेखक यह सिद्ध करना चाहता है कि मेरे अतिरिक्त विश्व में किसी को भी सम्पूर्ण आध्यात्मिक ज्ञान नहीं। जिस कारण से सबने अर्थों का अनर्थ करके गीता की गरिमा को गिराया है। श्री कष्ण उर्फ विष्णु को सर्व का मालिक परमात्मा बताया है जो स्पष्ट झूठ है। इसी कारण से जहाँ-जहाँ गीता में अस्पष्ट यानि सांकेतिक या संक्षिप्त में लिखा है कि पूर्ण परमात्मा गीता ज्ञान दाता से भिन्न है। वहाँ-वहाँ पर अनुवाद बिल्कुल गलत कर दिया। अर्थों का अनर्थ किया है। जिन श्लोकों में गीता ज्ञान देने वाले से अन्य पूर्ण परमात्मा का स्पष्ट वर्णन है, वहाँ अन्य अनुवादकर्ताओं ने स्पष्ट लिखना पड़ा, परंतु इनको पता नहीं वह कौन परमात्मा है?

जैसे गीता अध्याय 8 श्लोक 3, 8-10, 20, 21, 22 में, अध्याय 4 श्लोक 31-32 में, अध्याय 5 श्लोक 14-16, 19, 20, 24-26 , अध्याय 6 श्लोक 7, अध्याय 12 श्लोक 1-5, अध्याय 13 श्लोक 12-28, 30, 31, 34 में, अध्याय 18 श्लोक 46, 61, 62, 66 में गीता ज्ञान देने वाले से अन्य पूर्ण परमात्मा का वर्णन है।

❖ *उपरोक्त श्लोकों को आप इसी पुस्तक के उसी अध्याय के सारांश में पढ़ें जहाँ पर विस्तार से वर्णन है।*

उदाहरण के लिए गीता अध्याय 4 श्लोक 31 में अन्य परमात्मा का स्पष्ट वर्णन मूल पाठ में है तो अनुवादकों ने स्पष्ट लिखना पड़ा, परंतु श्लोक 32 में सांकेतिक वर्णन है। वहाँ अर्थ का अनर्थ करके गलत अनुवाद कर दिया। इसमें ''ब्रह्मणः'' शब्द का अर्थ वेद कर दिया जबकि इन्होंने ही गीता अध्याय 17 श्लोक 23 में ब्रह्मणः का अर्थ सच्चिदानंद घन ब्रह्म यानि पूर्ण ब्रह्म ठीक किया है। इसलिए अध्याय 4 श्लोक 32 में भी पूर्ण परमात्मा का वर्णन है। प्रसंग चल रहा है कि गीता अध्याय 3 के श्लोक 19 में ''परम् = पर'' का अर्थ अन्य अनुवादकों ने ''परम्'' यानि पर का अर्थ परमात्मा किया है तथा एस्कोन वालों ने ''परम्'' यानि पर का अर्थ परब्रह्म किया है। जिससे यह तो प्रमाणित होता है कि अनुवादक मानते हैं कि इस अध्याय 3 के श्लोक 19 में गीता ज्ञान दाता से अन्य (दूसरे) परमात्मा का वर्णन है। परब्रह्म का भी अर्थ अन्य यानि दूसरा ब्रह्म यानि अन्य परमात्मा बनता है, अनुवाद में गोलमाल करना चाहा है। परंतु सच्चाई छिपती नहीं है। मूल पाठ में ''परम् पुरूषः आप्नोति'' से स्पष्ट है कि गीता ज्ञान दाता से पर पुरुष यानि दूसरे परमात्मा को (आप्नोति) प्राप्त होता है। यह ठीक है। इस अध्याय 3 श्लोक 35 में ''पर धर्म'' का अर्थ दूसरे का धर्म इन्हीं अनुवादकों ने किया है। इसलिए यहाँ भी ''परम्'' का अर्थ दूसरा पुरुष यानि परमात्मा करना उचित है।

अध्याय 3 का श्लोक 20

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः।
लोकसङ्ग्रहमेवापि सम्पश्यन्कर्तुमर्हसि।२०।

कर्मणा, एव, हि, संसिद्धिम्, आस्थिताः, जनकादयः,
लोकसंग्रहम्, एव, अपि, सम्पश्यन्, कर्तुम्, अर्हसि।।20।।

अनुवाद : (जनकादयः) जनकादि भी (कर्मणा) आसक्ति रहित कर्मद्वारा (एव) ही (संसिद्धिम्) सिद्धिको (आस्थिताः) प्राप्त हुए थे। (हि) इसलिये (लोकसंग्रहम्) लोकसंग्रहको (सम्पश्यन्) देखते हुए (अपि) भी तू (कर्तुम्) सांसारिक कार्य करते हुए भी शास्त्र विधि अनुसार कर्म करनेको (एव) ही (अर्हसि) योग्य है अर्थात् तुझे कर्म करना ही उचित है। (20)

अध्याय 3 का श्लोक 21

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते।२१।

यत्, यत् आचरति, श्रेष्ठः, तत्, तत्, एव, इतरः, जनः,
सः, यत्, प्रमाणम्, कुरुते, लोकः, तत्, अनुवर्तते।।21।।

अनुवाद : (श्रेष्ठः) श्रेष्ठ पुरुष अर्थात् शास्त्र विधि अनुसार साधना करने वाले साधक (यत्,यत्) जो-जो (आचरति) आचरण करता है (इतरः) अन्य (जनः) पुरुष भी (तत्,तत्) वैसा-वैसा (एव) ही आचरण करते हैं (सः) वह (यत्) जो कुछ (प्रमाणम्) प्रमाण (कुरुते) कर देता है (लोकः) समस्त मनुष्यसमुदाय (तत्) उसीके (अनुवर्तते) अनुसार बरतने लग जाता है। (21)

अध्याय 3 का श्लोक 22

न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किञ्चन।
नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि।२२।

न, मे, पार्थ, अस्ति, कर्तव्यम्, त्रिषु, लोकेषु, कि चन,
न, अनवाप्तम्, अवाप्तव्यम्, वर्ते, एव, च, कर्मणि।।22।।

अनुवाद : (पार्थ) हे अर्जुन! (मे) मुझे इन (त्रिषु) तीनों (लोकेषु) लोकोंमे (न) न तो (कि चन) कुछ (कर्तव्यम्) कर्तव्य (अस्ति) है (च) और (न) न कोई भी (अवाप्तव्यम्) प्राप्त करने योग्य वस्तु (अनवाप्तम्) अप्राप्त है तो भी मैं (कर्मणि) कर्ममें (एव) ही (वर्ते) बरतता हूँ। (22)

अध्याय 3 का श्लोक 23

यदि ह्यहं न वर्तेयं जातु कर्मण्यतन्द्रितः।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः।२३।

यदि, हि, अहम्, न, वर्तेयम्, जातु, कर्मणि, अतन्द्रितः,
मम, वर्त्म, अनुवर्तन्ते, मनुष्याः, पार्थ, सर्वशः।।23।।

अनुवाद : (हि) क्योंकि (पार्थ) हे पार्थ! (यदि) यदि (जातु) कदाचित् (अहम्) मैं (अतन्द्रितः) सावधान होकर (कर्मणि) कर्मोंमें (न) न (वर्तेयम्) बरतूँ तो बड़ी हानि हो जाए क्योंकि (मनुष्याः) मनुष्य (सर्वशः) सब प्रकारसे (मम) मेरे ही (वर्त्म) मार्गका (अनुवर्तन्ते) अनुसरण करते हैं। (23)

अध्याय 3 का श्लोक 24

उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम्।
सङ्करस्य च कर्ता स्यामुपहन्यामिमाः प्रजाः। २४।

उत्सीदेयुः, इमे, लोकाः, न, कुर्याम्, कर्म, चेत्, अहम्,
संकरस्य, च, कर्ता, स्याम्, उपहन्याम्, इमाः, प्रजाः।।24।।

अनुवाद : (चेत्) यदि (अहम्) मैं (कर्म) कर्म (न) न (कुर्याम्) करूँ तो (इमे) ये (लोकाः) सब मनुष्य (उत्सीदेयुः) नष्ट-भ्रष्ट हो जाएँ (च) और मैं (संकरस्य) संकरताका (कर्ता) करनेवाला (स्याम्) होऊँ तथा (इमाः) इस (प्रजाः) समस्त प्रजाको (उपहन्याम्) नष्ट करनेवाला बनूँ। (24)

अध्याय 3 का श्लोक 25

सक्ताः कर्मण्यविद्वांसो यथा कुर्वन्ति भारत।
कुर्याद्विद्वांस्तथासक्तश्चिकीर्षुर्लोकसङ्ग्रहम्। २५।

सक्ताः, कर्मणि, अविद्वांसः, यथा, कुर्वन्ति, भारत,
कुर्यात्, विद्वान्, तथा, असक्तः, चिकीर्षुः, लोकसङ्ग्रहम्।।25।।

अनुवाद : (भारत) हे भारत! (कर्मणि) कर्ममें (सक्ताः) आसक्त हुए (अविद्वांसः) अज्ञानीजन (यथा) जिस प्रकार शास्त्रअनुकूल कर्म (कुर्वन्ति) करते हैं (असक्तः) आसक्तिरहित (विद्वान्) विद्वान् भी (लोकसङ्ग्रहम्) शिष्य बनाने की इच्छा से जनता इक्कठी (चिकीर्षुः) करना चाहता हुआ (तथा) उपरोक्त शास्त्र विधि अनुसार कर्म (कुर्यात्) करे। (25)

भावार्थ :- भगवान कह रहे है कि यदि अशिक्षित व्यक्ति शास्त्रविधि अनुसार साधना करते हैं तो शिक्षित व्यक्ति को भी उसका अनुसरण करना चाहिए। इसी में विश्व कल्याण है।

अध्याय 3 का श्लोक 26

न बुद्धिभेदं जनयेदज्ञानां कर्मसङ्गिनाम्।
जोषयेत्सर्वकर्माणि विद्वान्युक्तः समाचरन्। २६।

न, बुद्धिभेदम्, जनयेत्, अज्ञानाम्, कर्मसंगिनाम्,
जोषयेत्, सर्वकर्माणि, विद्वान्, युक्तः, समाचरन्।।26।।

अनुवाद : (कर्मसंगिनाम्) शास्त्र अनुकूल साधकों द्वारा दिए ज्ञान से शास्त्र विधि अनुसार भक्ति कर्मों पर अडिग (अज्ञानाम्) अशिक्षितों अर्थात् अज्ञानियोंकी (बुद्धिभेदम्) साधनाओं शास्त्र विरुद्ध साधना से हानि तथा शास्त्र विधि अनुसार साधना से लाभ होता है, इसे प्रत्यक्ष देखकर उनकी बुद्धि में अन्तर (न, जनयेत्) उत्पन्न न करे अर्थात् उनको विचलित न करें कि तुम अशिक्षित हो तुम क्या जानों सत्य साधना। अपने मान वश उनको भ्रमित न करके अन्य शास्त्र विरूद्ध (युक्तः) साधना में लीन (विद्वान्) ज्ञानी पुरुषको चाहिए कि वह (सर्वकर्माणि) भक्ति कर्मों को (समाचरन्) सुचारू रूप से करता हुआ उनसे भी वैसे ही (जोषयेत्) करवावे अर्थात् उनको भ्रमित न करके प्रोत्साहन करे। (26)

अध्याय 3 का श्लोक 27

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः।
अहङ्कारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते। २७।

प्रकतेः, क्रियमाणानि, गुणैः, कर्माणि, सर्वशः,
अहंकारविमूढात्मा, कर्ता, अहम्, इति, मन्यते।।27।।

अनुवाद : (कर्माणि) सम्पूर्ण कर्म (सर्वशः) सब प्रकारसे (प्रकतेः) प्रकति दुर्गा से उत्पन्न (गुणैः) रजगुण ब्रह्मा, सतगुण विष्णु, तमगुण शिव जी अर्थात् तीनों गुणोंद्वारा (क्रियमाणानि) संस्कार वश किये जाते हैं तो भी (अहंकार विमूढात्मा) अहंकार युक्त शिक्षित होते हुए तत्वज्ञान हीन अज्ञानी (अहम्,कर्ता) 'मैं कर्त्ता हूँ' (इति) ऐसा (मन्यते) मानता है। (27)

अध्याय 3 का श्लोक 28

तत्त्ववित्तु महाबाहो गुणकर्मविभागयोः।
गुणा गुणेषु वर्तन्त इति मत्वा न सज्जते।२८।

तत्त्ववित्, तु, महाबाहो, गुणकर्मविभागयोः,
गुणाः, गुणेषु, वर्तन्ते, इति, मत्वा, न, सज्जते।।28।।

अनुवाद : (तु) परंतु (महाबाहो) हे महाबाहो! (गुणकर्मविभागयोः) गुणविभाग और कर्मविभागके (तत्त्ववित्) तत्वको जाननेवाला ज्ञानी अर्थात् तत्वदर्शी (गुणाः) सम्पूर्ण गुण ही (गुणेषु) गुणोंमें (वर्तन्ते) बरत रहे हैं अर्थात् जितनी शक्ति तीनों गुणों रजगुण ब्रह्मा जी, सतगुण विष्णु जी तमगुण शिव जी में है, उससे पूर्ण परिचित व्यक्ति की आस्था इन में इतनी रह जाती है। इसी का प्रमाण गीता अध्याय 2 श्लोक 45-46 में भी है (इति) ऐसा (मत्वा) समझकर उनमें (न,सज्जते) आसक्त नहीं होता अर्थात् अहंकार त्यागकर तुरन्त शास्त्रअनुकूल साधना करने लग जाता है। (28)

अध्याय 3 का श्लोक 29

प्रकृतेर्गुणसम्मूढाः सज्जन्ते गुणकर्मसु।
तानकृत्स्नविदो मन्दान्कृत्स्नविन्न विचालयेत्।२९।

प्रकतेः, गुणसम्मूढाः, सज्जन्ते, गुणकर्मसु,
तान्, अकत्स्नविदः, मन्दान्, कत्स्नवित्, न, विचालयेत्।।29।।

अनुवाद : (प्रकतेः) प्रकति से उत्पन्न प्रकति के पुत्र तीनों (गुणसम्मूढाः) गुणों अर्थात् रजगुण ब्रह्मा जी, सतगुण विष्णु जी, तमगुण शिव जी से अत्यन्त मोहित हुए मुर्ख मनुष्य (गुणकर्मसु) गुणों अर्थात् तीनों प्रभुओं की साधना के कर्मोमें (सज्जन्ते) आसक्त रहते हैं (तान्) उन (अकत्स्नविदः) पूर्णतया न समझनेवाले अर्थात् शास्त्र विधि त्याग कर साधना करने वाले जो स्वभाव वश चल रहे हैं उन (मन्दान्) मन्दबुद्धि अशिक्षितों को (कत्स्त्रवित्) सत्यभक्ति जाननेवाला ज्ञानी अर्थात् शास्त्र अनुसार साधना करने वाले (न, विचालयेत्) मन्द बुद्धि अज्ञानियों को जो स्वभाववश तीनों गुणों अर्थात् श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी तथा श्री शिव जी तक की साधना पर अडिग हैं, उनकी गलत साधना से विचलित नहीं कर सकते अर्थात् बहुत कठिन है, वे तो नष्ट ही हैं। इसी का प्रमाण गीता अध्याय 7 श्लोक 12 से 15 तक में भी है। (29)

अध्याय 3 का श्लोक 30

मयि सर्वाणि कर्माणि सन्न्यस्याध्यात्मचेतसा।
निराशीर्निर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः।३०।

मयि, सर्वाणि, कर्माणि, सन्न्यस्य, अध्यात्मचेतसा,
निराशीः, निर्ममः, भूत्वा, युध्यस्व, विगतज्वरः।।30।।

अनुवाद : (अध्यात्मचेतसा) पूर्ण परमात्मामें लगे हुए चितद्वारा (सर्वाणि) सम्पूर्ण (कर्माणि) कर्मोंको (मयि) मुझमें (सन्न्यस्य) त्याग करके (निराशीः) आशारहित (निर्ममः) ममतारहित और (विगतज्वरः) संतापरहित (भूत्वा) होकर (युध्यस्व) युद्ध कर। इसी का प्रमाण गीता अध्याय 18 श्लोक 66 में है कि मेरी सर्व धार्मिक पूजाओं को मुझमें छोड़ कर सर्व शक्तिमान परमेश्वर की शरण में जा। (30)

अध्याय 3 का श्लोक 31

ये मे मतमिदं नित्यमनुतिष्ठन्ति मानवाः।
श्रद्धावन्तोऽनसूयन्तो मुच्यन्ते तेऽपि कर्मभिः। ३१।

ये, मे, मतम्, इदम्, नित्यम्, अनुतिष्ठन्ति, मानवाः,
श्रद्धावन्तः, अनसूयन्तः, मुच्यन्ते, ते, अपि, कर्मभिः।।31।।

अनुवाद : (ये) जो कोई (मानवाः) मनुष्य (अनसूयन्तः) दोषदष्टिसे रहित और (श्रद्धावन्तः) श्रद्धायुक्त होकर (मे) मेरे (इदम्) इस (मतम्) मत अर्थात् सिद्धांत का (नित्यम्) सदा (अनुतिष्ठन्ति) अनुसरण करते हैं (ते) वे (अपि) भी (कर्मभिः) शास्त्र विधि त्याग कर अर्थात् सिद्धान्त छोड़ कर किए जाने वाले दोष युक्त कर्मोसे (मुच्यन्ते) बच जाते हैं। (31)

अध्याय 3 का श्लोक 32

ये त्वेतदभ्यसूयन्तो नानुतिष्ठन्ति मे मतम्।
सर्वज्ञानविमूढांस्तान्विद्धि नष्टानचेतसः। ३२।

ये, तु, एतत्, अभ्यसूयन्तः, न, अनुतिष्ठन्ति, मे, मतम्,
सर्वज्ञानविमूढान्, तान्, विद्धि, नष्टान्, अचेतसः।।32।।

अनुवाद : (तु) परंतु (ये) जो (अभ्यसूयन्तः) दोषारोपण करते हुए (मे) मेरे (एतत्) इस (मतम्) मत अर्थात् सिद्धान्त के (न, अनुतिष्ठन्ति) अनुसार नहीं चलते हैं (तान्) उन (अचेतसः) मूर्खोंको तू (सर्वज्ञानविमूढान्) सम्पूर्ण ज्ञानोंमें मोहित और (नष्टान्) नष्ट हुए ही (विद्धि) जान।(32)

विशेष :- गीता अध्याय 3 श्लोक 25 से 29 में अपने द्वारा बतायें गए मत अर्थात् सिद्धान्त का विस्तत वर्णन किया है। 3 श्लोक 25 से 29 में विचार व्यक्त किए हैं कि शिक्षित व्यक्ति यदि शास्त्र विधि त्याग कर साधना कर रहे हैं और उन्हें कोई अशिक्षित शास्त्र अनुसार साधना करता हुआ मिले तो उसे विचलित न करें अपितु स्वयं भी उनकी साधना को स्वीकार करे। पूर्ण सन्त से उपदेश प्राप्त करके अपना कल्याण कराऐं। यही प्रमाण गीता अध्याय 13 श्लोक 11 में भी है।

अध्याय 3 का श्लोक 33

सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि।
प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति। ३३।

सदशम्, चेष्टते, स्वस्याः, प्रकतेः, ज्ञानवान्, अपि,
प्रकतिम्, यान्ति, भूतानि, निग्रहः, किम्, करिष्यति।।33।।

अनुवाद : (भूतानि) सभी प्राणी (प्रकतिम्) प्रकति अर्थात् स्वभाव को (यान्ति) प्राप्त होते हैं (ज्ञानवान्) ज्ञानवान् (अपि) भी (स्वस्याः) अपने निष्कर्ष द्वारा निकाले भक्ति मार्ग के आधार से (प्रकतेः) स्वभावके (सदशम्) अनुसार (चेष्टते) चेष्टा करता है (निग्रहः) हठ (किम्) क्या (करिष्यति) करेगा? (33)

विशेष :- स्वभाव वश सर्व प्राणी धार्मिक कर्म करते हैं। कहने से भी नहीं मानते। वे राक्षस स्वभाव के व्यक्ति शास्त्र विधि रहित अर्थात् मेरे मत के विपरीत मनमाना आचरण करते हैं :- प्रमाण गीता अध्याय 16 व 17 में।

विचार करें :-- अध्याय 3 के श्लोक 33, 34, 35 का भाव है कि सर्व प्राणी प्रकति(माया) के वश ही हैं। स्वभाववश कर्म करते हैं। ऐसे ही ज्ञानी भी अपनी आदतवश कर्म करते हैं, फिर हठ क्या करेगा।

सार :- शिक्षित व्यक्ति जो तत्वज्ञान हीन हैं अपनी गलत पूजा को नहीं त्यागते चाहे कितना आग्रह करें, चाहे सद्ग्रन्थों के प्रमाण भी दिखा दिए जाऐं वे नहीं मानते। कुछ ज्ञानी-विद्वान पुरुष मान वश पैसा प्राप्ति व अधिक शिष्य बनाने की इच्छा से सच्चाई का अनुसरण नहीं करते। उन तत्वज्ञान हीन सन्तों के अशिक्षित शिष्य व शिक्षित शिष्य प्रमाण देखकर भी उन अज्ञानी सन्तों को नहीं त्यागते सत्य साधना ग्रहण नहीं करते वे मूढ़ हैं। दोनों (ज्ञानी व अज्ञानी) स्वभाव वश चल रहे हैं। इसलिए भक्ति मार्ग गलत दिशा पकड़ चुका है तथा इन दोनों को समझाना व्यर्थ है।

गरीब, चातुर प्राणी चोर हैं, मूढ मुग्ध हैं ठोठ। संतों के नहीं काम के, इनकूं दे गल जोट।।

अध्याय 3 का श्लोक 34

इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ।
तयोर्न वशमागच्छेत्तौ ह्यस्य परिपन्थिनौ। ३४।

इन्द्रियस्य, इन्द्रियस्य, अर्थे, रागद्वेषौ, व्यवस्थितौ,
तयोः, न, वशम्, आगच्छेत्, तौ, हि, अस्य, परिपन्थिनौ।।34।।

अनुवाद : (इन्द्रियस्य, इन्द्रियस्य) इन्द्रिय-इन्द्रियके (अर्थे) अर्थमें अर्थात् प्रत्येक इन्द्रियके विषयमें (रागद्वेषौ) राग और द्वेष (व्यवस्थितौ) छिपे हुए स्थित हैं। (तयोः) उन दोनोंके (वशम्) वशमें (न) नहीं (आगच्छेत्) होना चाहिये (हि) क्योंकि (तौ) वे दोनों ही (अस्य) इसके (परिपन्थिनौ) विघ्न करनेवाले महान् शत्रु हैं। (34)

अध्याय 3 का श्लोक 35

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः। ३५।

श्रेयान्, स्वधर्मः, विगुणः, परधर्मात्, स्वनुष्ठितात्,
स्वधर्मे, निधनम्, श्रेयः, परधर्मः, भयावहः।।35।।

अनुवाद : (विगुणः) गुणरहित अर्थात् शास्त्र विधि त्याग कर (स्वनुष्ठितात्) स्वयं मनमाना अच्छी प्रकार आचरणमें लाये हुए (परधर्मात्) दूसरोंकी धार्मिक पूजासे (स्वधर्मः) अपनी शास्त्र विधि अनुसार पूजा (श्रेयान्) अति उत्तम है जो शास्त्रानुकूल है (स्वधर्मे) अपनी पूजा में तो (निधनम्) मरना भी (श्रेयः) कल्याणकारक है और (परधर्मः) दूसरेकी पूजा (भयावहः) भयको देनेवाली है।(35)

यही प्रमाण श्री विष्णु पुराण ततीश अंश, अध्याय 18 श्लोक 1-12 पष्ठ 215 से 220 तक है।

अध्याय 3 का श्लोक 36 (अर्जुन उवाच)

अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः।
अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः। ३६।

अथ, केन, प्रयुक्तः, अयम्, पापम्, चरति, पूरुषः,
अनिच्छन्, अपि, वार्ष्णेय, बलात्, इव, नियोजितः।।36।।

अनुवाद : (वार्ष्णेय) हे कृष्ण! तो (अथ) फिर (अयम्) यह (पूरुषः) मनुष्य स्वयम् (अनिच्छन्) न चाहता हुआ (अपि) भी (बलात्) बलात् (नियोजितः) लगाये हुएकी (इव) भाँति (केन) किससे (प्रयुक्तः) प्रेरित होकर (पापम्) पापका (चरति) आचरण करता है?(36)

अध्याय 3 का श्लोक 37 (भगवान उवाच)

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम्।३७।

कामः, एषः, क्रोधः, एषः, रजोगुणसमुद्भवः,
महाशनः, महापाप्मा, विद्धि, एनम्, इह, वैरिणम्।।37।।

अनुवाद : (रजोगुणसमुद्भवः) रजोगुणसे उत्पन्न हुआ (एष) यह (कामः) विषय वासना अर्थात् सैक्स और (एष) यह (क्रोधः) क्रोध (महाशनः) जीव को अत्यधिक खाने वाला अर्थात् नष्ट करने वाला (महापाप्मा) बड़ा पापी है (एनम्) इस उपरोक्त पाप को ही तू (इह) इस विषयमें (वैरिणम्) वैरी (विद्धि) जान। (37)

अध्याय 3 का श्लोक 38

धूमेनाव्रियते वह्निर्यथादर्शो मलेन च।
यथोल्बेनावृतो गर्भस्तथा तेनेदमावृतम्।३८।

धूमेन, आव्रियते, वह्निः, यथा, आदर्शः, मलेन, च,
यथा, उल्बेन, आवतः, गर्भः, तथा, तेन, इदम्, आवतम्।।38।।

अनुवाद : (यथा) जिस प्रकार (धूमेन) धुएँसे (वह्निः) अग्नि (च) और (मलेन) मैलसे (आदर्शः) दर्पण (आव्रियते) ढका जाता है तथा (यथा) जिस प्रकार (उल्बेन) जेरसे (गर्भः) गर्भ (आवतः) ढका रहता है (तथा) वैसे ही (तेन) उपरोक्त विकारों द्वारा (इदम्) यह ज्ञान (आवतम्) ढका रहता है। (38)

अध्याय 3 का श्लोक 39

आवृतं ज्ञानमेतेन ज्ञानिनो नित्यवैरिणा।
कामरूपेण कौन्तेय दुष्पूरेणानलेन च।३९।

आवतम्, ज्ञानम्, एतेन, ज्ञानिनः, नित्यवैरिणा,
कामरूपेण, कौन्तेय, दुष्पूरेण, अनलेन, च।।39।।

अनुवाद : (च) और (कौन्तेय) हे कुन्ति पुत्र अर्जुन! (एतेन) इस (अनलेन) अग्नि के समान कभी (दुष्पूरेण) न पूर्ण होनेवाले (कामरूपेण) कामरूप विषय वासना अर्थात् सैक्स रूपी (ज्ञानिनः) ज्ञानियोंके (नित्यवैरिणा) नित्य वैरीके द्वारा मनुष्यका (ज्ञानम्) ज्ञान (आवतम्) ढका हुआ है। (39)

अध्याय 3 का श्लोक 40

इन्द्रियाणि मनो बुद्धिरस्याधिष्ठानमुच्यते।
एतैर्विमोहयत्येष ज्ञानमावृत्य देहिनम्।४०।

इन्द्रियाणि, मनः, बुद्धिः, अस्य, अधिष्ठानम्, उच्यते,
एतैः, विमोहयति, एषः, ज्ञानम्, आवत्य, देहिनम्।।40।।

अनुवाद : (इन्द्रियाणि) इन्द्रियाँ (मनः) मन और (बुद्धिः) बुद्धि ये सब (अस्य) इस कामदेव अर्थात् सैक्स का (अधिष्ठानम्) वासस्थान (उच्यते) कहे जाते हैं। (एषः) यह काम विषय वासना की इच्छा (एतैः) इन मन, बुद्धि और इन्द्रियोंके द्वारा ही (ज्ञानम्) ज्ञानको (आवत्य) आच्छादित करके (देहिनम्) जीवात्माको (विमोहयति) मोहित करता है। (40)

अध्याय 3 का श्लोक 41

तस्मात्त्वमिन्द्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ।
पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञाननाशनम्।४१।

तस्मात्, त्वम्, इन्द्रियाणि, आदौ, नियम्य, भरतर्षभ,
पाप्मानम्, प्रजहि, हि, एनम्, ज्ञानविज्ञाननाशनम्।।41।।

अनुवाद : (तस्मात्) इसलिए (भरतर्षभ) भरतर्षभ अर्जुन! (त्वम्) तू (आदौ) पहले (इन्द्रियाणि) इन्द्रियों को (नियम्य) वश में करके (एनम्) इस (ज्ञान-विज्ञान-नाशनम्) ज्ञान और विज्ञान को नष्ट करने वाले (पाप्मानम्) महापापी काम को (ही) अवश्य ही (प्रजही)मार। (41)

अध्याय 3 का श्लोक 42

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः।४२।

इन्द्रियाणि, पराणि, आहुः, इन्द्रियेभ्यः, परम्, मनः,
मनसः, तु, परा, बुद्धिः, यः, बुद्धेः, परतः, तु, सः।।42।।

अनुवाद : (इन्द्रियाणि) इन्द्रियोंको स्थूल शरीरसे (पराणि) पर यानी श्रेष्ठ, बलवान् और सूक्ष्म (आहुः) कहते हैं, (इन्द्रियेभ्यः) इन इन्द्रियोंसे (परम्) अधिक (मनः) मन है, (मनसः) मनसे (तु) तो (परा) उत्तम (बुद्धिः) बुद्धि है (तु) और (यः) जो (बुद्धेः) बुद्धिसे भी (परतः) अत्यन्त शक्तिशाली है, (सः) वह परमात्मा सहित आत्मा है। (42)

अध्याय 3 का श्लोक 43

एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना।
जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम्।४३।

एवम्, बुद्धेः, परम्, बुद्ध्वा, संस्तभ्य, आत्मानम्, आत्मना,
जहि, शत्रुम्, महाबाहो, कामरूपम्, दुरासदम्।।43।।

अनुवादः (एवम्) इस प्रकार (बुद्धेः) बुद्धिसे (परम्) अत्यन्त श्रेष्ठ (आत्मानम्) परमात्मा को (बुद्ध्वा) जानकर और (आत्मना) अपने आप को स्वअभ्यास द्वारा (संस्तभ्य) संयमी (महाबाहो) हे महाबाहो! अर्जुन तू इस (कामरूपम्) कामरूप अर्थात् भोग विलास रूप (दुरासदम्) दुर्जय (शत्रुम्) शत्रुको (जहि) मार डाल। (43)

(इति अध्याय तीसरा)

❑❑❑

चौथा अध्याय

।।दिव्य सारांश।।

गीता जी के अध्याय 4 के श्लोक 1 से 3 में गीता ज्ञान दाता ने कहा कि मैंने इस अविनाशी योग को अर्थात् यह गीता वाला अध्यात्मिक ज्ञान को सूर्य देव से कहा था। सूर्य ने अपने पुत्र मनु से कहा तथा मनु ने अपने पुत्र इक्षवाकु से कहा। इस प्रकार यह परम्परा कुछ समय तक चली वर्तमान में यह श्रेष्ठ ज्ञान बहुत समय से लगभग लुप्त हो गया था। तू मेरा प्रिय मित्र है। इसलिए मैंने वही ज्ञान तुझे कहा है। यह रहस्यमय अर्थात् गुप्त रखने योग्य है।

विचार करें : ज्ञान को गुप्त रखने योग्य क्यों कहा? क्योंकि यदि आम जीव को काल के जाल का पता लग जाए तो काल लोक खाली हो जाएगा।

विशेष :- यहाँ सूर्य शब्द इस आग के गोले के लिए नहीं है। एक देवता है जिसका नाम सूर्य है, जैसे पथ्वी पर भी किसी का नाम सूर्यकान्त, सूरज आदि होता है। अध्याय 4 के श्लोक 4 में अर्जुन ने पूछा कि आपका जन्म तो अब का है परंतु सूर्य देव का जन्म तो बहुत पहले का है। यह कैसे हो सकता है कि आपने ही यह ज्ञान कल्प की आदि में उत्पन्न सूर्य को दिया?

।। गीता ज्ञान बोलने वाला भी जन्मता-मरता है ।।

अध्याय 4 के श्लोक 5 से 9 तक गीता ज्ञान दाता ने कहा है कि अर्जुन तेरे तथा मेरे बहुत जन्म हो चुके हैं। इन सबको तू नहीं जानता, मैं जानता हूँ। जब-जब पथ्वी पर धर्म की हानि होती है और अधर्म की वद्धि होती है, तब-तब मैं मनुष्य की तरह जन्म न लेने वाला अविनाशी आत्मा होते हुए तथा सर्व (इक्कीस ब्रह्मण्ड के) प्राणियों का स्वामी होते हुए भी अपनी प्रकति (अष्टांगी दुर्गा) को आधीन करके माया के गोविन्द श्री ब्रह्मा - श्री विष्णु - श्री शिव को उत्पन्न करता हूँ। उन्हीं में से अंश अवतार रूप में श्री कष्ण-श्री राम, श्री परसुराम आदि (सजामि) रचता हूँ तथा उनमें गुप्त रूप से प्रकट होता हूँ।

{श्री विष्णु पुराण (गीता प्रैस गोरखपुर से प्रकाशित) के चतुर्थ अंश के अध्याय 2 श्लोक 21-26 में पष्ठ 168 पर प्रमाण है कि एक समय देवताओं तथा राक्षसों का युद्ध हुआ। देवता हार गए। पुनः साधना करने लगे तो काल ब्रह्म अपने पुत्र विष्णु जी के रूप में प्रकट होकर बोला कि जो तुम्हारा अभिष्ट है, वह मैंने जान लिया है। तुम लोग राजा पुरंज्य को युद्ध के लिए तैयार करो। मैं उसके शरीर में प्रविष्ट होकर राक्षसों को मार डालूंगा। ऐसा ही किया।

❖ श्री विष्णु पुराण के चतुर्थ अंश के अध्याय 3 श्लोक 4-6 में पष्ठ 173 पर एक अन्य प्रमाण भी है :- एक समय नागवंशियों के बहुमूल्य हीरे, खजाने आदि-आदि गंधर्वों ने लूट लिए तथा उनके राज्य पर भी कब्जा कर लिया। नागाओं की विनती स्वीकार करके काल ब्रह्म अपने पुत्र श्री विष्णु जी के रूप में प्रकट होकर बोला कि आप मानधाता राजा के पुत्र पुरूकुत्स को युद्ध के लिए तैयार करो। मैं उस पवित्र राजा के शरीर में कुछ समय के लिए प्रविष्ट होकर दुष्ट गंधर्वों को नष्ट कर दूँगा। ऐसा ही हुआ। इसी प्रकार श्री कष्ण जी के शरीर में प्रकट होकर गीता का ज्ञान काल ब्रह्म ने बोला।}

गीता अध्याय 4 श्लोक 7 :- गीता ज्ञान दाता ने कहा है कि जब-2 धर्म की हानि तथा अधर्म

की वंद्धि होती है, तब-2 मैं अपने अंश अवतार (संजामि) रचता हूँ और वह अवतार साधुओं की रक्षा तथा असाधुओं का संहार करने के लिए प्रकट हुआ करते हैं। पवित्र गीता बोलने वाला काल ब्रह्म कह रहा है कि अर्जुन मेरी भी जन्म-मंत्यु होती है। इसे तू नहीं जानता, मैं जानता हूँ। यही प्रमाण गीता अध्याय 10 श्लोक 2 में है जिस में कहा है कि मेरी उत्पत्ति को मेरे से उत्पन्न ऋषि देवता आदि नहीं जानते। अध्याय 4 श्लोक 9 में स्पष्ट किया है कि मेरे जन्म अलौकिक हैं। यह ब्रह्म (काल) एक ब्रह्मलोक रचकर उसमें तीन रूपों (महाब्रह्मा, महाविष्णु, महाशिव) में रहता है। इसकी जन्म-मंत्यु होती है। यह महाशिव रूप में तब मरता है जब इसी का पुत्र त्रिलोकीय शिव 70000 (सत्तर हजार) बार मंत्यु को प्राप्त हो जाता है। इसलिए अपने जन्म व मंत्यु को अलौकिक कहा है। अधिक जानकारी के लिए कंप्या पढ़ें प्रलय की जानकारी (इसी पुस्तक के पंष्ठ नं 341 से 346 पर।)

हे अर्जुन! मेरे जन्म व कर्म अद्धभुत हैं जो कोई इस प्रकार तत्व से नहीं जान लेता है वह शरीर त्याग कर मेरे जाल में फंसा रह जाता है। (उसको कुछ समय स्वर्ग-महास्वर्ग में रख कर फिर जन्म-मरण के चक्र में डाल देता है।) जो मुझ काल को तत्व से जान लेता है उस पूर्णज्ञानी का पुर्नजन्म नहीं होता।

विशेष : - गीता जी के अध्याय 2 के श्लोक 12 में तथा इसी अध्याय 4 के श्लोक 5 तथा 9 में प्रत्यक्ष प्रमाण है कि गीता ज्ञान दाता तथा इसके पुजारी का जन्म-मरण बना रहेगा, फिर अध्याय 9 के श्लोक 7 में कहा है कि कल्प के अंत में सर्व प्राणी तथा स्वर्ग-नरक व पंथ्वी लोक तक नष्ट हो जाते हैं। फिर कल्प के प्रारम्भ में मैं रचूंगा अर्थात् अस्थाई जन्म-मरण समाप्त हुआ, स्थाई नहीं। काल ब्रह्म अच्छी आत्माओं को रचता है अर्थात् पैदा करता है। फिर उनमें स्वयं प्रवेश करके गुप्त रूप से अपना उल्लू सीधा कर लेता है तथा अपने आपको आकार में प्रकट नहीं करता। इसका अटल अविनाशी नियम है कि वह अपने वास्तविक रूप में कभी प्रकट नहीं होता। (प्रमाण गीता जी के अध्याय 7 के श्लोक 24, 25 में।)

तीन लोक के सर्व प्राणी इस (काल) के अधीन हैं। यह इनका मालिक है। इसलिए कह रहा है कि मैं धर्म की हानि होने पर पाप कर्मी प्राणियों को मारने के लिए [राजा पुरंज्य में प्रवेश करके काल ब्रह्म ने राक्षसों को मार डाला जो देवताओं को सताया करते। राजा पुरूकुत्स के शरीर में प्रविष्ट होकर गंधर्वों को मार डाला जो नागवंशियों को सताया करते थे। परसुराम जी के शरीर में प्रवेश करके क्षत्रियों का सफाया कर दिया। फिर दुर्वासा जी में प्रवेश करके शॉप के द्वारा 56 करोड़ यादवों समेत भगवान कंष्ण व कंष्ण जी के परिवार समेत नष्ट कर दिया यानि खा गया। कपिल मुनि में प्रवेश करके साठ हजार राजा सगड़ के पुत्रों का सफाया कर दिया। इसी प्रकार राजा मानधाता की बहत्तर क्षौहिणी सेना को चुणक ऋषि में प्रवेश करके दुःखदाई तत्वों को नष्ट किया तथा धर्म की रक्षा की तथा श्री कंष्ण में प्रवेश करके महाभारत जैसा भयंकर युद्ध करवा दिया तथा स्वयं गुप्त रहा।] अपने अंश प्रकट करता हूँ। मेरे जन्म व कर्म अद्धभुत हैं। जो व्यक्ति मुझे इस प्रकार जान लेता है, वह ब्रह्मा, विष्णु, महेश (तीनों गुणों) को छोड़कर मेरा ही स्मरण करता है और मेरे को ही प्राप्त होता है अर्थात् मेरा ही आहार होता है। (काल अपने भक्त को महास्वर्ग यानि ब्रह्मलोक में भेजकर कुछ लम्बे समय तक जन्म मरण से बचा देता है। फिर चौरासी लाख प्रकार की जूनियों में डाल देता है तथा जो इसके मायाजाल को तत्व से जान लेता है उसका पुनर् जन्म नहीं होता है क्योंकि वे भक्त पूर्ण सन्त अर्थात् तत्वदर्शी सन्त की शरण में जा कर पूर्ण परमात्मा की भक्ति करके पूर्ण मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं।)

।। पूर्ण ज्ञानी काल जाल में नहीं रहते।।

अध्याय 4 के श्लोक 10 से 15 में काल ब्रह्म ने कहा है कि जिनके राग द्वेष मर गए हैं जिसने मुझे यहाँ 21 ब्रह्मण्ड के कर्मों का कर्त्ता तथा मालिक हूँ, ऐसे तत्व से जान लिया है। वह मतावलम्बी हो चुके हैं। [नोट : वे तीनों मंत्रों के उपासक कबीर हंस हैं जो सत्यनाम व सारनाम सुमरण करके काल के यथार्थ स्वरूप को देख कर उसके सिर पर पैर रख कर पार (सतलोक में चले जाते हैं) हो जाते हैं।] जैसे गीता अध्याय 7 श्लोक 17 में कहा है कि ज्ञानी मुझे अच्छे लगते हैं तथा मैं ज्ञानी को प्रिय हूँ। क्योंकि वे तीनों गुणों (रजगुण ब्रह्मा जी, सतगुण विष्णु जी, तमगुण शिव जी) की उपासना न करके मेरी अर्थात् ब्रह्म की भक्ति करते हैं, इसी प्रकार यहाँ गीता अध्याय 4 श्लोक 11 में कहा है कि जो मुझे भजते हैं मैं उन्हें भजता हूँ अर्थात् मुझे अच्छे लगते हैं यही प्रमाण गीता अध्याय 16 व 17 में विस्तत है। फिर कहा है कि जो मुझे अच्छी तरह जान लेता है वह फिर मेरे जाल में नहीं फँसता है तथा जो देवताओं (ब्रह्मा, विष्णु, शिव) की साधना करते हैं वे जल्दी प्रकट हो कर उन्हें कुछ राहत दे देते हैं परंतु पूर्ण मुक्त नहीं कर सकते। इसलिए तू अपने पूर्वजों की तरह शास्त्रानुकूल भक्ति कर्म कर।

।। कर्मों के बन्धन से त्रिलोकी नाथ भी नहीं बचे।।

अध्याय 4 के श्लोक 16 से 22 में कर्मों का विवरण कहा है कि जो व्यक्ति जिस किसी कर्म को करे, उसमें कर्त्तापन का अभिमान नहीं लाए तथा कहे कि कर्म मालिक आपके आश्रित होकर कर रहा हूँ। कर्म-अकर्म का ज्ञान इस तुच्छ जीव को नहीं है। जो निष्काम भावना से कर्म करता है वह पंडित (विद्वान) है तथा कर्मों के बन्धन में नहीं बन्धता। इसीलिए इसी अध्याय के श्लोक 34 में कहा है कि तत्वज्ञान से ही सर्व कर्मों का ज्ञान होगा कि कौन प्रभु पूजा के योग्य है, कौन नहीं? फिर साधक ब्रह्म द्वारा लगाए कर्मों के बन्धन में न बन्ध कर सत्यलोक में चला जाता है। वह सदा के लिए कर्म बन्धन से मुक्त हो जाता है।

काल ब्रह्म तक के ज्ञान से तो कर्म बन्धन से मुक्ति नहीं मिलती। वे तो भोगने ही पड़ते हैं। विचार करें भगवान विष्णु से बढ़ कर कौन विद्वान हो सकता है? उनका भी कर्म बन्धन में बंध कर श्री रामचन्द्र रूप में जन्म हुआ। क्योंकि श्री विष्णु जी ने महर्षि नारद जी को बन्दर का मुख लगाया जिस कर्म के अनुसार नारद जी ने भगवान विष्णु जी को शाप दिया। जिसके बन्धन के अनुसार राजा दशरथ के घर जन्म लिया फिर वनवास हुआ तथा बाली का वध किया। बाली वध के कर्म बन्धन में बंध कर श्री कष्ण के रूप में वही विष्णु आत्मा का द्वापर युग में जन्म हुआ। फिर बाली की आत्मा जो उस समय एक शिकारी बना था ने उस कर्म का बदला श्री कष्ण जी के पैर में तीर मार कर लिया। उसी कर्म बन्धन में बंध कर कष्ण रूप में जन्मना पड़ा।

कर्म बन्धन से केवल परमेश्वर कबीर बन्दी छोड़ ही छुड़वा सकते हैं। इसलिए उन्हें बन्दी छोड़ कहा जाता है। पवित्र यजुर्वेद अध्याय 5 मंत्र 32 में तथा यजुर्वेद अध्याय 8 मंत्र 13 में भी प्रमाण है (कविरंघारिरसि) कबीर परमेश्वर पाप का शत्रु है अर्थात् पाप विनाशक है (बम्भारिरसि) वह कबीर परमेश्वर बन्धनों का शत्रु है अर्थात् काल के कर्म बन्धन रूपी कारागार से छुड़वाने वाला बन्दी छोड़ है।

सूक्ष्मवेद में भी कहा है कि कबीर परमेश्वर ने कहा है कि मैं अपने भक्त को काल ब्रह्म के द्वारा कर्मों के बँधन में बाँध रखे प्राणियों को कर्म बँधन से मुक्त करता हूँ। इसलिए बंदी छोड़

कहलाता हूँ तथा सत्य साधना के नाम (मंत्र) बताकर साधना करवाकर अमर करता हूँ। फिर उनको सत्यलोक यानि शाश्वत् स्थान में भेज देता हूँ। फिर वह साधक कभी लौटकर नहीं आता। उसे गीता अध्याय 15 श्लोक 4 में कहे परमेश्वर के परम पद की प्राप्ति होती है तथा गीता अध्याय 18 श्लोक 62 में कहे सनातन परम धाम तथा परम शांति की प्राप्ति होती है।

वाणी इस प्रकार है :- ''अमर करूं सतलोक पठाऊँ। तातें बन्दी छोड़ कहाऊँ।।''

अध्याय 4 के श्लोक 23-24 का भाव है कि जो साधक सर्व कर्म परमात्मा को साक्षी रख कर कर रहा है उसके सर्व कर्म ब्रह्म (परमात्मा) जैसे होते हैं। चूंकि वह तत्व ज्ञानी साधक शास्त्र विधि रहित मनमाना आचरण नहीं करता। इसलिए उसके वचन कर्म परमात्मा के गुणगान करने में तथा सर्व समय प्रभु चिन्तन में ही लीन रहता है। पूर्ण विचार कर कार्य करता है।

।। जो जैसी साधना करता है, उसे ही गलती से पापनाशक जानता है ।।

अध्याय 4 के श्लोक 25 से 30 तक में कहा है कि इनमें भिन्न-2 प्रकार की कर्म उपासना का विवरण किया है। कहा है कि कुछ साधक तो हवन यज्ञ करके कर्मयोग को कर रहे हैं, कुछ एक स्थान पर विशेष आसन पर बैठ कर कान,नाक,आँख आदि इन्द्रियों को हठ करके रोक कर संयम करने की साधना में लगे हैं। अन्य भक्तजन देवी-देवताओं की भक्ति करते हैं। कुछ दान, कुछ घोर तप करते हैं। कुछ व्रत कर रहे हैं, कुछ अन्य अभ्यास तथा स्वाध्याय (धार्मिक शास्त्र पढ़ना) कर्म श्रेष्ठ मान कर आध्यात्मिक कर्मों में संलग्न हैं तथा अन्य प्राणायाम कर रहे हैं और मान रहे हैं कि ये सर्व भक्ति कर्म पाप नष्ट करने वाले हैं।

विचार करें :- भगवान कृष्ण अर्जुन के गुरु रूप में थे। (जैसा कि गीता जी के अध्याय 2 के श्लोक 7 में स्वयं अर्जुन कह रहा है कि मैं आपकी शरण हूँ तथा आपका शिष्य हूँ तथा अध्याय 4 श्लोक 3 में गीता ज्ञान दाता ने अर्जुन को अपना भक्त कहा है।) जब युधिष्ठिर को भयानक स्वपन आने लगे तब श्री कृष्ण (गुरु) जी से कारण व समाधान पूछा था। भगवान ने कहा था कि आपको युद्ध में किए पाप दुःखदाई हो रहे हैं। इसका समाधान यज्ञ ही बताया था। यज्ञ की गई। फिर भगवान कृष्ण के पैर में बालिया नामक शिकारी जो बाली की आत्मा थी, ने तीर मारा। उस समय श्री कृष्ण जी ने अर्जुन व सर्व पाण्डवों को कहा कि आप हिमालय में जा कर आसक्ति रहित हो कर मोह ममता त्याग कर तप साधना इन्द्रियों पर काबू पाकर संयम रखते हुए करना। आपके (पाण्डवों के) सर्व पाप समाप्त हो जाएंगे। पाण्डवों ने ऐसा ही किया परंतु फिर भी नरक में गिरे। (महाभारत ग्रन्थ में प्रमाण है।) इससे सिद्ध है कि वेदों व गीता जी में वर्णित साधना से पाप विनाश नहीं होते, भोगने ही पड़ते हैं। अन्य उपलब्धियाँ जैसे सिद्धियाँ व स्वर्ग-महास्वर्ग की प्राप्ति हो जाती है। परंतु पाप कर्म नहीं कटते क्योंकि वेदों तथा गीता का ज्ञान अधूरा है।

संत गरीबदास जी ने परमेश्वर कबीर जी से प्राप्त तत्वज्ञान में बताया है कि :-

गरीब, ऋग यजु साम अथर्वण, चारों वेद चितभंगी रे। सूक्ष्म बेद साहेब का बांचै, सो हंसा सत्संगी रे।।

भावार्थ :- वेदों में लिखा है कि नेति यानि ''न इति'' अर्थात् जो ज्ञान चारों वेदों में है, यह सम्पूर्ण नहीं है। इस अध्यात्म ज्ञान का वेदों में अंत नहीं (न इति) है। इसीलिए वाणी में कहा है कि ऋग्वेद-यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद का ज्ञान अधूरा होने से चितभंगी है यानि बुद्धि में भ्रम उत्पन्न करने वाला है। सम्पूर्ण आध्यात्मिक ज्ञान स्वयं परमेश्वर जी ने बताया है, वह यथार्थ है। जो पुण्यात्मा उस सूक्ष्मवेद को पढ़ता है, उसके पास सत्य ज्ञान है, वह सत्संगी है। सूक्ष्मवेद को

तत्वज्ञान भी कहा जाता है जिसका वर्णन इसी अध्याय 4 श्लोक 32 तथा 34 में है। जैसे श्रीमद्भगवत गीता में चारों वेदों का संक्षिप्त ज्ञान है। इसी में बहुत भ्रमित ज्ञान है। जिस कारण से पाठक तथा अनुवादक समझ नहीं पाए कि गीता अध्याय 4 श्लोक 5, अध्याय 2 श्लोक 12, अध्याय 10 श्लोक 2 में गीता ज्ञान दाता अपने को नाशवान बता रहा है। जन्म-मरण सदा बना रहेगा। जबकि हिन्दू धर्म के अनुयाई व धर्मगुरू व प्रचारक गीता ज्ञान दाता श्री कष्ण जी को मानते हैं। श्री कष्ण जी को विष्णु मानते हैं। श्री विष्णु उर्फ श्री कष्ण को अविनाशी प्रभु तथा सबसे बड़ा प्रभु मानते हैं। कहते हैं कि श्री कष्ण जी से यानि श्री विष्णु के ऊपर कोई स्वामी ही नहीं है। ये अखिल ब्रह्माण्ड के स्वामी हैं। इस प्रकार पाठक का चित भंग हो जाता है यानि भ्रम उत्पन्न हो जाता है कि ऊपर बताए अध्यायों के श्लोकों में तो श्री कष्ण जी अपने को नाशवान बता रहे हैं। हमने अविनाशी सुना है। गीता अध्याय 7 श्लोक 12-15 तथा 20-23 में त्रिगुण माया यानि रजगुण ब्रह्मा, सतगुण विष्णु तथा तमगुण शिव आदि-आदि देवताओं की पूजा करने वाले राक्षस स्वभाव को धारण किए हुए मनुष्यों में नीच, दूषित कर्म करने वाले मूर्ख कहे हैं। अध्याय 7 के ही श्लोक 16-18 में गीता ज्ञान दाता अपनी भक्ति करने को कहता है, परंतु श्लोक 18 में ही अपनी भक्ति से होने वाली गति यानि मुक्ति को अनुत्तम यानि अश्रेष्ठ कहा है।

गीता अध्याय 15 श्लोक 17 में तथा अध्याय 8 श्लोक 3, 8-10, 20-22 में तथा गीता के ही अध्याय 18 श्लोक 46, 61-62, 66 में तथा अन्य अनेकों श्लोकों में गीता ज्ञान दाता ने अपने से अन्य परमात्मा वास्तव में अविनाशी सब जीवों व ब्रह्माण्डों की उत्पत्तिकर्ता सबका धारण-पोषण करने वाला (उत्तमः पुरूषः तू अन्यः) उत्तम परमेश्वर तो अन्य ही बताया है। उसकी शरण में जाने के लिए गीता ज्ञान बोलने वाले ने कहा है। उस परमेश्वर की कपा से ही सनातन परम धाम प्राप्ति तथा परम शांति प्राप्ति बताई है। वह परमेश्वर कौन है, यह गीता तथा वेदों में स्पष्ट नहीं है। उसकी जानकारी के लिए गीता अध्याय 4 श्लोक 32 तथा 34 में कहा है कि वह परम अक्षर ब्रह्म अपने मुख कमल से वाणी बोलकर तत्वज्ञान बताता है। उसमें यज्ञों यानि धार्मिक अनुष्ठानों का विस्तत ज्ञान उस तत्वज्ञान में बताता है। उसको जानने के पश्चात् साधक पापों से मुक्त हो जाता है। पापों से मुक्त होना पूर्ण मोक्ष होना है। उस तत्वज्ञान को तू तत्वदर्शी संतों से समझ। तत्वज्ञान न वेदों में है, न गीता में है, वह सूक्ष्मवेद में है जो मेरे (रामपाल दास के) अतिरिक्त वर्तमान में विश्व में किसी के पास नहीं है। इसी कारण से गीता के सब अनुवादक तथा पाठक व प्रचारक भ्रमित हैं। श्री कष्ण जी अर्थात् श्री विष्णु जी को गीता ज्ञान बोलने वाला कहते हैं। इसी को सबसे बड़ा प्रभु कहते हैं जबकि गीता बोलने वाला अपने से श्रेष्ठ प्रभु (उत्तम पुरूष = पुरूषोत्तम) किसी अन्य को कह रहा है। सूक्ष्मवेद में सतनाम तथा सारनाम का वर्णन है।

कहा है कि सतनाम व सारनाम का सुमरण करने वाला उपासक सनातन ब्रह्म (सतपुरुष) को प्राप्त हो जाता है। जिसका जन्म-मरण स्थाई रूप से समाप्त हो जाता है। पूर्ण परमात्मा का साधक अन्य चार यज्ञों के साथ-2 ज्ञान यज्ञ अधिक करता है, ज्ञान यज्ञ सुबह, शाम, दोपहर का स्वाध्याय तथा सतसंग श्रवण व धार्मिक पुस्तकों का पठन तथा साथ-2 गुरु दीक्षा मन्त्र का जाप भी स्वांस-2 में करता है। उस साधक के पाप विनाश हो जाते हैं तथा अनादि मोक्ष प्राप्त करता है। सम्पूर्ण आध्यात्मिक ज्ञान ''ब्रह्मणः'' सच्चिदानंद घन ब्रह्म यानि पूर्ण परमात्मा स्वयं पथ्वी पर प्रकट होकर अपने (मुखे) मुख से बोली वाणी में बताता है जिसका प्रमाण इसी अध्याय 4 के श्लोक 32 में है। आप जी अगले श्लोकों में पढ़ेंगे व जानेंगे तथा सत्य मानेंगे।

।। नाम के साथ-साथ यज्ञ भी आवश्यक।।

अध्याय 4 के श्लोक 31-32 में कहा है कि गीता अध्याय 4 श्लोक 25-30 तक वर्णित शास्त्रविरूद्ध साधना से बचे हुए साधक शास्त्रविधि अनुसार अर्थात् नाम साधना करते हैं। वे यज्ञ से अलग सतनाम व सारनाम के जाप रूपी आनन्द (अमृत) का अनुभव करने वाले (सनातन ब्रह्म) पूर्ण परमात्मा को प्राप्त होते हैं। यज्ञ भी आवश्यक बताते हुए कहा है कि नाम साधना के साथ पाँचों यज्ञ (धर्म, ध्यान, हवन, प्रणाम, ज्ञान अर्थात् धार्मिक शास्त्रों का पठन पाठन) भी आवश्यक हैं। जैसे सतनाम व सारनाम रूपी बीज बीजकर उसमें यज्ञ रूपी खाद पानी भी अति आवश्यक है। जिससे भक्ति रूपी पौधा परिपक्व होता है। यदि केवल नाम साधना करते रहे यज्ञ नहीं किए तो जैसे पानी और खाद के अभाव से पौधा सूख जाता है, इसी प्रकार यज्ञ न करने से साधक अहंकारी, दयाहीन, श्रद्धाहीन, हो जाता है। वास्तविक जाप मंत्र बिना केवल यज्ञ करना भी निष्फल है। यदि गुरु जी से नाम नहीं ले रखा है वैसे यज्ञ करता रहे वह भी निष्फल है पूर्ण सन्त से वास्तविक मन्त्र (सत्यनाम व सारनाम) का उपदेश लेकर नाम जाप तथा पाँचों यज्ञ नहीं करते तो उनको इस लोक में ही कोई लाभ नहीं होगा फिर परलोक में कैसे हो सकता है? भावार्थ है कि पूर्ण सन्त द्वारा दिया पूर्ण भक्ति मार्ग ही लाभदायक है। अर्जुन यज्ञ में प्रतिष्ठित पूर्ण परमात्मा को इष्ट रूप में मान कर यज्ञ करता है तथा यज्ञों के साथ-साथ वास्तविक नाम का सुमरण करके पूर्ण मोक्ष रूपी अमृत को प्राप्त हो जाता है अर्थात् पूर्ण परमात्मा को प्राप्त हो जाते हैं।

गीता अध्याय 4 श्लोक 32 में कहा है कि पूर्ण परमात्मा द्वारा अपने मुख कमल से सूक्ष्म वेद में सभी यज्ञों यानि धार्मिक अनुष्ठानों का विस्तार पूर्वक विवरण है जो संसारिक कर्तव्य कर्मों तथा शारीरिक यानि शरीर द्वारा दान, सेवा, स्मरण आदि भक्ति कर्मों से सम्पन्न होते हैं। इस प्रकार जान कर साधक मुक्त हो जाता है। उस तत्वज्ञान को मैं (गीता बोलने वाला प्रभु) भी नहीं जानता। जो पूर्ण परमात्मा के पूर्ण मोक्ष मार्ग का विवरण है, उसके लिए अध्याय 4 श्लोक 34 में कहा है कि उस तत्वज्ञान को जानने वाले संतों की खोज कर।

[नोट :- गीता जी के अन्य अनुवाद कर्ताओं ने गीता अध्याय 4 श्लोक 32 का अनुवाद ठीक नहीं किया है क्योंकि उन्होंने ब्रह्मणः का अर्थ वेद किया है। जबकि गीता अध्याय 17 श्लोक 23 में ब्रह्मणः का अर्थ उन्होंने ही सच्चिदानन्दघन ब्रह्म किया है जो सही है। इसलिए मानव समाज गीता जी के अनमोल ज्ञान के यथार्थ भाव को नहीं समझ सका।]

गीता अध्याय 4 श्लोक 25 से 30 तक में कहा है कि कुछ साधक देवताओं की पूजा रूपी यज्ञ अर्थात् धार्मिक कर्म करते हैं दूसरे हठयोग द्वारा कर्म इन्द्रियों को साधते हैं दूसरे स्वांस क्रिया करते हैं अन्य घोर तप तथा अहिंसा आदि घोर व्रत करते हैं अन्य दान ही करते हैं दूसरे योगी जन केवल अल्पाहार ही करते हैं। ये सर्व साधक अपनी-2 साधनाओं को पाप नाशक जानते हैं। श्लोक 32 में कहा है कि उपरोक्त साधनाओं सहित पूर्ण मोक्ष मार्ग का ज्ञान सच्चिदानन्दघन ब्रह्म अर्थात् पूर्ण परमात्मा के द्वारा अपने मुख कमल से कहे ज्ञान अर्थात् सच्चिदानन्दघन की वाणी में (सुक्ष्म वेद यानि कविर्वाणीमें) विस्तार से कहा गया है वह तत्वज्ञान है। गीता अध्याय 4 के ही श्लोक 34 में कहा है कि उस ज्ञान को (जो सच्चिदानन्दघन ब्रह्म की वाणी में कहा है उस तत्वज्ञान को) तत्वदर्शी सन्तों से समझ तत्वदर्शी सन्त की पहचान गीता अध्याय 15 श्लोक 1 में बताई है।

।। तत्वदर्शी संतों से ज्ञान समझकर भक्ति करने से पूर्ण मुक्ति संभव ।।

विशेष : अध्याय 4 के श्लोक 33,34 तथा 35 का भाव है कि गीता ज्ञान दाता ने अर्जुन से कहा हे अर्जुन! इस प्रकार पूर्ण परमात्मा के ज्ञान को व समाधान को जानने वाले तत्वदर्शी संतों के पास जा। उनको आधीनी पूर्वक आदर के साथ दण्डवत् प्रणाम कर प्रेम व विनय पूर्वक उस परमात्मा का मार्ग पूछ। फिर वे संत पूर्ण परमात्मा को पाने की विधि (सतनाम व सारनाम अर्थात् ॐ, तत्,सत् का मन्त्र) बताएगें जिसको जान कर तू फिर इस प्रकार अज्ञान रूपी मोह को प्राप्त नहीं होगा। फिर तू इसी ज्ञान के आधार पर पहले अपने आपको जानेगा कि मैं काल के जाल में कैसे फंसा तथा फिर मुझे (काल रूप से) देखेगा, तब तू यहाँ से निकलने की पूरी चेष्टा करेगा। तत्वदर्शी संत की पहचान गीता अध्याय 15 श्लोक 1 से 4 तक में देखें। अध्याय 4 के श्लोक 33 में पवित्र श्री मद्भगवत गीता जी को बोलने वाले काल प्रभु ने कहा कि द्रव्यमय यज्ञ {यानि धन से होने वाले धार्मिक अनुष्ठान जो बिना तत्वज्ञान समझे करते हैं जैसे दान देना, धर्म-भण्डारा (लंगर-भोजन करना), वस्त्र दान करना, कूँए, धर्मशाला, प्याऊ आदि-आदि धर्मार्थ बनवाना} से ज्ञान यज्ञ श्रेष्ठ है अर्थात् पहले पूर्ण संत से आध्यात्मिक सम्पूर्ण ज्ञान समझ। फिर उनके द्वारा बताए अनुसार धर्म यज्ञ कर।

उदाहरण :- एक सज्जन पुरूष ने भावुक होकर एक भिखारी को पाँच सौ रूपये दान दे दिए। भिखारी पहले पाव शराब सेवन करता था। उस दिन आधी बोतल पी गया। शेष रूपये भी कहीं गिर गए। प्रतिदिन की तरह पत्नी ने शराब सेवन का विरोध किया तो भिखारी ने पत्नी की पिटाई कर दी। पत्नी ने दोनों बच्चों समेत आत्महत्या कर ली। उस सज्जन को दान से पुण्य के स्थान पर पाप मिला। इसलिए धर्म यज्ञ करने से पहले तत्वज्ञान यज्ञ श्रेष्ठ बताई है। गीता ज्ञान देने वाला भी उस तत्वज्ञान को नहीं जानता क्योंकि श्लोक 34 में कहा है कि मैं उस पूर्ण परमात्मा के तत्वज्ञान से अनभिज्ञ हूँ अर्थात् मैं नहीं जानता। इसलिए किसी पूर्ण परमात्मा के ज्ञान को जानने वाले ज्ञानी संतों (धीराणाम्) के पास जाकर पूर्ण जानकारी (पूर्णब्रह्म परमात्मा का मार्ग) प्राप्त कर, पहले उन पूर्ण संतों को दण्डवत् प्रणाम करना, फिर उनकी सेवा करना तथा अति आधीनी से विनम्र भाव से पूर्ण परमात्मा को पाने की विधि पूछना। तब वे प्रसन्न हो कर तुझे पूर्ण तत्व ज्ञान समझाएगें तथा नाम उपदेश दे कर कल्याण करेंगे। फिर मुझे समझ पाएगा कि मैं वास्तव में काल हूँ। पहले तो तू अपने आपको समझेगा कि तू कौन है तथा कैसे मेरे (काल के) जाल में फंसा? फिर मुझे (काल समझ कर) विशेष दृष्टिकोण से देखेगा (पहले वाले भाव से नहीं)। जब तुझे पूर्ण परमात्मा का ज्ञान हो जाएगा। (फिर पूरा गुरु तलाश करेगा जो तुझे सत्यनाम व सारनाम देगा)। फिर तू उस तत्वदर्शी संत से तीन मंत्र का जाप (जिनमें एक ओ3म् + तत् + सत् दो सांकेतिक हैं जो वहीं पूर्ण संत बता सकता है) लेकर सम्पूर्ण पापों से मुक्त हो जाएगा। जब तुझे मेरा (काल का) पूर्ण ज्ञान हो जाएगा तो पूरी तड़फ करके नाम लेकर भजन करके अग्नि की तरह वह सत्यनाम व सारनाम की लगन पाप को नष्ट करेगी अर्थात् उस परमात्मा में यह शक्ति है कि वह जीव के सर्व पापों को समाप्त कर सकता है जबकि ब्रह्म (काल) ऐसा नहीं कर सकता। जिसको पूर्ण जानकारी हो गई वह परम शांति को प्राप्त हो जाएगा अर्थात् पूर्ण परमात्मा की साधना करके पूर्ण मुक्त हो जाएगा।

जिस भक्त आत्मा का पूर्ण संश्य मिट गया उसने अपने आपको पूर्ण परमात्मा को समर्पित कर दिया। वह ज्ञानी व्यक्ति संश्य रूपी राक्षस को तत्वज्ञान रूपी तलवार से काट देता है। इसलिए

उठ अर्थात् सचेत होकर तत्वदर्शी संत से तत्वज्ञान सुन कर शास्त्र अनुकूल भक्ति कर्मों पर अडिग हो जा। यही प्रमाण गीता अध्याय 15 श्लोक 1 से 4 में भी है जिसमें तत्वदर्शी सन्त की पहचान बताई है तथा कहा है कि तत्वज्ञान रूपी शस्त्र द्वारा अज्ञान को काटकर उस के पश्चात् परमेश्वर के उस परम पद की खोज करनी चाहिए जहाँ जाने के पश्चात् साधक फिर लौटकर संसार में कभी नहीं आता अर्थात् पूर्ण मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

गीता अध्याय 4 श्लोक 36-42 का सारांश :-

❖ *अध्याय 4 श्लोक 36 :- उपरोक्त ज्ञान तथा साधना के करने से साधक (पापेभ्यः) पापियों से (अपी) भी (पापकतमः) अधिक पाप करने वाला है तो भी तत्वज्ञान रूपी नौका द्वारा पाप के समुद्र से भली-भांति तर जाएगा क्योंकि तत्वदर्शी संत उपरोक्त नाम जाप देते हैं जो सर्व पापों को नष्ट कर देते हैं। पापरहित पवित्र होकर जीव परमात्मा के पास चला जाता है।*

❖ *अध्याय 4 श्लोक 37 :- इस श्लोक में कहा है कि तत्वज्ञान को जानकर तत्वदर्शी संत से नाम दीक्षा लेकर साधना करने से साधक के पाप कर्म ऐसे भस्म हो जाते हैं जैसे अग्नि ईंधन को जलाकर भस्म बना देती है। भावार्थ है कि तत्वज्ञान बताने वाला संत साधना भी बताएगा जिससे पाप नष्ट हो जाऐंगे। साधक भविष्य में कोई पाप कर्म नहीं करता।*

सूक्ष्मवेद में भी कबीर जी ने कहा है कि :-

कबीर, जब ही सतनाम हृदय धरो, भयो पाप का नाश। जैसे चिंनगी अग्नि की, पड़ै पुराने घास।।

भावार्थ :- पूर्ण गुरू से दीक्षा लेकर सच्चे मन से मर्यादा में रहकर सतनाम का जाप करने से पाप ऐसे नष्ट हो जाते हैं जैसे पुराने सूखे घास में आग की चिंगारी गिर जाए तो घास जलकर भस्म बन जाता है।

❖ *अध्याय 4 श्लोक 38 :- इसलिए इस संसार में तत्वज्ञान के समान कोई पवित्र करने वाला नहीं है जो सम्पर्क में आने वाले को शुद्ध कर देता है। उस ज्ञान के आधार से तत्वदर्शी संतों के सम्पर्क में आकर शुद्ध अन्तःकरण हुआ भक्त स्वयं ही अपना अनुभव (विन्दति) बताता है।*

❖ *अध्याय 4 श्लोक 39 :- तत्वज्ञानी इन्द्रियों पर संयम करके (तत्) उससे (परः) आगे का (ज्ञानम्) सूक्ष्मवेद वाला सम्पूर्ण ज्ञान (लभते) प्राप्त करता है। उस तत्वज्ञान को तत्वज्ञानी से प्राप्त करके साधक शीघ्र ही (पराम्) ब्रह्म साधना से होने वाली गति से दूसरी गति से होने वाली परम शांति को प्राप्त हो जाता है।*

❖ *अध्याय 4 श्लोक 40 :- विवेकहीन यानि जिसको तत्वज्ञान नहीं मिला, उसका संशय समाप्त नहीं होता है। वह सत्य मार्ग से अवश्य भटककर नष्ट हो जाता है। संशययुक्त व्यक्ति के लिए न यह लोक सुखदायक, न परलोक ही सुखदायक है।*

❖ *अध्याय 4 श्लोक 41 :- हे धनंजय! जिसने तत्वज्ञान सुनकर विवेक द्वारा संशय का नाश कर लिया है जिसने सर्व भक्ति कर्म परमात्मा पर छोड़ दिए हैं। वह पुनः पापकर्म नहीं करता। जिस कारण से वह कर्मों के बन्धन में नहीं बँधता।*

❖ *अध्याय 4 श्लोक 42 :- इस प्रकार विचार करके हे भारत! अपने हृदय में उत्पन्न अपने संशय को ज्ञान रूपी तलवार से काटकर (योगम् आतिष्ठ) भक्ति कर्म में स्थित होकर (उतिष्ठ) साधना के लिए खड़ा हो जा यानि भक्ति के लिए कमर कस ले।*

विवेचन :- गीता अध्याय 4 के श्लोक 42 के अनुवाद में मेरे (लेखक-अनुवादक) के अतिरिक्त सर्व अनुवादकों ने अपने अनुवाद में लिखा है कि युद्ध के लिए खड़ा हो जा जो गलत है क्योंकि पूरे

अध्याय 4 में परमात्मा के तत्वज्ञान तथा अज्ञान का विश्लेषण है। स्पष्ट किया है कि शास्त्रविरूद्ध अधूरे व मनमाने भक्ति कर्मों को तत्वज्ञान से समझकर उनको त्यागकर पूर्ण परमात्मा द्वारा अपने मुख कमल से बताये तत्वज्ञान को तत्वदर्शी संतों से समझकर कर्तव्य भक्ति कर्म कर। फिर विवेक रूपी तलवार से अज्ञान को काटकर तत्वज्ञान के आधार से (योगम्) साधना में (आतिष्ठ) स्थित हो जा। भक्ति के लिए (उतिष्ठ) खड़ा हो जा यानि सत्य साधना के लिए कमर कस ले। विचारणीय विषय तो यह है कि चर्चा अध्यात्म ज्ञान की चल रही है। योग का अर्थ भक्ति करना है। इस प्रकरण में युद्ध के लिए खड़ा होने को लिखना अनुवादकों की अल्पज्ञता का प्रमाण है। अगला अध्याय नं. 5 भी परमात्मा की भक्ति तथा शुभ-अशुभ तथा कर्तव्य-अकर्तव्य कर्मों का वर्णन करता है। गीता ज्ञान दाता से अन्य पूर्ण परमात्मा की जानकारी से भरा है।

❑❑❑

।।चौथे अध्याय के अनुवाद सहित श्लोक।।

परमात्मने नमः

अथ चतुर्थोऽध्यायः

अध्याय 4 का श्लोक 1 (भगवान उवाच)

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्।
विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत्।१।

इमम्, विवस्वते, योगम्, प्रोक्तवान्, अहम्, अव्ययम्,
विवस्वान्, मनवे, प्राह, मनुः, इक्ष्वाकवे, अब्रवीत्।।1।।

अनुवाद : (अहम्) मैंने (इमम्) इस (अव्ययम्) अविनाशी (योगम्) भक्ति मार्ग को (विवस्वते) सूर्यसे (प्रोक्तवान्) कहा था (विवस्वान्) सूर्यने अपने पुत्र वैवस्वत (मनवे) मनु से (प्राह) कहा और (मनुः) मनुने अपने पुत्र (इक्ष्वाकवे) राजा इक्ष्वाकुसे (अब्रवीत्) कहा। (1)

अध्याय 4 का श्लोक 2

एवं परम्पराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः।
स कालेनेह महता योगो नष्टः परन्तप।२।

एवम्, परम्पराप्राप्तम्, इमम्, राजर्षयः, विदुः,
सः, कालेन, इह, महता, योगः, नष्टः, परन्तप।।2।।

अनुवाद : (परन्तप) हे परन्तप अर्जुन! (एवम्) इस प्रकार (परम्पराप्राप्तम्) परम्परासे प्राप्त (इमम्) इस भक्ति मार्ग को (राजर्षयः) राजर्षियोंने (विदुः) जाना किंतु उसके बाद (सः) वह (योगः) योग अर्थात् भक्ति मार्ग (महता) बहुत (कालेन) समय से (इह) इस पथ्वीलोकमें (नष्टः) समाप्त हो गया।।2।।

अध्याय 4 का श्लोक 3

स एवायं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः।
भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम्।३।

सः, एव, अयम्, मया, ते, अद्य, योगः, प्रोक्तः, पुरातनः,
भक्तः, असि, मे, सखा, च, इति, रहस्यम्, हि, एतत्, उत्तमम्।।3।।

अनुवाद : तू (मे) मेरा (भक्तः) भक्त (च) और (सखा) सखा (असि) है (इति) इसलिये (सः) वही (अयम्) यह (पुरातनः) पुरातन (एव) वास्तविक (योगः) भक्ति मार्ग (अद्य) पुराना (मया) मैंने (ते) तुझको (प्रोक्तः) कहा है (हि) क्योंकि (एतत्) यह (उत्तमम्) बड़ा ही उत्तम (रहस्यम्) रहस्य वाला है अर्थात् गुप्त रखने योग्य विषय है। (3)

अध्याय 4 का श्लोक 4

(अर्जुन उवाच)

अपरं भवतो जन्म परं जन्म विवस्वतः।
कथमेतद्विजानीयां त्वमादौ प्रोक्तवानिति।४।

अपरम्, भवतः, जन्म, परम्, जन्म, विवस्वतः,

कथम्, एतत्, विजानीयाम्, त्वम्, आदौ, प्रोक्तवान् इति।।4।।

अनुवाद : (भवतः) आपका (जन्म) जन्म तो (अपरम्) अधिक समय का नहीं है अर्थात् अभी हाल का है और (विवस्वतः) सूर्यका (जन्म) जन्म (परम्) अधिक पहले का है (इति) इस बातको (कथम्) कैसे (विजानीयाम्) समझूँ कि (त्वम्) आपहीने (आदौ) कल्पके आदिमें सूर्यसे (एतत्) यह योग (प्रोक्तवान्) कहा था?। (4)

अध्याय 4 का श्लोक 5

(भगवान उवाच)

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन।

तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परन्तप। ५ ।

बहूनि, मे, व्यतीतानि, जन्मानि, तव, च, अर्जुन,

तानि, अहम्, वेद, सर्वाणि, न, त्वम्, वेत्थ, परन्तप।।5।।

अनुवाद : (परन्तप) हे परन्तप (अर्जुन) अर्जुन! (मे) मेरे (च) और (तव) तेरे (बहूनि) बहुत-से (जन्मानि) जन्म (व्यतीतानि) हो चुके हैं। (तानि) उन (सर्वाणि) सबको (त्वम्) तू (न) नहीं (वेत्थ) जानता किंतु (अहम्) मैं (वेद) जानता हूँ। (5)

अध्याय 4 का श्लोक 6

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।

प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया। ६ ।

अजः, अपि, सन्, अव्ययात्मा, भूतानाम्, ईश्वरः, अपि, सन्,

प्रकतिम्, स्वाम्, अधिष्ठाय, सम्भवामि, आत्ममायया।।6।।

अनुवाद : (अजः) मनुष्यों की तरह मैं जन्म न लेने वाला और (अव्ययात्मा) अविनाशीआत्मा (सन्) होते हुए (अपि) भी तथा (भूतानाम्) मेरे इक्कीस ब्रह्मण्डों के प्राणियोंका (ईश्वरः) ईश्वर (सन्) होते हुए (अपि) भी (स्वाम्) अपनी (प्रकतिम्) प्रकति अर्थात् दुर्गा को (अधिष्ठाय) अधीन करके अर्थात् पत्नी रूप में रखकर (आत्ममायया) अपने अंश अर्थात् पुत्र श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी, व शिव जी उत्पन्न करता हूँ, फिर उन्हें श्री कष्ण, श्री राम, श्री परसुराम आदि अंश अवतार (सम्भवामि) प्रकट करता हूँ। (6)

अध्याय 4 का श्लोक 7

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।

अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्। ७ ।

यदा, यदा, हि, धर्मस्य, ग्लानिः, भवति, भारत,

अभ्युत्थानम्, अधर्मस्य, तदा, आत्मानम्, सजामि, अहम्।।7।।

अनुवाद : (भारत) हे भारत! (यदा,यदा) जब-जब (धर्मस्य) धर्मकी (ग्लानिः) हानि और (अधर्मस्य) अधर्मकी (अभ्युत्थानम्) वद्धि (भवति) होती है (तदा) तब-तब (हि) ही (अहम्) मैं (आत्मानम्) अपना अंश अवतार (सजामि) रचता हूँ अर्थात् उत्पन्न करता हूँ। (7)

अध्याय 4 का श्लोक 8

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।

धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे। ८ ।

परित्राणाय, साधूनाम्, विनाशाय, च, दुष्कृताम्,
धर्मसंस्थापनार्थाय, सम्भवामि, युगे, युगे।।8।।

अनुवाद : (साधूनाम्) साधु पुरुषोंका (परित्राणाय) उद्धार करनेके लिये (दुष्कृताम्) बुरेकर्म करनेवालोंका (विनाशाय) विनाश करनेके लिये (च) और (धर्मसंस्थापनार्थाय) भक्ति मार्ग को शास्त्र अनुकूल दिशा देने के लिए (युगे,युगे) युग-युगमें (सम्भवामि) अपने अंश प्रकट करता हूँ तथा उनमें गुप्त रूप से मैं प्रवेश करके अपनी लीला करता हूँ। (8)

अध्याय 4 का श्लोक 9

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन। ९ ।

जन्म, कर्म, च, मे, दिव्यम्, एवम्, यः, वेत्ति, तत्त्वतः,
त्यक्त्वा, देहम्, पुनः, जन्म, न, एति, माम्, एति, सः, अर्जुन।।9।।

अनुवाद : (अर्जुन) हे अर्जुन! (मे) मेरे (जन्म) जन्म (च) और (कर्म) कर्म (दिव्यम्) दिव्य अर्थात् अलौकिक हैं (एवम्) इस प्रकार (यः) जो मनुष्य (तत्त्वतः) तत्वसे (वेत्ति) जान लेता है (सः) वह (देहम्) शरीरको (त्यक्त्वा) त्यागकर (पुनः) फिर (जन्म) जन्मको (न,एति) प्राप्त नहीं होता किंतु जो मुझ काल को तत्व से नहीं जानते (माम्) मुझे ही (एति) प्राप्त होता है। (9)

विशेष :- काल (ब्रह्म) के अलौकिक जन्मों को जानने के लिए देखें अध्याय 8 में प्रलय की जानकारी।

अध्याय 4 का श्लोक 10

वीतरागभयक्रोधा मन्मया मामुपाश्रिताः।
बहवो ज्ञानतपसा पूता मद्भावमागताः।१०।

वीतरागभयक्रोधाः, मन्मयाः, माम्, उपाश्रिताः,
बहवः, ज्ञानतपसा, पूताः, मद्भावम्, आगताः।।10।।

अनुवाद : (वितरागभयक्रोधाः) जिनके राग भय और क्रोध सर्वथा नष्ट हो गये और (मन्मयाः) जो मुझमें अनन्य प्रेमपूर्वक स्थित रहते हैं ऐसे (माम्) मेरे (उपाश्रिताः) आश्रित रहनेवाले (बहवः) बहुत-से भक्त उपर्युक्त (ज्ञानतपसा) ज्ञानरूप तपसे (पूताः) पवित्र होकर (मद्भावम्) मतावलम्बी अर्थात् शास्त्र अनुकूल साधना करने वाले स्वभाव के (आगताः) हो चुके हैं। (10)

अध्याय 4 का श्लोक 11

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः।११।

ये, यथा, माम्, प्रपद्यन्ते, तान्, तथा, एव, भजामि, अहम्,
मम, वर्त्म, अनुवर्तन्ते, मनुष्याः, पार्थ, सर्वशः।।11।।

अनुवाद : (पार्थ) हे अर्जुन! (ये) जो भक्त (माम्) मुझे (यथा) जिस प्रकार (प्रपद्यन्ते) भजते हैं (अहम्) मैं भी (तान्) उनको (तथा) उसी प्रकार (भजामि) भजता हूँ अर्थात् उनका पूरा ध्यान रखता हूँ (एव) वास्तव में (मनुष्याः) सभी मनुष्य (सर्वशः) सब प्रकारसे (मम्) मेरे ही (वर्त्म) व्यवहारका (अनुवर्तन्ते) अनुसरण करते हैं। (11)

अध्याय 4 का श्लोक 12

काङ्क्षन्तः कर्मणां सिद्धिं यजन्त इह देवताः।
क्षिप्रं हि मानुषे लोके सिद्धिर्भवति कर्मजा।१२।

काङ्क्षन्तः, कर्मणाम्, सिद्धिम्, यजन्ते, इह, देवताः,
क्षिप्रम्, हि, मानुषे, लोके, सिद्धिः, भवति, कर्मजा।।12।।

अनुवाद : (इह) इस (मानुषे) मनुष्य (लोके) लोकमें (कर्मणाम्) कर्मोंके (सिद्धिम्) फलको (काङ्क्षन्तः) चाहनेवाले लोग (देवताः) देवताओं अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु, शिव का (यजन्ते) पूजन किया करते हैं (हि) क्योंकि उनको (कर्मजा) कर्मोंसे उत्पन्न होनेवाली अर्थात् कर्माधार से (सिद्धिः) सिद्धि (क्षिप्रम्) शीघ्र (भवति) मिल जाती है। (12)

अध्याय 4 का श्लोक 13

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।

तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययम्।१३।

चातुर्वर्ण्यम्, मया, सष्टम्, गुणकर्मविभागशः,
तस्य, कर्तारम्, अपि, माम्, विद्धि, अकर्तारम्, अव्ययम्।।13।।

अनुवाद : (चातुर्वर्ण्यम्) ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारों वर्णो का समूह (गुणकर्म विभागशः) गुण और कर्मोंके विभागपूर्वक (मया) मेरे द्वारा (सष्टम्) रचा गया है इस प्रकार (तस्य) उस कर्म का (कर्तारम्) कर्त्ता (अपि) भी (माम्) मुझ काल को ही (विद्धि) जान तथा (अव्ययम्) वह (अकर्तारम्) मैं सष्टि का रचने वाला नहीं हूँ। सष्टि का रचनहार तो (अव्ययम्) अविनाशी परमात्मा है। भावार्थः- गीता अध्याय 3 श्लोक 14-15 में गीता ज्ञान दाता ने कहा है कि कर्मों को ब्रह्मोद्भवम अर्थात् ब्रह्म से उत्पन्न जान। यही प्रमाण इस अध्याय 4 श्लोक 13 में है। गीता ज्ञान दाता काल ब्रह्म कह रहा है कि चार वर्णों की व्यवस्था मैंने की है। इनके कर्मों का विभाजन भी मैंने किया है। मैं सष्टि का उत्पन्न करने वाला नहीं हूँ यानि सष्टि का अकर्ता हूँ। सष्टि का कर्ता तो वह अविनाशी पूर्ण परमात्मा है। ब्रह्मा रजगुण, विष्णु सतगुण तथा शिव तमगुण के कर्मों के अनुसार विभाग भी काल ब्रह्म ने बनाए हैं सष्टि, स्थिती, संहार। इनका करने वाला अविनाशी परमात्मा नहीं है। (13)

अध्याय 4 का श्लोक 14

न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले स्पृहा।
इति मां योऽभिजानाति कर्मभिर्न स बध्यते।१४।

न, माम्, कर्माणि, लिम्पन्ति, न, मे, कर्मफले, स्पहा,
इति, माम्, यः, अभिजानाति, कर्मभिः, न, सः, बध्यते।।14।।

अनुवाद : (कर्मफले) कर्मोंके फलमें (मे) मेरी (स्पहा) स्पहा (न) नहीं है इसलिये (माम्) मुझे (कर्माणि) कर्म (न,लिम्पन्ति) लिप्त नहीं करते (इति) इस प्रकार (यः) जो (माम्) मुझ काल-ब्रह्म को (अभिजानाति) तत्वसे जान लेता है (सः) वह भी (कर्मभिः) कर्मोंसे (न) नहीं (बध्यते) बंधता अर्थात् गीता अध्याय 4 श्लोक 34 में कहे तत्वदर्शी संत की खोज करके गीता अध्याय 18 श्लोक 62 में कहे उस परमात्मा की शरण में जाकर पूर्ण परमात्मा की भक्ति करके कर्मों के बन्धन से मुक्त हो जाता है। (14)

अध्याय 4 का श्लोक 15

एवं ज्ञात्वा कृतं कर्म पूर्वैरपि मुमुक्षुभिः।
कुरु कर्मैव तस्मात्त्वं पूर्वैः पूर्वतरं कृतम्।१५।

एवम्, ज्ञात्वा, कतम्, कर्म, पूर्वैः, अपि, मुमुक्षुभिः,
कुरु, कर्म, एव, तस्मात्, त्वम्, पूर्वैः, पूर्वतरम्, कतम्।।15।।

अनुवाद : (पूर्वैः) पूर्वकालके (मुमुक्षुभिः) मुमुक्षुओंने (अपि) भी (एवम्) इस प्रकार (ज्ञात्वा) जानकर ही शास्त्र विधि अनुसार साधना रूपी (कर्म) कर्म (कतम्) विशेष कसक के साथ किये हैं (तस्मात्) इसलिये (त्वम्) तू भी (पूर्वैः) पूर्वजोंद्वारा (पूर्वतरम्,कतम्) सदासे किये जानेवाले शास्त्र विधि अनुसार भक्ति (कर्म) कर्मोंको (एव) ही (कुरु) कर। (15)

अध्याय 4 का श्लोक 16

किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः।
तत्ते कर्म प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्। १६।

किम्, कर्म, किम्, अकर्म, इति, कवयः, अपि, अत्र, मोहिताः,
तत्, ते, कर्म, प्रवक्ष्यामि, यत्, ज्ञात्वा, मोक्ष्यसे, अशुभात्।।16।।

अनुवाद : (कर्म) कर्म (किम्) क्या है और (अकर्म) अकर्म (किम्) क्या है? (इति) इसप्रकार (अत्र) यहाँ निर्णय करनेमें (कवयः) बुद्धिमान् साधक (अपि) भी (मोहिताः) मोहित हो जाते हैं इसलिये (तत्) वह (कर्म) कर्म-तत्व मैं (ते) तुझे (प्रवक्ष्यामि) भलीभाँति समझाकर कहूँगा (यत्) जिसे (ज्ञात्वा) जानकर तू (अशुभात्) शास्त्र विरुद्ध किए जाने वाले दुष्कर्मों से (मोक्ष्यसे) मुक्त हो जायगा। (16)

अध्याय 4 का श्लोक 17

कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्मणः।
अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः।१७।

कर्मणः, हि, अपि, बोद्धव्यम्, बोद्धव्यम्, च, विकर्मणः,
अकर्मणः, च, बोद्धव्यम्, गहना, कर्मणः, गतिः।।17।।

अनुवाद : (कर्मणः) शास्त्र विधि अनुसार कर्मका स्वरूप (अपि) भी (बोद्धव्यम्) जानना चाहिये (च) और (अकर्मणः) शास्त्र विधि रहित अर्थात् अकर्मका स्वरूप भी (बोद्धव्यम्) जानना चाहिए (च) तथा (विकर्मणः) मास-मदिरा तम्बाखु सेवन तथा चोरी - दुराचार आदि विकर्मका स्वरूप भी (बोद्धव्यम्) जानना चाहिए (हि) क्योंकि (कर्मणः) कर्मकी (गतिः) गति (गहना) गहन है।(17)

भावार्थ :- तत्वज्ञान को जान कर शास्त्र अनुकूल भक्ति कर्म से होने वाले लाभ से तथा शास्त्र विधि रहित भक्ति कर्म से तथा मांस, मदिरा, तम्बाखु सेवन व चोरी, दुराचार करना झूठ बोलना आदि बुरे कर्म से होने वाली हानि का ज्ञान होना अनिवार्य है। उसके लिए इस अध्याय के मंत्र 34 में विवरण है।

अध्याय 4 का श्लोक 18

कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्मणि च कर्म यः।
स बुद्धिमान्मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत्।१८।

कर्मणि, अकर्म, यः, पश्येत्, अकर्मणि, च, कर्म, यः,
सः, बुद्धिमान्, मनुष्येषु, सः, युक्तः, कत्स्न्रकर्मकत्।।18।।

अनुवाद : (यः) जो मनुष्य (कर्मणि) कर्म अर्थात् शास्त्र अनुकूल साधना रूपी करने योग्य कर्म तथा (अकर्म) अकर्म अर्थात् शास्त्र विधि त्याग कर मनमाना आचरण न करने योग्य कर्म को (पश्येत्) देखता है अर्थात् जान लेता है (च) और (यः) जो (अकर्मणि) अकर्म अर्थात् वह शास्त्र विरुद्ध साधना न करने योग्य कर्म को नहीं करता (कर्म) कर्म अर्थात् करने योग्य कर्म को करता है (सः) वह (मनुष्येषु) मनुष्योंमें (बुद्धिमान्) बुद्धिमान है और (सः) वह (युक्तः) योगी (कत्स्न्रकर्मकत्) समस्त शास्त्र विधि अनुसार ही कर्मोको करनेवाला है। (18)

अध्याय 4 का श्लोक 19

यस्य सर्वे समारम्भाः कामसङ्कल्पवर्जिताः।
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पण्डितं बुधाः।१९।

यस्य, सर्वे, समारम्भाः, कामसंकल्पवर्जिताः,
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणम्, तम्, आहुः, पण्डितम्, बुधाः।।19।।

अनुवाद : (यस्य) जिसके (सर्वे) सम्पूर्ण (समारम्भाः) शास्त्र अनुकूल कर्म (कामसंकल्प वर्जिताः) बिना कामना और संकल्पके होते हैं तथा (ज्ञानाग्निदग्ध कर्माणम्) बुरे कर्म अर्थात् शास्त्र विधि रहित कार्य तत्व ज्ञानरूप अग्निके द्वारा भस्म हो गये हैं अर्थात् पूर्ण ज्ञान होने पर साधक पूर्ण संत तलाश करके वास्तविक मंत्र प्राप्त कर लेता है, जिससे सर्व पाप विनाश हो जाते हैं (तम्) उसको (बुधाः) शास्त्र विधि अनुसार साधना करने वाले बुद्धिमान लोग (पण्डितम्) पण्डित (आहुः) कहते हैं। (19)

अध्याय 4 का श्लोक 20

त्यक्त्वा कर्मफलासङ्गं नित्यतृप्तो निराश्रयः।
कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैव किञ्चित्करोति सः।२०।

त्यक्त्वा, कर्मफलासंगम्, नित्यतप्तः, निराश्रयः,
कर्मणि, अभिप्रवत्तः, अपि, न, एव, किंचित्, करोति, सः।।20।।

अनुवाद : (कर्मफलासंगम्) तत्वज्ञान के आधार से शास्त्र विधि रहित कर्मोमें और उनके फलमें आसक्ति का सर्वथा (त्यक्त्वा) त्याग करके (निराश्रयः) शास्त्र विधि रहित भक्ति के कर्म से रहित हो गया है और (नित्यतप्तः) शास्त्र अनुकूल साधना के कर्मो से नित्य तप्त है (सः) वह (कर्मणि) संसारिक व शास्त्र अनुकूल भक्ति कर्मोमें (अभिप्रवत्त) भलीभाँति बरतता हुआ (अपि) भी (एव) वास्तवमें (किंचित्) कुछ भी शास्त्र विधि त्याग कर मनमाना आचरण अर्थात् मनमानी पूजा तथा दोषयुक्त कर्म (न) नहीं (करोति) करता। (20)

अध्याय 4 का श्लोक 21

निराशीर्यतचित्तात्मा त्यक्तसर्वपरिग्रहः।
शारीरं केवलं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम्।२१।

निराशीः, यतचित्तात्मा, त्यक्तसर्वपरिग्रहः,
शारीरम्, केवलम्, कर्म, कुर्वन्, न, आप्नोति, किल्बिषम्।।21।।

अनुवाद : (यतचित्तात्मा) शास्त्र विधि अनुसार भक्ति प्राप्त आत्मा (त्यक्तसर्वपरिग्रहः) जिसने समस्त शास्त्र विरुद्ध संग्रह की हुई साधनाओं का परित्याग कर दिया है ऐसा (निराशीः) अविधिवत्

साधना को फैंका हुआ अर्थात् शास्त्र विधि रहित साधना त्यागा हुआ भक्त (केवलम्) केवल (शारीरम्) हठ योग न करके शरीर से जो आसानी से होने वाली सहज साधना तथा शरीर सम्बन्धी (कर्म) संसारिक कर्म तथा शास्त्र विधि अनुसार भक्ति कर्म (कुर्वन्) करता हुआ (किल्बिषम्) क्योंकि शास्त्र विधि त्याग कर मनमाना आचरण अर्थात् पूजा करने वालों को गीता अध्याय 7 श्लोक 12 से 15 में राक्षस स्वभाव को धारण किए हुए, मनुष्यों में नीच, दूषित कर्म अर्थात् शास्त्र विधि त्याग कर मनमाना आचरण करने वाले, मूर्ख मेरी भक्ति भी नहीं करते, वे केलव तीनों गुणों अर्थात् रजगुण ब्रह्मा जी, सतगुण विष्णु जी, तमगुण शिव जी की भक्ति करके उनसे मिलने वाली क्षणिक राहत पर आश्रित रहते हैं। इन्हीं तीनों गुणों अर्थात् श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी, श्री शिव जी की साधना शास्त्र विधि रहित कही है इस शास्त्र विधि रहित साधना को त्याग कर शास्त्रविधि अनुसार भक्ति करता है। वह पापको (न) नहीं (आप्नोति) प्राप्त होता। यही प्रमाण गीता अध्याय 18 श्लोक 47-48 में भी है। (21)

अध्याय 4 का श्लोक 22

यदृच्छालाभसन्तुष्टो द्वन्द्वातीतो विमत्सरः।
समः सिद्धावसिद्धौ च कृत्वापि न निबध्यते। २२।

यदृच्छालाभसन्तुष्टः, द्वन्द्वातीतः, विमत्सरः,
समः, सिद्धौ, असिद्धौ, च, कृत्वा, अपि, न, निबध्यते।।22।।

अनुवाद : (यदृच्छालाभसन्तुष्टः) जो बिना इच्छाके अपने आप प्राप्त हुए पदार्थमें सदा संतुष्ट रहता है (विमत्सरः) जिसमें ईर्ष्याका सर्वथा अभाव हो गया है (द्वन्द्वातीतः) जो हर्ष-शोक आदि द्वन्द्वोंसे सर्वथा अतीत हो गया है ऐसा (सिद्धौ) कार्य की सिद्धि (च) और (असिद्धौ) असिद्धिमें (समः) समान रहने वाला अर्थात् अविचलित (कृत्वा) कार्य करते-करते शास्त्र अनुकूल भक्ति करता हुआ (अपि) भी उनसे (न) नहीं (निबध्यते) बँधता। क्योंकि पूर्ण संत से पूर्ण मंत्र जाप प्राप्त करने के उपरान्त निष्काम शास्त्र अनुकूल साधना के शुभ कर्म भक्ति में सहयोगी होते हैं तथा पाप विनाश हो जाते हैं। जिससे कर्म बन्धन मुक्त हो जाता है। (22)

अध्याय 4 का श्लोक 23

गतसङ्गस्य मुक्तस्य ज्ञानावस्थितचेतसः।
यज्ञायाचरतः कर्म समग्रं प्रविलीयते। २३।

गतसंगस्य, मुक्तस्य, ज्ञानावस्थितचेतसः,
यज्ञाय, आचरतः, कर्म, समग्रम्, प्रविलीयते।।23।।

अनुवाद : (गतसंगस्य) शास्त्र विरुद्ध साधना से आस्था हटने के कारण (मुक्तस्य) उस मुक्त हुए साधक का (ज्ञानावस्थितचेतसः) चित्त निरन्तर परमात्मा के तत्वज्ञानमें स्थित रहता है ऐसे केवल (यज्ञाय) शास्त्र अनुकूल भक्ति के लिये कर्म (आचरतः) आचरण करनेवाले मनुष्यके (समग्रम्) सम्पूर्ण (कर्म) कर्म (प्रविलीयते) प्रभु साधना के प्रति विलीन हो जाते हैं। (23)

अध्याय 4 का श्लोक 24

ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना। २४।

ब्रह्म, अर्पणम्, ब्रह्म, हविः, ब्रह्माग्नौ, ब्रह्मणा, हुतम्,
ब्रह्म, एव, तेन, गन्तव्यम्, ब्रह्मकर्मसमाधिना।।24।।

अनुवाद : (अर्पणम्) ऐसे शास्त्र अनुकूल साधक का समर्पण भी (ब्रह्म) ब्रह्म अर्थात् परमात्मा को है और (हविः) हवन किये जाने योग्य द्रव्य भी (ब्रह्म) प्रभु ही है तथा (ब्रह्मणा) पूर्ण परमात्मा के निमित्त (ब्रह्माग्नौ) ब्रह्मरूप अग्निमें अर्थात् प्रभु स्तुति से (हुतम्) पापों की आहूति हो जाती है अर्थात् पाप विनाश हो जाते हैं (एव) वास्तव में (ब्रह्मकर्मसमाधिना) सांसारिक कार्य करते हुए भी जिसका ध्यान परमात्मा में ही लीन रहता है और जो आसानी से शरीर से होने वाले कर्म करता है अर्थात् सहज समाधी में रह कर साधना करता है (तेन) उसके लिए (ब्रह्म) परमात्मा (गन्तव्यम्) प्राप्त किये जाने योग्य है अर्थात् वही परमात्मा प्राप्त कर सकता है जो सहज समाधि में रहता है। (24)

आदरणीय गरीबदास जी महाराज भी कहते हैं :-

जैसे हाली बीज धुन, पंथी से बतलावै। वा में खण्ड पड़े नहीं ऐसे ध्यान(समाधी) लगावै।।

भावार्थ :- जैसे किसान खेत में गेहूं या अन्य फसल बीज रहा हो और कोई यात्री आ जाए तो रस्ता पूछने पर वह किसान हल चलाते-चलाते बीज बीजते हुए यात्री को रस्ता भी बताता है, परन्तु उसकी समाधि (ध्यान) अपने मूल कार्य में ही रहता है। इसे सहज समाधि (कर्मसमाधी) कहा जाता है। इसी का प्रमाण पवित्र गीता जी कह रही है कि जो कर्मयोगी अपना कार्य करता हुआ भी प्रभु में ध्यान रखता है, वही प्रभु को प्राप्त करने योग्य भक्त है।

गरीब, नाम उठत नाम बैठत नाम सोवत जाग वे। नाम खाते नाम पीते नाम सेती लाग वे।।

अध्याय 4 का श्लोक 25

दैवमेवापरे यज्ञं योगिनः पर्युपासते।
ब्रह्माग्नावपरे यज्ञं यज्ञेनैवोपजुह्वति।२५।

दैवम्, एव, अपरे, यज्ञम्, योगिनः, पर्युपासते,
ब्रह्माग्नौ, अपरे, यज्ञम्, यज्ञेन, एव, उपजुह्वति।।25।।

अनुवाद : (अपरे) इसके विपरित दूसरे (योगिनः) योगीजन (दैवम्) देवताओंके पूजनरूप (यज्ञम्) यज्ञका (एव) ही (पर्युपासते) भलीभाँति अनुष्ठान किया करते हैं और (अपरे) अन्य योगीजन (ब्रह्माग्नौ) परमात्मा प्राप्ति की विरह रूपी अग्नि (यज्ञेन) अपने ही विचार से धार्मिक कर्मों के द्वारा (एव) ही (यज्ञम्) धार्मिक कर्मों का (उपजुह्वति) अनुष्ठान किया करते हैं। (25)

अध्याय 4 का श्लोक 26

श्रोत्रादीनीन्द्रियाण्यन्ये संयमाग्निषु जुह्वति।
शब्दादीन्विषयानन्य इन्द्रियाग्निषु जुह्वति।२६।

श्रोत्रादीनि, इन्द्रियाणि, अन्ये, संयमाग्निषु, जुह्वति,
शब्दादीन्, विषयान्, अन्ये, इन्द्रियाग्निषु, जुह्वति।।26।।

अनुवाद : (अन्ये) अन्य योगीजन (श्रोत्रादीनि) कान नाक आदि बन्द करके अर्थात् हठ योग से (इन्द्रियाणि) समस्त इन्द्रियोंको (संयमाग्निषु) संयमरूप अग्नियोंमें (जुह्वति) हवन की तरह पाप जलाने का प्रयत्न किया करते हैं और (अन्ये) दूसरे साधक (शब्दादीन्) शब्द-र्स्पस आदि (विषयान्) समस्त विषयोंको (इन्द्रियाग्निषु) इन्द्रियरूप अग्नियोंमें (जुह्वति) हवन की तरह पाप जलाने का प्रयत्न किया करते हैं अर्थात् हठ करके साधना करने को मोक्ष मार्ग मानते हैं। (26)

अध्याय 4 का श्लोक 27

सर्वाणीन्द्रियकर्माणि प्राणकर्माणि चापरे।
आत्मसंयमयोगाग्नौ जुह्वति ज्ञानदीपिते।२७।

सर्वाणि, इन्द्रियकर्माणि, प्राणकर्माणि, च, अपरे,
आत्मसंयमयोगाग्नौ, जुह्वति, ज्ञानदीपिते।।27।।

अनुवाद : (अपरे) दूसरे योगीजन (सर्वाणि,इन्द्रियकर्माणि) इन्द्रियोंकी सम्पूर्ण क्रियाओंको (च) और (प्राणकर्माणि) प्राणोंकी अर्थात् स्वांसों की समस्त क्रियाओंको (ज्ञानदीपिते) ज्ञानसे प्रकाशित (आत्मसंयमयोगाग्नौ) अपने आप को संयमयोगरूप अग्निमें (जुह्वति) हवन किया करते हैं अर्थात् ज्ञान से संयम करके साधना करते हैं, इसी को मोक्ष मार्ग मानते हैं। (27)

अध्याय 4 का श्लोक 28

द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथापरे।
स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च यतयः संशितव्रताः। २८।

द्रव्ययज्ञाः, तपोयज्ञाः, योगयज्ञाः, तथा, अपरे,
स्वाध्यायज्ञानयज्ञाः, च, यतयः, संशितव्रताः।।28।।

अनुवाद : (अपरे) कई साधक (द्रव्ययज्ञाः) द्रव्य-सम्बन्धी धार्मिक कर्म केवल दान करनेवाले हैं कितने ही (तपोयज्ञाः) तपस्यारूप धार्मिक कर्म करनेवाले हैं (तथा) तथा दूसरे कितने ही (योगयज्ञाः) योगासन रूप धार्मिक कर्म करनेवाले हैं (च) और कितने ही (संशितव्रताः) अहिंसा घोर व्रतोंसे युक्त (यतयः) यत्नशील हैं और (स्वध्यायज्ञानयज्ञाः) कुछ स्वाध्यायरूप ज्ञानयज्ञ अर्थात् केवल सद्ग्रन्थों का नित्य पाठ करनेवाले हैं अर्थात् इसी को मोक्ष मार्ग मानते हैं। (28)

अध्याय 4 का श्लोक 29-30

अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथापरे।
प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणाः। २९।

अपरे नियताहाराः प्राणान्प्राणेषु जुह्वति।
सर्वेऽप्येते यज्ञविदो यज्ञक्षपितकल्मषाः। ३०।

अपाने, जुह्वति, प्राणम्, प्राणे, अपानम्, तथा, अपरे,
प्राणापानगती, रुद्ध्वा, प्राणायामपरायणाः।।29।।
अपरे, नियताहाराः, प्राणान्, प्राणेषु, जुह्वति,
सर्वे, अपि, एते, यज्ञविदः, यज्ञक्षपितकल्मषाः।।30।।

अनुवाद : (अपरे) दूसरे (अपाने) अपानवायुमें (प्राणम्) प्राणवायुको (जुह्वति) हवन की तरह पाप जलाने का प्रयत्न करते हैं। (तथा) वैसे ही (प्राणे) प्राणवायुमें (अपानम्) अपानवायुको करते हैं तथा (अपरे) अन्य कितने ही (नियताहाराः) नियमित आहार करनेवाले (प्राणायामपरायणाः) प्राणायामपरायण (प्राणापानगती) प्राण और अपानकी गतिको (रुद्ध्वा) रोककर (प्राणान्) प्राणोंको अर्थात् स्वांसों को सूक्ष्म करके (प्राणेषु) प्राणोंमें ही (जुह्वति) हवन की तरह जलाने का प्रयत्न किया करते हैं अर्थात् प्राणायाम करके ही प्रभु प्राप्ति के लिए प्रयत्न करते हैं। (एते) ये (सर्वे,अपि) सभी साधक (यज्ञक्षपितकल्मषाः) उपरोक्त धार्मिक कर्मों अर्थात् साधनाओं द्वारा पापोंका नाश कर देनेवाले(यज्ञविदः)भक्ति साधन समझते हैं अर्थात् इसी साधना को मोक्ष मार्ग मानते हैं। (29-30)

अध्याय 4 का श्लोक 31

यज्ञशिष्टामृतभुजो यान्ति ब्रह्म सनातनम्।
नायं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरुसत्तम। ३१।

यज्ञशिष्टामतभुजः, यान्ति, ब्रह्म, सनातनम्,
न, अयम्, लोकः, अस्ति, अयज्ञस्य, कुतः, अन्यः, कुरुसत्तम।।31।।

अनुवाद : (कुरुसत्तम) हे कुरुक्षेष्ठ अर्जुन! (यज्ञ शिष्ट अमतभुजः) उपरोक्त शास्त्रविधि रहित साधनाओं से बचे हुए बुद्धिमान साधक शास्त्र अनुकूल साधना से बचे हुए लाभ को उपभोग करके (सनातनम् ब्रह्म) आदि पुरुष परमेश्वर अर्थात्-पूर्णब्रह्मको (यान्ति) प्राप्त होते हैं और (अयज्ञस्य) शास्त्र विधि अनुसार पूर्ण प्रभु की भक्ति न करनेवाले पुरुषके लिये तो (अयम्) यह (लोकः) मनुष्य-लोक भी सुखदायक (न) नहीं (अस्ति) है फिर (अन्यः) परलोक (कुतः) कैसे सुखदायक हो सकता है?(31)

भावार्थ :- यज्ञ से बचे हुए अमत का भोग करने का अभिप्रायः है कि ''पूर्ण परमात्मा की साधना करने वाले साधक अपने शरीर के कमलों को खोलने वाले मन्त्र का जाप करते हैं। वे मन्त्र श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्ण जी तथा श्री शिव जी, श्री गणेश जी व श्री दुर्गा जी के जाप भी हैं जो संसारिक सुख प्राप्त कराते हैं। इन के मन्त्र जाप से उपरोक्त देवी व देवताओं के ऋण से मुक्ति मिलती है जो मन्त्र जाप की ऋण उतरने के पश्चात् उस जाप की शेष कमाई से पूर्ण परमात्मा के साधक को अत्यधिक संसारिक लाभ प्राप्त होता है। इस श्लोक 31 में यही कहा है कि पूर्ण परमात्मा का साधक यज्ञ अर्थात् साधना (अनुष्ठान) से बची शेष भक्ति कमाई का उपयोग करके पूर्ण परमात्मा को प्राप्त हो जाता है। भावार्थ है कि पूर्ण परमात्मा के विधिवत् साधक को संसारिक सुख भी अधिक प्राप्त होता है तथा पूर्ण मोक्ष भी प्राप्त होता है।

विशेष - यही प्रमाण पवित्र गीता अध्याय 3 श्लोक 13 में वर्णन है तथा अध्याय 16 श्लोक 23-24 में भी है कि हे भारत! जो साधक शास्त्र विधि त्याग कर मनमाना आचरण अर्थात् मनमुखी पूजा करते हैं उनको न तो कोई सुख प्राप्त होता है, न सिद्धि तथा न ही कोई गति प्राप्त होती है अर्थात् व्यर्थ है। इसलिए शास्त्रों में अर्थात् वेदों में जो भक्ति साधना के कर्म करने का आदेश है तथा जो न करने का आदेश है वही मानना श्रेयकर है।

अध्याय 4 का श्लोक 32

एवं बहुविधा यज्ञा वितता ब्रह्मणो मुखे।
कर्मजान्विद्धि तान्सर्वानेवं ज्ञात्वा विमोक्ष्यसे। ३२।

एवम्, बहुविधाः, यज्ञाः, वितताः, ब्रह्मणः, मुखे,
कर्मजान्, विद्धि, तान्, सर्वान्, एवम्, ज्ञात्वा, विमोक्ष्यसे।।32।।

अनुवाद : (एवम्) इस प्रकार और भी (बहुविधाः) बहुत तरहके शास्त्रअनुसार (यज्ञाः) धार्मिक क्रियाऐं हैं (तान्) उन (सर्वान्) सबको तू (कर्मजान्) धार्मिक कर्मों के द्वारा होने वाली यज्ञों को (विद्धि) जान (एवम्) इस प्रकार (ब्रह्मणः) सच्चिदानन्द घन ब्रह्म अर्थात् पूर्ण परमात्मा के (मुखे) मुख कमल से उचरित वाणी अर्थात् पाँचवे वेद अर्थात् स्वसम वेद में (वितताः) विस्तार से कहे गये हैं। (ज्ञात्वा) जानकर (विमोक्ष्यसे) पूर्ण मुक्त हो जायगा। (32)

भावार्थ : गीता अध्याय 4 श्लोक 25 से 30 तक में कहा है कि कुछ साधक देवताओं की पूजा रूपी यज्ञ अर्थात् धार्मिक कर्म करते हैं दूसरे हठयोग द्वारा कर्म इन्द्रियों को साधते हैं दूसरे स्वांस क्रिया करते हैं अन्य घोर तप तथा अहिंसा आदि घोर व्रत करते हैं अन्य दान ही करते हैं दूसरे योगी जन केवल अल्पाहार ही करते हैं। ये सर्व साधक अपनी-2 साधना को पाप नाशक जानते हैं। श्लोक 32 में कहा है कि उपरोक्त साधनाओं सहित पूर्ण मोक्ष मार्ग का ज्ञान सच्चिदानन्दघन ब्रह्म अर्थात्

पूर्ण परमात्मा के द्वारा अपने मुख कमल से कहे ज्ञान अर्थात् सच्चिदानन्दघन की वाणी में (सुक्ष्म वेद में) विस्तार से कहा गया है वह तत्वज्ञान है। गीता अध्याय 4 के ही श्लोक 34 में कहा है कि उस ज्ञान को (जो सच्चिदानन्दघन ब्रह्म की वाणी में कहा है उस तत्वज्ञान को) तत्वदर्शी सन्तों से समझ तत्वदर्शी सन्त की पहचान गीता अध्याय 15 श्लोक 1 में बताई है।

अध्याय 4 का श्लोक 33

श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परन्तप।
सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते।३३

श्रेयान्, द्रव्यमयात्, यज्ञात्, ज्ञानयज्ञः, परन्तप,
सर्वम्, कर्म, अखिलम्, पार्थ, ज्ञाने, परिसमाप्यते।।33।।

अनुवाद : (परन्तप,पार्थ) हे परंतप अर्जुन! (द्रव्यमयात्) द्रव्यमय अर्थात् धन के द्वारा किये जाने वाले दान, भण्डारे आदि (यज्ञात्) यज्ञ अर्थात् धार्मिक अनुष्ठानों की अपेक्षा (ज्ञानयज्ञः) ज्ञानयज्ञ (श्रेयान्) अत्यन्त श्रेष्ठ है तथा (सर्वम्) सम्पूर्ण (कर्म)शास्त्र अनुकूल कर्म (अखिलम् ज्ञाने) सम्पूर्ण ज्ञान अर्थात् तत्वज्ञानमें (परिसमाप्यते)समाप्त हो जाते हैं। (33)

अध्याय 4 का श्लोक 34

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः।३४।

तत्, विद्धि, प्रणिपातेन, परिप्रश्नेन, सेवया,
उपदेक्ष्यन्ति, ते, ज्ञानम्, ज्ञानिनः, तत्त्वदर्शिनः।।34।।

अनुवाद : पवित्र गीता बोलने वाला प्रभु कह रहा है कि उपरोक्त नाना प्रकार की साधना तो मनमाना आचरण है। मेरे तक की साधना की अटकल लगाया ज्ञान है, गीता अध्याय 4 श्लोक 32 में कहे पूर्ण परमात्मा के पूर्ण मोक्ष मार्ग का मुझे भी ज्ञान नहीं है। उसके लिए इस मंत्र 34 में कहा है कि उस (तत्) तत्वज्ञान को (विद्धि) समझ उन पूर्ण परमात्मा के वास्तविक ज्ञान व समाधान को जानने वाले संतोंको (प्रणिपातेन) भलीभाँति दण्डवत् प्रणाम करनेसे उनकी (सेवया) सेवा करनेसे और कपट छोड़कर (परिप्रश्नेन) सरलतापूर्वक प्रश्न करनेसे (ते) वे (तत्वदर्शिनः) पूर्ण ब्रह्म को तत्व से जानने वाले अर्थात् तत्वदर्शी (ज्ञानिनः) ज्ञानी महात्मा तुझे उस (ज्ञानम्) तत्वज्ञानका (उपदेक्ष्यन्ति) उपदेश करेंगे। (34) इसी का प्रमाण गीता अध्याय 2 श्लोक 15-16 में भी है।

अध्याय 4 का श्लोक 35

यज्ज्ञात्वा न पुनर्मोहमेवं यास्यसि पाण्डव।
येन भूतान्यशेषेण द्रक्ष्यस्यात्मन्यथो मयि।३५।

यत्, ज्ञात्वा, न, पुनः, मोहम्, एवम्, यास्यसि, पाण्डव,
येन, भूतानि, अशेषेण, द्रक्ष्यसि, आत्मनि, अथो, मयि।।35।।

अनुवाद : (यत्) जिस तत्व ज्ञान को (ज्ञात्वा) जानकर (पुनः) फिर तू (एवम्) इस प्रकार (मोहम्) मोहको (न) नहीं (यास्यसि) प्राप्त होगा तथा (पाण्डव) हे अर्जुन! (येन) जिस ज्ञानके द्वारा तू (भूतानि) प्राणियोंको (अशेषेण) पूर्ण रूपसे (आत्मनि) पूर्ण परमात्मा जो आत्मा के साथ अभेद रूप में रहता है उस पूर्ण परमात्मा में (अथो) और पीछे (मयि) मुझे (द्रक्ष्यसि) देखेगा कि मैं काल हूँ यह जान जाएगा। (35)

अध्याय 4 का श्लोक 36

अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः।
सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं सन्तरिष्यसि। ३६।

अपि, चेत्, असि, पापेभ्यः, सर्वेभ्यः, पापकत्तमः,
सर्वम्, ज्ञानप्लवेन, एव, वजिनम्, सन्तरिष्यसि।।36।।

अनुवाद : (चेत्) यदि तू अन्य (सर्वेभ्यः) सब (पापेभ्यः) पापियोंसे (अपि) भी (पापकत्तमः) अधिक पाप करनेवाला (असि) है तो भी तू (ज्ञानप्लवेन) तत्वज्ञान के आधार पर वास्तविक नाम रूपी नौकाद्वारा (सर्वम्) सर्वस जानकर (वजिनम्) अज्ञान सागर से पार जाकर (एव) निःसन्देह (सन्तरिष्यसि) पूर्ण तरह तर जायेगा अर्थात् पाप रहित होकर पूर्ण मुक्त हो जायेगा। (36)

अध्याय 4 का श्लोक 37

यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन।
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा। ३७।

यथा, एधांसि, समिद्धः, अग्निः, भस्मसात्, कुरुते, अर्जुन,
ज्ञानाग्निः, सर्वकर्माणि, भस्मसात्, कुरुते, तथा।।37।।

अनुाद : (अर्जुन) हे अर्जुन! (यथा) जैसे (समिद्धः) प्रज्वलित (अग्निः) अग्नि (एधांसि) ईधनोंको (भस्मसात्) भस्ममय (कुरुते) कर देता है (तथा) वैसे ही (ज्ञानाग्निः) तत्वज्ञानरूप अग्नि (सर्वकर्माणि) सम्पूर्ण अविधिवत् कर्मोंको (भस्मसात्) भस्ममय (कुरुते) कर देता है। (37)

अध्याय 4 का श्लोक 38

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।
तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति। ३८।

न, हि, ज्ञानेन, सदशम्, पवित्रम्, इह, विद्यते,
तत् स्वयम्, योगसंसिद्धः, कालेन, आत्मनि, विन्दति।।38।।

अनुवाद : (इह) इस संसारमें (ज्ञानेन) तत्व ज्ञानके (सदशम्) समान (पवित्रम्) पवित्र करनेवाला (हि) निःसन्देह कुछ भी (न) नहीं (विद्यते) जान पड़ता (योगसंसिद्धः) उस तत्वदर्शी संत के द्वारा दिए सत भक्ति मार्ग के द्वारा जिसकी भक्ति कमाई पूर्ण हो चुकी है (कालेन) समय अनुसार (तत् आत्मनि) आत्मा के साथ अभेद रूप में रहने वाले उस पूर्ण परमात्मा को गीता अध्याय 8 श्लोक 8 से 10 में वर्णित उल्लेख के आधार से(स्वयम्) अपने आप ही (विन्दति) प्राप्त कर लेता है।(38)

अध्याय 4 का श्लोक 39

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति। ३९।

श्रद्धावान्, लभते, ज्ञानम्, तत्परः, संयतेन्द्रियः,
ज्ञानम्, लब्ध्वा, पराम्, शान्तिम्, अचिरेण, अधिगच्छति।।39।।

अनुवाद : (संयतेन्द्रियः) जितेन्द्रिय (तत्परः) उस तत्वदर्शी संत द्वार प्राप्त साधन के करने को तत्पर (श्रद्धावान्) श्रद्धावान् मनुष्य भक्ति की उपलब्धि होने पर पूर्ण परमेश्वर के (ज्ञानम्) तत्वज्ञानको (लभते) प्राप्त होता है तथा (ज्ञानम्) तत्वज्ञानको (लब्ध्वा) प्राप्त होकर वह (अचिरेण)

बिना विलम्बके तत्काल ही भगवत्प्राप्तिरूप (पराम्) ब्रह्मलोक से अन्य दिव्य (शान्तिम्) शान्तिको (अधिगच्छति) प्राप्त हो जाता है(39)

अध्याय 4 का श्लोक 40

अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति।
नायं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः।४०।

अज्ञः, च, अश्रद्दधानः, च, संशयात्मा, विनश्यति,
न, अयम् लोकः, अस्ति, न, परः, न, सुखम्, संशयात्मनः।।40।।

अनुवाद : जो साधक उस तत्वदर्शी संत के ज्ञान व साधना पर अविश्वास करता है वह (अज्ञः) विवेकहीन (च) और (अश्रद्दधानः) श्रद्धारहित (च) तथा (संशयात्मा) संश्ययुक्त मनुष्य (विनश्यति) भक्ति मार्ग से अवश्य भ्रष्ट हो जाता है ऐसे (संशयात्मनः) संश्ययुक्त मनुष्य के लिये (न) न (अयम्) इस (लोकः) लोक में (न) न (परः) दूसरे लोक यानि स्वर्गादि परलोक में (सुखम्) सुख (न अस्ति) नहीं है। (40) इसी का प्रमाण गीता अध्याय 6 श्लोक 40 में भी है।

अध्याय 4 का श्लोक 41

योगसन्न्यस्तकर्माणं ज्ञानसञ्छिन्नसंशयम्।
आत्मवन्तं न कर्माणि निबध्नन्ति धनञ्जय।४१।

योगसन्यस्तकर्माणम्, ज्ञानसछिन्संशयम्,
आत्मवन्तम्, न, कर्माणि, निबध्नन्ति, धन जय।।41।।

अनुवाद : (धन जय) हे धन जय! (योग संन्यस्त कर्माणम्) जिसने तत्वज्ञान के आधार से शास्त्र विधि रहित भक्ति के सर्व कर्मो को त्याग कर दिया और (ज्ञान सछिन्न संशयम्) जिसने तत्वज्ञान द्वारा समस्त संश्योंका नाश कर दिया है ऐसे (आत्मवन्तम्) पूर्ण परमात्मा के शास्त्र अनुकूल ज्ञान पर अडिग साधक को (कर्माणि) शास्त्र विधि त्याग कर मनमाना आचरण करने से पाप कर्म होते हैं वे शास्त्र विधि अनुसार साधना करने वाले को नहीं होते इसलिए पाप कर्म (न) नहीं (निबध्नन्ति) बाँधते अर्थात् वे पूर्ण मोक्ष प्राप्त करते हैं। (41)

अध्याय 4 का श्लोक 42

तस्मादज्ञानसम्भूतं हृत्स्थं ज्ञानासिनात्मनः।
छित्त्वैनं संशयं योगमातिष्ठोत्तिष्ठ भारत।४२।

तस्मात्, अज्ञानसम्भूतम्, हृत्स्थम्, ज्ञानासिना, आत्मनः,
छित्त्वा, एनम्, संशयम्, योगम्, आतिष्ठ, उत्तिष्ठ, भारत।।42।।

अनुवाद : (तस्मात्) इसलिये (भारत) हे भरतवंशी अर्जुन! तू (हृत्स्थम्) हृदयमें स्थित (अज्ञान सम्भूतम्) अज्ञानजनित (एनम् संशयम्) इस शास्त्र विधि रहित संश्य रूपी पाप को (ज्ञान असिना) तत्वज्ञानरूप तलवारद्वारा (छित्त्वा) छेदन करके अर्थात् दूध पानी छान कर (उत्तिष्ठ) उठ अर्थात् सावधान होकर (आत्मनः) अन्तरात्मा से पूर्ण परमात्मा के (योगम्) शास्त्र अनुकूल भक्ति में (आतिष्ठ) अडिग हो जा। (42)

(इति अध्याय चौथा)

❑❑❑

पांचवां अध्याय

।।दिव्य सारांश।।

विश्लेषण :- गीता के इस अध्याय 5 में गीता ज्ञान कहने वाले ने अपने से अन्य परमेश्वर की विशेष जानकारी बताई है। श्लोक नं. 14-21, 24, 25, 26 में विशेष वर्णन है जो इस प्रकार है :-

❖ *गीता अध्याय 5 श्लोक 14 का अनुवाद :-*

गीता ज्ञान बोलने वाले ने अपने से अन्य कुल के मालिक की महिमा बताई है कि ''प्रभु यानि कुल का स्वामी सर्व प्रथम विश्व का सजन करता है। तब न तो किसी को कर्तापन का, न कर्मों का आधार होता है, न कर्मफल के संयोग ही आधार होते, परंतु सर्व प्राणी अपने स्वभाववश किए कर्म का फल ही बरत रहे होते हैं।

❖ *अध्याय 5 श्लोक 15 का अनुवाद :- सर्वव्यापक सर्व का स्वामी यानि पूर्ण परमात्मा न किसी का पाप और न किसी के शुभ कर्म का ही प्रतिफल देता है यानि निर्धारित किए नियम अनुसार जीव फल प्राप्त करता है, किंतु अज्ञान के द्वारा ज्ञान ढ़का हुआ है जिससे तत्वज्ञानहीनता के कारण जानवरों तुल्य सब अज्ञानी मनुष्य मोहित हो रहे हैं अर्थात् स्वभाववश शास्त्र विधि रहित भक्ति कर्म करके क्षणिक सुखों में आसक्त हो रहे हैं। जो साधक शास्त्रविधि अनुसार भक्ति कर्म करते हैं। उनके पाप प्रभु क्षमा कर देता है, अन्यथा संस्कार ही बरतता है अर्थात् प्राप्त करता है।(5/15) इसी का विस्तत विवरण श्लोक 16-17 में पढ़ें।*

❖ *अध्याय 5 श्लोक 16 का अनुवाद :- परंतु जिनका वह अज्ञान पूर्ण परमात्मा के द्वारा संत रूप में प्रकट होकर आत्मज्ञान तथा परमात्म ज्ञान रूपी तत्वज्ञान बताया जाता है। जिसे तत्वदर्शी संत आगे प्रचार करते हैं, उस आत्मज्ञान द्वारा नष्ट हो गया है। उनका वह तत्वज्ञान (तत्परम्) गीता ज्ञान दाता से दूसरे उस पूर्ण परमात्मा को सूर्य की तरह प्रकाशित कर देता है यानि अज्ञान अंधेरा पूर्ण रूप से समाप्त करके परम अक्षर ब्रह्म की महिमा का ज्ञान करता है।*

❖ *अध्याय 5 श्लोक 17 का अनुवाद :- उस तत्वज्ञान के आधार से भक्ति करके साधक पूर्ण परमात्मा को प्राप्त होता है और पुनरावर्ती यानि जन्म-मरण के चक्र से मुक्त होकर पूर्ण मोक्ष प्राप्त करता है।*

❖ *अध्याय 5 श्लोक 18 का अनुवाद :- तत्वज्ञानी साधक सब जीवों को समान दष्टि से देखता है क्योंकि सबकी आत्मा एक जैसी है जो कर्मों अनुसार अन्य शरीरों को धारण किए है।(5/18)*

❖ *अध्याय 5 श्लोक 19 का अनुवाद :- जिनका मन इस प्रकार स्थित है, वह संसार में रहते हुए भी निर्दोष होकर वे (ब्रह्मणि) सच्चिदानंद घन ब्रह्म में स्थित है।(5/19)*

❖ *अध्याय 5 श्लोक 20 का अनुवाद :- जो तत्वज्ञान के आधार से सुख-दुःख को परमात्मा की रजा समझता है। वह (ब्रह्मवित्) परमात्मा के ज्ञान का जानने वाला साधक (ब्रह्मणि) सच्चिदानंद घन परमात्मा में स्थित है।(5/20)*

❖ *अध्याय 5 श्लोक 24 का अनुवाद :- तत्वज्ञानी साधक अन्तरात्मा से पूर्ण परमात्मा से जुड़ा है, वह (योगी) साधक शांत ब्रह्म यानि पर शांति युक्त परमात्मा अर्थात् सच्चिदानंद घन परमात्मा को प्राप्त होता है।*

❖ *अध्याय 5 श्लोक 25 का अनुवाद :- तत्वदर्शी संत से दीक्षा लेकर शास्त्रविधि अनुसार*

साधना करने से जिनके सब पाप नष्ट हो गए हैं। तत्वज्ञान से जिनके सब संशय निवृत हो गए हैं। वह सब प्राणियों का हितैषी होता है। वह सत्य भक्ति व शुभ कर्म करने वाला (ऋषयः) तत्वज्ञानी साधक (ब्रह्म निर्वाणम् लभन्ते) शांत ब्रह्म यानि सुखदायी शांत परमात्मा सतपुरूष को प्राप्त होते हैं। काल ब्रह्म तो उग्र प्रभु है। इसके लोक में कोई भी शांति से नहीं रह सकता। सबको कोई न कोई कष्ट बना ही रहता है। परंतु सत्यलोक में कोई कष्ट नहीं है। सर्व प्राणी शांति से रहते हैं। वह शांत परमात्मा है।

❖ *अध्याय 5 श्लोक 26 का अनुवाद :- विकार रहित व मन-जीते ज्ञानी आत्मा के लिए सब ओर पूर्ण परमात्मा ही विद्यमान में हैं यानि पूर्ण परमात्मा की सत्ता सर्व के ऊपर दिखती है।*

अध्याय 5 के श्लोक 1 में अर्जुन ने प्रश्न किया कि कर्म सन्यास और कर्मयोग में कौन सा श्रेष्ठ है?

कर्म सन्यास का विवरण :- कर्म सन्यास दो प्रकार से होता है, 1. एक तो सन्यास वह होता है जिसमें साधक परमात्मा प्राप्ति के लिए प्रेरित होकर घर त्यागकर हठ करके जंगल में बैठ जाता है तथा शास्त्र विधि रहित साधना करता है, दूसरा घर पर रहते हुए भी हठयोग करके घण्टों एक स्थान पर बैठ कर शास्त्र विधि त्याग कर साधना करता है, ये दोनों ही कर्म सन्यासी हैं।

कर्मयोग का विवरण :- यह भी दो प्रकार का होता है। एक तो बाल-बच्चों सहित सांसारिक कार्य करता हुआ शास्त्र विधि अनुसार भक्ति साधना करता है या शादी न करवा करके घर पर या किसी आश्रम में रहता हुआ सांसारिक कर्म अर्थात् सेवा करता हुआ शास्त्र विधि अनुसार साधना करता है, ये दोनों ही कर्मयोगी हैं।

दूसरी प्रकार के कर्मयोगी वे होते हैं जो बाल-बच्चों में रहते हैं तथा साधना शास्त्रविधि विरूद्ध करते हैं या शादी न करवाकर किसी आश्रम में सेवा करते हैं तथा साधना भी शास्त्रविधि के विपरित करते हैं। ये भी कर्म योगी ही कहलाते हैं।

।। कर्म सन्यासी से कर्म योगी उत्तम हैं ।।

❖ *गीता अध्याय 5 श्लोक 1 का अनुवाद :- हे (कृष्ण) कृष्ण! आप एक ओर (कर्मणाम्) कर्मों के (सन्यासम्) सन्यास की (च) और (पुनः) फिर कर्मों के (योगम्) कर्म करने की (शंससि) प्रशंसा कर रहे हैं। (एतयो) इन दोनों में से (यत्) जो (एकम्) एक मेरे लिए (श्रेयः) कल्याणकारक हो (तत्) वह (सुनिश्चितम्) भली-भांति निश्चित करके (ब्रूहि) कहिये।*

केवल हिन्दी :- हे कृष्ण! आप एक ओर तो कर्मों के सन्यास की महिमामण्डन कर रहे हैं और फिर कर्मों के योग यानि कर्मों के संयोग की अर्थात् कर्म करने की प्रशंसा कर रहे हैं। इन दोनों में से जो एक मेरे लिए कल्याणकारक हो, उसको सुनिश्चित करके कहिए।(5/1)

❖ *अध्याय 5 श्लोक 2 का मूल पाठ :-*

सन्यासः कर्मयोगः च निःश्रेयः अकरौ उभौ, तयो तू कर्मसन्यासात् कर्म योग विशिष्यते ।(2)

अनुवाद तथा *भावार्थ : गीता अध्याय 5 श्लोक 2 का भावार्थ है कि तत्वदर्शी सन्त के अभाव से जो शास्त्र विरुद्ध साधक हैं वे दो प्रकार के हैं, एक तो कर्म सन्यासी, दूसरे कर्म योगी। दोनों की साधना अमंगलकारी तथा न करने वाली अर्थात् व्यर्थ हैं क्योंकि गीता अध्याय 16 श्लोक 23 में कहा है कि शास्त्रविधि त्याग कर जो मनमाना आचरण अर्थात् पूजा करते हैं उनको लाभ नहीं होता श्लोक 24 में कहा है कि पूर्ण मोक्ष के लिए जो साधना त्यागने की है अर्थात् न करने वाली है तथा*

जो करने वाली है उनके लिए शास्त्रों को ही प्रमाण मानना। शास्त्रों का यर्थाथ ज्ञान तत्वदर्शी सन्त बताता है उसी से प्राप्त करके भक्ति करना लाभदायक है (प्रमाण गीता अध्याय 4 श्लोक 34, यजुर्वेद अध्याय 40 मन्त्र 10 व 13)। फिर भी इन उपरोक्त शास्त्र विरूद्ध दोनों साधकों में कर्मसन्यासी से कर्मयोगी अच्छा है, क्योंकि कर्मयोगी जो शास्त्र विधि रहित साधना करता है, उसे जब कोई तत्वदर्शी संत का सतसंग प्राप्त हो जायेगा तो वह तुरन्त अपनी शास्त्र विरुद्ध पूजा को त्याग कर शास्त्र अनुकूल साधना पर लग कर आत्म कल्याण करवा लेता है। परन्तु कर्म सन्यासी दोनों ही प्रकार के हठ योगी घर पर रहते हुए भी, जो कान-आंखें बन्द करके एक स्थान पर बैठ कर हठयोग करने वाले तथा घर त्याग कर उपरोक्त हठ योग करने वाले तत्वदर्शी संत के ज्ञान को मानवश स्वीकार नहीं करते, क्योंकि उन्हें अपने त्याग तथा हठयोग से प्राप्त सिद्धियों का अभिमान हो जाता है तथा गह त्याग का भी अभिमान सत्यभक्ति प्राप्ति में बाधक होता है। करोड़ों कर्म सन्यासियों में कोई-कोई ही सत्य भक्ति स्वीकार करता है। इसलिए शास्त्र विरुद्ध कर्म सन्यासी साधक से शास्त्र विरुद्ध कर्मयोगी साधक ही अच्छा है। इसी प्रकार सन्यास लेकर किसी आश्रम में रह कर शास्त्र विधी अनुसार साधना लेकर आश्रम में रहने वाले कामचोर से तो कर्मयोगी अच्छा है क्योंकि सन्यास धारण करने वाले को अपने सन्यास का अभिमान हो जाता है।

गीता सार :- अध्याय 5 के श्लोक 2 में वर्णन है कि कर्म सन्यास (घर छोड़कर जाने वाले साधक) से कर्मयोग (घर पर बाल-बच्चों सहित रहते हुए या विवाह न करवा कर सांसारिक कार्य करता हुआ घर या आश्रम में रहने वाले साधक) श्रेष्ठ हैं। उदाहरण के लिए राजा अम्ब्रीस, राजा जनक, परम पूज्य कबीर साहिब जी (कविर्देव पूर्ण परमात्मा होते हुए भी लीला करके यही सिद्ध कर रहे हैं कि जैसे मैं अपना कर्म करता हुआ साधना कर रहा हूँ यही कर्मयोग श्रेष्ठ है), संत गरीबदास साहेब जी महाराज, श्री नानक देव जी, संत नामदेव जी, संत रविदास जी आदि-2 सन्त व परमेश्वर कबीर जी कर्मयोगी थे। साथ में यह भी कहा कि यदि साधना ठीक है तो चाहे घर रहो या बाहर आश्रम आदि में दोनों ही बराबर उपलब्धि प्राप्त करेंगे। यही प्रमाण गीता अध्याय 18 श्लोक 41 से 46 में कहा है कि चारों वर्णो (ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य तथा शुद्र) के व्यक्ति भी अपने स्वभाविक कर्म करते हुए परम सिद्धी अर्थात् पूर्ण मोक्ष को प्राप्त हो जाते हैं। परम सिद्धि के विषय में स्पष्ट किया है अध्याय 18 श्लोक 46 में कि जिस परमात्मा परमेश्वर से सर्व प्राणियों की उत्पति हुई है जिस से यह समस्त संसार व्याप्त है, उस परमेश्वर कि अपने-2 स्वभाविक कर्मों द्वारा पूजा करके मनुष्य परम सिद्धी को प्राप्त हो जाता हैं अर्थात् कर्म करता हुआ सत्य साधक पूर्ण मोक्ष प्राप्त करता है। अध्याय 18 श्लोक 47 में स्पष्ट किया है कि शास्त्र विरूद्ध साधना करने वाले (कर्म सन्यास) से अपना शास्त्र विधी अनुसार (कर्म करते हुए) साधना करने वाला श्रेष्ठ है। क्योंकि अपने कर्म करता हुआ साधक पाप को प्राप्त नहीं होता। इससे यह भी सिद्ध हुआ कि कर्म सन्यास करके हठ करना पाप है। अध्याय 18 श्लोक 48 में स्पष्ट किया है कि अपने स्वाभाविक कर्मों को नहीं त्यागना चाहिए चाहे उसमें कुछ पाप भी नजर आता है। जैसे खेती करने में जीव मरते हैं आदि-2।

गरीब, डेरे डांडे खुश रहो, खुशरे लहे न मोक्ष।
ध्रू प्रहलाद उधर गए, तो डेरे में क्या दोष।।
गरीब, केले की कोपीन है, फूल पान फल खाहीं।
नर का मुख नहीं देखते, बस्ती निकट न जाहीं।।
गरीब, वो जंगल के रोज हैं, मनुष्यों बिदके जाहीं।

निश दिन फिरैं उजाड़ में, साहिब पावे नाहीं।।

भावार्थ :- परमेश्वर कबीर जी से प्राप्त तत्वज्ञान में संत गरीबदास जी ने बताया है कि जो तत्वज्ञानहीन व्यक्ति कहते हैं कि आजीवन ब्रह्मचारी रहने वाला तथा सर्व भौतिक सुविधाओं को त्यागकर वन में निवास करने वाला ही मोक्ष प्राप्ति करता है। यह सब अज्ञानता है। तत्वदर्शी संत से ज्ञान व दीक्षा लेकर मर्यादा में रहकर साधना करने से मोक्ष होता है। उदाहरण दिया है कि डेरे डांडे यानि अपने घर पर खुशी के साथ रहो और सत्य साधना करो। यदि आजीवन ब्रह्मचारी रहने मात्र से मोक्ष प्राप्त हो जाता है तो खुसरे (नपुसंक) का मोक्ष हुआ नहीं, देखा ना सुना। सत्य साधना चाहे गृहस्थ करो, चाहे ब्रह्मचारी, चाहे खुसरे करो, सबका मोक्ष हो जाता है। जैसे कहते हैं कि ध्रुव तथा प्रहलाद का मोक्ष हुआ है तो वे दोनों ही विवाहित थे, राजा रहे। फिर गृहस्थी में क्या दोष है? अर्थात् गृहस्थी भी मोक्ष प्राप्त करते हैं।

जो कर्म सन्यासी घर त्यागकर जंगल में चले जाते हैं तथा निःवस्त्र होकर केवल केले के पत्ते की कोपीन (लंगोट) बना कर फल-फूल व पत्तों का आहार करते हैं, नगर में नहीं जाते हैं, मनुष्यों के दर्शन भी नहीं करते हैं, जंगल में गुफा बनाकर या झाड़-बोझड़ों में अपना सारा जीवन बिताते हैं, यदि उनकी साधना शास्त्र विधि अनुसार नहीं है तो वे परमात्मा प्राप्ति नहीं कर सकते। क्योंकि वे तो जंगली जानवर रोज के समान हैं। जंगल में गर्मी-सर्दी, भूख-प्यास से परेशानी तथा दुःख व जंगली हिंसक जानवरों का भय बना रहता है। भक्ति तो तब हो सकती है जब गर्मी-सर्दी, भूख-प्यास का समय पर समाधान हो जाए। यह सुविधा जंगल में कर्म सन्यासी को प्राप्त नहीं हो सकती। फिर उन्हें अपने त्याग का अभिमान हो जाता है उस कारण वह भक्ति हीन हो जाता है।

कबीर, मन के मारे बन गए, बन तज बस्ती मांह।
कहैं कबीर मैं क्या करूँ, मन तो मानै नांह।।

भावार्थ :- पूर्व जन्म के भक्ति संस्कारों से प्रेरित साधक वन में जाकर किसी अज्ञानी गुरू को पूर्ण गुरू मानकर दीक्षा लेकर घोर तप साधना करता है। उससे अपनी भक्ति सफल मानकर संतुष्ट हो जाता है। कुछ समय पश्चात् जब परमात्मा परीक्षा लेता है तो तत्वज्ञान के अभाव से असफलता हाथ लगती है। पुनः विवाह करके घर लौट आता है। उदाहरण के लिए श्रंगी ऋषि की कथा :-

।। श्रंगी ऋषि जैसे कर्मसन्यासी भी असफल रहे।।

एक समय श्रंगी ऋषि कर्म सन्यासी बन कर वर्षों तक जंगल में चले गए। फिर कुछ समय जंगल में भूख-प्यास, गर्मी-सर्दी सहन करने की क्षमता प्राप्त करने के लिए कठिन हठयोग अभ्यास किया। निराहार प्राण-अपान वायु को वश करके समाधिस्थ हो जाना जिससे शरीर को गर्मी-सर्दी कम लगती है। जैसे 'ओ३म' मन्त्र (जो वेदों व गीता में ब्रह्म उपासना का सही नाम है) के जाप को करते हुए समाधी प्राप्त करना, शास्त्र विधि रहित मनमाना आचरण करने वालों का ध्यान यज्ञ कहलाता है। यज्ञ का प्रतिफल स्वर्ग या राज प्राप्ति तथा फिर चौरासी लाख योनियों में कष्ठ उठाना। क्योंकि ध्यान यज्ञ करने के लिए बैठा रहना होता है। फिर वह बैठना तप बन जाता है। ओ३म मन्त्र से उपलब्धि :--सिद्धियाँ व स्वर्ग प्राप्ति।

गरीब, ओंकार ईश्वरी माया, जिन ब्रह्मा विष्णु महेश भ्रमाया।
गरीब, ओ३म आनंदी लहर है रंग होरी हो। सोहं मुक्ता सिंध राम रंग होरी हो।

तप से राज प्राप्ति। फिर दोनों को भोगकर नरक व चौरासी लाख योनियों में कष्ट सदा बना

रहता है। क्योंकि प्राणायाम द्वारा स्वांस छोटा करके ध्यान (Meditation) से समाधी लगती है। उसमें स्वांस रोकने से वायु के कीटाणु जो स्वांस रूकने से मर जाते हैं उनका पाप अभ्यासी को भोगना पड़ता है। क्योंकि तीन लोक व ब्रह्म तक की साधना में जैसे कर्म प्राणी करता है सर्व भोग्य होते हैं। पुण्य स्वर्ग में और पाप नरक व चौरासी लाख जूनियों में भोगना पड़ता है। इसके विपरीत प्रभु के द्वारा दिए भक्ति साधन के मत (सिद्धान्त) के विरुद्ध साधना करने से दोष लगता है, प्रभु की आज्ञा की अवहेलना करने के कारण वह पाप और भयंकर होता है। श्रंगी ऋषि जी ने स्वांस रोक कर तथा अल्प आहार करने का अभ्यास कर लिया। वे वक्ष की ओर मुख करके साधना करते तथा सारा दिन में एक बार वक्ष की छाल पर जिह्वा से चाटते थे। बस यह आहार था। फिर कुछ वर्षो के बाद अयोध्या के बाहर नजदीक ही जंगल में आकर बैठ गए तथा अपनी साधना का प्रदर्शन करने लगे। अयोध्या वासियों के लिए एक विशेष चर्चा तथा आकर्षण का कारण बन गए।

एक दिन राजा दशरथ की लड़की शांता भी अपने पिता से आज्ञा लेकर ऋषि के दर्शनार्थ गई। वह श्रंगी ऋषि के स्वरूप को देख कर आसक्त हो गई। फिर उसको उठाने का प्रयत्न करने लगी। किसी ने बताया कि जहाँ यह जिह्वा से छाल को चाटता है वहां कुछ शहद लगा दो तथा साथ में खाना ले जाना। जब यह आँखें खोले तो इसे खाना खिलाना। फिर यह ज्यादा समाधिस्थ नहीं हो पाएगा। ऐसा ही किया। ऋषि जी ने शहद के लगने से आनन्द आया तथा कई बार छाल को चाटा। दूसरे दिन आँखें खोली तथा खीर खाई। राजा दशरथ श्रंगी ऋषि को पहुँचा हुआ योगी मान कर घर ले गया तथा गुरु बनाया। पुत्र प्राप्ति के लिए प्रार्थना की, तब श्रंगी ऋषि ने एक पुत्रेष्टि यज्ञ करवाने की सलाह दी। दिन निश्चित हुआ। उसी दौरान श्रंगी ऋषि से शांता का प्रेम सम्बन्ध हो गया। परंतु राजा दशरथ ने मना कर दिया कि हम क्षत्री हैं, यह ब्राह्मण है, इसलिए विवाह असंभव है। एक ऋषि ने लड़की को गोद लिया। फिर उनका विवाह कर दिया। ऋषि अपनी पत्नी को लेकर दूर जंगल में चला गया। वहाँ कुटी बनाकर रहने लगा। इसका प्रमाण श्री तुलसीदास कत रामायण के बाल काण्ड 'रामकलेवा' में (पष्ठ नं. 274) में निम्न साखियों में है।

बोली सिद्धि सुनहु रघुनन्दन तुम हमार नन्दोई।
एक बात तुम सौ हम पूछें लला न राखहु गोई।।
होत ब्याह सम्बन्ध सबन कौं अपनी ही जातिहि माही।
निज बहिनी श्रंगी ऋषि को तुम कैसे दियौ विवाही।।
की उनको मुनीश लै भाग्यौ की बौई संग लागी।
ऐसी बात बतावहु लालन तुम रघुवंश अदागी।।

यहां पर आदरणीय गरीबदास साहेब जी महाराज कहते हैं पूर्ण परमात्मा की सही साधना न मिलने से यह प्राणी समझ लेता है मैं ठीक कर रहा हूँ। परंतु प्रतिफल गलत होता है।

गरीब, डींभ करै डूंगर चढें, अंतर झीनी झूल। जग जाने बंदगी करे, बोवै शूल बबूल।।1
गरीब, जैसे चंदन शर्प लिपटाई। शीतल तन भया विष नहीं जाई।।2

भावार्थ :- पाखण्ड (डींभ) करके (डूंगर) ऊँचे स्थान पर चढ़कर घोर तप करके प्रदर्शन करने वालों के अंदर विकार प्रभावित रहते हैं। जैसा कि गीता अध्याय 3 श्लोक 6 में भी प्रमाण है जो मूढ़ बुद्धि आत्मा समस्त इन्द्रियों को हठपूर्वक ऊपर से रोककर मन से इन्द्रियों का चिंतन करता रहता है, वह मिथ्याचारी यानि दम्भी (पाखंडी) कहा जाता है। ऊपर वाणी में भी कहा है कि जनता को दिखाने के लिए पाखण्ड करके ऊँचे स्थान पर हठ करने का ढ़ोंग करता है। अंदर सर्व विकार

मचल रहे हैं। भोली जनता समझ रही है कि बहुत बड़ा भक्त है कितनी कठिन साधना कर रहा है, परंतु वह शास्त्रविधि त्यागकर मनकल्पित घोर तप करके अपने भविष्य में काँटे बीज रहा है क्योंकि गीता अध्याय 17 श्लोक 5-6 में इस प्रकार के तप को करने वाले असुर स्वभाव के कहा है।

सतनाम व सारनाम की भक्ति (कमाई) बिना अन्य साधना पूज्य परमेश्वर कविर्देव (कबीर प्रभु) के बताए अनुसार आदरणीय गरीबदास साहेब जी ने ऐसी बताई जैसे सर्प गर्मियों में चन्दन के वक्ष से चिपक जाते हैं। उन्हें महसूस होता है कि हमें शांति मिल रही है परन्तु उनका विष कम नहीं हो रहा है जिसके कारण उन्हें गर्मी तथा बेचैनी-भय बना रहता है।

इसी प्रकार साधक चाहे ब्रह्म (काल) उपासना कितनी ही करें उनके विकार (काम, क्रोध, मोह, लोभ, अंहकार) कम नहीं होते जो उनके दुःख का कारण है। इसलिए कर्म सन्यासी से कर्मयोगी उत्तम है।

।। वेदों में वर्णित साधना से विकार रहित नहीं होते ।।

अध्याय 5 के श्लोक 7 का भाव है कि जो व्यक्ति आत्म तत्व में आ जाता है वह विचार करता है कि बुराई नहीं करनी चाहिए, उसके लिए मन को वश करने की कोशिश करता है उसने मान लिया कि मन वश कर लिया वह पवित्र आत्मा बुरे कर्म न करने की कोशिश करता है परंतु ब्रह्म साधना से मन काबू नहीं हो सकता। जैसे :- श्री नारद जी ने कई वर्षों तक जंगल में जाकर (कर्म सन्यास लेकर) साधना की तथा मान लिया कि अब मैंने मन व ईन्द्रियों पर काबू पा लिया है।

भावार्थ यह है कि कई श्लोकों में गीता ज्ञान दाता ब्रह्म कह रहा है कि मेरी भक्ति कर, मुझे ही प्राप्त होगा। अपनी स्थिति बताई है कि पुनरावर्ती यानि जन्म-मरण तेरा और मेरा सदा बना रहेगा। गीता ज्ञान दाता ने स्पष्ट किया है कि यदि तत् ब्रह्म (परम अक्षर ब्रह्म) की भक्ति करेगा तो उसी को प्राप्त होगा। फिर कभी जन्म-मृत्यु को प्राप्त नहीं होगा। उस परमेश्वर की भक्ति का ज्ञान तत्वदर्शी संतों से जानने को कहा है। वह तत्वज्ञान वेदों में व गीता में संपूर्ण नहीं है। जिस कारण से वेदों अनुसार साधना करने वाले चाहकर भी विकार रहित नहीं हुए। उदाहरण के लिए :-

।। नारद जी की कहानी ।।

एक दिन नारद जी ने अपने पिता ब्रह्मा को कहा कि पिता जी मैंने वर्षो तक घोर साधना करके मन व इन्द्रियों का दमन कर लिया है। अब योग युक्त हो गया हूँ। तब ब्रह्मा ने कहा यह बात अपने मन में रखना। किसी को मत कहना, विशेष कर अपने चाचा विष्णु जी को तो बिल्कुल न बताना।

नारद जी ने सोचा पिता जी मेरी उपलब्धि पर विश्वास नहीं करते कि मैं पूर्ण तरह विकार रहित हो चुका हूँ। नारद जी एक दिन चलते-2 विष्णु लोक में पहुँच गए। विष्णु जी ने पूछा ऋषिवर कई वर्षों बाद दर्शन दिए, दूज का चाँद बन गए। कुशल मंगल तो है? तब नारद जी ने बताया कि भगवन! मैं वर्षों तक जंगल में (कर्म सन्यास लेकर) साधना करके आया हूँ। मैंने अपने मन व इन्द्रियों का दमन कर लिया है। अब मैं इनके वश नहीं रहा। इस पर विष्णु जी ने कहा बहुत अच्छा किया। ऋषियों का यह प्रथम कार्य होता है कि अपने मन व इन्द्रियों को वश करें। काल (ज्योति निरंजन) की प्रेरणा वश होकर भगवान विष्णु को ख्याल आया कि इसे अभिमान हो गया है (काल भगवान को चिंता बनी रहती है कि कहीं ये ऋषि लोग साधना करके उत्पादन कम न कर दें। काल भगवान दोनों तरफ खेलता है। एक तरफ तो नारद जी को अभिमान वश विष्णु जी के पास भेजा।

फिर स्वयं विष्णु को वही काल प्रेरणा देता है) इसका मान भंग किया जाए तथा फिर योजना बनवाई। (यह सब काल ज्योति निरंजन-महाविष्णु खेल खेलता है।) विष्णु जी ने माया से एक सुन्दर नगर बनवाया। उसमें राजा की लड़की का स्वयंवर रचा। नारद जी विष्णु जी से विदा ले कर चले जा रहे थे। उस नगरी में विशेष चहल-पहल देखी। फिर पूछा कि आज इस नगरी में इतनी रौनक (चहल-पहल) कैसे है? पता चला कि यहाँ के राजा की लड़की अपना मन पसंद वर वरेगी। दूर-दूर से युवराज (नवजवान राजा) आए हैं। लड़की, क्या बात है? मानो स्वर्ग से परी उतर आई हो। पृथ्वी पर ऐसी लड़की नहीं होगी। जो इसको पाएगा भाग्यशाली होगा।

उसी समय विवाह के गीतों से व काल प्रेरणा से कामदेव जाग उठा। (भूभल में आग, राख में दबी हुई अग्नि को जब छेड़ा जाता है वह अत्यधिक धधकता हुआ अंगारा होता है) ठीक उसी प्रकार कामदेव (सैक्स) इतना प्रबल हुआ कि नारद जी ने ज्ञान हीन होकर केवल पत्नी प्राप्ति का यत्न सोचा। विचार किया कि मेरे इस रूप को लड़की पसंद नहीं करेगी। क्यों न विष्णु जी से उनका रूप मांग लूं। लड़की देखते ही पसंद करेगी। एकांत स्थान पर जा कर विष्णु जी को सुमरण किया, उसी समय भगवान विष्णु जी ने प्रकट होकर याद करने का कारण पूछा। नारद ने सर्व विवरण बता कर कहा कि हे भगवन! आजतक इस दास ने आप से कुछ नहीं माँगा है। आज कुछ माँगना चाहता हूँ, मना मत करना। विष्णु जी ने कहा माँगो, ऋषिवर। नारद ने कहा वचन बद्ध हो जाओ, तब माँगू। भगवान बोले माँगो। नारद जी बोले मुझे हरि रूप चाहिए। मैंने विवाह कराना है। इस पर भगवान विष्णु 'तथास्तु' कह कर चले गए। हरि नाम बन्दर का भी होचता है। नारद जी का मुख बन्दर का बन गया। ऋषि जी अपने मन में अति प्रसन्न चित्त से स्वयंवर स्थल की ओर चला तथा पहुँच कर आसन पर विराजमान हुआ। लड़की हाथ में वरमाला लिए सर्व राजाओं को ध्यान व अदा से देखती हुई चली आ रही है। वह नारद जी को छोड़ कर आगे चली गई। नारद जी वहां से यह सोचते हुए उठ कर अगली खाली कुर्सी पर जा बैठा कि शायद लड़की ने मेरी ओर ध्यान नहीं दिया नहीं तो मुझे देखते ही वरमाला डाल देती। लड़की फिर नारद जी को छोड़ कर आगे चली जाती है। नारद जी ने सोचा यह लड़की अंधी तो नहीं है। फिर आगे जाकर खाली कुर्सी (आसन) पर बैठ गया। जब नारद के पास लड़की आई तो नारद जी खड़ा हो गया और सोचा कि अब तो अवश्य ध्यान पड़ेगा। लड़की दो कदम पीछे होकर आगे चल पड़ी। नारद ने सोचा कि क्या कमाल है? इतने में एक राजकुमार ने नारद जी को दर्पण दिखाया। उसमें अपने कुरूप (वानर रूप) को देखकर विष्णु जी को छलिया कहा तथा सामने क्या देखता है कि स्वयं विष्णु जी आकर एक सिंहासन पर विराजमान हो जाते हैं और लड़की उनके गले में वरमाला डाल देती है। तब नारद जी के क्रोध की सीमा न रही तथा शाप दे दिया कि जैसे मैं आज पत्नी के वियोग में तड़फ रहा हूँ ऐसे ही आप भी एक पूरा जीवन पत्नी के वियोग में बिताओगे। जिसके शाप वश विष्णु जी ने श्री रामचन्द्र जी के रूप में राजा दशरथ के यहां जन्म लिया, फिर सीता से विवाह तथा तुरंत ही वनवास, फिर वन से सीता हरण, फिर लड़ाई करके रावण को मार कर सीता जी की अग्नि परीक्षा लेकर अयोध्या आए, फिर एक धोबी के कहने से सीता को घर से निकालना तथा अंत तक सीता व राम का मिलन न होना नारद जी के शाप का परिणाम है।

यहां यह काल स्वयं जीव को विवश करके कर्म करवाता है तथा उसके भोग का भागी उसे ही बनाता है। जैसे श्री विष्णु जी को प्रेरित करके श्री नारद जी को बन्दर का मुख लगाना, फिर उसके शाप का दुःख भोग विष्णु जी को मिला।

भावार्थ :- इस अध्याय 5 श्लोक 3 में शास्त्र विधि अनुसार साधना करने वाले कर्मयोगी का विवरण है कि जो श्रद्धालु भक्त चाहे बाल-बच्चों सहित है या रहित है या किसी आश्रम में रहकर सतगुरु व संगत की सेवा में रत है। वह सर्वथा राग-द्वेष रहित होता है। वास्तव में वही सन्यासी है, वही फिर अन्य शास्त्र विरुद्ध साधकों को पूर्ण निश्चय के साथ सत्य साधना का ज्ञान बताता है।

विशेष :-- अध्याय 5 के श्लोक 4 में ज्ञानयोगी व गृहस्थी दोनों की एक ही उपलब्धि बताई है। यदि कोई कहता है कि ज्ञानयोगी श्रेष्ठ या गृहस्थी श्रेष्ठ है, वह पण्डित नहीं है। यदि दोनों की भक्ति शास्त्रानुकूल है तथा गुरु मर्यादा में रहते हैं तो दोनों ही सफल हैं। यदि भक्ति शास्त्र विधि अनुकूल नहीं है वह चाहे गृहस्थी है या ज्ञानयोगी दोनों ही असफल हैं। स्वयं भगवान भी कह रहे हैं कि शास्त्र विधि रहित साधक कर्म सन्यासियों से कर्म योगी (गृहस्थी) उत्तम है। चूंकि कर्म सन्यास में त्याग का अभिमान होना स्वाभाविक है जो परमात्मा प्राप्ति में पूर्ण रूप से बाधक है। अध्याय 5 के श्लोक 5 में कहा है कि ज्ञान योगी तथा कर्म योगी एक ही स्थान प्राप्त करते हैं। जिनकी साधना यदि शास्त्रानुकूल है और जो कोई ऐसा जानता है उसे सही ज्ञान है।

विशेष :- उपरोक्त अध्याय 5 श्लोक 4-5 का भावार्थ है कि कोई तो कहता है कि जिसको ज्ञान हो गया है, वह शादी नहीं करवाता तथा आजीवन ब्रह्मचारी रहता है और वही पार हो सकता है, वह चाहे घर रहे, चाहे किसी आश्रम में रहे। कारण वह व्यक्ति कुछ ज्ञान प्राप्त करके अन्य जिज्ञासुओं को अच्छी प्रकार उदाहरण देकर समझाने लग जाता है। तो भोली आत्माऐं समझती हैं कि यह तो बहुत बड़ा ज्ञानी हो गया है। यह तो पार है, हमारा गृहस्थियों का नम्बर कहाँ है? कुछ एक कहते हैं कि बाल-बच्चों में रहता हुआ ही कल्याण को प्राप्त होता है। कारण गृहस्थ व्यक्ति दान-धर्म करता है, इसलिए श्रेष्ठ है। इसलिए कहा है कि वे तो दोनों प्रकार के विचार व्यक्त करने वाले बच्चे हैं, उन्हें विद्वान न समझो। वास्तविक ज्ञान तो पूर्ण संत जो तत्वदर्शी है, वही बताता है कि शास्त्र विधि अनुसार साधना गुरु मर्यादा में रहकर करने वाले उपरोक्त दोनों ही प्रकार के साधक एक जैसी ही प्राप्ति करते हैं। जो साधक इस व्याख्या को समझ जाएगा वह किसी की बातों से विचलित नहीं होता। ब्रह्मचारी रहकर साधना करने वाला भक्त जो अन्य को ज्ञान बताता है, फिर उसकी कोई प्रशंसा कर रहा है कि बड़ा ज्ञानी है, क्या कहने, परन्तु तत्वज्ञान से परिचित गृहस्थी व ब्रह्मचारी जानता है कि ज्ञान तो सतगुरु का बताया हुआ है, ज्ञान से नहीं, नाम जाप व गुरु मर्यादा में रहने से मुक्ति होगी। इसी प्रकार जो गृहस्थी है वह भी जानता है कि यह भक्त जी भले ही चार श्लोक व वाणी सीखे हुए है तथा अन्य इसके व्यर्थ प्रशंसक बने हैं, ये दोनों ही मूर्ख हैं। मुक्ति तो नाम जाप व गुरु मर्यादा में रहने से होगी, नहीं तो दोनों ही पाप के भागी व भक्तिहीन हो जायेंगे। ऐसा जो समझ चुका है वह चाहे ब्रह्मचारी है या गृहस्थी दोनों ही वास्तविकता को जानते हैं। उसी वास्तविक ज्ञान को जानकर साधना करने वाले के विषय में निम्न मंत्रों में वर्णन किया है।

विशेष :- गीता जी के अन्य अनुवाद कर्त्ताओं ने जो अनुवाद गीता अध्याय 5 श्लोक 4 में लिखा है कि सन्यास और कर्मयोग दोनों द्वारा एक ही फल मिलता है यह गीता अध्याय 5 श्लोक 6 के आधार से गलत सिद्ध होता है जिस में लिखा है कि ''सन्यासः अयोगतः तु दुःखम् आप्तुम्'' शब्दार्थ है कि सन्यास मार्ग तो शास्त्रविरूद्ध साधना होने से दुःख का हेतु है। इसलिए योगयुक्त मुनि कर्मयोगी ब्रह्म निचिरेण अधिगच्छति। शब्दार्थ है शास्त्र अनुकूल साधक कर्मयोगी अविलम्ब परमात्मा को प्राप्त होता है। इस अध्याय 5 श्लोक 6 के अन्दर सर्व संस्य निवारण हो गए कि गीता अनुवाद कर्त्ताओं ने अनुवाद यथोचित नहीं किया। इस के अतिरिक्त अध्याय 5 श्लोक 2 में भी स्पष्ट

किया है कि सन्यास से कर्मयोग श्रेष्ठ है। इस कारण से भी अध्याय 5 श्लोक 4 का अनुवाद गलत किया है। गीता अध्याय 5 श्लोक 5 में सांख्ययोग का अर्थ तत्वज्ञान आधार से साधना करना है न कि सन्यास मार्ग से इसलिए मेरे द्वारा (रामपाल दास द्वारा) किया गया अनुवाद श्रेष्ठ है।

गीता अध्याय 5 श्लोक 6 का भावार्थ है कि जो सन्यास मार्ग से शास्त्र विधि त्याग कर साधना करते हैं वे चाहे ब्रह्म की साधना करते हैं, चाहे निम्न देवताओं की वे तो दुःख ही प्राप्त करते हैं। सत्य साधक कर्मयोगी शीघ्र परमात्मा प्राप्त करते हैं।

''कर्म सन्यासी को त्याग का अभिमान हो जाता है''

गीता जी अध्याय 5 श्लोक 7 में स्पष्ट किया है कि उपरोक्त दोनों प्रकार के सन्यासियों (कर्मसन्यास वाले) को अपने त्याग व साधना का अभिमान हुए बिना नहीं रहता। अभिमान भगवान के मार्ग में पूरा बाधक है अर्थात् अभिमानी व्यक्ति की सर्व साधना पूजा निष्फल हो जाती है, परमात्मा प्राप्ति नहीं होती। गीता जी के अध्याय 5 के श्लोक 2 में कहा है कि कर्मसन्यास से कर्मयोग श्रेष्ठ है।

प्रमाण : ध्रुव, प्रहलाद, राजा अम्ब्रीस, राजा जनक शास्त्र विधि रहित गहस्थी कर्मयोगी थे, श्री नानक जी, संत रविदास, संत गरीबदास साहेब जी शास्त्र अनुकूल साधना करने वाले गहस्थी (कर्मयोगी) थे, कर्मयोगी में अभिमान नहीं हो पाता है। वह अपने अशुभ से डरता रहता है और संतों का आदर करता है।

प्रमाण नं. 1 :- सुखदेव ऋषि की कथा

सुखदेव ऋषि कर्म सन्यास लेकर साधना करता था। पिछले भजन के प्रताप से उसमें आकाश में उड़ जाने की सिद्धि भी थी, जिससे उसमें मान बहुत हो गया था। अपने समान साधक (योगी) किसी को नहीं मानता था। गहस्थियों को हेय समझता था और उनके द्वारा की जा रही साधना को गलत तथा मुक्ति न मिलने वाली मानता था। चूंकि आकाश में उड़ जाने की सिद्धि प्राप्त करके यह मान लिया था कि मेरे जैसी उपलब्धि किसी को नहीं है। मैं सबसे श्रेष्ठ योगी हूँ। सर्व देवगण (इन्द्र लोक के) उन्हें पहुँचा हुआ ऋषि मान कर विशेष आदर करते थे। यहाँ तक कि एक बार सुखदेव के पास एक सुन्दर उर्वसी आई। तब सुखदेव ने उसे छुआ तक नहीं। वह अपसरा हार कर चली गई थी। इससे ऋषि सुखदेव को अभिमान हो जाना स्वाभाविक था। वह तीनों लोकों में उड़ कर चला जाता था। इसी विषय में सन्त गरीबदास जी महाराज ने कहा है :-

गोरख से ज्ञानी घने, सुखदेव जती जिहान। सीता सी बहुत भार्या, सन्त दूर अस्थान।।

भावार्थ :- परमेश्वर कबीर जी सर्व प्राणियों के उत्पत्तिकर्ता हैं। इसलिए सर्व के पिता तथा माता, भाई, सखा (मित्र) रूप में सच्चे हितैषी हैं। श्री गोरखनाथ जी से ज्ञान गोष्ठी करके यथार्थ अध्यात्म ज्ञान कबीर जी ने बताया था। उस ज्ञान से श्री गोरखनाथ जी ने निनानवें (99) करोड़ राजाओं को भक्ति प्रेरणा करके सन्यासी बनाया था। परंतु पूर्ण मोक्ष मार्ग गोरखनाथ जी के पास नहीं था। जिस कारण से उनका पूर्ण मोक्ष नहीं हुआ था। उस समय वे पूर्ण ज्ञानी प्रसिद्ध हो गए थे, परंतु संत गति से वंचित रहे। श्री सुखदेव (शुकदेव) जी पूर्ण रूप से जति (ब्रह्मचारी जो किसी स्त्री पर आकर्षित न हो) थे। राजा जनक की परीक्षा में भी सफल रहे थे। जिस समय शुकदेव जी के पास रात्रि में युवती गई। पलंग पर शुकदेव के पैरों से सटकर बैठ गई। शुकदेव जी उठ बैठे। लड़की और निकट आई तो पलंग छोड़कर खड़े हो गए तथा बहन-माता कह कक्ष से बाहर कर

दिया। परंतु यथार्थ भक्ति मार्ग न होने से संत गति से वंचित थे। विश्व में प्रसिद्ध है कि श्री रामचन्द्र जी की धर्मपत्नी सीता जी ने अपने सती धर्म को सुरक्षित रखने के लिए लंका के राजा रावण की अनेकों यातनाऐं सहन की। टस से मस नहीं हुई। श्री रामचन्द्र जी द्वारा ली गई अग्नि परीक्षा में भी सफल रही। परंतु सत्य भक्ति नहीं थी। श्री सीता जी जैसी अन्य भी बहुत सारी पत्नियाँ मिल जाएंगी। उपरोक्त सर्व प्रकार की महिमायुक्त अनेकों स्त्री-पुरूष मिल जाएंगे, परंतु पूर्ण संत मिलना दूर की बात है।

गीता अध्याय 7 श्लोक 19 में गीता ज्ञान कहने वाले ने कहा है कि सर्व मानव अन्य देवी-देवताओं की भक्ति करते हैं। मेरी भक्ति तो बहुत-बहुत जन्म-जन्मान्तर के पश्चात् कोई ज्ञानी पुरूष करता है। परंतु यह बताने वाला संत कठिनता से प्राप्त होता है (सुदुर्लभ है।) कि वासुदेव यानि जिस परमेश्वर की सत्ता सर्व ब्रह्मण्डों पर है। वही कुल का मालिक है। वही सबका उत्पत्तिकर्ता है। वही सबका पालनकर्ता है। वही पूर्ण मोक्ष दायक है। वही पूजा के योग्य है यानि वही परमेश्वर (सर्वम्) सब कुछ है। सूक्ष्मवेद में भी कहा है कि :-

कोट्यों मध्य कोई नहीं राय झूमकरा। अरबों में कोई गर्क सुनो राय झूमकरा।।

भावार्थ :- संत गरीबदास जी ने पंजाब प्रान्त के गाँव बसीयर (निकट लुधियाना शहर) से आए रामराय के पूछने पर बताया था कि पूर्ण संत करोड़ों में तो मिलेगा नहीं, अरबों में कोई एक मिलेगा जो (गरक) सर्व ज्ञान सम्पन्न तथा यथार्थ भक्ति साधना के ज्ञान को जानने वाला है।

पाठकों से निवेदन :- वर्तमान में विश्व की जनसँख्या लगभग सात अरब है। यह दास (रामपाल दास) एकमात्र सर्व ज्ञान तथा सत्य भक्ति सम्पन्न संत है, आप मानो चाहे मत मानो।

सुखदेव जी की शेष कथा :-

एक दिन सुखदेव जी श्री विष्णु जी के लोक में पहुँच गए तथा वहां के स्वर्ग (रेस्टोरेंट) में रहना चाहा। इस पर पहरेदारों ने पूछा आपके पूज्य गुरुदेव कौन हैं? क्या उनका शुभ नाम बताईए ताकि हम अपनी सूची (जिसमें उस समय के मान्यता प्राप्त गुरुओं के नाम लिखे हैं) में उनका नाम देखेंगें कि वे उपदेश देने के अधिकारी भी हैं या नहीं। इस पर ऋषि जी ने कहा कि मैंने कोई गुरु नहीं बनाया और न ही आवश्यकता समझी। चूंकी जो गुरु बनाए बैठे हैं वे दो फुट भी जमीन से हिल नहीं सकते और मैं यहाँ तक पहुँच आया हूँ। गुरु की क्या आवश्यकता है? सुखदेव जी कहते जा रहे हैं। इस पर स्वर्ग के पहरेदारों ने बताया कि हम आपको अन्दर नहीं जाने देंगे। यह भगवान विष्णु का आदेश है कि गुरु विहीन प्राणी स्वर्ग में नहीं रह सकता। यह सुन कर ऋषि सुखदेव ने सोचा कि यह नादान प्राणी (पहरेदार) मेरी महिमा से परिचित नहीं है। कहा कि मुझे भगवान विष्णु से मिलाओ, नहीं तो मैं वापिस नहीं जाऊँगा। एक पारखद (स्वर्ग के सेवक) ने भगवान विष्णु को सारा वतान्त सुनाया। तब भगवान विष्णु अपने महल से बाहर आए और सुखदेव से पूछा ऋषि जी क्या करने आए? इस पर सुखदेव ऋषि ने प्रणाम करके कहा स्वामी मैं स्वर्ग में रहने की इच्छा से आया हूँ। मुझे आपके अनुचर प्रवेश करने की आज्ञा नहीं दे रहे हैं। भगवान विष्णु सर्व जानते हुए भी पूछते हैं क्यों सेवकों (पारखदों) क्या बात है? ऋषि जी को किस लिए रोका है? इस पर सेवक (पारखद) बोले परवरदिगार! ऋषि गुरु विहीन हैं। इन्होंने कोई गुरु नहीं बना रखा। आपकी आज्ञा है कि बिना गुरु वाले साधक को स्वर्ग में प्रवेश मना है, रहना तो बहुत दूर है। पारखद के मुख से यह बात सुनकर श्री विष्णु जी ने प्रश्नात्मक पूछा क्या ऋषि जी आप गुरु विहीन हो? आश्चर्य व्यक्त करते हुए कहा -आपने गुरु नहीं बना रखा? यह सुनकर सुखदेव ने कहा! नहीं।

तब विष्णु जी ने कहा आप गुरु बनाओ फिर उनके बताए अनुसार साधना कर व मर्यादावत रह कर फिर अपनी कमाई करके स्वर्ग में आना। तब सुखदेव ने कहा भगवन! पृथ्वी पर मेरे समान कोई संत दिखाई नहीं देता। इस पर भगवान विष्णु जी ने कहा राजा जनक से नाम लो।

कबीर, गर्भ योगेश्वर गुरु बिना, लागा हरि की सेव।
कह कबीर बैकुण्ठ से फेर दिया सुखदेव।।

भावार्थ :- कबीर परमेश्वर जी ने कहा है कि सुखदेव जी को माता के गर्भ में ही ज्ञान हो गया था। बारह (12) वर्ष तक माता के गर्भ में रहा। जिस कारण से गर्भ योगेश्वर कहा जाता था। वह भी गुरू से दीक्षा लिए बिना साधना किया करता था। पूर्व जन्म की सिद्धि-शक्ति से आकाश में उड़ जाता था। एक बार श्री विष्णु जी के लोक में बने स्वर्ग स्थान पर गया। उसको बैकुण्ठ में प्रवेश नहीं करने दिया गया। इसी कारण से श्री विष्णु जी ने उसे स्वर्ग से लौटा दिया और कहा कि वर्तमान में राजा जनक मेरा परम संत है। वह मेरी दीक्षा का अधिकारी है। उससे दीक्षा लेकर गुरु बनाकर साधना करके फिर आना।

विष्णु जी के मुख से यह बात सुन कर स्वर्ग (इन्द्र लोक) में आया। उस दिन सुखदेव जी का चेहरा उतरा हुआ था। पहले जैसी रोनक (तेज) नहीं थी। सुखदेव जी के चेहरे पर निराशाजनक चिन्ह देखकर स्वर्ग में रहने वाले देवों ने पूछा क्या कारण है ऋषि जी? आज आपका चेहरा उतरा हुआ है। तब सुखदेव जी ने अपनी सारी कहानी सुनाई कि मैं विष्णु लोक में गया था तथा वहां स्वर्ग में रहने की प्रार्थना की तो भगवान ने मना कर दिया। यह सुनकर सर्व देवगण कहने लगे भगवान विष्णु ऐसे तो नहीं करते। वे तो ऋषियों के देखते ही हर्षित होते हैं तथा सीने से लगाते हैं सही कारण बताओ क्या गलती बनी है? सुखदेव ने कहा भगवान बोले आपने गुरु नहीं बना रखा। पहले गुरु बनाईए, फिर गुरु द्वारा प्राप्त उस नाम की कमाई करके यहाँ आ सकते हैं। सर्व उपस्थित देव एक स्वर से आश्चर्य जताते हुए बोले क्या? आपका कोई गुरु नहीं है? इस पर सुखदेव कुछ नहीं बोला। देवों ने कहा यह तो आप की सरा-सर नादानगी है। हम तो आपको एक अच्छा पहुँचा हुआ संत मानते थे। आप तो नादानों के भी नादान निकले। आप अति शीघ्र गुरु बनाएँ, नहीं तो चौरासी लाख जूनियाँ तैयार हैं। यह पिछले तप पुण्यों की शक्ति (सिद्धि) आपके पास है जिसके आधार पर आप आकाश में उड़ जाते हो। यह बैट्री जिस दिन डिस्चार्ज हो जाएगी उस दिन आपकी पिछली सिद्धि शक्ति समाप्त हो जाएगी। चूंकि आपकी नई कमाई (साधना) शास्त्र विरूद्ध होने से नहीं बन पा रही है। इसलिए आप नरक के भागी होवोगे और उसके बाद लख चौरासी योनियों में कष्ट पर कष्ट पावोगे। ये सब नेक सलाह देवों के मुखसे सुनकर सुखदेव जी बोले कि मेरे जैसा बाल ब्रह्मचारी, वैरागी संत पृथ्वी पर नजर नहीं आता है जिससे उपदेश लेने से आत्म कल्याण हो सके तथा विष्णु जी ने सलाह दी है कि राजा जनक से नाम (उपदेश मन्त्र) ले लो। सुखदेव ने कहा - हे देवताओ! आप ही बताओ उस गृहस्थी व्यक्ति को जिसने दस हजार रानियाँ रखी हैं कैसे प्रणाम करूँ? मैं बाल ब्रह्मचारी तथा स्त्री का मुख भी नहीं देखा है। महाराज गरीबदास जी छुड़ानी वाले की वाणी से :- सुखदेव बोला -

जनक विदेही राजा भाई, कैसे शीश नवाऊँ जाई।
सुखदेव बोले शब्द विवेका, हमने स्त्री का मुख नहीं देखा।।

भावार्थ :- ऋषि सुखदेव जी तत्वज्ञान के अभाव से अपने को इस बात से सर्वश्रेष्ठ मान रहे थे कि मैं बाल ब्रह्मचारी हूँ। ब्राह्मण कुल में जन्मा हूँ। आकाश में उड़ने की सिद्धियुक्त हूँ। राजा

जनक क्षत्रीय कुल में जन्मा है जो ब्राह्मण कुल से निम्न है। राजा जनक ग्रहस्थी यानि विवाहित है। स्त्री भोगता है। मैंने आज तक स्त्री का मुख भी नहीं देखा। ऐसे राजा जनक को गुरू बनाने के लिए कैसे सिर झुकाऊँ। मेरी प्रतिष्ठा को ठेस लगेगी। उसकी ये बातें सुनकर सर्व उपस्थित देवों ने कहा सुखदेव जब भगवान ने स्वयं आपको राजा जनक को गुरु बनाने को कहा है तो फिर विलम्ब किसलिए कर रहे हो। जीवों के पालनकर्त्ता, दुःखी जीवों के दुःख में दुःखी होने वाले भगवान का कोई स्वार्थ थोड़ा ही है। जल्दी जा कर राजा जनक से नाम ले लो। आपका कल्याण हो जाएगा। इसके बाद ऋषि सुखदेव जी अपने पिता श्री वेदव्यास जी के पास गए तथा सर्व बीती बात कह सुनाई। तब शास्त्रों के ज्ञाता श्री भगवान वेदव्यास जी ने कहा, हे बेटा! आपने गुरु नहीं बना रखा है। यह आपकी महान गलती है। मैं तो बहुत खुश था कि मेरा पुत्र एक होनहार भगवत् प्रेमी है तथा मेरा नाम ऊँचा करेगा और अपना कल्याण करेगा। आपने तो शास्त्र विहीन योग साधना करके नरक व चौरासी लाख योनियों में जाने की पूरी तैयारी कर रखी है। जाओ जैसे भगवान ने सलाह दी है वैसे ही अति शीघ्र करो। राजा जनक को गुरु धारण करके स्वर्ग प्राप्ति के अधिकारी बनो। कबीर साहेब (पूर्ण ब्रह्म) कहते हैं कि :-

कबीर, गुरु बिन माला फेरते, गुरु बिन देते दान। गुरु बिन दोनों निष्फल हैं, पूछो वेद पुरान।।

भावार्थ :- परमेश्वर कबीर जी की वाणी यानि सूक्ष्मवेद में कहा है कि गुरू धारण किए बिना चाहे राम नाम की माला घुमाते रहो, चाहे दान करते रहो। ये दोनों ही व्यर्थ हैं।

गुरु ग्रन्थ साहिब के पष्ठ नं. 946 (सीरी राग महला पहला) से सहाभार :-

बिन सतगुरु सेवें जोग न होई। बिन सतगुरु भेटें मुक्ति न कोई।।

बिन सतगुरु भेटे नाम पाईया न जाई। बिन सतगुरु भेटे महा दुःख पाई।।

बिन सतगुरु भेटे महा गरब गुबारी। नानक बिन गुरु मुआ जन्म हारि।।70।।

इस 70 नं. पौड़ी में स्पष्ट किया है कि बिना गुरु के कोई भक्ति पूर्ण नहीं होती तथा गुरु के बिना नाम (सतनाम) प्राप्त नहीं हो सकता और जीव का अभिमान समाप्त नहीं हो सकता। नानक जी कहते हैं कि बिना गुरु के यह प्राणी अपना जीवन हार जाता है अर्थात् व्यर्थ समाप्त कर जाता है। फिर सुखदेव जी अपनी मनमुखी समझ को त्याग कर नाम लेने की प्रबल इच्छा से राजा जनक के पास गए।

"गरीब, माना वचन कल्पना छाडी, सुखदेव लगी लगन जद गाढी"

भावार्थ :- ऋषि सुखदेव ने अन्य ऋषि के वचनों को मान लिया तथा उसको राजा जनक को गुरू धारण करने की दढ़ लगन लगी।

जब ऋषि सुखदेव राजा जनक के पास नाम लेने के उद्देश्य से पहुँचे तो उस समय राजा जनक स्नान करने की तैयारी में था। राजा जनक ने सेवकों से कहा कि हमारा अहोभाग्य है कि हमारे घर पर एक बहुत पहुँचे हुए महापुरुष योगी बाल ब्रह्मचारी महात्मा सुखदेव जी आए हैं। ऊँचा आसन स्वच्छ वस्त्र बिछा कर लगाओ। अनुचरों ने ऐसा ही किया। राजा जनक ने सुखदेव से कहा विराजो ऋषिवर! सुखदेव जी ने कहा कि मैं नीचे बैठूंगा। मैं आपको गुरु बनाने आया हूँ। मेरा उद्धार करो संत जी। सुखदेव के मुख से यह बात सुनकर राजा जनक ने कहा ऋषिवर क्यों उपहास करते हो? आप एक स्वयं सिद्ध पुरुष मुझ एक भिखारी से नाम दान की कह रहे हो। इस बात को सुनकर सुखदेव जी ने अपनी आप बीती बताई तथा कहा कि भगवान विष्णु जी ने भी आपको गुरु बनाने के लिए मुझे आदेश दिया है।

राजा जनक ने कहा सुखदेव जी मैं स्नान कर लेता हूँ। फिर आपको उपदेश दूँगा। राजा जनक ने अपनी पटरानी (मुख्य स्त्री) को कहा कि मेरे नहाने का पानी गर्म करो। रानी ने नौकरों से कह कर वहीं पर ईटों का एक बड़ा चूल्हा बनवाया तथा उस पर बड़ा पतीला रखकर पानी को गर्म करने के लिए लकड़ी जला दी। जब पानी उबलने लगा तो स्नान करने के लिए एक पटड़ा (लकड़ी की बड़ी चौकी) उबलते हुए पतीले के पास ही डाल दिया। उबलते हुए पानी के पतीले से लोटा भर कर राजा जनक के सिर पर डालकर पटरानी स्वयं अपने हाथों से स्नान कराने लगी। यह देख कर सुखदेव जी ने आश्चर्य हुआ कि इतने उबलते हुए पानी से राजा व रानी का शरीर जलता नहीं? राजा ने कहा आओ व्यास के पुत्र! बाल ब्रह्मचारी! जो पानी मेरे स्नान करने के बाद नीचे नाली में जा रहा है उसमें ऊँगली डालकर दिखा दे। यदि आपकी ऊँगली नहीं जली तो आप जती हो, नहीं तो तेरी झूठी योग साधना है। सुखदेव ने कहा मेरा तो सारा शरीर जल जाएगा। मेरे बस की बात नहीं है।

तब राजा ने हँसकर हथेली बजाई (तारी दी) कि मुझे एक नारी स्नान करवा रही है यह नहीं जल रही है। ऋषि सुखदेव! तेरे से अच्छी साधना तो रानी की है जो घर में रहकर भक्ति करती है। तब सुखदेव का भ्रम मिटा और राजा जनक में पूरी श्रद्धा हो गई। श्री व्यास जी के पुत्र सुख देव जी ने विवाह किया तथा भक्ति की राजा जनक जी को गुरू धारण किया। यदि गुरु में पूरी आस्था नहीं होगी तो जीव भक्ति पर नहीं लग सकता। गुरु को भगवान तुल्य मानना चाहिए। तब सुखदेव जी का कल्याण हुआ और स्वर्ग प्राप्ति हुई।

प्रमाण के लिए आदरणीय गरीबदास साहेब जी महाराज की वाणी

(सतग्रन्थ साहिब पष्ठ नं. 399 से 403 तक) :--

सुरनर मुनि गण गंधर्व ज्ञानी, सबसें ऊंचा है अभिमानी।
अधर विमान चलै मन रूपा, गर्भ योगेश्वर ज्ञान स्वरूपा।।
इन्द्रिय पांच पचीसों साधी, गर्भ योगेश्वर जोगी वादी।।
गरीब, बादी जोगी बाद करि, बिचर्या तीनों लोक।
सतगुरु जनक विदेही बिन, पावत नांही मोक्ष।।24।।
शुकदेव के तो मान घनेरा, सुरपति लुब्ध काम दल घेरा।
शुकदेव कल्प वक्षकी छांहि, जनक विदेही करैं गुरु नांहि।।
जनक बडा अक शुकदेव जोगी, दश सहंस रानी रसभोगी।
शुकदेव बोले ज्ञान बिवेका, हम स्त्री का मुख नहीं देखा।।
हम हैं गर्भ योनि सें न्यारा, ज्ञान खड्ग इन्द्रिय प्रहारा।
कैसे शीश नमाऊं जाई, जनक विदेही राजा भाई।।
पुंडरीक नारदमुनि व्यासा, ब्रह्मा विष्णु महेश उपासा।
आसन आदर अति अधिकारा, शुकदेव सकल मांहि शिरदारा।।
चौदा भुवन फिरे पलमांहि, शुकदेव सरबर दूजा नांहि।
सुर तेतीसों सहंस अठासी, शुकदेवकी सब करैं खवासी।।
वसिष्ठ विश्वामित्र ज्ञानी, कागभुसंड कहो प्रवानी।।
गरीब, कागभुशुण्डी ध्यान धरि, भये जू पद प्रवान।
आधीनी अधिकार बिन, शुकदवे मूढ अज्ञान।।25।।

सनक सनंदन नारद भाई, शुकदेव ज्ञान बहुत समझाई।
नारद कूं झीवरगुरु कीना, कह्या ज्ञानमें हो गया हीना।।
बोले ब्रह्मा विष्णु महेशा, शुकदेव नांही ज्ञान प्रवेशा।
चीन्ह्या नहीं पुरुष अविनाशी, शुकदेव गर्भ योनिके वासी।।
जनक विदेह करो गुरु सोई, गर्भ योनि सें छूटो तोही।
जनक विदेह गर्भ से न्यारा, शुकदेव गर्भ योनि अवतारा।।
गर्भ योनि है मान बड़ाई, सो शुकदेव तुम मांहि बसाई।
जनक विदेही करौ दीदारा, तौ तू गर्भ योनि सैं न्यारा।।
पिंड ब्रह्मण्ड दोऊ हैं योनी, इच्छा बीज न शुकदेव भूंनी।
चौदा भवन फिरे पल मांही, उड्या फिरौ पंखी की नांई।।
गरीब, राजा जोगी जनक है, तीन लोक तत्त सार।
मिहर करैं गुरुदेव जदि, शुकदेव उतरैं पार।।26।।
मान्या बचन कल्पना छाडी, शुकदेव लगी लगनि जदि गाढी।
शुकदेव छाडी मान बडाई, जनक विदेह किया गुरु जाई।।
बोलै जनक विदेही राजा, इन्द्रिय दमन करी किस काजा।
ब्रह्मानंद पद मिल्या न तोकूं, ऐसें दर्शत हैं सब मोकूं।।
शूकदेव सुनौं व्यास के पूता, इन्द्रिय लार लगी संजूता।
मन गुण इन्द्रिय कर्म न जानैं, व्यास पुत्र तू ज्ञान दिवानें।।
इन्द्रिय कर्म लगावौ किसकै, जिह्वा लेप नहीं मधु रसकैं।
नैंन पटलमें ईसर भागा, देखे सकल रूप अनरागा।।
तुम खेलत कुल बनज गियाना, ईश्वर पद का नांहीं ध्याना।
जैसें चंदन सर्प लिपटाई, शीतल तन भया विष नहीं जाई।।
ऐसा जोग कमाया पूता, कहा हुवा जो इन्द्रिय धूता।
सीप मांहि मोती मुक्ताहल, बाहर खारा नीर हलाहल।।
कुरंग मतंग पतंग भंग संगा, इन्द्रिय एक ठग्यो तिस अंगा।
तुमरे संग पांचौं प्रकाशा, जोग जुगति की झूठी आशा।।
हाड चाम तन खाल खलीती, याह शुकदेव तुम माया जीती।
भग सैं बिंदुबिंदुसैंदेही, चीन्ह्या नाहींशब्द सनेही।।
गरीब, दीनदुनी सुमरण करें, जपैं कालका नाम।
काल काल भक्षण करे, लख्या न अविगत धाम।।30।।
अगर फुलेल हमांम चढाया, राजा जनक न्हानकूं धाया।
दस सहंसमें जो पटरानी, करे खवासी जलहर पानी।।
जरे अंगीठ बरे तिस नीचे, राजा रानी परिमल सींचे।
आवो गर्भ जोगेश्वर जोगी, हमराजा इन्द्रिय रस भोगी।।
जो तुमरी देह अग्नि जरि जाई, तो झूठा शुकदेव जोग कमाई।
मलागिर रानी तन लावै, अगर फुलेल हमाम न्हवावै।।
राजा राणी शब्द स्वरूपा, शुकदेव परे अंध गहकूपा।
जब फुलेल लगावे अंगरी, हमरी जरिहै काया सगरी।।

राजा बिहंसि दई जदि तारी, हमों अस्नान करावे नारी।
करि अस्नान तखत पर आये, शुकदेव परम ज्ञान गोहराये।।
अकल अचिंत शब्द निर्मोही, शुकदेव दरशभर्म सब खोई।।
कबीर, राजा जनक गुरु किया, किन्हीं हरि की सेव।
कहैं कबीर बैकुण्ठ में, चले गये सुखदेव।।

कबीर पंथी शब्दावली (पष्ठ नं. 440.441) से सहाभार

सतगुरु बोलै अमत वानी। गुरु विन मुक्ति नहीं रे प्रानी।।
गुरु हैं आदि अंतके दाता। गुरु है मुक्ति पदारथ भ्राता।।
गुरु गंगा काशी अस्थाना। चारि वेद गुरु गमते जाना।।
गुरु है सुरसरि निर्मल धारा। बिन गुरु घट नाहीं हो उजियारा।।
अड़सठ तीरथ भ्रमि भ्रमि आवे। गुरुकी दया घर बैठहिं पावे।।
गुरु कहै सोई पुन करिये। मातु पिता दोउ कुल तरिये।।
गुरु पारस परसे नर लोई। लोहते कंचन होय सोई।।
शुकदेव के गुरु जनक बिदेही। वो भी गुरुके परम सनेही।।
नारद गुरु प्रहलाद पठाये। भक्ति हेतु जिन दर्शन पाये।।
कागभुसंड जोगजीत गुरु कीन्हा। अगम निगम सबही कहि दीन्हा।।
ब्रह्मा गुरु कविरग्निको कीन्हा। होम यज्ञ जिन आज्ञा दीन्हा।।
वशिष्ठ गुरु किया रघुनाथा। पाऐ दरस तब भये सनाथा।।
कष्ण गये दुर्वासा शरना। पाइ भक्ति तब तारन तरना।।
नारद दिच्छा झिमर सो पायो। चौरासी सों तुरंत छुड़ायो।।
गुरु कहै सोई है साँचा। बिन परिचय सेवक है काँचा।।
कहै कवीर गुरु आपु अकेला। दश औतार गुरुका चेला।।
साखी – राम कष्ण ते को बडा, उनहू भी गुरु कीन।
तीन लोकके वै धनी, गुरु आगे आधीन।।

❖ इससे यह स्पष्ट हुआ कि शास्त्रविरूद्ध साधना निष्फल तथा धोखा है।

अध्याय 16 का श्लोक 23

अनुवाद : (यः) जो पुरुष (शास्त्रविधिम्) शास्त्रविधिको (उत्सज्य) त्यागकर (कामकारतः) अपनी इच्छासे मनमाना (वर्तते) आचरण करता है (सः) वह (न) न (सिद्धिम्) सिद्धिको (अवाप्नोति) प्राप्त होता है (न) न (पराम्) परम (गतिम्) गतिको और (न) न (सुखम्) सुखको ही।।23।।

अध्याय 16 का श्लोक 24

अनुवाद : (तस्मात्) इससे (ते) तेरे लिये (इह) इस (कार्याकार्यव्यवस्थितौ) कर्तव्य और अकर्तव्यकी व्यवस्थामें (शास्त्रम्) शास्त्र ही (प्रमाणम्) प्रमाण है (एवम्) ऐसा (ज्ञात्वा) जानकर तू (शास्त्रविधानोक्तम्) शास्त्रविधिसे नियत (कर्म) कर्म ही (कर्तुम्) करने (अर्हसि) योग्य है।।24।।

प्रमाण नं. 2 :- राजा अम्ब्रीस कर्मयोगी तथा दुर्वासा ऋषि कर्म सन्यासी थे

श्रीमद्भागवत सुधा सागर (पष्ठ नं. 456,457) से सहाभार "नोवां स्कन्ध - अध्याय 4"

ब्रह्माजीने कहा - जब मेरी दो परार्धकी आयु समाप्त होगी और कालस्वरूप भगवान् अपनी यह सष्टिलीला समेटने लगेंगे और इस जगत्को जलाना चाहेंगे, उस समय उनके भ्रमसंगमात्रसे यह सारा

संसार और मेरा यह लोक भी लीन हो जायगा।।53।। मैं, शंकरजी, दक्ष-भृगु आदि प्रजापति, भूतेश्वर, देवेश्वर आदि सब जिनके बनाये नियमोंमें बँधे हैं तथा जिनकी आज्ञा शिरोधार्य करके हमलोग संसारका हित करते हैं, (उनके भक्तके द्रोहीको बचानेके लिये हम समर्थ नहीं हैं)।।54।।

श्रीमहादेवजीने कहा - 'दुर्वासाजी! जिन अनन्त परमेश्वरमें ब्रह्मा-जैसे जीव और उनके उपाधिभूत कोश, इस ब्रह्मण्ड के समान ही अनेकों ब्रह्मण्ड समय पर पैदा होते और समय आनेपर फिर उनका पता भी नहीं चलता, जिनमें हमारे-जैसे हजारों चक्कर काटते रहते हैं - उन प्रभुके सम्बन्धमें हम कुछ भी करनेकी सामर्थ्य नहीं रखते।।56।। मैं, सनत्कुमार, नारद, भगवान् ब्रह्मा, कपिलदेव, अपान्तरतम, देवल, धर्म, आसुरी तथा मरीचि आदि दूसरे सर्वज्ञ सिद्धेश्वर - ये हम सभी भगवान् की माया को नहीं जान सकते, क्योंकि हम उसी माया के घेरे में हैं।।57-58।।

(श्रीमद् भागवत सुधा सागर से लेख समाप्त)

इसमें ब्रह्मा स्वयं कहता है कि यह काल भगवान है जो महाविष्णु है। शंकर जी कह रहे हैं हम सब इसी महाविष्णु (काल) के घेरे में हैं।

नोट :- प्रमाण के लिए देखें श्रीमद्भागवत सुधासागर के नवम् (नौवां) स्कन्ध में अध्याय 4 व 5।

राजा अम्बरीष (राजा नाभाग के पुत्र) भगवान (महाविष्णु-काल-ज्योति निरंजन-ब्रह्म) के बहुत श्रद्धालु भक्त थे तथा श्री विष्णु जी को इष्ट मान कर साधना करते थे। एक समय उनके मन में आया कि भजन कम बनता है, इसलिए कुछ अन्न-जल संयम करूं। जिस कारण मुझे अधिक निन्द्रा आलस्य न सताए। वह निर्गुण व सर्गुण दोनों रूप से ब्रह्म की उपासना करता था। राजा ने एक नित्य नियम करना चाहा - वेदों में प्रमाण है (गीता जी में भी प्रमाण है) कि बिल्कुल न खाने वाले प्राणी की साधना सफल नहीं होती। जैसे प्रतिदिन 10 रोटियाँ खाने वाला व्यक्ति एक दिन न खाए तो भूख अधिक सताती है। भजन में ध्यान न लग कर भूख पर ध्यान बना रहता है। अत्यधिक खाना व बिल्कुल न खाना (व्रत रखना) वर्जित है। राजा अम्ब्रीष प्रतिदिन 10 रोटियाँ खाते थे। प्रतिदिन एक रोटी कम करनी शुरू कर देते थे। दसवें दिन केवल एक रोटी खाते थे। फिर एकादशी को पानी-पानी प्रयोग किया करता था।

एक दिन ऋषि दुर्वासा जो कर्म सन्यासी थे राजा अम्ब्रीष के द्वार पर आए। तब राजा ने कहा कि हे ऋषिवर! खाना खाईए, भोजन तैयार है उस पर ऋषि दुर्वासा ने कहा कि मैं स्नान ध्यान के लिए गंगा के किनारे जाता हूँ, लौट कर खाना खाऊँगा। जब ऋषि दुर्वासा स्नान ध्यान से निवर्त होकर आए, खाना खाया, फिर राजा से प्रार्थना की कि आप भी खाईए। इस पर राजा अम्ब्रीष ने कहा आज एकादशी है। मैं भोजन न खा कर केवल जल पान करता हूँ तथा विशेष ब्रह्म ध्यान करता हूँ। इस पर ऋषि दुर्वासा ने कहा राजन् यह व्रत तो शास्त्र विरूद्ध साधना है। आप मत किया करो तथा निर्गुण मार्ग से भजन-ध्यान की विधि बताई। राजा अम्ब्रीष ने ऋषि दुर्वासा का अनादर न करके ध्यान पूर्वक सुना तथा सोचा की कौन से दुर्वासा रोज आते हैं। न जाने मेरे अच्छे कर्म उदय हो गये हों जो आज ऐसे महान ऋषि मेरे द्वार पर आए हैं। क्यों नाराज किया, कहा - सही है-सही है। आप ठीक कह रहे हो। परंतु अपने मन से स्वीकार नहीं किया। राजा ने ऋषि के चरण छुए, दण्डवत् प्रणाम किया तथा दक्षिणा देकर विदा किया और कहा ऋषिवर इस दास को सम्भालते रहना। जल्दी ही आने की कृप्या करना।

एक दिन ऋषि दुर्वासा जी यह देखने के लिए कि राजा ने मेरी बात पर अमल किया या नहीं, एकादशी वाले दिन राजा अम्ब्रीष जी के द्वार पर पहुँच गए। राजा को उसी विधि से साधना

करते पाया तो क्रोध वश सिद्धि छोड़ी (सुदर्शन चक्र चलाया) तथा आदेश दिया कि इस अभिमानी अम्ब्रीष का शीश काट दे। 'सुदर्शन चक्र' राजा अम्ब्रीष के पैर छूकर ऋषि दुर्वासा को मारने को उल्टा चला। ऋषि भय खाय कर भाग लिया। सुमेरू पर्वत पर छुपना चाहा। सुदर्शन चक्र साथ ही रहा। देवराज इन्द्र के पास गया और ब्रह्मा - शिव के पास से भी अपनी रक्षा न होने के बाद विष्णु लोक में भगवान विष्णु के द्वार पर जाकर उनके चरणों में गिरकर सुदर्शन चक्र से अपनी रक्षा की भीख मांगने लगा। उसी समय काल-महाविष्णु जो सर्व जीवों को नचा रहा है जिसने ब्रह्मा-विष्णु-महेश को भी नहीं बख्शा अपने ब्रह्मलोक से आकर त्रिलोकिय विष्णु के शरीर में प्रवेश करके काल ने पूछा - हे ब्राह्मण! क्या गुस्ताखी की है जिसके कारण यह रिएक्सन (प्रतिक्रिया) हुआ? अर्थात् सुदर्शन चक्र आप ही को मारने पर उतारू है। सच्च-2 बताना झूठ मत बोलना। उस समय विष्णु जी की सभा में अठासी हजार ऋषि भी बैठे यह कौतुक देख रहे थे। दुर्वासा की हालत देखकर अठासी हजार ऋषियोंको हंसी आई। दुर्वासा ने सारी कहानी सुनाई कि मैंने राजा अम्ब्रीष से कहा कि आप निर्गुण साधना करो तथा एकादशी का व्रत मत करो। व्रत कोई लाभ नहीं देता। उसने मेरी बात को महत्व नहीं दिया। तब मैंने चक्र चलाया। यह सुनकर भगवान विष्णु में प्रवेश ब्रह्म (ज्योति निरंजन) बोला कि हे ऋषिवर, राजा व्रत नहीं कर रहा था। वह केवल संयम करके ध्यान लगाता था। वह सर्गुण व निर्गुण दोनों साधना करता है। निर्गुण को अपने मन-2 में करता है। सर्गुण सब दिखाई देती है। सर्गुण उपासना में गुरु पूजा, पाठ, आरती, हवन (ज्योति) आदि आता है तथा निर्गुण में नाम साधना (अजपा जाप) मानी जाती है। किसी साधक को बलात न कह कर प्यार से समझाना चाहिए। माने उसका भला न माने उसकी इच्छा। नहीं तो परमात्मा अप्रसन्न हो जाते हैं। ऋषि जी आप जाओ और राजा अम्ब्रीष से क्षमा याचना करो। वे आपको क्षमा करेंगे तो क्षमा है, नहीं तो नहीं। यह बात सुनकर दुर्वासा जी अति भयभीत होकर कहने लगा कि हे भगवन! आपके दरबार में मेरी सुरक्षा नहीं है तो फिर कहाँ जान बचेगी? इस पर विष्णु जी ने कहा आप निःसन्देह राजा अम्ब्रीष के पास जा कर क्षमा याचना करो। वे दयालु हैं, उनमें भक्त के लक्षण हैं। जल्दी जाईए, देर मत करो। इतना सुनते ही दुर्वासा जी आकाश में उड़कर राजा अम्ब्रीष के द्वार पर जाकर उनके चरणों को पकड़ कर अपनी गलती की क्षमा याचना करने लगा। राजा अम्ब्रीष ने चक्र को हाथ से पकड़ कर शांत कर दिया। तब दुर्वासा ऋषि ने कहा - हे राजा! मेरी कमर पर हाथ रख दो ताकि मेरे हृदय में शांति होवे। तब राजा अम्ब्रीष ने दुर्वासा की कमर पर हाथ रखते हुए कहा कि आपकी करनी आपको हानिकारक हुई। मैंने कुछ नहीं किया। आप तो मेरे लिए अति आदरणीय तथा पूजनीय हो, परंतु ऋषि जी भक्ति के भाव से ही रहना चाहिए। भक्ति के नियमों को भंग करने वाला परमात्मा को बिल्कुल पसंद नहीं है। जैसे बिजली के नंगे तार को हाथ लगाना हानिकारक है। वह विद्युत नियमों के विरूद्ध है। इस नियम को चाहे बिजली महकमें का मुख्य अधिकारी क्यों न हो वह भेद नहीं करती। इस प्रकार क्रोध करना भक्त व संत के लिए हानिकारक है। ऐसा करने से भाव भक्ति समाप्त हो जाती है। सब जीवों को परमात्मा का अंश जानें तथा परेशान न करें।

❖ गीता अध्याय 5 श्लोक 8 और 9 का भाव है कि जो भी कर्म व्यक्ति करता है वह यह सोच ले कि मैं कुछ नहीं करता। यह अनुवाद अन्य गीता जी के अनुवादकर्ताओं ने किया है जो गलत है।

विचार करें :- यदि कोई किसी की हत्या कर दे और कहे कि मैंने कुछ नहीं किया। क्या वह दोष मुक्त है? यह ज्ञान भगवान कष्ण का नहीं ब्रह्म (काल) का है। पहले कर्म करवाएगा, फिर भोग देगा।

अध्याय 5 श्लोक 8 व 9 का भावार्थ है कि तत्वज्ञान युक्त साधक सर्व कर्म करता हुआ ध्यान रखता है कि मैं कोई पाप कर्म तो नहीं कर रहा हूँ। इसलिए कहा है कि वह ज्ञान आधार से सोच समझकर सर्व कर्म करता है।

अध्याय 5 के श्लोक 10 से 13 में कहा है कि आत्म तत्व में आए साधक अर्थात् जिन्होंने पूर्ण परमात्मा का ज्ञान हुआ तथा पूर्ण गुरु से नाम ले लिया वह व्यक्ति शुभ कर्म करता है। इसलिए कर्मों के बन्धन में नहीं बन्धता तथा अन्य काल (ब्रह्म) ज्ञान के आधार पर कर्म करते हैं और फिर कर्म फल भोगते हैं।

।। गीता ज्ञान बोलने वाले से अन्य पूर्ण परमात्मा है ।।

गीता के इस अध्याय 5 के श्लोक 14, 15, 16, 19, 20, 24, 25, 26 में गीता का ज्ञान बताने वाला अपने से अन्य पूर्ण परमात्मा की महिमा बता रहा है :-

।। प्राणी अपने स्वभाव वश चलते हैं।।

गीता अध्याय 5 श्लोक 14,15,16 में कहा है कि पूर्ण परमात्मा ने जब सतलोक में संष्टि रची थी उस समय किसी को कोई कर्म आधार बना कर उत्पत्ति नहीं की थी। सत्यलोक में सुन्दर शरीर दिया था जो कभी विनाश नहीं होता। परन्तु प्रभु ने कर्म फल का विधान अवश्य बनाया था। इसलिए सर्व प्राणी अपने स्वभाववश कर्म करके सुख व दुःख के भोगी होते हैं। जैसे हम सर्व आत्माऐं सत्यलोक में पूर्ण ब्रह्म परमात्मा (सतपुरुष) द्वारा अपने मध्य से शब्द शक्ति से उत्पन्न किए। वहाँ हमें कोई कर्म नहीं करना था तथा सर्व सुख उपलब्ध थे। हम स्वयं अपने स्वभाव वश होकर ज्योति निरंजन (ब्रह्म-काल) पर आसक्त हो कर अपने सुखदाई प्रभु से विमुख हो गए। उसी का परिणाम यह निकला कि अब हम कर्म बन्धन में स्वयं ही बन्ध गए। अब जैसे कर्म करते हैं, उसी का फल निर्धारित नियमानुसार ही प्राप्त कर रहे हैं। शास्त्र विधि अनुसार साधना करने से पाप क्षमा कर देता है, अन्यथा संस्कार ही वर्तता है। अध्याय 5 श्लोक 14-26 तक शास्त्र अनुकूल भक्ति कर्म तथा मर्यादा में रहकर पूर्ण परमात्मा को प्राप्त कर सकते हैं तथा पूर्ण प्रभु पाप क्षमा कर देता है। इसलिए कर्म करता हुआ ही पूर्ण मुक्त होता है।

सब स्वभावश चलते हैं। कर्म तो काल (ब्रह्म) ज्योति निरंजन ने लगा रखे हैं। वही अज्ञान पैदा करके जीव को भ्रमित करता है। वास्तविक ज्ञान (पूर्ण परमात्मा का) अज्ञान (काल ज्ञान) के द्वारा दबा रखा है। जिससे अज्ञानी (जिनको पूर्णब्रह्म परमात्मा का ज्ञान नहीं) मोहित हो रहे हैं। इस अज्ञान (काल ज्ञान) को तत्व ज्ञान (पूर्ण परमात्मा के ज्ञान) द्वारा नष्ट करके उत्तम ज्ञान को सूर्य की तरह प्रकाशित कर दिया जाता है। जिनको पूर्ण ज्ञान हो गया वह (व्यक्ति पूर्ण संत से नाम ले लेता है तथा काल साधना त्याग देता है क्योंकि सत्यनाम से पाप कटते हैं) अपने पापों को पूर्ण ज्ञान से समझ कर सतनाम व सारनाम से काट कर एक रस होकर अविनाशी परमात्मा (पूर्णब्रह्म सतपुरुष) में स्थित हो कर जन्म-मरण से मुक्त हो जाता है।

पंडित की परिभाषा

विचार करें :- अध्याय 5 के श्लोक 18 में पंडित की परिभाषा बताते हुए कहा है कि जो समदर्शी (ज्ञान योगी) तत्वदर्शी साधक (पंडित) तत्वज्ञानी, गौ, कुत्ते, हाथी व चाण्डाल को एक

समझता है। वह जीवत मुक्ता कहलाता है तथा भगवान प्राप्ति के लिए (भक्ति में लग) चुका है। जो ऐसा नहीं करता, वह बेशक बात बनाए, चौरासी लाख योनियों का कष्ट भोगेगा तथा नरक में जाएगा। पंडित वही है जो छुआछात नहीं करता, जो चांडाल (नीच) को भी एक जैसा समझता है। सबमें परमात्मा को देखें तथा उस पर दया करे, धिक्कारे नहीं।

।। साहेब कबीर द्वारा भैंसे से वेद मन्त्र बुलवाना।।

एक समय तोताद्रि नामक स्थान पर विद्वानों (पंडितों) का महा सम्मेलन हुआ। उसमें दूर-दूर के ब्रह्मवेता, वेदों, गीता जी आदि के विशेष ज्ञाता महापुरुष आए हुए थे। उसी महासम्मेलन में वेदों और पुराणों तथा शास्त्रों व गीता जी के प्राकाण्ड ज्ञाता महर्षि स्वामी रामानन्द जी भी आमन्त्रित किए गए थे। स्वामी रामानन्द जी के साथ उनके परम शिष्य साहेब कबीर भी पहुँच गए। श्री रामानन्द जी साहेब कबीर को अपने साथ ही रखते थे। क्योंकि स्वामी रामानन्द जी जानते थे कि यह कबीर (कविर्देव) साहेब परम पुरुष हैं। इनके रहते मुझे कोई ज्ञान और सिद्धि में पराजित नहीं कर सकता। सम्मेलन में इस बात की विशेष चर्चा हो गई कि श्री रामानन्द जी के शिष्य कबीर साहेब (छोटी जाति के) जुलाहा हैं। यदि हमारे भण्डारे में भोजन करेंगे तो हम अपवित्र हो जाएंगे। हमारा धर्म भ्रष्ट हो जाएगा। यदि सीधे शब्दों में मना करेंगे तो हो सकता है श्री रामानन्द जी नाराज हो जाऐं क्योंकि श्री रामानन्द जी उस समय के जाने-माने विद्वानों में से एक थे। यह सोच कर एक युक्ति निकाली कि भण्डारा दो स्थानों पर शुरु किया जाए। एक तो पंडितों के लिए, जो पंडितों (ब्राह्मणों) वाले भण्डारे में प्रवेश करे उसे चारों वेदों के एक-2 मन्त्र संस्कृत में सुनाने पड़ेंगे। ऐसा न करने वालों को दूसरे भण्डारे में जो आम संगत (साधारण व्यक्तियों) के लिए बना है में जाएंगे। क्योंकि उनका मानना था कि श्री रामानन्द जी तो विद्वान (पंडित) हैं। वेद मन्त्र सुना कर उत्तम भण्डारे में आ जाएंगे तथा साहेब कबीर (कविर्देव) ऐसा नहीं कर पाएगें क्योंकि उन्हें वे पंडितजन अशिक्षित मानते थे। अपने आप आम (साधारण) भण्डारे में चले जाएंगे। फिर सतसंग (प्रवचन) चल रहा था। उसमें वही उपस्थित पंडित जन संगत में मीठी-2 बातें बना कर कथाएँ सुना रहे थे कि :-

एक अछूत जाति की भीलनी (शबरी) परमात्मा के वियोग में वर्षों से तड़फ-2 कर राह जोह रही थी कि मेरे भगवान राम आएंगे। मैं उन्हें बेरों का भोग लगवाऊँगी। प्रतिदिन बहुत दूर तक रास्ता बुहार कर आती है। कहीं मेरे भगवान को कांटा न लग जाए। क्योंकि मेरे भगवान के पैर कोमल हैं न। मेरे भगवान राम बहुत अच्छे हैं। एक दिन वह समय भी आ गया कि भगवान श्री रामचन्द्र जी आते दिखाई दिए। भिलनी सुध-बुद्ध भूल कर श्री रामचन्द्र जी के मुख कमल की ओर बावलों की तरह निहार रही है। क्या मैं कोई स्वपन तो नहीं देख रही हूँ या सचमुच मेरे राम जी आए हैं। आँखों को मल-मल कर फिर देख रही है। श्री राम व लक्ष्मण खड़े-2 देख रहे हैं। इस पर लक्ष्मण ने कहा शबरी भगवान को बैठने के लिए भी कहेगी या ऐसे ही ठडेसरी (खड़े तपस्वी) बनाए रखेगी। तब मानो नींद से जागी हो। हड़बड़ा कर अपने सिर का फटा पुराना मैला-कुचैला चीर उतार कर एक पत्थर के टुकड़े पर बिछा दिया और कहा कि भगवन! बैठो इस पर। श्री रामचन्द्र जी ने कहा कि नहीं बेटी, चीर उठाओ। यह कह कर उसका चीर उठा कर उसी के सिर पर रखना चाहा। भिलनी (शबरी) रोने लगी और रोती हुई ने कहा यह गन्दा (मैला) है न भगवान! इसलिए स्वीकार नहीं किया न। मैं कितनी अभागिन हूँ। आपके लिए उत्तम कपड़ा नहीं ला सकी। क्षमा

करना भगवन। यह कह कर आँखों से अश्रुधार बह चली। तब श्री रामचन्द्र जी ने कहा कि शबरी! यह कपड़ा मेरे लिए मखमल से भी अच्छा कपड़ा है। लाओ बिछाओ! फिर भगवान उसी मैले कुचैले चीर पर विराजमान हो गए और शबरी के आँसुओं को अपने पिताम्बर से पौंछने लगे। फिर शबरी ने बेरों का भोग भगवान को लगवाया। पहले बेर को स्वयं थोड़ा सा खाती (चखती) है फिर वही बेर श्री राम को अपने हाथों से खिला रही है। भगवान श्री राम ने उस काली कलूटी, लम्बे-2 दाँतों वाली मैली कुचैली, अछूत शबरी के हाथ के झूठे बेरों का भोग रूचि-2 लगाया तथा कहा शबरी, बहुत स्वादिष्ट हैं। क्या मिलाया है इन बेरो में? शबरी ने कहा आपका प्यार मिलाया है आपकी बेटी ने। फिर लक्ष्मण को भी दिए कि खाओ बेर। लक्ष्मण ग्लानि करके श्री राम जी के भय से खाने का बहाना करके हाथ में लेकर पीछे फैंक देता है। जो बाद में द्रौणागिरी पर (शबरी के झूठे बेर) संजीवनी बूटी बन गए और लक्ष्मण के युद्ध में मूर्छित हो जाने पर वही बेर फिर खाने पड़े। भक्त की भावना का अनादर हानिकारक होता है।

जब आस-पास के ऋषियों को मालूम हुआ कि श्री राम आए हैं। वो हमारे यहाँ आश्रमों में अवश्य आएंगे क्योंकि हम ब्राह्मण हैं और भगवान श्री राम (क्षत्री हैं) अवश्य आएंगे। जब ऐसा नहीं हुआ तो सर्व ऋषि जन बन में साधना करने वाले (कर्मसन्यासी) श्री राम को मिले तथा कहा भगवन! एक ही नदी है जो साथ बह रही है। उसका पानी गंदा हो गया है। कपया इसे स्वच्छ करने की कप्या करें।

श्री राम ने कहा कि आप सर्व योगी जन बारी-2 अपना दायां पैर नदी के जल में डुबोएँ। फिर निकाल लें। सब उपस्थित ऋषियों ने ऐसा ही किया। परंतु जल निर्मल नहीं हुआ। फिर श्री राम ने उस प्रेमाभक्ति युक्त शबरी से कहा आप भी ऐसा ही करें। तब शबरी ने अपने दायां पैर नदी के जल में डाला तो उसी समय नदी का जल निर्मल हो गया। सर्व उपस्थित साधुजन शबरी की प्रशंसा करने लगे तथा शर्मिन्दा होकर श्री राम से पूछा कि प्रभु! क्या कारण है जो इस अछूत के स्पर्श मात्र से जल निर्मल हुआ जबकि हमारे से नहीं। तब श्री राम ने कहा - जो व्यक्ति परमात्मा का सच्चे प्रेम से भजन करता है तथा विकारों से रहित है वह उच्च प्राणी है। जाति ऊँची नीची नहीं होती है। आपको भक्ति साधना के साथ-2 जाति अहंकार भी है जो भक्ति का दुश्मन है। गीता जी भी यह सिद्ध करती है कि कर्मसन्यासी (गहत्यागी) को अपने कर्त्तापन का अभिमान हुए बिना नहीं रहता। इसलिए कर्मयोगी (ब्रह्मचारी या गहस्थी कार्य करते-2 साधना करने वाला) भक्त कर्म सन्यासी (गहत्यागी) भक्तों से श्रेष्ठ हैं तथा जो पूर्ण परमात्मा की भक्ति करते हैं वो सर्वोत्तम हैं। कबीर साहेब कहते हैं कि -

कबीर, पोथी पढ़—2 जग मुआ, पंडित भया न कोय।
अढ़ाई अक्षर प्रेम के, पढ़े सो पंडित होय।।

प्रेम में जाति कुल का कोई अभिमान नहीं रहता है। केवल अपने महबूब का ही ध्यान बना रहता है।

(सतसंग समाप्त हुआ)

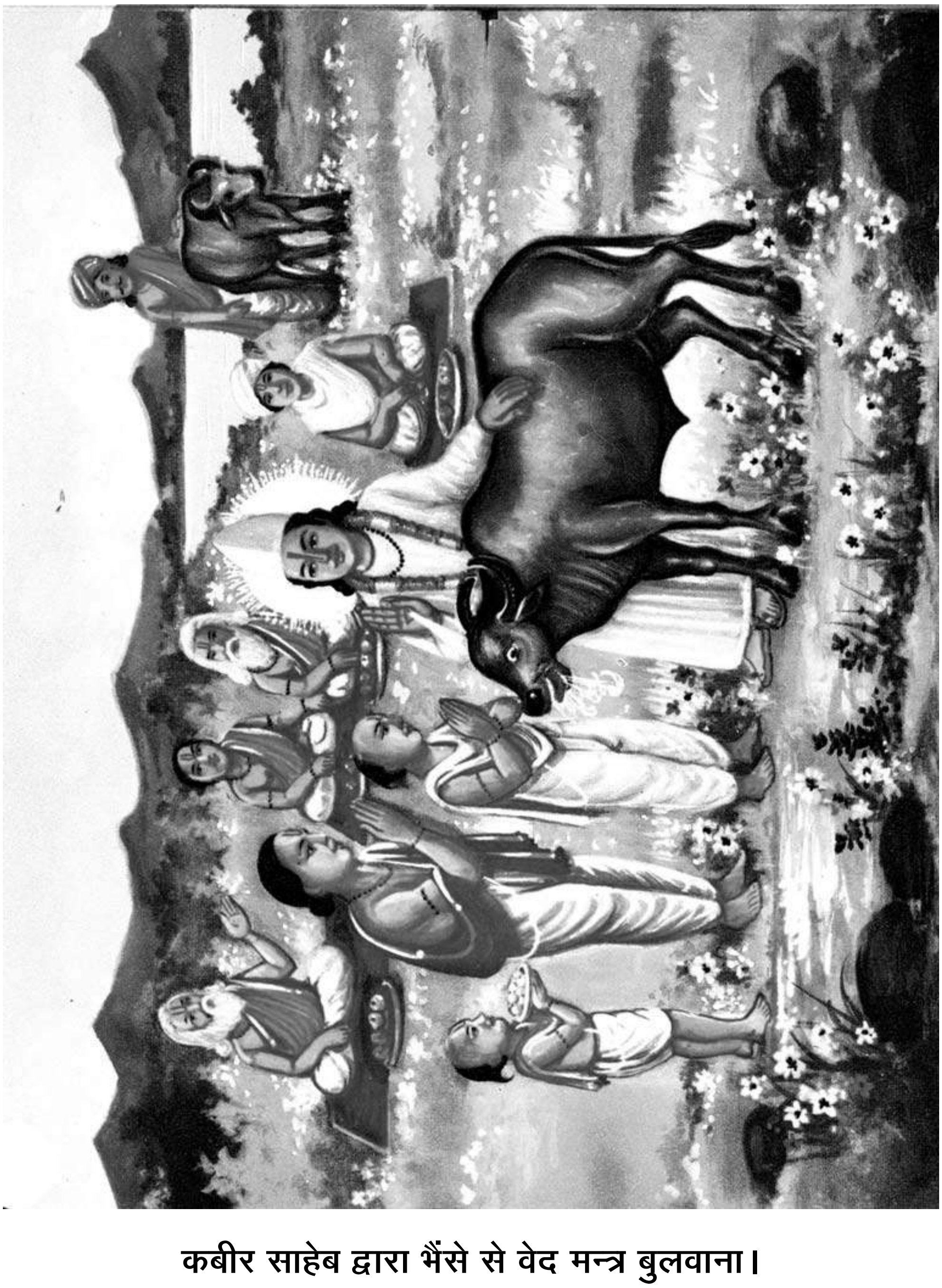

कबीर साहेब द्वारा भैंसे से वेद मन्त्र बुलवाना।

सत्संग समाप्न के पश्चात् भण्डारे का समय हुआ। दो ब्राह्मण वेदों के मन्त्र सुनने के लिए परीक्षार्थ पंडितों वाले भण्डार के द्वार पर खड़े हो गए तथा परीक्षा लेकर वेद मन्त्र सुन कर भण्डारे में प्रवेश करवा रहे थे। साहेब कबीर (कविरग्नि) भी पंक्ति में खड़े अपनी वारी का इन्तजार कर रहे थे। जब साहेब कबीर की बारी आई उसी समय एक पास में घास चर रहे भैंसे को साहेब कबीर ने पुकारा - ऐ भैंसा! कृप्या इधर आना। इतना कहना था कि भैंसा दौड़ा-2 आया तथा साहेब कबीर के चरणों में शीश झुका कर अगले आदेश की प्रतीक्षा करने लगा। तब कविर्देव ने उस भैंसे की कमर पर हाथ रखकर कहा कि - हे भैंसा! चारों वेदों का एक-2 श्लोक सुनाओ! उसी समय भैंसे ने शुद्ध संस्कृत भाषा में चारों वेदों के एक-2 मन्त्र कह सुनाए। साहेब कबीर ने कहा - भैंसा इन श्लोकों का हिन्दी अनुवाद भी करो, कहीं पंडित जन यह न सोच बैठें कि भैंसा हिन्दी नहीं जानता। भैंसे ने साहेब कबीर की शक्ति से चारों वेदों के एक-2 मन्त्र का हिन्दी अनुवाद भी कर दिया। कबीर साहेब ने कहा - जाओ भैंसा पंडित! इन उत्तम जनों के भण्डारे में भोजन पाओ। मैं तो उस साधारण भण्डारे में प्रसाद पाऊँगा। कबीर साहेब जी की यह लीला देखकर सैकड़ों कथित पंडितों ने नाम लिया तथा आत्म कल्याण करवाया और अपनी भूल का पश्चाताप किया। साहेब कबीर ने कहा नादानों कथा सुना रहे थे शबरी और श्री राम की, आप समझे नहीं। अपने आप को उच्च समझ कर भक्त आत्माओं का अनादर करते हो। यह आप भक्तों का अनादर नहीं बल्कि भगवान का अनादर करते हो। जो गीता जी में कहते हैं कि अर्जुन कोई व्यक्ति कितना ही दुराचारी हो यदि वह भगवत विश्वासी है, साधु समान मान्य है।

अध्याय 9 का श्लोक 30

अनुवाद : (चेत्) यदि कोई (सुदुराचारः) अतिशय दुराचारी (अपि) भी (अनन्यभाक्) अनन्यभावसे मेरा भक्त होकर (माम्) मुझको (भजते) भजता है तो (सः) वह (साधुः) साधु (एव) ही (मन्तव्यः) मानने योग्य है (हि) क्योंकि (सः) वह (सम्यक्) यथार्थ (व्यवसितः) निश्चयवाला है।

गरीबदास जी महाराज कहते हैं :-

कुष्टि होवे साध बन्दगी कीजिए। वैश्या के विश्वास चरण चित्त दीजिए।।

ऐसे अनजानों को जो कहते कुछ और करते कुछ हैं। कबीर साहेब कहते हैं :-

कबीर, कहते हैं करते नहीं, मुख के बड़े लबार।
दोजख धक्के खाएगें, धर्मराय दरबार।।
कबीर, करनी तज कथनी कथें, अज्ञानी दिन रात।
कुकर ज्यों भौंकत फिरै, सुनी सुनाई बात।।

एक समय नामदेव संत खाना बना रहे थे। कुत्ता रोटी उठा कर भाग लिया। वह संत घी का पात्र हाथ में ले कर पीछे-2 यह कहता हुआ चल पड़ा कि भगवन सूखी रोटी कैसे खाओगे? लाओ चुपड़ देता हूँ। काफी दूर निकल गए। वहाँ कुत्ता रूक गया। नामदेव जी रोटी को चुपड़ कर कुत्ते के सामने रखी दोनों इक्ट्ठा ही खाना खाने लगे। क्योंकि नामदेव जी को भगवान साक्षात् नजर आ रहे थे। आम व्यक्ति को कुत्ता नजर आ रहा था। यह लक्षण हैं पंडितों के। जब तक ऐसा नहीं है वह पंडित नहीं है अर्थात् भक्ति योग्य साधक नहीं है। यह गीता जी में भगवान का कथन है। जैसा कि आप पहले पढ चुके हैं गीता जी के अध्याय 5 के श्लोक 19 से 21 में। फिर प्रमाण है कि वही व्यक्ति मुक्त समझो जिसमें निम्न लक्षण हैं जो गीता जी के श्लोकों में निम्नलिखित हैं। अध्याय 5 के श्लोक 22 में कहा है कि हे अर्जुन! कर्मो के संयोग से उत्पन्न भोग (राज के लिए लड़ाई करना तथा फिर

मौज मारना) नाशवान हैं। ज्ञानवान व्यक्ति इससे दूर रहता है तथा अध्याय 2 के श्लोक 37 में भगवान कह रहा है कि अर्जुन तू युद्ध कर। यदि युद्ध में मारा गया तो स्वर्ग में मौज मारेगा और यदि जीत गया तो राज का आनन्द लेगा।

अध्याय 5 के श्लोक 23 में बताया है कि :-

योगी की व्याख्या इस प्रकार है कि जो अपने काम-क्रोध को जीत लेता है वही योगी (परमात्मा प्राप्त) है और वही सुखी है।

विचारें : यह मन तथा इन्द्रियाँ तो शंकर जी जैसे योगी से भी नहीं जीते गए अन्य प्राणी अर्जुन (जिसने दो-2 शादी करवा रखी थी) जैसे साधक कैसे योग युक्त (परमात्मा प्राप्ति) हो सकता है।

'गरीब, कहन सुनन की करते बाता। कोई न देख्या अमृत खाता।।'

।। वार कौन तथा पार कौन।।

अध्याय 5 के श्लोक 24, 25, 26 में गीता ज्ञान दाता से अन्य परमात्मा की जानकारी बताई है। श्लोक 23 में कहा है कि जो सच्चिदानंद घन ब्रह्म यानि परम अक्षर ब्रह्म की शास्त्रोक्त साधना निश्चल मन से करता है तो उस अमर परमात्मा को प्राप्त होता है।

अध्याय 5 के श्लोक 24 में कहा है कि वह योगी (साधक) ही निर्वाण ब्रह्म अर्थात् पूर्ण परमात्मा (सतपुरुष) को प्राप्त होता है। श्लोक 25 में भी निर्वाण ब्रह्म (पूर्ण परमात्मा) को पाने का वर्णन है तथा श्लोक 26 भी निर्वाण ब्रह्म (पूर्ण परमात्मा) पाने का प्रमाण देता है। जिसने काम-क्रोध समाप्त कर लिए वह व्यक्ति ही पूर्ण ब्रह्म परमात्मा को प्राप्त समझो। यह क्षमता न ब्रह्माजी में, न शिव जी में, न विष्णु जी में फिर पार कौन? अर्थात वार ही ब्रह्मा, वार ही इन्द्र। वार का तात्पर्य है कि काल लोक में उरली तरफ ही रह गये, पार नहीं हुए अर्थात् सतलोक में नहीं पहुँचे।

।। शब्द ।।

कोई है रे परले पार का, जो भेद कहै झनकार का।।टेक।।
वारिही गोरख वारिही दत्त। वारिह ध्रू प्रहलाद अरथ।।
वारिही सुखदे वारिही व्यास, वारिही पारासुर प्रकाश।।1।।
वारिही दुरवासा दरवेश, वारिही नारद शारद शेष।
वारिही भरथरी गोपीचन्द, वारिही सनक सनंदन बंध।।2।।
वारिही ब्रह्मा वारिही इन्द्र, वारिही सहंस कला गोविंद।
वारिही शिव शंकर जो सिंभ, वारिही धर्मराय आरंभ।।3।।
वारिही धर्मराय धरधीर। परमधाम पौंहचे कबीर।।
ऋग यजु साम अर्थवन वेद, परमधाम नहीं लह्या भेद।।4।।
अलल पंख अगाध भेव, जैसे कुंजी सुरति सेव।
वार पार थेहा न थाह, गरीबदास निरगुन निगाह।।5।।

भावार्थ :- इस शब्द में आदरणीय गरीबदास जी साहेब कह रहे हैं कि कोई सतलोक का साधक नहीं दिखाई देता है जो उस सच्चे शब्द की धुन को बताए। केवल काल लोक में बने नकली सतलोक- अलख लोक, अगम लोक तथा अनामी लोक की नकली धुनों को वर्णन करने वाले

साधक हैं।

धुनि क्या है? उत्तर :- ढ़ोल यंत्र को बजाने के लिए एक विशेष प्रकार के डंडे का प्रयोग किया जाता है जिसको ढ़ोल पर मारा जाता है। उससे वास्तविक आवाज (धुनि) निकलती है। यदि उस ढोल पर कोई और वस्तु जैसे चप्पल व जूता मारे तो भी धुन तो होगी परंतु वह वास्तविक नहीं होगी। इसी प्रकार धुनि सही नाम (सतनाम) के जाप से वास्तविक धुनि प्रकट होगी। यदि कोई गलत नाम जाप कर रहा है धुनि उसमें भी प्रकट होगी परंतु सही नहीं होगी। इसलिए निम्न साधकों ने कोशिश की परंतु सतनाम साधना बिना उरली ओर (काल-ब्रह्म) के जाल में वार ही रहे, पार नहीं हुए अर्थात् सतलोक में नहीं गए। जबकि बहुत अच्छे साधक थे। जैसे कितनी ही उपजाऊ भूमि है यदि उसमें आम के स्थान पर बबूल का बीज बीज दीया जमीन ने तो उपजाना है परंतु जो वस्तु चाहिए थी नहीं मिली। जिन महापुरुषों में -- 1 श्री गोरख नाथ जी 2. श्री प्रहलाद जी 3. श्री ध्रूव जी 4. श्री दतात्रे जी 5. श्री सुखदेव जी 6.श्री वेद व्यास जी 7. श्री पारासुर जी 8. श्री दुर्वासा जी 9. श्री नारद जी 10.श्री सारदा जी 11. श्री शेषनाग जी 12. श्री भरथरीनाथजी 13.श्री गोपीचन्द नाथ जी 14. श्री सनक जी 15. श्री सनन्दन जी 16. श्री सनातन जी 17. श्री संत कुमार जी (ये चार ब्रह्मा के पुत्र भी महर्षि हैं जो बहुत अच्छे साधक हैं परंतु सतनाम व सारनाम बिना काल के जाल में ही बंधे हैं, पार नहीं हुए हैं) 18. श्री ब्रह्मा जी 19. श्री इन्द्र जी 20. श्री काल भगवान जो एक हजार कलाओं वाला है 21. श्री शिव शंकर जी 22. श्री विष्णु जी 23. श्री धर्मराय जी जो यहां (काल) का न्यायधीश है।

ये प्रभु तथा इनके उपासक भी जन्म-मरण तथा काल जाल में ही हैं। आदि माया (प्रकृति देवी) और देवता भी काल के बंधन में बंधे हुए हैं।

''कबीर, सुर नर मुनि जन, तेतीस करोरि, बंधे सब निरंजन (काल) की डोरी।।''

भावार्थ :- इस ब्रह्माण्ड में तेतीस करोड़ देवता हैं और अठासी हजार ऋषि हैं। ये तथा अन्य भक्ति के इच्छुक नर-नारी तत्वज्ञान न होने के कारण काल ब्रह्म की डोर से बँधे हैं यानि काल की रस्सी सबके गले में बँधी है।

सर्व देवता व साधक जो ब्रह्म की उपासना चाहे सर्गुण रूप में कर रहे हैं और चाहे निर्गुण रूप में कर रहे हैं वे जन्म-मरण चौरासी लाख जूनियों का कष्ट व फिर स्वर्ग नरक कर्माधार से चक्र लगाते रहते हैं। पूर्ण मोक्ष के आनन्द से वंचित रह जाते हैं। ये सब काल जाल में ही हैं। क्योंकि इनको सतनाम व सारनाम का दाता कोई पूर्ण संत नहीं मिला। परम धाम (सतलोक) में साहेब कबीर जी पहुँचे जो सतनाम व सारनाम की उपासना को आधार मान कर सुमरण स्वयं करते थे तथा अपने शिष्यों को बताते थे। चारों वेदों (यजुर्वेद, सामवेद, ऋग्वेद, अथर्ववेद) में भी परम धाम को पाने की विधि का ज्ञान नहीं है। साहेब गरीबदास जी महाराज कहते हैं कि मैंने सतनाम को साहेब कबीर (अपने सतगुरु) जी से प्राप्त किया। फिर ऐसी लगन लगाई जैसे अलल पक्षी अपने माता-पिता को पाने की जो आकाश में रहते हैं कोशिश करता है तथा कुंज पक्षी की तरह पल-पल कसक के साथ अपने सतलोक में जाने की तथा सतपुरुष को पाने की हृदय से लगन लगा कर स्मरण किया जिससे वह अपार असीमित लोक पाया और उस निर्गुण (गुणातीत सतपुरुष) को तेजपुंज के शरीर में देखा। जिसे पाँच तत्व के शरीर रहित होने से अधूरे साधक निराकार परमात्मा कहते हैं वह आकार में अपने सतधाम (सतलोक-परमधाम) में रहता है।

।। अजपा जाप से विकार मरते हैं।।

❖ *गीता अध्याय 5 श्लोक 27-28 का अनुवाद :- बाहर के विषय भोगों से मन को हटाकर शरीर के अंदर चल रहे श्वांस से नाम स्मरण करते हुए श्वांस व नाम जाप पर ध्यान लगाएं। श्वांस-उश्वांस जो भ्रकुटी यानि दोनों नाक छिद्रों के मध्य सुषमणा द्वार से अंदर-बाहर होता है, उसको सम करके यानि अभ्यास से साधक साधना करता है। वह मोक्ष का अधिकारी मनिः यानि साधक इच्छा, भय और क्रोध से रहित हो जाता है। जो ऐसी स्थिति को प्राप्त कर लेता है, वह संसार में रहता हुआ भी मुक्त ही है।(अध्याय 5 श्लोक 27-28)*

विचार करें :-- अध्याय 5 के श्लोक 27, 28 में वर्णन है कि स्वांस के द्वारा सतनाम सुमरण से ही मन तथा विकारों को मार सकता है। वही मुक्त होगा। ''स्वांसा पारस भेद हमारा, जो खोजे सो उतरे पारा।'' मन स्वयं काल का अंश है जो एक हजार भुजाओं का भगवान है। मन तथा विकारों को केवल कबीर साहिब (जो असंख्य भुजाओं के मालिक अर्थात् समर्थ भगवान हैं) के सुमरण (नाम) से मारा जा सकता है। इसके इलावा अन्य जैसे ब्रह्मा, विष्णु, महेश व काल के जाप से मन काबू नहीं आ सकता। स्वांस सुमरण (सतनाम के जाप) से विकार मरते हैं। इसका प्रमाण आदरणीय नानक साहेब जी ने भी दिया है। पंजाबी गुरु ग्रंथ साहिब के पष्ठ नं. 646 (रामकली राग पौड़ी नं. 68,69) में पूछ रहा है कि संसार में किस-किस कारण से जन्म-मरण होता है तथा कैसे समाप्त होता है? कित् कित् विधि जग उपजै पुरखा, कित् कित् विधि बिनस जाई? उत्तर दिया है:-

हुऊमें विच जग उपजै पुरखा, नाम बिसारे दुःख पाई ।।
गुरु मुख होवै ज्ञान तत विचारै, हुऊमें सबदै जलाई ।।
तन मन निरमल निरमल बाणी, साचै रहै समाई ।।
नामे नामि रह बैरागी साच रखिया उर धारै ।।
नानक बिन नाम जोग कदे न होवै, देखहु रिदै विचारै ।।68।।

उत्तर दिया है कि विकारों (काम, क्रोध, मोह, लोभ, अहंकार) के वश हो कर जीव जन्म-मरण में रहता है। सच्चे परमात्मा (सतपुरुष) के सच्चे नाम (सतनाम) से विकार समाप्त हो जाते हैं तथा नाम के बिना योग अधूरा है। इसलिए पूर्ण गुरु सेवै।
गुरुमुख साच शब्द बिचारै कोई। गुरुमुख सच वाणी प्रकट होई।।

गुरुमुख मन भीजै बुझै बिरला कोई । गुरुमुख निज घर वासा होई ।।
गुरुमुख जोगी जूगत पछाणै । गुरुमुख नानक इको जाणै ।।69 ।।

साच शब्द का प्रमाण तथा हुवमें विकारों को मारने का प्रमाण :—

पंजाबी गुरु ग्रन्थ साहेब पष्ठ नं. 59.60 (राग सिरी - महला पहला) से सहाभार (शब्द नं. 11)

बिन गुरु प्रीत न उपजै हुवमें मैल न जाई । सोहं आप पछाणिया, शब्दई भेद पतिआई ।।
गुरु मुख आप पछाणिअै, अवर की करे कराई ।

गुरु जी के मिले बिना विकार व मन नहीं मर सकते। सतगुरु ने सोहं नाम दिया (सर्व नामों में उत्तम नाम सोहं दिया) अब और कोई साधना क्यों करें? जब एक ही पूर्ण नाम (सतनाम) से पूर्ण लाभ प्राप्त हो गया। पूर्ण गुरु का शिष्य एक ही पूर्ण परमात्मा पर आधारित हो जाता है। फिर सारनाम प्राप्त करके पूर्ण मोक्ष प्राप्त करता है।

।। दयालु परमात्मा कौन?।।

❖ *गीता अध्याय 5 श्लोक 29 का अनुवाद :- गीता ज्ञान देने वाले काल ब्रह्म ने कहा है कि तत्वज्ञान के अभाव से मुझ काल को यज्ञ तथा तपों को भोगने वाला सम्पूर्ण लोकों का महान ईश्वर यानि महेश्वर, सम्पूर्ण प्राणियों का सुहद यानि स्वार्थ रहित दयालु तथा हितैषी जानकर (शान्तिम्) शांति को (ऋच्छति) गंवा देता है।*

विवेचन :- ''ऋच्छति'' शब्द का यथार्थ अर्थ है वंचित रहना। अन्य गीता अनुवादकों ने गलत अर्थ किया है कि मुझे सर्वेसवा जानकर साधक (शान्तिम्) शांति को (ऋच्छति) प्राप्त होता है। यह वैसी ही गलती है जैसी गीता अध्याय 18 श्लोक 66 में ''व्रज'' का अर्थ ''आना'' किया है जबकि ''व्रज'' शब्द का यथार्थ अर्थ ''जाना'' है।

विशेष :- गीता अध्याय 5 श्लोक 29 में गीता बोलने वाले ब्रह्म काल ने कहा है कि जो अज्ञानी जन मुझे ही सर्व का मालिक व सर्व सुखदाई दयालु प्रभु मान कर मेरी ही साधना पर आश्रित हैं, वे मेरी साधना से मिलने वाली अश्रेष्ठ अस्थाई शान्ति को प्राप्त होते है जिस कारण से वे पूर्ण परमात्मा को प्राप्त होने से मिलने वाली शान्ति से वंचित रह जाते हैं अर्थात् उनका पूर्ण मोक्ष नहीं होता। उनकी शान्ति समाप्त हो जाती है तथा नाना प्रकार के कष्ट उठाते रहते हैं। इसीलिए गीता अध्याय 18 श्लोक 62 में कहा है कि यदि पूर्ण शान्ति चाहता है तो अर्जुन उस परमेश्वर की शरण में जा जिसकी कपा से ही तू परमशान्ति तथा शाश्वत स्थान को प्राप्त होगा। इसी का प्रमाण गीता अध्याय 7 श्लोक 18 में भी है। अपनी साधना से होने वाली गति (मुक्ति) को अनुत्तम यानि घटिया कहा है।

विशेष : क्योंकि काल (ब्रह्म) भगवान तीन लोक के (ब्रह्मा-विष्णु-महेश) भगवानों तथा 21 ब्रह्मण्ड के लोकों का मालिक है। इसलिए ईश्वरों का भी ईश्वर है। इसलिए महेश्वर कहा है तथा जो भी साधक यज्ञ या अन्य साधना (तप) करके जो सुविधा प्राप्त करता है उसका भोक्ता (खाने वाला) काल ही है। जैसे राजा बन कर आनन्द करना, नाना प्रकार के विकार करना। इन सब का आनन्द स्वयं काल भगवान मन रूप से प्राप्त करता है तथा फिर तप्त शिला पर गर्म करके उससे वासना युक्त पदार्थ निकाल कर खाता है। अज्ञानतावश नादान प्राणी इसी काल भगवान को दयालु व प्रेमी जान कर शांति को प्राप्त हैं। जैसे कसाई के बकरे अपने मालिक (कसाई) को देखते हैं कि वह चारा डालता है, पानी पिलाता है, गर्मी-सर्दी से बचाता है। इसलिए उसे दयालु तथा प्रेमी समझते हैं परंतु वास्तव में वह कसाई उनका काल है। सबको काटेगा, मारेगा तथा स्वार्थ सिद्ध करेगा। ऐसे ही काल भगवान दयालु दिखाई देता है परंतु सर्व प्राणियों को खाता है। इसलिए कहा है कि उनकी शान्ति समाप्त हो जाती है अर्थात् महाकष्ट को प्राप्त होते हैं। गीता अध्याय 15 श्लोक 17 में कहा है कि उत्तम पुरूष अर्थात् श्रेष्ठ परमात्मा तो कोई अन्य ही है। जो तीनों लोकों में प्रवेश करके सर्व का धारण पोषण करता है वह वास्तव में अविनाशी है। वह परमात्मा कहा जाता है। अपने विषय में गीता ज्ञान दाता अध्याय 11 श्लोक 32 में कहता है कि अर्जुन मैं काल हूँ, सर्व लोकों (मनुष्यों) को खाने के लिए आया हूँ। जिस के दर्शन करके अर्जुन जैसे योद्धा की शान्ति भी चली गई वह भय के मारे कांप रहा था। इसलिए इसी अध्याय 5 श्लोक 24 से 26 में गीता ज्ञान दाता से अन्य शान्त ब्रह्म का उल्लेख है। इससे यह भी प्रमाणित हुआ कि गीता ज्ञान दाता शान्त ब्रह्म नहीं है। अर्थात् काल है।

सार - विचार :-- जो कुत्ता बनाए, गधा बनाए, टांग काटे (क्योंकि यहां सर्व भक्तजन मानते हैं कि परमात्मा की कृपा से सब होता है। उसके आदेश के बिना पत्ता भी नहीं हिलता।) सबको खाए तथा अर्जुन जैसे योद्धा को डराकर युद्ध करवाए तथा फिर युद्ध में हुए पापों का फल युधिष्ठर को बुरे स्वपन आना, फिर कृष्ण जी द्वारा बताना कि आप यज्ञ करो क्योंकि आपके युद्ध में किए हुए पाप दुःखदाई हो रहे हैं। फिर हिमालय में तप करवा कर शरीर गलाना, फिर नरक में डालना। अब पाठक स्वयं विचार करें।

दयायुक्त परमेश्वर कबीर साहेब जी हैं जो सतलोक के स्वामी हैं। वे सुख सागर हैं। वहाँ कोई जीव दुःखी नहीं है और यहाँ (काल लोक में) भी यदि कोई भक्त जन सुखी होना चाहता है तो उसी परम पिता परमात्मा, पूर्णब्रह्म, अविनाशी परमेश्वर कबीर भगवान की उपासना करें तथा आजीवन शरण में रहें।

❑❑❑

।।पांचवें अध्याय के अनुवाद सहित श्लोक।।

परमात्मने नमः

अथ पञ्चमोऽध्यायः

अध्याय 5 का श्लोक 1

(अर्जुन उवाच)

सन्न्यासं कर्मणां कृष्ण पुनर्योगं च शंससि।
यच्छ्रेय एतयोरेकं तन्मे ब्रूहि सुनिश्चितम्।१।

सन्न्यासम्, कर्मणाम्, कष्ण, पुनः, योगम्, च, शंससि,
यत्, श्रेयः, एतयोः, एकम्, तत्, मे, ब्रूहि, सुनिश्चितम्।।1।।

अनुवाद : (कष्ण) हे कष्ण! आप एक ओर तो (कर्मणाम्) कर्मोंके (सन्न्यासम्) सन्यास अर्थात् कर्म छोड़कर आसन लगाकर कान आदि बन्द करके साधना करने की (च) और (पुनः) फिर (योगम्) कर्मयोगकी अर्थात् कर्म करते करते साधना करने की (शंससि) प्रशंसा करते हैं इसलिए (एतयोः) इन दोनोंमेंसे (यत्) जो (एकम्) एक (मे) मेरे लिए (श्रेयः) कल्याणकारक साधन हो (तत्) उसको (सुनिश्चितम्) भली-भांति निश्चित करके (ब्रूहि) कहिये।(1)

केवल हिन्दी अनुवाद : हे कष्ण! आप एक ओर तो कर्मों के सन्यास अर्थात् कर्म छोड़कर आसन लगाकर कान आदि बन्द करके साधना करने की और फिर कर्मयोगकी अर्थात् कर्म करते करते साधना करने की प्रशंसा करते हैं इसलिए इन दोनोंमेंसे जो एक मेरे लिए कल्याणकारक साधन हो उसको भली-भांति निश्चित करके कहिये। (1)

भावार्थ :- अर्जुन कह रहा है कि भगवन आप एक ओर तो कह रहे हो कि काम करते करते साधना करना ही श्रेयकर है। फिर अध्याय 4 मंत्र 25 से 30 तक में कह रहे हो कि कोई तप करके कोई प्राणायाम आदि करके कोई नाक कान बन्द करके, नाद (ध्वनि) सुन करके आदि से आत्मकल्याण मार्ग मानता है। इसलिए आप की दो तरफ (दोगली) बात से मुझे संशय उत्पन्न हो गया है कपया निश्चय करके एक मार्ग मुझे कहिए।

❖ कर्म सन्यास का विवरण :- कर्म सन्यास दो प्रकार से होता है, 1. एक तो सन्यास वह होता है जिसमें साधक परमात्मा प्राप्ति के लिए प्रेरित होकर हठ करके जंगल में बैठ जाता है तथा शास्त्र विधि रहित साधना करता है, दूसरा घर पर रहते हुए भी हठयोग करके घण्टों एक स्थान पर बैठ कर शास्त्र विधि त्याग कर साधना करता है, ये दोनों ही कर्म सन्यासी हैं।

❖ कर्मयोग का विवरण :- यह भी दो प्रकार का होता है। एक तो बाल-बच्चों सहित सांसारिक कार्य करता हुआ शास्त्र विधि अनुसार भक्ति साधना करता है या विवाह न करा कर घर पर या किसी आश्रम में रहता हुआ संसारिक कर्म अर्थात् सेवा करता हुआ शास्त्र विधि अनुसार साधना करता है, ये दोनों ही कर्मयोगी हैं। दूसरी प्रकार के कर्मयोगी वे होते हैं जो बाल-बच्चों में रहते हैं तथा साधना शास्त्र विधि त्याग कर करते हैं या शादी न करवाकर घर में रहता है या किसी आश्रम में सेवा करता है, यह भी कर्म योगी ही कहलाते हैं क्योंकि कर्मयोग का तात्पर्य है कि जिस क्रिया में कर्मों की संलिप्तता हो। कर्म तो उपरोक्त सब करते हैं। सब कर्मयागी कहलाते हैं। जिस क्रिया में

कर्मों का योग नहीं होता, वह कर्म सन्यास कहलाता है।

अध्याय 5 का श्लोक 2

(भगवान उवाच)

सन्न्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयसकरावुभौ।
तयोस्तु कर्मसन्न्यासात्कर्मयोगो विशिष्यते।२।

सन्न्यासः, कर्मयोगः, च, निःश्रेयसकरौ, उभौ,
तयोः, तु, कर्मसन्न्यासात्, कर्मयोगः, विशिष्यते।।2।।

अनुवाद : तत्वदर्शी संत न मिलने के कारण वास्तविक भक्ति का ज्ञान न होने से (सन्न्यासः) शास्त्र विधि रहित साधना प्राप्त साधक प्रभु प्राप्ति से विशेष प्रेरित होकर गृहत्याग कर वन में चला जाना या कर्म त्याग कर एक स्थान पर बैठकर घण्टों कान नाक आदि बंद करके या तप आदि करना (च) तथा (कर्मयोगः) शास्त्र विधि रहित साधना कर्म करते-करते भी करना (उभौ) दोनों ही (निःश्रेयः अकरौ) व्यर्थ है अर्थात् श्रेयकर नहीं हैं तथा न करने वाले हैं शास्त्रविधि अनुसार साधना करने वाले जो सन्यास लेकर आश्रम में रहते हैं तथा कर्म सन्यास नहीं लेते तथा जो विवाह करा कर घर पर रहते हैं उन दोनों की साधना ही अमंगलकारी नहीं हैं (तु) परन्तु (तयोः) उपरोक्त उन दोनोंमें भी (कर्मसन्न्यासात्) यदि आश्रम में रहकर भी काम चोर है उस कर्मसंन्याससे (कर्मयोगः) कर्मयोग संसारिक कर्म करते-करते शास्त्र अनुसार साधना करना (विशिष्यते) श्रेष्ठ है। यही प्रमाण गीता अध्याय 18 श्लोक 41 से 46 में कहा है कि चारों वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य तथा शुद्र) के व्यक्ति भी अपने स्वभाविक कर्म करते हुए परम सिद्धी अर्थात् पूर्ण मोक्ष को प्राप्त हो जाते हैं। परम सिद्धी के विषय में स्पष्ट किया है श्लोक 46 में कि जिस परमात्मा परमेश्वर से सर्व प्राणियों की उत्पति हुई है जिस से यह समस्त संसार व्याप्त है, उस परमेश्वर कि अपने-2 स्वभाविक कर्मों द्वारा पूजा करके मनुष्य परम सिद्धी को प्राप्त हो जाता हैं अर्थात् कर्म करता हुआ सत्य साधक पूर्ण मोक्ष प्राप्त करता है। अध्याय 18 श्लोक 47 में स्पष्ट किया है कि शास्त्र विरूद्ध साधना करने वाले (कर्म सन्यास) से अपना शास्त्र विधी अनुसार (कर्म करते हुए) साधना करने वाला श्रेष्ठ है। क्योंकि अपने कर्म करता हुआ साधक पाप को प्राप्त नहीं होता। इससे यह भी सिद्ध हुआ कि कर्म सन्यास करके हठ करना पाप है। श्लोक 48 में स्पष्ट किया है कि अपने स्वाभाविक कर्मों को नहीं त्यागना चाहिए चाहे उसमें कुछ पाप भी नजर आता है। जैसे खेती करने में जीव मरते हैं आदि-2।

❖ भावार्थ : उपरोक्त मंत्र नं. 2 का भावार्थ है कि जो शास्त्र विरुद्ध साधक हैं वे दो प्रकार के हैं, एक तो कर्म सन्यासी, दूसरे कर्म योगी। उन की दोनों प्रकार की साधना जो तत्वदर्शी सन्त के अभाव से शास्त्रविरूद्ध होने से (निःश्रेयसकरौ = निः श्रेयः अकरौः) श्रेयकर अर्थात् कल्याण कारक नहीं है तथा दोनों प्रकार की शास्त्रविरूद्ध साधना न करने वाली है। जैसे गीता अध्याय 16 श्लोक 23 में कहा है कि शास्त्र विधि को त्यागकर मनमाना आचरण अर्थात् पूजा व्यर्थ है। श्लोक 24 में कहा है कि भक्ति मार्ग की जो साधना करने वाली है तथा न करने वाली उसके लिए शास्त्रों को ही प्रमाण मानना चाहिए। शास्त्रों (गीता व वेदों) में कहा है कि पूर्ण मोक्ष के लिए किसी तत्वदर्शी सन्त की खोज करो। उसी से विनम्रता से भक्ति मार्ग प्राप्त करें। प्रमाण गीता अध्याय 4 श्लोक 34, यजुर्वेद अध्याय 40 मन्त्र 10 व 13 में इन दोनों में कर्मसन्यासी से कर्मयोगी अच्छा है, क्योंकि कर्मयोगी जो शास्त्र विधि रहित साधना करता है, उसे जब कोई तत्वदर्शी संत का सत्संग प्राप्त हो जायेगा तो वह तुरन्त अपनी शास्त्र विरुद्ध पूजा को त्याग कर शास्त्र अनुकूल साधना पर लग कर

आत्म कल्याण करा लेता है। परन्तु कर्म सन्यासी दोनों ही प्रकार के हठ योगी घर पर रहते हुए भी, जो कान-आंखें बन्द करके एक स्थान पर बैठ कर हठयोग करने वाले तथा घर त्याग कर उपरोक्त हठ योग करने वाले तत्वदर्शी संत के ज्ञान को मानवश स्वीकार नहीं करते, क्योंकि उन्हें अपने त्याग तथा हठयोग से प्राप्त सिद्धियों का अभिमान हो जाता है तथा गह त्याग का भी अभिमान सत्यभक्ति प्राप्ति में बाधक होता है। इसलिए शास्त्रविधि रहित कर्मसन्यासी से शास्त्र विरुद्ध कर्मयोगी साधक ही अच्छा है। यही प्रमाण गीता अध्याय 18 श्लोक 41 से 46 में कहा है कि चारों वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य तथा शुद्र) के व्यक्ति भी अपने स्वभाविक कर्म करते हुए परम सिद्धी अर्थात् पूर्ण मोक्ष को प्राप्त हो जाते हैं। परम सिद्धी के विषय में स्पष्ट किया है श्लोक 46 में कि जिस परमात्मा परमेश्वर से सर्व प्राणियों की उत्पति हुई है जिस से यह समस्त संसार व्याप्त है, उस परमेश्वर कि अपने-2 स्वभाविक कर्मों द्वारा पूजा करके मनुष्य परम सिद्धी को प्राप्त हो जाता हैं अर्थात् कर्म करता हुआ सत्य साधक पूर्ण मोक्ष प्राप्त करता है। अध्याय 18 श्लोक 47 में स्पष्ट किया है कि शास्त्र विरूद्ध साधना करने वाले (कर्म सन्यास) से अपना शास्त्र विधी अनुसार (कर्म करते हुए) साधना करने वाला श्रेष्ठ है। क्योंकि अपने कर्म करता हुआ साधक पाप को प्राप्त नहीं होता। इससे यह भी सिद्ध हुआ कि कर्म सन्यास करके हठ करना पाप है। श्लोक 48 में स्पष्ट किया है कि अपने स्वाभाविक कर्मों को नहीं त्यागना चाहिए चाहे उसमें कुछ पाप भी नजर आता है। जैसे खेती करने में जीव मरते हैं आदि-2।

विशेष :- गीता अध्याय 2 श्लोक 39 से 53 तक तथा अध्याय 3 श्लोक 3 में दो प्रकार की साधना बताई है। उनके विषय में कहा है कि मेरे द्वारा बताई साधना तो मेरा मत है। जो दोनों ही अमंगल कारी तथा न करने वाली है। पूर्ण ज्ञान जो मोक्षदायक है किसी तत्वदर्शी सन्त से जान गीता अध्याय 4 श्लोक 33-34 में प्रमाण है। यही प्रमाण गीता अध्याय 6 श्लोक 46 में है कहा है शास्त्र विरूद्ध साधना करने वाले कर्मयोगी से शास्त्रविद् योगी श्रेष्ठ है।

विश्लेषण :- इस गीता अध्याय 5 श्लोक 2 में ''निःश्रेयसकरौ'' शब्द मूल पाठ में है। इसको संधिच्छेद करके लिखा जाए तो इस प्रकार लिखा जाता है - निः श्रेयः अकरौ। जिसका अर्थ इस प्रकार भी बनता है = निः श्रेयः मानें जो कल्याणकारक नहीं है। जैसे अन्य अनुवादकों ने इसी अध्याय 5 के श्लोक 1 में श्रेयः का अर्थ कल्याणकारक किया है तो निः श्रेयः का अर्थ कल्याणकारक नहीं है, हुआ। अकरौ का अर्थ न करने वाली यानि जो न करनी चाहिए, बनता है। यदि अन्य अनुवादकों ने इस अध्याय 5 के श्लोक 2 में निः श्रेयः अकरौ का अर्थ परम कल्याण के करने वाले किया है। एस्कोन वालों ने इसी निः श्रेयः अकरौ का अर्थ मुक्ति पंथ को ले जाने वाला किया है जो अनुचित है। दोनों अनुवादकों (गीता प्रेस वालों तथा एस्कोन वालों) का अनुवाद अनुचित है।

अध्याय 5 का श्लोक 3

ज्ञेयः स नित्यसन्न्यासी यो न द्वेष्टि न काङ्क्षति।
निर्द्वन्द्वो हि महाबाहो सुखं बन्धात्प्रमुच्यते। ३।

ज्ञेयः, सः, नित्यसन्न्यासी, यः, न, द्वेष्टि, न, काङ्क्षति,
निर्द्वन्द्वः, हि, महाबाहो, सुखम्, बन्धात्, प्रमुच्यते।।3।।

अनुवाद : (महाबाहो) हे अर्जुन! (यः) जो साधक (न) न किसीसे (द्वेष्टि) द्वेष करता है और (न) न किसीकी (काङ्क्षति) आकांक्षा करता है, (सः) वह तत्वदर्शी (नित्यसन्न्यासी) सन्यासी ही है क्योंकि राग द्वेष युक्त व्यक्ति का मन भटकता है तथा इन से रहित साधक का मन काम करते करते

भी केवल प्रभु के भजन व गुणगान में लगा रहता है इसलिए वह सदा सन्यासी ही है (हि) क्योंकि वही व्यक्ति (बन्धात्) बन्धन से मुक्त होकर (सुखम्) पूर्ण मुक्ति रूपी सुख के (ज्ञेयः) जानने योग्य ज्ञान को (निर्द्वन्द्वः) ढोल के डंके से अर्थात् पूर्ण निश्चय के साथ भिन्न-भिन्न (प्रमुच्यते) स्वतन्त्र होकर सही व्याख्या करता है। (3)

❖ भावार्थ :- इस मंत्र नं. 3 में शास्त्र विधि अनुसार साधना करने वाले कर्मयोगी का विवरण है कि जो श्रद्धालु भक्त चाहे बाल-बच्चों सहित है या रहित है या किसी आश्रम में रहकर सतगुरु व संगत की सेवा में रत हैं। वह सर्वथा राग-द्वेष रहित होता है। वास्तव में वही सन्यासी है, वही साधक फिर अन्य शास्त्र विरुद्ध साधकों को पूर्ण निश्चय के साथ सत्य साधना का ज्ञान स्वतन्त्र होकर बताता है।

अध्याय 5 का श्लोक 4

साङ्ख्ययोगौ पृथग्बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः।
एकमप्यास्थितः सम्यगुभयोर्विन्दते फलम्। ४ ।

साङ्ख्ययोगौ, पथक्, बालाः, प्रवदन्ति, न, पण्डिताः,
एकम्, अपि, आस्थितः, सम्यक्, उभयोः, विन्दते, फलम्।।4।।

अनुवाद : (साङ्ख्ययोगौ) तत्वज्ञान के आधार से गहस्थी व ब्रह्मचारी रहकर जो एक ही प्रकार की साधना करते हैं उन दोनों को (पथक्) पथक-2 फल प्राप्त होता है ऐसा(बालाः) नादान (प्रवदन्ति) कहते हैं। वे (पण्डिताः) पण्डित (अपि) भी (न) नहीं हैं (एकम्) एक सर्व शक्तिमान परमेश्वर पर (सम्यक् आस्थितः) सम्यक् प्रकार से स्थित पुरुष (उभयोः) दोनों (फलम्) समान मोक्ष रूप फल को (विन्दते) तत्वज्ञान आधार से ही प्राप्त करते हैं गीता अध्याय 13 श्लोक 24-25 में विस्तत वर्णन है।(4)

भावार्थ है कि जो अपनी अटकलों को लगा कर कोई कहते हैं कि शास्त्र विधि अनुसार साधना करने वाले जिन्होंने शादी नहीं करवाई है अर्थात् ब्रह्मचारी रहकर घर पर या आश्रम आदि में साधना करने वाले कर्म योगी श्रेष्ठ हैं। कोई कहते हैं कि शादी करवाकर बाल बच्चों में रहकर कर्म करते करते साधना करना श्रेष्ठ है, वे दोनों ही नादान हैं, क्योंकि वास्तविक ज्ञान अर्थात् तत्वज्ञान तो तत्वदर्शी संत ही सही भिन्न-भिन्न बताएगा कि शास्त्रविधि अनुसार साधना से दोनों को समान फल प्राप्त होता है। तत्वदर्शी सन्त का गीता अध्याय 4 मंत्र 34 में वर्णन है तथा तत्वदर्शी संत की पहचान गीता अध्याय 15 मंत्र 1 से 4, में यजुर्वेद अध्याय 40 मंत्र 10 व 13 में भी कहा है कि पूर्ण परमात्मा के विधान को तत्वदर्शी सन्त ही बताता है उस से सुनों।

अध्याय 5 का श्लोक 5

यत्साङ्ख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते।
एकं साङ्ख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति। ५ ।

यत्, साङ्ख्यैः, प्राप्यते, स्थानम्, तत्, योगैः, अपि, गम्यते,
एकम्, साङ्ख्यम्, च, योगम्, च, यः, पश्यति, सः, पश्यति।।5।।

अनुवाद : शास्त्र विधि अनुसार साधना करने से (साङ्ख्यैः) तत्वज्ञानियों द्वारा (यत्) जो (स्थानम्) स्थान अर्थात् सत्यलोक (प्राप्यते) प्राप्त किया जाता है (योगैः) तत्वदर्शीयों से उपदेश प्राप्त करके साधारण गहस्थी व्यक्तियों अर्थात् कर्मयोगियोंद्वारा (अपि) भी (तत्) वही (गम्यते)

सत्यलोक स्थान प्राप्त किया जाता है (च) और इसलिए (यः) जो पुरुष (साङ्ख्यम्) ज्ञानयोग (च) और (योगम्) कर्मयोगको फलरूपमें (एकम्) एक (पश्यति) देखता है (सः) वही यथार्थ (पश्यति) देखता है अर्थात् वह वास्तव में भक्ति मार्ग जानता है (5)

विशेष :- उपरोक्त अध्याय 5 मंत्र 4-5 का भावार्थ है कि कोई तो कहता है कि जिसको ज्ञान हो गया है वही शादी नहीं करवाता तथा आजीवन ब्रह्मचारी रहता है वही पार हो सकता है। वह चाहे घर रहे, चाहे किसी आश्रम में रहे। कारण वह व्यक्ति कुछ ज्ञान प्राप्त करके अन्य जिज्ञासुओं को अच्छी प्रकार उदाहरण देकर समझाने लग जाता है। तो भोली आत्माऐं समझती हैं कि यह तो बहुत बड़ा ज्ञानी हो गया है। यह तो पार है, हमारा गंहस्थियों का नम्बर कहाँ है। कुछ एक कहते हैं कि बाल-बच्चों में रहता हुआ ही कल्याण को प्राप्त होता है। कारण गंहस्थ व्यक्ति दान-धर्म करता है, इसलिए श्रेष्ठ है। इसलिए कहा है कि वे तो दोनों प्रकार के विचार व्यक्त करने वाले बच्चे हैं, उन्हें विद्वान मत समझो। वास्तविक ज्ञान तो पूर्ण संत जो तत्वदर्शी है, वही बताता है कि शास्त्र विधि अनुसार साधना गुरु मर्यादा में रहकर करने वाले उपरोक्त दोनों ही प्रकार के साधक एक जैसी ही प्राप्ति करते हैं। जो साधक इस व्याख्या को समझ जाएगा वह किसी की बातों में आकर विचलित नहीं होता। ब्रह्मचारी रहकर साधना करने वाला भक्त जो अन्य को ज्ञान बताता है, फिर उसकी कोई प्रशंसा कर रहा है कि बड़ा ज्ञानी है, परन्तु तत्व ज्ञान से परिचित जानता है कि ज्ञान तो सतगुरु का बताया हुआ है, ज्ञान से नहीं, नाम जाप व गुरु मर्यादा में रहने से मुक्ति होगी। इसी प्रकार जो गंहस्थी है वह भी जानता है कि यह भक्त जी भले ही चार मंत्र व वाणी सीखे हुए है तथा अन्य इसके व्यर्थ प्रशंसक बने हैं, ये दोनों ही नादान हैं। मुक्ति तो नाम जाप व गुरु मर्यादा में रहने से होगी, नहीं तो दोनों ही पाप के भागी व भक्तिहीन हो जायेंगे। ऐसा जो समझ चुका है वह चाहे ब्रह्मचारी है या गंहस्थी दोनों ही वास्तविकता को जानते हैं। उसी वास्तविक ज्ञान को जान कर साधना करने वाले साधक के विषय में निम्न मंत्रों का वर्णन किया है।

अध्याय 5 का श्लोक 6

सन्न्यासस्तु महाबाहो दुःखमाप्तुमयोगतः।
योगयुक्तो मुनिर्ब्रह्म नचिरेणाधिगच्छति । ६ ।

सन्न्यासः, तु, महाबाहो, दुःखम्, आप्तुम्, अयोगतः,
योगयुक्तः, मुनिः, ब्रह्म, नचिरेण, अधिगच्छति।।6।।

अनुवाद : (महाबाहो) हे अर्जुन! (तु) इसके विपरित (सन्न्यास) कर्म सन्यास से तो (अयोगतः) शास्त्र विधि रहित साधना होने के कारण (दुःखम्) दुःख ही (आप्तुम्) प्राप्त होता है तथा (योगयुक्तः) शास्त्र अनुकूल साधना प्राप्त (मुनिः) साधक (ब्रह्म) प्रभु को (नचिरेण) अविलम्ब ही (अधिगच्छति) प्राप्त हो जाता है।(6)

अध्याय 5 का श्लोक 7

योगयुक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेन्द्रियः।
सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते । ७ ।

योगयुक्तः, विशुद्धात्मा, विजितात्मा, जितेन्द्रियः,
सर्वभूतात्मभूतात्मा, कुर्वन्, अपि, न, लिप्यते।।7।।

अनुवाद : (विजितात्मा) तत्वज्ञान तथा सत्य भक्ति से जिसका मन संस्य रहित है, (जितेन्द्रियः) इन्द्री जीता हुआ (विशुद्धात्मा) पवित्र आत्मा और (सर्वभूतात्मभूतात्मा) सर्व प्राणियों

के मालिक की सत्यसाधना से सर्व प्राणियों को आत्मा रूप में एक समझकर तत्वज्ञान को प्राप्त प्राणी संसार में रहता हुआ (योगयुक्तः) सत्य साधना में लगा हुआ (कुर्वन्) सांसारिक कर्म करता हुआ (अपि) भी (न, लिप्यते) लिप्त नहीं होता अर्थात् सन्तान व सम्पत्ति में आसक्त नहीं होता। क्योंकि उसे तत्वज्ञान से ज्ञान हो जाता है कि यह सन्तान व सम्पति अपनी नहीं है। जैसे कोई व्यक्ति किसी होटल में रह रहा हो, वहाँ के नौकरों व अन्य सामान जैसे टी.वी., सोफा सेट, दूरभाष, चारपाई व जिस कमरे में रह रहा है को अपना नहीं समझता उस व्यक्ति को पता होता है कि ये वस्तुऐं मेरी नहीं हैं। इसलिए उन से द्वेष भी नहीं होता तथा लगाव भी नहीं बनता तथा अपने मूल उद्देश्य को नहीं भूलता। इसलिए जिस घर में हम रह रहे हैं, इस सर्व सम्पत्ति व सन्तान को अपना न समझ कर प्रेम पूर्वक रहते हुए प्रभु प्राप्ति की लगन लगाए रखें।(7)

अध्याय 5 का श्लोक 8, 9

नैव किञ्चित्करोमीति युक्तो मन्येत तत्त्ववित्।
पश्यञ्शृण्वन्स्पृशञ्जिघ्रन्नश्नन्गच्छन्स्वपञ्श्वसन्। ८ ।

प्रलपन्विसृजन्गृह्णन्नुन्मिषन्निमिषन्नपि ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु वर्तन्त इति धारयन्। ९ ।

न, एव, किंचित्, करोमि, इति, युक्तः, मन्येत, तत्त्ववित्,
पश्यन्, श्रण्वन्, स्पशन्, जिघ्रन्, अश्नन्, गच्छन्, स्वपन्,।।8।।
श्वसन्, प्रलपन्, विसजन्, गह्णन्, उन्मिषन्, निमिषन्, अपि,
इन्द्रियाणि, इन्द्रियार्थेषु, वर्तन्ते, इति, धारयन्।।9।।

अनुवाद : (तत्त्ववित्) तत्वदर्शी (युक्तः) प्रभु में लीन योगी तो (पश्यन्) देखता हुआ (श्रण्वन्) सुनता हुआ (स्पशन्) स्पर्श करता हुआ (जिघ्रन्) सूँघता हुआ (अश्नन्) भोजन करता हुआ (गच्छन्) चलता हुआ (स्वपन्) सोता हुआ (श्वसन्) श्वांस लेता हुआ (प्रलपन्) बोलता हुआ (विसजन्) त्यागता हुआ (गह्णन्) ग्रहण करता हुआ तथा (उन्मिषन्) आँखोंको खोलता और (निमिषन्) मूँदता हुआ (अपि) भी (इन्द्रियाणि) सब इन्द्रियाँ (इन्द्रियार्थेषु) अपने-अपने अर्थोमें (वर्तन्ते) बरत रही हैं अर्थात् दुराचार नहीं करता (इति) इस प्रकार (धारयन्) समझकर (एव) निःसन्देह (इति) ऐसा (मन्येत) मानता है कि मैं (किंचित्) कुछ भी (न) नहीं (करोमि) करता हूँ अर्थात् ऐसा कर्म नहीं करता जो पाप दायक है। (8,9)

भावार्थ है कि जो कुछ भी हो रहा है परमात्मा की कप्या से ही हो रहा है। जीव कुछ नहीं कर सकता। परमात्मा के विद्यान अनुसार चलने वाला सुखी रहता है तथा मोक्ष प्राप्त करता है। विपरीत चलने वाले को हानी होती है।

अध्याय 5 का श्लोक 10

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा करोति यः।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा।१०।

ब्रह्मणि, आधाय, कर्माणि, संगम्, त्यक्त्वा, करोति, यः,
लिप्यते, न, सः, पापेन, पद्मपत्रम्, इव, अम्भसा।।1।।

अनुवाद : (यः) जो पुरुष (कर्माणि) सब कर्मोंको (ब्रह्मणि) पूर्ण परमात्मा में (आधाय) अर्पण करके और (संगम्) आसक्तिको (त्यक्त्वा) त्यागकर शास्त्र विधि अनुसार कर्म (करोति) करता है

(सः) वह साधक (अम्भसा) जलसे (पद्मपत्रम्) कमलके पत्ते की (इव) भाँति (पापेन) पापसे (न, लिप्यते) लिप्त नहीं होता अर्थात् पूर्ण परमात्मा की भक्ति से साधक सर्व बन्धनों से मुक्त हो जाता है जो पाप कर्म के कारण बन्धन बनता है। (10)

अध्याय 5 का श्लोक 11

कायेन मनसा बुद्ध्या केवलैरिन्द्रियैरपि।
योगिनः कर्म कुर्वन्ति सङ्गं त्यक्त्वात्मशुद्धये। ११।

कायेन, मनसा, बुद्ध्या, केवलैः, इन्द्रियैः, अपि,
योगिनः, कर्म, कुर्वन्ति, संगम्, त्यक्त्वा, आत्मशुद्धये।।11।।

अनुवाद : (योगिनः) होटल में निवास की तरह संसार में रहने वाले भक्त (केवलैः) केवल (इन्द्रियैः) इन्द्रिय (मनसा) मन (बुद्ध्या) बुद्धि और (कायेन) शरीरद्वारा (अपि) भी (संगम्) आसक्तिको (त्यक्त्वा) त्यागकर (आत्मशुद्धये) अन्तःकरणकी शुद्धिके लिये अर्थात् आत्म कल्याण के लिए (कर्म) सत्यनाम सुमरण, दान, सतगुरु सेवा व संसार में शुद्ध आचरण रूपी कर्म (कुर्वन्ति) करते हैं।(11)

अध्याय 5 का श्लोक 12

युक्तः कर्मफलं त्यक्त्वा शान्तिमाप्नोति नैष्ठिकीम्।
अयुक्तः कामकारेण फले सक्तो निबध्यते। १२।

युक्तः, कर्मफलम्, त्यक्त्वा, शान्तिम्, आप्नोति, नैष्ठिकीम्,
अयुक्तः, कामकारेण, फले, सक्तः, निबध्यते।।12।।

अनुवाद : (युक्तः) शास्त्रानुकूल सत्य साधना में लगा भक्त (कर्मफलम्) कर्मोंके फलका (त्यक्त्वा) त्याग करके (नैष्ठिकीम्) स्थाई अर्थात् परम (शान्तिम्) शान्तिको (आप्नोति) प्राप्त होता है और (अयुक्तः) शास्त्र विधि रहित साधना करने वाला अर्थात् असाध (कामकारेण) मनो कामना की पूर्ति के लिए (फले) फलमें (सक्तः) आसक्त होकर (निबध्यते) पाप कर्म के कारण बँधता है।(12)

अध्याय 5 का श्लोक 13

सर्वकर्माणि मनसा सन्न्यस्यास्ते सुखं वशी।
नवद्वारे पुरे देही नैव कुर्वन्न कारयन्। १३।

सर्वकर्माणि, मनसा, सन्न्यस्य, आस्ते, सुखम्, वशी,
नवद्वारे, पुरे, देही, न, एव, कुर्वन्, न, कारयन्।।13।।

अनुवाद : (मनसा) मन को तत्वज्ञान के आधार से (वशी) काल लोक के लाभ से हटा कर दढ़ इच्छा से (सर्व कर्माणि) सम्पूर्ण शास्त्र अनुकूल धार्मिक कर्मों अर्थात् सत्य साधना से (सन्न्यस्य) संचित कर्म के आधार से अर्थात् सन्चय की हुई सत्य भक्ति कमाई के आधार से (सुखम्) वास्तविक आनन्द में अर्थात् पूर्णमोक्ष रूपी परम शान्ति युक्त सत्यलोक में (आस्ते) स्थित होकर निवास करता है (एव) इस प्रकार फिर (देही) शरीरी अर्थात् परमात्मा के साथ अभेद रूप में जीवात्मा (नवद्वारे) पंच भौतिक नौ द्वारों वाले शरीर रूप (पुरे) किले में (न कुर्वन्) न तो कर्म करता हुआ (न कारयन्) न ही कर्म करवाता हुआ अर्थात् पूर्ण मोक्ष प्राप्त करके सत्यलोक में ही सुख पूर्वक रहता है।(13)

अध्याय 5 का श्लोक 14

न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः।
न कर्मफलसंयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते।१४।

न, कर्तत्वम्, न, कर्माणि, लोकस्य, सजति, प्रभुः,
न, कर्मफलसंयोगम्, स्वभावः, तु, प्रवर्तते।।14।।

अनुवाद : (प्रभुः) कुल का स्वामी पूर्ण परमात्मा सर्व प्रथम (लोकस्य) विश्व का (सजति) सजन यानि रचना करता है तब (न) न तो (कर्तत्वम्) कर्त्तापनका (न) न (कर्माणि) कर्मो का आधार होता है (न) न (कर्मफलसंयोगम्) कर्मफलके संयोग ही आधार होते हैं (तु) इसके विपरीत (स्वभावः) सर्व प्राणियों द्वारा स्वभाव वश किए कर्म का फल ही (प्रवर्तते) बरत रहा है।(14)

अध्याय 5 का श्लोक 15

नादत्ते कस्यचित्पापं न चैव सुकृतं विभुः।
अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः।१५।

न, आदत्ते, कस्यचित्, पापम्, न, च, एव, सुकतम्, विभुः,
अज्ञानेन, आवतम्, ज्ञानम्, तेन, मुह्यन्ति, जन्तवः।।15।।

अनुवाद : (विभुः) सर्व व्यापक सर्व का स्वामी यानि पूर्ण परमात्मा (न) न (कस्यचित्) किसीके (पापम्) पाप का (च) और (न) न किसी के (सुकतम्) शुभकर्मका (एव) ही (आदत्ते) प्रति फल देता है अर्थात् निर्धारित किए नियम अनुसार फल देता है किंतु (अज्ञानेन) अज्ञानके द्वारा (ज्ञानम्) ज्ञान (आवतम्) ढका हुआ है (तेन) उसीसे (जन्तवः) तत्वज्ञान हीनता के कारण जानवरों तुल्य सब अज्ञानी मनुष्य (मुह्यन्ति) मोहित हो रहे हैं अर्थात् स्वभाववश शास्त्र विधि रहित भक्ति कर्म व सांसारिक कर्म करके क्षणिक सुखों में आसक्त हो रहे हैं। जो साधक शास्त्र विधि अनुसार भक्ति कर्म करते हैं उनके पाप को प्रभु क्षमा कर देता है अन्यथा संस्कार ही वर्तता है अर्थात् प्राप्त करता है। (5/15) इसी का विस्तत विवरण पवित्र गीता अध्याय 16 व 17 में देखें।

भावार्थ :- अध्याय 5 श्लोक 14-15 में तत्व ज्ञानहीनत व्यक्तियों को जन्तवः अर्थात् जानवरों तुल्य कहा है क्योंकि तत्वज्ञान के बिना पूर्ण मोक्ष नहीं हो सकता पूर्ण मोक्ष बिना परम शान्ति नहीं हो सकती इसलिए कहा है कि पूर्ण परमात्मा ने जब सतलोक में सष्टि रची थी उस समय किसी को कोई कर्म आधार बना कर उत्पत्ति नहीं की थी। सत्यलोक में सुन्दर शरीर दिया था जो कभी विनाश नहीं होता। परन्तु प्रभु ने कर्म फल का विद्यान अवश्य बनाया था। इसलिए सर्व प्राणी अपने स्वभाववश कर्म करके सुख व दुःख के भोगी होते हैं। जैसे हम सर्व आत्माऐं सत्यलोक में पूर्ण ब्रह्म परमात्मा(सतपुरुष) द्वारा अपने मध्य से शब्द शक्ति से उत्पन्न किए। वहाँ सत्यलोक में हमें कोई कर्म नहीं करना था तथा सर्व सुख उपलब्ध थे। हम स्वयं अपने स्वभाव वश होकर ज्योति निरंजन (ब्रह्म-काल) पर आसक्त हो कर अपने सुखदाई प्रभु से विमुख हो गए। उसी का परिणाम यह निकला कि अब हम कर्म बन्धन में स्वयं ही बन्ध गए। अब जैसे कर्म करते हैं, उसी का फल निर्धारित नियमानुसार ही प्राप्त कर रहे हैं। जो साधक शास्त्र अनुकूल साधना करता है उसके पाप को पूर्ण परमात्मा क्षमा करता है अन्यथा संस्कार ही वर्तता है अर्थात् संस्कार ही प्राप्त करता है।

नीचे के मंत्र 16 से 28 तक शास्त्र अनुकूल भक्ति कर्म तथा मर्यादा में रहकर पूर्ण परमात्मा को प्राप्त कर सकते हैं तथा पूर्ण प्रभु पाप क्षमा कर देता है। इसलिए कर्त्तव्य कर्म अर्थात् करने योग्य

भक्ति व संसारिक कर्म करता हुआ ही पूर्ण मुक्त होता है।

अध्याय 5 का श्लोक 16

ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः।
तेषामादित्यवज्ज्ञानं प्रकाशयति तत्परम्।१६।

ज्ञानेन, तु, तत्, अज्ञानम्, येषाम्, नाशितम्, आत्मनः,
तेषाम्, आदित्यवत्, ज्ञानम्, प्रकाशयति, तत्परम्।।16।।

अनुवाद : (तु) परंतु (येषाम्) जिनका (अज्ञानम्) अज्ञान (आत्मनः) पूर्ण परमात्मा पथ्वी पर स्वयं सतगुरू रूप में प्रकट होकर आत्मज्ञान तथा परमात्म ज्ञान को तत्वज्ञान में बताता है। उस आत्मज्ञान के द्वारा उस पूर्ण परमात्मा के (तत् ज्ञानेन) उस तत्वज्ञान से (नाशितम्) नष्ट हो गया है (तेषाम्) उनका वह (ज्ञानम्) तत्वज्ञान (तत्परम्) उस पूर्ण परमात्मा को (आदित्यवत्) सूर्य के सदश (प्रकाशयति) प्रकाशित कर देता है अर्थात् अज्ञान रूपी अंधेरा हटा देता है। (16)

कबीर, तारा मण्डल बैठ कर चांद बड़ाई खाए। उदय हुआ जब सूरज का स्यों तारों छिप जाए।।
कबीर, और ज्ञान सब ज्ञानड़ी, तत्वज्ञान सो ज्ञान। जैसे गोला तोप का करता चले मैदान।।

अध्याय 5 का श्लोक 17

तद्बुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणाः।
गच्छन्त्यपुनरावृत्तिं ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः।१७।

तद्बुद्धयः, तदात्मानः, तन्निष्ठाः, तत्परायणाः,
गच्छन्ति, अपुनरावत्तिम्, ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः।।17।।

अनुवाद : (तदात्मानः) वह तत्वज्ञान युक्त जीवात्मा (तद्बुद्धयः) उस पूर्ण परमात्मा के तत्व ज्ञान पर पूर्ण रूप से लगी बुद्धि से (तन्निष्ठाः) सर्वव्यापक परमात्मामें ही निरन्तर एकीभावसे स्थित है ऐसे (तत्परायणाः) उस परमात्मा पर आश्रित (ज्ञाननि धूंतकल्मषाः) तत्वज्ञानके आधार पर शास्त्र विधि रहित साधना करना भी पाप है तथा उससे पुण्य के स्थान पर पाप ही लगता है इसलिए सत्य भक्ति करके पापरहित होकर (अपुनरावत्तिम्) जन्म-मरण से मुक्त होकर संसार में पुनर् लौटकर न आने वाली गति अर्थात् पूर्ण मुक्ति को (गच्छन्ति) प्राप्त होते हैं। (17)

अध्याय 5 का श्लोक 18

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः।१८।

विद्याविनयसम्पन्ने, ब्राह्मणे, गवि, हस्तिनि,
शुनि, च, एव, श्वपाके, च, पण्डिताः, समदर्शिनः।।18।।

अनुवाद : (विद्याविनयसम्पन्ने) गुप्त तत्वज्ञान से परिपूर्ण अर्थात् पूर्ण तत्वज्ञानी साधक (ब्राह्मणे) ब्राह्मण में (गवि) गाय में (हस्तिनि) हाथी में (च) तथा (शुनि) कुत्ते (च) और (श्वपाके) चाण्डालमें (समदर्शिनः) एक समान समझता है अर्थात् एक ही भाव रखता है वास्तव में इन लक्षणों से युक्त हैं (पण्डिताः) ज्ञानीजन अर्थात् तत्वज्ञानी (एव) ही है। (18)

अध्याय 5 का श्लोक 19

इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः।
निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद्ब्रह्मणि ते स्थिताः।१९।

इह, एव, तैः, जितः, सर्गः, येषाम्, साम्ये, स्थितम्, मनः,
निर्दोषम्, हि, समम्, ब्रह्म, तस्मात्, ब्रह्मणि, ते, स्थिताः।।19।।

अनुवाद : (एव) वास्तव में (येषाम्) जिनका (मनः) मन (साम्ये) समभावमें (स्थितम्) स्थित है (तैः) उनके द्वारा (इह) इस जीवित अवस्थामें (सर्गः) सम्पूर्ण संसार (जितः) जीत लिया गया है अर्थात् वे मनजीत हो गए हैं (हि) निसंदेह वह (निर्दोषम्) पाप रहित साधक (ब्रह्म) परमात्मा (समम्) सम है अर्थात् निर्दोष आत्मा हो गई हैं (तस्मात्) इससे (ते) वे (ब्रह्मणि) पूर्ण परमात्मामें ही (स्थिताः) स्थित हैं। पाप रहित आत्मा तथा परमात्मा के बहुत से गुण समान है जैसे अविनाशी, राग-द्वेष रहित, जन्म-मत्यु रहित, स्वप्रकाशित भले ही शक्ति में बहुत अन्तर है। (19)

अध्याय 5 का श्लोक 20

न प्रहृष्येत्प्रियं प्राप्य नोद्विजेत्प्राप्य चाप्रियम्।
स्थिरबुद्धिरसम्मूढो ब्रह्मविद् ब्रह्मणि स्थितः। २०।

न, प्रहृष्येत्, प्रियम्, प्राप्य, न, उद्विजेत्, प्राप्य, च, अप्रियम्,
स्थिरबुद्धिः, असम्मूढः, ब्रह्मवित्, ब्रह्मणि, स्थितः।।20।।

अनुवाद : (प्रियम्) प्रियको (प्राप्य) प्राप्त होकर (न प्रहृष्येत्) हर्षित नहीं हो (च) और (अप्रियम्) अप्रियको (प्राप्य) प्राप्त होकर (न उद्विजेत्) उद्विगन्न न हो वह (स्थिरबुद्धि) स्थिरबुद्धि (असम्मूढः) संश्यरहित (ब्रह्मवित्) परमात्म तत्व को पूर्ण रूप से जानने वाले (ब्रह्मणि) पूर्ण परमात्मामें एकीभावसे नित्य (स्थितः) स्थित है। (20)

अध्याय 5 का श्लोक 21

बाह्यस्पर्शेष्वसक्तात्मा विन्दत्यात्मनि यत्सुखम्।
स ब्रह्मयोगयुक्तात्मा सुखमक्षयमश्नुते। २१।

बाह्यस्पर्शेषु, असक्तात्मा, विन्दति, आत्मनि, यत्, सुखम्,
सः, ब्रह्मयोगयुक्तात्मा, सुखम्, अक्षयम्, अश्नुते।।21।।

अनुवाद : (बाह्यस्पर्शेषु) बाहरके विषयोंमें (असक्तात्मा) आसक्तिरहित साधक को (आत्मनि) अपने आप में (यत्) जो सुमरण (सुखम्) आनन्द(विन्दति) प्राप्त होता है (सः) वह (ब्रह्मयोगयुक्तात्मा) परमात्माके अभ्यास योगमें अभिन्नभावसे स्थित भक्त आत्मा (अक्षयम्) कभी समाप्त न होने वाले (सुखम्) आनन्दका (अश्नुते) अनुभव करता है। अर्थात् पूर्ण मोक्ष प्राप्त करते हैं।(21)

अध्याय 5 का श्लोक 22

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः। २२।

ये, हि, संस्पर्शजाः, भोगाः, दुःखयोनयः, एव, ते,
आद्यन्तवन्तः, कौन्तेय, न, तेषु, रमते, बुधः।।22।।

अनुवाद : (एव) वास्तव में (ये) जो ये इन्द्रिय तथा (संस्पर्शजाः) विषयोंके संयोगसे उत्पन्न होनेवाले (भोगाः) सब भोग हैं (ते) वे (हि) निश्चय ही (दुःखयोनयः) कष्ट दायक योनियों के ही हेतु हैं और (आद्यन्तवन्तः) आदि-अन्तवाले अर्थात् अनित्य हैं। (कौन्तेय) हे अर्जुन! (बुधः) बुद्धिमान् विवेकी पुरुष (तेषु) उनमें (न) नहीं (रमते) रमता। (22)

अध्याय 5 का श्लोक 23

शक्नोतीहैव यः सोढुं प्राक्शरीरविमोक्षणात्।
कामक्रोधोद्भवं वेगं स युक्तः स सुखी नरः। २३।

शक्नोति, इह, एव, यः, सोढुम्, प्राक्, शरीरविमोक्षणात्,
कामक्रोधोद्भ्वम्, वेगम्, सः, युक्तः, सः, सुखी, नरः।।23।।

अनुवाद : (यः) जो साधक (इह) इस मनुष्य शरीरमें (शरीरविमोक्षणात्) शरीरका नाश होनेसे (प्राक्) पहले-पहले (एव) ही (कामक्रोधोद्भ्वम्) काम-क्रोधसे उत्पन्न होनेवाले (वेगम्) वेगको (सोढुम्) सहन करनेमें (शक्नोति) समर्थ हो जाता है (सः) वही (नरः) व्यक्ति (युक्तः)प्रभु में लीन भक्त है और (सः)वही (सुखी)सुखी है। (23)

अध्याय 5 का श्लोक 24

योऽन्तःसुखोऽन्तरारामस्तथान्तर्ज्योतिरेव यः।
स योगी ब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्मभूतोऽधिगच्छति। २४।

यः, अन्तःसुखः, अन्तरारामः, तथा, अन्तर्ज्योतिः, एव, यः,
सः, योगी, ब्रह्मनिर्वाणम्, ब्रह्मभूतः, अधिगच्छति।।24।।

अनुवाद : (यः) जो पुरुष (एव) निश्चय करके (अन्तःसुखः) अन्तःकरण में ही सुखवाला है (अन्तरारामः) पूर्ण परमात्मा जो अन्तर्यामी रूप में आत्मा के साथ है उसी अन्तर्यामी परमात्मा में ही रमण करनेवाला है (तथा) तथा (यः) जो (अन्तर्ज्योतिः) अन्तः करण प्रकाश वाला अर्थात् सत्य भक्ति शास्त्र ज्ञान अनुसार करता हुआ मार्ग से भ्रष्ट नहीं होता (सः) वह (ब्रह्मभूतः) परमात्मा जैसे गुणों युक्त (योगी) भक्त (ब्रह्मनिर्वाणम्) शान्त ब्रह्म अर्थात् पूर्ण परमात्माको (अधिगच्छति) प्राप्त होता है।(24)

अध्याय 5 का श्लोक 25

लभन्ते ब्रह्मनिर्वाणमृषयः क्षीणकल्मषाः।
छिन्नद्वैधा यतात्मानः सर्वभूतहिते रताः। २५।

लभन्ते, ब्रह्मनिर्वाणम्, ऋषयः, क्षीणकल्मषाः,
छिन्नद्वैधाः, यतात्मानः, सर्वभूतहिते, रताः।।25।।

अनुवाद : (क्षीणकल्मषाः) शास्त्र विधि अनुसार साधना करने से जिनके सब पाप नष्ट हो गये हैं, (छिन्नद्वैधाः) जिनके सब संश्य निवत्त हो गये हैं अर्थात् जो पथ भ्रष्ट नहीं हैं (सर्वभूतहिते) जो सम्पूर्ण प्राणियोंके हितमें (रताः) रत हैं और (यतात्मानः) परमात्मा के प्रयत्न अर्थात् साधना से स्थित हैं वे (ऋषयः) साधु पुरुष (ब्रह्मनिर्वाणम्) शान्त ब्रह्म को अर्थात् पूर्ण परमात्मा को (लभन्ते) प्राप्त होते हैं।(25)

अध्याय 5 का श्लोक 26

कामक्रोधवियुक्तानां यतीनां यतचेतसाम्।
अभितो ब्रह्मनिर्वाणं वर्तते विदितात्मनाम्। २६।

कामक्रोधवियुक्तानाम्, यतीनाम्, यतचेतसाम्,
अभितः, ब्रह्मनिर्वाणम्, वर्तते, विदितात्मनाम्।।26।।

अनुवाद : (कामक्रोधवियुक्तानाम्) काम-क्रोधसे रहित (यतचेतसाम्) प्रभु भक्ति में प्रयत्न शील (विदितात्मनाम्) परमात्माका साक्षात्कार किये हुए (यतीनाम्) परमात्मा आश्रित पुरुषोंके लिये (अभितः) सब ओरसे (ब्रह्मनिर्वाणम्) शान्त ब्रह्म को अर्थात् पूर्णब्रह्म परमात्मा को ही (वर्तते) व्यवहार में लाते हैं अर्थात् केवल एक पूर्ण प्रभु की ही पूजा करते हैं।(26)

विशेष - गीता अध्याय 5 श्लोक 27 व 28 में विवरण है कि जो साधक पूर्ण संत अर्थात् तत्वदर्शी संत से उपदेश प्राप्त कर लेता है फिर स्वांस-उस्वांस से सामान्य रूप से सुमरण करता है वही विकार रहित होकर पूर्ण परमात्मा को प्राप्त करके अनादि मोक्ष प्राप्त करता है।

अध्याय 5 का श्लोक 27, 28

स्पर्शान्कृत्वा बहिर्बाह्यांश्चक्षुश्चैवान्तरे भ्रुवोः।
प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यन्तरचारिणौ। २७।

यतेन्द्रियमनोबुद्धिर्मुनिर्मोक्षपरायणः ।
विगतेच्छाभयक्रोधो यः सदा मुक्त एव सः। २८।

स्पर्शान्, कत्वा, बहिः, बाह्यान्, चक्षुः, च, एव, अन्तरे, भ्रुवोः,
प्राणापानौ, समौ, कत्वा, नासाभ्यन्तरचारिणौ।।27।।
यतेन्द्रियमनोबुद्धिः, मुनिः, मोक्षपरायणः,
विगतेच्छाभयक्रोधः, यः, सदा, मुक्तः, एव, सः।।28।।

अनुवाद : (एव) वास्तव में (बाह्यान्) बाहरके (स्पर्शान्) विषयभोगोंको (बहिः) बाहर (कत्वा) निकालकर (च) और (चक्षुः) नेत्रों की दष्टि को (भ्रुवोः) भकुटीके (अन्तरे) बीच में स्थित करके तथा (नासाभ्यन्तरचारिणौ) नासिका में चलने(प्राणापानौ) प्राण और अपानवायु अर्थात् स्वांस-उस्वांस को (समौ) सम (कत्वा) करके सत्यनाम सुमरण करता है (यतेन्द्रियमनोबुद्धिः) जिसने इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि जीती हुई हैं, अर्थात् जो नाम स्मरण पर ध्यान लगाता है मन को भ्रमित नहीं होने देता ऐसा (यः) जो (मोक्षपरायणः) मोक्षपरायण मोक्ष के लिए प्रयत्न शील (मुनिः) मननशील साधक (विगतेच्छाभयक्रोधः) इच्छा, भय और क्रोध से रहित हो गया है, (एव) वास्तव में (सः) वह (सदा) सदा (मुक्तः) मुक्त है। (27,28)

विशेष :- गीता अध्याय 5 मंत्र 29 में गीता बोलने वाला ब्रह्म काल कह रहा है कि जो नादान मुझे ही सर्व का मालिक व सर्व सुखदाई दयालु प्रभु मान कर मेरी ही साधना पर आश्रित हैं, वे पूर्ण परमात्मा को प्राप्त होने से मिलने वाली शान्ति से वंचित रह जाते हैं अर्थात् उनका पूर्ण मोक्ष नहीं होता। उनकी शान्ति समाप्त हो जाती है तथा नाना प्रकार के कष्ट उठाते रहते हैं।

अध्याय 5 का श्लोक 29

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम्।
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति। २९।

भोक्तारम्, यज्ञतपसाम्, सर्वलोकमहेश्वरम्,
सुहृदम्, सर्वभूतानाम्, ज्ञात्वा, माम्, शान्तिम्, ऋच्छति।।29।।

अनुवाद : (माम्) मुझको (यज्ञतपसाम्) सब यज्ञ और तपोंका (भोक्तारम्) भोगनेवाला (सर्वलोकमहेश्वरम्) सम्पूर्ण लोकोंके ईश्वरोंका भी ईश्वर तथा (सर्वभूतानाम्) सम्पूर्ण प्राणियोंका (सुहृदम्) स्वार्थरहित दयालु और प्रेमी, ऐसा (ज्ञात्वा) जानकर मेरे पर ही आश्रित रहने, मुझ से

मिलने वाली अस्थाई, अश्रेष्ठ (शान्तिम्) शान्ति को (ऋच्छति) प्राप्त होते हैं जिस कारण से उनकी परम शान्ति पूर्ण रूप से समाप्त हो जाती है अर्थात् शान्ति की क्षमता समाप्त हो जाती है, पूर्ण मोक्ष से वंचित रह जाते हैं इसलिए मेरा साधक भी महादुःखी रहता है, इसी का प्रमाण गीता अध्याय 2 श्लोक 66 में है कि शान्ति रहित मनुष्य को सुख कैसा तथा अध्याय 7 श्लोक 18 में तथा गीता अध्याय 6 श्लोक 15 में भी स्पष्ट प्रमाण है, इसीलिए गीता अध्याय 15 श्लोक 16-17 में कहा है कि वास्तव में उत्तम पुरूष अर्थात् पूर्ण मोक्ष दायक परमात्मा तो कोई अन्य है इसलिए अध्याय 18 श्लोक 62-64-66 में कहा है कि अर्जुन सर्वभाव से उस परमात्मा की शरण में जा, जिसकी कृपा से ही तू परम शान्ति तथा सनातन परम धाम अर्थात् सत्यलोक को प्राप्त होगा। (29)

विशेष : क्योंकि काल(ब्रह्म) भगवान तीन लोक के (ब्रह्मा-विष्णु-महेश) भगवानों तथा 21 ब्रह्मण्ड के लोकों का मालिक है। इसलिए ईश्वरों का भी ईश्वर है। इसलिए महेश्वर कहा है तथा जो भी साधक यज्ञ या अन्य साधना(तप) करके जो सुविधा प्राप्त करता है उसका भोक्ता(खाने वाला) काल ही है। जैसे राजा बन कर आनन्द करना, नाना प्रकार के विकार करना। इन सब का आनन्द स्वयं काल भगवान मन रूप से प्राप्त करता है तथा फिर तप्त शिला पर गर्म करके उससे वासना युक्त पदार्थ निकाल कर खाता है। अज्ञानतावश नादान प्राणी इसी काल भगवान को दयालु व प्रेमी जान कर प्रसन्न है। जैसे कसाई के बकरे अपने मालिक(कसाई) को देखते हैं कि वह चारा डालता है, पानी पिलाता है, गर्मी-सर्दी से बचाता है। इसलिए उसे दयालु तथा प्रेमी समझते हैं परंतु वास्तव में वह कसाई उनका काल है। सबको काटेगा, मारेगा तथा स्वार्थ सिद्ध करेगा। ऐसे ही काल भगवान दयालु दिखाई देता है परंतु सर्व प्राणियों को खाता है। इसलिए कहा है कि जो मुझ काल को ही सर्वसवा मानकर साधनारत है। उनकी शान्ति समाप्त हो जाती है अर्थात् महाकष्ट को प्राप्त होते हैं। गीता अध्याय 11 श्लोक 32 में गीता ज्ञान दाता प्रभु स्वयं कह रहा है कि मैं काल हूँ। सर्व को खाने के लिए आया हूँ। इसलिए इस अध्याय 5 श्लोक 29 का भावार्थ है कि काल को प्राप्त हो कर प्राणी को शान्ति कहाँ। इसलिए स्थान-2 पर गीता जी में कहा है पूर्ण शान्ति के लिए पूर्ण परमात्मा शान्त ब्रह्म की शरण में जा।

(इति अध्याय पाँचवाँ)

❑❑❑

छठवां अध्याय

।।दिव्य सारांश।।

विशेष :- श्री मद् भगवत् गीता जी में दो तरफा (विरोधाभास युक्त) ज्ञान है। अध्याय 3 श्लोक 1-2 में अर्जुन ने यही कहा है कि आप की दोतरफा बातों से मैं विचलित हो रहा हूँ। जैसे गीता अध्याय 3 श्लोक 3 से 8 में कर्म त्याग कर एक स्थान पर बैठ कर (कर्मसन्यास प्राप्त करके) साधना करने वाले को पाखण्डी बताया है तथा कर्मयोग अर्थात् कार्य करते-2 साधना करने वाले (योगी) भक्त को श्रेष्ठ ठहराया है। फिर गीता अध्याय 6 श्लोक 10 से 15 में एक स्थान पर विशेष आसन पर बैठ कर नाक के अग्रभाग पर ध्यान लगाने को कहा है। इन श्लोकों (अध्याय 6 के श्लोक 10 से 15) में अध्याय 3 श्लोक 3 से 8 का खण्डन है।

❖ *अध्याय 6 श्लोक 2 में काल भगवान ने दोनों ही प्रकार की साधना करने वाले साधकों की साधना का विवरण दिया है। पूर्ण परमात्मा की साधना के विषय में गीता अध्याय 4 श्लोक 34 में वर्णन है कि तत्वज्ञानी अर्थात् तत्वदर्शी संत से प्राप्त कर।*

❖ *गीता अध्याय 6 श्लोक 1 से 9 तक पूर्ण परमात्मा का कृप्या पात्र विधिवत् साधक ही वास्तव में सर्व सुख प्राप्त करता है, क्योंकि पूर्ण परमात्मा शास्त्र अनुकूल साधक का सच्चा साथी है जिससे उसका मन रूकता है। मन तो ब्रह्म (काल) है, यह पूर्ण परमात्मा से डरता है। दूसरे जो शास्त्र विधि त्याग कर साधना करते हैं वे असफल रहते हैं।*

❖ *गीता अध्याय 6 श्लोक 7 में गीता ज्ञान देने वाले ने अपने से अन्य परमात्मा का ज्ञान बताया है कि तत्वज्ञान प्राप्त भक्त तत्वदर्शी संत से दीक्षित (परमात्मा समहित) परमात्मा के अनुकूल चलता है। सुख, दुःख, मान-अपमान से विचलित न होकर शांत रहता है। परमेश्वर की रजा में प्रसन्न रहता है। उसके लिए परमात्मा प्राप्ति के अतिरिक्त कुछ भी शेष नहीं रहता।*

फिर अध्याय 6 श्लोक 10 से 15 में गीता ज्ञान दाता ने अपने द्वारा बताए गए भक्ति साधनों का विवरण दिया है जो इसका वेद विरूद्ध मत है क्योंकि वेद अनुसार साधना का वर्णन गीता अध्याय 3 श्लोक 3-8 में है। इसलिए अध्याय 6 श्लोक 32 में कहा है कि वास्तव में सर्वश्रेष्ठ साधक तो वही है जो (परमः मतः) शास्त्र अनुकूल साधना करता है। अर्जुन ने अध्याय 6 श्लोक 33-34 में पूछा भगवन जो उपरोक्त साधना की विधि मन को रोकने की आपने कही है मुझे नहीं लगता कि मन वश हो सकता है। मन को रोकना तो वायु को रोकने के समान अर्थात् अति असम्भव है। भगवान ने श्लोक 35-36 में स्वीकृति दी है कि वास्तव में मन को रोकना बहुत कठिन है, परन्तु जो शास्त्र अनुकूल साधना से पूर्ण प्रभु के सहयोग से विजयी आत्मा है वही मन को रोक सकता है।

गीता अध्याय 6 श्लोक 1-9 का सारांश :-

❖ *गीता अध्याय 6 श्लोक 1 का सारांश :- तत्वज्ञान को समझकर कर्तव्य भक्ति कर्म करने चाहिऐं। जो साधना करे, उसका फल यानि लाभ प्राप्ति के लिए उद्देश्य बनाकर न करे। जैसे नौकरी लग जाए तो नाम का इतना जाप करूँगा/करूँगी। इतना धन धर्म में लगाऊँगा/लगाऊँगी। जो इस तरह मनोकामना न करके अपना कर्तव्य समझकर साधना करता है, वह वास्तव में सन्यासी तथा योगी यानि भक्त है। केवल घर त्यागकर जंगल में जाकर घास-फूस, पत्ते-फल खाने वाला यानि अग्नि से पकाकर भोजन न खाने वाला अग्नि का त्यागी है। वह सन्यासी नहीं है तथा*

क्रियाओं यानि दैनिक कार्यों को त्याग देने वाला भी योगी यानि भक्त नहीं है।(6/1)

❖ गीता अध्याय 6 श्लोक 2 का सारांश :- जो संकल्पों का त्याग नहीं करता, वह योगी यानि भक्त नहीं है। जो फल की इच्छा त्यागकर भक्ति करता है, उसी को सच्ची (योग) भक्ति जान।(6/2)

❖ गीता अध्याय 6 श्लोक 3 का सारांश :- निष्काम भाव यानि संसारिक इच्छाऐं त्यागकर (मुनेः) मुनि यानि भक्त के लिए भक्ति करना कहा जाता है जो साधक के लिए कल्याणकारक है।(6/3)

❖ गीता अध्याय 6 श्लोक 4 का सारांश :- योगारूढ़ यानि भक्ति में संलग्न भक्त साधना काल में कर्मों को करता हुआ भी मंत्र पर ध्यान रखता है जैसे ड्राईवर (कार-बस या अन्य गाड़ी के चालक) गाड़ी चलाते-चलाते भी साथी से बातें करते हैं, गाड़ी भी चलाते हैं। उस समय वह केवल अपने चालक कार्य में ही आसक्त नहीं होता। इसी प्रकार भक्त कार्य करते-करते भी भक्ति करता है। उसका ध्यान केवल कार्य में लिप्त नहीं रहता। ऐसे अभ्यास में परिपक्व साधक योगारूढ़ कहा जाता है।(6/4)

❖ गीता अध्याय 6 श्लोक 5-6 का सारांश :- सत्य साधना करने वाला निष्काम भक्त अपने आपका मित्र है। जो इच्छा करके भक्ति करता है, विकार भी करता है। वह अपने आपका शत्रु है।(6/5-6)

❖ गीता अध्याय 6 श्लोक 7 का सारांश :- गीता ज्ञान दाता ने कहा है कि जो साधक गर्मी-सर्दी तथा दुःख-सुख में भी परमात्मा यानि सच्चिदानंद घन परमात्मा की भक्ति करता है। वह (परमात्मा समहितः) परमेश्वर में सम्यक प्रकार यानि सच्ची लगन से स्थित है यानि सच्चा भक्त है।(6/7)

❖ गीता अध्याय 6 श्लोक 8-9 का सारांश :- जिन साधकों का अंतःकरण सम्पूर्ण अध्यात्म ज्ञान को जानकर संतुष्ट है कि इसके अतिरिक्त कोई जानना शेष नहीं। जिनकी (कूटस्थः) आत्मा निर्मल हो गई है। उसके लिए संसारिक पदार्थ कोई महत्व नहीं रखते। वह (योगी) साधक युक्त यानि परमात्मा की भक्ति में लीन कहा जाता है। वह मित्र-शत्रु, सुहृद् यानि सबका हितैषी द्वेष करने वालों में तथा धर्मात्माओं, बन्धुओं तथा पापियों में भी समान भाव रखने वाला विशेष भक्त है।(6/8-9)

❖ गीता अध्याय 6 श्लोक 10-15 का सारांश :- इन श्लोकों में गीता ज्ञान दाता ने अपना मत बताया है कि जो वेद विरूद्ध है, सूक्ष्मवेद के भी विरूद्ध है क्योंकि यजुर्वेद अध्याय 40 श्लोक 15 में कहा है कि ("ओम् क्रतु स्मर किलवे स्मर क्रतुम् स्मर।") भावार्थ :- ओम् (ॐ) नाम का जाप मनुष्य जीवन का मुख्य कर्तव्य जानकर स्मरण कर, विशेष तड़फ के साथ स्मरण कर तथा कार्य करते-करते स्मरण कर।

(वायु अनिलम् अमृतम् अथ इदम भस्मान्तम शरीरम्) भावार्थ :- श्वांस-उश्वांस स्मरण करके शरीर के अंत के बाद यानि मृत्यु के पश्चात् ओम् जाप से होने वाला (अमृतम्) अमरत्व यानि ब्रह्म लोक प्राप्त होगा।(यजुर्वेद अध्याय 40 मंत्र 15)

सूक्ष्मवेद में कहा है कि :-

नाम उठत नाम बैठत, नाम सोवत जाग रे। नाम खाते नाम पीते, नाम सेती लाग रे।।

भावार्थ :- गुरू जी द्वारा दिए नाम का जाप दैनिक कर्म करते-करते कर। सुबह उठते ही परमात्मा का नाम जाप कार्य से आराम करते समय व्यर्थ न बैठ नाम जाप कर। किसी विशेष आसन की आवश्यकता नहीं है। न किसी विशेष मुद्रा की आवश्यकता नहीं है। जैसे भी विश्राम के समय बैठते हो। उसी तरह बैठकर नाम जाप कर। रात्रि में सोने से पहले नाम जाप कर उठकर कार्य करते-करते नाम जाप कर खाना खाने से पहले नाम का जाप कर, पानी पीते समय परमात्मा को याद कर।

''हठयोग करके ध्यान करना गीता ज्ञान दाता का मत व्यर्थ है''

गीता अध्याय 6 श्लोक 10 से 15 का सारांश :- इन श्लोकों में एक स्थान पर बैठ कर हठ योग द्वारा अभ्यास करने को कहा। जब की गीता अध्याय 3 श्लोक 3 से 8 तक इस के विपरीत कहा है कि जो एक स्थान पर बैठकर हठ करके इन्द्रियों को रोककर साधना करते है वे पाखण्डी है। एक स्थान पर बैठा रहा तो निर्वाह कैसे होगा इस अध्याय 6 श्लोक 10 से 15 के आधार पर आज कल भोले जिज्ञासु भक्त आत्म ध्यान योग केन्द्रों के चक्र लगाते हैं। ध्यान साधना कोई अढाई घण्टे सुबह-शाम आवश्यक बताता है, कोई किसी फिल्मी गाने की धुन बजा कर नाच-नाच कर। फिर थक जाए तब शव-आसन में निढाल (मृतसम) होकर आनन्द तथा फिर निन्द्रा को ध्यान की अंतिम स्थिति बताते हैं। कोई प्रश्न करता है कि ध्यान कहाँ लगाएँ? उत्तर मिलता है कि त्रिकुटी पर लगाएँ। त्रिकुटी कहाँ? उस साधक को कोई ज्ञान नहीं। फिर उसे दोनों भौंवों (सेलियों जो आँखों के ऊपर मस्तिक में बाल उगे हैं उन्हें सेली/भौंव कहते हैं) के बीच जहाँ नाक समाप्त होता है तथा मस्तिक आरम्भ होता है। वह भोला साधक उस अज्ञानी गुरु के बताए मार्ग पर प्रयत्न करता है। जब कुछ भी हासिल नहीं होता तो वह गुरुदेव कहता है - क्या दिखाई दिया? साधक कहता है कुछ नहीं। गुरुदेव बताता है कि कुछ आवाज सुनी। साधक कहता है - हाँ सुनी। बस और क्या देखना है, यही है अनहद शब्द। अज्ञानी गुरू फिर कहता है कि दोनों आँखों की पुतलियों के ऊपर के हिस्से को ऊंगलियों से दबाओ। कुछ प्रकाश दिखाई दिया? साधक कहता है - हाँ, दिखाई दिया। बस यही ज्योति स्वरूप (प्रकाशमय) परमात्मा है। साधक उस अंधे गुरु के साथ अपना जीवन बर्बाद कर जाता है। ध्यान के अभ्यास से ध्यान यज्ञ हो जाती है। जिस का फल स्वर्ग, सांसारिक भोग तथा फिर कर्माधार पर नरक, चौरासी लाख जूनियाँ। ध्यान का अभ्यास भी इतना हो कि वह निर्विकल्प (संकल्प रहित) हो जाए। इसका फल स्वर्ग प्राप्ति है। जो अढ़ाई घंटे व नाच-कूद करके ध्यान अभ्यास करते हैं, उन्हें कुछ भी प्राप्ति नहीं है।

❖ *विशेष :- गीता अध्याय 17 श्लोक 5-6 में एक स्थान पर बैठकर घोर तप करते हैं। वे शास्त्रविधि से रहित साधना करते हैं। वे मुझे तथा परमात्मा को कृश करने वाले हैं। उन अज्ञानियों को असुर स्वभाव वाले जान। यह वेद ज्ञान है। गीता अध्याय 3 श्लोक 3-8 तक भी वेद ज्ञान है। इस अध्याय 6 श्लोक 10-15 में काल का मत है। हमने वेद ज्ञान को ग्रहण करना है।*

।। ध्यान समाधि का फल ।।

एक समय वन में एक साधक ने ध्यान में समाधिस्थ हो जाने का इतना अभ्यास कर लिया कि कई-2 दिन तक ध्यान (मैडिटेशन) में कुछ खाए पिये बिना ही लीन रहने लगा। उसी जंगल में बहुत से सन्यासी भी साधना करते थे। एक दिन उस योगी के मन में आया कि साथ वाले गांव में जा कर छा (लस्सी) पी कर आता हूँ। उस उद्देश्य से वह योगी सुबह सूर्योदय होने से पहले नजदीक के गाँव में गया। एक दरवाजा खट-खटाया। उसमें से एक वृद्धा निकली तथा कारण पूछा तो योगी ने कहा - माई छा (लस्सी) पीनी है। इस पर माई ने कहा आओ बैठो, महात्मा जी। मैं अभी छा बनाती हूँ अर्थात् दूध रिड़कती हूँ। महात्मा जी को उचित आसन दे दिया और स्वयं दूध रिड़कने लग गई।

माई को लगभग एक घंटा छा बनाने में लग गया। फिर छा में नमक डाल कर गिलास भर

कर महात्मा (योगी) जी को कहा महाराज जी छा पीलो!। बार-बार आवाज लगाने पर भी महाराज जी नहीं बोले। तब आसपास के व्यक्तियों को इक्ट्ठा किया तथा बताया कि यह महात्मा जी छा पीने आया था। मैंने कहा महाराज अभी छा तैयार करती हूँ। लगभग एक घंटा लगेगा। इसने कहा ठीक है माई, मैं अपना भजन करता हूँ। अब यह बोल ही नहीं रहा। (उस महात्मा जी ने सोचा कि माई छा तैयार करने में एक घंटा लगाएगी तब तक क्यों न ध्यान लगा कर ध्यान साधना करूँ। ध्यान से अन्दर कई नजारे दिखाई देते हैं। जिसको यह चसका पड़ गया वह फिर बाहर का दश्य कम अन्दर का ज्यादा देखता है। जैसे कोई मेले में चला जाए वहाँ नाना प्रकार के खेल-नाटक-गाने बजाने व वस्तुएँ होती हैं। उन्हें देखने में इतना व्यस्त हो जाता है कि उसे समय का भी ज्ञान नहीं रहता। ठीक इसी प्रकार अन्दर भी ऐसे फिल्में चल रही हैं जिस साधक की अच्छी साधना हो जाती है उसे अन्दर के नजारे दष्टिगोचर होने लगते हैं। इसी कारण वह कई घंटों व कई दिनों तक सुध-बुध खो कर मस्त बैठा रहता है। वह महात्मा जी समाधिस्थ अवस्था में था।) सब व्यक्यिों ने भी आवाज लगाई परंतु महाराज जी टस से मस नहीं हुआ। सभी ने मिल कर यही फैसला किया कि इसके किसी साथी साधक को बुलाते हैं। वही युक्ति से इसे उठाएगा। ऐसा सोच कर एक व्यक्ति वहाँ पहुँचा जहाँ और कई साधक साधना करते थे। जब उन साधुओं को पता लगा तो दो-तीन वहाँ पहुँचे जहाँ वह महात्मा समाधिस्थ अवस्था में बैठा हुआ था। उन्होंने भी कोशिश की परंतु महाराज नहीं उठा। तब उसके साथी साधकों ने कहा कि यह समाधी में है। इसे छेड़ो मत। अपने आप उठेगा। ऐसा ही किया गया। वर्षों बीत गए परंतु वह साधक अपनी समाधी से नहीं उठा। तब उसका अलग से छप्पर बना दिया। हजारों वर्षों के बाद उठा। (उस समय वह गाँव भी उजड़ चुका था। कोई नहीं था।) उठते ही कहता है - लाओ माई छा (लस्सी)।

वर्षों व्यर्थ गंवाए योगी, इच्छा मिटी न चाह।
उठ मूर्खा कहत है, लाओ माई छाह।।

❖ *पाठक विवेक करें कि इतनी साधना के ध्यान अभ्यास से भी मनोकामना व भोग पदार्थों की चाह नहीं मिटी तो अढाई घंटे व नाच-कूद करके ध्यान अभ्यासी क्या प्राप्त कर सकेंगे? उस साधक की ध्यान यज्ञ हुई जिसका फल पूर्व बताया है। सतनाम बिना तथा पूर्ण गुरु के बिना जीव का जन्म-मरण दीर्घ रोग नहीं कट सकता। अध्याय 6 के श्लोक 5 और 6 का भाव है कि मनुष्य दुष्कर्म करने से तो अपना ही दुश्मन है। अच्छे कर्म करने से अपना मित्र है अर्थात् आत्मकल्याण कर लेता है। पूर्ण परमात्मा का पूर्ण ज्ञान होने पर शास्त्र विधि अनुसार साधना करने से यह आत्मा अपनी ही मित्र है अन्यथा शत्रु ही है।*

।। योगी कौन?।।

अध्याय 6 के श्लोक 7-8 में काल ब्रह्म ने कहा है कि अर्जुन जो साधक गर्मी-सर्दी, दुःख-सुख में तथा मान-अपमान में समान रहने वाला उभरी हुई आत्मा है, वह सदा भगवान में लीन रहता है तथा जिसके लिए पत्थर, मिट्टी, सोना सर्व समान है। वह योगी परमात्मा प्राप्त कहा जाता है।

अध्याय 6 के श्लोक 9 में भगवान कहता है जो व्यक्ति मित्र और बैरी को समान समझे अर्थात् पक्षपात रहित हो व द्वेष करने वालों व सम्बन्धियों व पापियों को भी एक दष्टि से देखे। वह वास्तव में योगी है।

विचार करें :-- यह सर्व गुण तो अर्जुन में पहले ही विद्यमान थे जो कह रहा है कि भगवान मैं

युद्ध नहीं करूँगा। युद्ध में स्वजनों यानि चचेरे भाई कौरवों तथा रिश्तेदारों को मारकर पाप करके राज्य प्राप्त करने से अच्छा तो भिक्षा का अन्न खा कर निर्वाह करना उचित समझता हूँ। देखें गीता जी के अध्याय 2 के श्लोक 4 और 6 में। एक तरफ तो भगवान (काल) कह रहा है अर्जुन युद्ध कर ले। फिर कहता है अर्जुन योगी हो जा। योगी लक्षण आप ऊपर श्लोक 7, 8 ,9 में ध्यान से पढ़ें। इसमें स्वसिद्ध है कि गीता ज्ञान भगवान कष्ण का नहीं है बल्कि काल (ब्रह्म) का कहा हुआ है। जिसका उद्देश्य केवल पाप (युद्ध के द्वारा हत्याएँ) करवाना था। साथ-2 वेदों वाला ज्ञान भी कह रहा है। योगी (भक्त) के लक्षण हैं कि वह अहिंसा तथा निर्वैरिता और सर्व का हित चाहने वाला हो। परंतु साथ में युद्ध करने की प्रेरणा भी दे रहा है। युद्ध में कोई भी अहिंसा या निर्वैरिता का पालन नहीं कर सकता।

कबीर, कबीरा खड़ा बाजार में, सब की मांगे खैर। न काहु से दोस्ती, न काहु से बैर।।

।। गीता ज्ञान में विरोधाभास ।।

गीता में दो प्रकार का ज्ञान है :- 1. वेद ज्ञान 2. गीता ज्ञान दाता का अपना मत(सिद्धांत)।

गीता अध्याय 3 श्लोक 31, अध्याय 6 श्लोक 36, अध्याय 7 श्लोक 18, अध्याय 13 श्लोक 2, अध्याय 18 श्लोक 70 में कहा है कि मेरा मत भी गीता में है।

जो वेद ज्ञान है, वह तो पूर्ण परमात्मा द्वारा दिया गया था। उसी का वर्णन काल ब्रह्म (ज्योति निरंजन) ने किया है। वह सही है। जैसे गीता अध्याय 3 श्लोक 4-9 में कहा है कि कोई भी व्यक्ति किसी समय में कर्म किए बिना नहीं रह सकता। श्लोक 6 में कहा कि यदि एक स्थान पर बैठकर हठपूर्वक कर्म इन्द्रियों को वश करके बैठ गया तो ज्ञान इन्द्रियाँ सक्रिय रहती हैं। मन की चंचलता बनी रहती है। ऊपर से तो शांत दिखाई देता है, अंदर सब चल रहा है। वह दंभी (ढ़ोंगी) है। श्लोक 7-9 में कहा है कि हे अर्जुन! तू एक स्थान पर बैठकर हठयोग करके साधना करने की अपेक्षा कर्म इन्द्रियों से कर्म कर। उन को रोककर दैनिक कर्म भी कर तथा भक्ति भी कर। जो ऐसा करता है, वही श्रेष्ठ है। तू शास्त्रविधि से कर्तव्य कर्म कर। कर्म न करने की अपेक्षा कर्म करना श्रेष्ठ है। यदि कर्म नहीं करेगा तो तेरा शरीर का निर्वाह भी तो सिद्ध नहीं होगा। इसलिए कर्तव्य कर्म कर। (यह वेद ज्ञान है।)

❖ *गीता अध्याय 6 श्लोक 10-15 में इसके विपरित अपना मत (काल जाल में रखने का विधान) बताया है। कहा है कि साधक यानि योगी अपने मन, इन्द्रियों सहित शरीर को वश में रखने वाला आशा रहित संग रहित अकेला ही एकान्त स्थान पर स्थित होकर अपनी आत्मा को भक्ति में लगाए। श्लोक 11 में बताया है कि आसन कैसा हो। कहा है कि स्थान (जमीन) में क्रमशः कुशा (डाभ) मगछाला, फिर वस्त्र बिछे। आसन न बहुत ऊँचा हो, न बहुत नीचा हो, अपने आसन को ऐसे स्थिर स्थापित करके (फिर 12 में कहा कि) उस आसन पर बैठकर चित और इन्द्रियों को वश में रखते हुए मन को एकाग्रह करके अंतःकरण की शुद्धि के लिए योग का अभ्यास करे। फिर श्लोक 13-15 तक स्पष्ट किया है कि ऐसे-ऐसे कर उससे मुझ में रहने वाली शांति को प्राप्त होता है यानि मुझ काल के जाल में ही रहेगा।*

इसी अध्याय 6 श्लोक 46 में श्लोक 10-15 वाले विधान का खण्डन किया है कि कर्म योगी (गीता अध्याय 3 श्लोक 3-8 वाला) यानि कर्तव्य कर्म करता हुआ भक्ति करने वाला भक्त तपस्वियों से बढ़कर है। जो केवल संग्रह करके वक्ता बने हैं, उनकी साधना शास्त्र अनुकूल नहीं है। ऐसे

ज्ञानियों से भी कर्मयोगी बढ़कर यानि श्रेष्ठ हैं। मनोकामना पूर्ति के लिए भक्ति कर्म करने वालों से भी योगी (भक्त) श्रेष्ठ हैं। इसलिए तू योगी हो।

❖ *पाठकजन अब आप गीता को पढ़ेंगे तो गूढ़ रहस्य खुलेंगे। गीता का यथार्थ ज्ञान होगा। आँखें खुल जाऐंगी।*

विचार करें :-- अध्याय 6 श्लोक 10 से 15 में विशेष आसन पर स्थित होकर हठ योग करके अन्तःकरण की शुद्धि के लिए योग अभ्यास करने को कहा है न की मुक्ति है। यदि अन्तःकरण शुद्ध हो गया और नाम सही नहीं मिला तो भी साधना व्यर्थ, केवल ध्यान यज्ञ का लाभ मिलेगा। सर्व यज्ञों से अन्तःकरण की शुद्धि होती है। धर्म यज्ञ, ध्यान यज्ञ, हवन यज्ञ, प्रणाम यज्ञ और ज्ञान यज्ञ, इनको करने वाले साधक में विनम्रता आती है और यज्ञों का फल भी मिलता है। जैसे भूमि को संवार कर बीज बीजने योग्य बना दें (अन्तःकरण शुद्ध हुआ) फिर बीज बीजें नहीं। तो वह संवारी हुई जमीन व्यर्थ है। इसी प्रकार नाम (सतनाम) बिना सर्व साधना व्यर्थ है। यज्ञों का फल तो ऐसा है जैसे जमीन संवार कर छोड़ दी। फिर उसमें पानी खाद डालते रहे। घास-झाड़ियाँ उग जाएंगी। कुछ लाभ तो वे दे देती हैं परंतु गेहूँ का बीज बोया जाए तो पशुओं का चारा भी बने और रोटियाँ (चपातियाँ) भी मिलें अर्थात् यदि तीन लोक का पूर्ण लाभ लेना है तो जैसा गीता में लिखा है कि अर्जुन यज्ञ कर तथा ऊँ नाम का जाप पूर्ण गुरु से ले कर करें तो महास्वर्ग की प्राप्ति हो सकती है।

(यदि पूर्ण लाभ लेना है तो सतनाम रूपी बीज बीज कर अमर लोक में जा कर जीव अमर हो जाता है।)

विचार करें :- गीता ज्ञान दाता ने अर्जुन से कहा है कि ब्रह्मचारी व्रत का पालन करके योगी साधना में सफलता पाता है। वह भी स्वर्ग तक। जबकि अर्जुन की दो पत्नियाँ थी। एक तो सुभद्रा (भगवान कष्ण की बहन) तथा दूसरी द्रौपदी। इससे सिद्ध है कि गीता का ज्ञान काल द्वारा ही दिया गया है जो कुछ सत्य कुछ असत्य है।

।। पूर्ण परमात्मा प्राप्त करने की विधि व व्रत निषेध की जानकारी।।

विचार करें :-- अध्याय 6 के श्लोक 16 का सारांश :- इसमें स्पष्ट किया है कि व्रत (खाना न खाने वाले) से योग साधना सिद्ध नहीं होती है अर्थात् व्रत की पूर्ण मनाही की है और अधिक खाना भी मना है, अधिक सोना व जागना भी साधक की साधना में बाधक है।

❖ *गीता अध्याय 6 श्लोक 17 का सारांश :- दुःखों का नाश करने वाला योग यानि भक्ति तो शास्त्रानुकूल साधना करने से सिद्ध होगी अर्थात् वह पूर्ण मोक्ष प्राप्ति की साधना तो यथायोग्य आहार-विहार करने वाले की दैनिक कार्य करते-करते भक्ति करने वाले की तथा यथायोग्य सोने तथा जागने वाले की ही सिद्ध होती है।(6/17)*

❖ *गीता अध्याय 6 श्लोक 18-19 का सारांश :- जो तत्वज्ञान समझा हुआ व्यक्ति संसारिक विषयों से पूर्ण रूप से मन हटा लेता है। वह वास्तव में (युक्तः) भक्ति में लगा कहा जाता है।(6/18)*

❖ *उस साधक की इन्द्रियाँ ऐसे निश्चल होती हैं जैसे जिस स्थान पर वायु न चल रही हो, वहाँ रखे दीपक की लौ (ज्योति) चलायमान नहीं होती। उसी प्रकार अन्तरात्मा से परमात्मा की भक्ति (योग) में लगे हुए योगी यानि भक्त के मन व इन्द्रियों की स्थिति कही गई है।(6/19)*

❖ *अध्याय 6 श्लोक 20 का अनुवाद है कि मन रोकने की (योग अभ्यास) साधना करते हुए जब {(उपर मते) अर्थात् पहले वर्णित शास्त्रानुकूल मत (विचार) के अनुसार साधना करने से मत का*

भाव है कि शास्त्रानुकूल साधना पूर्ण संत से उपदेश ले कर गुरु मर्यादा में रहते हुए केवल एक पूर्ण परमात्मा पर अटल विश्वास के साथ आधारित रहना। काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार से रहित होना। यह मत (राय-सलाह) कही है।} निश्चल हो जाता है उस स्थिति में (आत्मना) आत्म ज्ञान के द्वारा (आत्मनाम) अपनी जीव स्थित को देख कर अर्थात् जान कर (आत्मनि) अपने पूर्ण परमात्मा की भक्ति में संतुष्ट हो जाता है अर्थात् जीव तथा आत्मा को एक स्थिति में जानता है जैसे बर्फ और जल की स्थिति है। चूंकि जल से ही बर्फ बनी है ऐसे ही आत्मा ही जीव बनी है जब तक बर्फ है उसमें पानी वाले गुण नहीं हैं। इसी प्रकार बर्फ-बर्फ है, पानी-पानी है। यदि कोई कहे बर्फ ही पानी है वह सही जानकार नहीं है। यदि कोई कहे जीव ही ब्रह्म अर्थात् परमात्मा है वह अल्पज्ञ है। बर्फ से पानी बनाया जाए तब पानी वाले गुण आएंगे। इसी प्रकार जीव से ब्रह्म बनाया जाएगा तब वह ब्रह्म यानि परमात्मा जैसे गुण वाला अविनाशी आत्मा होगा।

सार :- अध्याय 6 के श्लोक 16 से 32 में कहा है कि अन्न-जल सोने-जागने का संयम करके यानि ठीक-ठीक खाए-पीए, जागे-सोवे, ऐसे रहकर पूर्ण परमात्मा के कभी समाप्त न होने वाले आनन्द (पूर्ण मुक्ति) को प्राप्त करने के लिए शास्त्र के अनुसार नियमित साधना करनी चाहिए। पूर्ण गुरु की खोज करें जो पूर्ण परमात्मा का मार्गदर्शक हो। फिर निष्कपट छलरहित भाव से व पूर्ण आस्था से निश्चल मन से आत्म तत्व को तथा जीव के दुःख को याद रख कर पहले (उपरमते) दिए विवरण अनुसार जैसा जो यज्ञ नहीं करता वह पापी-चोर है। यज्ञ भी गुरु के द्वारा शास्त्रों में वर्णित विधि से (मतपरः) मतानुकूल (मतावलम्बी) भाव से करें। पूर्ण परमात्मा की भक्ति पूर्ण मुक्ति (परम-गति) व परम शांति दे सकती है। जो साधक परमात्मा और जीव की स्थिति सही तरह जान लेता है वही पूर्ण मुक्ति प्राप्त करता है। जो प्राणी काल (ब्रह्म) के आधीन हैं वे काल (ब्रह्म) को भगवान मानते हैं। काल (ब्रह्म) का उन पर पूरा दायित्व है। जो साहेब कबीर हंस हैं वे काल से बाहर हैं। इसलिए कहा कि जो मुझ काल को भजते हैं वे मुझे सर्वस्वा मानते हैं तथा वे प्राणी भी मेरी नजरों से दूर नहीं हैं अर्थात् मैं (काल) उन पर पूरी नजर रखता हूँ भावार्थ है कि जो काल उपासक ब्रह्म की साधना करता है वह काल (ब्रह्म) के जाल में ही रहता है जो पूर्ण परमात्मा का भजन करता है वह काल जाल से बाहर है। साधना करने वाले साधक के लिए मन के द्वारा इन्द्रियों को वश करके साधना सफल मानी है अन्यथा नहीं।

।। मन को रोकना वायु रोकने के समान।।

गीता अध्याय 6 श्लोक 33-36 का सारांश :-

अध्याय 6 के श्लोक 33,34 में अर्जुन ने प्रश्न किया कि भगवान! मन रोकना वायु को रोकने के समान है अर्थात् अति असम्भव। अध्याय 6 के श्लोक 35,36 में काल भगवान ने कहा है कि मैं मानता हूँ कि मन चंचल है। यह कठिनता से काबू होने वाला है। फिर भी शास्त्र विधि अनुसार साधना के अभ्यास से तथा इस अध्याय 6 के श्लोक 1 से 9 में वर्णित विधि के अनुसार वैराग्य से वश में किया जा सकता है। यदि मन काबू नहीं हुआ तो योगी असफल अर्थात् मुक्ति की बजाय नरक प्राप्ति है। विचार करें पाठकजन :- जो साधना काल ब्रह्म ने बताई है। उसी को भगवान शिव जी करते हैं। उसके करने से मन को भगवान शिव भी काबू नहीं कर पाया जिन्होंने 88 हजार वर्ष तक अभ्यास किया तथा वैराग्य किया। फिर आम व्यक्ति तथा अर्जुन कैसे मन काबू कर सकता है?

(विशेष विवरण कृप्या अध्याय 3 के सारांश में पढ़ें) ज्ञान तो सही है काल भगवान (ज्योति निरंजन) का परंतु जो साधना बताई है वह पूर्ण नहीं है जो मन को काबू कर सके। वह साधना साहेब कबीर जी ने बताई है कि बाल-बच्चों में रहो या वैराग्य धारण करो परंतु पूर्ण संत को गुरु बनाओ जो सतनाम व सारनाम देता हो। शास्त्र अनुकूल साधना करो, मनमाना आचरण मत करो तब काल-जाल से मुक्त हो सकते हो।

गीता अध्याय 6 श्लोक 37-39 का सारांश :-

।। साधक की साधना बिगड़ने पर क्या होगा?।।

विचार करें :-- अध्याय 6 के श्लोक 37 से 39 में अर्जुन ने पूछा कि मान लो कोई साधक (योगी) साधना करता हुआ बीच में विचलित हो जाए तो क्या वह दुर्गति को प्राप्त तो नहीं होता?

गीता अध्याय 6 श्लोक 40-44 का सारांश :-

अध्याय 6 के श्लोक 40 से 44 तक में काल भगवान ने उत्तर दिया है कि ऐसा व्यक्ति न तो इस लोक का ही रहता है और न ही परलोक का अर्थात् घर का न घाट का नहीं रहता, उसका जीवन व्यर्थ हो जाता है। क्योंकि हे प्यारे (अर्जुन) आत्मोद्धार के लिए कर्म करने वाला जो कोई मनुष्य भक्ति मार्ग से भ्रष्ट नहीं होता वह दुर्गति को प्राप्त नहीं होता। गीता अध्याय 6 श्लोक 40 से 44 तक साधना से पथ भ्रष्ट साधक का विवरण किया है। वह भक्ति के मार्ग से विचलित साधक घर का रहता है न घाट का अर्थात् पूर्ण रूप से विनाश को प्राप्त होता है। वह चौरासी लाख योनियों के कष्ट को भोगकर फिर पुण्यकर्मों के आधार से स्वर्ग आदि लोकों में अपने पुण्य कर्मों को वेद वाणी में वर्णित पुण्यों के नियत समय तक भोग भोगता है फिर पतन को प्राप्त होता है अथवा अच्छे आचरण वाले भक्तों के घर पर जन्म लेता है, परन्तु अर्जुन ऐसा जन्म असम्भव है। जब वह व्यक्ति मनुष्य जन्म प्राप्त कर लेता है तो अपने स्वभाव वश शास्त्रविधि रहित साधना करता है। जिस कारण से वेदों में वर्णित शास्त्रविधि अनुकूल साधना का उल्लंघन कर जाता है। जिस कारण से जीवन व्यर्थ हो जाने से विनाश को प्राप्त होता है।

गीता अध्याय 9 श्लोक 20-21 में भी स्पष्ट किया है कि ''जो साधक वेदों अनुसार साधना करता है वह अपनी साधना का फल दिव्य देवताओं की तरह स्वर्ग आदि दिव्य लोकों में भोगकर अर्थात् समाप्त करके फिर संसार में जन्म-मरण के आवागमन के चक्र में गिरकर नष्ट हो जाता है। विचार करें यही प्रमाण गीता अध्याय 6 श्लोक 40 से 44 में है कि वह योग भ्रष्ट साधक अपनी साधना की कमाई को, बहुत समय तक दिव्य लोकों में भोग कर फिर अच्छे व्यक्तियों के घर जन्म लेता है। इससे भी वही गीता अध्याय 9 श्लोक 20-21 वाला ही प्रमाण है आवागमन व जन्म-मरण चक्र ही बना रहेगा। इसलिए गीता अध्याय 6 श्लोक 40 का अनुवाद जो अन्य अनुवाद कर्त्ताओं द्वारा किया है वह ठीक नहीं है। जिसमें वे स्वयं स्वीकार करते है कि मारीचि ऋषि योग भ्रष्ट होकर हिरण के जन्म को प्राप्त हुआ। यही मारिचि वाली आत्मा श्री महावीर जैन हुए जिनके विषय में आवागमन की बहुत बड़ी लिस्ट बनी है। विचार करें :- गीता जी के अन्य अनुवाद कर्त्ता स्वयं भक्ति से भ्रष्ट जड़ भरत योगी का उदाहरण देते हैं।

योगी की दुर्गति होने का प्रमाण :- श्रीमद्भागवद् सुधा सागर के पांचवे स्कंद के आठवें अध्याय के पृष्ठ नं. 265 में राजा ऋषिभदेव का पुत्र राजा जड़भरत का वर्णन है।

एक जड़भरत नामक योगी योग साधना कर रहा था। उसके सामने एक हिरनी किसी के भय से भागती-2 एक बच्चे को जन्म दे गई। जड़भरत ने दया वश होकर उस हिरनी के बच्चे का लालन-पालन किया। फिर उस से प्रेम इतना हो गया कि एक बार वह बच्चा कहीं दूर निकल गया और दो तीन दिन तक वापिस नहीं आया। तो मोहवश हो कर योगी जड़भरत जी ने खाना-पीना व निंद्रा त्याग दी और बेहाल हो गया। जब वह बच्चा वापिस आया तो योगी जी ने उसे अपने सीने से लगाया तथा बहुत प्यार किया। फिर जड़भरत का देहांत होने लगा तो उसकी आस्था हिरणी के बच्चे में बनी रही। इसलिए वह जड़भरत योगी योग भ्रष्ट हो जाने से हिरणी के गर्भ से जन्म लेकर हिरन का बच्चा बनकर उसी बच्चे के साथ खेलने लगा अर्थात् दुर्गति को प्राप्त हुआ। पवित्र गीता जी के अन्य टीकाकारों (अनुवाद कर्त्ताओं) ने अपने विचार व्यक्त करते हुए फिर आगे विवरण दिया है कि चौरासी लाख जूनियों को भोग कर वही आत्मा उच्च कुल (ब्राह्मणों) के घर पर जन्म लेकर फिर भक्ति करके मुक्ति हुई।

यदि यह भी मानें तो भी दुर्गति तो हुई तथा फिर क्या पता भक्ति सफल होवे या न होवे? यदि उच्च घरानों (ब्राह्मणों) के घर जन्म लेकर ही मुक्ति सम्भव है तो अन्य जातियाँ तो भक्ति मुक्ति से वंचित रह गई।

विशेष विचार : -- परमात्मा के घर पर जाति मजहब नहीं है। भक्तियुक्त आत्मा संस्कार वश कहीं भी जन्म ले वह फिर भक्ति पर शीघ्र ही लग जाती है। परंतु जो पथ भ्रष्ट हो जाएगा उसे चौरासी लाख प्रकार के प्राणियों के शरीर में कष्ट निश्चित मिलेगा। एक साधक का ब्राह्मण घर में जन्म हुआ वह साधना करता हुआ लगातार तीन जन्म ब्राह्मणों के घरों में ही जन्म लेता रहा। अंत समय में जब उस साधक के प्राण जाने वाले थे। उससे कुछ दिन पहले एक सुन्दर लड़की जो चमार (चर्मकार) की पुत्री थी को देख कर उसकी सुन्दरता पर आसक्त होकर विवश हो गया। परंतु मन को समझा कर सद्भावना पूर्वक अपनी दुर्भावना को बदलते हुए मन में विचार किया कि हे भगवान! ऐसी सुन्दरी मेरी माँ बने। फिर उस साधक का चमार के घर जन्म हुआ तथा पहले गुरु रामानन्द से और फिर पूर्ण गुरु कबीर साहेब से नाम लेकर मुक्ति को प्राप्त हुआ। वह साधक संत रविदास जी था। कृप्या पाठक गण स्वयं विचार करें अन्य अनुवाद कर्त्ताओं को कैसा ज्ञान है।

गीता अध्याय 6 श्लोक 40 से 44 का विवेचन :-

गीता अध्याय 6 श्लोक 40 का अनुवाद अन्य अनुवाद कर्त्ताओं ने किया है कि ''योग भ्रष्ट साधक का विनाश न इस लोक में होता है, न परलोक में क्योंकि भक्ति करने वाला कोई भी दुर्गति को प्राप्त नहीं होता। फिर श्लोक 41-42 का अनुवाद किया है कि वह योग भ्रष्ट व्यक्ति स्वर्ग आदि लोकों को प्राप्त होकर शुद्ध आचरण वाले व्यक्तियों के घर जन्म लेता है। ऐसा जन्म इस संसार में अति दुर्लभ है।

अपने उपरोक्त अनुवाद के समर्थन में प्रमाण दिया है कि जड़ भरत योगी एक हिरनी के बच्चे से प्रेम करने के कारण योग भ्रष्ट हो गया। जिस कारण से उसका अगला जन्म हिरनी के गर्भ से हुआ अर्थात् हिरण की योनी (पशु श्रेणी) को प्राप्त हुआ। फिर श्रेष्ठ कुल में जन्म लेकर मुक्त हुआ।

विचार करें :- गीता अध्याय 6 श्लोक 36 में स्पष्ट किया है कि जिसका मनवश में किया हुआ नहीं है अर्थात् जो योग भ्रष्ट हो गया है (योग भ्रष्ट वही होता है जिसका मनवश में नहीं होता) ऐसे व्यक्ति को योग अर्थात् मोक्ष मार्ग दुष्प्राय है अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती केवल जिनका मन

वश में है जो योग भ्रष्ट नहीं होता वह पुरूष ही सत्य साधना से परमात्मा प्राप्त करता है। गीता अध्याय 6 श्लोक 40 से 42 के अनुवाद में अन्य अनुवाद कर्त्ताओं ने लिखा है कि योग भ्रष्ट साधक कभी दुर्गति को प्राप्त नहीं होता वह स्वर्गादि उच्च लोकों को प्राप्त होता है कि शुद्ध आचरण वाले पुरूषों के घर जन्म लेता है। उपरोक्त जड़ भरत योग भ्रष्ट साधक वाला उदाहरण ही उनके द्वारा किए गीता अध्याय 6 श्लोक 40 से 42 के विपरीत है। जिस में कहा है कि योग भ्रष्ट होने के कारण भरत जी को हिरण का शरीर प्राप्त हुआ।

कृप्या विचार करें पाठकगण ''पशु योनी'' प्राप्त प्राणी दुर्गति को प्राप्त होता है या परमगति को? पशु शरीर ही दुर्गति का प्रतीक है। गर्मी-सर्दी-भूख-प्यास, ओले गिरने से शरीर पर कष्ट, रोगी होने पर कोई उपचार नहीं, टांग-पैर टूट जाने पर भूख प्यास से तड़फ-2 कर मृत्यु को प्राप्त होना। हिंसक पशुओं के डर से इधर-उधर जीवन रक्षा के लिए दौड़ते रहना अन्त में बाघ या अन्य हिंसक प्राणी का ग्रास बन जाना आदि-2 महा दुर्गति के प्रमाण हैं। वैसे तो गीता में गीता ज्ञान दाता ब्रह्म द्वारा पवित्र श्री मद्भगवत् गीता व पवित्र वेदों में कहा है यह पूर्ण मोक्ष दायक नहीं है। इस ज्ञान के आधार साधना करने वाला साधक पुण्य के आधार से स्वर्ग तथा पाप के आधार से अन्य प्राणियों के शरीर को प्राप्त होता है तथा नरकगामी भी होता है। इसलिए गीता ज्ञान दाता ब्रह्म ने गीता अध्याय 15 श्लोक 4 व अध्याय 18 श्लोक 62 तथा अध्याय 4 श्लोक 34 में तथा यजुर्वेद अध्याय 40 श्लोक 10 व 13 में कहा है कि पूर्ण परमात्मा ही पूर्ण मोक्ष प्रदान कर सकता है। उस परमात्मा की शरण में जा। उस के लिए तत्वदर्शी सन्तों की खोज कर उनके बताए भक्ति मार्ग पर चल कर उस परमेश्वर के परम पद की खोज करनी चाहिए जहाँ जाने के पश्चात् साधक कभी लौट कर इस संसार में जन्म नहीं लेता। मैं (गीता ज्ञान दाता) भी उसी की शरण हूँ।

विशेष प्रमाण :- जड़ भरत के विषय में अन्य अनुवाद कर्त्ताओं ने कहा है कि हिरण के शरीर का जीवन भोग कर फिर अच्छे आचरण वालों के ब्राह्मणों के घर जन्म लेकर मुक्त हो गया।

विचार करते हैं :- राजा ऋषभ देव का पुत्र भरत जी थे ऋषभदेव जी ने हजारों वर्ष साधना की तत्पश्चात भरत के पुत्र ''मारीचि'' को प्रथम बार शिष्य बनाया। फिर कुछ वर्षो पश्चात् भरत को दिक्षा दी। भरत जी अयोध्या का राज त्याग कर जंगल में साधना करने गया। जहाँ पर वह योग भ्रष्ट होकर हिरण के जन्म को प्राप्त होकर दुर्गति को प्राप्त होकर नष्ट हो गया।

अब भरत जी के पूज्य पिता जी व गुरूदेव श्री ऋषभदेव जी के जीवन पर विवेचन करते हैं जो योग भ्रष्ट नहीं हुए थे तथा वेदों में वर्णित विधि से गुरू से दिक्षा प्राप्त करके आजीवन साधना करते रहे। श्री ऋषभदेव जी को पवित्र जैन धर्म का संस्थापक व प्रथम तीर्थ कर माना गया है।

श्री ऋषभदेव जी अन्त समय में दिगम्बर (निःवस्त्र) होकर मुख में पत्थर का टुकड़ा डाल कर बन में घूम रहे थे। अचानक जंगल में आग लगी। जिस दावानल में श्री ऋषभदेव जी का स्थूल शरीर नष्ट हो गया अर्थात् श्री ऋषभदेव जी की मृत्यु हो गई। (यह प्रमाण श्रीमद्भागवत् सुधा सागर अध्याय 9 पृष्ठ 280-281 पर है।)

उपरोक्त विवरण से पाठक जन कृप्या स्वयं निर्णय करें श्री ऋषभदेव जी मुक्त हुए या दुर्गति को प्राप्त हुए। इस के पश्चात् श्री ऋषभदेव जी वाला ही जीव बाबा आदम बना। (प्रमाण :- ''आओ जैन धर्म को जाने'' पुस्तक के पृष्ठ 154 पर)

हजरत आदम जी को पवित्र इसाई धर्म व पवित्र मुस्लमान धर्म के श्रद्धालु अपना मुखिया

मानते हैं। अर्थात् दोनों धर्मों के सर्वश्रेष्ठ सन्त व प्रमुख हजरत आदम जी हैं। आदम जी के दो पुत्र हुए। एक का नाम काईन तथा छोटे का नाम हाबिल था। इर्षावश काईन ने अपने छोटे भाई हाबिल की हत्या कर दी। फिर शाप वश काईन भी गांव व देश त्याग कर चला गया। बाबा आदम जी को महाकष्ट का सामना करना पड़ा। पश्चात् अन्य पुत्र हुआ। उससे आदम जी का कुल व भक्ति प्रारम्भ हुई। नौ सौ वर्ष की आयु में आदम जी की मत्यु हुई। (प्रमाण पवित्र बाईबल में) पश्चात् बाबा आदम जी पितर लोक में पितर बने। वहाँ पितर लोक में विराजमान होकर भी बाबा आदम सुखी नहीं हुए। प्रमाण :- जीवनी हजरत मुहम्मद लेखक मुहम्मद इनायतुल्लाह सुब्हानी पष्ठ 157 से 165 लिखा है कि ''हजरत मुहम्मद जी को एक फरिस्ता ऊपर स्वर्ग में ले गया। वहाँ अन्य नबी देखे तथा एक स्थान पर एक व्यक्ति देखा जो बाई ओर मुख करके रो रहा था या दाई ओर मुह करके हंस रहा था। हजरत मुहम्मद जी के पूछने पर फरिस्ता जब्रील ने बताया कि यह हजरत आदम है रोने व हंसने का कारण बताते हुए हजरत जब्रील ने बताया कि बाई ओर नरक में निक्कमी सन्तान कष्ट उठा रही है। उनको देख कर हजरत आदम जी रोते हैं तथा दाई ओर स्वर्ग में पुण्यकर्मी सन्तान सुखपूर्वक रह रही है उन्हें देखकर हंसते हैं। विचार करें पाठक जन हजरत आदम जी ही श्री ऋषभदेव हैं साधना करके ऊपर स्वर्ग में बने पितर लोक में पितर बने है। जिस साधना के करने से दोनों पवित्र धर्मो (इसाई धर्म व मुस्लमान धर्म) का प्रमुख तथा पवित्र जैन धर्म का प्रमुख भी पूर्ण मोक्ष को प्राप्त नहीं हो सका। जो इस पथ्वी लोक व ऊपर स्वर्ग लोक में भी सुखी नही तो योग भ्रष्ट होकर उनका (श्री ऋषभ देव जी का) शिष्य तथा पुत्र कैसे परमगति को प्राप्त हो सका।

इसी प्रकार श्री ऋषभदेव जी का पौत्र (भरत का पुत्र) मारिची जो योग भ्रष्ट भी नहीं हुआ तथा वेदों के अनुसार साधना अपने दादा जी ऋषभदेव जी से दिक्षा लेकर करता था। वह भी दुर्गति को प्राप्त हुआ। जिसने करोड़ों बार कुत्ते के जीवन भोगे, करोड़ों बार गधे के जन्म प्राप्त हुए तथा करोड़ों बार अन्य प्राणियों के शरीर में कष्ट उठाया तथा केवल अस्सी लाख बार देव बन कर पुण्य को स्वर्ग में भोगा। फिर नरक में गया। फिर जैन धर्म का चौबीसवां तीर्थकर ''श्री महाबीर जैन'' बना श्री महावीर जैन जी ने 363 (तीन सौ तरेसठ) पाखण्ड मत चलाए। यह ब्रह्म (काल) द्वारा दिये गीता व वेद ज्ञान अनुसार साधना का फल है। (प्रमाण :- पुस्तक ''आओ जैन धर्म को जाने '' पष्ठ 294 से 296 जिसके लेखक प्रवीण चन्द्र जैन (एम.ए. शास्त्री) प्रकाशक श्री मति सुनिता जैन जम्बुद्वीप हस्थीनापुर मेरठ उत्तर-प्रदेश)

उपरोक्त विवरण से सिद्ध हुआ कि योग भ्रष्ट साधक नष्ट हो जाता है वह न यहाँ का रहता है न वहाँ का। क्योंकि यदि यहाँ अच्छे कुल में जन्म लेकर भी एक दिन संसार त्याग जाएगा। वहाँ परलोक में अपने पुण्य समाप्त करके वहाँ से भी निकल जाएगा। इसलिए उसका तो नाश ही होता है अध्याय 6 श्लोक 43 का भावार्थ है कि योग भ्रष्ट होने से पूर्व की साधना के प्रभाव से मानव शरीर में परमात्मा प्राप्ति के लिए प्रयत्न करता है। योग भ्रष्ट होने से पूर्व वाली भक्ति कमाई से ही वह (श्लोक 41-42 में कहे) स्वर्गादि लोकों व अच्छे व्यक्तियों के घर जन्म प्राप्त करता है। उस पूर्व की भक्ति कमाई को नष्ट करने के पश्चात् कभी मानव शरीर प्राप्त होता है तब भी वह पूर्व संस्कार वश भक्ति का प्रयत्न करता है। श्लोक 44 में कहा कि उस पूर्व के डगमग होने वाले स्वभाव वश हुआ परमात्मा को प्राप्त करने वाला जिज्ञासु होकर भी सद्ग्रन्थों में वर्णित परमात्मा की यर्थाथ नाम

जाप की विधि का भी उल्लंघन कर जाता है। अर्थात् फिर से पतन को प्राप्त हो जाता है।

❖ गीता अध्याय 6 श्लोक 45 का सारांश :-

गीता अध्याय 6 श्लोक 45 में कहा है कि जो साधक योगभ्रष्ट नहीं होता वह प्रत्येक जन्म में वेदों में वर्णित साधना करता रहता है। उस का स्वभाव निष्चल होता है। वह प्रयत्न पूर्वक योग नष्ट न हो कर साधना करने वाला अर्थात् तत्वदर्शी सन्त मिलने पर उस के द्वारा बताए भक्ति मार्ग पर चल कर पूर्व के अनेकों जन्मों में की ब्रह्म (काल) साधना इसी को त्याग कर पाप मुक्त होकर पूर्ण परमात्मा को प्राप्त होता है अर्थात् परमगति को प्राप्त होता है। गीता अध्याय 18 श्लोक 66 में गीता ज्ञान दाता ने कहा है कि सर्वधमान् परित्यज्य माम् एकम् शरणम् व्रज अहम् त्वा सर्वपापेभ्यः मोक्षयिष्यामि मा शुचः (66)

शब्दार्थ :- (माम्) मुझ ब्रह्म की (सर्वधर्मान्) सर्व धार्मिक अनुष्ठानों की पूजा को मुझ में (परित्यज्य) त्यागकर (एकम्) उस अद्वितीय परमात्मा अर्थात् जिसके समान शक्तिशाली व कल्याण करने वाला अन्य नहीं है उस एक परमेश्वर की (शरणम्) शरण में (व्रज) जा (अहम्) मैं (त्वा) तेरे (सर्वपापेभ्यः) सम्पूर्ण पापों से (मोक्षयिष्यामि) छुड़वा दूंगा अर्थात् मुक्त कर दूंगा (मा शुचः) चिन्ता मत कर।

भावार्थ :- गीता ज्ञान दाता प्रभु कह रहा है कि तू अनेक जन्मों में कि हुई मेरी पूजा को मुझे प्रदान कर दे (मुझमें छोड़ दे) तब मैं तुझे सर्व पापों से मुक्त कर दूंगा।

कारण क्या है?:- हम युगों-2 से वेदों अनुसार साधना भी करते आ रहे हैं। उस भक्ति की कमाई को स्वर्ग में निवास करके या राजा आदि उच्च पद प्राप्त करके समाप्त कर देते हैं। तत्वदर्शी सन्त के ज्ञान के पश्चात् हम काल (ब्रह्म) के लोक की किसी भी सुविधा की अपेक्षा नहीं करेगें। वह पूण्य कमाई ब्रह्म को छोड़ देंगे। यह हमें ऋण मुक्त कर देगा। फिर जो कष्ट पाप के कारण नरक व अन्य प्राणियों के शरीरों में भोगना पड़ता था वह नहीं भोगना पड़ेगा। पूर्ण परमात्मा की शरण में जाने के पश्चात् उस पूर्व ब्रह्म का नियम हमारे ऊपर लागू नहीं रहता। ब्रह्म के लोक में पुण्य तथा पाप भिन्न-2 भोगने अनिवार्य है। पूर्ण परमात्मा की शरण में जाने के पश्चात् ब्रह्म के नाम (ब्रह्मशब्द) की कमाई इसी को छोड़ देते हैं और हम पूर्व के पापों से छूट जाते हैं। फिर वह पापमुक्त योगी परमगति को प्राप्त होता है अर्थात् पूर्ण मोक्ष प्राप्त करता है। उसका पुनर्जन्म नहीं होता।

।। पूर्ण योगी कौन?।।

अध्याय 6 के श्लोक 46 में काल भगवान ने कहा है कि सत्यनाम साधक तपस्वियों से तथा गीता अध्याय 7 श्लोक 16 से 18 तक में वर्णित ज्ञानियों से भी श्रेष्ठ हैं तथा सकाम कर्म करने वालों से भी श्रेष्ठ है। इसलिए हे अर्जुन! तू कर्मयोगी(नाम का साधक) हो जा।

विचार करें :-- योगी वह हो सकता है जो मन इन्द्रियों को वश कर ले। यह अति असम्भव है, मन वश हुए बिना मुक्ति नहीं और मन न तो श्री ब्रह्मा जी के वश हुआ क्योंकि श्री ब्रह्मा जी अपनी ही पुत्री पर आसक्त हो गए थे। मन न श्री शिवजी के वश हुआ। क्योंकि श्री शिवजी भी भगवान विष्णु द्वारा मोहिनी अप्सरा का रूप बनाने पर उस मोहिनी पर आसक्त होकर उस के पीछे सैक्स (संभोग) करने के उद्देश्य से चल पड़े थे तथा उनका शुक्रपात भी हो गया था। मन न श्री विष्णु जी के वश हुआ क्योंकि जिस समय श्री विष्णु जी ने वरहा रूप धारण करके शंखासुर का वध किया

था। उस समय पृथ्वी देवी को देखकर उससे सैक्स (संभोग) किया। (ये उपरोक्त प्रमाण पुराणों में हैं) अब स्वयं पाठक विचार करें कि श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी तथा श्री शिवजी भी वेदों में वर्णित साधना करते हैं। उस साधना से इन तीन लोक के प्रधानों का मन वश नहीं हुआ तो अन्य साधक का कही ठिकाना है? अध्याय 6 के श्लोक नं. 47 में कहा है सब साधकों में भी पूर्ण श्रद्धा मेरे में रखने वाले मुझे मान्य हैं। चूंकि भक्ति चाहे ब्रह्म की करो चाहे परब्रह्म की और चाहे पूर्णब्रह्म की, वह श्रद्धापूर्वक की जानी चाहिए। तभी उस इष्ट का पूर्ण लाभ प्राप्त हो सकता है। परन्तु वे मेरे साधक भी अधूरी साधना में ही लीन हैं, क्योंकि ब्रह्म(काल) साधक भी कर्म दण्ड से नहीं बचते। गीता ज्ञान दाता ने गीता अध्याय 7 श्लोक 18 में अपनी साधना से प्राप्त होने वाली गति को अनुत्तम (अश्रेष्ठ) कहा है। फिर पवित्र गीता अध्याय 18 श्लोक 62 में संकेत किया है कि यदि पूर्ण मोक्ष रूप परम शान्ति व सत्यलोक स्थान को प्राप्त करना है तो उस परमेश्वर (पूर्ण ब्रह्म) की शरण में जा।

गीता अध्याय 4 श्लोक 32 में कहा है कि सम्पूर्ण तत्वज्ञान का परमात्मा स्वयं ही विस्तृत वर्णन करता है। अध्याय 4 श्लोक 34 में कहा है कि उस तत्वज्ञान को तत्वदर्शी जानते हैं, उनसे ज्ञान ग्रहण कर, तब उनके बताए भक्ति मंत्रों से उस परमेश्वर की प्राप्ति होगी।

❑❑❑

।।छठवें अध्याय के अनुवाद सहित श्लोक।।

परमात्मने नमः

अथ षष्ठोऽध्यायः

अध्याय 6 का श्लोक 1

अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः।
स सन्न्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रियः।१।

अनाश्रितः, कर्मफलम्, कार्यम्, कर्म, करोति, यः,
सः, सन्न्यासी, च, योगी, च, न, निरग्निः, न, च, अक्रियः।।1।।

अनुवाद : (यः) जो साधक (कर्मफलम्) कर्मफलका (अनाश्रितः) आश्रय न लेकर (कार्यम्) शास्त्र विधि अनुसार करनेयोग्य (कर्म) भक्ति कर्म (करोति) करता है (सः) वह (सन्न्यासी) संन्यासी अर्थात् शास्त्र विरुद्ध साधना कर्मों को त्यागा हुआ व्यक्ति (च) तथा (योगी) योगी अर्थात् भक्त है (च) और (निरग्निः) वासना रहित (न) नहीं है (च) तथा केवल (अक्रियः) एक स्थान पर बैठ कर विशेष आसन आदि लगा कर लोक दिखावा करके क्रियाओंका त्याग करने वाला भी योगी (न) नहीं है। भावार्थ है कि जो हठ योग करके दम्भ करता है मन में विकार है, ऊपर से निष्क्रिय दिखता है वह न सन्यासी है, न ही कर्मयोगी अर्थात् भक्त है। (1)

अध्याय 6 का श्लोक 2

यं सन्न्यासमिति प्राहुर्योगं तं विद्धि पाण्डव।
न ह्यसन्न्यस्तसङ्कल्पो योगी भवति कश्चन।२।

यम्, सन्न्यासम्, इति, प्राहुः, योगम्, तम्, विद्धि पाण्डव,
न, हि, असन्न्यस्तसङ्कल्पः, योगी, भवति, कश्चन।।2।।

अनुवाद : (पाण्डव) हे अर्जुन! (यम्) जिसको (सन्न्यासम्) सन्यास (इति) ऐसा (प्राहुः) कहते हैं (तम्) उस (योगम्) भक्ति ज्ञान योग को (विद्धि) जान (हि) क्योंकि (असन्न्यस्तसङ्कल्पः) संकल्पोंका त्याग न करनेवाला (कश्चन) कोई भी पुरुष (योगी) योगी (न) नहीं (भवति) होता। (2)

गरीब, एक नारी त्याग दीन्हीं, पाँच नारी गैल बे।
पाया न द्वारा मुक्ति का, सुखदेव करी बहु सैल बे।।

भावार्थ है कि एक पत्नी को त्याग कर सन्यास प्रस्त हो गए परंतु पाँच विकार(काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार) रूपी पत्नियाँ साथ ही हैं अर्थात् संकल्प अभी भी रहे, ये त्यागों, तब सन्यासी होवोगे। जैसे सुखदेव जी सन्यासी बन कर बहुत फिरा परंतु मान-बड़ाई नहीं त्यागी जिसके कारण विफल रहा।

अध्याय 6 का श्लोक 3

आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते।
योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते।३।

आरुरुक्षोः, मुनेः, योगम्, कर्म, कारणम्, उच्यते,
योगारूढस्य, तस्य, एव, शमः, कारणम्, उच्यते।।3।।

अनुवाद : (योगम्) योग अर्थात् भक्ति में (आरुरुक्षोः) आरूढ़ होनेकी इच्छावाले (मुनेः) मननशील साधकके लिये (कर्म) शास्त्र अनुकूल भक्ति कर्म करना ही (कारणम्) हेतु अर्थात् भक्ति का उद्देश्य (उच्यते) कहा जाता है (तस्य) उस (योगारूढस्य) भक्ति में संलग्न साधकका (शमः) जो सर्वसंकल्पोंका अभाव है वही (एव) वास्तव में (कारणम्) भक्ति करने का कारण अर्थात् हेतु (उच्यते) कहा जाता है। (3)

अध्याय 6 का श्लोक 4

यदा हि नेन्द्रियार्थेषु न कर्मस्वनुषज्जते।
सर्वसङ्कल्पसन्न्यासी योगारूढस्तदोच्यते।४।

यदा, हि, न, इन्द्रियार्थेषु, न, कर्मसु, अनुषज्जते,
सर्वसङ्कल्पसन्न्यासी, योगारूढः, तदा, उच्यते।।4।।

अनुवाद : (यदा) जिस समयमें (न) न तो (इन्द्रियार्थेषु) इन्द्रियोंके भोगोंमें और (न) न (कर्मसु) कर्मोंमें (हि) ही (अनुषज्जते) आसक्त होता है (तदा) उस स्थितिमें (सर्वसङ्कल्पसन्न्यासी) सर्वसंकल्पोंका त्यागी पुरुष (योगारूढः) वास्तव में भक्ति में दृढ़ निश्चय से संलग्न (उच्यते) कहा जाता है। (4)

अध्याय 6 का श्लोक 5

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः।५।

उद्धरेत्, आत्मना, आत्मानम्, न, आत्मानम्, अवसादयेत्,
आत्मा, एव, हि, आत्मनः, बन्धुः, आत्मा, एव, रिपुः, आत्मनः।।5।।

अनुवाद : (आत्मना) पूर्ण परमात्मा जो आत्मा के साथ अभेद रूप में रहता है के तत्वज्ञान को ध्यान में रखते हुए शास्त्र अनुकूल साधना से अपने द्वारा (आत्मानम्) अपनी आत्माका (उद्धरेत्) उद्धार करे और (आत्मानम्) अपनेको (न अवसादयेत्) बर्बाद न करे (हि) क्योंकि (आत्मा) शास्त्र अनुकूल साधक को पूर्ण परमात्मा विशेष लाभ प्रदान करता है वही प्रभु आत्मा के साथ अभेद रूप में रहता है, इसलिए वह आत्म रूप परमात्मा (एव) वास्तव में (आत्मनः) आत्माका (बन्धुः) मित्र है और (आत्मा) शास्त्र विधि को त्याग कर मनमाना आचरण करने से जीवात्मा (एव) वास्तव में (आत्मनः) स्वयं का (रिपुः) शत्रु है। (5)

अध्याय 6 का श्लोक 6

बन्धुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः।
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत्।६।

बन्धुः, आत्मा, आत्मनः, तस्य, येन, आत्मा, एव, आत्मना, जितः,
अनात्मनः, तु, शत्रुत्वे, वर्तेत, आत्मा, एव, शत्रुवत्।।6।।

अनुवाद : (आत्मनः) जो आत्मा शास्त्रानुकूल साधना करता है (तस्य) उसका (बन्धुः आत्मा) पूर्ण परमात्मा ही साथी है (येन) जिस कारण से (एव) वास्तव में (आत्मना) शास्त्र अनुकूल साधक की आत्मा के साथ पूर्ण परमात्मा की शक्ति विशेष कार्य करती है जैसे बिजली का कनेक्शन लेने पर मानव शक्ति से न होने वाले कार्य भी आसानी से हो जाते हैं। ऐसे पूर्ण परमात्मा से (आत्मा) जीवात्मा की (जितः) विजय होती है अर्थात् सर्व कार्य सिद्ध तथा सर्व सुख प्राप्त होता है तथा

परमगति को अर्थात् पूर्ण मोक्ष प्राप्त करता है तथा मन व इन्द्रियों पर भी वही विजय प्राप्त करता है। (तू) परन्तु इसके विपरीत जो शास्त्र अनुकूल साधना नहीं करते उनकी आत्मा को पूर्ण प्रभु का विशेष सहयोग प्राप्त नहीं होता, वह केवल कर्म संस्कार ही प्राप्त करता रहता है इसलिए (अनात्मनः) पूर्ण प्रभु के सहयोग रहित जीवात्मा (शत्रुत्वे) स्वयं दुश्मन जैसा (वर्तेत) व्यवहार करता है (एव) वास्तव में वह साधक (आत्मा) अपना ही (शत्रुवत्) शत्रु तुल्य है अर्थात् शास्त्र विधि को त्याग कर मनमाना आचरण अर्थात् मनमुखी पूजायें करने वाले को न तो सुख प्राप्त होता है न ही कार्य सिद्ध होता है, न परमगति ही प्राप्त होती है, प्रमाण पवित्र गीता अध्याय 16 मंत्र 23-24.(6)

अध्याय 6 का श्लोक 7

जितात्मनः प्रशान्तस्य परमात्मा समाहितः।
शीतोष्णसुखदुःखेषु तथा मानापमानयोः।७।

जितात्मनः, प्रशान्तस्य, परमात्मा, समाहितः,
शीतोष्णसुखदुःखेषु, तथा, मानापमानयोः।।7।।

अनुवाद : उपरोक्त श्लोक 6 में जिस विजयी आत्मा का विवरण है उसी से सम्बन्धित है कि वह (जितात्मनः) परमात्मा के कृपा पात्र विजयी आत्मा अर्थात् शास्त्र अनुकूल साधना करने से प्रभु से सर्व सुख व कार्य सिद्धि प्राप्त हो रही है वह (प्रशान्तस्य) पूर्ण संतुष्ट साधक (परमात्मा) पूर्ण प्रभु के ऊपर (समाहितः) पूर्ण रूपेण आश्रित है अर्थात् उसको किसी अन्य से लाभ की चाह नहीं रहती। वह तो (शितोष्ण) सर्दी व गर्मी अर्थात् (सुख दुःखेषु) सुख व दुःख में (तथा) तथा (मान-अपमानयोः) मान व अपमान में भी प्रभु की इच्छा जान कर ही निश्चिंत रहता है। (7)

अध्याय 6 का श्लोक 8

ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः।
युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्टाश्मकाञ्चनः। ८ ।

ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा, कूटस्थः, विजितेन्द्रियः,
युक्तः, इति, उच्यते, योगी, समलोष्टाश्मकाञ्चनः।।8।।

अनुवाद : (ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा) जिसका अन्तःकरण ज्ञान-विज्ञान अर्थात् तत्वज्ञान से तृप्त है (कूटस्थः) जिसकी जीवात्मा की स्थिति विकाररहित है (विजितेन्द्रियः) प्रभु के सहयोग से जिसकी इन्द्रियाँ भलीभाँति जीती हुई हैं और (समलोष्टाश्म काञ्चनः) जिसके लिये मिट्टी पत्थर और सुवर्ण समान हैं वह (योगी) शास्त्र अनुकूल साधक (युक्तः) युक्त अर्थात् भगवत्प्राप्त है (इति) यह अन्तिम (उच्यते) ठीक सही भक्ति करने वाला कहा जाता है। (8)

अध्याय 6 का श्लोक 9

सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यबन्धुषु ।
साधुष्वपि च पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते। ९ ।

सुहृद् मित्र अरि उदासीन मध्यस्थ द्वेष्य बन्धुषु ,
साधुषु, अपि, च, पापेषु, समबुद्धिः, विशिष्यते।।9।।

अनुवाद : (सुहृद्) सुहृद्,(मित्र) मित्र,(अरि) वैरी,(उदासीन) उदासीन,(मध्यस्थ) मध्यस्थ,(द्वेष्य) द्वेष्य और (बन्धुषु) बन्धुगणोंमें (साधुषु) धर्मात्माओंमें (च) और (पापेषु) पापियोंमें (अपि) भी (समबुद्धिः) समान भाव रखनेवाला (विशिष्यते) अत्यन्त श्रेष्ठ है। (9)

(श्लोक 10 से 15 में ब्रह्म ने अपनी पूजा के ज्ञान की अटकल लगाई है)

अध्याय 6 का श्लोक 10

योगी युञ्जीत सततमात्मानं रहसि स्थितः।
एकाकी यतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रहः।१०।

योगी, यु जीत, सततम्, आत्मानम्, रहसि, स्थितः,
एकाकी, यतचित्तात्मा, निराशीः, अपरिग्रहः।।10।।

अनुवाद : (यतचित्तात्मा) मन और इन्द्रियोंसहित शरीरको वशमें रखनेवाला (निराशीः) आशारहित और (अपरिग्रहः) संग्रहरहित (योगी) साधक (एकाकी) अकेला ही (रहसि) एकान्त स्थानमें रहता है तथा (स्थितः) स्थित होकर (आत्मानम्) आत्माको (सतत्म) निरन्तर परमात्मामें (यु जीत) लगावे। (10)

अध्याय 6 का श्लोक 11

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः।
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम्।११।

शुचौ, देशे, प्रतिष्ठाप्य, स्थिरम्, आसनम्, आत्मनः,
न, अत्युच्छ्रितम्, न, अतिनीचम्, चैलाजिनकुशोत्तरम्।।11।।

अनुवाद : (शुचौ) शुद्ध (देशे) स्थान में जिसके ऊपर क्रमशः (चैलाजिनकुशोत्तरम्) कुशा मगछाला और वस्त्र बिछे हैं जो (न) न (अत्युच्छ्रितम्) बहुत ऊँचा है और (न) न (अतिनीचम्) बहुत नीचा ऐसे (आत्मनः) अपने (आसनम्) आसनको (स्थिरम्) स्थिर (प्रतिष्ठाप्य) स्थापन करके। (11)

अध्याय 6 का श्लोक 12

तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः।
उपविश्यासने युञ्ज्याद्योगमात्मविशुद्धये।१२।

तत्र, एकाग्रम्, मनः, कत्वा, यतचितेन्द्रियक्रियः,
उपविश्य, आसने, यु ज्यात्, योगम्, आत्मविशुद्धये।।12।।

अनुवाद : (तत्र) उस (आसने) आसनपर (उपविश्य) बैठकर (यतचितेन्द्रियक्रियः) चित और इन्द्रियोंकी क्रियाओंको वशमें रखते हुए (मनः) मनको (एकाग्रम्) एकाग्र (कत्वा) करके (आत्मविशुद्धये) अन्तःकरणकी शुद्धिके लिये (योगम्) साधना का (यु ज्यात्) अभ्यास करे। (12)

अध्याय 6 का श्लोक 13

समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः।
सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन्।१३।

समम्, कायशिरोग्रीवम्, धारयन्, अचलम्, स्थिरः,
सम्प्रेक्ष्य, नासिकाग्रम्, स्वम्, दिशः, च, अनवलोकयन्।।13।।

अनुवाद : (कायशिरोग्रीवम्) काया सिर और गर्दन को (समम्) समान एवम् (अचलम्) स्थिर (धारयन्) धारण करके (च) और (स्थिरः) स्थिर होकर (स्वम्) अपनी (नासिकाग्रम्) नासिकाके अग्रभागपर (सम्प्रेक्ष्य) दष्टि जमाकर अन्य (दिशः) दिशाओंको (अनवलोकयन्) न देखता हुआ। (13)

अध्याय 6 का श्लोक 14

प्रशान्तात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारिव्रते स्थितः।
मनः संयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत मत्परः। १४।

प्रशान्तात्मा, विगतभीः, ब्रह्मचारिव्रते, स्थितः,
मनः, संयम्य, मच्चितः, युक्तः, आसीत, मत्परः।।14।।

अनुवाद : (ब्रह्मचारिव्रते) ब्रह्मचारीके व्रतमें (स्थितः) स्थित (विगतभीः) भयरहित तथा (प्रशान्तात्मा) भलीभाँति शान्त अन्तःकरणवाला (मनः) मनको (संयम्य) रोककर (मच्चितः) लीन चितवाला (मत्परः) मतावलम्बी मत् अनुसार अर्थात् जो काल विचार दे रहा है ऐसे करता हुआ (युक्तः) साधना में संलग्न (आसीत) स्थित होवे। (14)

अध्याय 6 का श्लोक 15

युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी नियतमानसः।
शान्तिं निर्वाणपरमां मत्संस्थामधिगच्छति। १५।

यु जन्, एवम्, सदा, आत्मानम्, योगी, नियतमानसः,
शान्तिम्, निर्वाणपरमाम्, मत्संस्थाम्, अधिगच्छति।।15।।

अनुवाद : (एवम्) इस प्रकार (सदा) निरन्तर (नियतमानसः) मेरे द्वारा उपरोक्त हठयोग बताया गया है उस के अनुसार मन को वश में करके (आत्मानम्) स्वयं को परमात्मा के (यु जन्) साधना में लगाता हुआ (मत्संस्थाम्) जैसे कर्म करेगा वैसा ही फल प्राप्त होने वाले नियमित सिद्धांत के आधार से मेरे ही ऊपर आश्रित रहने वाला (योगी) साधक (निवार्ण परमाम्) अति शान्त अर्थात् समाप्त प्रायः (शान्तिम्) शान्ति को (अधिगच्छति) प्राप्त होता है अर्थात् मेरे से मिलने वाली नाम मात्र मुक्ति को प्राप्त होता है। अपनी मुक्ति को गीता अध्याय 7 श्लोक 18 में स्वयं ही अति अश्रेष्ठ कहा है। गीता अध्याय 6 श्लोक 23 में अनिर्वणम् का अर्थ न उकताए अर्थात् न मुर्झाए किया है इसलिए निर्वाणम् का अर्थ मुर्झायी हुई अर्थात् मरी हुई नाम मात्र की शान्ति हुई। (15)

विशेष :- उपरोक्त गीता अध्याय 6 श्लोक 10 से 15 में एक स्थान पर विशेष आसन पर विराजमान होकर हठ करके ध्यान व दष्टि नाक के अग्र भाग पर लगाने आदि की सलाह दी है तथा गीता अध्याय 3 श्लोक 5 से 9 तक इसी को मना किया है।

(श्लोक 16 से 29 तक पूर्ण परमात्मा के विषय में ज्ञान है)

अध्याय 6 का श्लोक 16

नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नतः।
न चाति स्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन। १६।

न, अति, अश्नतः, तु, योगः, अस्ति, न, च, एकान्तम्, अनश्नतः,
न, च, अति, स्वप्नशीलस्य, जाग्रतः, न, एव, च, अर्जुन।।16।।

अनुवाद : उपरोक्त श्लोक 10 से 15 में वर्णित विधि वाली एकान्त में बैठ कर विशेष आसन आदि लगा कर साधना करना तो मेरे तक का लाभ प्राप्ति मात्र है, यह वास्तव में श्रेष्ठ नहीं है। गीता अध्याय 7 श्लोक 18 में अपने द्वारा दिए जाने वाले लाभ (गति) को अश्रेष्ठ बताया है। इसलिए (अर्जुन) हे अर्जुन (तु) इसके विपरीत उस पूर्ण परमात्मा को प्राप्त करने वाली (योग) भक्ति (न एकान्तम्) न तो एकान्त स्थान पर विशेष आसन या मुद्रा में बैठने से तथा (न) न ही (अति)

अत्यधिक (अश्नतः) खाने वाले की (च) और (अनश्नतः) न बिल्कुल न खाने वाले अर्थात् व्रत रखने वाले की (च) तथा (न) न ही (अति) बहुत (स्वप्नशीलस्य) शयन करने वाले की (च) तथा (न) न (एव) ही (जाग्रतः) हठ करके अधिक जागने वाले की (अस्ति) सिद्ध होती है अर्थात् उपरोक्त श्लोक 10 से 15 में वर्णित विधि व्यर्थ है। (16)

अध्याय 6 का श्लोक 17

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा। १७।

युक्ताहारविहारस्य, युक्तचेष्टस्य, कर्मसु,
युक्तस्वप्नावबोधस्य, योगः, भवति, दुःखहा।।17।।

अनुवाद : (दुःखहा) दुःखोंका नाश करनेवाली (योगः) भक्ति तो (युक्ताहारविहारस्य) यथायोग्य आहार-विहार करनेवालेकी (कर्मसु) शास्त्र अनुसार कर्मोंमें (युक्तचेष्टस्य) यथायोग्य चेष्टा करनेवालेकी और (युक्तस्वप्नावबोधस्य) यथायोग्य सोने तथा जागने वालेकी ही सिद्ध (भवति) होती है। (17)

अध्याय 6 का श्लोक 18

यदा विनियतं चित्तमात्मन्येवावतिष्ठते।
निःस्पृहः सर्वकामेभ्यो युक्त इत्युच्यते तदा। १८।

यदा, विनियतम्, चित्तम्, आत्मनि, एव, अवतिष्ठते,
निःस्पृहः, सर्वकामेभ्यः, युक्तः, इति, उच्यते, तदा।।18।।

अनुवाद : (विनियतम्) एक पूर्ण परमात्मा की शास्त्र अनुकूल भक्ति में अत्यन्त नियमित किया हुआ (चित्तम्) चित (यदा) जिस स्थितिमें (आत्मनि) परमात्मा में (एव) ही (अवतिष्ठते) भलीभाँति स्थित हो जाता है (तदा) उस कालमें (सर्वकामेभ्यः) सम्पूर्ण मनोकामनाओंसे (निःस्पृहः) मुक्त (युक्तः) भक्तियुक्त अर्थात् भक्ति में संलग्न है (इति) ऐसा (उच्यते) कहा जाता है। (18)

अध्याय 6 का श्लोक 19

यथा दीपो निवातस्थो नेङ्गते सोपमा स्मृता।
योगिनो यतचित्तस्य युञ्जतो योगमात्मनः। १९।

यथा, दीपः, निवातस्थः, न, इंगते, सा, उपमा, स्मृता,
योगिनः, यतचित्तस्य, युञ्जतः, योगम्, आत्मनः।।19।।

अनुवाद : (यथा) जिस प्रकार (निवातस्थः) वायुरहित स्थानमें स्थित (दीपः) दीपक (न,इगंते) चलायमान नहीं होता (सा) वैसी ही (उपमा) उपमा (आत्मनः) शास्त्र अनुकूल साधक आत्मा के साथ अभेद रूप में रहने वाले परमात्मा अर्थात् पूर्ण ब्रह्म की (योगम्) साधना में (युञ्जतः) लगे हुए (यत) प्रयत्न शील (योगिनः) साधक के (चित्तस्य) चितकी (स्मृता) सुमरण स्थिति कही गयी है। (19)

अध्याय 6 का श्लोक 20

यत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योगसेवया।
यत्र चैवात्मनात्मानं पश्यन्नात्मनि तुष्यति। २०।

यत्र, उपरमते, चित्तम्, निरुद्धम्, योगसेवया,
यत्र, च, एव, आत्मना, आत्मानम्, पश्यन्, आत्मनि, तुष्यति।।20।।

अनुवाद : (चित्तम्) चित (निरुद्धम्) निरुद्ध (योगसेवया) योगके अभ्याससे (यत्र) जिस अवस्थामें (उपरमते) ऊपर बताए मत - विचारों पर आधारित हो कर उपराम हो जाता है (च) और (यत्र) जिस अवस्थामें (आत्मना) शास्त्र अनुकूल साधक जीवात्मा द्वारा (आत्मानम्) आत्मा के साथ रहने वाले पूर्ण परमात्मा को सर्वत्र (पश्यन्) देखकर (एव) ही वास्तव में (आत्मनि) आत्मा से अभेद पूर्ण परमात्मा में (तुष्यति) संतुष्ट रहता है अर्थात् वह डगमग नहीं रहता। (20)

अध्याय 6 का श्लोक 21

सुखमात्यन्तिकं यत्तद्बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम्।
वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्त्वतः। २१।

सुखम् आत्यन्तिकम्, यत्, तत्, बुद्धिग्राह्यम्, अतीन्द्रियम्,
वेत्ति, यत्र, न, च, एव, अयम्, स्थितः, चलति, तत्त्वतः।।21।।

अनुवाद : (अतीन्द्रियम्) इन्द्रियोंसे अतीत (बुद्धिग्राह्यम्) केवल शुद्ध हुई सूक्ष्म बुद्धिद्वारा ग्रहण करने योग्य (यत्) जो (आत्यन्तिकम्) अनन्त (सुखम्) आनन्द है। कभी न समाप्त होने वाला सुख अर्थात् पूर्ण परमात्मा की प्राप्ति पूर्ण मुक्ति के लिए प्रयत्न करता हुआ (तत्) उसको (यत्र) जिस अवस्थामें (वेत्ति) अनुभव करता है (च) और (एव) वास्तव में इस प्रकार (स्थितः) स्थित (अयम्) यह योगी (तत्त्वतः) तत्वज्ञानी (न,चलति) विचलित नहीं होता। (21)

अध्याय 6 का श्लोक 22

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।
यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते। २२।

यम्, लब्ध्वा, च, अपरम्, लाभम्, मन्यते, न, अधिकम्, ततः,
यस्मिन्, स्थितः, न, दुःखेन, गुरुणा, अपि, विचाल्यते।।22।।

अनुवाद : (यम्) केवल एक पूर्ण परमात्मा की शास्त्र अनुकूल साधना से एक ही प्रभु पर मन को रोकने वाले साधक जिस (लाभम्) लाभको (लब्ध्वा) प्राप्त होकर (ततः) उससे (अधिकम्) अधिक (अपरम्) दूसरा कुछ भी लाभ (न,मन्यते) नहीं मानता (च) और (यस्मिन्) जिस कारण से (स्थितः) सत्य भक्ति पर अडिग साधक (गुरुणा) बड़े भारी (दुःखेन) दुःखसे (अपि) भी (न, विचाल्यते) चलायमान नहीं होता। (22)

अध्याय 6 का श्लोक 23

तं विद्याद् दुःखसंयोगवियोगं योगसञ्ज्ञितम्।
स निश्चयेन योक्तव्यो योगोऽनिर्विण्णचेतसा। २३।

तम्, विद्यात्, दुःखसंयोगवियोगम्, योगसञ्ज्ञितम्,
सः, निश्चयेन, योक्तव्यः, योगः, अनिर्विण्णचेतसा।।23।।

अनुवाद : (तम्) अज्ञान अंधकार से अज्ञात पूर्ण परमात्मा के (योगसञ्ज्ञितम्) वास्तविक भक्ति ज्ञान को (विद्यात्) जानना चाहिए। (दुःख संयोग) जो पापकर्मों के संयोग से उत्पन्न दुःख का (वियोगम्) अन्त अर्थात् छूटकारा करता है (सः) वह (योगः) भक्ति (अनिर्विण्णचेतसा) न उकताये अर्थात् न मुर्झाए् हुए चितसे (निश्चयेन) निश्चयपूर्वक (योक्तव्यः) करना कर्त्तव्य है अर्थात् करनी चाहिए। (23)

अध्याय 6 का श्लोक 24

सङ्कल्पप्रभवान्कामांस्त्यक्त्वा सर्वानशेषतः।
मनसैवेन्द्रियग्रामं विनियम्य समन्ततः। २४।

संकल्पप्रभवान्, कामान्, त्यक्त्वा, सर्वान्, अशेषतः,
मनसा, एव, इन्द्रियग्रामम्, विनियम्य, समन्ततः।।24।।

अनुवाद : (संकल्पप्रभवान्) संकल्पसे उत्पन्न होनेवाली (सर्वान्) सम्पूर्ण (कामान्) कामनाओंको (एव) वास्तव में (अशेषतः) जड़ामूल से अर्थात् समूल (त्यक्त्वा) त्यागकर और (मनसा) मनके द्वारा (इन्द्रियग्रामम्) इन्द्रियों के (समन्ततः) सभी ओर से (विनियम्य) भलीभाँति रोककर। (24)

अध्याय 6 का श्लोक 25

शनैः शनैरुपरमेद्बुद्ध्या धृतिगृहीतया।
आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किञ्चिदपि चिन्तयेत्। २५।

शनैः, शनैः, उपरमेत्, बुद्ध्या, धतिगहीतया,
आत्मसंस्थम्, मनः, कत्वा, न, किंचित्, अपि, चिन्तयेत्।।25।।

अनुवाद : (शनैः,शनैः) धीरे-धीरे अभ्यास करता हुआ (उपरमेत्) उपरोक्त दिए गए मत अर्थात् ज्ञान विचार द्वारा (धतिगहीतया) धैर्ययुक्त (बुद्ध्या) बुद्धि के द्वारा (मनः) मन को (आत्मसंस्थम्) पूर्ण परमात्मा में टिका कर अर्थात् स्थित (कत्वा) करके (किंचित्) कुछ (अपि) भी (न,चिन्तयेत्) चिन्तन न करे। (25)

अध्याय 6 का श्लोक 26

यतो यतो निश्चरति मनश्चञ्चलमस्थिरम्।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत्। २६।

यतः, यतः, निश्चरति, मनः, चञ्चलम्, अस्थिरम्,
ततः, ततः, नियम्य, एतत्, आत्मनि, एव, वशम्, नयेत्।।26।।

अनुवाद : (एतत्) यह (अस्थिरम्) स्थिर न रहनेवाला और (चञ्चलम्) चंचल (मनः) मन (यतः,यतः) जहाँ-जहाँ (निश्चरति) विचरता है (ततः,ततः) उस उससे (नियम्य) हटाकर (आत्मनि) शास्त्र अनुकूल साधक पूर्ण परमात्मा की कप्या पात्र आत्मा अपने पूर्ण प्रभु के सहयोग से (एव) ही (वशम्) मनवश (नयेत्) करे। (26)

अध्याय 6 का श्लोक 27

प्रशान्तमनसं ह्येनं योगिनं सुखमुत्तमम्।
उपैति शान्तरजसं ब्रह्मभूतमकल्मषम्। २७।

प्रशान्तमनसम्, हि, एनम्, योगिनम्, सुखम्, उत्तमम्,
उपैति, शान्तरजसम्, ब्रह्मभूतम्, अकल्मषम्।।27।।

अनुवाद : (एनम्) शास्त्र विधि त्यागकर साधना करना पाप है इसलिए इस पाप को (हि) निश्चय ही त्याग कर (प्रशान्तमनसम्) जिस शास्त्र अनुकूल साधक का मन भली प्रकार एक पूर्ण परमात्मा में शांत है (अकल्मषम्) जो पापसे रहित है, (शान्तरजसम्) जो भौतिक सुख नहीं चाहता (ब्रह्मभूतम्) परमात्मा के हंस (योगिनम्) विधिवत् साधक को (उत्तमम्) उत्तम (सुखम्) आनन्द (उपैति) प्राप्त होता है अर्थात् पूर्ण मुक्ति प्राप्त होती है। (27)

अध्याय 6 का श्लोक 28

युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी विगतकल्मषः।
सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यन्तं सुखमश्नुते।२८।

युञ्जन्, एवम्, सदा, आत्मानम्, योगी, विगतकल्मषः,
सुखेन, ब्रह्मसंस्पर्शम्, अत्यन्तम्, सुखम्, अश्नुते।।28।।

अनुवाद : (विगतकल्मषः) पापरहित (योगी) साधक (एवम्) इस प्रकार (सदा) निरन्तर (युञ्जन्) साधना करता हुआ (आत्मानम्) अपने समर्पण भाव से(सुखेन) सुखपूर्वक (ब्रह्मसंस्पर्शम्) पूर्ण परमात्मा के मिलन रूप (अत्यन्तम्) कभी समाप्त न होने वाले (सुखम्) आनन्दका (अश्नुते) अनुभव करता है अर्थात् पूर्ण मुक्त हो जाता है। (28)

अध्याय 6 का श्लोक 29

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः।२९।

सर्वभूतस्थम्, आत्मानम्, सर्वभूतानि, च, आत्मनि,
ईक्षते, योगयुक्तात्मा, सर्वत्र, समदर्शनः।।29।।

अनुवाद : (योगयुक्तात्मा) भक्तियुक्त आत्मावाला (सर्वत्र) सबमें (समदर्शनः) समभावसे देखनेवाला (आत्मानम्) पूर्ण परमात्मा जो आत्मा के साथ अभेद रूप में है उसको (सर्वभूतस्थम्) सम्पूर्ण प्राणियों में स्थित (च) और (सर्वभूतानि) सम्पूर्ण प्राणियों को (आत्मनि) अपने समान अर्थात् जैसा दुःख व सुख अपने होता है इस दष्टिकोण से(ईक्षते) देखता है। (29)

(श्लोक नं 30-31 में अपनी भक्ति वाले साधक की स्थिति बताई है)

अध्याय 6 का श्लोक 30

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति।३०।

यः, माम्, पश्यति, सर्वत्र, सर्वम्, च, मयि, पश्यति,
तस्य, अहम्, न, प्रणश्यामि, सः, च, मे, न, प्रणश्यति।।30।।

अनुवाद : (यः) जो (सर्वत्र) सब जगह (माम्) मुझे (पश्यति) देखता है (च) और (सर्वम्) सर्व को (मयि) मुझमें (पश्यति) देखता है (तस्य) उसके लिये (अहम्) मैं (न,प्रणश्यामि) अदश्य नहीं होता (च) और (सः) वह (मे) मेरे से (न,प्रणश्यति) अदश्य नहीं होता अर्थात् वह तो मेरे ही जाल में मेरी दष्टि है उसको पूर्ण ज्ञान नहीं है। (30)

अध्याय 6 का श्लोक 31

सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः।
सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते।३१।

सर्वभूतस्थितम्, यः, माम्, भजति, एकत्वम्, आस्थितः,
सर्वथा, वर्तमानः, अपि, सः, योगी, मयि, वर्तते।।31।।

अनुवाद : (यः) जो (एकत्वम्) एकीभावमें (आस्थितः) स्थित होकर (सर्वभूतस्थितम्) सम्पूर्ण भूतोंमें स्थित (माम्) मुझे (भजति) भजता है (सः) वह (योगी) योगी (सर्वथा) सब प्रकारसे (वर्तमानः) इस समय (अपि) भी (मयि) मुझमें ही (वर्तते) बरतता है। (31)

(श्लोक नं 32 में पूर्ण परमात्मा की भक्ति तत्वदर्शी संत से प्राप्त करके करता है। वही सर्वश्रेष्ठ है।)

अध्याय 6 का श्लोक 32

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः। ३२।

आत्मौपम्येन, सर्वत्र, समम्, पश्यति, यः, अर्जुन,
सुखम्, वा, यदि, वा, दुःखम्, सः, योगी, परमः, मतः।।32।।

अनुवाद : (अर्जुन) हे अर्जुन! (यः) जो योगी (आत्मौपम्येन) शास्त्र अनुकूल साधना से आत्मा पूर्ण परमात्मा की कंपा पात्र हो जाती है उस पर प्रभु की विशेष कंपा होने से वह स्वयं भी परमात्मा की उपमा जैसा हो जाता है, इसलिए आत्मा के साथ अभेद रूप में रहने वाले परमात्मा को (सर्वत्र) सब जगह तथा सर्व प्राणियों में (समम्) सम (पश्यति) देखता है (वा) और (सुखम्) सुख (यदि,वा) अथवा (दुःखम्) दुःखको भी सबमें सम देखता है (सः) वह (मतः) शास्त्रानुकूल आचरण वाला (योगी) योगी (परमः) श्रेष्ठ है। (32)

(अर्जुन उवाच)

अध्याय 6 का श्लोक 33

योऽयं योगस्त्वया प्रोक्तः साम्येन मधुसूदन।
एतस्याहं न पश्यामि चञ्चलत्वात्स्थितिं स्थिराम्। ३३।

यः, अयम्, योगः, त्वया, प्रोक्तः, साम्येन, मधुसूदन,
एतस्य, अहम्, न, पश्यामि, चञ्चलत्वात्, स्थितिम्, स्थिराम्।।33।।

अनुवाद : (मधुसूदन) हे मधुसूदन! (यः) जो (अयम्) यह (योगः) योग (त्वया) आपने (साम्येन) समभावसे (प्रोक्तः) कहा है मनके (चञ्चलत्वात्) चंचल होनेसे (अहम्) मैं (एतस्य) इसकी (स्थिराम्) नित्य (स्थितिम्) स्थितिको (न) नहीं (पश्यामि) देखता हूँ। (33)

अध्याय 6 का श्लोक 34

चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम्।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्। ३४।

चञ्चलम्, हि, मनः, कंष्ण, प्रमाथि, बलवत्, दंढम्,
तस्य, अहम्, निग्रहम्, मन्ये, वायोः, इव, सुदुष्करम्।।34।।

अनुवाद : (हि) क्योंकि (कंष्ण) हे श्रीकंष्ण! यह (मनः) मन (चञ्चलम्) बड़ा चंचल (प्रमाथि) प्रमथन स्वभाववाला (दंढ़म्) बड़ा दंढ़ और (बलवत्) बलवान् है। इसलिये (तस्य) उसको (निग्रहम्) वशमें करना (अहम्) मैं (वायोः) वायुको रोकनेकी (इव) भाँति (सुदुष्करम्) अत्यन्त दुष्कर (मन्ये) मानता हूँ। (34)

(भगवान उवाच)

अध्याय 6 का श्लोक 35

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते। ३५।

असंशयम्, महाबाहो, मनः, दुर्निग्रहम्, चलम्,
अभ्यासेन, तु, कौन्तेय, वैराग्येण, च, गंह्यते।।35।।

अनुवाद : (महाबाहो) हे महाबाहो! (असंशयम्) निःसन्देह (मनः) मन (चलम्) चंचल और (दुर्निग्रहम्) कठिनतासे वश में होने वाला है (तु) परंतु (कौन्तेय) हे कुन्तीपुत्र अर्जुन! यह (अभ्यासेन) अभ्यास (च) और (वैराग्येण) वैराग्यसे (गृह्यते) वश में होता है। (35)

अध्याय 6 का श्लोक 36

असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति मे मतिः।
वश्यात्मना तु यतता शक्योऽवाप्तुमुपायतः। ३६।

असंयतात्मना, योगः, दुष्प्रापः, इति, मे, मतिः,
वश्यात्मना, तु, यतता, शक्यः, अवाप्तुम्, उपायतः।।36।।

अनुवाद : (असंयतात्मना) जिसका मन वशमें किया हुआ नहीं है अर्थात् जो संयमी नहीं ऐसे पुरुषद्वारा (योगः) भक्ति (दुष्प्रापः) दुष्प्राप्य है (तु) परन्तु (वश्यात्मना) शास्त्र विधि अनुसार साधना करने वाले अर्थात् मनमानी पूजा न करके वशमें किये हुए मनवाले (यतता) प्रयत्नशील पुरुषद्वारा (उपायतः) साधनसे उसका (अवाप्तुम्) प्राप्त होना (शक्यः) सम्भव है (इति) यह (मे) मेरा (मतिः) मत अर्थात् विचार है। (36)

(अर्जुन उवाच)

अध्याय 6 का श्लोक 37

अयतिः श्रद्धयोपेतो योगाच्चलितमानसः।
अप्राप्य योगसंसिद्धिं कां गतिं कृष्ण गच्छति। ३७।

अयतिः, श्रद्धया, उपेतः, योगात्, चलितमानसः,
अप्राप्य, योगसंसिद्धिम्, काम्, गतिम्, कष्ण, गच्छति।।37।।

अनुवाद : (कष्ण) हे श्रीकष्ण! (श्रद्धया, उपेतः) जो योगमें श्रद्धा रखनेवाला है, किंतु (अयतिः) जो संयमी नहीं है (योगात्चलितमानसः) जिसका मन योगसे विचलित हो गया है, ऐसा साधक योगी (योगसंसिद्धिम्) योगकी सिद्धिको अर्थात् (अप्राप्य)न प्राप्त होकर (काम्)किस (गतिम्)गतिको (गच्छति) प्राप्त होता है। (37)

अध्याय 6 का श्लोक 38

कच्चिन्नोभयविभ्रष्टश्छिन्नाभ्रमिव नश्यति।
अप्रतिष्ठो महाबाहो विमूढो ब्रह्मणः पथि। ३८।

कच्चित्, न, उभयविभ्रष्टः, छिन्नाभ्रम्, इव, नश्यति,
अप्रतिष्ठः, महाबाहो, विमूढः, ब्रह्मणः, पथि।।38।।

अनुवाद : (महाबाहो) हे महाबाहो! (कच्चित्) क्या वह (ब्रह्मणः) पूर्ण परमात्मा की प्राप्ति के (पथि) मार्ग से (विमूढः) भटका हुआ मूर्ख (अप्रतिष्ठः) शास्त्र विधि त्याग कर साधना करने वाले साधक को प्रभु का आश्रय प्राप्त नहीं होता ऐसा आश्रयरहित पुरुष (छिन्नाभ्रम्) छिन्न भिन्न बादलकी (इव) भाँति (उभयविभ्रष्टः) दोनों ओरसे भ्रष्ट होकर (न, नश्यति) नष्ट तो नहीं हो जाता? दुष्प्राय है अर्थात् भक्ति लाभ नहीं है। वह योग तो मनवश किए हुए को ही शक्य है। विचार करें फिर श्लोक 40 का यह अर्थ करना कि वह योग भ्रष्ट व्यक्ति न तो इस लोक में नष्ट होता है न परलोक में, न्याय संगत नहीं है क्योंकि अध्याय 6 श्लोक 42 से 44 में भी यही प्रमाण है कहा है योग भ्रष्ट व्यक्ति

योग भ्रष्ट होने से पूर्व के भक्ति संस्कार से कुछ दिन स्वर्ग में जाता है फिर अच्छे कुल में जन्म प्राप्त करता है परन्तु पुनः वह मानव जन्म इस लोक में अत्यन्त दुर्लभ है। यदि मानव जन्म प्राप्त हो जाता है तो पूर्व के स्वभाववश मनमाना आचरण करके तत्वज्ञान का उल्लंघन कर जाता है। अर्थात् नष्ट हो जाता है। इसलिए श्लोक 40 का अनुवाद उपरोक्त सही है। अध्याय 6 श्लोक 45 में भी स्पष्ट है।(38)

अध्याय 6 का श्लोक 39

एतन्मे संशयं कृष्ण छेत्तुमर्हस्यशेषतः।
त्वदन्यः संशयस्यास्य छेत्ता न ह्युपपद्यते। ३९।

एतत्, मे, संशयम्, कष्ण, छेत्तुम्, अर्हसि, अशेषतः,
त्वदन्यः, संशयस्य, अस्य, छेत्ता, न, हि, उपपद्यते।।39।।

अनुवाद : (कष्ण) हे श्रीकष्ण! (मे) मेरे (एतत्) इस (संशयम्) संशयको (अशेषतः) सम्पूर्णरूपसे (छेत्तुम्) छेदन करनेके लिये आपही (अर्हसि) योग्य हैं (हि) क्योंकि (त्वदन्यः) आपके सिवा दूसरा (अस्य) इस (संशयस्य) संशयका (छेत्ता) छेदन करनेवाला (न,उपपद्यते) मिलना सम्भव नहीं है।(39)

भावार्थ :- श्लोक 40 से 44 का भावार्थ है कि पहले वाले सर्व शुभ व अशुभ कर्मों का भोग स्वर्ग-नरक में भोगकर पिछले भक्ति स्वभाव के अनुसार तो भक्ति की तड़फ बन जाती है तथा पिछले स्वभाव से ही फिर पथ भ्रष्ट हो जाता है अर्थात् पूर्ण संत न मिलने के कारण कभी मुक्त नहीं होता।

(भगवान उवाच)

अध्याय 6 का श्लोक 40

पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते।
न हि कल्याणकृत्कश्चिद्दुर्गतिं तात गच्छति। ४०।

पार्थ, न, एव, इह, न, अमुत्र, विनाशः, तस्य, विद्यते,
न, हि, कल्याणकत्, कश्चित्, दुर्गतिम्, तात, गच्छति।।40।।

अनुवाद : (पार्थ) हे पार्थ! (एव) वास्तव में पथ भ्रष्ट साधक (न) न तो (इह) यहाँ का रहता है (न) न (अमुत्र) वहाँ का रहता है। (तस्य) उसका (विनाशः) विनाश ही (विद्यते) जाना जाता है (हि) निसंदेह (कश्चित्) कोई भी व्यक्ति जो (न कल्याणकत्) अन्तिम स्वांस तक मर्यादा से आत्म कल्याण के लिए कर्म करने वाला नहीं है अर्थात् जो योग भ्रष्ट हो जाता है (तात) हे प्रिय वह तो (दुर्गतिम्) दुर्गति को (गच्छति) चला जाता है अर्थात् प्राप्त होता है। इसी का प्रमाण गीता अध्याय 4 श्लोक 40 में भी है। (40)

भावार्थ :- गीता जी अन्य अनुवाद कर्ताओं ने इस श्लोक 40 में लिखा है कि योग भ्रष्ट अर्थात् जिसका मन वश नहीं है वह साधक इस लोक में भी नष्ट नहीं होता तथा परलोक में भी नष्ट नहीं होता। जबकि अध्याय 6 श्लोक 36 में लिखा है कि मेरे मत (विचार) अनुसार जिसका मन वश नहीं है उस को भक्ति (योग) का लाभ मिलना दुष्प्राप्य है अर्थात् भक्ति लाभ नहीं है। वह योग तो मन वश किए हुए को ही शक्य है।

विचार करें फिर श्लोक 40 का यह अर्थ करना कि वह योग भ्रष्ट व्यक्ति न तो इस लोक में नष्ट होता है न परलोक में न्याय संगत नहीं है। क्योंकि अध्याय 6 श्लोक 42 से 44 तक में भी यही

प्रमाण है कहा है योग भ्रष्ट व्यक्ति योग भ्रष्ट होने से पूर्व के भक्ति संस्कार से कुछ दिन स्वर्ग में जाता है फिर अच्छे कुल में मानव जन्म प्राप्त करता है। परन्तु पुनः वह मानव जन्म इस लोक मे अत्यन्त दुर्लभ है। यदि मानव जन्म प्राप्त हो जाता है तो पूर्व के स्वभाव वश मनमाना आचरण करके तत्वज्ञान का उल्लंघन कर जाता है अर्थात् नष्ट हो जाता है। इसलिए श्लोक 40 का अनुवाद उपरोक्त सही है अध्याय 6 श्लोक 45 में भी स्पष्ट है।

उदाहरण :- जड़भरत नाम के योगी का एक हिरण के बच्चे में मोह हो जाने से भक्ति मार्ग से भ्रष्ट होने से हिरण का ही जन्म प्राप्त हुआ तथा दुर्गति को प्राप्त हुआ।

अध्याय 6 का श्लोक 41

प्राप्य पुण्यकृतां लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः।
शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते। ४१।

प्राप्य, पुण्यकताम्, लोकान्, उषित्वा, शाश्वतीः, समाः,
शुचीनाम्, श्रीमताम्, गेहे, योगभ्रष्टः, अभिजायते।।41।।

अनुवाद : (योगभ्रष्टः) योगभ्रष्ट पुरुष (पुण्यकताम्) चौरासी लाख योनियों के कष्ट के बाद पुण्य कर्मों के आधार पर पुण्यवानोंके (लोकान्) लोकोंको अर्थात् स्वर्गादि लोकोंको (प्राप्य) प्राप्त होकर उनमें (शाश्वतीः) वेद वाणी के आधार से नियत (समाः) समय तक (उषित्वा) निवास करके फिर (शुचीनाम्) शुद्ध आचरणवाले (श्रीमताम्) अच्छे विचारों वाले अर्थात् श्रेष्ठ व्यक्तियों के (गेहे) घरमें (अभिजायते) जन्म लेता है, नीचे वाले श्लोक 42 में कहा है कि ऐसा जन्म दुर्लभ है। (41)

अध्याय 6 का श्लोक 42

अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम्।
एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम्। ४२।

अथवा, योगिनाम्, एव, कुले, भवति, धीमताम्,
एतत्, हि, दुर्लभतरम्, लोके, जन्म, यत्, ईदशम्।।42।।

अनुवाद : (अथवा) अथवा (धीमताम्) ज्ञानवान् (योगिनाम्) योगियोंके (कुले) कुलमें (भवति) जन्म लेता है। (एव) वास्तव में (ईदशम्) इस प्रकारका (यत्) जो (एतत्) यह (जन्म) जन्म है सो (लोके) संसारमें (हि) निःसन्देह (दुर्लभतरम्) अत्यन्त दुर्लभ है। (42)

अध्याय 6 का श्लोक 43

तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम्।
यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनन्दन। ४३।

तत्र, तम्, बुद्धिसंयोगम्, लभते, पौर्वदेहिकम्,
यतते, च, ततः, भूयः, संसिद्धौ, कुरुनन्दन।।43।।

अनुवाद : यदि (तत्र) वहाँ (तम्) वह (पौर्वदेहिकम्) पहले शरीरमें संग्रह किये हुए (बुद्धिसंयोगम्) बुद्धिके संयोगको अनायास ही (लभते) प्राप्त हो जाता है (च) और (कुरुनन्दन) हे कुरुनन्दन! (ततः) उसके पश्चात् (भूयः) फिर (संसिद्धौ) परमात्माकी प्राप्तिरूप सिद्धिके लिये (यतते) प्रयत्न करता है। (43)

अध्याय 6 का श्लोक 44

पूर्वाभ्यासेन तेनैव ह्रियते ह्यवशोऽपि सः।
जिज्ञासुरपि योगस्य शब्दब्रह्मातिवर्तते।४४।

पूर्वाभ्यासेन, तेन, एव, ह्रियते, हि, अवशः, अपि, सः,
जिज्ञासुः, अपि, योगस्य, शब्दब्रह्म, अतिवर्तते।।44।।

अनुवाद : (सः) वह पथभ्रष्ट साधक (अवशः) स्वभाव वश विवश हुआ (अपि) भी (तेन) उस (पूर्वाभ्यासेन) पहलेके अभ्याससे (एव) ही वास्तव में (ह्रियते) आकर्षित किया जाता है (हि) क्योंकि (योगस्य)परमात्मा की भक्ति का (जिज्ञासुः) जिज्ञासु (अपि) भी (शब्दब्रह्म) परमात्मा की भक्ति विधि जो सद्ग्रन्थों में वर्णित है उस विधि अनुसार साधना न करके पूर्व के स्वभाव वश विचलित होकर उस वास्तविक नाम का जाप न करके प्रभु की वाणी रूपी आदेश का (अतिवर्तते) उल्लंघन कर जाता है। क्योंकि पूर्व स्वभाववश फिर विचलित हो जाता है। इसीलिए गीता अध्याय 7 श्लोक 16-17 में जिज्ञासु को अच्छा नहीं कहा है केवल ज्ञानी भक्त जो एक परमात्मा की भक्ति करता है वह श्रेष्ठ कहा है। गीता अध्याय 18 श्लोक 58 में भी प्रमाण है। (44)

अध्याय 6 का श्लोक 45

प्रयत्नाद्यतमानस्तु योगी संशुद्धकिल्बिषः।
अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम्।४५।

प्रयत्नात्, यतमानः, तु, योगी, संशुद्धकिल्बिषः,
अनेकजन्मसंसिद्धः, ततः, याति, पराम्, गतिम्।।45।।

अनुवाद : (तु) इसके विपरीत (यतमानः) शास्त्र अनुकुल साधक जिसे पूर्ण प्रभु का आश्रय प्राप्त है वह संयमी अर्थात् मन वश किया हुआ प्रयत्नशील(प्रयत्नात्) सत्यभक्ति के प्रयत्न से (अनेकजन्मसंसिद्धः) अनेक जन्मों की भक्ति की कमाई से (योगी) भक्त (संशुद्धकिल्बिषः) पाप रहित होकर (ततः) तत्काल उसी जन्म में (पराम् गतिम्) श्रेष्ठ मुक्ति को (याति) प्राप्त हो जाता है।(45)

अध्याय 6 का श्लोक 46

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन।४६।

तपस्विभ्यः, अधिकः, योगी, ज्ञानिभ्यः, अपि, मतः, अधिकः,
कर्मिभ्यः, च, अधिकः, योगी, तस्मात्, योगी, भव, अर्जुन।।46।।

अनुवाद : भगवान कह रहा है कि (योगी) तत्वदर्शी संत से ज्ञान प्राप्त करके साधना करने वाला नाम साधक मेरे द्वारा दिया (मतः) अटकल लगाया साधना का मत अर्थात् पूजा विधि के ज्ञान अनुसार जो श्लोक 10 से 15 तक में हठ योग का विवरण दिया है उनमें जो हठ करके भक्ति कर्म से जो साधना करते हैं उन (तपस्विभ्यः) तपस्वियों से (ज्ञानिभ्यः) गीता अध्याय 7 श्लोक 16-17 में वर्णित ज्ञानियों से (च) तथा (कर्मिभ्य) कर्म करने वाले से अर्थात् शास्त्रविरूद्ध साधना करने वालों से (अपि) भी (अधिकः) श्रेष्ठ है। (तस्मात्) इसलिए (अर्जुन) हे अर्जुन गीता अध्याय 4 श्लोक 34 में कहे तत्वदर्शी संत की खोज करके उस से उपदेश प्राप्त करके (योगी) शास्त्र अनुकूल भक्त (भव) हो। गीता अध्याय 2 श्लोक 39 से 53 तक में कहा है कि हे अर्जुन! जिस समय तेरा मन भाँति-भाँति

के ज्ञान वचनों से हट कर एक तत्वज्ञान पर स्थित हो जाएगा तब तो तू योग को प्राप्त होगा अर्थात् योगी बनेगा।(46)

अध्याय 6 का श्लोक 47

योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना।
श्रद्धावान्भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः। ४७।

योगिनाम्, अपि, सर्वेषाम्, मद्गतेन, अन्तरात्मना,
श्रद्धावान्, भजते, यः, माम्, सः, मे, युक्ततमः, मतः।।47।।

अनुवाद : (सर्वेषाम्) सर्व (योगिनाम्) योगियों में (अपि) भी (यः) जो (श्रद्धावान) श्रद्धावान साधक (मत्गतेन) मेरे द्वारा दिए भक्ति मत अनुसार (अन्तरात्मना) अन्तरात्मा से (माम्) मुझको (भजते) भजता है (सः) वह योगी (मे) मेरे (मतः) मत अनुसार (युक्ततमः) यथार्थ विधि से भक्ति में लीन है। (47)

भावार्थ :- तत्वज्ञान प्राप्त साधक वास्तव में शास्त्रअनुकूल साधक अर्थात् योगी है। वह ब्रह्म काल का ओं (ॐ) नाम का जाप विधिवत् करता है ओं नाम का जाप विधिवत् करना है ओम् नाम की जाप कमाई ब्रह्म को त्याग देता है तथा फिर पूर्ण परमात्मा को प्राप्त हो जाता है।

(इति अध्याय छठा)

❑❑❑

सातवां अध्याय

।।दिव्य सारांश।।

❖ *विश्लेषण :- इस अध्याय 7 में श्लोक नं. 12-15 तथा 20-23 में तीनों गुणों यानि रजगुण ब्रह्मा जी, सतगुण विष्णु, तमगुण शिव जी तथा अन्य देवी-देवताओं की भक्ति ईष्ट मानकर करना व्यर्थ कहा है। इनकी भक्ति करने वालों को राक्षस स्वभाव को धारण किए हुए मनुष्यों में नीच, दूषित कर्म करने वाले मूर्ख कहा है।*

❖ *अध्याय 7 श्लोक 16-18 में गीता ज्ञान दाता ने अपने भक्तों तथा अपनी साधना से होने वाली गति की जानकारी दी है। कहा है कि मेरी भक्ति चार प्रकार के भक्त करते हैं :- 1. आर्त 2. अर्थार्थी 3. जिज्ञासु 4. ज्ञानी। इनमें से ज्ञानी उत्तम है, मुझे प्रिय है क्योंकि वह अन्य देवताओं की भक्ति नहीं करता। केवल मुझ ब्रह्म की भक्ति करता है। परंतु तत्वज्ञान के अभाव से वे उदार ज्ञानी आत्मा भी मेरी अनुत्तम यानि घटिया गति (मोक्ष) में ही स्थित है क्योंकि गीता ज्ञान दाता ने गीता अध्याय 4 श्लोक 5, अध्याय 2 श्लोक 12, अध्याय 10 श्लोक 2 में कहा है कि मैं नाशवान हूँ क्योंकि मेरा भी जन्म-मरण होता है। जिस कारण से साधक का भी जन्म-मरण सदा रहेगा। इसलिए गीता ज्ञान दाता ने गीता अध्याय 18 श्लोक 62 में अपने से अन्य परमेश्वर की शरण में जाने को कहा है तथा कहा है कि उसी परमेश्वर की कृपा से तू परम शांति को तथा सनातन परम धाम (शाश्वतम् स्थानम्) को प्राप्त होगा। विचार करें कि जब तक जन्म-मरण है, तब तक जीव को शांति नहीं हो सकती। कर्मों का कष्ट सदा बना रहेगा। जब जन्म-मरण सदा के लिए समाप्त हो जाएगा, तब ही परम शांति प्राप्त होती है।*

❖ *गीता अध्याय 7 श्लोक 19 में कहा है कि उसी परमेश्वर यानि वासुदेव की भक्ति व महिमा बताने वाला संत मिलना अति दुर्लभ है। गीता के इसी अध्याय 7 के श्लोक 29 में गीता ज्ञान दाता ने उसी वासुदेव के विषय में बताया है। कहा है कि ''जो मेरे ज्ञान का आश्रय लेकर तत्वदर्शी संत से तत्वज्ञान समझकर केवल जरा यानि वृद्धावस्था तथा मरण यानि मृत्यु से छुटकारा पाने के लिए परमात्मा की साधना कर रहे हैं, वे ''तत् ब्रह्म'' सम्पूर्ण अध्यात्म को तथा सम्पूर्ण कर्मों को जानते हैं। गीता अध्याय 8 श्लोक 1 में अर्जुन ने अपनी शंका का समाधान करवाने के लिए गीता ज्ञान दाता से प्रश्न किया कि ''तत् ब्रह्म'' क्या है? इसका उत्तर गीता ज्ञान दाता ने अध्याय 8 के ही श्लोक 3, 8, 9, 10, 20, 21, 22 में बताया है कि वह ''परम अक्षर ब्रह्म'' है, वह वास्तव में अविनाशी परमेश्वर है जिसने सर्व प्राणियों व जगत की उत्पत्ति की है जो सर्व प्राणियों के नष्ट होने पर भी नष्ट नहीं होता। उसकी भक्ति करने वाला उसी को प्राप्त होता है।*

।। इस ज्ञान को जानने के बाद कुछ भी जानना शेष नहीं ।।

अध्याय 7 के श्लोक 1 से 11 में कहा है कि अर्जुन जो कोई मेरे (ब्रह्म) में पूर्णरूप से आसक्त होकर लगा हुआ है और जिस ज्ञान से मेरा परमभक्त पूर्ण ज्ञान युक्त हो जाएगा। इस ज्ञान से उसे पता लग जाएगा कि कौन कितने पानी में है। श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी तथा श्री शिव जी, ब्रह्म तथा परम अक्षर ब्रह्म तक की स्थिति से परिचित हो जाएगा तथा पूर्ण सन्त की खोज करके तत् ब्रह्म (पूर्ण परमात्मा) की भक्ति की चेष्टा करेगा। इस ज्ञान को समझने के उपरान्त फिर जानने के

लिए कुछ भी शेष नहीं रहेगा। वह ज्ञान अब कहूँगा। हजारों साधको में कोई एक प्रभु प्राप्त करने का यत्न करता है जो मेरे से पूर्ण परीचित हैं कि मैं वास्तव में काल हूँ। फिर वह साधक जन्म-मत्यु से छूटने की भरसक कोशिश करता है। {गीताप्रैस गोरखपुर से प्रकाशित श्री देवी भागवत महापुराण जिसके सम्पादक श्री हनुमान प्रसाद पोद्दार, चिमन लाल गोस्वामी, के पष्ठ 123 पर भी यह प्रमाण है। लिखा है कि भगवान शिव ने दुर्गा (प्रकति देवी) की महिमा करते हुए कहा, शिवे! सम्पूर्ण संसार की सष्टि करने में तुम बड़ी चतुर हो, मात! पथ्वी, जल, पवन, आकाश, अग्नि, ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय, बुद्धि, मन और अहंकार ये सब तुम्हीं हो। इस संसार की सष्टि, स्थिति और संहार करने में तुम्हारे गुण सदा समर्थ हैं। उन्हीं तीनों गुणों से उत्पन्न हम (ब्रह्मा, विष्णु, शंकर) नियमानुसार कार्य करने में तत्पर रहते हैं।} गीता अध्याय 7 श्लोक 4 से 6 में स्पष्ट किया है कि मेरी आठ प्रकार की माया जो आठ भाग में विभाजित है पाँच तत्व तथा तीन (मन, बुद्धि, अहंकार) ये आठ भाग हैं। यह तो जड़ प्रकति है। सर्व प्राणियों को उत्पन्न करने में सहयोगी हैं, {जैसे मन के कारण प्राणी नाना इच्छाऐं करता है। इच्छा ही जन्म का कारण है। पाँच तत्वों से स्थूल शरीर बनता है तथा मन, बुद्धि, अहंकार के सहयोग से सूक्ष्म शरीर बना है तथा इससे दूसरी चेतन प्रकति (दुर्गा)है। यही दुर्गा (प्रकति) ही अन्य तीन रूप महालक्ष्मी - महासावित्री - महागौरी आदि बनाकर काल (ब्रह्म) के साथ पति-पत्नी व्यवहार से तीनों पुत्रों रजगुण युक्त श्री ब्रह्मा जी, सतगुण युक्त श्री विष्णु जी, तमगुण युक्त श्री शिव जी को उत्पन्न करती है। फिर भूल - भूलईयाँ करके तीन अन्य स्त्री रूप सावित्री, लक्ष्मी तथा गौरी बनाकर तीनों देवताओं (श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी, श्री शिव जी) से विवाह करके काल के जीव उत्पन्न करती है। जो चेतन प्रकति (शेराँवाली) है। इसके सहयोग से काल सर्व प्राणियों की उत्पत्ति करता है, (प्रमाण गीता अध्याय 14 श्लोक 3 से 5 में।) गीता ज्ञान दाता काल कह रहा है कि मैं सारे संसार के जीवों के प्रलय तथा उत्पत्ति का कारण हूँ। (क्योंकि काल को एक लाख मानव शरीर धारी प्राणी प्रतिदिन खाने पड़ते हैं)। सातवें श्लोक में कहा है कि सर्व संसार मेरे (ब्रह्म) में जकड़ा है। कबीर साहेब जी महाराज कहते हैं कि :–

सुर नर मुनिजन तेतीस करोड़ी। बंधे सब ज्योति निरंजन डोरी।।

भावार्थ :- तेतीस करोड़ देवता, अठासी हजार मुनिजन तथा सर्व जीव काल की डोर यानि कर्म रूपी रस्सी के फांस में बँधे हैं।

विशेष :- गीता अध्याय 14 के श्लोक 3-5 में स्पष्ट है कि गीता ज्ञान दाता काल ब्रह्म ने कहा है कि :-

❖ *अध्याय 14 श्लोक 3 :- (मम ब्रह्म) मुझ ब्रह्म की (महत्) प्रकति यानि दुर्गा की योनि है। मैं (तस्मिन) उस (योनिः) योनि में गर्भ स्थापित करता हूँ। उससे सर्व प्राणियों की उत्पत्ति होती है।(14/3)*

❖ *अध्याय 14 श्लोक 4 :- हे अर्जुन! सर्व योनियों में जितने भी शरीरधारी प्राणी उत्पन्न होते हैं (तासाम) उन सबकी गर्भ धारण करने वाली माता (महत्) प्रकति यानि दुर्गा है (अहम् ब्रह्म) मैं ब्रह्म उनमें (बीज प्रदः) बीज डालने वाला (पिता) पिता हूँ।*

❖ *अध्याय 14 श्लोक 5 :- हे अर्जुन! रजगुण ब्रह्मा, सतगुण विष्णु तथा तमगुण शिव ये तीनों गुण यानि देवता (प्रकति सम्भवाः) प्रकति यानि दुर्गा अष्टांगी से उत्पन्न हुए हैं जो जीवात्माओं को कर्मों के फल अनुसार भिन्न-भिन्न प्राणियों के शरीर में उत्पन्न करके बाँधते हैं।(14/5)*

इन श्लोकों से स्पष्ट है कि देवी दुर्गा व काल ब्रह्म भोग-विलास करके ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव

जी को उत्पन्न करते हैं। श्री देवी महापुराण के तीसरे स्कंद में अध्याय 5 के श्लोक 12 में स्पष्ट है कि दुर्गा अपने पति काल ब्रह्म के साथ रमण (Sex) करती है। इसका प्रमाण आप जी आगे इसी अध्याय 7 के सारांश में पढ़ेंगे।

गीता अध्याय 7 श्लोक 7 से 11 तक ब्रह्म कहता है कि मैं जल का गुण रस हूँ, प्रकाश हूँ तथा वेदों में (प्रणव) ओंकार (ॐ) हूँ और सर्व तत्व का गुण भी मैं ही हूँ। मनुष्यों में श्रेष्ठ हूँ तथा मुझे ही सर्व प्राणियों (स्थूल शरीर व सूक्ष्म शरीर में जीव) का कारण जान। तेजस्वियों का तेज भी मेरे से ही है। बुद्धिमानों की बुद्धि (जब चाहे बुद्धि प्रदान कर देता हूँ जब चाहे बुद्धि भ्रष्ट कर देता हूँ), तपस्वियों का तप भी मैं (काल) ही हूँ। (चूंकि तपस्वियों को राज देता है वहाँ भी आनन्द मन (काल) ही लेता है।) मैं (काल) ही शक्तिशालियों का बल हूँ तथा सब प्राणियों में व्यवस्थित काम (Sex) हूँ। {(जैसे पहले अर्जुन को बल दे कर योद्धा बना दिया। युद्ध जीता, अर्जुन ने बड़े-2 योद्धा मार डाले फिर बल वापिस ले लिया। जब भगवान श्री कृष्ण जी का वध एक शिकारी ने कर दिया तो अर्जुन गोपियों (कृष्ण जी की 16000 (सोलह हजार) अवैध स्त्रियों) तथा सर्व यादवों की मृत्यु के पश्चात् विधवा हुई। यादवों की स्त्रियों को लाने द्वारिका से इन्द्रप्रस्थ अपनी राजधानी में ले जा रहा था। रास्ते में भीलों ने अर्जुन को पीटा तथा स्त्रियों को लूट ले गए तथा कुछ स्त्रियों को साथ भी ले गए। उस समय काल ब्रह्म ने अर्जुन को बल रहित कर दिया जिसके कारण अर्जुन से गांडिव धनुष भी नहीं चला।)}

दूसरा उदाहरण :- जिस समय लंका पति रावण ने सीता जी का अपहरण कर लिया था। उस समय सीता जी की खोज में श्री राम वन-2 भटक रहे थे। उन्हें पता नहीं था कि उनकी पत्नी सीता जी का कौन उठा ले गया है? कहां है? क्योंकि काल ब्रह्म ने उसकी बुद्धि को बंद कर रखा था। उसी समय पार्वती जी (पत्नी शिव जी) सीता जी का रूप धारण करके श्री रामचन्द्र जी की परिक्षा लेने आई तो श्री राम ने पहचान लिया की आप पार्वती हैं। उस समय काल ब्रह्म अर्थात् गीता ज्ञान दाता ने श्री रामचन्द्र(श्री विष्णु) की बुद्धि खोल दी। इसीलिए यहां श्लोक 10,11 में कहा है कि बलवानों का बल तथा बुद्धिमानों की बुद्धि मेरे हाथ में है।

''तीनों गुण क्या हैं? प्रमाण सहित''

''तीनों गुण रजगुण ब्रह्मा जी, सतगुण विष्णु जी, तमगुण शिव जी हैं। ब्रह्म (काल) तथा प्रकृति (दुर्गा) से उत्पन्न हुए हैं तथा तीनों नाशवान हैं''

प्रमाण :- गीताप्रैस गोरखपुर से प्रकाशित श्री शिव महापुराण जिसके सम्पादक हैं श्री हनुमान प्रसाद पोद्दार पृष्ठ सं. 110 अध्याय 9 रूद्र संहिता ''इस प्रकार ब्रह्मा-विष्णु तथा शिव तीनों देवताओं में गुण हैं, परन्तु शिव (ब्रह्म-काल) गुणातीत कहा गया है।

दूसरा प्रमाण :- गीताप्रैस गोरखपुर से प्रकाशित श्रीमद् देवीभागवत पुराण जिसके सम्पादक हैं श्री हनुमान प्रसाद पौद्दार चिमन लाल गोस्वामी, तीसरा स्कंद, अध्याय 5 पृष्ठ 123 :- भगवान विष्णु ने दुर्गा की स्तुति की : कहा कि मैं (विष्णु), ब्रह्मा तथा शंकर तुम्हारी कृपा से विद्यमान हैं। हमारा तो आविर्भाव (जन्म) तथा तिरोभाव (मृत्यु) होती है। हम नित्य (अविनाशी) नहीं हैं। तुम ही नित्य हो, जगत् जननी हो, प्रकृति और सनातनी देवी हो। भगवान शंकर ने कहा : यदि भगवान ब्रह्मा तथा भगवान विष्णु तुम्हीं से उत्पन्न हुए हैं तो उनके बाद उत्पन्न होने वाला मैं तमोगुणी लीला करने वाला शंकर क्या तुम्हारी संतान नहीं हुआ अर्थात् मुझे भी उत्पन्न करने वाली तुम ही हो। इस

संसार की संष्टि-स्थिति-संहार में तुम्हारे गुण सदा सर्वदा हैं। इन्हीं तीनों गुणों से उत्पन्न हम, ब्रह्मा-विष्णु तथा शंकर नियमानुसार कार्य में तत्पर रहते हैं।

उपरोक्त यह विवरण केवल हिन्दी में अनुवादित श्री देवीमहापुराण से है, जिसमें कुछ तथ्यों को छुपाया गया है। इसलिए यही प्रमाण देखें श्री मद्देवीभागवत महापुराण सभाषटिकम् समहात्यम्, खेमराज श्री कंष्ण दास प्रकाश मुम्बई, इसमें संस्कंत सहित हिन्दी अनुवाद किया है। तीसरा स्कंद अध्याय 4 पंष्ठ 10, श्लोक 42 :-

ब्रह्मा - *अहम् महेश्वरः फिल ते प्रभावात्सर्वे वयं जनि युता न यदा तू नित्याः, के अन्ये सुराः शतमख प्रमुखाः च नित्या नित्या त्वमेव जननी प्रकंतिः पुराणा (42)।*

हिन्दी अनुवाद :- हे मात! ब्रह्मा, मैं तथा शिव तुम्हारे ही प्रभाव से जन्मवान हैं, नित्य नही हैं अर्थात् हम अविनाशी नहीं हैं, फिर अन्य इन्द्रादि दूसरे देवता किस प्रकार नित्य हो सकते हैं। तुम ही अविनाशी हो, प्रकंति तथा सनातनी देवी हो। (42)

पंष्ठ 11-12, अध्याय 5, श्लोक 8 :- यदि दयार्द्रमना न सदां बिके कथमहं विहितः च तमोगुणः कमलजश्च रजोगुणसंभवः सुविहितः किमु सत्वगुणों हरिः। (8)

अनुवाद :- भगवान शंकर बोले :-हे मात! यदि हमारे ऊपर आप दयायुक्त हो तो मुझे तमोगुण क्यों बनाया, कमल से उत्पन्न ब्रह्मा को रजोगुण किस लिए बनाया तथा विष्णु को सतगुण क्यों बनाया? अर्थात् जीवों के जन्म-मंत्यु रूपी कर्म में क्यों लगाया?

''देवी दुर्गा का पति है, का प्रमाण''

श्लोक 12 :- रमयसे स्वपतिं पुरुषं सदा तव गतिं न हि विह विद्म शिवे (12)

हिन्दी - अपने पति पुरुष अर्थात् काल भगवान के साथ सदा भोग-विलास (Sex) करती रहती हो। आपकी गति कोई नहीं जानता।

तीसरा स्कंद पंष्ठ 14, अध्याय 5 श्लोक 43 :- एकमेवा द्वितीयं यत् ब्रह्म वेदा वदंति वै। सा किं त्वम् वा प्यसौ वा किं संदेहं विनिवर्तय। (43)

अनुवाद :- जो कि वेदों में अद्वितीय केवल एक पूर्ण ब्रह्म कहा है क्या वह आप ही हैं या कोई और है? मेरी इस शंका का निवार्ण करें। ब्रह्मा जी की प्रार्थना पर देवी ने कहा -

देव्युवाच सदैकत्वं न भेदो स्ति सर्वदैव ममास्य च।। यो सौ सा हमहं यो सौ भेदो स्ति मतिविभ्रमात्।।2।। आवयोरंतरं सूक्ष्मं यो वेद मतिमान्हि सः।। विमुक्तः स तू संसारान्मुच्यते नात्र संश्यः।।3।।

अनुवाद - यह है सो मैं हूं, जो मैं हूं सो यह है, मति के विभ्रम होनेसे भेद भासता है।।2।। हम दोनों का जो सूक्ष्म अन्तर है इसको जो जानता है वही मतिमान अर्थात् तत्वदर्शी है, वह संसार से पंथक् होकर मुक्त होता है, इसमें संदेह नहीं।।3।।

सुमरणाद्दर्शनं तुभ्यं दास्ये हं विषमे स्थिते।। स्वर्तव्या हं सदा देवाः परमात्मा सनातनः।।80।। उभयोः सुमरणादेव कार्यसिद्धिर संश्यम्।।ब्रह्मोवाच।। इत्युक्त्वा विससर्जास्मान्द त्त्वा शक्तीः सुसंस्कंतान्।।81।। विष्णवे थ महालक्ष्मी महाकालीं शिवाय च।। महासरस्वतीं मह्यं स्थानात्तस्माद्विसर्जिताः।।82।।

अनुवाद - संकट उपस्थित होने पर सुमरण से ही मैं तुमको दर्शन दूंगी, देवताओं! परमात्मा सनातन देवकी शक्तिरूपसे मेरा सदा सुमरण करना।।80।। दोनों के सुमरण से अवश्य कार्यसिद्धि होगी, ब्रह्माजी बोले इस प्रकार संस्कार कर शक्ति देकर हमको विदा किया।।81।। विष्णु के निमित्त

महालक्ष्मी, शिव के निमित्त महाकाली, और हमको महासरस्वती देकर विदा किया।।82।।

मम चैव शरीरं वै सूत्रमित्याभिधीयते।। स्थूलं शरीरं वक्ष्यामि ब्रह्मणः परमात्मनः।।83।।

अनुवाद :- देवी ने कहा - मेरा शरीर सूत्ररूप कहा जाता है, परमात्मा ब्रह्म का स्थूल शरीर कहाता है।।83।।

❖ *मार्कण्डेय पुराण पष्ठ 123 पर लिखा है कि ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव तीन प्रधान शक्तियाँ हैं। ये ही तीन देवता हैं। ये ही तीन गुण हैं।*

❖ *निष्कर्ष :- उपरोक्त प्रमाणों से स्पष्ट हुआ कि गीता के अध्याय 7 श्लोक 12-15 में त्रिगुण माया इन्हीं तीनों गुणों यानि तीनों देवताओं का वर्णन है जो केवल इन्हीं की भक्ति तक सीमित है। वे राक्षस स्वभाव को धारण किए हुए मनुष्यों में नीच दूषित कर्म करने वाले मूर्ख हैं। वे मेरी यानि गीता ज्ञान दाता काल की भक्ति नहीं करवाते।*

गीता अध्याय 7 श्लोक 12-15 का सारांश :-

।। ब्रह्मा विष्णु शिव (त्रिगुण माया) जीव को मुक्त नहीं होने देते।।

गीता अध्याय 7 श्लोक 12-15 में कहा है कि रजगुण ब्रह्मा, सतगुण विष्णु तथा तमगुण शिव रूपी त्रिगुण माया की भक्ति राक्षस स्वभाव को धारण किए हुए, मनुष्यों में नीच, दूषित कर्म करने वाले मूर्ख व्यक्ति करते हैं।

गीता अध्याय 7 श्लोक 12 : तीनों गुणों से जो कुछ हो रहा है वह मुझ से ही हुआ जान। जैसे रजगुण (ब्रह्मा) से उत्पत्ति, सतगुण (विष्णु) से संस्कार अनुसार पालन-पोषण स्थिति तथा तमगुण (शिव) से प्रलय (संहार) का कारण काल भगवान ही है। फिर कहा है कि मैं इन में नहीं हूँ। क्योंकि काल बहुत दूर (इक्कीसवें ब्रह्मण्ड में निज लोक में रहता है) है परंतु मन रूप में मौज काल ही मनाता है तथा रिमोट से सर्व प्राणियों तथा ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी व श्री शिव जी को यन्त्र की तरह चलाता है।

मैं केवल इक्कीस ब्रह्मण्डों में ही मालिक हूँ। {(गीता अ. 7 श्लोक 12 से 15 तक) तीनों गुणों से (रजगुण-ब्रह्मा से जीवों की उत्पत्ति, सतगुण-विष्णु जी से स्थिति तथा तमगुण-शिव जी से संहार)} जो कुछ भी हो रहा है उसका मुख्य कारण मैं (ब्रह्म/काल) ही हूँ। (क्योंकि काल को शाप लगा है कि एक लाख मानव शरीर धारी प्राणियों के शरीर को मार कर मैल को खाने का) जो साधक मेरी (ब्रह्म की) साधना न करके त्रिगुणमयी माया (रजगुण-ब्रह्मा जी, सतगुण-विष्णु जी, तमगुण-शिव जी) की साधना करके क्षणिक लाभ प्राप्त करते हैं, जिससे ज्यादा कष्ट उठाते रहते हैं, साथ में संकेत किया है कि इनसे ज्यादा लाभ मैं (ब्रह्म-काल) दे सकता हूँ, परन्तु ये मूर्ख साधक तत्वज्ञान के अभाव से इस त्रिगुण माया अर्थात् इन्हीं तीनों गुणों (रजगुण-ब्रह्मा जी, सतगुण-विष्णु जी, तमगुण-शिव जी) तक की साधना करते रहते हैं। इनकी बुद्धि इन्हीं तीनों प्रभुओं तक सीमित है। इसलिए ये राक्षस स्वभाव को धारण किए हुए, मनुष्यों में नीच, दुष्कर्म करने वाले, मूर्ख मुझे (ब्रह्म को)नहीं भजते। यही प्रमाण गीता अध्याय 16 श्लोक 4 से 20 तक, अध्याय 17 श्लोक 2 से 14 तथा 19 व 20 में भी है। यही प्रमाण गीता अध्याय 7 श्लोक 20 से 23 में है।

❖ *विचार करें :- रावण ने भगवान शिव जी को मत्युंजय, अजर-अमर, सर्वेश्वर मान कर भक्ति की, दस बार शीश काट कर समर्पित कर दिया, जिसके बदले में युद्ध के दौरान दस शीश रावण को प्राप्त हुए, परन्तु मुक्ति नहीं हुई, राक्षस कहलाया। यह दोष रावण के गुरुदेव का है जिस*

नादान (नीम-हकीम) ने वेदों को ठीक से न समझ कर अपनी सोच से तमोगुण युक्त भगवान शिव को ही पूर्ण परमात्मा बताया तथा भोली आत्मा रावण ने झूठे गुरुदेव पर विश्वास करके जीवन व अपने कुल का नाश किया।

❖ *एक वकासुर का साधक था जो बाद में भस्मागिरी, फिर भस्मासुर नाम से कुख्यात हुआ जिसने शिव जी (तमोगुण) को ही इष्ट मान कर शीर्षासन (ऊपर को पैर नीचे को शीश) करके 12 वर्ष तक साधना की, वचन बद्ध करके भस्मकण्डा माँगकर ले लिया। भगवान शिव जी को ही मारने लगा। उद्देश्य यह था कि भस्मकण्डा प्राप्त करके भगवान शिव जी को मार कर पार्वती जी को पत्नी बनाऊँगा। भगवान श्री शिव जी डर के मारे भाग गए, फिर श्री विष्णु जी ने मोहिनी रूप धारण करके उस भस्मासुर को गंडहथ नाच नचा कर उसी भस्मकण्डे से भस्म किया। वह शिव जी (तमोगुण) का साधक राक्षस कहलाया। हरिण्यकशिपु ने भगवान ब्रह्मा जी (रजोगुण) की साधना की तथा राक्षस कहलाया।*

❖ *एक समय आज (सन् 2006) से लगभग 325 वर्ष पूर्व हरिद्वार में हर की पैड़ियों पर (शास्त्र विधि रहित साधना करने वालों के) कुम्भ पर्व की प्रभी का संयोग हुआ। वहाँ पर सर्व (त्रिगुण उपासक) महात्मा जन स्नानार्थ पहुँचे। गिरी, पुरी, नाथ, नागा आदि भगवान श्री शिव जी (तमोगुण) के उपासक तथा वैष्णों भगवान श्री विष्णु जी (सतोगुण) के उपासक हैं। प्रथम स्नान करने के कारण नागा तथा वैष्णों साधुओं में घोर युद्ध हो गया। लगभग 25000 (पच्चीस हजार) त्रिगुण उपासक मत्यु को प्राप्त हुए। जो व्यक्ति जरा-सी बात पर कत्ले आम कर देता है वह साधु है या राक्षस स्वयं विचार करें। आम व्यक्ति भी कहीं स्नान कर रहे हों और कोई व्यक्ति आ कर कहे कि मुझे भी कुछ स्थान स्नान के लिए देने की कप्या करें। शिष्टाचार के नाते कहते हैं कि आओ आप भी स्नान कर लो। इधर-उधर हो कर आने वाले को स्थान दे देते हैं। इसलिए पवित्र गीता जी अध्याय 7 श्लोक 12 से 15 में कहा है कि जिनका मेरी त्रिगुणमई माया(रजगुण-ब्रह्मा जी, सतगुण-विष्णु जी, तमगुण-शिव जी) की पूजा के द्वारा ज्ञान हरा जा चुका है, वे केवल मान बड़ाई के भूखे राक्षस स्वभाव को धारण किए हुए, मनुष्यों में नीच अर्थात् आम व्यक्ति से भी पतित स्वभाव वाले, दुष्कर्म करने वाले मूर्ख मेरी भक्ति भी नहीं करते।*

गीता अध्याय 7 श्लोक 16-18 का सारांश :-

''गीता ज्ञान देने वाले ने अपनी भक्ति से होने वाली गति को अनुत्तम यानि घटिया क्यों कहा?''

❖ *गीता अध्याय 7 श्लोक 16 से 18 तक पवित्र गीता जी के बोलने वाले (ब्रह्म) काल प्रभु ने कहा कि मेरी भक्ति (ब्रह्म साधना) भी चार प्रकार के साधक करते हैं। एक तो अर्थार्थी (धन लाभ चाहने वाले) जो वेद मंत्रों से ही जंत्र-मंत्र, हवन आदि करते रहते हैं। दूसरे आर्त्त (संकट निवार्ण के लिए वेदों के मंत्रों का जंत्र-मंत्र हवन आदि करते रहते हैं) तीसरे जिज्ञासु जो परमात्मा के ज्ञान को जानने की इच्छा रखने वाले केवल ज्ञान संग्रह करके वक्ता बन जाते हैं तथा दूसरों में ज्ञानवान बनकर अभिमानवश भक्ति हीन हो जाते हैं, चौथे ज्ञानी। वे साधक जिनको यह ज्ञान हो गया कि मानव शरीर बार-बार नहीं मिलता, इससे प्रभु साधना नहीं की तो जीवन व्यर्थ हो जाएगा। उन्होंने वेदों को पढ़ा, जिनसे ज्ञान हुआ कि (ब्रह्मा-विष्णु-शिवजी) तीनों गुणों व ब्रह्म (क्षर पुरुष) तथा परब्रह्म (अक्षर पुरुष) से ऊपर पूर्ण ब्रह्म की ही भक्ति करनी चाहिए, अन्य प्रभुओं की नहीं। उन*

ज्ञानी उदार आत्माओं को मैं (काल ब्रह्म) अच्छा लगता हूँ तथा मुझे वे इसलिए अच्छे लगते हैं कि वे तीनों गुणों (रजगुण ब्रह्मा, सतगुण विष्णु, तमगुण शिवजी) से ऊपर उठ कर मेरी (ब्रह्म) साधना तो करने लगे जो अन्य देवताओं से अच्छी है परन्तु वेदों में 'ओ३म्' नाम जो केवल ब्रह्म की साधना का मंत्र है। उन ज्ञानी आत्माओं ने उसी को आप ही विचार - विमर्श करके पूर्ण ब्रह्म का मंत्र जान कर वर्षों तक साधना करते रहे। प्रभु प्राप्ति हुई नहीं। अन्य सिद्धियाँ प्राप्त हो गई। क्योंकि पवित्र गीता अध्याय 4 श्लोक 34 तथा पवित्र यजुर्वेद अध्याय 40 मंत्र 10 में वर्णित तत्वदर्शी संत नहीं मिला, जो पूर्ण ब्रह्म की साधना तीन मंत्र से बताता है। इसलिए ज्ञानी भी ब्रह्म (काल) साधना करके जन्म-मृत्यु के चक्र में ही रह गए क्योंकि गीता अध्याय 11 श्लोक 32 में गीता ज्ञान देने वाले ने कहा कि मैं काल हूँ। श्लोक 47-48 में कहा कि यह मेरा वास्तविक रूप है जिसको तेरे अतिरिक्त पहले किसी ने नहीं देखा है। मैंने तेरे पर अनुग्रह करके दर्शन दिए हैं। मेरे इस स्वरूप का दर्शन यानि काल ब्रह्म की प्राप्ति न तो वेदों का अध्ययन करने से, न यज्ञ यानि धार्मिक अनुष्ठान करने से, न दान से, न अन्य आध्यात्मिक क्रियाओं से, न उग्र तपों से हो सकती है यानि मैं देखा नहीं जा सकता हूँ। तेरे अतिरिक्त किसी को किसी भी साधना से मेरे दर्शन नहीं हो सकते। भावार्थ है कि वेदों में वर्णित साधना से परमात्मा प्राप्ति नहीं होती।

यही कारण रहा कि ऋषियों ने वेदों अनुसार सर्व साधना की, परंतु काल ब्रह्म का दर्शन नहीं हुआ क्योंकि गीता ज्ञान दाता ने गीता अध्याय 7 श्लोक 24-25 में स्पष्ट किया है कि मेरा यह अविनाशी अनुत्तम विधान है कि मैं कभी भी किसी के सामने अपने वास्तविक काल रूप में प्रत्यक्ष नहीं होता। प्रमाण आगे पढ़ें :-

उदाहरण :- एक ज्ञानी उदारात्मा महर्षि चुणक जी ने वेदों को पढ़ा तथा एक पूर्ण प्रभु की भक्ति का मंत्र ओ३म् जान कर इसी नाम के जाप से वर्षो तक साधना की। एक मान्धाता चक्रवर्ती राजा था। (चक्रवर्ती राजा उसे कहते हैं जिसका पूरी पथ्वी पर शासन हो।) उसने अपने अन्तर्गत राजाओं को युद्ध के लिए ललकारा, एक घोड़े के गले में पत्र बांध कर सारे राज्य में घुमाया। शर्त थी कि जिसे राजा मान्धाता की गुलामी (आधीनता) स्वीकार नहीं है। वह इस घोड़े को पकड़ कर बांध ले तथा युद्ध के लिए तैयार रहे। किसी ने घोड़ा नहीं पकड़ा। महर्षि चुणक जी को इस बात का पता चला कि राजा बहुत अभिमानी हो गया है। कहा कि मैं इस राजा के युद्ध को स्वीकार करता हूँ युद्ध शुरू हुआ। मान्धाता राजा के पास 72 क्षौणी सेना थी। उसके चार भाग करके एक भाग (18 क्षौणी) सेना से महर्षि चुणक पर आक्रमण कर दिया। दूसरी ओर महर्षि चुणक जी ने अपनी साधना की कमाई से चार पूतलियाँ (आध्यात्मिक बम्ब) बनाई तथा राजा की चारों भाग सेना का विनाश कर दिया।

विशेष :- श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी, श्री शिव जी तथा ब्रह्म व परब्रह्म की भक्ति से पाप तथा पुण्य दोनों का फल भोगना पड़ता है, पुण्य स्वर्ग में तथा पाप नरक में व चौरासी लाख प्राणियों के शरीर में भिन्न-2 यातनाऐं भोगनी पड़ती हैं। जैसे ज्ञानी आत्मा श्री चुणक जी ने जो ओ३म् नाम के जाप की कमाई की उससे कुछ तो सिद्धि शक्ति (चार पुतलियाँ बनाकर) में समाप्त कर दिया जिससे महर्षि कहलाया। कुछ साधना फल को महास्वर्ग में भोग कर फिर नरक में जाएगा तथा फिर चौरासी लाख प्राणियों के शरीर धारण करके कष्ट पर कष्ट सहन करेगा। जो 72 क्षौणी प्राणियों (सैनिकों) का संहार वचन से तैयार की गई पुतलियों से किया था, उसका भोग भी भोगना होगा। चाहे कोई हथियार से हत्या करे, चाहे वचन रूपी तलवार से उन दोनों को समान दण्ड प्रभु

देता है। जब उस महर्षि चुणक जी का जीव कुत्ते के शरीर में होगा उसके सिर में जख्म होगा, उसमें कीड़े बनकर उन सैनिकों के जीव अपना प्रतिशोध लेंगे। कभी टांग टूटेगी, कभी पिछले पैरों से अर्धंग हो कर केवल अगले पैरों से घिसड़ कर चलेगा तथा गर्मी-सर्दी का कष्ट असहनीय पीड़ा नाना प्रकार से भोगनी ही पड़ेगी।

इसलिए पवित्र गीता जी बोलने वाला ब्रह्म (काल) गीता अध्याय 7 श्लोक 18 में स्वयं कह रहा है कि ये सर्व ज्ञानी आत्माऐं हैं तो उदार (नेक)। परन्तु पूर्ण परमात्मा की तीन मंत्र की वास्तविक साधना बताने वाला तत्वदर्शी सन्त न मिलने के कारण ये सब मेरी ही (अनुत्तमाम्) अश्रेष्ठ मुक्ति (गती) की आस में ही आश्रित रहे अर्थात् मेरी साधना भी अश्रेष्ठ है। इसलिए पवित्र गीता जी अध्याय 18 श्लोक 62 में गीता ज्ञान दाता ने कहा है कि हे अर्जुन! तू सर्व भाव से उस पूर्ण परमात्मा की शरण में जा। उस परमेश्वर की ही कपा से ही तू परम शान्ति तथा सनातन परम धाम (सत्यलोक) को प्राप्त होगा। पवित्र गीता जी को श्री कष्ण जी के शरीर में प्रेतवत प्रवेश करके ब्रह्म (काल) ने बोला, फिर कई वर्षो उपरांत पवित्र गीता जी तथा पवित्र चारों वेदों को महर्षि व्यास जी के शरीर में प्रेतवत प्रवेश करके स्वयं ब्रह्म (क्षर पुरुष) द्वारा लिपिबद्ध किए हैं। इनमें परमात्मा कैसा है, कैसे उसकी भक्ति करनी है तथा क्या उपलब्धि होगी, ज्ञान तो पूर्ण है परन्तु सांकेतिक है तथा पूजा की विधि केवल ब्रह्म (क्षर पुरुष) अर्थात् ज्योति निरंजन-काल तक की ही है।

पूर्ण ब्रह्म की भक्ति के लिए पवित्र गीता अध्याय 4 श्लोक 34 में पवित्र गीता बोलने वाले (काल ब्रह्म) प्रभु ने स्वयं कहा है कि पूर्ण परमात्मा की भक्ति व प्राप्ति के लिए किसी तत्वज्ञानी सन्त की खोज कर फिर जैसे वह विधि बताएं वैसे कर। पवित्र गीता जी को बोलने वाले प्रभु ने स्पष्ट किया है कि पूर्ण परमात्मा का पूर्ण ज्ञान व भक्ति विधि मैं नहीं जानता। अपनी साधना के बारे में गीता अध्याय 8 के श्लोक 13 में कहा है कि मेरी भक्ति का तो केवल एक 'ओ३म्' (ओं) अक्षर है जिसका उच्चारण करके अन्तिम स्वांस (त्यजन् देहम्) तक जाप करने से मेरी वाली परमगति को प्राप्त होगा। फिर गीता अध्याय 7 श्लोक 18 में कहा है कि वे उदारात्माऐं मेरे वाली (अनुत्तमाम्) अश्रेष्ठ परमगति में ही आश्रित हैं। गीता अध्याय 15 श्लोक 1 से 4 तक में कहा है कि यह उल्टा लटका हुआ संसार रूपी वक्ष है, जिसकी ऊपर को मूल (जड़ें) तो पूर्ण ब्रह्म यानि परम अक्षर ब्रह्म अर्थात् आदि पुरुष परमेश्वर है तथा नीचे को तीनों गुण (रजगुण-ब्रह्मा जी, सतगुण-विष्णु जी, तमगुण-शिव जी) रूपी शाखाऐं हैं। इस सष्टि रचना के पूर्ण ज्ञान को (श्री कष्ण जी के शरीर में प्रेतवत प्रवेश ब्रह्म कह रहा है कि) मैं नहीं जानता। इसलिए यहाँ विचार काल में अर्थात् इस गीता संवाद में मुझे पूर्ण जानकारी नहीं है। जो संत उपरोक्त संसार रूपी वक्ष अर्थात् सष्टि की रचना के विषय का पूर्ण ज्ञानी होगा, वह मूल, तना, डार तथा टहनियों का भिन्न-भिन्न वर्णन करेगा वह (वेदवित्) तत्वदर्शी है। फिर उस पूर्ण ज्ञानी (तत्वदर्शी) सन्त से उपदेश लेकर उस परम पद परमेश्वर को भली प्रकार खोजना चाहिए। जहाँ जाने के उपरान्त जन्म-मत्यु कभी नहीं होती अर्थात् अनादि मोक्ष प्राप्त होता है। इसलिए दढ़ विश्वास के साथ उसी पूर्ण परमात्मा (सतपुरुष) का ही सुमरण करना चाहिए।

पवित्र गीता अध्याय 4 श्लोक 5 में गीता बोलने वाला प्रभु (ब्रह्म) ने कहा है कि हे अर्जुन! मेरे तथा तेरे बहुत से जन्म हो चुके हैं। गीता अध्याय 2 श्लोक 12 में यही प्रमाण है कहा है कि हे अर्जुन! तू मैं तथा यह सर्व सैनिक पहले भी जन्में थे, आगे भी जन्मेंगें। अध्याय 10 श्लोक 2 में कहा है कि मेरी उत्पत्ति को न ऋषिजन जानते हैं, न देवता क्योंकि इन सबकी उत्पत्ति मेरे से हुई है। {इससे

स्पष्ट है कि ब्रह्म भी नाशवान प्रभु (क्षर पुरुष) है।} इसलिए गीता अ. 15 श्लोक 16-17 में तीन प्रभुओं की भिन्न-भिन्न व्याख्या है - दो प्रभु, क्षर पुरुष (नाशवान भगवान - ब्रह्म) तथा अक्षर पुरुष (अक्षर ब्रह्म) हैं, परन्तु वास्तव में अविनाशी तो इन दोनों से अन्य प्रभु है जो वास्तव में अविनाशी परमात्मा परमेश्वर कहलाता है। जैसे एक मिट्टी का सफेद प्याला जो बिल्कुल अस्थाई है, ऐसे ब्रह्म(क्षर पुरुष) तथा इसके इक्कीस ब्रह्मण्डों के प्राणी नाशवान हैं। दूसरा प्याला इस्पात (स्टील) का है। इस्पात को भी जंग लगता है और विनाश हो जाता है। सफेद मिट्टी के प्याले की तुलना में इस्पात का प्याला अधिक स्थाई परन्तु है नाशवान। इसलिए इतना अविनाशी इस्पात (स्टील) का प्याला है ऐसे अक्षर पुरुष (परब्रह्म) तथा इसके सात संख ब्रह्मण्डों के प्राणी अविनाशी जैसे लगते हुए भी नाशवान हैं अर्थात् वास्तव में अविनाशी नहीं हैं। तीसरा प्याला सोने (गोल्ड) का है जो वास्तव में अविनाशी धातु से बना है। जिसका अस्तित्व समाप्त नहीं होता। ऐसे पूर्ण ब्रह्म (परम अक्षर पुरुष) तथा उसके असंख ब्रह्मण्डों में रहने वाले हंसात्माऐं (देवा) वास्तव में अविनाशी हैं तथा वही तीनों लोकों में प्रवेश करके सर्व का पालन-पोषण करता है। कविर्देव अर्थात् कबीर प्रभु ने अपने द्वारा रची संष्टि को स्वयं बताया है।

कबीर अक्षर पुरुष एक पेड़ है, ज्योति निरंजन वाकी डार। तीनों देवा शाखा हैं, पात रूप संसार।।

कबीर हम ही अलख अल्लाह हैं, मूल रूप करतार। अनन्त कोटि ब्रह्मण्ड का, मैं ही सिरजनहार।।

अक्षर पुरुष (परब्रह्म) तो उलटे लटके पेड़ का तना है तथा मोटी डार ज्योति निरंजन (क्षर पुरुष-ब्रह्म) है तथा उस डार से आगे तीनों शाखाऐं तीनों गुण (रजगुण-ब्रह्मा जी, सतगुण-विष्णु जी, तमगुण-शिव जी) हैं। परन्तु मूल (जड़) पूर्ण पुरुष (परम अक्षर ब्रह्म, सतपुरुष) है। पेड़ को जड़ (मूल) से अर्थात् पूर्ण ब्रह्म से आहार प्राप्त होता है। इसलिए कुल का पालनहार वही परम अक्षर ब्रह्म है जिसका प्रमाण गीता अ. 8 के श्लोक 1 व 3 में दिया है। अर्जुन ने पूछा - हे प्रभु! वह तत् ब्रह्म कौन है, जिसके विषय में आपने गीता अ. 7 श्लोक 29 में कहा है कि तत्ब्रह्म (उस पूर्ण परमात्मा) को तथा पूरे अध्यात्म ज्ञान (तत्वज्ञान) को जानने के बाद तो साधक जरा-मरण से छूटने का ही प्रयत्न करता है। पवित्र गीता बोलने वाले (ब्रह्म) ने गीता अध्याय 8 श्लोक 3 में उत्तर दिया कि वह परम अक्षर ब्रह्म (पूर्ण ब्रह्म) है। गीता अ. 8 श्लोक 6, में कहा है कि यह विधान है कि अन्त समय में जो साधक जिस भी प्रभु (ब्रह्म, परब्रह्म, पूर्णब्रह्म) का स्मरण करता हुआ प्राण त्याग कर जाता है तो उसी को प्राप्त होता है।

प्रश्न :- आपने गीता अध्याय 7 श्लोक 18 के अनुवाद में अर्थ का अनर्थ किया है ''अनुत्तमाम्'' का अर्थ अश्रेष्ठ किया है। जब कि समास में अनुत्तम का अर्थ अति उत्तम होता है जिस से उत्तम कोई और न हो उस के विषय में समास में अनुत्तम का अर्थ अति उत्तम होता है। अन्य गीता अनुवाद कर्त्ताओं ने सही अर्थ किया है अनुत्तम का अर्थ अति उत्तम किया है।

उत्तर :- मैं आपकी इस बात को सत्य मानकर आपसे प्रार्थना करता हूँ कि ''गीता ज्ञान दाता अपनी साधना के विषय में गीता अध्याय 7 श्लोक 16 से 18 में बता रहे हैं। गीता अध्याय 7 श्लोक 18 में अपनी साधना व गति को अनुत्तम कह रहे हैं जिसका भावार्थ आपके समास के अनुसार हुआ कि गीता ज्ञानदाता की गति से उत्तम अन्य कोई गति नहीं अर्थात् मोक्ष लाभ नहीं।

गीता ज्ञान दाता स्वयं गीता अध्याय 18 श्लोक 62 व अध्याय 15 श्लोक 4 में किसी अन्य परमेश्वर की शरण में जाने को कह रहे हैं। उसी की कंपा से परम शान्ति व शाश्वत स्थान सदा रहने वाला मोक्ष स्थल अर्थात् सत्यलोक प्राप्त होगा। अपने विषय में भी कहा है कि मैं भी

जन्मता-मरता हूँ, अविनाशी परमात्मा कोई अन्य है। उसी पूर्ण परमात्मा की भक्ति करनी चाहिए तथा कहा है कि उस परमेश्वर के परमपद (सत्यलोक) को प्राप्त करना चाहिए जहाँ जाने के पश्चात् साधक लौटकर इस संसार में कभी नहीं आते अर्थात् उनका जन्म मृत्यु सदा के लिए समाप्त हो जाता है।

❖ *अपने से अन्य परमात्मा के विषय में गीता अध्याय 18 श्लोक 46,61-62,64,66 अध्याय 15 श्लोक 4,16-17, अध्याय 13 श्लोक 12 से 17, 22 से 24, 27-28,30-31,34 अध्याय 5 श्लोक 6-10,13 से 21 तथा 24-25-26 अध्याय 6 श्लोक 7,19,20,25,26-27 अध्याय 4 श्लोक 31-32, अध्याय 8 श्लोक 3,8 से 10, 20 से 22, अध्याय 7 श्लोक 19 तथा 29, अध्याय 14 श्लोक 19 आदि-2 श्लोकों में कहा है। इससे सिद्ध हुआ कि गीता ज्ञान दाता से श्रेष्ठ अर्थात् उत्तम परमात्मा तो अन्य है जैसे गीता अध्याय 15 श्लोक 17 में गीता ज्ञान दाता ने कहा है कि उत्तम पुरूषः तु अन्यः जिसका अर्थ है उत्तम परमात्मा तो अन्य ही है। इसलिए उस उत्तम पुरूष अर्थात् सर्वश्रेष्ठ परमात्मा की गति अर्थात् उस से मिलने वाला मोक्ष भी अति उत्तम हुआ। इस से यह भी सिद्ध हुआ कि उस परमेश्वर अर्थात् पूर्ण परमात्मा की गति गीता ज्ञान दाता वाली गति से उत्तम हुई। इसलिए गीता ज्ञान दाता वाली गति सर्व श्रेष्ठ नहीं है। अर्थात् जिस से श्रेष्ठ कोई न हो क्योंकि जब गीता ज्ञान दाता से श्रेष्ठ कोई और परमेश्वर है तो उस की गति भी गीता ज्ञान दाता से श्रेष्ठ है। इससे सिद्ध हुआ कि गीता अध्याय 7 श्लोक 18 में अनुत्तम का अर्थ अश्रेष्ठ ही उचित है। अन्य गीता अनुवाद कर्त्ताओं ने अर्थ का अनर्थ किया है। जो अनुत्तम का अर्थ अति उत्तम कहा तथा किया है।*

❖ *गीता अध्याय 7 श्लोक 19 का सारांश : इस मंत्र में ब्रह्म (काल) कह रहा है कि मेरी साधना भी भाग्यवान व्यक्ति अनेक जन्मों के बाद कोई-कोई ही करता है, नहीं तो नीचे के श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी, श्री शिव जी तथा अन्य देवताओं, भूतों व पितरों तक की भक्ति से ऊपर बुद्धि नहीं उठती। परन्तु यह बताने वाला संत बहुत दुर्लभ है कि वासुदेव यानि पूर्ण परमात्मा ही पूजा के योग्य है। वह सर्व सृष्टि रचनहार है। वही सर्व का धारण-पोषण करने वाला सर्वशक्तिमान है, वही वास्तव में वासुदेव है। वासुदेव का अर्थ है सर्व का मालिक। जैसे श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी, श्री शिव जी एक ब्रह्मण्ड में एक-एक विभाग के मंत्री(प्रभु) हैं। रजोगुण विभाग के श्री ब्रह्मा जी, सतोगुण विभाग के श्री विष्णु जी तथा तमोगुण विभाग के श्री शिव जी, सर्व के मालिक अर्थात् वासुदेव नहीं हैं। ब्रह्म इक्कीस ब्रह्मण्ड में मुख्य मंत्री (स्वामी) जानो जो काल के आधीन हैं, सर्व का मालिक अर्थात् वासुदेव नहीं है। ऐसे - ऐसे सात संख ब्रह्मण्ड परब्रह्म (अक्षर पुरुष) के हैं, यह केवल सात संख ब्रह्मण्ड का मालिक है। सर्व का मालिक अर्थात् वासुदेव नहीं है तथा असंख ब्रह्मण्ड पूर्णब्रह्म (परम अक्षर ब्रह्म/सतपुरुष) के हैं। वह सर्व प्रभुओं का प्रभु यानि परमेश्वर है। वास्तव में सर्व का मालिक अर्थात् वासुदेव पूर्णब्रह्म है। जैसे उलटे लटके वृक्ष की जड़ (पूर्णब्रह्म) है जिससे सर्व तना (अक्षर पुरुष) डार (काल-ब्रह्म) शाखा (तीनों रजगुण-ब्रह्मा, सतगुण-विष्णु, तमगुण-शिवजी) को भोजन मिलता है। इसलिए सर्व का पालन कर्त्ता भी पूर्ण ब्रह्म ही हुआ। यह व्याख्या करने वाला संत तो सुदुर्लभ है। उसके मिलने से ही पूर्ण मोक्ष होगा, अन्यथा काल जाल में ही प्राणी फंसे रहेंगे।*

गीता अध्याय 7 श्लोक 20-23 का सारांश :-

।। अन्य देवताओं (रजगुण ब्रह्मा जी, सतगुण विष्णु जी, तमगुण शिव जी) की पूजा बुद्धिहीन ही करते हैं।।

विशेष :- गीता के अध्याय 7 के श्लोक नं. 20-23 का संबंध इसी अध्याय के श्लोक नं. 12-15 से है। अध्याय 7 के श्लोक 20 में कहा है कि जिसका सम्बन्ध अध्याय 7 के श्लोक 15 से लगातार है - श्लोक 15 में कहा है कि त्रिगुण माया (जो रजगुण ब्रह्मा जी, सतगुण विष्णु जी, तमगुण शिव जी की पूजा तक सीमित हैं तथा इन्हीं से प्राप्त क्षणिक सुख) के द्वारा जिनका ज्ञान हरा जा चुका है ऐसे असुर स्वभाव को धारण किए हुए नीच व्यक्ति दुष्कर्म करने वाले मूर्ख मुझे नहीं भजते। अध्याय 7 के श्लोक 20 में उन-उन भोगों की कामना के कारण जिनका ज्ञान हरा जा चुका है। वे अपने स्वभाववश प्रेरित होकर अज्ञान आश्रित अन्य देवताओं को पूजते हैं। अध्याय 7 के श्लोक 21 में कहा है कि जो-जो भक्त जिस-जिस देवता के स्वरूप को श्रद्धा से पूजना चाहता है उस-उस भक्त की श्रद्धा को मैं उसी देवता के प्रति स्थिर करता हूँ।

अध्याय 7 के श्लोक 22 में कहा है कि वह जिस श्रद्धा से युक्त हो कर जिस देवता का पूजन करता है। उस देवता से मेरे द्वारा ही विधान किए हुए कुछ इच्छित भोगों को प्राप्त करते हैं। जैसे मुख्य मन्त्री कहे कि नीचे के अधिकारी मेरे ही नौकर हैं। मैंनें उनको कुछ अधिकार दे रखे हैं जो उनके (अधिकारियों के) ही आश्रित हैं वह लाभ भी मेरे द्वारा ही दिया जाता है, परंतु पूर्ण लाभ नहीं है। अध्याय 7 के श्लोक 23 में वर्णन है कि परंतु उन मंद बुद्धि वालों का वह फल नाशवान होता है। देवताओं को पूजने वाले देवताओं को प्राप्त होते हैं। मेरे भक्त मुझको प्राप्त होते हैं अर्थात् काल के जाल से कोई बाहर नहीं है।

विशेष : अध्याय 7 के श्लोक 20 से 23 तक का सम्बन्ध इसी अध्याय 7 श्लोक 12 से 15 से लगातार है। इन 20 से 23 में कहा है कि वे जो भी साधना किसी भी पित्र, भूत, देवी-देवता आदि की पूजा स्वभाव वश करते हैं। मैं (ब्रह्म-काल) ही उन मन्द बुद्धि लोगों (भक्तों) को उसी देवता के प्रति आसक्त करता हूँ। वे मूर्ख साधक देवताओं से जो लाभ पाते हैं, मैंने (काल ने) ही देवताओं को कुछ शक्ति दे रखी है। उसी के आधार पर उनके (देवताओं के) पूजारी देवताओं को प्राप्त हो जाएंगे। परंतु उन बुद्धिहीन साधकों की वह पूजा चौरासी लाख योनियों में शीघ्र ले जाने वाली है तथा जो मुझे (काल को) भजते हैं, वे मुझे प्राप्त होते हैं यानि मेरे ब्रह्म लोकों में चले जाते हैं जिसे महास्वर्ग कहा जाता है। गीता अध्याय 8 श्लोक 16 में कहा है कि ब्रह्मलोक तक गए सबका पुनर्जन्म होता है।

भले ही महास्वर्ग में गए साधक का स्वर्ग समय एक कल्प होता है, परन्तु स्वर्ग तथा महास्वर्ग में शुभ कर्मों का मोक्ष का सुख भोगकर पुनः जन्म-मरण, नरक तथा अन्य प्राणियों के शरीर में भी कष्ट बना रहेगा, पूर्ण मोक्ष नहीं अर्थात् काल जाल से मुक्ति नहीं। श्री विष्णु पुराण में पृष्ठ 51, प्रथम अंश-अध्याय 12 श्लोक 93 में लिखा है कि ध्रुव का मोक्ष समय एक कल्प है।

❖ *एक कल्प का समय ब्रह्मा जी का एक दिन यानि एक हजार आठ चतुर्युग है। एक चतुर्युग में तिरतालिस लाख बीस हजार (43,20,000) मानव वर्ष होते हैं। गणित की रीति से 1008 चतुर्युग में चार अरब पैंतीस करोड़ पैंतीस लाख साठ हजार (4,35,35,60,000) वर्ष हैं। ध्रुव का इसके पश्चात् जन्म-मरण का क्रम शुरू हो जाएगा।*

।। ज्योति निरंजन (काल) कभी स्थूल शरीर आकार में सर्व के समक्ष नहीं आता ।।

अध्याय 7 के श्लोक 24 में ब्रह्म कह रहा है कि मूर्ख मेरे अति गन्दे अटल भाव (कालरूप) को नहीं जानते। मुझ (अव्यक्त) अदृश्यमान अर्थात् योग माया से छिपे हुए को (व्यक्त) श्री कृष्ण रूप में प्रकट हुआ मानते हैं अर्थात् मैं श्री कृष्ण नहीं हूँ। अनुत्तम अविनाशी भाव को नहीं जानते का तात्पर्य है कि मेरा काल भाव जीवों को खाना, गधे, कुत्ते, सूअर आदि बनाना, नाना प्रकार से कष्ट पर कष्ट देना तथा पुण्यों के आधार पर स्वर्ग देना तथा काल ने प्रतिज्ञा की है कि मैं कभी भी अपने वास्तविक काल रूप में सर्व के समक्ष प्रकट नहीं होऊँगा। यह मेरा कभी समाप्त न होने वाला (अविनाशी) भाव है। मैं आकार में श्री कृष्ण जी, श्री रामचन्द्र जी के रूप में कभी नहीं आता। यह मेरा घटिया अटल अविनाशी नियम है। यह तो माया के द्वारा बने शरीर के भगवान आते हैं जो मेरे द्वारा ही भेजे जाते हैं और मैं (काल) उनमें प्रवेश करके अपना सर्व कार्य करता रहता हूँ।

गरीब, अनन्त कोटि अवतार हैं, माया के गोविंद। कर्त्ता हो–हो कर अवतरे, बहुर पड़े जम फन्द।।

❖ भावार्थ :- काल द्वारा माया यानि दुर्गा से उत्पन्न श्री विष्णु, श्री ब्रह्मा तथा शिव जी रूपी गोविंद यानि प्रभु असँख्यों अवतार रूप में जन्म ले चुके हैं। पृथ्वी ऊपर भोले जीव उनको सर्व के कर्ता मानते हैं। परंतु वे अपना अवतार समय पूरा करके कर्मों के अनुसार जन्म-मरण चक्र में बँधकर जन्मते-मरते हैं।

अध्याय 7 के श्लोक 25 में गीता ज्ञान दाता (काल ब्रह्म) ने कहा है कि मैं अपनी (योगमाया) सिद्धि शक्ति से छुपा रहता हूँ अर्थात् अपने इक्कीसवें ब्रह्मण्ड में सर्वोपरि निज स्थान पर रहता हूँ। इसलिए दृश्यमान नहीं हूँ। इसलिए कहा है कि मैं कभी भी जन्म नहीं लेता अर्थात् स्थूल शरीर में श्री कृष्ण जी की तरह माता से जन्म नहीं लेता। इस अविनाशी (अटल) नियम को यह मूर्ख संसार नहीं जानता अर्थात् यह मूर्ख प्राणी समुदाय मुझे कृष्ण मान रहा है, मैं कृष्ण नहीं हूँ तथा मैं अपनी योग माया से छिपा रहता हूँ। इससे स्पष्ट है कि काल ही श्री कृष्ण जी के शरीर में प्रवेश करके बोल रहा है। नहीं तो कृष्ण जी तो आकार में अर्जुन के समक्ष ही थे। श्री कृष्ण जी का यह कहना उचित नहीं होता कि मैं आकार में नहीं आता, श्री कृष्ण आदि की तरह दुर्गा (प्रकृति) के गर्भ से जन्म नहीं लेता। क्योंकि दुर्गा तो ब्रह्म की पत्नी है। काल अपनी शब्द शक्ति से अपने नाना रूप (महाब्रह्मा, महाविष्णु तथा महाशिव आदि) बना लेता है। फिर निर्धारित समय पर उस शरीर को त्याग देता है। इस प्रकार के जन्म व मृत्यु होती है। इसीलिए पवित्र गीता अध्याय 4 श्लोक 5 तथा गीता अध्याय 2 श्लोक 12 में कहा है कि मेरे तथा तेरे बहुत जन्म हो चुके हैं, तू नहीं जानता, मैं जानता हूँ। ऐसा नहीं है कि मैं तथा तू तथा ये सैनिक पहले नहीं थे या आगे नहीं रहेंगे। गीता अध्याय 10 श्लोक 2 में कहा है कि मेरी उत्पत्ति (जन्म) को देवता तथा ऋषिजन भी नहीं जानते क्योंकि ये सर्व मेरे से उत्पन्न हुए हैं।

गीता अध्याय 4 श्लोक 9 में कहा है कि मेरे जन्म और कर्म अलौकिक हैं। उपरोक्त प्रमाणों से सिद्ध हुआ कि ब्रह्म की भी उत्पत्ति हुई है। उसको तो पूर्ण परमात्मा ही बताता है क्योंकि पूर्ण ब्रह्म (सतपुरुष) कविर्देव की शब्द शक्ति से अण्डे से काल (ब्रह्म) की उत्पत्ति हुई है, यही प्रमाण पवित्र गीता अध्याय 3 श्लोक 14-15 में भी है कि ब्रह्म की उत्पत्ति अविनाशी परमात्मा से हुई जो काल ब्रह्म का जनक है। उसने काल ब्रह्म की उत्पत्ति बताई है। जैसे पिता की उत्पत्ति बच्चे नहीं जानते, परंतु दादा जी (पिता का पिता) ही बता सकता है। यहाँ यह संकेत है कि ब्रह्म कह रहा है कि मेरी

उत्पत्ति भी है, परन्तु मेरे से उत्पन्न देवता (ब्रह्मा-विष्णु - शिव) भी नहीं जानते।

विशेष :- व्यक्त का भावार्थ है कि प्रत्यक्ष दिखाई देना अर्थात् साक्षात्कार होना। अव्यक्त का भावार्थ होता है कि कोई वस्तु है परन्तु अदृश्य है। जैसे आकाश में बादल छा जाते हैं तो सूर्य अव्यक्त (अदृश) हो जाता है। परन्तु बादलों के पार विद्यमान है। ऐसे सर्व प्रभु मानव सदृश शरीर में विद्यमान हैं। परन्तु हमारी दृष्टि से परे हैं। इसलिए अव्यक्त कहे जाते हैं। एक अव्यक्त तो गीता ज्ञान दाता है जो गीता अध्याय 7 श्लोक 24-25 में प्रमाण है यह ब्रह्म अर्थात् क्षर पुरूष अव्यक्त हुआ। दूसरा अव्यक्त गीता अध्याय 8 श्लोक 18 में कहा है कि सर्व संसार दिन में अव्यक्त से उत्पन्न होता है यह परब्रह्म अर्थात् अक्षर पुरूष अव्यक्त हुआ। तीसरा अव्यक्त गीता अध्याय 8 श्लोक 20-22 में कहा है कि उस (श्लोक 18 में वर्णित) अव्यक्त से दूसरा अव्यक्त कभी नष्ट नहीं होता। यह परम अक्षर ब्रह्म अर्थात् पूर्ण ब्रह्म हुआ। इस प्रकार तीनों परमात्मा साकार है परन्तु जीव की दृष्टि से परे हैं इसलिए अव्यक्त कहलाते हैं।

❖ गीता अध्याय 7 श्लोक 26 से 29 का सारांश :-

अध्याय 7 के श्लोक 26 से 28 तक इन श्लोकों में गीता ज्ञान दाता भगवान कह रहा है कि मैं (ब्रह्म) भूत-भविष्य तथा वर्तमान में सर्व प्राणियों (जो मेरे इक्कीस ब्रह्मण्डों में मेरे आधीन हैं)की स्थिति से परीचित हूँ कि किसका जन्म किस योनी में होगा। परंतु मुझे कोई नहीं जान सकता। सब संसार राग, द्वेष, मोह से दुःखी है तथा अज्ञानी हो चुका है। जिनके राग-द्वेष व मोह दूर हो गया वे पाप रहित प्राणी ही मेरा भजन कर सकते हैं अन्यथा नहीं। विचार करें : राग द्वेष व मोह और पाप रहित प्राणी ही प्रभु चिन्तन कर सकते हैं, अन्य नहीं। पाप रहित का भाव है कि जिनका संश्य मिट गया कि देवी-देवताओं और ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा माता की पूजा से तो ब्रह्म (काल) साधना अधिक लाभदायक है। फिर वह साधक निष्कपट (पाप रहित) भाव से भगवन चिंतन करता है। जो साधना पवित्र वेदों व पवित्र गीता में वर्णित है उससे साधक तीन लोक व इक्कीस ब्रह्मण्ड (काल लोक) में विकारों से रहित हो ही नहीं सकता। फिर आम भक्त कैसे पाप या कर्म मुक्त हो सकता है? राग-द्वेष, मोह आदि से भगवान विष्णु भी नहीं बचे, न ब्रह्मा जी न शिव जी। फिर आम व्यक्ति कैसे उम्मीद रख सकता है? यहाँ मुझ दास (रामपाल दास) अर्थात् अनुवाद कर्त्ता के कहने का भाव यह है कि वेदों व गीता में वर्णित भक्ति विधि से साधक पाप मुक्त नहीं होता अपितु ''जैसा कर्म वैसा भोग'' वाला सिद्धान्त ही प्राप्त होता है। जैसे भगवान विष्णु अवतार श्री रामचन्द्र जी ने बाली को धोखे से मारा था। उसका बदला श्री कृष्ण रूप में देना पड़ा। पापनाशक परमात्मा पूर्ण ब्रह्म है वह विधि पांचवें वेद में अर्थात् स्वसम (सूक्ष्म) वेद में लिखी है। इसलिए तत्वदर्शी सन्त ही उस पाप नाशक साधना को बताता है जिससे साधक पाप रहित होकर पूर्ण मोक्ष प्राप्त करता है।

❖ श्लोक 26 :- इस श्लोक में गीता ज्ञान दाता ने कहा है कि मैं भूत-भविष्य की घटनाओं को जानता हूँ, परंतु मैं कभी किसी के सामने प्रत्यक्ष नहीं होता। जिस कारण से मुझ काल को कोई नहीं जानता।(7/26)

❖ श्लोक 27 :- तत्वज्ञान के अभाव से सम्पूर्ण प्राणी अज्ञान के कारण संसार में इच्छा और द्वेष करके सुख-दुःख को प्राप्त हो रहे हैं। वे ब्रह्म काल यानि गीता ज्ञान दाता तथा अन्य देवी-देवताओं की भक्ति करके भी कर्मों के फल अनुसार सुख-दुःख, जरा-मरण के चक्र में पड़े हैं।(7/27)

❖ श्लोक 28 :- परंतु जो पूर्व संस्कार के प्रभाव से पुण्य कर्म करने वाले पाप करने से बचकर राग-द्वेष जनित द्वन्द्व रूप मोह से मुक्त है, दृढ़ निश्चयी मुझको भजते हैं।(7/28)

।। काल के जाल से कौन छूटते हैं?।।

अध्याय 7 के श्लोक 29 का भावार्थ है कि काल ब्रह्म ने कहा है कि जो मेरे ज्ञान का आश्रय लेकर तत्वदर्शी संत की खोज कर तत्वज्ञान से परिचित हैं जो जरा यानि वद्धावस्था तथा मरण यानि मत्यु के कष्ट से मोक्ष (छुटकारा) प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील यानि भक्ति में लगे हैं। वे तत् ब्रह्म को, सम्पूर्ण अध्यात्म को तथा सम्पूर्ण कर्मों को जानते हैं।(7/29)

गीता अध्याय 7 श्लोक 30 :- इस श्लोक का भावार्थ है कि जिनको तत्वज्ञानी संत नहीं मिला, वे मुझे ही अधिभूत यानि सर्व प्राणियों का अधीक्षक यानि मालिक से अधिदैवम् यानि सर्व देवों अर्थात् प्रभुओं का अधीक्षक तथा साधियज्ञम् यानि सर्व यज्ञों अर्थात् सर्व धार्मिक अनुष्ठानों का अधीक्षक (यज्ञों में प्रतिष्ठित) मुझे ही जानते हैं। वे भक्ति में लगे (युक्त चतसा) मत्यु समय भी मुझे ही सर्वेसवा जानते हैं। वे मेरे को ही प्राप्त होते हैं यानि काल जाल में ही रह जाते हैं।(7/30)

पूर्ण ब्रह्म परमात्मा जो यज्ञों में प्रतिष्ठित (अधियज्ञ) है। अध्याय 3 के श्लोक 14,15 में पूर्ण विवरण है।

शंका-प्रभु प्रेमी पाठकों के मन में शंका उत्पन्न होगी कि जब ब्रह्म (काल) अपनी साधना को भी (अनुत्तमाम्) अति अश्रेष्ठ कह रहे हैं (गीता अध्याय 7 श्लोक 18) तो फिर अपनी साधना करने को क्यों कह रहे हैं तथा तीनों गुणों (रजगुण ब्रह्मा, सतगुण विष्णु, तमगुण शिव) की भक्ति करने वालों को हेय किसलिए कहा है? (गीता अध्याय 7 श्लोक 12 से 15)

शंका समाधान :- शास्त्र अनुकूल भक्ति पवित्र वेदों व पवित्र गीता जी में वर्णित विधि (ओ3म् नाम का जाप उच्चारण करके स्मरण करने व धर्म, ध्यान, प्रणाम, हवन, ज्ञान ये पाँचों यज्ञ करने) से प्रारम्भ होती है। उससे ब्रह्मलोक में बने महास्वर्ग में एक कल्प या महाकल्प तक मोक्ष सुख प्राप्त होता है, परन्तु पाप कर्मों के दण्ड आधार से नरक तथा फिर चौरासी लाख प्रकार के प्राणियों के शरीर में कष्ट भी उठाना ही पड़ेगा। एक मानव शरीर फिर प्राप्त होगा। वे पुण्यात्माऐं जब मानव शरीर में होंगी और उन्हें कोई तत्वदर्शी संत पूर्ण परमात्मा (सतपुरुष) का ज्ञान बताएगा तो वे शीघ्र ही उस साधना पर लग जाती हैं, क्योंकि उनमें पिछले भक्ति संस्कार विद्यमान होते हैं तथा सत्य साधना करके पूर्ण मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं। अन्य देवताओं की पूजा से मोक्ष समय बहुत कम तथा नरक समय अधिक होता है तथा चौरासी लाख योनियों का कष्ट भी अधिक समय तक होता है। जैसे एक प्रकार के प्राणी (कुत्ते) के जन्म ही लगातार 20 हो जाऐं, फिर दूसरे प्राणी के भी अधिक होने के कारण अधिक कष्ट उठाते हैं। परन्तु मर्यादावत् ब्रह्म (काल) साधना करने वालों के प्रत्येक योनी के संस्कार वश कम जन्म होते हैं तथा चौरासी लाख प्रकार के प्राणियों का शीघ्र-शीघ्र भोगा जाता है। जैसे कुत्ते की मत्यु 10 वर्ष में होती है, एक माता के गर्भ से बाहर आते ही मर जाता है। जैसे ऋषि सुखदेव जी का जीव मादा तोते के अण्डे में ही था, अण्डा खराब हो कर छूटकारा हो गया,नहीं तो तोतेकी आयु मनुष्य से भी अधिक होती है। इस प्रकार कष्टमय शरीरों से शीघ्र छुटकारा हो जाता है।

अन्य देवताओं के साधकों को जब कभी मानव शरीर प्राप्त होता है तो वे फिर अपने पिछले संस्कार स्वभाववश उन्हीं तीनों गुणों (रजगुण ब्रह्मा, सतगुण विष्णु, तमगुण शिव आदि अन्य देवताओं) की तथा भूत-भैरवों व पितरों की ही पूजा करते हैं, कहने से भी नहीं मानते। जो साधक शास्त्र अनुकूल साधना पिछले जन्म में करते थे उनमें दो प्रकार के बताए हैं, एक तो ब्रह्म साधक

जो ओ३म् नाम मंत्र जाप व पाँचों यज्ञ किया करते थे, वे तो महास्वर्ग, नरक व अन्य प्राणियों के शरीर में कष्ट उठाते रहते हैं। उनके मानव जन्म भी लगातार एक से अधिक भी हो सकते हैं। यदि उन सर्व मानव जन्मों में भी पूर्ण (तत्वदर्शी) संत नहीं मिला फिर उपरोक्त सर्व स्थितियों से गुजरना पड़ता है। परन्तु सत्य साधना पर शीघ्र लग जाते हैं। दूसरी प्रकार के शास्त्र विधि अनुसार साधना करने वाले वे साधक हैं जो कभी किसी युग में पूर्ण परमात्मा की साधना पूर्ण संत (तत्वदर्शी संत) से प्राप्त करके किया करते थे। परन्तु मुक्त नहीं हो पाए। वे साधक एक ब्रह्मण्ड में बने सतगुरु कबीर लोक में चले जाते हैं। जहाँ पर उन साधकों की अपनी भक्ति कमाई समाप्त नहीं होती, क्योंकि परमपिता का भण्डारा मुफ्त (निःशुल्क) चलता रहता है। वहाँ अन्य कोई नहीं जा सकता। फिर उन साधकों को पूर्ण परमात्मा पुनर् मानव जन्म उस समय प्रदान करता है जब कोई (तत्वदर्शी) संत पूर्ण साधना बताने वाला आने वाला होता है। उस समय वे साधक उस सत्य साधना बताने वाले पूर्ण संत की वाणी पर (प्रवचनों पर) शीघ्र विश्वास कर लेते हैं तथा भक्ति प्रारम्भ कर देते हैं। उन्हीं में से कुछ आत्माऐं नकली सतलोक साधना का मिलता-जुलता ज्ञान बताने वाले नकली संतों को पूर्ण संत मान कर उसी पर आधारित हो जाती हैं तथा फिर कुऐं के मेंढक बन कर उसी ज्ञान को सुनते रहते हैं। सत्यज्ञान को सुन कर आँखों देखकर भी नहीं मानते दूसरी प्रकार के शास्त्र अनुकूल साधक जो किसी युग में सतनाम जाप वाली साधना किए हुए हैं वे पिछले शास्त्र अनुकूल साधक भी काल जाल में ही रह जाते हैं। यदि वे तत्वज्ञान को ध्यान से सुन व पढ़ लेंगे तो तुरन्त पूर्ण संत (तत्वदर्शी संत) की शरण में आ जाते हैं। जो पूर्ण संत की शरण में नहीं आते वे पिछले सत्यभक्ति साधना की कमाई अनुसार अनेकों मानव शरीर प्राप्त करते रहते हैं तथा पूर्ण संत के अभाव से फिर चौरासी लाख प्राणियों के शरीरों व नरक-स्वर्ग के चक्र में फंस जाते हैं।

विशेष :- अर्जुन को अध्याय 7 श्लोक 29 में शंका हुई कि ''तत् ब्रह्म'' तो गीता ज्ञान से अन्य है। उसकी जानकारी के लिए अगले अध्याय 8 के प्रथम श्लोक में ही प्रश्न किया है। आगे पढ़ें अध्याय में गीता ज्ञान दाता तथा तत् ब्रह्म यानि परम अक्षर ब्रह्म की भिन्न-भिन्न जानकारी :-

❑❑❑

।।सातवें अध्याय के अनुवाद सहित श्लोक।।

परमात्मने नमः

अथ सप्तमोऽध्यायः

अध्याय 7 का श्लोक 1(भगवान उवाच)

मय्यासक्तमनाः पार्थ योगं युञ्जन्मदाश्रयः।
असंशयं समग्रं मां यथा ज्ञास्यसि तच्छृणु।१।

मयि, आसक्तमनाः, पार्थ, योगम्, यु जन्, मदाश्रयः,
असंशयम्, समग्रम्, माम्, यथा, ज्ञास्यसि, तत्, श्रणु।।1।।

अनुवाद : (पार्थ) हे पार्थ! (मयि,आसक्तमनाः) मुझमें आसक्तचित भावसे (मदाश्रयः) मतके परायण होकर (योगम्) योगमें (यु जन्) लगा हुआ तू (यथा) जिस प्रकारसे (समग्रम्) सम्पूर्ण रूपसे (माम्) मुझको (असंशयम्) संश्यरहित (ज्ञास्यसि) जानेगा (तत्) उसको (श्रणु) सुन। (1)

केवल हिन्दी : हे पार्थ! मुझमें आसक्तचित भाव से मेरे मत के परायण होकर योगमें लगा हुआ तू जिस प्रकारसे सम्पूर्ण रूपसे मुझको संश्यरहित जानेगा उसको सुन। (1)

अध्याय 7 का श्लोक 2

ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः।
यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते।२।

ज्ञानम्, ते, अहम्, सविज्ञानम्, इदम्, वक्ष्यामि, अशेषतः,
यत्, ज्ञात्वा, न, इह, भूयः, अन्यत्, ज्ञातव्यम्, अवशिष्यते।।2।।

अनुवाद : (अहम्) मैं (ते) तेरे लिये (इदम्) इस (सविज्ञानम्) विज्ञानसहित (ज्ञानम्) तत्वज्ञानको (अशेषतः) सम्पूर्णतया (वक्ष्यामि) कहूँगा (यत्) जिसको (ज्ञात्वा) जानकर (इह) संसारमें (भूयः) फिर (अन्यत्) और कुछ भी (ज्ञातव्यम्) जानेनेयोग्य (न,अवशिष्यते) शेष नहीं रह जाता।(2)

केवल हिन्दी : मैं तेरे लिये इस विज्ञानसहित तत्वज्ञानको सम्पूर्णतया कहूँगा जिसको जानकर संसारमें फिर और कुछ भी जानेनेयोग्य शेष नहीं रह जाता। (2)

अध्याय 7 का श्लोक 3

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः।३।

मनुष्याणाम्, सहस्त्रेषु, कश्चित्, यतति, सिद्धये,
यतताम्, अपि, सिद्धानाम्, कश्चित्, माम्, वेत्ति, तत्त्वतः।।3।।

अनुवाद : (सहस्त्रेषु) हजारों (मनुष्याणाम्) मनुष्योंमें (कश्चित्) कोई एक (सिद्धये) प्रभु प्राप्तिके लिये (यतति) यत्न करता है (यतताम्) यत्न करनेवाले (सिद्धानाम्) योगियोंमें (अपि) भी (कश्चित्) कोई एक (माम्) मुझको (तत्त्वतः) तत्वसे अर्थात् यथार्थरूपसे (वेत्ति) जानता है। (3)

केवल हिन्दी : हजारों मनुष्यों में कोई एक प्रभु प्राप्ति के लिये यत्न करता है। यत्न करने वाले योगियों में भी कोई एक मुझको तत्व से अर्थात् यथार्थ रूप से जानता है।

भावार्थ :- इस श्लोक 3 का भावार्थ यह है कि वेद ज्ञान दाता प्रभु कह रहा है कि हजार व्यक्तियों में कोई एक परमात्मा की साधना करता है। उन साधना करने वालों में कोई एक ही मुझे तत्व से जानता है। काल भगवान कह रहा है कि परमात्मा को भजने वाले बहुत कम है। जो साधना कर रहे हैं वे मनमाना आचरण(पूजा) अर्थात् शास्त्रविधि रहित पूजा करते है जो व्यर्थ है। (गीता अध्याय 16 श्लोक 23 में) जो मुझे भजते हैं उन में भी कोई एक ही वेदों अनुसार अर्थात् वेदों को अपनी बुद्धि से समझ कर मेरी साधना करता है। वह अन्य देवी-देवता आदि की पूजा नहीं करता केवल एक मुझ ब्रह्म की पूजा करता है वह ज्ञानी आत्मा है। इस श्लोक 3 का सम्बन्ध अध्याय 7 श्लोक 17 से 19 तक से है।

अध्याय 7 का श्लोक 4,5

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
अहङ्कार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा।४।

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्।५।

भूमिः, आपः, अनलः, वायुः, खम्, मनः, बुद्धिः, एव, च,
अहंकारः, इति, इयम्, मे, भिन्ना, प्रकतिः, अष्टधा।।4।।
अपरा, इयम्, इतः, तु, अन्याम्, प्रकतिम्, विद्धि, मे, पराम्,
जीवभूताम्, महाबाहो, यया, इदम्, धार्यते, जगत्।।5।।

अनुवाद : (भूमिः) पथ्वी (आपः) जल (अनलः) अग्नि (वायुः) वायु (खम्) आकाश आदि से स्थूल शरीर बनता है (एव) इसी प्रकार (मनः) मन (बुद्धिः) बुद्धि (च) और (अहंकारः) अहंकार आदि से सूक्ष्म शरीर बनता है (इति) इस प्रकार (इयम्) यह (अष्टधा) आठ प्रकारसे अर्थात् अष्टंगी ही (भिन्ना) विभाजित (मे) मेरी (प्रकतिः) प्रकति अर्थात् दुर्गा है (इयम्) ये (तु) तो (अपरा) अपरा अर्थात् इसके तुल्य दूसरी देवी नहीं है तथा उपरोक्त दोनों शरीरों में इसी का परम योगदान है और (महाबाहो) हे महाबाहो! (इतः) इससे (अन्याम्) दूसरीको (यया) जिससे (इदम्) यह सम्पूर्ण (जगत्) जगत् (धार्यते) संभाला जाता है। (मे) मेरी (जीवभूताम्) जीवरूपा चेतन (पराम्) दूसरी अर्थात् साकार चेतन (प्रकतिम्) प्रकति अर्थात् दुर्गा (विद्धि) जान। क्योंकि दुर्गा ही अन्य रूप बनाकर सागर में छूपी तथा लक्ष्मी-सावित्री व उमा रूप बनाकर तीनों देवों से शादी करके जीव उत्पत्ति की। (4-5)

केवल हिन्दी : पथ्वी जल अग्नि वायु आकाश आदि से स्थूल शरीर बनता है इसी प्रकार मन बुद्धि और अहंकार आदि से सूक्ष्म शरीर बनता है इस प्रकार यह आठ प्रकारसे अर्थात् अष्टंगी ही विभाजित मेरी प्रकति अर्थात् दुर्गा है ये तो अपरा अर्थात् इसके तुल्य दूसरी देवी नहीं है तथा उपरोक्त दोनों शरीरों में इसी का परम योगदान है और हे महाबाहो! इससे दूसरीको जिससे यह सम्पूर्ण जगत् संभाला जाता है। मेरी जीवरूपा चेतन दूसरी साकार चेतन प्रकति अर्थात् दुर्गा जान। क्योंकि दुर्गा ही अन्य रूप बनाकर सागर में छूपी तथा लक्ष्मी-सावित्री व उमा रूप बनाकर तीनों देवों (ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव) से विवाह करके जीवों की उत्पत्ति की। (4-5)

अध्याय 7 का श्लोक 6

एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय।
अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा।६।

एतद्योनीनि, भूतानि, सर्वाणि, इति, उपधारय,
अहम्, कत्स्नस्य, जगतः, प्रभवः, प्रलयः, तथा ।।6।।

अनुवाद : (इति) इस प्रकार (उपधारय) भूल भूलईयां करके (सर्वाणि) सम्पूर्ण (भूतानि) प्राणी (एतद्योनीनि) इन दोनों प्रकतियोंसे ही उत्पन्न होते हैं और (अहम्) मैं (कत्स्नस्य) सम्पूर्ण (जगतः) जगत्का (प्रभवः) उत्पन्न (तथा) तथा (प्रलयः) नाश हूँ। (6)

केवल हिन्दी : इस प्रकार भूल भूलईयां करके सम्पूर्ण प्राणी इन दोनों प्रकतियोंसे ही उत्पन्न होते हैं और मैं सम्पूर्ण जगत् का उत्पन्न तथा नाश हूँ। (6)

अध्याय 7 का श्लोक 7

मत्तः परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति धनञ्जय।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव।७।

मत्तः, परतरम्, न, अन्यत्, किचित्, अस्ति, धन जय,
मयि, सर्वम्, इदम्, प्रोतम्, सूत्रे, मणिगणाः, इव ।।7।।

अनुवाद : (धन जय) हे धन जय! उपरोक्त (मत्तः) अर्थात् सिद्धान्त से (अन्यत्) दूसरा (किचित्) कोई भी (परतरम्) परम कारण (न) नहीं (अस्ति) है। (इदम्) यह (सर्वम्) सम्पूर्ण जगत् (सूत्रे) सूत्रमें (मणिगणाः) मणियोंके (इव) सदश (मयी) मुझ में (प्रोतम्) गुँथा हुआ है। (7)

केवल हिन्दी : हे धन जय! उपरोक्त अर्थात् सिद्धान्त से दूसरा कोई भी परम कारण नहीं है। यह सम्पूर्ण जगत् सूत्रमें मणियोंके सदश मुझ में गुँथा हुआ है। (7)

अध्याय 7 का श्लोक 8

रसोऽहमप्सु कौन्तेय प्रभास्मि शशिसूर्ययोः।
प्रणवः सर्ववेदेषु शब्दः खे पौरुषं नृषु।८।

रसः, अहम्, अप्सु, कौन्तेय, प्रभा, अस्मि, शशिसूर्ययोः,
प्रणवः, सर्ववेदेषु, शब्दः, खे, पौरुषम्, नषु ।।8।।

अनुवाद : (कौन्तेय) हे अर्जुन! (अहम्) मैं (अप्सु) जलमें (रसः) रस हूँ (शशिसूर्ययोः) चन्द्रमा और सूर्यमें (प्रभा) प्रकाश (अस्मि) हूँ (सर्ववेदेषु) सम्पूर्ण वेदोंमें (प्रणवः) ओंकार हूँ (खे) आकाशमें (शब्दः) शब्द और (नषु) मनुष्योंमें (पौरुषम्) पुरुषत्व हूँ। (8)

केवल हिन्दी : हे अर्जुन! मैं जलमें रस हूँ चन्द्रमा और सूर्यमें प्रकाश हूँ सम्पूर्ण वेदोंमें ओंकार हूँ आकाशमें शब्द और मनुष्योंमें पुरुषत्व हूँ। (8)

अध्याय 7 का श्लोक 9

पुण्यो गन्धः पृथिव्यां च तेजश्चास्मि विभावसौ।
जीवनं सर्वभूतेषु तपश्चास्मि तपस्विषु। ९ ।

पुण्यः, गन्धः, पथिव्याम्, च, तेजः, च, अस्मि, विभावसौ,
जीवनम्, सर्वभूतेषु, तपः, च, अस्मि, तपस्विषु ।।9।।

अनुवाद : (पथिव्याम्) पथ्वीमें (पुण्यः) पवित्र (गन्धः) गन्ध (च) और (विभावसौ) अग्निमें (तेजः) तेज (अस्मि) हूँ (च) तथा (सर्वभूतेषु) सम्पूर्ण प्राणीयों में उनका (जीवनम्) जीवन हूँ (च) और (तपस्विषु) तपस्वियोंमें (तपः) तप (अस्मि) हूँ। (9)

केवल हिन्दी : पथ्वी में पवित्र गन्ध और अग्नि में तेज हूँ तथा सम्पूर्ण प्राणियों में उनका जीवन हूँ और तपस्वियों में तप हूँ। (9)

अध्याय 7 का श्लोक 10

बीजं मां सर्वभूतानां विद्धि पार्थ सनातनम्।
बुद्धिर्बुद्धिमतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम्। १०।

बीजम्, माम्, सर्वभूतानाम्, विद्धि पार्थ, सनातनम्,
बुद्धिः, बुद्धिमताम्, अस्मि, तेजः, तेजस्विनाम्, अहम् ।।10 ।।

अनुवाद : (पार्थ) हे अर्जुन! तू (सर्वभूतानाम्) सम्पूर्ण प्राणियोंका (सनातनम्) आदि (बीजम्) कारण (माम्) मुझको ही (विद्धि) जान (अहम्) मैं (बुद्धिमताम्) बुद्धिमानोंकी (बुद्धिः) बुद्धि और (तेजस्विनाम्) तेजस्वियोंका (तेजः) तेज (अस्मि) हूँ। (10)

केवल हिन्दी : हे अर्जुन! तू सम्पूर्ण प्राणियोंका आदि कारण मुझको ही जान मैं बुद्धिमानोंकी बुद्धि और तेजस्वियोंका तेज हूँ। (10)

अध्याय 7 का श्लोक 11

बलं बलवतां चाहं कामरागविवर्जितम्।
धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ। ११।

बलम्, बलवताम्, च, अहम्, कामरागविवर्जितम्,
धर्माविरुद्धः, भूतेषु, कामः अस्मि, भरतर्षभ ।।11 ।।

अनुवाद : (भरतर्षभ) हे भरतश्रेष्ठ! (अहम्) मैं (बलवताम्) बलवानोंका (कामरागविवर्जितम्) आसक्ति और कामनाओंसे रहित (बलम्) सामर्थ्य हूँ (च) और (भूतेषु) मेरे अन्तर्गत सर्व प्राणियों में (धर्माविरुद्धः) धर्म के अनुकूल अर्थात् शास्त्रके अनुकूल (कामः) कर्म (अस्मि) हूँ। (11)

केवल हिन्दी : हे भरतश्रेष्ठ! मैं बलवानोंका आसक्ति और कामनाओंसे रहित सामर्थ्य हूँ और मेरे अन्तर्गत सर्व प्राणियों में धर्म के अनुकूल अर्थात् शास्त्रके अनुकूल कर्म हूँ। (11)

अध्याय 7 का श्लोक 12

ये चैव सात्त्विका भावा राजसास्तामसाश्च ये।
मत्त एवेति तान्विद्धि न त्वहं तेषु ते मयि। १२।

ये, च, एव, सात्त्विकाः, भावाः, राजसाः, तामसाः, च, ये,
मत्तः, एव, इति, तान्, विद्धि, न, तु, अहम्, तेषु, ते, मयि ।।12 ।।

अनुवाद : (च) और (एव) भी (ये) जो (सात्त्विकाः) सत्वगुण विष्णु जी से स्थिति (भावाः) भाव हैं और (ये) जो (राजसाः) रजोगुण ब्रह्मा जी से उत्पत्ति (च) तथा (तामसाः) तमोगुण शिव से संहार हैं (तान्) उन सबको तू (मत्तः,एव) मेरे द्वारा सुनियोजित नियमानुसार ही होने वाले हैं (इति) ऐसा (विद्धि) जान (तु) परंतु वास्तवमें (तेषु) उनमें (अहम्) मैं और (ते) वे (मयि) मुझमें (न) नहीं हैं।(12)

केवल हिन्दी : और भी जो सत्वगुण विष्णु जी से स्थिति भाव हैं और जो रजोगुण ब्रह्मा जी से उत्पत्ति तथा तमोगुण शिव से संहार हैं उन सबको तू मेरे द्वारा सुनियोजित नियमानुसार ही होने वाले हैं ऐसा जान (तु) परंतु वास्तवमें उनमें मैं और वे मुझमें नहीं हैं। (12)

अध्याय 7 का श्लोक 13

त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिः सर्वमिदं जगत्।
मोहितं नाभिजानाति मामेभ्यः परमव्ययम्। १३।

त्रिभिः, गुणमयैः, भावैः, एभिः, सर्वम्, इदम्, जगत्,
मोहितम्, न अभिजानाति, माम्, एभ्यः, परम्, अव्ययम्।।13।।

अनुवाद : (एभिः) इन (गुणमयैः) गुणोंके कार्यरूप सात्विक श्री विष्णु जी के प्रभाव से, राजस श्री ब्रह्मा जी के प्रभाव से और तामस श्री शिवजी के प्रभाव से (त्रिभिः) तीनों प्रकारके (भावैः) भावोंसे (इदम्) यह (सर्वम्) सारा (जगत्) संसार - प्राणिसमुदाय (माम्) मुझ काल के ही जाल में (मोहितम्) मोहित हो रहा है अर्थात् फंसा है (एभ्यः) इसलिए (परम् अव्ययम्) पूर्ण अविनाशीको (न) नहीं (अभिजानाति) जानता। (13)

केवल हिन्दी : इन गुणोंके कार्यरूप सात्विक श्री विष्णु जी के प्रभाव से, राजस श्री ब्रह्मा जी के प्रभाव से और तामस श्री शिवजी के प्रभाव से तीनों प्रकारके भावोंसे यह सारा संसार - प्राणिसमुदाय मुझ काल के ही जाल में मोहित हो रहा है अर्थात् फंसा है इसलिए पूर्ण अविनाशीको नहीं जानता। (13)

{परमेश्वर कबीर बन्दी छोड़ जी की महिमा सन्त गरीबदास जी ने कही है तथा काल का जाल समझाया है :- गरीब, ब्रह्मा विष्णु महेश, माया और धर्मराया(काल) कहिए। इन पाँचों मिल प्रपंच बनाया वाणी हमरी लहिए।।}

अध्याय 7 का श्लोक 14

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते।१४।

दैवी, हि, एषा, गुणमयी, मम, माया, दुरत्यया, माम्,
एव, ये, प्रपद्यन्ते, मायाम्, एताम्,तरन्ति,ते।।14।।

अनुवाद : (हि) क्योंकि (एषा) यह (दैवी) अलौकिक अर्थात् अति अद्भूत (गुणमयी) रजगुण ब्रह्मा, सतगुण विष्णु तथा तमगुण शिव रूपी त्रिगुणमयी (मम) मेरी (माया) माया (दुरत्यया) बड़ी दुस्तर है परंतु (ये) जो पुरुष केवल (माम्) मुझको (एव) ही निरंन्तर (प्रपद्यन्ते) भजते हैं (ते) वे (एताम्) इस (मायाम्) रजगुण ब्रह्मा, सतगुण विष्णु तथा तमगुण शिव रूपी मायाका (तरन्ति) उल्लंघन कर जाते हैं अर्थात् तीनों गुणों रजगुण ब्रह्माजी, सतगुण विष्णु जी, तमगुण शिवजी से ऊपर उठ कर काल ब्रह्म की साधना में लग जाते हैं। (14)

केवल हिन्दी : क्योंकि यह अलौकिक अर्थात् अति अद्भूत त्रिगुणमयी मेरी माया बड़ी दुस्तर है परंतु जो पुरुष केवल मुझको ही निरंन्तर भजते हैं वे इस मायाका उल्लंघन कर जाते हैं अर्थात् तीनों गुणों रजगुण ब्रह्मा जी, सतगुण विष्णु जी, तमगुण शिव जी से ऊपर उठ जाते हैं।(14)

अध्याय 7 का श्लोक 15

न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः।
माययापहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः।१५।

न, माम्, दुष्कतिनः, मूढाः, प्रपद्यन्ते, नराधमाः,
मायया, अपहृतज्ञानाः, आसुरम्, भावम्, आश्रिताः।।15।।

अनुवाद : (मायया) रजगुण ब्रह्मा, सतगुण विष्णु, तमगुण शिव जी रूपी त्रिगुणमई माया की साधना से होने वाला क्षणिक लाभ पर ही आश्रित हैं अन्य साधना नहीं करना चाहते अर्थात् इसी त्रिगुणमई माया के द्वारा (अपहृतज्ञानाः) जिनका ज्ञान हरा जा चुका है जो मेरी अर्थात् ब्रह्म साधना भी नहीं करते, इन्हीं तीनों देवताओं तक सीमित रहते हैं ऐसे (आसुरम् भावम्) आसुर स्वभावको

(आश्रिताः) धारण किये हुए (नराधमाः) मनुष्यों में नीच (दुष्कतिनः) दूषित कर्म करनेवाले (मूढाः) मूर्ख (माम्) मुझको (न) नहीं (प्रपद्यन्ते) भजते अर्थात् वे तीनों गुणों (रजगुण-ब्रह्मा, सतगुण-विष्णु, तमगुण-शिव) की साधना ही करते रहते हैं। (15)

केवल हिन्दी : माया के द्वारा अर्थात् रजगुण ब्रह्मा, सतगुण विष्णु, तमगुण शिव जी रूपी त्रिगुणमई माया की साधना से होने वाला क्षणिक लाभ पर ही आश्रित हैं जिनका ज्ञान हरा जा चुका है जो मेरी अर्थात् ब्रह्म साधना भी नहीं करते, इन्हीं तीनों देवताओं तक सीमित रहते हैं। ऐसे आसुर स्वभाव को धारण किये हुए मनुष्यों में नीच दूषित कर्म करने वाले मूर्ख मुझको भी नहीं भजते अर्थात् वे तीनों गुणों (रजगुण-ब्रह्मा, सतगुण-विष्णु, तमगुण-शिव) की साधना ही करते रहते हैं।(15)

भावार्थ - गीता अध्याय 7 श्लोक 12 से 15 का भावार्थ है कि जो साधक स्वभाव वश तीनों गुणों रजगुण ब्रह्मा जी, सतगुण विष्णु जी, तमगुण शिव जी तक की साधना से मिलने वाले लाभ पर ही आश्रित रहकर इन्हीं तीनों प्रभुओं की भक्ति से जिन का ज्ञान हरा जा चुका है वे राक्षस स्वभाव को धारण किए हुए मनुष्यों में नीच, शास्त्र विधि विरुद्ध भक्ति रूपी दुष्कर्म करने वाले मूर्ख मुझ ब्रह्म को भी नहीं भजते गीता अध्याय 7 श्लोक 20 से 23 का भी इन्हीं से लगातार सम्बन्ध है।

अध्याय 7 का श्लोक 16

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ।१६।

चतुर्विधाः, भजन्ते, माम्, जनाः, सुकतिनः, अर्जुन,
आर्तः, जिज्ञासुः, अर्थार्थी, ज्ञानी,च,भरतर्षभ।।16।।

अनुवाद : (भरतर्षभ अर्जुन) हे भरत वंशियोंमें श्रेष्ठ अर्जुन! (सुकतिनः) उत्तम कर्म करनेवाले (अर्थार्थी) वेद मन्त्रों द्वारा धन लाभ के लिए अनुष्ठान करने वाला अर्थार्थी (आर्तः) वेद मन्त्रों द्वारा संकट निवार्ण के लिए अनुष्ठान करने वाले आर्त (जिज्ञासुः) परमात्मा के विषय में जानकारी प्राप्त करने की इच्छा से ज्ञान ग्रहण करके वेदों के आधार से ज्ञानवान बनकर वक्ता बन जाता है वह जिज्ञासु (च) और (ज्ञानी) जिसे यह ज्ञान हो गया कि मनुष्य जन्म केवल परमात्मा प्राप्ति के लिए ही है। परमात्मा प्राप्ति भी केवल एक सर्वशक्तिमान परमात्मा की साधना अनन्य मन से करने से होती है वह ज्ञानी ऐसे (चतुर्विधाः) चार प्रकार के (जनाः) भक्तजन (माम्) मुझको (भजन्ते) भजते हैं। (16)

केवल हिन्दी : हे भरत वंशियोंमें श्रेष्ठ अर्जुन! उत्तम कर्म करनेवाले वेद मन्त्रों द्वारा धन लाभ के लिए अनुष्ठान करने वाला अर्थार्थी वेद मन्त्रों द्वारा संकट निवार्ण के लिए अनुष्ठान करने वाले आर्त परमात्मा के विषय में जानकारी प्राप्त करने की इच्छा से ज्ञान ग्रहण करके वेदों के आधार से ज्ञानवान बनकर वक्ता बन जाता है वह जिज्ञासु और जिसे यह ज्ञान हो गया कि मनुष्य जन्म केवल परमात्मा प्राप्ति के लिए ही है। परमात्मा प्राप्ति भी केवल एक सर्वशक्तिमान परमात्मा की साधना अनन्य मन से करने से होती है वह ज्ञानी ऐसे चार प्रकार के भक्तजन मुझको भजते हैं।(16)

अध्याय 7 का श्लोक 17

तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते।
प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः।१७।

तेषाम्, ज्ञानी, नित्ययुक्तः, एकभक्तिः, विशिष्यते,
प्रियः, हि, ज्ञानिनः, अत्यर्थम्, अहम्, सः, च, मम, प्रियः ।।17।।

अनुवाद : (तेषाम्) उनमें (नित्ययुक्तः) नित्य स्थित (एकभक्तिः) एक परमात्मा की भक्तिवाला (ज्ञानी) विद्वान (विशिष्यते) अति उत्तम है (हि) क्योंकि (ज्ञानिनः) ज्ञानीको (अहम्) मैं (अत्यर्थम्) अत्यन्त (प्रियः) प्रिय हूँ (च) और (सः) वह ज्ञानी (मम्) मेरे को अत्यन्त (प्रियः) प्रिय है। (17)

केवल हिन्दी : उनमें नित्य स्थित एक परमात्मा की भक्तिवाला विद्वान अति उत्तम है क्योंकि ज्ञानीको मैं अत्यन्त प्रिय हूँ और वह ज्ञानी मुझे अत्यन्त प्रिय है। (17)

अध्याय 7 का श्लोक 18

उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्।
आस्थितः स हि युक्तात्मा मामेवानुत्तमां गतिम्। १८।

उदाराः, सर्वे, एव, एते, ज्ञानी, तु, आत्मा, एव, मे, मतम्,
आस्थितः, सः, हि, युक्तात्मा, माम्, एव, अनुत्तमाम्, गतिम् ।।18।।

अनुवाद : (हि) क्योंकि (मे) मेरे (मतम्) विचार में (एते) ये (सर्वे,एव) सभी ही (ज्ञानी) ज्ञानी (आत्मा) आत्मा (उदाराः) उदार हैं (तु) परंतु (सः) वह (माम्) मुझमें (एव) ही (युक्तात्मा) लीन आत्मा (अनुत्तमाम्) मेरी अति घटिया (गतिम्) मुक्तिमें (एव) ही (आस्थितः) आश्रित हैं। (18)

केवल हिन्दी : क्योंकि मेरे विचार में ये सभी ही ज्ञानी आत्मा उदार हैं परंतु वह मुझमें ही लीन आत्मा मेरी अति घटिया मुक्तिमें ही आश्रित हैं। (18)

गीता अध्याय 7 श्लोक 16 से 18 का भावार्थ है कि मेरी अर्थात् ब्रह्म की भक्ति भी चार प्रकार के भक्त करते हैं 1. आर्त्त : जो संकट निवार्ण के लिए वेद मंत्रों से ही अनुष्ठान करते हैं 2. अर्थार्थी : जो धन लाभ के लिए वेद मंत्रों से ही अनुष्ठान आदि करता है 3. जिज्ञासु : जो ज्ञान प्राप्ति की इच्छा से वेदों का पठन-पाठन करके ज्ञान संग्रह कर लेता है फिर वक्ता बनकर जीवन व्यर्थ कर जाता है 4. ज्ञानी : जिस साधक ने वेदों को पढ़ा तथा जाना कि मनुष्य जीवन केवल प्रभु प्राप्ति के लिए ही मिला है तथा एक पूर्ण परमात्मा की भक्ति से ही पूर्ण होगा। तत्वदर्शी संत जो गीता अध्याय 4 श्लोक 34 में वर्णित है न मिलने से ब्रह्म को ही पूर्ण परमात्मा मान कर काल (ब्रह्म) साधना करते रहे जो अति अनुत्तम कही है अर्थात् ब्रह्म साधना भी अश्रेष्ठ है।

प्रश्न :- आपने गीता अध्याय 7 श्लोक 18 के अनुवाद में अर्थ का अनर्थ किया है ''अनुत्तमाम्'' का अर्थ अश्रेष्ठ किया है। जब कि समास में अनुत्तम का अर्थ अति उत्तम होता है जिस से उत्तम कोई और न हो उस के विषय में समास में अनुत्तम का अर्थ अति उत्तम होता है। अन्य गीता अनुवाद कर्त्ताओं ने सही अर्थ किया है अनुत्तम का अर्थ अति उत्तम किया है।

उत्तर :- मैं आप की इस बात को सत्य मानकर आप से प्रार्थना करता हूँ कि ''गीता ज्ञान दाता अपनी साधना के विषय में गीता अध्याय 7 श्लोक 16 से 18 में बता रहे हैं। यदि गीता अध्याय 7 श्लोक 18 में अपनी साधना व गति को अनुत्तम कह रहे हैं। जिस का भावार्थ आप के समास के अनुसार यह हुआ कि गीता ज्ञान दाता की गति से उत्तम अन्य कोई गति नहीं अर्थात् मोक्ष लाभ नहीं।

गीता ज्ञान दाता स्वयं गीता अध्याय 18 श्लोक 62 व अध्याय 15 श्लोक 4 में किसी अन्य परमेश्वर की शरण में जाने को कह रहे हैं। उसी की कृपा से परम शान्ति व शाश्वत स्थान सदा रहने वाला मोक्ष स्थल अर्थात् सत्यलोक प्राप्त होगा। अपने विषय में भी कहा है कि मैं भी उसी की

शरण हूँ। उसी पूर्ण परमात्मा की भक्ति करनी चाहिए तथा कहा है कि उस परमेश्वर के परमपद (सत्यलोक) को प्राप्त करना चाहिए जहाँ जाने के पश्चात् साधक लौटकर इस संसार में कभी नहीं आते अर्थात् उनका जन्म मत्यु सदा के लिए समाप्त हो जाता है।

गीता ज्ञान दाता ने अपने से अन्य परमात्मा के विषय में गीता अध्याय 18 श्लोक 46,61-62,64,66 अध्याय 15 श्लोक 4,16-17, अध्याय 13 श्लोक 12 से 17, 22 से 24, 27-28,30-31,34 अध्याय 5 श्लोक 6-10,13 से 21 तथा 24-25-26 अध्याय 6 श्लोक 7,19,20,25,26-27 अध्याय 4 श्लोक 31-32, अध्याय 8 श्लोक 3,8 से 10,17 से 22, अध्याय 7 श्लोक 19 से 29, अध्याय 14 श्लोक 19 आदि-2 श्लोकों में कहा है। इससे सिद्ध हुआ कि गीता ज्ञान दाता से श्रेष्ठ अर्थात् उत्तम परमात्मा तो अन्य है जैसे गीता अध्याय 15 श्लोक 17 में गीता ज्ञान दाता ने कहा है कि उत्तम पुरुषः तु अन्यः जिसका अर्थ है उत्तम परमात्मा तो अन्य ही है। इसलिए उस उत्तम पुरूष अर्थात् सर्वश्रेष्ठ परमात्मा की गति अर्थात् उस से मिलने वाला मोक्ष भी अति उत्तम हुआ। इस से यह भी सिद्ध हुआ कि उस परमेश्वर अर्थात् पूर्ण परमात्मा की गति गीता ज्ञान दाता वाली गति से उत्तम हुई। इसलिए गीता ज्ञान दाता वाली गति सर्व श्रेष्ठ नहीं है। अर्थात् जिस से श्रेष्ठ कोई न हो। यह विशेषण भी गलत सिद्ध हुआ। क्योंकि जब गीता ज्ञान दाता से श्रेष्ठ कोई और परमेश्वर है तो उस की गति भी गीता ज्ञान दाता से श्रेष्ठ है। इससे सिद्ध हुआ कि गीता अध्याय 7 श्लोक 18 में अनुत्तम का अर्थ अश्रेष्ठ ही न्याय संगत है अर्थात् उचित है। आप तथा अन्य गीता अनुवाद कर्त्ताओं ने अर्थ का अनर्थ किया है। जो अनुत्तम का अर्थ अति उत्तम कहा तथा किया है।

अध्याय 7 का श्लोक 19

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः। १९।

बहूनाम्, जन्मनाम्, अन्ते, ज्ञानवान्, माम्, प्रपद्यते,
वासुदेवः, सर्वम्, इति, सः, महात्मा,सुदुर्लभः ।।19।।

अनुवाद : (बहूनाम्) बहुत (जन्मनाम्) जन्मोंके (अन्ते) अन्तके जन्ममें (ज्ञानवान्) तत्वज्ञानको प्राप्त (माम्) मुझको (प्रपद्यते) भजता है (वासुदेवः) वासुदेव अर्थात् सर्वव्यापक पूर्ण ब्रह्म ही (सर्वम्) सब कुछ है (इति) इस प्रकार जो यह जानता है (सः) वह (महात्मा) महात्मा (सुदुर्लभः) अत्यन्त दुर्लभ है। (19) श्री मदभागवत् के दशवें स्कंद के 51 वें अध्याय में स्वयं श्री कष्ण ने कहा है कि श्री वासुदेव का पुत्र होने के कारण मुझे वासुदेव कहते हैं, न की सर्व का मालिक या सर्व व्यापक होने के कारण अर्थात् वासुदेव पूर्ण परमात्मा है।

केवल हिन्दी अनुवाद : बहुत जन्मोंके अन्तके जन्ममें तत्वज्ञानको प्राप्त मुझको भजता है वासुदेव अर्थात् सर्वव्यापक पूर्ण ब्रह्म ही सब कुछ है इस प्रकार जो यह जानता है वह महात्मा अत्यन्त दुर्लभ है। (19) श्री मदभागवत् के दशवें स्कंद के 51 वें अध्याय में स्वयं श्री कष्ण ने कहा है कि श्री वासुदेव का पुत्र होने के कारण मुझे वासुदेव कहते हैं, न की सर्व का मालिक या सर्व व्यापक होने के कारण, अर्थात् वासुदेव पूर्ण परमात्मा है।

भावार्थ - गीता अध्याय 7 श्लोक 19 का भावार्थ है कि मुझ ब्रह्म की साधना भी बहुत जन्मों के बाद कोई-कोई करता है, नहीं तो अन्य देवताओं की पूजा ही करते रहते हैं तथा यह बताने वाला संत बहुत दुर्लभ है कि पूर्ण ब्रह्म ही सब कुछ है, ब्रह्म व परब्रह्म से पूर्ण मोक्ष नहीं होता।

अध्याय 7 का श्लोक 20

कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः।
तं तं नियममास्थाय प्रकृत्या नियताः स्वया। २०।

कामैः, तैः, तैः, हृतज्ञानाः, प्रपद्यन्ते, अन्यदेवताः,
तम्, तम् नियमम्, आस्थाय, प्रकृत्या, नियताः, स्वया।।20।।

अनुवाद : (तैः,तैः) उन-उन (कामैः) भोगोंकी कामनाद्वारा (हृतज्ञानाः) जिनका ज्ञान हरा जा चुका है वे लोग (स्वया) अपने (प्रकृत्या) स्वभावसे (नियताः) प्रेरित होकर (तम्-तम्) उस उस अज्ञान रूप अंधकार वाले (नियमम्) नियमके (आस्थाय) आश्रयसे (अन्यदेवताः) अन्य देवताओंको (प्रपद्यन्ते) भजते हैं अर्थात् पूजते हैं। (20)

केवल हिन्दी : उन-उन भोगोंकी कामनाद्वारा जिनका ज्ञान हरा जा चुका है वे लोग अपने स्वभावसे प्रेरित होकर उस उस अज्ञान रूप अंधकार वाले नियमके आश्रयसे अन्य देवताओंको भजते हैं अर्थात् पूजते हैं। (20)

अध्याय 7 का श्लोक 21

यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति।
तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम्। २१।

यः, यः, याम्, याम्, तनुम्, भक्तः, श्रद्धया, अर्चितुम्, इच्छति,
तस्य, तस्य अचलाम्, श्रद्धाम्, ताम्, एव, विदधामि, अहम्।।21।।

अनुवाद : (यः, यः) जो-जो (भक्तः) भक्त (याम्, याम्) जिस-जिस (तनुम्)देवताके स्वरूपको (श्रद्धया) श्रद्धासे (अर्चितुम्) पूजना (इच्छति) चाहता है, (तस्य) उस (तस्य) उस भक्तकी (श्रद्धाम्) श्रद्धाको (अहम्) मैं (ताम्, एव) उसी देवता के प्रति (अचलाम्) स्थिर (विदधामि) करता हूँ। (21)

केवल हिन्दी : जो-जो भक्त जिस-जिस देवताके स्वरूपको श्रद्धासे पूजना चाहता है, उस उस भक्तकी श्रद्धाको मैं उसी देवता के प्रति स्थिर करता हूँ। (21)

अध्याय 7 का श्लोक 22

स तया श्रद्धया युक्तस्तस्याराधनमीहते।
लभते च ततः कामान्मयैव विहितान्हि तान्। २२।

सः, तया, श्रद्धया, युक्तः, तस्य, आराधनम्, ईहते,
लभते, च, ततः, कामान्, मया, एव, विहितान्, हि, तान्।।22।।

अनुवाद : (सः) वह भक्त (तया) उस (श्रद्धया) श्रद्धा से (युक्तः) युक्त होकर (तस्य) उस देवताका (आराधनम्) पूजन (ईहते) करता है (च) और (हि) क्योंकि (ततः) उस देवतासे (मया) मेरे द्वारा (एव) ही (विहितान्) विधान किये हुए (तान्) उन (कामान्) इच्छित भोगोंको (लभते) प्राप्त करता है। (22)

केवल हिन्दी अनुवाद : वह भक्त उस श्रद्धा से युक्त होकर उस देवताका पूजन करता है और क्योंकि उस देवतासे मेरे द्वारा ही विधान किये हुए उन इच्छित भोगोंको प्राप्त करता है। (22)

अध्याय 7 का श्लोक 23

अन्तवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसाम्।
देवान्देवयजो यान्ति मद्भक्ता यान्ति मामपि। २३।

अन्तवत्, तु, फलम्, तेषाम्, तत्, भवति, अल्पमेधसाम्,
देवान्, देवयजः, यान्ति, मद्भक्ताः, यान्ति, माम्, अपि ।।23 ।।

अनुवाद : (तु) परंतु (तेषाम्) उन (अल्पमेधसाम्) अल्प बुद्धिवालों का (तत्) वह (फलम्) फल (अन्तवत्) नाशवान् (भवति) होता है (देवयजः) देवताओं को पूजने वाले (देवान्) देवताओं को (यान्ति) प्राप्त होते हैं और (मद्भक्ताः) मतावलम्बी (अपि) भी (माम्) मुझको (यान्ति) प्राप्त होते हैं।(23)

केवल हिन्दी : परंतु उन अल्प बुद्धिवालोंका वह फल नाशवान् होता है देवताओंको पूजनेवाले देवताओंको प्राप्त होते है। और मतावलम्बी अर्थात् मेरे द्वारा बताए भक्ति मार्ग से भी मुझको प्राप्त होते हैं। (23)

भावार्थ :- गीता अध्याय 7 श्लोक 20 से 23 तक का भावार्थ है कि जो गीता अध्याय 7 श्लोक 12 से 15 में कहा है कि तीनों गुण(रजगुण श्री ब्रह्मा जी, सतगुण श्री विष्णु जी, तम् गुण श्री शिव जी) रूपी माया द्वारा जिन का ज्ञान हरा जा चुका है अर्थात् जो तीनों देवताओं की साधना करते हैं वे राक्षस स्वभाव को धारण किए हुए, मनुष्यों में नीच, दुष्कर्म करने वाले मूर्ख मुझ ब्रह्म की पूजा नहीं करते। इसी के सम्बन्ध में गीता अध्याय 7 श्लोक 20 से 23 में कहा है कि जिनका ज्ञान उपरोक्त तीनों देवताओं द्वारा हरा जा चुका है वे अपने स्वभाव वश उन्हीं देवताओं की पूजा मनोंकामना पूर्ण करने के उद्देश्य से करते हैं अर्थात् गीता ज्ञान दाता कह रहा है कि मेरे से अन्य देवताओं की पूजा करते है। जो भक्त जिस देवता की पूजा करता है उसकी श्रद्धा मैं ही उस देवता के प्रतिदढ़ करता हूँ। उस देवताओं के पुजारी को भी मेरे द्वारा उस देवता को दी गई शक्ति से ही प्राप्त होता है। परन्तु उन मंद बुद्धि वालों अर्थात् मूर्खों का वह फल नाश्वान है। देवताओं के पूजने वाले देवताओं को प्राप्त होते हैं। मेरे भक्त मुझे प्राप्त होते हैं। भावार्थ है कि जो ब्रह्मा विष्णु तथा शिव की पूजा या अन्य किसी देव की पूजा करते हैं उन देवताओं की पूजा का फल नाश्वान है अर्थात् वह पूजा व्यर्थ है।

अध्याय 7 का श्लोक 24

अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यन्ते मामबुद्धयः।
परं भावमजानन्तो ममाव्ययमनुत्तमम्। २४।

अव्यक्तम्, व्यक्तिम्, आपन्नम्, मन्यन्ते, माम्, अबुद्धयः।
परम्, भावम्, अजानन्तः, मम, अव्ययम्, अनुत्तमम् ।।24 ।।

अनुवाद : (अबुद्धयः) बुद्धिहीन लोग (मम) मेरे (अनुत्तमम्) अश्रेष्ठ (अव्ययम्) अटल (परम्) परम (भावम्) भावको (अजानन्तः) न जानते हुए (अव्यक्तम्) छिपे हुए अर्थात् परोक्ष (माम्) मुझ कालको (व्यक्तिम्) मनुष्य की तरह आकार में कष्ण अवतार (आपन्नम्) प्राप्त हुआ (मन्यन्ते) मानते हैं अर्थात् मैं कष्ण नहीं हूँ। (24)

केवल हिन्दी : बुद्धिहीन लोग मेरे अश्रेष्ठ अटल परम भावको न जानते हुए छिपे हुए अर्थात् परोक्ष मुझ काल को मनुष्य की तरह आकार में कष्ण अवतार प्राप्त हुआ मानते हैं अर्थात् मैं कष्ण नहीं हूँ। (24)

अध्याय 7 का श्लोक 25

नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः।
मूढोऽयं नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम्। २५।

न, अहम्, प्रकाशः, सर्वस्य, योगमायासमावतः ।
मूढः, अयम्, न, अभिजानाति, लोकः, माम्, अजम्, अव्ययम् ।।25।।

अनुवाद : (अहम्) मैं (योगमाया समावतः) योगमायासे छिपा हुआ (सर्वस्य) सबके (प्रकाशः) प्रत्यक्ष (न) नहीं होता अर्थात् अदृश्य रहता हूँ इसलिये(माम्) मुझ (अजम्) जन्म न लेने वाले (अव्ययम्) अविनाशी अटल भावको (अयम्) यह (मूढः) अज्ञानी (लोकः) जनसमुदाय संसार (न) नहीं (अभिजानाति) जानता अर्थात् मुझको अवतार रूप में आया समझता है। क्योंकि ब्रह्म अपनी शब्द शक्ति से अपने नाना रूप बना लेता है, यह दुर्गा का पति है इसलिए इस श्लोक में कह रहा है कि मैं श्री कृष्ण आदि की तरह दुर्गा से जन्म नहीं लेता। (25)

केवल हिन्दी : मैं योगमायासे छिपा हुआ सबके प्रत्यक्ष नहीं होता अर्थात् अदृश्य रहता हूँ इसलिये मुझ जन्म न लेने वाले अविनाशी अटल भावको यह अज्ञानी जनसमुदाय संसार नहीं जानता अर्थात् मुझको अवतार रूप में आया समझता है। क्योंकि ब्रह्म अपनी शब्द शक्ति से अपने नाना रूप बना लेता है, यह दुर्गा का पति है इसलिए इस श्लोक में कह रहा है कि मैं श्री कृष्ण आदि की तरह दुर्गा से जन्म नहीं लेता। (25)

विशेष :- गीता अध्याय 7 श्लोक संख्या 24-25 में गीता ज्ञान दाता प्रभु अपने विषय में कह रहा है कि मैं अव्यक्त रहता हूँ अर्थात् मैं अपनी योग माया अर्थात् सिद्धी शक्ति से छिपा रहता हूँ। सर्व के समक्ष अपने वास्तविक काल रूप में नहीं आता। यह प्रथम अव्यक्त हुआ। फिर गीता अध्याय 8 श्लोक 18 में कहा है कि ये सर्व प्राणी प्रलय के समय अव्यक्त में लीन हो जाते हैं। विचार करें यह दूसरा अव्यक्त हुआ। फिर गीता अध्याय 8 श्लोक 20 में कहा है कि उस अव्यक्त प्रभु से अर्थात् परब्रह्म से दूसरा अव्यक्त अर्थात् गुप्त परमात्मा तो सर्व प्राणियों के नष्ट होने पर भी नष्ट नहीं होता वह सनातन अव्यक्त अर्थात् वह आदि परोक्ष प्रभु तीसरा अव्यक्त परमात्मा है। गीता अध्याय 8 श्लोक 21 में कहा है कि उस गुप्त परमात्मा को अविनाशी अव्यक्त कहा जाता है। जिस परमात्मा के पास जाने के पश्चात् प्राणी फिर लौटकर संसार में नहीं आते वह स्थान वास्तव में पूर्ण मोक्ष स्थल है। वह स्थान मेरे अर्थात् गीता ज्ञान दाता के स्थान अर्थात् ब्रह्म लोक से श्रेष्ठ है। विचार करें यह तीसरा अव्यक्त अर्थात् गुप्त प्रभु सिद्ध हुआ जो वास्तव में अविनाशी है। यह प्रमाण गीता अध्याय 15 श्लोक 1-4 व 16-17 में है। जिसमें तीन परमात्माओं का वर्णन स्पष्ट है। एक क्षर पुरूष अर्थात् ब्रह्म दूसरा अक्षर पुरूष अर्थात् परब्रह्म तथा तीसरा परम अक्षर ब्रह्म अर्थात् पूर्ण ब्रह्म परम अक्षर ब्रह्म का प्रमाण गीता अध्याय 8 श्लोक 1 तथा 3 में है।

अध्याय 7 का श्लोक 26

वेदाहं समतीतानि वर्तमानानि चार्जुन।
भविष्याणि च भूतानि मां तु वेद न कश्चन। २६।

वेद्, अहम्, समतीतानि, वर्तमानानि, च, अर्जुन,
भविष्याणि, च, भूतानि, माम्, तु, वेद,न,कश्चन ।।26।।

अनुवाद : (अर्जुन) हे अर्जुन! (समतीतानि) पूर्वमें व्यतीत हुए (च) और (वर्तमानानि) वर्तमानमें स्थित (च) तथा (भविष्याणि) आगे होनेवाले (भूतानि) सब भूतोंको (अहम्) मैं (वेद) जानता हूँ (तु) परंतु (माम्) मुझको (कश्चन) कोई (न) नहीं (वेद) जानता। (26)

केवल हिन्दी : हे अर्जुन! पूर्व में व्यतीत हुए और वर्तमान में स्थित तथा आगे होने वाले सब

प्राणियों को मैं जानता हूँ, परंतु मुझको कोई नहीं जानता। (26)

अध्याय 7 का श्लोक 27

इच्छाद्वेषसमुत्थेन द्वन्द्वमोहेन भारत।
सर्वभूतानि सम्मोहं सर्गे यान्ति परन्तप।२७।

इच्छाद्वेषसमुत्थेन, द्वन्द्वमोहेन, भारत,
सर्वभूतानि, सम्मोहम्, सर्गे, यान्ति, परन्तप ।।27।।

अनुवाद : (भारत) हे भरतवंशी (परन्तप) अर्जुन! (सर्गे) संसारमें (इच्छाद्वेषसमुत्थेन) इच्छा और द्वेषसे उत्पन्न (द्वन्द्वमोहेन) सुख-दुःखादि द्वन्द्वरूप मोहसे (सर्वभूतानि) सम्पूर्ण प्राणी (सम्मोहम्) अत्यन्त अज्ञानताको (यान्ति) प्राप्त हो रहे हैं। (27)

केवल हिन्दी : हे भरतवंशी अर्जुन! संसारमें इच्छा और द्वेषसे उत्पन्न सुख-दुःखादि द्वन्द्वरूप मोहसे सम्पूर्ण प्राणी अत्यन्त अज्ञानताको प्राप्त हो रहे हैं। (27)

अध्याय 7 का श्लोक 28

येषां त्वन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम्।
ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मां दृढव्रताः।२८।

येषाम्, तु, अन्तगतम्, पापम्, जनानाम्, पुण्यकर्मणाम्,
ते, द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ताः, भजन्ते, माम्, दढव्रताः ।।28।।

अनुवाद : (तु) परंतु निष्कामभावसे (पुण्यकर्मणाम्) श्रेष्ठ कर्मोंका आचरण करनेवाले (येषाम्) जिन (जनानाम्) पुरुषोंका (पापम्) पाप (अन्तगतम्) नष्ट हो गया है (ते) वे (द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ताः) राग-द्वेषजनित द्वन्द्वरूप मोहसे मुक्त (दढव्रताः) दढ़निश्चयी भक्त (माम्) मुझको सब प्रकारसे (भजन्ते) भजते हैं। (28)

केवल हिन्दी : परंतु निष्कामभावसे श्रेष्ठ कर्मोंका आचरण करनेवाले जिन पुरुषोंका पाप नष्ट हो गया है वे राग-द्वेषजनित द्वन्द्वरूप मोहसे मुक्त दढ़निश्चयी भक्त मुझको सब प्रकारसे भजते हैं। (28)

अध्याय 7 का श्लोक 29

जरामरणमोक्षाय मामाश्रित्य यतन्ति ये।
ते ब्रह्म तद्विदुः कृत्स्नमध्यात्मं कर्म चाखिलम्। २९।

जरामरणमोक्षाय, माम्, आश्रित्य, यतन्ति, ये, ।
ते, ब्रह्म, तत् विदुः, कत्स्नम्, अध्यात्मम्, कर्म, च, अखिलम् ।।29।।

अनुवाद : (ये) जो साधक (माम् आश्रित्य) मेरे द्वारा बताए ज्ञान का आश्रय लेकर तत्वदर्शी संत से ज्ञान समझकर (जरा-मरण मोक्षाय) केवल जरा यानि वद्धावस्था के कष्ट से और मत्यु के कष्ट से मोक्ष यानि छुटकारा पाने के लिए (यतन्ति) भक्ति करके प्रयत्न करते हैं। (ते) वे साधक (तत् ब्रह्म) उस ब्रह्म को (कत्स्नम् अध्यातमम्) सम्पूर्ण अध्यात्म को (च) और (अखिलम् कर्म) सम्पूर्ण कर्मों को (विदुः) जानते हैं।(29)

केवल हिन्दी : जो साधक मेरे द्वारा बताए ज्ञान का आश्रय लेकर तत्वदर्शी संत से तत्वज्ञान समझकर वद्ध अवस्था तथा मत्यु से छुटकारा यानि मोक्ष पाने के लिए प्रयत्न करते हैं। वे साधक उस ब्रह्म को, सम्पूर्ण अध्यात्म को, सम्पूर्ण कर्मों को जानते हैं।(29)

अध्याय 7 का श्लोक 30

साधिभूताधिदैवं मां साधियज्ञं च ये विदुः।
प्रयाणकालेऽपि च मां ते विदुर्युक्तचेतसः। ३०।

साधिभूताधिदैवम्, माम्, साधियज्ञम्, च, ये, विदुः।
प्रयाणकाले,अपि,च,माम्,ते,विदुः,युक्तचेतसः।।30।।

अनुवाद : जिन्होंने तत्वदर्शी संत से ज्ञान नहीं समझा। जिस कारण से (ये) जो साधक (साधिभूत अधिदेवम्) अधिभूत अधिदेव सहित (च) और (साधियज्ञम्) अधियज्ञ के सहित (माम्) मुझे जानते हैं (च) और (ते) वे (युक्तचेतसा) साधना में लगे साधक (प्रयाण काले) मत्यु समय में (अपि) भी (माम्) मुझे ही (विदुः) जानते हैं यानि उनको काल ब्रह्म के अतिरिक्त पूर्ण परमात्मा का ज्ञान नहीं है। जिस कारण से अन्त समय में उन अज्ञानियों की आस्था काल ब्रह्म में रहती है। जिस कारण से वे काल जाल में ही रह जाते हैं।(30)

केवल हिन्दी : जिन्होंने तत्वदर्शी संत से ज्ञान नहीं समझा, जिस कारण से जो साधक अधिभूत अधिदेव सहित तथा अधियज्ञ सहित मुझे जानते हैं और वे साधना में लगे साधक मत्यु समय में भी मुझे ही जानते हैं। यानि उनको काल ब्रह्म के अतिरिक्त अन्य पूर्ण परमात्मा का ज्ञान नहीं है। जिस कारण से अन्त समय में भी उन अज्ञानियों की आस्था काल ब्रह्म में ही रह जाती है। जिस कारण से वे काल जाल में ही रह जाते हैं।(30)

(इति अध्याय सातवाँ)

❑❑❑

आठवां अध्याय

।। दिव्य सारांश ।।

।। वह तत् ब्रह्म यानि पूर्णब्रह्म कौन है? ।।

अध्याय 8 के श्लोक 1 में अर्जुन ने गीता ज्ञान दाता से पूछा कि जो आपने गीता अध्याय 7 श्लोक 29 में तत् ब्रह्म कहा है, वह तत्ब्रह्म कौन है? इसका उत्तर अध्याय 8 के श्लोक 3 में दिया है कि वह परम अक्षर ब्रह्म है अर्थात् पूर्णब्रह्म है।

विशेष :- अध्यात्म में तीन पुरुष (प्रभु) विशेष हैं।

1. *क्षर पुरुष (ब्रह्म, ईश)*
2. *अक्षर पुरुष (परब्रह्म)*
3. *परम अक्षर पुरुष - यह पूर्ण ब्रह्म है। परम अक्षर ब्रह्म भी इसी को कहते हैं।*

प्रमाण गीता जी के अध्याय 15 के श्लोक 16,17 में। जैसे क्षर पुरुष (नाशवान भगवान) तथा अक्षर पुरुष (अविनाशी भगवान) और वास्तव में अविनाशी (पूर्ण अविनाशी) तो उपरोक्त दोनों से उत्तम पुरुष तो अन्य ही है। जिसको पूर्ण अविनाशी परमात्मा कहा जाता है। वह परम अक्षर ब्रह्म अर्थात् पूर्ण परमात्मा (सतपुरुष) है। वही तीनों लोकों में प्रवेश करके सर्व का धारण-पोषण करता है। अध्याय 8 के श्लोक 4 में कहा है कि इस देहधारियों से श्रेष्ठ अर्थात् मानव शरीर में नाशवान भाव वाले प्राणियों का स्वामी अर्थात् अधिभूत और पूर्ण परमात्मा परम अक्षर ब्रह्म ही अधीदेव और अधियज्ञ है अर्थात् सर्व यज्ञों में प्रतिष्ठित है। इसी प्रकार मैं भी इन प्राणियों में हूँ। जैसे गीता अध्याय 15 श्लोक 15 में कहा है कि मैं सर्व प्राणियों के हृदय में स्थित हूँ।

भावार्थ :- अध्याय 15 के उपरोक्त श्लोक का भावार्थ है कि काल ब्रह्म केवल अपने इक्कीस ब्रह्माण्डों के प्राणियों के हृदय में स्थित है तथा परम अक्षर ब्रह्म काल ब्रह्म के इक्कीस ब्रह्माण्डों तथा अपने सर्व ब्रह्माण्डों के प्राणियों के हृदय में स्थित है क्योंकि परम अक्षर ब्रह्म ही सर्वव्यापक है यानि वासुदेव है।

प्रमाण :- गीता अध्याय 13 श्लोक 17 में कहा है कि वह पूर्ण ब्रह्म ज्योतियों का भी ज्योति माया से अति परे कहा जाता है वह तत्वज्ञान द्वारा जानने योग्य है और सर्व प्राणियों के हृदय में विशेष रूप से स्थित है। यही प्रमाण गीता अध्याय 18 श्लोक 61 में है। कहा है कि ''शरीर रूपी यन्त्र में आरुढ़ हुए प्राणियों को परमेश्वर अपनी माया से भ्रमण कराता हुआ सर्व प्राणियों के हृदय में स्थित है। फिर श्रद्धालुओं को भ्रमित करने के लिए अध्याय 9 का श्लोक 4-5 तथा अध्याय 7 के श्लोक 12 में कहा है कि ब्रह्म (काल) कह रहा है कि मैं प्राणियों में नहीं हूँ।

''गीता अध्याय 8 श्लोक 5 से 10 तक का सारांश''

।। काल ब्रह्म का उपासक काल ब्रह्म को तथा परम अक्षर ब्रह्म का उपासक परम अक्षर ब्रह्म को प्राप्त होता है।।

गीता अध्याय 8 श्लोक 6 में कहा है कि यह नियम है कि जो अन्त समय में जिस प्रभु में भाव करता है वह साधक उसी को प्राप्त होता है। अध्याय 8 के श्लोक 5 और 7 में काल भगवान कह

रहा है जो अंत समय में मेरा ध्यान करता है वह मेरे (काल) को प्राप्त होता है। अंत समय में जो जिसका सुमरण करता है उसी को प्राप्त होता है। इसलिए मेरा (काल का) सुमरण कर और युद्ध भी कर। इससे मेरे को ही प्राप्त होगा।

''पूर्ण ब्रह्म का साधक उसी को प्राप्त होता है''

अध्याय 8 के श्लोक 8 से 10 में अपने से अन्य तत् ब्रह्म यानि उस परम अक्षर ब्रह्म की भक्ति करने को कहा जिसका वर्णन गीता अध्याय 8 श्लोक 3 में है। कहा है कि हे अर्जुन! जो साधक पूर्ण मुक्ति चाहता है तो किसी और में चित्त न लगा कर केवल एक परम दिव्य पुरुष (पूर्ण परमात्मा-सतपुरुष) का सुमरण करता है। वह उसी को प्राप्त होता है। जो सनातन (आदि पुरुष) नियन्ता (सबको सम्भालने वाला) सुक्ष्म से अति सुक्ष्म सबका धारण पोषण करने वाला अचिन्त रूप (शांत पूर्ण ब्रह्म) सूर्य के समान प्रकाश रूप (स्वप्रकाशित) अज्ञान से अति परे, पूर्ण प्रभु सतपुरुष (कविम्) कविर्देव का स्मरण करता है, वह भक्ति युक्त अंत समय में भक्ति के बल (सच्चे नाम मंत्र की कमाई) से भकुटि के मध्य में प्राण को अच्छी तरह स्थापित करके निश्चल मन से सुमरण करता हुआ उस परम दिव्य पुरुष (पूर्णब्रह्म-सतपुरुष) को ही प्राप्त होता है।(8/8-10) इन तीनों श्लोकों में पूर्ण ब्रह्म परमात्मा (सतपुरुष) के बारे में ज्ञान दिया है। संकेत भी किया है कि उसका नाम (कविम्) कविर्देव है।

''गीता अध्याय 8 श्लोक 11 से 14 तक का भावार्थ''

गीता अध्याय 8 श्लोक 11-12 का सारांश :- उपरोक्त श्लोकों 8 से 10 में जिस दिव्य रूप परम पुरूष अर्थात् पूर्ण परमात्मा की भक्ति करने वाला अंतिम समय तक उसी के चिन्तन में शरीर त्याग कर जाता है। वह उसी को प्राप्त होता है। उस पूर्ण परमात्मा की भक्ति विधि के विषय में गीता ज्ञान दाता कह रहा है श्लोक 11-12 में।

अध्याय 8 श्लोक 11 में कहा है कि वेद के जानने वाले विद्वान अर्थात् तत्वदर्शी सन्त जिस परमात्मा को अविनाशी कहते हैं तथा जिस भक्ति विधि द्वारा उस अविनाशी परमात्मा के परम पद चाहने वाले ब्रह्मचर्य अर्थात् सयंम करते हैं। (ब्रह्मचर्य का अर्थ यहाँ संयम है जैसे अहार-विचार-विलास विकारों में सयंम रखना ब्रह्मचर्य कहा जाता है) उस भक्ति विधि (पद) को तेरे से संक्षेप में कहूँगा।

अध्याय 8 श्लोक 12 में बताया है कि पूर्ण परमात्मा की प्राप्ति के लिए विधि यह है ''साधक मन को सर्व इन्द्रियों से हटाकर स्वांस के ऊपर स्थापित करके हृदय तथा मस्तिक में परमेश्वर की योगधारणा अर्थात् भक्ति में स्थित होता।

विशेष :-- पूर्ण परमात्मा की भक्ति साधना सत्यनाम द्वारा करने का संकेत है। जैसे सत्यनाम में दो मन्त्र होते हैं। एक ओं (ॐ) दूसरा तत् (जो सांकेतिक है केवल शिष्य को ही बताया जाता है।) ॐ (ओं) मन्त्र ब्रह्म का जाप है ब्रह्म का सहंस्र कमल चक्र मस्तिक के पीछे है तथा तत् मन्त्र परब्रह्म का जाप है। इस जाप को सार्थक करने के लिए हृदय में विशेष रूप से (जैसे सूर्य घड़े के जल में रहता है) रह रहे पूर्ण परमात्मा का ध्यान करना होता है। इसलिए स्वांस के साथ मन्त्र के जाप पर मन, सुरति व निरति एकाग्र करके स्वांस-उस्वांस द्वारा-सुमरण अर्थात् अजपा जाप किया जाता है। जब श्वांस शरीर से बाहर जाता है तो नाम के साथ ब्रह्म के संहस्र कमल की ओर ध्यान जाता है। जब हृदय की ओर स्वांस जाता है तो नाम के साथ पूर्ण परमात्मा व परब्रह्म का ध्यान

किया जाता है यह विधि उस दिव्य परम पुरूष अर्थात् परम अक्षर ब्रह्म को प्राप्त करने की है।

विचार करें :-- जिस समय मन, सुरति व निरति तथा स्वांस नाम के सुमरन में लीन हो जाता है तब अपने आप शरीर के सर्व द्वार निष्क्रिय हो जाते हैं। हठयोग करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। उपरोक्त साधना को चलते-2 शारिरीक कार्य करते-2 खाते, पीते, जागते तथा सोते समय भी कर सकते हैं। सोते समय करने से अभिप्राय है कि जिस समय साधक का सुमरण का अभ्यास परिपक्व हो जाता है उस समय सोते समय रात्रि में भी स्वपन में सुमरण स्वतः चलता रहता है। गीता अध्याय 17 श्लोक 23 में भी इसी का संकेत है।

विवेचन :-- गीता के अन्य अनुवाद कर्ताओं ने अपने अनुवाद में लिखा है कि सर्व इन्द्रियों के द्वारों को रोककर तथा मन को हृदय में स्थित करके प्राण को (स्वांस को) मस्तक में स्थापित करके परमात्मा की योग धारण में लीन होवें।

विचार करें :-- मन द्वारा ही साधना व ध्यान किया जाता है। यदि मन हृदय में स्थित है तो स्वांस मस्तक में रूक नहीं सकता। क्योंकि मन ही स्वांस को रोक सकता है। मन एक समय में दो स्थानों पर कार्य नहीं कर सकता। स्वांस मन के सहयोग बिना चल तो सकता है परन्तु रूक नहीं सकता। इसलिए अन्य अनुवाद कर्ताओं का टीका न्याय संगत नहीं है। जो मुझ दास (रामपाल दास) द्वारा किया है वह उचित है।

गीता ज्ञान दाता प्रभु ने अपनी साधना के विषय में अध्याय 8 श्लोक 13 में कहा है जिस का सम्बन्ध गीता अध्याय 8 श्लोक 11-12 से है। जिनमें कहा है कि जो साधक उपरोक्त श्लोक 11 व 12 में बताए पूर्ण मोक्ष मार्ग के तीन मन्त्र का जाप बताया है जिसमें मुझ ब्रह्म का केवल एक ओं (ॐ) अक्षर है। इस प्रकार विधिवत् स्मरण करता हुआ शरीर त्याग कर जाता है परमगति अर्थात् ॐ के मंत्र से होने वाले मोक्ष को प्राप्त होता है।

गीता अध्याय 8 श्लोक 13-14 का भावार्थ :-- इन श्लोकों में कहा है कि ॐ मन्त्र का जाप करने वाला भक्त वे भी अनन्य मन से अर्थात् एक ही इष्ट अर्थात् ब्रह्म में आस्था रखने वाला, अन्य देवी-देवताओं, माई-मसानी, हनुमान, गणेश, ब्रह्मा-विष्णु-महेश आदि में भी नहीं ध्यान रहे अर्थात् तीन गुणों से भी परे मुझ (ब्रह्म) को निरन्तर सुमरण करता है उसको मैं सुलभ हूँ अर्थात् मेरा लाभ आसानी से प्राप्त कर सकता है। ''ओम्'' (ॐ) का जाप ब्रह्म का है और इसके स्मरण से ब्रह्मलोक प्राप्त होता है। गीता अध्याय 8 श्लोक 16 में कहा है कि ब्रह्मलोक में गए प्राणी भी पुनः जन्म-मरण के चक्र में रहते हैं।

{काल को प्राप्त यानि दर्शन नहीं कर सकते। क्योंकि गीता जी के अध्याय 11 के श्लोक 47 और 48 में स्पष्ट कहा है कि मैं किसी प्रकार की वेदों में वर्णित साधना से भी प्राप्य नहीं हूँ। हाँ, काल (ब्रह्म) का लाभ स्वर्ग-नरक-राजा और चौरासी लाख योनियों में चक्र लगाना ही है। इसलिए इस अपनी साधना से होने वाली गति यानि मुक्ति को अध्याय 7 के श्लोक 18 में अनुत्तम (अश्रेष्ठ) गतिम (मुक्ति) स्थिति स्वयं भगवान ने कहा है।}

।। ब्रह्म (काल) प्राप्त साधक का सुख क्षणिक है।।

अध्याय 8 के श्लोक 15 में काल (ज्योति निरंजन) ने अपनी साधना से होने वाले तथा पूर्ण परमात्मा की साधना से होने वाले परिणामों की जानकारी देते हुए कहा है कि मुझे प्राप्त साधक का सुख तो क्षण भंगुर हैं अर्थात् उनका जन्म-मरण बना रहेगा। परम सिद्धि को (पूर्णब्रह्म को) प्राप्त

महात्मा दुःखोंके घर रूप जन्म-मरण (पुर्नजन्म) को प्राप्त नहीं होते अर्थात् वे पूर्ण मुक्त हो जाते हैं।

❖ *अध्याय 8 के श्लोक 15 का अनुवाद :-गीता ज्ञान दाता ने कहा है कि (माम उपेत्य) मुझे प्राप्त होने वाले का (पुनर्जन्म) पुनर्जन्म यानि जन्म-मरण बना रहेगा जो (दुःखालयम्) दुःखों का घर है। यहाँ का जीवन (अशाश्वतम्) क्षंण-भंगुर है। जो महात्मा परम सिद्धि को प्राप्त है, वे पुनर्जन्म को (न आप्नुवन्ति) प्राप्त नहीं होते।*

❖ *गीता अध्याय 8 श्लोक 16 का अनुवाद :- गीता ज्ञान दाता ने कहा है कि हे अर्जुन! (माम्) मुझे (उपेत्य) प्राप्त होकर (तू) तो (पुनर्जन्म) पुनर्जन्म होता है। मेरे साधक (न विद्यते) नहीं जानते कि (आब्रह्म लोका भुवनात्) ब्रह्मलोक तक सर्व लोक (पुनरावर्तिनः) पुनरावर्ती में हैं। पुनरावर्ती का भावार्थ है कि ब्रह्मलोक तक गए साधकों का पुनर्जन्म होता है। वे बार-बार स्वर्ग-नरक व अन्य शरीरों को प्राप्त होते हैं।(8/16)*

❖ *गीता अध्याय 8 श्लोक 17 :- इस श्लोक में अक्षर पुरूष यानि परब्रह्म के एक दिन-रात्रि की जानकारी है। उसको समझने के लिए पढ़ें :-*

।। महाप्रलय में ब्रह्मण्ड में बना ब्रह्मलोक भी नष्ट हो जाता है।।

अध्याय 8 के श्लोक 16 में स्पष्ट है कि हे अर्जुन! ब्रह्म लोक से लेकर सबलोक बारम्बार उत्पत्ति व नाश वाले हैं। जो यह नहीं जानते वे मुझे प्राप्त होकर भी जन्म-मत्यु को ही प्राप्त होते है। पूर्ण मुक्त नहीं होते। अन्य अनुवाद कर्ताओं ने लिखा है कि मुझे प्राप्त करने का पुर्नजन्म नहीं होता। विचार करे यदि यह अनुवाद ठीक माना जाए तो गीता अध्याय 2 श्लोक 12, अध्याय 4 श्लोक 5-9, अध्याय 10 श्लोक 2 का अर्थ-निर्थक हो जाता है। जिनमें गीता ज्ञान दाता कह रहा है कि अर्जुन तेरे तथा मेरे बहुत से जन्म हो चुके हैं तू नहीं जानता में जानता हूँ। फिर अध्याय 18 श्लोक 62 तथा अध्याय 15 श्लोक 4 में कहा है कि पूर्ण मोक्ष के लिए पूर्ण परमात्मा की भक्ति कर।

विशेष :-- इसमें ब्रह्म (काल) कह रहा है कि ब्रह्म लोक तक सर्व लोक नाशवान हैं। ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा इनके लोकों के प्राणी भी नहीं रहेंगे। फिर उनके उपासक कहाँ रहेंगे? देवी-देवता भी नहीं रहेंगे। फिर पूजारी कहाँ रहेंगे? अर्थात् कोई प्राणी मुक्त नहीं। न ब्रह्मा लोक में पहुँचे हुए, न विष्णु लोक में पहुँचे हुए, न शिव व ब्रह्म लोक में पहुँचे हुए। फिर मुझे प्राप्त (अर्थात् काल ब्रह्म को प्राप्त) का भी पुर्नजन्म है। क्योंकि ब्रह्म लोक भी नष्ट होवेगा। इसलिए ब्रह्म तक के कोई भी साधक मुक्त नहीं। इति सिद्धं।

प्रलय की जानकारी

❖ *प्रलय का अर्थ है 'विनाश'। यह दो प्रकार की होती है - आंशिक प्रलय तथा महाप्रलय।*

आंशिक प्रलय : यह दो प्रकार की होती है। एक तो चौथे युग (कलियुग) के अंत में पृथ्वी पर एक निःकलंक नामक दसवाँ अवतार आता है, जिसे कल्कि भी कहा है। वह उस समय (कलियुग) के सर्व भक्तिहीन मानव शरीर धारी प्राणियों को अपनी तलवार से मार कर समाप्त करेगा। उस समय मानव की उम्र 20 वर्ष की होगी तथा 5 वर्ष खण्ड (Less) होगी अर्थात् 15 वर्ष में सब बालक-जवान-वृद्ध होकर मर जाया करेंगे। पाँच वर्षीय लड़की बच्चों को जन्म दिया करेगी। मानव कद लगभग डेढ़ या अढ़ाई फुट का होगा। उस समय इतने भूकंप आया करेंगे कि पृथ्वी पर चार फुट ऊँचें भवन भी नहीं बना पाया करेंगे। सर्व प्राणी धरती में बिल खोद कर रहा करेंगे। पृथ्वी

उपजाऊँ नहीं रहेगी। तीन हाथ (लगभग साढे चार फुट) नीचे तक जमीन का उपजाऊ तत्त्व समाप्त हो जाएगा। कोई फलदार वक्ष नहीं होगा तथा पीपल के पेड़ को पत्ते नहीं लगेंगे। सर्व मनुष्य (स्त्री व पुरुष)मांसाहारी होंगे। आपसी व्यवहार बहुत घटिया होगा। रीछों की अस्वारी किया करेंगे। रीछ उस समय का अच्छा वाहन होगा। पर्यावरण दूषित होने से वर्षा होनी बंद हो जाऐंगी। जैसे ओस पड़ती है ऐसे वर्षा हुआ करेगी। गंगा-जमना आदि नदियाँ भी सूख जाएगी। यह कलियुग का अंत होगा। उस समय प्रलय (पथ्वी पर पानी ही पानी होगा) होगी। एक दम इतनी वर्षा होगी की सारी पथ्वी पर सैकड़ों फुट पानी हो जाएगा। अति उच्चे स्थानों पर कुछ मानव शेष रहेंगे। यह पानी सैंकड़ों वर्षों में सूखेगा। फिर सारी पथ्वी पर जंगल उग जाएगा। पथ्वी फिर से उपजाऊ हो जाएगी। जंगल (वक्षों) की अधिकता से पर्यावरण फिर शुद्ध हो जाएगा। कुछ व्यक्ति जो भक्ति युक्त होंगे ऊँचे स्थानों पर बचे रह जाएंगे। उनके संतान होगी। वह बहुत ऊँचे कद की होगीं। चूंकि वायुमण्डल में वातावरण की शुद्धता होने से शरीर अधिक स्वस्थ हो जायेगा। मात-पिता छोटे कद के होंगे और बच्चे उँचे कद (शरीर)के होगें। कुछ समय पश्चात् माता-पिता और बच्चों का युवा अवस्था में कद समान हो जाएगा। उस समय वातावरण पूर्ण रूप से शुद्ध होगा। इस प्रकार यह सतयुग का प्रारम्भ होगा। यह पथ्वी पर आंशिक प्रलय ज्योति निरंजन (काल) द्वारा की जाती है।

❖ दूसरी आंशिक प्रलय एक हजार चतुर्युग पश्चात् होती है। तब श्री ब्रह्मा जी का एक दिन समाप्त होता है। इतने ही चतुर्युग तक रात्रि होती है। एक रात्रि तक प्रलय रहती है। {वास्तव में श्री ब्रह्मा जी का एक दिन 1008 चतुर्युग होता है, एक ब्रह्मा जी के दिन में चौदह इन्द्रों का शासन काल पूरा होता है। एक इन्द्र का शासन काल बहतर चौकड़ी युग का होता है। एक चौकड़ी (चतुर्युगी) में चार युग होते हैं :- 1. सतयुग जो 1728000 वर्षों का होता है। 2.त्रेता युग जो 1296000 वर्षों का होता है। 3. द्वापर युग जो 864000 वर्षों का होता है। 4. कलयुग जो 432000 वर्षों का होता है। इसी को सीधा एक हजार चतुर्युग कहते हैं।}

जब ब्रह्मा का दिन समाप्त होता है तो पथ्वी, पाताल व स्वर्ग (इन्द्र) लोक के सर्व प्राणी नाश को प्राप्त होते हैं। प्रलय में विनाश हुए प्राणी ब्रह्म अर्थात् काल जो ब्रह्म लोक में रहता है तथा व्यक्त रूप से किसी को दर्शन नहीं देता जिसे अव्यक्त मान लिया गया है उस अव्यक्त (ब्रह्म) के लोक में अचेत करके गुप्त डाल दिए जाते हैं। फिर एक हजार चतुर्युग (वास्तव में 1008 चतुर्युग की होती है) की ब्रह्मा की रात्रि समाप्त होने पर फिर इन तीनों लोकों (पाताल-पथ्वी-स्वर्ग लोक) में उत्पत्ति कर्म प्रारम्भ हो जाता है। उस समय ब्रह्मा, विष्णु, शिव लोक के प्राणी और ब्रह्मलोक (महास्वर्ग) के प्राणी बचे रहते हैं। यह दूसरी प्रकार की आंशिक प्रलय हुई।

❖ महाप्रलय : यह तीन प्रकार की होती है। प्रथम महाप्रलय :- यह काल (ज्योति निरंजन) महाकल्प के अंत में करता है जिस समय ब्रह्मा जी की मत्यु होती है। {ब्रह्मा की आयु = ब्रह्मा की रात्रि एक हजार चतुर्युग की होती है तथा इतना ही दिन होता है। तीस दिन-रात्रि का एक महिना, 12 महिनों का एक वर्ष, सौ वर्ष का एक ब्रह्मा का जीवन। यह एक महाकल्प कहलाता है।}

❖ दूसरी महा प्रलय :-- सात ब्रह्मा जी की मत्यु के बाद एक विष्णु जी की मत्यु होती है, सात विष्णु जी की मत्यु के उपरान्त एक शिव की मत्यु होती है। इसे दिव्य महाकल्प कहते हैं उसमें ब्रह्मा, विष्णु, शिव सहित इनके लोकों के प्राणी तथा स्वर्ग लोक, पाताल लोक, मत्यु लोक आदि में अन्य रचना तथा उनके प्राणी नष्ट हो जाते हैं। उस समय केवल ब्रह्मलोक बचता है जिसमें यह काल भगवान (ज्योति निरंजन) तथा दुर्गा तीन रूपों महाब्रह्मा-महासावित्री, महाविष्णु-महालक्ष्मी

और महाशंकर-महादेवी (पार्वती) के रूप, में तीन लोक बना कर रहता है। इसी ब्रह्मलोक में एक महास्वर्ग बना है, उसमें चौथी मुक्ति प्राप्त प्राणी रहते हैं। {मार्कण्डेय, रूमी ऋषि जैसी आत्मा जो चौथी मुक्ति प्राप्त हैं जिन्हें ब्रह्म लीन कहा जाता है। वे यहाँ के तीनों लोकों के साधकों की दिव्य दष्टी की क्षमता (रेंज) से बाहर होते हैं। स्वर्ग, मत्यु व पाताल लोकों के ऋषि उन्हें देख नहीं पाते। इसलिए ब्रह्म लीन मान लेते हैं। परन्तु वे ब्रह्मलोक में बने महास्वर्ग में चले जाते हैं।}

फिर दिव्य महाकल्प के आरम्भ में काल (ज्योति निरंजन) भगवान ब्रह्म लोक से नीचे की सष्टि फिर से रचता है। काल भगवान अपनी प्रकति (माया-आदि भवानी) महासावित्री, महालक्ष्मी व महादेवी (गौरी)के साथ रति कर्म से अपने तीन पुत्रों (रजगुण ब्रह्मा, सतगुण विष्णु, तमगुण शिव) को उत्पन्न करता है। यह काल भगवान उन्हें अपनी शक्ति से अचेत अवस्था में कर देता है। फिर तीनों को भिन्न-2 स्थानों पर जैसे ब्रह्मा जी को कमल के फूल पर, विष्णु जी को समुद्र में शेष नाग की शैय्या पर, शिव जी को कैलाश पर्वत पर रखता है। तीनों को बारी-बारी सचेत कर देता है। उन्हें प्रकति (दुर्गा) के माध्यम से सागर मंथन का आदेश होता है। तब यह महामाया (मूल प्रकति/शेराँवाली) अपने तीन रूप बना कर सागर में छुपा देती है। तीन लड़कियों (जवान देवियों) को प्रकट करती है। तीनों बच्चे (ब्रह्मा, विष्णु, शिव) इन्हीं तीनों देवियों से विवाह करते हैं। अपने तीनों पुत्रों को तीन विभाग - उत्पत्ति का कार्य ब्रह्मा जी को व स्थिति (पालन-पोषण) का कार्य विष्णु जी को तथा संहार (मारने) का कार्य शिव जी को देता है जिससे काल (ब्रह्म) की सष्टि फिर से शुरु हो जाती है। जिसका वर्णन पवित्र पुराणों में भी है जैसे शिव महापुराण, ब्रह्म महापुराण, विष्णु महापुराण, महाभारत, सुख सागर, देवी भागवद् महापुराण में विस्तत वर्णन किया गया है और गीता जी के चौदहवें अध्याय के श्लोक 3 से 5 में संक्षिप्त रूप से कहा गया है।

❖ तीसरी महाप्रलय :- एक ब्रह्मण्ड में 70000 वार त्रिलोकिय शिव (काल के तमोगुण पुत्र) की मत्यु हो जाती है तब एक ब्रह्मण्ड की प्रलय होती है तथा ब्रह्मलोक में तीनों स्थानों पर रहने वाला काल (महाशिव) अपना महाशिव वाला शरीर भी त्याग देता है। इस प्रकार यह एक ब्रह्मण्ड की प्रलय अर्थात् तीसरी महाप्रलय हुई तथा उस समय एक ब्रह्मलोकिय शिव (काल) की मत्यु हुई तथा 70000 (सतर हजार) त्रिलोकिय शिव (काल के पुत्र) की मत्यु हुई अर्थात् एक ब्रह्मण्ड में बने ब्रह्म लोक सहित सर्व लोकों के प्राणी विनाश में आते हैं। इस समय को परब्रह्म अर्थात् अक्षर पुरूष का एक युग कहते हैं। इस प्रकार गीता अध्याय 8 श्लोक 16 का भावार्थ समझना चाहिए।

''इस प्रकार तीन दिव्य महा प्रलय होती हैं'' :-

❖ ''प्रथम दिव्य महाप्रलय''

जब सौ (100) ब्रह्मलोकिय शिव (काल-ब्रह्म) की मत्यु हो जाती है तब चारों महाब्रह्मण्डों में बने 20 ब्रह्मण्डों के प्राणियों का विनाश हो जाता है।

तब चारों महाब्रह्मण्डों के शुभ कर्मी प्राणियों (हंसात्माओं) को इक्कीसवें ब्रह्मण्ड में बने नकली सत्यलोक आदि लोकों में रख देता है तथा उसी लोक में निर्मित अन्य चार गुप्त स्थानों पर अन्य प्राणियों को अचेत करके डाल देता है तथा तब उसी नकली सत्यलोक से प्राणियों को खाकर अपनी भूख मिटाता है तथा जो प्रतिदिन खाए प्राणियों को उसी इक्कीसवें ब्रह्मण्ड में बने चार गुप्त मुकामों में अचेत करके डालता रहता है तथा वहाँ पर भी ज्योति निरंजन अपने तीन रूप (महाब्रह्मा, महाविष्णु तथा महाशिव) धारण कर लेता है तथा वहाँ पर बने शिव रूप में अपनी जन्म-मत्यु की

लीला करता रहता है, जिससे समय निश्चित रखता है तथा सौ बार मंत्यु को प्राप्त होता है, जिस कारण परब्रह्म के सौ युग का समय इक्कीसवें ब्रह्मण्ड में पूरा हो जाता है। तत् पश्चात् चारों महाब्रह्मण्डों के अन्दर संष्टि रचना का कार्य प्रारम्भ करता है। {जिस एक संष्टि में सौ ब्रह्मलोकिय शिव (काल) की आयु अर्थात् परब्रह्म के सौ युग तक संष्टि रहती है तथा इतनी ही समय प्रलय रहती है अर्थात् परब्रह्म के दो सौ युग (क्योंकि परब्रह्म के एक युग में एक ब्रह्मलोकिय शिव अर्थात् काल की मंत्यु होती है) में एक दिव्य महाप्रलय जो काल द्वारा की जाती है का क्रम पूरा होता है} यह काल अर्थात् ब्रह्म प्रथम अव्यक्त कहलाता है। (गीता अध्याय 7 श्लोक 24-25 में)। दूसरा अव्यक्त परब्रह्म तथा इससे भी परे दूसरा सनातन अव्यक्त जो पूर्ण ब्रह्म है, गीता अध्याय 8 श्लोक 20 का भाव समझें।

❖ ''दूसरी दिव्य महाप्रलय''

इस उपरोक्त महाप्रलय के पाँच बार हो जाने के पश्चात् द्वितीय दिव्य महाप्रलय होती है। दूसरी दिव्य महाप्रलय परब्रह्म (अविगत पुरुष/अक्षर पुरुष) करता है। उसमें काल अर्थात् ब्रह्म (क्षर पुरूष) सहित सर्व 21 ब्रह्मण्डों का विनाश हो जाता है। जिसमें तीनों लोक (स्वर्गलोक-मंत्युलोक-पाताल लोक), ब्रह्मा, विष्णु, शिव व काल (ज्योति निरंजन-ओंकार निरंजन) तथा इनके लोकों (ब्रह्म लोक) अर्थात् सर्व अन्य 21 ब्रह्मण्डों के प्राणी नष्ट हो जाते हैं।

विशेष :- सात त्रिलोकिय ब्रह्मा की मंत्यु के बाद एक त्रिलोकिय विष्णु जी की मंत्यु होती है तथा सात विष्णु की मंत्यु के बाद एक त्रिलोकिय शिव की मंत्यु होती है। 70000 (सतर हजार) त्रिलोकिय शिव की मंत्यु के बाद एक ब्रह्मलोकिय शिव अर्थात् काल (ब्रह्म) की मंत्यु परब्रह्म के एक युग के बाद होती है। ऐसे एक हजार युग का परब्रह्म (अक्षर पुरूष) का एक दिन तथा इतनी ही रात्रि होती है। अक्षर पुरूष की रात्रि का समय शुरू होने पर प्रकंति (दुर्गा) सहित काल (ज्योति निरंजन) अर्थात् ब्रह्म तथा इसके इक्कीस ब्रह्मण्डों के प्राणी नष्ट हो जाते हैं। तब परब्रह्म (दूसरे अव्यक्त) का एक हजार युग का दिन समाप्त होता है। इतनी ही रात्रि व्यतीत होने के उपरान्त ब्रह्म को फिर पूर्ण ब्रह्म प्रकट करता है। गीता अ. 8 श्लोक 17 का भाव ऐसे समझें। परन्तु ब्रह्मण्डों व महाब्रह्मण्डों व इनमें बने लोकों की सीमा (गोलाकार दिवार समझो) समाप्त नहीं होती। फिर इतने ही समय के बाद यह काल तथा माया (प्रकंति देवी) को पूर्ण ब्रह्म (सत्यपुरूष) अपने द्वारा पूर्व निर्धारित संष्टि कर्म के आधार पर पुनः उत्पन्न करता है तथा सर्व प्राणी जो काल के कैदी (बन्दी) हैं, को उनके कर्माधार पर शरीरों में संष्टि कर्म नियम से रचता है तथा लगता है कि परब्रह्म रच रहा है {यहाँ पर गीता अ. 15 का श्लोक 17 याद रखना चाहिए जिसमें कहा है कि उत्तम प्रभु तो कोई और ही है जो वास्तव में अविनाशी परमेश्वर है। जो तीनों लोकों में प्रवेश करके सर्व का धारण–पोषण करता है तथा गीता अ. 18 के श्लोक 61 में कहा है कि अन्तर्यामी परमेश्वर सर्व प्राणियों को यन्त्र (मशीन) के सदंश कर्माधार पर घुमाता है तथा प्रत्येक प्राणी के हृदय में स्थित है।

गीता के पाठकों को फिर भ्रम होगा कि गीता अ. 15 के श्लोक 15 में काल (ब्रह्म) कहता है कि मैं सर्व प्राणियों के हृदय में स्थित हूँ तथा सर्व ज्ञान अपोहन व वेदों को प्रदान करने वाला हूँ।

हृदय कमल में काल भगवान महापार्वती (दुर्गा) सहित महाशिव रूप में रहता है तथा पूर्ण परमात्मा भी जीवात्मा के साथ अभेद रूप से रहता है जेसे वायु रहती है गंध के साथ। दोनों का अभेद सम्बन्ध है परन्तु कुछ गुणों का अन्तर है। गीता अ. 2 के श्लोक 17 से 21 में भी विस्तंत विवरण है। इस प्रकार पूर्ण

ब्रह्म भी प्रत्येक प्राणी के हृदय में जीवात्मा के साथ रहता है जैसे सूर्य दूर स्थान पर होते हुए भी उसकी ऊष्णता व प्रकाश का प्रभाव प्रत्येक प्राणी से अभेद है तथा जीवात्मा का स्थान भी हृदय ही है।

विशेष :— एक महाब्रह्माण्ड का विनाश परब्रह्म के 100 वर्षों के उपरान्त होता है। इतने ही वर्षों तक एक महाब्रह्मण्ड में प्रलय रहती है।

काल अर्थात् ब्रह्म (ज्योति निरंजन) को तो ऐसा जानों जैसे गर्मियों के मौसम में राजस्थान—हरियाणा आदि क्षेत्रों में वायु का एक स्तम्भ जैसा (मिट्टी युक्त वायु) आसमान में बहुत ऊँचे तक दिखाई देता है तथा चक्र लगाता हुआ चलता है। जो अस्थाई होता है। परन्तु गंध तो वायु के साथ अभेद रूप में है। इसी प्रकार जीवात्मा तथा परमात्मा का सुक्ष्म सम्बन्ध समझे। ऐसे ही सर्व प्रलय तथा महाप्रलय के क्रम को पूर्ण परमात्मा (सत्यपुरूष, कविर्देव) से ही होना निश्चित समझे। एक हजार युग जो परब्रह्म की रात्रि है उसके समाप्त होने पर काल (ज्योति निरंजन) सष्टि फिर से सत्यपुरूष कविर्देव की शब्द शक्ति से बनाए समय के विद्यान अनुसार प्रारम्भ होती है। अक्षर पुरुष(परब्रह्म) पूर्ण ब्रह्म (सतपुरूष) के आदेश से काल (ज्योति निरंजन) व माया (प्रकति अर्थात् दुर्गा) को सर्व प्राणियों सहित काल के इक्कीस ब्रह्मण्ड में भेज देता है तथा पूर्ण ब्रह्म के बनाए विद्यान अनुसार सर्व ब्रह्मण्डों में अन्य रचना प्रभु कबीर जी की कपा से हो जाती है। माया (प्रकति) तथा काल (ज्योति निरंजन) के सूक्ष्म शरीर पर नूरी शरीर भी पूर्ण परमात्मा ही रचता है तथा शेष उत्पत्ति ब्रह्म(काल) अपनी पत्नी दुर्गा (प्रकति) के संयोग से करता है। शेष स्थान निरंजन पाँच तत्त्व के आधार से रचता है। फिर काल (ज्योति निरंजन अर्थात् ब्रह्म) की सष्टि प्रारम्भ होती है। इस प्रकार यह परब्रह्म दूसरा अव्यक्त कहलाता है।}

❖ ''तीसरी दिव्य महा प्रलय''

जैसा कि पूर्वोक्त विवरण में पढ़ा कि सत्तर हजार काल (ब्रह्म) के शिव रूपी पात्रों की मत्यु के पश्चात् एक ब्रह्म (महाशिव) की मत्यु होती है वह समय परब्रह्म का एक युग होता है। इसी के विषय में गीता अध्याय 2 श्लोक 12 अध्याय 4 श्लोक 5 तथा 9 में अध्याय 10 श्लोक 2 में गीता ज्ञान दाता प्रभु कह रहा है कि मेरी भी जन्म मत्यु होती है। बहुत से जन्म हो चुके हैं। जिनको देवता लोग (ब्रह्मा,विष्णु तथा शिव सहित) व महर्षि जन भी नहीं जानते क्योंकि वे सर्व मुझ से ही उत्पन्न हुए हैं। गीता अध्याय 4 श्लोक 9 में कहा है कि मेरे जन्म और कर्म दिव्य हैं। परब्रह्म के एक युग में काल भगवान सदा शिव वाला शरीर त्यागता है तथा पुनः अन्य ब्रह्मण्ड में अन्य तीन रूपों में विराजमान हो जाता है। यह लीला स्वयं करता है। परब्रह्म का एक दिन एक हजार युग का होता है इतनी ही रात्रि होती है। तीस दिन-रात का एक महिना, बारह महिनों का एक वर्ष तथा सौ वर्ष की परब्रह्म (द्वितीय अव्यक्त) की आयु होती है। उस समय परब्रह्म (अक्षर पुरूष) की मत्यु होती है। यह तीसरी दिव्य महाप्रलय कहलाती है।

तीसरी दिव्य महा प्रलय में सर्व ब्रह्मण्ड तथा अण्ड जिसमें ब्रह्म (काल) के इक्कीस ब्रह्मण्ड तथा परब्रह्म के सात संख ब्रह्मण्ड व अन्य असंख्यों ब्रह्मण्ड नाश में आवेंगे। धूंधूकार का शंख बजेगा। सर्व अण्ड व ब्रह्मण्ड नाश में आवेंगे परंतु वह तीसरी दिव्य महा प्रलय बहुत समय प्रयान्त होवेगी। वह तीसरी (दिव्य) महा प्रलय सतपुरुष का पुत्र अचिंत अपने पिता पूर्ण ब्रह्म (सतपुरूष) की आज्ञा से सष्टि कर्म नियम से जो पूर्णब्रह्म ने निर्धारित किया हुआ है करेगा और फिर सष्टि रचना होगी। परंतु सतलोक में गए हंस दोबारा जन्म-मरण में नहीं आऐंगे। इस प्रकार न तो अक्षर पुरुष (परब्रह्म) अमर है, न काल निरंजन (ब्रह्म) अमर है, न ब्रह्मा (रजगुण)-विष्णु (सतगुण)-शिव

(तमगुण) अमर हैं। फिर इनके पूजारी (उपासक) कैसे पूर्ण मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं? अर्थात् कभी नहीं। इसलिए पूर्णब्रह्म की साधना करनी चाहिए जिसकी उपासना से जीव सतलोक (अमरलोक) में चला जाता है। फिर वह कभी नहीं मरता, पूर्ण मुक्त हो जाता है। वह पूर्ण ब्रह्म (कविर्देव) तीसरा सनातन अव्यक्त है। जो गीता अ. 8 के श्लोक 20,21 में वर्णन है।

''अमर करुं सतलोक पठाऊं, तातैं बन्दी छोड़ कहांउ''

उसी पूर्ण परमात्मा का प्रमाण गीता जी के अध्याय 2 के श्लोक 17 में, अध्याय 3 के श्लोक 14,15 में, अध्याय 7 के श्लोक 13 और 19 व 29 में, अध्याय 8 के श्लोक 3, 4, 8, 9, 10, 20, 21, 22 में, अध्याय 13 श्लोक 12 से 17 तथा 22 से 24,27 से 28,30-31 व 34 तथा अध्याय 4 श्लोक 31-32, अध्याय 5 श्लोक 14, 15, 16, 19, 20, 24-26 में, अध्याय 6 श्लोक 7 तथा 19-20, 25 से 27 में तथा अध्याय 18 श्लोक 46, 61, 62 तथा 66 में भी विशेष रूप से प्रमाण दिया गया है कि उस पूर्ण परमात्मा की शरण में जा कर जीव फिर कभी जन्म मरण में नहीं आता है।

{विशेष :– काल का जाल समझने के लिए यह विवरण ध्यान रखें कि त्रिलोक में एक शिव जी है। जो इस काल का पुत्र है जो 7 त्रिलोकिय विष्णु जी की मत्यु तथा 49 त्रिलोकिय ब्रह्मा जी की मत्यु के उपरान्त मत्यु को प्राप्त होता है। ऐसे ही काल भगवान एक ब्रह्मण्ड में बने ब्रह्मलोक में महाशिव रूप में भी रहता है। परमेश्वर द्वारा बनाए समय के विद्यान अनुसार सष्टि क्रम का समय बनाए रखने के लिए यह ब्रह्मलोक वाला महाशिव (काल) भी मत्यु को प्राप्त होता है। जब त्रिलोकिय 70000 (सतर हजार) ब्रह्म काल के पुत्र शिव मत्यु को प्राप्त हो जाते हैं तब एक ब्रह्मलोकिय शिव (ब्रह्म/क्षर पुरुष) पूर्ण परमात्मा द्वारा बनाए समय के विद्यान अनुसार परवश हुआ मरता तथा जन्मता है। यह ब्रह्मलोकिय शिव (ब्रह्म/काल) की मत्यु का समय परब्रह्म (अक्षर पुरूष) का एक युग होता है। इसीलिए गीता जी के अ. 2 के श्लोक 12, गीता अ. 4 श्लोक 5, गीता अ. 10 श्लोक 2 में कहा है कि मेरे तथा तेरे बहुत जन्म हो चुके हैं। मैं जानता हूँ तू नहीं जानता। मेरे जन्म अलौकिक (अद्भुत) होते हैं।}

अद्भुत उदाहरण :- आदरणीय गरीबदास साहेब जी सन् 1717 (संवत् 1774) में श्री बलराम जी के घर पर माता रानी जी के गर्भ से जन्म लेकर 61 वर्ष तक शरीर में गांव छुड़ानी जिला झज्जर में रहे तथा सन् 1778 (विक्रमी संवत् 1835) में शरीर त्याग गए। आज भी उनकी स्मति में एक यादगार बनी है जहाँ पर शरीर को जमीन में सादर दबाया गया था। छः महीने के उपरान्त वैसा ही शरीर धारण करके आदरणीय गरीबदास साहेब जी 35 वर्ष तक अपने पूर्व शरीर के शिष्य श्री भक्त भूमड़ सैनी जी के पास शहर सहारनपुर (उत्तर प्रदेश) में रह कर शरीर त्याग गए। वहाँ भी आज उनकी स्मति में यादगार बनी है। स्थान है :- चिलकाना रोड़ से कलसिया रोड़ निकलता है, कलसिया रोड़ पर आधा किलोमीटर चल कर बाएँ तरफ यह अद्वितीय पवित्र यादगार विद्यमान है तथा उस पर एक शिलालेख भी लिखा है, जो प्रत्यक्ष साक्षी है। उसी के साथ में बाबा लालदास जी का बाड़ा भी बना है।

''सर्व प्रभुओं की आयु''

अध्याय 8 का श्लोक 17

सहस्त्रयुगपर्यन्तमहर्यद्ब्रह्मणो विदुः।
रात्रिं युगसहस्त्रान्तां तेऽहोरात्रविदो जनाः। १७।

सहस्त्रयुगपर्यन्तम्, अहः,यत्,ब्रह्मणः, विदुः,रात्रिम्,

युगसहस्त्रान्ताम्, ते, अहोरात्रविदः, जनाः।।17।।

अनुवाद : (ब्रह्मणः) परब्रह्म का (यत्) जो (अहः) एक दिन है उसको (सहस्त्रयुगपर्यन्तम्) एक हजार युग की अवधि वाला और (रात्रिम्) रात्रि को भी (युगसहस्त्रान्ताम्) एक हजार युग तक की अवधि वाली (विदुः) तत्व से जानते हैं (ते) वे (जनाः) तत्वदर्शी संत (अहोरात्रविदः) दिन–रात्रि के तत्व को जानने वाले हैं।(17)

केवल हिन्दी अनुवाद : परब्रह्म का जो एक दिन है उसको एक हजार युग की अवधिवाला और रात्रिको भी एक हजार युग तक की अवधि वाली तत्वसे जानते हैं। वे तत्वदर्शी संत दिन-रात्रि के तत्वको जानने वाले हैं।(17)

नोट :- गीता अध्याय 8 श्लोक 17 के अनुवाद में गीता जी के अन्य अनुवाद कर्ताओं ने ब्रह्मा का एक दिन एक हजार चतुर्युग का लिखा है जो उचित नहीं है। क्योंकि मूल पाठ में सहंसर युग लिखा है न की चतुर्युग। तथा ब्रह्मणः लिखा है न कि ब्रह्मा। इस श्लोक 17 में परब्रह्म (अक्षर पुरूष) के विषय में कहा है न कि ब्रह्मा के विषय में अज्ञानियों ने तत्वज्ञान के अभाव से अर्थों का अनर्थ किया है।

विशेषः- सात त्रिलोकिय ब्रह्मा (काल के रजगुण पुत्र) की मत्यु के बाद एक त्रिलोकिय विष्णु जी की मत्यु होती है तथा सात त्रिलोकिय विष्णु (काल के सतगुण पुत्र) की मत्यु के बाद एक त्रिलोकिय शिव (ब्रह्म-काल के तमोगुण पुत्र) की मत्यु होती है। ऐसे 70000 (सतर हजार अर्थात् 0.7 लाख) त्रिलोकिय शिव की मत्यु के उपरान्त एक ब्रह्मलोकिय महा शिव (सदाशिव अर्थात् काल) की मत्यु होती है। एक ब्रह्मलोकिय महाशिव की आयु जितना एक युग परब्रह्म (अक्षर पुरूष) का हुआ। ऐसे एक हजार युग अर्थात् एक हजार ब्रह्मलोकिय शिव (ब्रह्मलोक में स्वयं काल ही महाशिव रूप में रहता है) की मत्यु के बाद काल के इक्कीस ब्रह्मण्डों का विनाश हो जाता है। इसलिए यहाँ पर परब्रह्म के एक दिन जो एक हजार युग का होता है तथा इतनी ही रात्रि होती है। लिखा है।

(1) रजगुण ब्रह्मा की आयुः-ब्रह्मा का एक दिन एक हजार चतुर्युग का है तथा इतनी ही रात्रि है। एक चतुर्युग में 43,20,000 मनुष्यों वाले वर्ष होते हैं) एक महिना तीस दिन रात का है, एक वर्ष बारह महिनों का है तथा सौ वर्ष की ब्रह्मा जी की आयु है। जो सात करोड़ बीस लाख चतुर्युग की है।

(2) सतगुण विष्णु की आयुः-श्री ब्रह्मा जी की आयु से सात गुणा अधिक श्री विष्णु जी की आयु है अर्थात् पचास करोड़ चालीस लाख चतुर्युग की श्री विष्णु जी की आयु है।

(3) तमगुण शिव की आयुः-श्री विष्णु जी की आयु से श्री शिव जी की आयु सात गुणा अधिक है अर्थात् तीन अरब बावन करोड़ अस्सी लाख चतुर्युग की श्री शिव की आयु है।

(4) काल ब्रह्म अर्थात् क्षर पुरूष की आयुः-सात त्रिलोकिय ब्रह्मा (काल के रजगुण पुत्र) की मत्यु के बाद एक त्रिलोकिय विष्णु जी की मत्यु होती है तथा सात त्रिलोकिय विष्णु (काल के सतगुण पुत्र) की मत्यु के बाद एक त्रिलोकिय शिव (ब्रह्म/काल के तमोगुण पुत्र) की मत्यु होती है। ऐसे 70000 (सतर हजार अर्थात् 0.7 लाख) त्रिलोकिय शिव की मत्यु के उपरान्त एक ब्रह्मलोकिय महा शिव (सदाशिव अर्थात् काल) की मत्यु होती है। एक ब्रह्मलोकिय महाशिव की आयु जितना एक युग परब्रह्म (अक्षर पुरूष) का हुआ। ऐसे एक हजार युग का परब्रह्म का एक दिन होता है। परब्रह्म के एक दिन के समापन के पश्चात् काल ब्रह्म के इक्कीस ब्रह्मण्डों का विनाश हो जाता है तथा काल व प्रकति देवी(दुर्गा) की मत्यु होती है। परब्रह्म की रात्रि (जो एक हजार युग की होती है) के समाप्त होने पर दिन के प्रारम्भ में काल व दुर्गा का पुनर् जन्म होता है फिर ये एक ब्रह्मण्ड में पहले की भांति सष्टि प्रारम्भ करते हैं। इस प्रकार

परब्रह्म अर्थात् अक्षर पुरूष का एक दिन एक हजार युग का होता है तथा इतनी ही रात्रि है।

अक्षर पुरूष अर्थात् परब्रह्म की आयु :- परब्रह्म का एक युग ब्रह्मलोकीय शिव अर्थात् महाशिव (काल ब्रह्म) की आयु के समान होता है। परब्रह्म का एक दिन एक हजार युग का तथा इतनी ही रात्रि होती है। इस प्रकार परब्रह्म का एक दिन–रात दो हजार युग का हुआ। एक महिना 30 दिन का एक वर्ष 12 महिनों का तथा परब्रह्म की आयु सौ वर्ष की है। इस से सिद्ध है कि परब्रह्म अर्थात् अक्षर पुरूष भी नाश्वान है। इसलिए गीता अध्याय 15 श्लोक 16-17 तथा अध्याय 8 श्लोक 20 से 22 में गीता ज्ञान दाता ने अपने से अन्य पूर्ण परमात्मा के विषय में कहा है जो वास्तव में अविनाशी है।

अध्याय 8 के श्लोक 18-19 में वर्णन है कि सब प्राणी दिन के आरम्भ में अव्यक्त अर्थात् अदृश परब्रह्म से उत्पन्न होते हैं तथा रात्रि के समय उसी परब्रह्म अव्यक्त (अदृश) में ही लीन हो जाते हैं।

❖ ।। परब्रह्म (अक्षर पुरूष) से भी दूसरा सनातन अव्यक्त सतपुरुष (पूर्णब्रह्म) है।।

अध्याय 8 के श्लोक 20 में स्पष्ट है कि उस अव्यक्त (अक्षर पुरुष अर्थात् परब्रह्म) से परे दूसरा जो सनातन (आदि/सदा का अविनाशी) अव्यक्त अर्थात् अदृश पूर्णब्रह्म है वह सब भूतों (प्राणियों) के नष्ट होने पर भी नष्ट नहीं होता।

''तीन प्रभुओं का प्रमाण''

तीन प्रभु है :- (1) ब्रह्म इसे क्षर पुरूष भी कहते हैं। यह प्रथम अव्यक्त है।

गीता अध्याय 7 श्लोक 24-25 में गीता ज्ञान दाता प्रभु अपने विषय में कह रहा है कि यह मूर्ख प्राणी समुदाय मुझ अव्यक्त को व्यक्त अर्थात् श्री कृष्ण रूप में प्रकट हुआ मान रहा है। मैं अपनी योग माया से छुपा रहता हूँ। इसलिए किसी समक्ष प्रत्यक्ष नहीं होता।

(2) परब्रह्म इसे अक्षर पुरुष भी कहते हैं। यह दूसरा अव्यक्त है।

गीता अध्याय 8 श्लोक 18-19 में परब्रह्म का वर्णन है कि सर्व प्राणी दिन के आरम्भ में अव्यक्त से प्रकट होते हैं तथा रात्रि के आरम्भ में उसी अव्यक्त में लीन हो जाते हैं।

(3) पूर्ण ब्रह्म इसे परम अक्षर पुरूष भी कहते हैं। यह तीसरा अव्यक्त है।

गीता अध्याय 8 श्लोक 20 में कहा है कि श्लोक 18-19 में कहे अव्यक्त से भी परे दूसरा सनातन अव्यक्त भाव है। वह परम दिव्य पुरूष सब प्राणियों के नष्ट होने पर भी नष्ट नहीं होता। यह तीसरा अव्यक्त हुआ।

यही प्रमाण गीता अध्याय 15 श्लोक 16-17 में लिखा है ''क्षर पुरूष तथा अक्षर पुरूष ये दो प्रभु इस लोक में जाने जाते हैं। परन्तु वास्तव में अविनाशी सर्वश्रेष्ठ परमात्मा तो इन दोनों से अन्य (दूसरा) है। जो तीनों लोकों में प्रवेश करके सर्व का धारण पोषण करता है अविनाशी परमेश्वर कहा जाता है। यही प्रमाण गीता अध्याय 15 श्लोक 1 से 4 में कहा है कि इस संसार रूपी वृक्ष की मूल तो परम दिव्य पुरूष हैं नीचे को तीनों गुण रूपी (रजगुण ब्रह्मा, सतगुण विष्णु तथा तमगुण शिव रूपी) शाखाऐं हैं। तत्व ज्ञानी सन्त द्वारा ही सर्व स्थिती बताई जाती है उस तत्वज्ञान द्वार समझ कर उस पूर्ण परमात्मा की खोज करनी चाहिए। जहाँ जाने के पश्चात् पुनः संसार में नहीं आते। उसी की पूजा करों में भी उसी की शरण हूँ। इस अध्याय 15 श्लोक 1 में संसार की मूल पूर्ण परमात्मा कहा है। जड़ों से ही वृक्ष को आहार प्राप्त होता है। इसी प्रकार पूर्ण परमात्मा तीसरा अव्यक्त सर्व लोकों का पालन कर्ता है। उपरोक्त विवरण से तीन प्रभु सिद्ध हुए।

।। ब्रह्म (काल) का परम धाम भी सतलोक।।

विशेष :- पवित्र गीता अध्याय 8 श्लोक 21 का भावार्थ है कि काल (ज्योति निरंजन) सतलोक से निष्कासित है। इसलिए कह रहा है कि मेरा भी परम धाम वही सत्यलोक स्थान है अर्थात् मैं (ब्रह्म-काल) भी उसी अमर धाम से आया हुआ हूँ। जैसे कोई व्यक्ति गाँव वाली सर्व सम्पति बेच कर किसी शहर में रह रहा हो। कभी उसी गाँव का व्यक्ति मिले तो चलती बात पर वह शहर वाला व्यक्ति कहता है कि मैं भी उसी गाँव का रहने वाला हूँ अर्थात् मेरा भी वही गाँव है। वास्तव में उस व्यक्ति का उस गाँव की सम्पति में भी अधिकार नहीं है। इसी प्रकार ब्रह्म अर्थात् गीता बोलने वाला काल भगवान कह रहा है कि मेरा भी परम धाम वही सत्यलोक है।

अध्याय 8 के श्लोक 21 में वर्णन है कि अविनाशी अदंश इस प्रकार कहा है कि उसको परम गति (पूर्ण मुक्ति) कहते हैं जिसको प्राप्त होकर फिर जन्म-मरण में नहीं आते अर्थात् वह पूर्णब्रह्म (सतपुरुष परमात्मा) अदंश है। उस परमगति को प्राप्त अर्थात् जन्म-मरण से रहित पूर्ण मुक्त होते हैं वह सतलोक मेरे लोक से श्रेष्ठ है तथा मेरा (काल ब्रह्म का) परम धाम है। चूंकि काल (ब्रह्म-ज्योति-निरंजन) भी वहीं (सतलोक) से आया है। इसलिए कहता है कि मेरा भी यह परम धाम है अर्थात् वास्तविक ठिकाना भी वही सतलोक है।

।। पूर्ण परमात्मा को अनन्य भक्ति से प्राप्त किया जा सकता है।।

अध्याय 8 के श्लोक 22 में परम अक्षर ब्रह्म का वर्णन है। कहा है कि हे पार्थ! जिस परमात्मा के अन्तर्गत सर्व प्राणी आते हैं जिस परमात्मा से यह समस्त जगत् परिपूर्ण है। वह परम पुरुष (पूर्ण परमात्मा-सतपुरुष) तो अनन्य {किसी और देवी-देवताओं या हनुमान माई मसानी आदि की भक्ति न कर के एक उसी उपास्य इष्ट पूर्णब्रह्म में अटूट श्रद्धा रखते हुए नाम जाप साधना करने वाले को अनन्य भक्त कहते हैं} भक्ति से ही प्राप्त होने योग्य है। कहने का अभिप्राय है कि पूर्ण परमात्मा की उपासना का लाभ एक परमेश्वर में आस्था करके शास्त्रानुकूल साधना से प्राप्त होता है।

अध्याय 8 के श्लोक 23 में कहा है कि जिस मूहूर्त (समय) में शरीर त्यागने वाले योगी (भक्त) पुनर्जन्म को प्राप्त नहीं होते तथा जिसमें मरने वाले पुनर्जन्म को प्राप्त होते हैं उसको कहता हूँ।

अध्याय 8 के श्लोक 24 से 26 में वर्णन है कि अग्नि तत्व के गुण प्रकाश से दिन बनता है जिसे शुक्ल पक्ष (प्रकाश के कारण) दिन कहा है। यह छः महीने का है। इसी प्रकार दूसरा कष्ण पक्ष है वह भी छः महीने का है। जो शुक्ल पक्ष में मरता है वह भक्त (योगी) पुनर्जन्म को प्राप्त नहीं होता। वह कुछ समय तक काल लोक (ब्रह्म लोक) में चला जाता है। फिर काफी समय के उपरांत जब प्रलय होती है। तब प्राणी रूप में आ जाते हैं। दूसरे जो भक्त कष्ण पक्ष (छः महीने का) में मरते हैं (शरीर छोड़ते हैं) वे स्वर्ग में कुछ समय अपनी पुण्य कमाई को समाप्त करके जल्दी वापिस आ जाते हैं। परंतु हैं दोनों ही मार्ग अश्रेष्ठ।

अध्याय 8 के श्लोक 27,28 में कहा है कि जो पूर्ण ज्ञानी है वे इन दोनों ही मार्गों (जो वेदों में वर्णित विधि अनुसार साधना) को मुझ सनातन काल में त्याग कर उस आदि नाम (सतनाम) का आश्रय लेकर {जो पुरातन (कभी का) मार्ग है} प्रथम बार ही परम स्थान (सतलोक) में चले जाते हैं अर्थात् जो साधक तत्वदर्शी संत से तीन मंत्र का उपदेश (जिसमें एक मंत्र ओ३म तथा तत्-सत् सांकेतिक) प्राप्त करके काल के सर्व भक्ति के धार्मिक कर्मो अर्थात् ओ३म नाम के जाप तथा पाँचों

यज्ञों की कमाई को काल को ही त्याग कर सत्यलोक चला जाता है।

विशेष :- गीता अध्याय 8 श्लोक 27-28 का भावार्थ है कि जो दो प्रभुओं (ब्रह्म तथा पूर्ण ब्रह्म) के विषय में पूर्वोक्त श्लोक 1 से 26 में ज्ञान कहा है। उन दोनों प्रभुओं से होने वाले मोक्ष लाभ से परिचित होकर बुद्धिमान व्यक्ति मोहित नहीं होता अर्थात् काल उपासना करके धोखा नहीं खाता। इसलिए कहा है कि उस पूर्ण परमात्मा की भक्ति करने का मन बना।

तत्वज्ञान को समझ कर उपरोक्त ज्ञान के रहस्य को जानकर साधक पूर्ण परमात्मा की प्राप्ति का ही प्रयत्न करता है तथा वेदों में वर्णित साधना से होने वाले लाभ पर ही आश्रित नहीं रहता वह चारों वेदों (ऋग्वेद, सामवेद, यर्जुवेद तथा अथर्ववेद) से आगे का लाभ (जो स्वसम वेद में वर्णित है) प्राप्त करता है। उस के लिए वेदों वाली साधना से {दान, तप (तप गीता अध्याय 17 श्लोक 14 से 16 में तीन प्रकार का कहा है)तथा यज्ञ द्वारा} जो पुण्य होता है उस से होने वाला संसारिक लाभ प्राप्त न करके पूर्ण परमात्मा की प्राप्ति के लिए इसे ब्रह्म में त्याग कर पूर्ण मोक्ष प्राप्त करता है। क्योंकि वेदों में वर्णित विधि से पुण्य के आधार से स्वर्ग प्राप्ति होती है। पुण्य क्षीण होने के पश्चात् पुनः पाप के आधार के कष्ट भोगने पड़ते हैं।

गीता अध्याय 9 श्लोक 20-21 में वेदों में वर्णित साधना से भी जन्म-मत्यु तथा स्वर्ग-नरक का चक्र समाप्त नहीं होता। गीता अध्याय 11 श्लोक 48 व 53 में कहा है कि वेदों में वर्णित साधना से मेरी प्राप्ति नहीं है। अध्याय 11 श्लोक 54 में काल ब्रह्म ने अपने में प्रवेश होने के लिए ही कहा है मोक्ष-मुक्ति के लिए नहीं जैसे गीता ज्ञान दाता प्रतिदिन एक लाख मानव शरीर धारी प्राणियों को काल रूप में खाता है।

जैसा विवरण अध्याय 11 श्लोक 21 में अर्जुन आँखों देखा बता रहा है कि जो ऋषियों वे देवताओं का समूह आप का वेद मन्त्र द्वारा गुणगान कर रहा है आप उन्हें भी खा रहे हो। वे सर्व आप में प्रवेश कर रहे हैं। कोई आपकी दाड़ों में लटक रहे हैं इसी के विषय में श्लोक 54 में कहा है। श्लोक 55 का भी यह भावार्थ है कि मेरे साधक मेरे को प्राप्त होते है। मेरे ही जाल में रह जाते हैं। उसके लिए गीता अध्याय 8 श्लोक 28 में कहा है कि पूर्ण सन्त (तत्वदर्शी सन्त) के बताए भक्ति मार्ग से साधक वेदों में वर्णित साधना का फल स्वर्ग आदि में जाकर नष्ट नहीं करता अपितु पूर्ण परमात्मा को पाने के लिए प्रयुक्त करता है। उस वेदों वाली कमाई (ओं नाम का जाप पाँचों यज्ञों का फल) को ब्रह्म में त्यागकर पूर्ण परमात्मा को प्राप्त करता है जिस कारण से पूर्ण मोक्ष प्राप्त करता है। यही प्रमाण गीता अध्याय 18 श्लोक 66 में है कहा है कि हे अर्जुन मेरे सतर की सर्व धाार्मिक पूजाऐं मेरे में त्याग कर तू उस एक (अद्वितीय) सर्वशक्तिमान परमश्ेवर की शरण में (व्रज) जा। फिर मैं तूझे सर्व पापों से मुक्त कर दूंगा। क्योंकि जिन पापों को भोगना था उस के प्रतिफल में सर्व पूण्य व नाम जाप की कमाई छोड़ देने से काल का ऋण समाप्त हो जाता है। इसलिए काल जाल से मुक्ति मिलती है।

❑❑❑

।।आठवें अध्याय के अनुवाद सहित श्लोक।।

परमात्मने नमः

अथाष्टमोऽध्यायः

अध्याय 8 का श्लोक 1

(अर्जुन उवाच)

किं तद्ब्रह्म किमध्यात्मं किं कर्म पुरुषोत्तम।
अधिभूतं च किं प्रोक्तमधिदैवं किमुच्यते।१।

किम्, तत्, ब्रह्म, किम्, अध्यात्मम्, किम्, कर्म, पुरुषोत्तम,
अधिभूतम्, च, किम्, प्रोक्तम्, अधिदैवम्, किम्, उच्यते ।।1 ।।

अनुवाद : (पुरुषोत्तम) हे पुरुषोत्तम! आप जी ने अध्याय 7 श्लोक 29 में जो तत् ब्रह्म बताया है (तत्) वह (ब्रह्म) ब्रह्म (किम्) क्या है (अध्यात्मम्) अध्यात्म (किम्) क्या है? (कर्म) कर्म (किम्) क्या है? (अधिभूतम्) अधिभूत नामसे (किम्) क्या (प्रोक्तम्) कहा गया है (च) और (अधिदैवम्) अधिदैव (किम्) किसको (उच्यते) कहते हैं?(1)

केवल हिन्दी : हे पुरुषोत्तम! आप जी ने अध्याय 7 श्लोक 29 में जो तत् ब्रह्म बताया है, वह ब्रह्म क्या है अध्यात्म क्या है? कर्म क्या है? अधिभूत नामसे क्या कहा गया है और अधिदैव किसको कहते हैं?(1)

अध्याय 8 का श्लोक 2

अधियज्ञः कथं कोऽत्र देहेऽस्मिन्मधुसूदन।
प्रयाणकाले च कथं ज्ञेयोऽसि नियतात्मभिः।२।

अधियज्ञः, कथम्, कः, अत्र, देहे, अस्मिन्, मधुसूदन,
प्रयाणकाले, च, कथम्, ज्ञेयः, असि, नियतात्मभिः ।।2 ।।

अनुवाद : (मधुसूदन) हे मधुसूदन! (अत्र) यहाँ (अधियज्ञः) अधियज्ञ (कः) कौन है और वह (अस्मिन्) इस (देहे) शरीरमें (कथम्) कैसे है? (च) तथा (नियतात्मभिः) युक्त चितवाले पुरुषोंद्वारा (प्रयाणकाले) अन्त समयमें (कथम्) किस प्रकार (ज्ञेयः) जाननेमें आते (असि) हैं। (2)

केवल हिन्दी : हे मधुसूदन! यहाँ अधियज्ञ कौन है और वह इस शरीरमें कैसे है? तथा युक्त चितवाले पुरुषोंद्वारा अन्त समयमें किस प्रकार जाननेमें आते हैं। (2)

(श्री भगवान उवाच)

अध्याय 8 का श्लोक 3

अक्षरं ब्रह्म परमं स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते।
भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कर्मसञ्ज्ञितः।३।

अक्षरम्, ब्रह्म, परमम्, स्वभावः, अध्यात्मम्, उच्यते,
भूतभावोद्भवकरः, विसर्गः, कर्मसञ्ज्ञितः ।।3 ।।

अनुवाद : काल ब्रह्म ने उत्तर दिया वह तत् ब्रह्म (परमम्) परम (अक्षरम्) अक्षर (ब्रह्म) 'ब्रह्म' है जो जीवात्मा के साथ सदा रहने वाला है (स्वभावः) उसीका स्वरूप अर्थात् परमात्मा जैसे गुणों वाली

जीवात्मा (अध्यात्मम्) 'अध्यात्म' नामसे (उच्यते) कहा जाता है तथा (भूतभावोद्भवकरः) जीव भावको उत्पन्न करनेवाला जो (विसर्गः) त्याग है वह (कर्मसञ्ज्ञितः) 'कर्म' नामसे कहा गया है। (3)

केवल हिन्दी : गीता ज्ञान दाता ब्रह्म भगवान ने उत्तर दिया वह तत् ब्रह्म परम अक्षर ''ब्रह्म'' है जो जीवात्मा के साथ सदा रहने वाला है उसीका स्वरूप अर्थात् परमात्मा जैसे गुणों वाली जीवात्मा 'अध्यात्म' नामसे कहा जाता है तथा जीव भावको उत्पन्न करनेवाला जो त्याग है वह 'कर्म' नामसे कहा गया है। (3)

अध्याय 8 का श्लोक 4

अधिभूतं क्षरो भावः पुरुषश्चाधिदैवतम्।
अधियज्ञोऽहमेवात्र देहे देहभृतां वर।४।

अधिभूतम्, क्षरः, भावः, पुरुषः, च, अधिदैवतम्,
अधियज्ञः, अहम्, एव, अत्र, देहे, देहभृताम्, वर।।4।।

अनुवाद : (अत्र) इस (देहभृताम् वर) देह धारियों में श्रेष्ठ अर्थात् मानव (देहे) शरीर में (क्षरः भावः) नाश्वान स्वभाव वाले (अधिभूतम्) अधिभूत जीव का स्वामी (च) और (अधिदैवतम्) अधिदैव देवी शक्ति का स्वामी (अधियज्ञः) यज्ञ का स्वामी अर्थात् यज्ञ में प्रतिष्ठित अधियज्ञ (पुरूषः) पूर्ण परमात्मा है(एव) इसी प्रकार इस मानव शरीर में (अहम्) मैं हूँ। (4)

केवल हिन्दी : इस देह धारियों में श्रेष्ठ अर्थात् मानव शरीर में नाश्वान स्वभाव वाले अधिभूत जीव का स्वामी और अधिदैव देवी शक्ति का स्वामी यज्ञ का स्वामी अर्थात् यज्ञ में प्रतिष्ठित अधियज्ञ पूर्ण परमात्मा है इसी प्रकार इस मानव शरीर में मैं हूँ। (4)

भावार्थ :- सर्व देहधारी प्राणियों में श्रेष्ठ शरीर मानव शरीर है। इस मानव शरीर में सर्व प्रभुओं का वास है। जैसे गीता अध्याय 15 श्लोक 15 में गीता ज्ञान दाता प्रभु कह रहा है कि मैं सर्व प्राणियों के हृदय में स्थित हूँ। गीता अध्याय 13 श्लोक 17 में कहा है कि वह पूर्ण ब्रह्म ज्योतियों का ज्योति माया से अति परे कहा जाता है। वह तत्वज्ञान से जानने योग्य है और सब के हृदय में विशेष रूप से स्थित है। इसी प्रकार गीता अध्याय 18 श्लोक 61 में कहा है शरीर रूपी यन्त्र में अर्न्तयामी परमेश्वर अपनी माया से भ्रमण कराता हुआ (सर्वभूतानाम्) सर्व प्राणियों के हृदय में स्थित है। {इससे सिद्ध हुआ कि शरीर में दोनों प्रभुओं (ब्रह्म तथा पूर्ण ब्रह्म) का वास है}

नोट :- गीता अध्याय 3 के श्लोक 14,15 में स्पष्ट है कि सर्वव्यापक परमात्मा पूर्णब्रह्म ही यज्ञों में प्रतिष्ठित है अर्थात् अधियज्ञ है।

अध्याय 8 का श्लोक 5

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः ।५।

अन्तकाले, च, माम्, एव, स्मरन्, मुक्त्वा, कलेवरम्,
यः, प्रयाति, सः, मद्भावम्, याति, न, अस्ति, अत्र, संशयः।।5।।

अनुवाद : (यः) जो (अन्तकाले,च) अन्तकालमें भी (माम्) मुझको (एव) ही (स्मरन्) सुमरण करता हुआ (कलेवरम्) शरीरको (मुक्त्वा) त्यागकर (प्रयाति) जाता है (सः) वह (मद्भावम्) शास्त्रानुकूल भक्ति ब्रह्म तक की साधना के भाव को अर्थात् स्वभाव को (याति) प्राप्त होता है (अत्र) इसमें कुछ भी (संशयः) संश्य (न) नहीं (अस्ति) है। (5)

केवल हिन्दी : जो अन्तकालमें भी मुझको ही सुमरण करता हुआ शरीरको त्यागकर जाता है वह शास्त्रानुकूल भक्ति ब्रह्म तक की साधना के भाव को अर्थात् स्वभाव को प्राप्त होता है इसमें कुछ भी संश्य नहीं है।(5)

अध्याय 8 का श्लोक 6

यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः।६।

यम्, यम्, वा, अपि, स्मरन्, भावम्, त्यजति, अन्ते, कलेवरम्,
तम्, तम्, एव, एति, कौन्तेय, सदा, तद्भावभावितः।।6।।

अनुवाद : (कौन्तेय) हे कुन्तीपुत्र अर्जुन! यह मनुष्य (अन्ते) अन्तकालमें (यम् यम्) जिस–जिस (वा, अपि) भी (भावम्) भावको (स्मरन्) सुमरण करता हुआ अर्थात् जिस भी देव की उपासना करता हुआ (कलेवरम्) शरीरका (त्यजति) त्याग करता है (तम् तम्) उस–उसको (एव) ही (एति) प्राप्त होता है क्योंकि वह (सदा) सदा (तद्भावभावितः) उसी भक्ति भाव को अर्थात् स्वभाव को प्राप्त होता है। (6)

केवल हिन्दी : हे कुन्तीपुत्र अर्जुन! यह मनुष्य अन्तकालमें जिस-जिस भी भावको सुमरण करता हुआ अर्थात् जिस भी देव की उपासना करता हुआ शरीरका त्याग करता है उस-उसको ही प्राप्त होता है क्योंकि वह सदा उसी भक्ति भाव को अर्थात् स्वभाव को प्राप्त होता है।(6)

(श्लोक 7 में गीता ज्ञान दाता ने अपनी भक्ति करने को कहा है)

अध्याय 8 का श्लोक 7

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम् ।७।

तस्मात्, सर्वेषु, कालेषु, माम्, अनुस्मर, युध्य, च,
मयि, अर्पितमनोबुद्धिः, माम्, एव, एष्यसि, असंशयम्।।7।।

अनुवाद : (तस्मात्) इसलिये हे अर्जुन! तू (सर्वेषु) सब (कालेषु) समयमें निरन्तर (माम्) मेरा (अनुस्मर) सुमरण कर (च) और (युध्य) युद्ध भी कर इस प्रकार (मयि) मुझमें (अर्पितमनोबुद्धिः) अर्पण किये हुए मन–बुद्धिसे युक्त होकर तू (असंशयम्) निःसन्देह (माम्) मुझको (एव) ही (एष्यसि) प्राप्त होगा अर्थात् जब कभी तेरा मनुष्य का जन्म होगा मेरी साधना पर लगेगा तथा मेरे पास ही रहेगा। (7)

केवल हिन्दी : इसलिये हे अर्जुन! तू सब समयमें निरन्तर मेरा सुमरण कर और युद्ध भी कर इस प्रकार मुझमें अर्पण किये हुए मन-बुद्धिसे युक्त होकर तू निःसन्देह मुझको ही प्राप्त होगा अर्थात् जब कभी तेरा मनुष्य का जन्म होगा मेरी साधना पर लगेगा तथा मेरे पास ही रहेगा। (7)

(निम्न 8,9,10 श्लोकों में गीता ज्ञान दाता ने अपने से अन्य पूर्ण परमात्मा के विषय में कहा है)

अध्याय 8 का श्लोक 8

अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नान्यगामिना।
परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थानुचिन्तयन्।८।

अभ्यासयोगयुक्तेन, चेतसा, नान्यगामिना।
परमम्, पुरुषम्, दिव्यम्, याति, पार्थ, अनुचिन्तयन्।।8।।

अनुवाद : (पार्थ) हे पार्थ! (अभ्यासयोगयुक्तेन) परमेश्वरके नाम जाप के अभ्यासरूप योगसे युक्त अर्थात् उस पूर्ण परमात्मा की पूजा में लीन (नान्यगामिना) दूसरी ओर न जानेवाले (चेतसा) चित्तसे

(अनुचिन्तयन्) निरन्तर चिन्तन करता हुआ भक्त (परमम्) परम (दिव्यम्) दिव्य (पुरुषम्) परमात्माको अर्थात् परमेश्वरको ही (याति) प्राप्त होता है। (8)

केवल हिन्दी : हे पार्थ! परमेश्वरके नाम जाप के अभ्यासरूप योगसे युक्त अर्थात् उस पूर्ण परमात्मा की पूजा में लीन दूसरी ओर न जानेवाले चित्तसे निरन्तर चिन्तन करता हुआ भक्त परम दिव्य परमात्माको अर्थात् परमेश्वरको ही प्राप्त होता है। (8)

अध्याय 8 का श्लोक 9

कविं पुराणमनुशासितार-
मणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः ।
सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूप-
मादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।९।

कविम्, पुराणम् अनुशासितारम्, अणोः, अणीयांसम्, अनुस्मरेत्,
यः, सर्वस्य, धातारम्, अचिन्त्यरूपम्, आदित्यवर्णम्, तमसः, परस्तात् ।।9।।

अनुवाद : (कविम्) कविर्देव, अर्थात् कबीर परमेश्वर जो कवि रूप में प्रसिद्ध होता है वह (पुराणम्) अनादि, (अनुशासितारम्) सबके नियन्ता (अणोः, अणीयांसम्) सूक्ष्मसे भी अति सूक्ष्म, (सर्वस्य) सबके (धातारम्) धारण–पोषण करने वाला (अचिन्त्यरूपम्) अचिन्त्य–स्वरूप (आदित्यवर्णम्) सूर्यके सदृश नित्य प्रकाशमान है (यः) जो साधक (तमसः) उस अज्ञानरूप अंधकारसे (परस्तात्) अति परे सच्चिदानन्दघन परमेश्वरका (अनुस्मरेत्) सुमरण करता है। (9)

केवल हिन्दी : कविर्देव, अर्थात् कबीर परमेश्वर जो कवि रूप से प्रसिद्ध होता है वह अनादि, सबके नियन्ता सूक्ष्मसे भी अति सूक्ष्म, सबके धारण-पोषण करनेवाले अचिन्त्य-स्वरूप सूर्यके सदृश नित्य प्रकाशमान है। जो उस अज्ञानरूप अंधकारसे अति परे सच्चिदानन्दघन परमेश्वरका सुमरण करता है। (9)

अध्याय 8 का श्लोक 10

प्रयाणकाले मनसाचलेन
भक्त्या युक्तो योगबलेन चैव।
भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक्-
स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम्।१०।

प्रयाणकाले, मनसा, अचलेन, भक्त्या, युक्तः, योगबलेन, च, एव, भ्रुवोः,
मध्ये, प्राणम्, आवेश्य, सम्यक्, सः, तम्, परम् पुरुषम्, उपैति, दिव्यम् ।।10।।

अनुवाद : (सः) वह (भक्त्या, युक्तः) भक्तियुक्त साधक (प्रयाणकाले) अन्तकालमें (योगबलेन) नाम के जाप की भक्ति के प्रभावसे (भ्रुवोः) भृकुटी के (मध्ये) मध्यमें (प्राणम्) प्राणको (सम्यक्) अच्छी प्रकार (आवेश्य) स्थापित करके (च) फिर (अचलेन) निश्चल (मनसा) मनसे (तम्) अज्ञात (दिव्यम्) दिव्यरूप (परम्) परम (पुरुषम्) भगवानको (एव) ही (उपैति) प्राप्त होता है। (10)

केवल हिन्दी : वह भक्तियुक्त साधक अन्तकालमें नाम के जाप की भक्ति के प्रभावसे भृकुटीके मध्यमें प्राणको अच्छी प्रकार स्थापित करके फिर निश्चल मनसे अज्ञात दिव्यरूप परम भगवानको ही प्राप्त होता है। (10)

अध्याय 8 का श्लोक 11

यदक्षरं वेदविदो वदन्ति
विशन्ति यद्यतयो वीतरागाः।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति
तत्ते पदं सङ्ग्रहेण प्रवक्ष्ये।११।

यत्, अक्षरम्, वेदविदः, वदन्ति, विशन्ति, यत्, यतयः, वीतरागाः,
यत्, इच्छन्तः, ब्रह्मचर्यम्, चरन्ति, तत्, ते, पदम्, सङ्ग्रहेण, प्रवक्ष्ये।।11।।

अनुवाद : उपरोक्त श्लोक 8 से 10 में वर्णित (यत्) जिस सच्चिदानन्द घन परमेश्वर को (वेदविदः) वेद के जानने वाले अर्थात् तत्वदर्शी सन्त (अक्षरम्) वास्तव में अविनाशी (वदन्ति) कहते हैं। (यत्) जिसमें (यतयः) यत्नशील (वितरागाः) रागरहित साधक जन (विशन्ति) प्रवेश करते हैं अर्थात् प्राप्त करते हैं (यत्) जिसे (इच्छन्तः) चाहने वाले (ब्रह्मचर्यम्) ब्रह्मचर्य का (चरन्ति) आचरण करते हैं अर्थात् ब्रह्मचारी रह कर भी उस परमात्मा को प्राप्त करने की कोशिश करते हैं। (तत्) उस (पदम्) पद अर्थात् पूर्ण परमात्मा को प्राप्त कराने वाली भक्ति पद्धती को उस पूजा विधि को (ते) तेरे लिए (सङ्ग्रेहण) संक्षेप से अर्थात् सांकेतिक रूप से (प्रवक्ष्ये) कहूँगा। (11)

केवल हिन्दी : उपरोक्त श्लोक 8 से 10 में वर्णित जिस सच्चिदानन्द घन परमेश्वर को वेद के जानने वाले अर्थात् तत्वदर्शी सन्त वास्तव में अविनाशी कहते हैं। जिसमें यत्नशील रागरहित साधक जन प्रवेश करते हैं अर्थात् प्राप्त करते हैं जिसे चाहने वाले ब्रह्मचर्य का आचरण करते हैं अर्थात् ब्रह्मचारी रह कर भी उस परमात्मा को प्राप्त करने की कोशिश करते हैं। उस पद अर्थात् पूर्ण परमात्मा को प्राप्त कराने वाली भक्ति पद्धति को उस पूजा विधि को तेरे लिए संक्षेप में अर्थात् सांकेतिक रूप से कहूँगा।

भावार्थ : इस अध्याय में गीता ज्ञान दाता भिन्न-2 साधना का ज्ञान करते हुए कह रहा है कि जो तत्वदर्शी संत नाम (मन्त्र) जाप के लिए बताता है जिससे मोक्ष प्राप्त करते हैं। वह मार्ग बताऊँगा जिसका वर्णन गीता अध्याय 17 श्लोक 23 में किया है कि पूर्ण परमात्मा की साधना का तो केवल ओम्-तत्-सत् यह तीन अक्षर का मन्त्र है, अन्य नहीं।

अध्याय 8 का श्लोक 12

सर्वद्वाराणि संयम्य मनो हृदि निरुध्य च।
मूर्ध्न्याधायात्मनः प्राणमास्थितो योगधारणाम्।१२।

सर्वद्वाराणि, संयम्य, मनः, हृदि, निरुध्य, च,
मूर्ध्नि, आधाय, आत्मनः, प्राणम्, आस्थितः, योगधारणाम्।।12।।

अनुवाद : जो भक्ति पद अर्थात् पद्यति बताने जा रहा हूँ उस में साधक (सर्वद्धाराणि) सर्व इन्द्रियों के द्वारों को (संयम्य) नियमित करके (मनः) मन को (हृदय) हृदय देश में (च) तथा (प्राणम्) स्वासों को (मूर्ध्नि) मस्तिक में (निरुध्य) स्थिर करके (आत्मनः) परमात्मा के ध्यान में (अधाय) स्थापित करके (योग धारणाम्) योग धारण अर्थात् साधना में (आस्थितः) स्थित होता है। (12)

केवल हिन्दी : जो भक्ति पद अर्थात् पद्यति बताने जा रहा हूँ उस में साधक सर्व इन्द्रियों के द्वारों को नियमित करके मन को हृदय देश में तथा स्वासों को मस्तिक में स्थिर करके परमात्मा के ध्यान में स्थापित करके योग धारण अर्थात् साधना में स्थित होता है।

भावार्थ : गीता ज्ञान दाता काल भगवान केवल संक्षेप में संकेत द्वारा कह रहा है कि पूर्ण

परमात्मा को प्राप्त करने वाली भक्ति पद्धती में साधक स्वासों द्वारा साधना करता है। गीता अध्याय 17 श्लोक 23 में ओं-तत्-सत् जो तीन मन्त्र का जाप है उसका मन-पवन अर्थात् स्वासों व सुरति व निरति को सम करके मस्तिक तथा हृदय में अभ्यास करता है। जैसे सतनाम के जाप को स्वासों द्वारा किया जाता है। सत्यनाम में दो अक्षर होते हैं एक अक्षर ओं (ॐ) तथा दूसरा तत् जो गुप्त है। ओं (ॐ) नाम ब्रह्म का जाप है। ब्रह्म का स्थान संहस्त्र कमल है जो मस्तिक के पीछे है तथा पूर्ण परमात्मा विशेष रूप से हृदय में (जल में सूर्य की तरह) निवास करता है। इसलिए सत्यनाम के सुमरण में स्वांस पर ध्यान एकाग्र करके मस्तिक व हृदय में स्वांस के साथ ध्यान से नामों का जाप किया जाता है। काल भगवान को पूर्ण भक्ति विधि का ज्ञान नहीं है। अगले श्लोक 13 में केवल अपनी साधना की विधि बताई है।

अध्याय 8 का श्लोक 13

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्।१३।

ओम्, इति, एकाक्षरम्, ब्रह्म, व्याहरन्, माम्, अनुस्मरन्,
यः, प्रयाति, त्यजन्, देहम्, सः, याति, परमाम्, गतिम्।।13।।

अनुवाद : गीता ज्ञान दाता ब्रह्म कह रहा है कि उपरोक्त श्लोक 11-12 में जिस गीता अध्याय 17 के श्लोक 23 में जो मन्त्र को पूर्ण परमात्मा की प्राप्ति का कहा है उस पूर्ण मोक्ष मार्ग के नाम में तीन अक्षर का जाप ओं–तत–सत् है उस में (माम् ब्रह्म) मुझ ब्रह्म का तो (इति) यह (ओम्) ओम्/ऊँ (एकाक्षरम) एक अक्षर है (व्यवाहरन्) उच्चारण करते हुए (अनुस्मरन्) स्मरन करने अर्थात् साधना करने का (यः) जो (त्यजन् देहम्) शरीर त्याग कर जाता हुआ स्मरण करता है अर्थात् अंतिम समय में (प्रयाति) साधना स्मरण करता हुआ मर जाता है (सः) वह (परमाम् गतिम्) परम गति पूर्ण मोक्ष को (याति) प्राप्त होता है। अपनी गति को तो गीता अध्याय 7 श्लोक 18 में अनुत्तम कहा है। इसलिए यहाँ पर पूर्ण परमात्मा की प्राप्ति अर्थात् पूर्ण मोक्ष रूपी परम गति का वर्णन है(13)

केवल हिन्दी : गीता ज्ञान दाता ब्रह्म कह रहा है कि उपरोक्त श्लोक 11-12 में जिस पूर्ण मोक्ष मार्ग के नाम जाप में तीन अक्षर का जाप कहा है उस में मुझ ब्रह्म का तो यह ओं/ऊँ एक अक्षर है उच्चारण करते हुए स्मरन करने अर्थात् साधना करने का जो शरीर त्याग कर जाता हुआ स्मरण करता है अर्थात् अंतिम समय में स्मरण करता हुआ मर जाता है वह परम गति पूर्ण मोक्ष को प्राप्त होता है। {अपनी गति को तो गीता अध्याय 7 श्लोक 18 में अनुत्तम कहा है। इसलिए यहाँ पर पूर्ण परमात्मा की प्राप्ति अर्थात् पूर्ण मोक्ष रूपी परम गति का वर्णन है (13)}

भावार्थ : काल भगवान कह रहा है कि उस तीन अक्षरों (ओं,तत्,सत्) वाले मन्त्र में मुझ ब्रह्म का केवल एक ओम/ऊँ (ओं) अक्षर है। उच्चारण करके स्मरण करने का जो साधक अंतिम स्वांस तक स्मरण साधना करता हुआ शरीर त्याग जाता है वह परम गति अर्थात् मोक्ष को प्राप्त होता है। {अपनी गति को अध्याय 7 श्लोक 18 में (अनुतमाम्) अति अश्रेष्ठ कहा है।}

अध्याय 8 का श्लोक 14

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः।१४।

अनन्यचेताः, सततम्, यः, माम्, स्मरति, नित्यशः,
तस्य, अहम्, सुलभः, पार्थ, नित्ययुक्तस्य, योगिनः।।14।।

अनुवाद : (पार्थ) हे अर्जुन! (यः) जो (अनन्यचेताः) अनन्यचित होकर (नित्यशः) सदा ही (सततम्) निरन्तर (माम्) मुझको (स्मरति) सुमरण करता है (तस्य) उस (नित्ययुक्तस्य) नित्य निरन्तर युक्त हुए (योगिनः) योगीके लिये (अहम्) मैं (सुलभः) सुलभ हूँ। (14)

केवल हिन्दी : हे अर्जुन! जो अनन्यचित होकर सदा ही निरन्तर मुझको सुमरण करता है उस नित्य निरन्तर युक्त हुए योगीके लिये मैं सुलभ हूँ। (14)

अध्याय 8 का श्लोक 15

मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम्।
नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः। १५।

माम्, उपेत्य, पुनर्जन्म, दुःखालयम्, अशाश्वतम्,
न, आप्नुवन्ति, महात्मानः, संसिद्धिम्, परमाम्, गताः।।15।।

अनुवाद : (माम्) मुझको (उपेत्य) प्राप्त साधकतो(अशाश्वतम्) क्षणभंगुर (दुःखालयम्) दुःख के घर (पुनर्जन्म) बार–बार जन्म–मरण में हैं (परमाम्) परम अर्थात् पूर्ण परमात्मा की साधना से होने वाली (संसिद्धिम) सिद्धिको (गताः) प्राप्त (महात्मानः) महात्माजन (न) नहीं (आप्नुवन्ति) प्राप्त होते। यही प्रमाण गीता अध्याय 2 श्लोक 12 , अध्याय 4 श्लोक 5 व 9 तथा गीता अध्याय 15 श्लोक 4 अध्याय 18 श्लोक 62 में है जिनमें कहा है कि मेरे तथा तेरे अनेकों जन्म व म्तयु हो चुके हैं परन्तु उस परमेश्वर को प्राप्त करके ही साधक सदा के लिए जन्म मरण से मुक्त हो जाता है वह फिर लौट कर इस क्षण भंगुर लोक में नहीं आता(15)

केवल हिन्दी : मुझको प्राप्त साधकतो क्षणभंगुर दुःख के घर बार-बार जन्म-मरण में हैं परम अर्थात् पूर्ण परमात्मा की साधना से होने वाली सिद्धिको प्राप्त महात्माजन नहीं प्राप्त होते। यही प्रमाण गीता अध्याय 2 श्लोक 12 , अध्याय 4 श्लोक 5 व 9 तथा गीता अध्याय 15 श्लोक 4 अध्याय 18 श्लोक 62 में है जिनमें कहा है कि मेरे तथा तेरे अनेकों जन्म व म्तयु हो चुके हैं परन्तु उस परमेश्वर को प्राप्त करके ही साधक सदा के लिए जन्म मरण से मुक्त हो जाता है वह फिर लौट कर इस क्षण भंगुर लोक में नहीं आता(15)

अध्याय 8 का श्लोक 16

आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन।
मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते। १६।

आब्रह्मभुवनात्, लोकाः, पुनरावर्तिनः, अर्जुन,
माम्, उपेत्य, तु, कौन्तेय, पुनर्जन्म, न, विद्यते।।16।।

अनुवाद : (अर्जुन) हे अर्जुन! (आब्रह्मभुवनात्) ब्रह्मलोक से लेकर (लोकाः) सब लोक (पुनरावर्तिनः) बारम्बार उत्पत्ति नाश वाले हैं (तु) परन्तु (कौन्तेय) हे कुन्ती पुत्र (न, विद्यते) जो यह नहीं जानते वे (माम्) मुझे (उपेत्य) प्राप्त होकर भी (पुनः) फिर (जन्मः) जन्मते हैं। (16)

केवल हिन्दी : हे अर्जुन! ब्रह्मलोक से लेकर सब लोक बारम्बार उत्पत्ति नाश वाले हैं परन्तु हे कुन्ती पुत्र जो यह नहीं जानते वे मुझे प्राप्त होकर भी फिर जन्मते हैं। (16)

विशेष :- गीताप्रैस गोरखपुर से प्रकाशित गीता अध्याय 10 श्लोक 17 में विद्याम का अर्थ जानूँ किया है, गीता अध्याय 6 श्लोक 23 तथा अध्याय 14 श्लोक 11 में विद्यात का अर्थ जानना चाहिए किया है तथा गीता अध्याय 15 श्लोक 15 में तथा गीता अध्याय 9 श्लोक 17 में वेद्यः तथा वेद्यम् का अर्थ जानने योग्य तथा जानना चाहिए किया है। इसलिए विद्यते का अर्थ 'जानते' सही है।

यदि इन श्लोकों 15-16 का अर्थ अन्य अनुवाद कर्ताओं वाला सही माना जाए कि ब्रह्म (गीता ज्ञान दाता को) को प्राप्त होने के पश्चात् पुर्नजन्म नहीं होता तो गीता अध्याय 2 श्लोक 12, अध्याय 4 श्लोक 5 व 9 तथा अध्याय 15 श्लोक 4 तथा अध्याय 18 श्लोक 62 का अर्थ सही नहीं लगेगा। इसलिए यही उपरोक्त अनुवाद जो मुझ दास(संत रामपाल जी महाराज) द्वारा किया गया है वह उचित है।

अध्याय 8 का श्लोक 17

सहस्त्रयुगपर्यन्तमहर्यद्ब्रह्मणो विदुः।
रात्रिं युगसहस्त्रान्तां तेऽहोरात्रविदो जनाः। १७।

सहस्त्रयुगपर्यन्तम्, अहः,यत्,ब्रह्मणः, विदुः,रात्रिम्,
युगसहस्त्रान्ताम्, ते, अहोरात्रविदः, जनाः ।।17।।

अनुवाद : (ब्रह्मणः) परब्रह्म का (यत्) जो (अहः) एक दिन है उसको (सहस्त्रयुगपर्यन्तम्) एक हजार युग की अवधिवाला और (रात्रिम्) रात्रिको भी (युगसहस्त्रान्ताम्) एक हजार युगतककी अवधिवाली (विदुः) तत्वसे जानते हैं (ते) वे (जनाः) तत्वदर्शी संत (अहोरात्रविदः) दिन–रात्री के तत्वको जाननेवाले हैं। (17)

केवल हिन्दी : परब्रह्म का जो एक दिन है उसको एक हजार युग की अवधिवाला और रात्रिको भी एक हजार युगतककी अवधिवाली तत्वसे जानते हैं वे तत्वदर्शी संत दिन-रात्री के तत्वको जाननेवाले हैं। (17)

विशेषः- सात त्रिलोकिय ब्रह्मा (काल के रजगुण पुत्र) की मत्यु के बाद एक त्रिलोकिय विष्णु जी की मत्यु होती है तथा सात त्रिलोकिय विष्णु (काल के सतगुण पुत्र) की मत्यु के बाद एक त्रिलोकिय शिव (ब्रह्म-काल के तमोगुण पुत्र) की मत्यु होती है। ऐसे 70000 (सतर हजार अर्थात् 0.7 लाख) त्रिलोकिय शिव की मत्यु के उपरान्त एक ब्रह्मलोकिय महा शिव (सदाशिव अर्थात् काल) की मत्यु होती है। एक ब्रह्मलोकिय महाशिव की आयु जितना एक युग परब्रह्म (अक्षर पुरूष) का हुआ। ऐसे एक हजार युग अर्थात् एक हजार ब्रह्मलोकिय शिव (ब्रह्मलोक में स्वयं काल ही महाशिव रूप में रहता है) की मत्यु के बाद काल के इक्कीस ब्रह्मण्डों का विनाश हो जाता है। इसलिए यहाँ पर परब्रह्म के एक दिन जो एक हजार युग का होता है तथा इतनी ही रात्री होती है। लिखा है।

''सर्व प्रभुओं की आयु''

(1) रजगुण ब्रह्मा की आयुः—ब्रह्मा का एक दिन एक हजार चतुर्युग का है तथा इतनी ही रात्री है। (एक चतुर्युग में 43,20,000 मनुष्यों वाले वर्ष होते हैं) एक महिना तीस दिन रात का है, एक वर्ष बारह महिनों का है तथा सौ वर्ष की ब्रह्मा जी की आयु है। जो सात करोड़ बीस लाख चतुर्युग की है।

(2) सतगुण विष्णु की आयुः—श्री ब्रह्मा जी की आयु से सात गुणा अधिक श्री विष्णु जी की आयु है अर्थात् पचास करोड़ चालीस लाख चतुर्युग की श्री विष्णु जी की आयु है।

(3) तमगुण शिव की आयुः—श्री विष्णु जी की आयु से श्री शिव जी की आयु सात गुणा अधिक है अर्थात् तीन अरब बावन करोड़ अस्सी लाख चतुर्युग की श्री शिव की आयु है।

(4) काल ब्रह्म अर्थात् क्षर पुरूष की आयुः—सात त्रिलोकिय ब्रह्मा (काल के रजगुण पुत्र) की मत्यु के बाद एक त्रिलोकिय विष्णु जी की मत्यु होती है तथा सात त्रिलोकिय विष्णु (काल के सतगुण

पुत्र) की मत्यु के बाद एक त्रिलोकिय शिव (ब्रह्म/काल के तमोगुण पुत्र) की मत्यु होती है। ऐसे 70000 (सतर हजार अर्थात् 0.7 लाख) त्रिलोकिय शिव की मत्यु के उपरान्त एक ब्रह्मलोकिय महा शिव (सदाशिव अर्थात् काल) की मत्यु होती है। एक ब्रह्मलोकिय महाशिव की आयु जितना एक युग परब्रह्म (अक्षर पुरूष) का हुआ। ऐसे एक हजार युग का परब्रह्म का एक दिन होता है। परब्रह्म के एक दिन के समापन के पश्चात् काल ब्रह्म के इक्कीस ब्रह्मण्डों का विनाश हो जाता है तथा काल व प्रकति देवी(दुर्गा) की मत्यु होती है। परब्रह्म की रात्री (जो एक हजार युग की होती है) के समाप्त होने पर दिन के प्रारम्भ में काल व दुर्गा का पुनर् जन्म होता है फिर ये एक ब्रह्मण्ड में पहले की भांति सष्टि प्रारम्भ करते हैं। इस प्रकार परब्रह्म अर्थात् अक्षर पुरूष का एक दिन एक हजार युग का होता है तथा इतनी ही रात्री है।

अक्षर पुरूष अर्थात् परब्रह्म की आयु :– परब्रह्म का एक युग ब्रह्मलोकीय शिव अर्थात् महाशिव (काल ब्रह्म) की आयु के समान होता है। परब्रह्म का एक दिन एक हजार युग का तथा इतनी ही रात्री होती है। इस प्रकार परब्रह्म का एक दिन–रात दो हजार युग का हुआ। एक महिना 30 दिन का एक वर्ष 12 महिनों का तथा परब्रह्म की आयु सौ वर्ष की है। इस से सिद्ध है कि परब्रह्म अर्थात् अक्षर पुरूष भी नाशवान है। इसलिए गीता अध्याय 15 श्लोक 16-17 तथा अध्याय 8 श्लोक 20 से 22 में किसी अन्य पूर्ण परमात्मा के विषय में कहा है जो वास्तव में अविनाशी है।

नोट :- गीता जी के अन्य अनुवाद कर्ताओं ने ब्रह्मा का एक दिन एक हजार चतुर्युग का लिखा है जो उचित नहीं है। क्योंकि मूल संस्कत में सहंसर युग लिखा है न की चतुर्युग। तथा ब्रह्मणः लिखा है न कि ब्रह्मा। तत्वज्ञान के अभाव से अर्थों का अनर्थ किया है।

''दूसरा अव्यक्त = श्लोक 18 में, प्रथम अव्यक्त = अध्याय 7 श्लोक 24-25 में''

अध्याय 8 का श्लोक 18

अव्यक्ताद्व्यक्तयः सर्वाः प्रभवन्त्यहरागमे।
राञ्यागमे प्रलीयन्ते तत्रैवाव्यक्तसञ्ज्ञके।१८।

अव्यक्तात्, व्यक्तयः, सर्वाः, प्रभवन्ति, अहरागमे,
रात्र्यागमे, प्रलीयन्ते, तत्र, एव, अव्यक्तस ज्ञके।।18।।

अनुवाद : (सर्वाः) सम्पूर्ण (व्यक्तयः) प्रत्यक्ष आकार में आया संसार (अहरागमे) परब्रह्म के दिनके प्रवेशकालमें (अव्यक्तात्) अव्यक्तसे अर्थात् अदश परब्रह्म से (प्रभवन्ति) उत्पन्न होते हैं और (रात्र्यागमे) रात्रि आने पर (तत्र) उस (अव्यक्तस ज्ञके) अदश अर्थात् परोक्ष परब्रह्म में (एव) ही (प्रलीयन्ते) लीन हो जाते हैं। (18)

केवल हिन्दी : सम्पूर्ण प्रत्यक्ष आकार में आया संसार परब्रह्म के दिन के प्रवेशकालमें अव्यक्तसे अर्थात् अदश परब्रह्म से उत्पन्न होते हैं और रात्रि आने पर उस अदश अर्थात् परोक्ष परब्रह्म में ही लीन हो जाते हैं। (18)

अध्याय 8 का श्लोक 19

भूतग्रामः स एवायं भूत्वा भूत्वा प्रलीयते।
रात्र्यागमेऽवशः पार्थ प्रभवत्यहरागमे।१९।

भूतग्रामः, सः, एव, अयम्, भूत्वा, भूत्वा, प्रलीयते,
रात्र्यागमे, अवशः, पार्थ, प्रभवति, अहरागमे।।19।।

अनुवाद : (पार्थ) हे पार्थ! (सः,एव) वही (अयम्) यह (भूतग्रामः) प्राणी समुदाय (भूत्वा, भूत्वा) उत्पन्न हो होकर (अवशः) संस्कार वश होकर (रात्र्यागमे) रात्रिके प्रवेशकालमें (प्रलीयते) लीन होता है और

(अहरागमे) दिनके प्रवेशकालमें फिर (प्रभवति) उत्पन्न होता है। (19)

''तीसरा अव्यक्त = श्लोक 20-22 में''

केवल हिन्दी : हे पार्थ! वही यह प्राणी समुदाय उत्पन्न हो होकर संस्कार वश होकर रात्रिके प्रवेशकालमें लीन होता है और दिन के प्रवेशकालमें फिर उत्पन्न होता है। (19)

अध्याय 8 का श्लोक 20

परस्तस्मात्तु भावोऽन्योऽव्यक्तोऽव्यक्तात्सनातनः।
यः स सर्वेषु भूतेषु नश्यत्सु न विनश्यति।२०।

परः, तस्मात्, तु, भावः, अन्यः, अव्यक्तः,, अव्यक्तात्, सनातनः।
यः सः, सर्वेषु, भूतेषु, नश्यत्सु, न, विनश्यति।।20।।

अनुवाद : (तु) परंतु (तस्मात्) उस (अव्यक्तात्) अव्यक्त अर्थात् गुप्त परब्रह्म से भी अति (परः) परे (अन्यः) दूसरा (यः) जो (सनातनः) आदि (अव्यक्तः) अव्यक्त अर्थात् परोक्ष (भावः) भाव है (सः) वह परम दिव्य पुरुष (सर्वेषु) सब (भूतेषु) प्राणियों के (नश्यत्सु) नष्ट होने पर भी (न, विनश्यति) नष्ट नहीं होता। (20)

केवल हिन्दी : परंतु उस अव्यक्त अर्थात् गुप्त परब्रह्म से भी अति परे दूसरा जो आदि अव्यक्त अर्थात् परोक्ष भाव है वह परम दिव्य पुरुष सब प्राणियों के नष्ट होने पर भी नष्ट नहीं होता। (20)

अध्याय 8 का श्लोक 21

अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहुः परमां गतिम्।
यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम।२१।

अव्यक्तः, अक्षरः, इति, उक्तः, तम्, आहुः, परमाम्, गतिम्।
यम्, प्राप्य, न, निवर्तन्ते, तत् धाम, परमम्, मम्।।21।।

अनुवाद : (अव्यक्तः) अदृश अर्थात् परोक्ष (अक्षरः) अविनाशी (इति) इस नामसे (उक्तः) कहा गया है (तम्) अज्ञान के अंधकार में छुपे गुप्त स्थान को (परमाम्, गतिम्) परमगति (आहुः) कहते हैं (यम्) जिसे (प्राप्य) प्राप्त होकर मनुष्य (न, निवर्तन्ते) वापस नहीं आते (तत् धाम) वह लोक (परमम् मम्) मुझ से व मेरे लोक से श्रेष्ठ है। (21)

केवल हिन्दी : अदृश अर्थात् परोक्ष अविनाशी इस नामसे कहा गया है अज्ञान के अंधकार में छुपे गुप्त स्थान को परमगति कहते हैं जिसे प्राप्त होकर मनुष्य वापस नहीं आते वह लोक मुझ से व मेरे लोक से श्रेष्ठ है। (21)

क्योंकि काल (ब्रह्म) सत्यलोक से निष्कासित है, इसलिए कह रहा है कि मेरा भी वास्तविक स्थान सत्यलोक है। मैं भी पहले वहीं रहता था तथा मेरे लोक से श्रेष्ठ है। जहाँ जाने के पश्चात् वापिस जन्म–मृत्यु में नहीं आते अर्थात् पूर्ण मोक्ष प्राप्त करते हैं।

गीता अध्याय 8 श्लोक 18,20,21,22 अध्याय 8 के श्लोकों में दो परमात्माओं का वर्णन है। श्लोक 18 में कहा है कि सर्व प्राणी इस अव्यक्त परमात्मा अर्थात् परब्रह्म में प्रलय समय लीन हो जाते है। फिर उत्पत्ति समय उत्पन्न हो जाते हैं। श्लोक 20-21 में कहा है कि उस अव्यक्त अर्थात् परब्रह्म से दूसरा अव्यक्त परमात्मा अर्थात् पूर्ण ब्रह्म है जहाँ जाने के पश्चात् प्राणी फिर लौट कर संसार में नहीं आते। अर्थात् पूर्ण मोक्ष प्राप्त करते हैं। एक अव्यक्त गीता अध्याय 7 श्लोक 24-25 में है। इस प्रकार तीन परमात्मा सिद्ध हुए। यही प्रमाण गीता अध्याय 15 श्लोक 1 से 4 तथा 16 व 17 में है।

अध्याय 8 का श्लोक 22

पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया।
यस्यान्तःस्थानि भूतानि येन सर्वमिदं ततम्।२२।

पुरुषः, सः, परः, पार्थ, भक्त्या, लभ्यः, तु, अनन्यया।
यस्य, अन्तःस्थानि, भूतानि, येन, सर्वम्, इदम्, ततम्।।22।।

अनुवाद : (पार्थ) हे पार्थ! (यस्य) जिस परमात्माके (अन्तःस्थानि) अन्तर्गत (भूतानि) सर्वप्राणी हैं और (येन) जिस सच्चिदानन्दघन परमात्मासे (इदम्) यह (सर्वम्) समस्त जगत् (ततम्) परिपूर्ण है जिस के विषय में उपरोक्त श्लोक 20,21 में तथा गीता अध्याय 15 श्लोक 1-4 तथा 17 में व अध्याय 18 श्लोक 46,61,62, तथा 65,66 में कहा है। (सः) वह (परः) परम (पुरुषः) परमात्मा (तु) तो (अनन्यया) अनन्य (भक्त्या) भक्तिसे ही (लभ्यः) प्राप्त होने योग्य है। (22)

केवल हिन्दी : हे पार्थ! जिस परमात्माके अन्तर्गत सर्वप्राणी हैं और जिस सच्चिदानन्दघन परमात्मासे यह समस्त जगत् परिपूर्ण है जिस के विषय में उपरोक्त श्लोक 20,21 में तथा गीता अध्याय 15 श्लोक 1-4 तथा 17 में व अध्याय 18 श्लोक 46,61,62, तथा 65,66 में कहा है। वह श्रेष्ठ परमात्मा तो अनन्य भक्तिसे ही प्राप्त होने योग्य है। (22)

अध्याय 8 का श्लोक 23

यत्र काले त्वनावृत्तिमावृत्तिं चैव योगिनः।
प्रयाता यान्ति तं कालं वक्ष्यामि भरतर्षभ।२३।

यत्र, काले, तु, अनावर्तिम्, आवर्तिम्, च, एव, योगिनः,
प्रयाताः यान्ति, तम्, कालम्, वक्ष्यामि, भरतर्षभ।।23।।

अनुवाद : (भरतर्षभ) हे अर्जुन! (यत्र) जिस (काले) कालमें (प्रयाताः) शरीर त्यागकर गये हुए (योगिनः) योगीजन (तु) तो (अनावर्तिम्) वापस न लौटने वाली गतिको (च) और जिस कालमें गये हुए (आवर्तिम्) वापस लौटनेवाली गतिको (एव) ही (यान्ति) प्राप्त होते हैं (तम्) उस गुप्त (कालम्) कालको अर्थात् दोनों मार्गोंको (वक्ष्यामि) कहूँगा। (23)

केवल हिन्दी : हे अर्जुन! जिस कालमें शरीर त्यागकर गये हुए योगीजन तो वापस न लौटने वाली गतिको और जिस कालमें गये हुए वापस लौटनेवाली गतिको ही प्राप्त होते हैं उस गुप्त कालको अर्थात् दोनों मार्गोंको कहूँगा। (23)

अध्याय 8 का श्लोक 24

अग्निर्ज्योतिरहः शुक्लः षण्मासा उत्तरायणम्।
तत्र प्रयाता गच्छन्ति ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः।२४।

अग्निः, ज्योतिः, अहः, शुक्लः, षण्मासाः, उत्तरायणम्,
तत्र, प्रयाताः, गच्छन्ति, ब्रह्म, ब्रह्मविदः, जनाः।।24।।

अनुवाद : (ज्योतिः) प्रकाश (अग्निः) अग्नि है (अहः) दिन का कर्ता है (शुक्लः) शुक्लपक्ष कहा है और (उत्तरायणम्) उतरायणके (षण्मासाः) छः महीनोंका अभिमानी देवता है (तत्र) उस मार्गमें (प्रयाताः) मरकर गये हुए (ब्रह्मविदः) परमात्मा को तत्व से जानने वाले (जनाः) योगीजन (ब्रह्म) परमात्मा को (गच्छन्ति) प्राप्त होते हैं। (24)

केवल हिन्दी : प्रकाश अग्नि दिनका कर्ता है शुक्लपक्ष कहा है और उतरायणके छः महीनोंका है उस मार्गमें मरकर गये हुए परमात्मा को तत्व से जानने वाले योगीजन परमात्मा को प्राप्त होते हैं। (24)

अध्याय 8 का श्लोक 25

धूमो रात्रिस्तथा कृष्णः षण्मासा दक्षिणायनम्।
तत्र चान्द्रमसं ज्योतिर्योगी प्राप्य निवर्तते। २५।

धूमः, रात्रिः, तथा, कष्णः, षण्मासाः, दक्षिणायनम्,
तत्र, चान्द्रमसम्, ज्योतिः, योगी, प्राप्य, निवर्तते।।25।।

अनुवाद : (धूमः) अन्धकार (रात्रिः) रात्रि–का कर्ता है (तथा) तथा (कष्णः) कष्णपक्ष (दक्षिणायनम्) दक्षिणायनके (षण्मासाः) छः महीनोंका है (तत्र) उस मार्गमें मरकर गया हुआ (योगी) योगी (चान्द्रमसम्) चन्द्रमाकी (ज्योतिः) ज्योतिको (प्राप्य) प्राप्त होकर स्वर्ग में अपने शुभ कर्मोंका फल भोगकर (निवर्तते) वापस आता है। (25)

केवल हिन्दी : अन्धकार रात्रि–का कर्ता है तथा कष्णपक्ष है और दक्षिणायनके छः महीनोंका है उस मार्गमें मरकर गया हुआ योगी चन्द्रमाकी ज्योतिको प्राप्त होकर स्वर्ग में अपने शुभ कर्मोंका फल भोगकर वापस आता है। (25)

विशेषः- उपरोक्त दोनों श्लोकों का भावार्थ परमेश्वर कबीर बन्दी छोड़ जी ने अपनी अमतवाणी स्वसम वेद में कहा है कि तारा मण्डल बैठ कर चाँद बड़ाई खाय। उदय हुआ जब सूरज का स्यों तारों छिप जाय''

वाणी का अर्थः– जैसे रात्री के समय चन्द्रमा तारों की रोशनी से अधिक चमकदार होता है। परन्तु सूर्य के प्रकाश के समक्ष उस का प्रकाश समाप्त हो जाता है। यहाँ चांद तो ब्रह्म तथा परब्रह्म तथा तारे ब्रह्मा–विष्णु व शिव जाने तथा सूर्य पूर्ण परमात्मा का लाभ जाने।

अध्याय 8 का श्लोक 26

शुक्लकृष्णे गती ह्येते जगतः शाश्वते मते।
एकया यात्यनावृत्तिमन्ययावर्तते पुनः। २६।

शुक्लकष्णे, गती, हि, एते, जगतः, शाश्वते, मते,
एकया,याति,अनावत्तिम्,अन्यया,आवर्तते,पुनः।।26।।

अनुवाद : (हि) क्योंकि (जगतः) जगत्के (एते) ये दो प्रकारके (शुक्लकष्णे) शुक्ल और कष्ण (गती) मोक्ष मार्ग (शाश्वते) सनातन (मते) माने गये हैं इनमें (एकया) एकके द्वारा गया हुआ (अनावत्तिम्) जिससे वापस नहीं लौटना पड़ता उस परमगतिको (याति) प्राप्त होता है और (अन्यया) दूसरे मार्ग द्वारा गया हुआ (पुनः) फिर (आवर्तते) वापस आता है अर्थात् जन्म–मरणको प्राप्त होता है। (26)

केवल हिन्दी : क्योंकि जगत्के ये दो प्रकारके शुक्ल और कष्ण मोक्ष मार्ग सनातन माने गये हैं इनमें एकके द्वारा गया हुआ जिससे वापस नहीं लौटना पड़ता उस परमगतिको प्राप्त होता है और दूसरे मार्ग द्वारा गया हुआ फिर वापस आता है अर्थात् जन्म–मरणको प्राप्त होता है। (26)

विशेष :- गीता अध्याय 8 श्लोक 27-28 का भावार्थ है कि जिन प्रभुओं (ब्रह्म–परब्रह्म तथा पूर्ण ब्रह्म) के विषय में पूर्वोक्त श्लोक 3 से 22 में ज्ञान कहा है। उन दोनों प्रभुओं से होने वाले मोक्ष लाभ से परिचित होकर बुद्धिमान व्यक्ति मोहित नहीं होता अर्थात् काल उपासना करके धोखा नहीं खाता। इसलिए कहा है कि उस पूर्ण परमात्मा की भक्ति करने का मन बना।

तत्वज्ञान को समझ कर उपरोक्त ज्ञान के रहस्य को जानकर साधक पूर्ण परमात्मा की प्राप्ति का ही प्रयत्न करता है तथा वेदों में वर्णित साधना से होने वाले लाभ पर ही आश्रित नहीं रहता वह चारों वेदों (ऋग्वेद, सामवेद, यर्जुवेद तथा अथर्ववेद) से आगे का लाभ (जो स्वसम वेद में वर्णित है) प्राप्त करता है। उस के लिए वेदों वाली साधना से {दान, तप (तप गीता अध्याय 17 श्लोक 14 से 16 में तीन प्रकार का कहा है)तथा यज्ञ द्वारा} जो पुण्य होता है उस से होने वाला संसारिक लाभ प्राप्त न करके पूर्ण परमात्मा की प्राप्ति के लिए इसे ब्रह्म में त्याग कर पूर्ण मोक्ष प्राप्त करता है। क्योंकि वेदों में वर्णित विधि से पुण्य के आधार से स्वर्ग प्राप्ति होती है। पुण्य क्षीण होने के पश्चात् पुनः पाप के आधार के कष्ट भोगने पड़ते हैं।

गीता अध्याय 9 श्लोक 20-21 में वेदों में वर्णित साधना से भी जन्म–मत्यु तथा स्वर्ग–नरक का चक्र समाप्त नहीं होता। गीता अध्याय 11 श्लोक 48 व 53 में कहा है कि वेदों में वर्णित साधना से मेरी प्राप्ति नहीं है। अध्याय 11 श्लोक 54 में कहा कि मेरे में प्रवेश होने के लिए ही कहा है मोक्ष–मुक्ति के लिए नहीं जैसे गीता ज्ञान दाता प्रतिदिन एक लाख मानव शरीर धारी प्राणियों को काल रूप में खाता है।

जैसा विवरण अध्याय 11 श्लोक 21 में अर्जुन आँखों देखा बता रहा है कि जो ऋषियों वे देवताओं का समूह आप का वेद मन्त्र द्वारा गुणगान कर रहा है आप उन्हें भी खा रहे हो। वे सर्व आप में प्रवेश कर रहे हैं। कोई आपकी दाड़ों में लटक रहे हैं इसी के विषय में श्लोक 54 में कहा है। श्लोक 55 का भी यह भावार्थ है कि मेरे साधक मेरे को प्राप्त होते है। मेरे ही जाल में रह जाते हैं। उसके लिए गीता अध्याय 8 श्लोक 28 में कहा है कि पूर्ण सन्त (तत्वदर्शी सन्त) के बताए भक्ति मार्ग से साधक वेदों में वर्णित साधना का फल स्वर्ग आदि में जाकर नष्ट नहीं करता अपितु पूर्ण परमात्मा को पाने के लिए प्रयुक्त करता है। उस वेदों वाली कमाई (ओं नाम का जाप पाँचों यज्ञों का फल) को ब्रह्म में त्यागकर पूर्ण परमात्मा को प्राप्त करता है जिस कारण से पूर्ण मोक्ष प्राप्त करता है। यही प्रमाण गीता अध्याय 18 श्लोक 66 में है कहा है कि हे अर्जुन मेरे सत्र की सर्व धाार्मिक पूजाऐं मेरे में त्याग कर तू उस एक (अद्वितीय) सर्वशक्तिमान परमश्ेवर की शरण में (व्रज) जा। फिर मैं तूझे सर्व पापों से मुक्त कर दूंगा। क्योंकि जिन पापों को भोगना था उस के प्रतिफल में सर्व पूण्य व नाम जाप की कमाई छोड़ देने से काल का ऋण समाप्त हो जाता है। इसलिए काल जाल से मुक्ति मिलती है।

अध्याय 8 का श्लोक 27

नैते सृती पार्थ जानन्योगी मुह्यति कश्चन।
तस्मात्सर्वेषु कालेषु योगयुक्तो भवार्जुन। २७।

न,एते,सती, पार्थ, जानन्,योगी, मुह्यति,कश्चन,
तस्मात्,सर्वेषु, कालेषु, योगयुक्तः, भव, अर्जुन।।27।।

अनुवाद : (पार्थ) हे पार्थ! इस प्रकार (एते) इन दोनों (सती) मार्गों की भिन्नता को (जानन्) तत्वसे जानकर (कश्चन) कोई भी (योगी) योगी (न, मुह्यति) मोहित नहीं होता (तस्मात्) इस कारण (अर्जुन) हे अर्जुन! तू (सर्वेषु) सब (कालेषु) कालमें (योगयुक्तः) समबुद्धिरूप योगसे युक्त (भव) हो अर्थात् निरन्तर पूर्ण परमात्मा प्राप्तिके लिये साधन करनेवाला हो। (27)

केवल हिन्दी : हे पार्थ! इस प्रकार इन दोनों मार्गों की भिन्नता को तत्वसे जानकर कोई भी योगी मोहित नहीं होता इस कारण हे अर्जुन! तू सब कालमें समबुद्धिरूप योगसे युक्त हो अर्थात् निरन्तर पूर्ण परमात्मा प्राप्तिके लिये साधन करनेवाला हो। (27)

अध्याय 8 का श्लोक 28

वेदेषु यज्ञेषु तपःसु चैव
दानेषु यत्पुण्यफलं प्रदिष्टम्।
अत्येति तत्सर्वमिदं विदित्वा
योगी परं स्थानमुपैति चाद्यम्।२८।

वेदेषु, यज्ञेषु, तपःसु, च, एव, दानेषु, यत्, पुण्यफलम्, प्रदिष्टम्, अत्येति,
तत्, सर्वम्, इदम्, विदित्वा, योगी, परम्, स्थानम्, उपैति, च, आद्यम्।।28।।

अनुवाद : (योगी) साधक (इदम्) इस पूर्वोक्त रहस्य को (विदित्वा) तत्वसे जानकर (वेदेषु) वेदोंके पढ़नेमें (च) तथा (यज्ञेषु) यज्ञ (तपःसु) तप और (दानेषु) दानादिके करनेमें (यत्) जो (पुण्यफलम्) पुण्यफल (प्रदिष्टम्) कहा है (तत्) उस (सर्वम्) सबको (एव) निःसन्देह मुझ में (अत्येति) त्याग कर वेदों से आगे वाला ज्ञान जानकर शास्त्र विधि अनुसार साधना करता है (च) तथा (आद्यम्) अन्त समय में पूर्ण परमात्मा के (परम्,स्थानम्) उत्तम लोक–सतलोक को (उपैति) प्राप्त होता है। (28)

केवल हिन्दी : साधक इस पूर्वोक्त रहस्य को तत्वसे जानकर वेदोंके पढ़नेमें तथा यज्ञ तप और दानादिके करनेमें जो पुण्यफल कहा है उस सबको निःसन्देह मुझ में त्याग कर वेदों से आगे वाला ज्ञान जानकर शास्त्र विधि अनुसार साधना करता है तथा अन्त समय में पूर्ण परमात्मा के उत्तम लोक–सतलोक को प्राप्त होता है। (28)

(इति अध्याय आठवाँ)

❑❑❑

नौवां अध्याय

।।दिव्य सारांश।।

अध्याय 9 के श्लोक 1, 2 में कहा है कि सब ज्ञानों का रहस्य युक्त विशेष गुप्त ज्ञान तुझे कहूंगा जिसे जान कर मानव अशुभ कर्म त्याग देता है अर्थात् अशुभ कर्मों से मुक्त हो जाता है जो सर्व गुप्त ज्ञानों का राजा है।

।। पूर्ण परमात्मा ही सर्व जीवों का आधार ।।

अध्याय 9 के श्लोक 3 से 6 में कहा है कि जो नियम गीता अध्याय 8 के श्लोक 5 से 10 में कहा है, यदि उसके आधार पर साधक साधना नहीं करता वह जन्म-मरण के चक्र में रहता है। फिर कहा है कि ये सर्व प्राणी उस परमात्मा के आधार हैं परंतु मैं इनसे न्यारा (ब्रह्मलोक में) हूँ क्योंकि काल ब्रह्मलोक तथा इक्कीसवें ब्रह्मण्ड में अलग से रहता है तथा ब्रह्म लोक में भी महाब्रह्मा-महाविष्णु तथा महाशिव रूप में गुप्त तथा भिन्न रहता है। वास्तव में यहाँ सर्व प्राणियों को वह पूर्ण परमात्मा माया द्वारा व्यवस्थित रखता है। मैं (काल) प्राणियों में नहीं हूँ। जैसे वायु आकाश में ठहराई है वैसे ही जीव उस परमात्मा में अपने कर्माधार पर उसी की (शक्ति) माया द्वारा व्यवस्थित हैं। गीता अध्याय 13 श्लोक 17 तथा अध्याय 18 श्लोक 61 में गीता ज्ञान दाता ने कहा है कि पूर्ण परमात्मा सर्व प्राणियों के हृदय में विशेष रूप से स्थित है। वही सर्व प्राणियों को कर्माधार से यन्त्र की तरह भ्रमण कराता है।

गीता अध्याय 9 के श्लोक 3-6 का अनुवाद :-

❖ *गीता अध्याय 9 श्लोक 3 का अनुवाद :- हे परन्तप यानि अर्जुन! जो धर्म यानि विधान मैंने गीता अध्याय 8 श्लोक 5-10 में बताया है कि मेरी भक्ति करेगा तो मुझे प्राप्त होगा। युद्ध भी करना होगा और जैसा अध्याय 2 श्लोक 12, अध्याय 4 श्लोक 5, अध्याय 10 श्लोक 2 में वर्णन है कि मेरे और तेरे जन्म-मंत्यु सदा रहेंगे, तू नहीं जानता, मैं जानता हूँ। यदि उस परम अक्षर ब्रह्म की भक्ति करता है तो उसी धर्म यानि विधानानुसार उस अविनाशी परमात्मा को प्राप्त होता है। गीता अध्याय 8 श्लोक 3, 8-10 में उस परम अक्षर ब्रह्म की भक्ति करने को कहा है तथा गीता अध्याय 18 श्लोक 62, 66 व अध्याय 15 श्लोक 4 में कहा है कि उस परमेश्वर की शरण में जा। उसकी कंपा से ही तू परम शांति को तथा सनातन परम धाम को प्राप्त होगा जहाँ जाने के पश्चात् साधक फिर लौटकर संसार में कभी नहीं आते। उसी परमेश्वर की भक्ति कर जिसने संसार रूपी वंक्ष की रचना की है। इस धर्म यानि नियम अश्रद्धा रखने वाला यानि इस नियम का पालन करने वालों के लिए परम अक्षर ब्रह्म (अप्राप्य) प्राप्त नहीं होता। मुझे प्राप्त होकर जन्म-मंत्यु संसार चक्र में लौटते हैं यानि बार-बार जन्मते-मरते हैं।(9/3)*

❖ *विशेष :- इस अध्याय 9 के श्लोक 4 में गीता ज्ञान दाता ने अपने को ''अव्यक्त मूर्ति'' कहा है जिससे सिद्ध है कि काल ब्रह्म अव्यक्त यानि छुपा है, परंतु साकार है।*

अध्याय 9 श्लोक 4 का अनुवाद :- (इदम्) यह (सर्वम्) सम्पूर्ण (जगत्) संसार (मया) मेरे (अव्यक्त) अव्यक्त यानि परोक्ष (मूर्तिना) रूप द्वारा (ततम्) परिपूर्ण है। (मत्) मेरे में (स्थानि) स्थित हैं। (सर्व भूतानि) सब प्राणी मेरे आधार हैं (च) और (अहम्) मैं (तेषु) उनमें (न अवस्थित) स्थित नहीं हूँ।(9/4)

❖ *गीता अध्याय 9 श्लोक 5 का अनुवाद :- (मे) मेरी (ऐश्वरम् योगम्) मेरी लीला (पश्य) देख यानि मेरी योगमाया समझ (भूतनि न मत्स्थानि) प्राणी मुझमें स्थित नहीं हैं (च) और (मम) मेरी (आत्मा) आत्मा (च) और (भूत भावान) प्राणियों को उत्पन्न करने वाला (भूत भत्) प्राणियों का पोषण करने वाला (न भूतस्थः) प्राणियों में स्थित नहीं है।(9/5)*

भावार्थ :- काल ब्रह्म ने बताया है कि यह सब गुप्त ज्ञानों का राजा विशेष ज्ञान है। मेरी लीला तो देख, मैं अपने अंतर्गत प्राणियों में स्थित नहीं हूँ तथा मेरी आत्मा और प्राणियों को उत्पन्न करने वाला सबके प्राणियों का पोषण करने वाला परमेश्वर भी प्राणियों में स्थित नहीं है यानि काल ब्रह्म भी ऊपर अपने ब्रह्मलोक में महाब्रह्मा रूप में विद्यमान है तथा परमेश्वर भी अपने सतलोक में विद्यमान है। उसकी निराकार शक्ति सर्व प्राणियों व ब्रह्मण्डों को चला रही है।

जैसा कि गीता अध्याय 15 श्लोक 16-17 में तीन पुरूषों का वर्णन है। उसी प्रकार तीन अव्यक्त भी इन्हीं को कहा है। नं. 1. अव्यक्त काल ब्रह्म यानि गीता ज्ञान देने वाला है। उसने अपने विषय में गीता अध्याय 7 श्लोक 24-25 तथा अध्याय 9 के श्लोक 4 में बताया है। नं. 2 अव्यक्त अक्षर पुरूष है। गीता अध्याय 8 के श्लोक 18-19 में इसका वर्णन है। नं. 3 अव्यक्त परम अक्षर ब्रह्म है जिसका वर्णन गीता अध्याय 8 श्लोक 20-22 में है। गीता अध्याय 15 के श्लोक 16 में जो दो पुरूष कहे हैं :- 1. क्षर पुरूष, यह प्रथम अव्यक्त है। 2. अक्षर पुरूष, यह दूसरा अव्यक्त है। नं. 3 (उत्तम पुरूषः तू अन्य) परम अक्षर ब्रह्म है। यह तीसरा अव्यक्त है।

।। ब्रह्म (काल) के उपासक का जन्म-मरण निश्चित है।।

अध्याय 9 के श्लोक 7 में स्पष्ट है पहले तो काल भगवान कह रहा है कि मेरे उपासक का जन्म-मरण नहीं होता। अब श्लोक 7 में कहता है कि अर्जुन कल्पों के अंत में सर्व प्राणी मेरी प्रकति को प्राप्त होते हैं। (अर्थात नष्ट हो जाते हैं)। कल्पों के प्रारम्भ में उनको फिर रचता हूँ। इससे स्वसिद्ध है कि काल ब्रह्म की साधना से कोई भी प्राणी जन्म-मत्यु से मुक्त नहीं होता। अध्याय 8 के श्लोक 16 में प्रमाण है कि ब्रह्मलोक से लेकर सब (ब्रह्मा-शिव-विष्णु तथा इनके लोक तथा अन्य लोक) लोक पुनरावर्ती में हैं यानि इन लोकों में गए साधक का पुनर्जन्म अवश्य होता है तथा अन्य अनुवादकर्ताओं ने लिखा है कि मुझे प्राप्त होकर पुर्नजन्म नहीं होता और काल प्राप्त हो ही नहीं सकता। (चूंकि अध्याय 11 के श्लोक 47 और 48 में प्रत्यक्ष है कि किसी भी साधना से मुझे प्राप्त नहीं हो सकता) इसलिए सर्व प्राणियों की मुक्ति असम्भव। इसलिए अध्याय 7 के श्लोक 18 में अनुत्तमम् गतिम् घटिया से घटिया मुक्ति कही है।

।। प्रकति व ब्रह्म (काल) से प्राणियों की उत्पत्ति।।

अध्याय 9 के श्लोक 8 में कहा है कि अपनी प्रकति को अंगीकार यानि देवी दुर्गा से सहवास करके स्वभाव बल (मन द्वारा वासनाओं) से परतन्त्र (वश) हुए इन सम्पूर्ण प्राणियों को बार-बार रचता हूँ। अध्याय 9 के श्लोक 9 में कहा है कि मैं (ब्रह्म) कर्मों के वश नहीं हूँ। (चूंकि कर्म ब्रह्म से उत्पन्न हैं। अध्याय 3 के श्लोक 14,15 में।)

❖ *अध्याय 9 के श्लोक 10 में कहा है - हे अर्जुन! मेरे आधीन (पत्नी रूप में) प्रकति यानि देवी दुर्गा चराचर सहित जगत् को उत्पन्न करती है। इस प्रकार यह जन्म-मरण चक्र चलता रहता है।*

।। ब्रह्म (काल) कभी स्थूल शरीर में आकार में नहीं आता ।।

❖ *अध्याय 9 के श्लोक 11 में कहा है कि जो मूर्ख लोग पूर्ण परमात्मा तथा मेरे परम भाव को {काल का परम भाव अध्याय 7 के श्लोक 24 में है कि मेरे घटिया भाव को यानि मैं कभी आकार में नहीं आता। यह मेरा अविनाशी (अटल) नियम (भाव) है कि मैं कभी आकार में शरीर धारण करके नहीं आता। मेरा जन्म-मरण सदा बना रहता है। सबका मालिक यानि महेश्वर सदा अविनाशी है व कभी जन्मता-मरता नहीं है। वही सर्व का उत्पत्तिकर्ता, धारण-पोषणकर्ता है।} नहीं जानते। मुझे मनुष्य शरीर धारण करने वाला तुच्छ समझते हैं अर्थात् मैं स्थूल शरीर धारी श्री कष्ण नहीं हूँ।*

❖ *गीता अध्याय 9 श्लोक 11 का अनुवाद :- (मूढ़ाः) मूर्ख जन (माम्) मुझको (मानुसीम्) मनुष्य का (तनुम्) शरीर (आश्रितम्) धारण करने वाला (अवजनन्ति) तुच्छ जानते हैं क्योंकि वे (मम) मेरे व (भूत महेश्वरम्) प्राणियों के महान स्वामी के (परम् भावम अजानन्त) विशेष अन्य भाव को नहीं जानते।(9/11)*

भावार्थ :- तत्वज्ञान के अभाव से मूर्ख प्राणी मुझे सर्व प्राणियों का प्रभु मानते हैं। मैं महेश्वर नहीं हूँ, महेश्वर तो पूर्ण परमात्मा है। जो गीता अध्याय 15 श्लोक 4 व 16, 17, गीता अध्याय 18 श्लोक 46, 61, 62, 66 में तथा अध्याय 8 श्लोक 3, 8, 9, 10, 20-21-22 में वर्णन है तथा मुझे शरीर धारण करने वाला अवतार रूप में श्री कष्ण समझ रहा है, मैं श्री कष्ण नहीं हूँ। इसी का प्रमाण गीता अध्याय 7 श्लोक 24-25 में तथा गीता अध्याय 8 श्लोक 20 से 22 में दोनों (ब्रह्म तथा पूर्ण ब्रह्म) को अव्यक्त बताया है तथा विस्तत वर्णन है। उपरोक्त मूर्खों का विवरण निम्न श्लोक में भी दिया है कि वे कहने से भी नहीं मानते, अपनी जिद्द के कारण मुझे सर्वेश्वर-महेश्वर व श्री कष्ण ही मानते रहते हैं। यदि कोई तत्वदर्शी संत समझाएगा की पूर्ण परमात्मा कोई और है तथा श्री कष्ण जी ने गीता जी नहीं बोला तथा यह काल महेश्वर नहीं है। वे मूर्ख नहीं मानते।

विशेष :-- गीता 9 श्लोक 11 का अनुवाद अन्य अनुवाद कर्ता ने किया है उस में प्रथम पंक्ति के दूसरे अक्षर ''माम्'' को द्वितिय पंक्ति के ''भूत महेश्वरम्'' से जोड़ा है जो व्याकरण दष्टिकोण से न्याय संगत नहीं है क्योंकि ''भूत महेश्वरम्'' के साथ ''मम'' शब्द लिखा है अन्य अनुवाद कर्ताओं ने गीता ज्ञान दाता को सम्पूर्ण प्राणियों का महान् ईश्वर किया है। यदि ऐसा ही माना जाए तो पाठक जन कप्या इसका भावार्थ यह जाने की ब्रह्म कह रहा है कि मैं अपने इक्कीस ब्रह्मण्डों के सर्व प्राणियों का महान ईश्वर अर्थात् प्रमुख हूँ। वास्तव में उपरोक्त अनुवाद जो मुझ दास द्वारा किया है। वह यथार्थ है।

।। ब्रह्म (काल) के उपासक उसी का आहार ।।

❖ *अध्याय 9 के श्लोक 12 में कहा है कि आसुरी स्वभाव (वत्ति) वाले व्यर्थ कार्यो (ताश खेलना, शराब पीना, व्यर्थ की बातें करना, हुक्का पीना, मांस खाना, निन्दा करना, सिनेमा देखना, चोरी-जारी करना आदि) में तथा व्यर्थ आशाओं में व्यर्थ ज्ञान वाले मूर्ख राक्षसी स्वभाव वश रहते हैं।*

❖ *अध्याय 9 के श्लोक 13 में वर्णन है कि जो भक्त आत्मा हैं वे मुझे प्राणियों का मालिक अविनाशी (जैसा अध्याय 15 के श्लोक 18 में कहा है कि मैं केवल मेरे इक्कीस ब्रह्माण्डों में जितने स्थूल शरीर के प्राणियों तथा जीवात्मा हैं, उनसे उत्तम हूँ। इसलिए लोक व वेदों में पुरुषोत्तम प्रसिद्ध हूँ परंतु वास्तव में पुरूषोत्तम व अविनाशी तो कोई और ही है। गीता जी के अध्याय 15 के श्लोक 17 में) जान कर अनन्य मन (आन उपासना त्याग कर शास्त्रानुकूल साधना और तीनों गुणों*

से ऊपर उठ कर केवल एक अक्षर ''ऊँ'' का जाप करते हुए) से मेरा भजन करते हैं। अध्याय 9 के श्लोक 14 में बताया है कि ऐसे सुचारू भक्त (दढ़ नियमों वाले) निरन्तर मेरे गुणों व नाम का कीर्तन करते हुए तथा मेरी प्राप्ति के लिए यत्न करते हैं और मुझको प्रणाम करते हैं। सदा मेरे ध्यान में लगे हुए भिन्न-2 प्रकार से मेरी उपासना करते हैं। ये सब काल उपासक भी काल का आहार बनते हैं। प्रमाण गीता अध्याय 11 श्लोक 21 में स्पष्ट है कि जो महर्षिजन तथा देवताजन काल ब्रह्म की स्तुति कर रहे हैं, गुणगान कर रहे हैं, आप उनको भी खा रहे हो। वे आपके मुख में प्रवेश कर रहे हैं।

❖ *अध्याय 9 श्लोक 15-19 का सारांश :-*

❖ *श्लोक 15 :- अन्य साधक मुझे ज्ञान यज्ञ यानि वेदों के श्लोकों का प्रतिदिन पठन-पाठन करके मेरी पूजा करते हैं। जैसे यजुर्वेद के अध्याय 36 के मंत्र के आगे ओउम् अक्षर लगाकर गायत्री मंत्र नाम रखकर इसी एक वेद मंत्र का सैंकड़ों बार प्रतिदिन उच्चारण करने लगे। इस प्रकार वेद मंत्रों या गीता के श्लोकों या संतों की वाणी व सत्संग सुनने को ज्ञान यज्ञ कहा जाता है। इससे मोक्ष नहीं होगा। अन्य साधक बहुत प्रकार से मेरे (विश्वतः मुखम्) को विश्व का मुखिया रूप में मानकर मेरी उपासना करते हैं।(9/15)*

❖ *श्लोक 16 :- काल ब्रह्म जो गीता ज्ञान दाता है, यह इस ब्रह्माण्ड का स्वामी है। जितने जीवात्मा इसके जाल में फँसे हैं। उनका सर्वेस्वा यह बना है। इसके लोक में कर्म करके ही फल मिलता है। इसलिए कहा है कि मेरे यानि काल ब्रह्म से सुविधा लेने के लिए तथा स्वर्ग में जाने के लिए धार्मिक क्रियाऐं करनी पड़ती है। इसलिए कहा है कि क्रतु यानि धार्मिक कर्म में हूँ। यज्ञ स्वधा औषधि हवन करने की सामग्री, घी, अग्नि आदि-आदि में ही हूँ यानि सब मेरा है। मुझसे लाभ लेने के लिए सब करना पड़ेगा।*

❖ *अध्याय 9 के श्लोक 17 में कहा है कि मैं सब जगत का धारण कर्त्ता, माता-पिता-दादा, वेदों में जानने योग्य पवित्र ऊँ (ओंकार) मन्त्र, ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेद मैं ही हूँ अर्थात् ब्रह्म ज्ञान व उपासना ही तीनों वेदों में है। चौथा अथर्ववेद है जो संष्टि रचना की जानकारी देता है।*

❖ *अध्याय 9 के श्लोक 18 में कहा है कि मेरे इक्कीस ब्रह्मण्डों में मैं ही स्वामी, स्थिति धारण कर्त्ता, साक्षी निवास स्थान, शरण योग्य परोपकारी, उत्पत्ति व विनाश कर्त्ता वाले इस अविनाशी विधान का कारण भी मैं ही हूँ।*

❖ *अध्याय 9 के श्लोक 19 में कहा है कि मैं ही गर्मी - वर्षा, आकर्षण व बरसात, मैं ही अमंत और मंत्यु सत-असत् हूँ।*

भगवान काल ने कहा है कि जो भी उपासक वेदों के ज्ञान आधार से शास्त्र अनुकूल साधना करता है उनके लिए उपास्य मैं (काल) ही हूँ। परंतु अंत में सर्व को खाऊँगा। किसी को नहीं छोडूं। फिर कर्माधार पर स्वर्ग-नरक, काल द्वारा व्यस्थित विधान अनुसार चारों मुक्ति फिर चौरासी लाख जूनियों में डालूँगा। प्रमाण के लिए देखें गीता जी के अध्याय 11 के श्लोक 21 में जिसमें अर्जुन आँखों देखा हाल कह रहा है। जब काल भगवान ने अपना वास्तविक विराट रूप दिखाया। उसमें अर्जुन देख रहा है तथा कह रहा है कि भगवन आप तो देवताओं के समूह (झुण्ड के झुण्ड) को भी खा रहे हो। कुछ भयभीत हो कर हाथ जोड़ कर आपके नाम व गुणों का कीर्तन कर रहे हैं। महर्षि व सिद्ध समुदाय कल्याण हो! (बख्शदो-2) कल्याण हो! कहकर वेदों के उत्तम-2 स्तोत्रों द्वारा आपकी स्तुति करते हैं, आप उन्हें भी खा रहे हैं। फिर गीता जी के अध्याय 11 के श्लोक 32 में काल कह रहा है कि मैं सबको खाने के लिए प्रकट हुआ हूँ तथा बढ़ा हुआ काल हूँ, किसी को नहीं छोडूँ।

।। पवित्र वेदों अनुसार साधना का परिणाम केवल स्वर्ग-महास्वर्ग प्राप्ति, मुक्ति नहीं।।

❖ *गीता अध्याय 9 श्लोक 20-25 का अनुवाद :-*

❖ *अध्याय 9 श्लोक 20 :- (त्रै विद्याः) तीनों वेदों ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेद में वर्णित साधना के आधार से (सोमयाः) अमर परमेश्वर के अमरत्व के आनंद की प्राप्ति के लिए (पूत पापाः) सर्व विकार त्यागकर सर्व प्रकार के पापों से बचे हुए साधक (माम्) मुझको (इष्टवा) इष्ट देव यानि पूज्य देव रूप में (यज्ञैः) यज्ञों द्वारा पूजकर (स्वर्गतिम्) स्वर्ग जाने वाली गति यानि मुक्ति के लिए (प्रार्थयन्ते) प्रार्थना-पूजा करते हैं। (ते) वे (पूण्याम्) अपने पुण्यों के फल रूप से (सुर-इन्द्र=सुरेन्द्र) देवताओं के स्वामी इन्द्र के (लोकम्) लोक को (आसाद्य) प्राप्त होकर (दिवि) स्वर्ग में (दिव्यान्) दिव्य (देव भोगान्) देवताओं वाले भोगों को (अश्नन्ति) भोगते हैं। अपने भक्ति कर्मों का पुण्य खाते हैं।(9/20)*

भावार्थ :- वेदों में महिमा तो अमर परमात्मा यानि परम अक्षर ब्रह्म की भी है जिसमें उसकी भक्ति से साधक पापरहित होकर अमर सुख यानि पूर्ण मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। परंतु भक्ति के मंत्र व यज्ञ आदि-आदि क्रियाऐं काल ब्रह्म तक हैं। इस कारण से वे इष्ट रूप में ब्रह्म को पूजकर काल जाल में रह जाते हैं। ब्रह्म साधना व यज्ञों का फल स्वर्ग-महास्वर्ग में पुण्यों का फल भोगकर पुनः संसार में जन्म है।(9/20)

❖ *गीता अध्याय 9 श्लोक 21 :- (ते) वे भ्रमित साधक (तम्) उस पूर्ण परमात्मा के भ्रम में साधना का फल (विशालम्) विशाल (स्वर्ग लोकम्) स्वर्ग लोक यानि महास्वर्ग को (भुक्त्वा) भोगकर (पूण्य) पुण्यों के (क्षीणे) क्षीण यानि समाप्त होने पर (मर्त्य लोकम्) मनुष्य लोक यानि पथ्वी लोक को (विशन्ति) प्राप्त होते हैं। (एवम्) इस प्रकार (त्रयी धर्मम्) तीनों वेदों में कही धार्मिक साधना का (अनुप्रपन्ना) आश्रय लेने वाले (काम कामा) पूर्ण ज्ञान न होने के कारण भक्ति के प्रतिफल की इच्छा करने वाले (गतागतम्) बार-बार आवागमन को (लभन्ते) प्राप्त होते हैं अर्थात् पुण्यों के फल रूप से स्वर्ग में जाते हैं। पुण्य क्षीण होने पर मत्यु लोक में अन्य प्राणियों के शरीरों में जन्म लेने के लिए गिरते हैं।(9/21)*

❖ *गीता अध्याय 9 श्लोक 22 :- जो साधक अन्य देवी-देवताओं की साधना न करके पूर्ण ब्रह्म के भ्रम में मेरी साधना करते हैं, उनकी (योग) भक्ति (क्षेमम्) रक्षा मैं ही करता हूँ।(9/22)*

❖ *गीता अध्याय 9 श्लोक 23 :- हे अर्जुन! जो अन्य देवताओं व अन्य पूर्ण परमात्मा को (अपि) भी पूजते हैं। वे मुझको ही पूजते हैं यानि काल जाल में ही रहते हैं। उनकी वह पूजा (अविधिपूर्वकम्) शास्त्रविधि त्यागकर मनमाना आचरण अर्थात् अज्ञानपूर्वक है।(9/23)*

❖ *गीता अध्याय 9 श्लोक 24 :- (हि) क्योंकि (सर्वयज्ञानाम्) सब यज्ञों का (भोक्ता) भोगने वाला (च) और (प्रभु) केवल 21 ब्रह्मण्डों का स्वामी (अहम) मैं हूँ (च) और (ते) वे (एव) इस प्रकार (माम्) मुझको (तत्वेन) तत्व से (न) नहीं (अभिजानन्ति) जानते। (तू) तो वे (च्यवन्ति) जन्म-मरण चक्र में गिरते हैं।(9/24)*

गीता अध्याय 9 के श्लोक 20-21 में कहा है कि जो मनोकामना (सकाम) सिद्धि के लिए मेरी पूजा तीनों वेदों में वर्णित शास्त्र अनुकूल करते हैं वे अपने कर्मों के आधार पर स्वर्ग में आनन्द मनाकर फिर जन्म-मरण में आ जाते हैं अर्थात् यज्ञ चाहे शास्त्रानुकूल भी हो उनका एक मात्र लाभ सांसारिक भोग, स्वर्ग है क्योंकि काल ब्रह्म की भक्ति से पाप नाश नहीं होते। इसलिए पाप कर्मों के

कारण नरक व चौरासी लाख जूनियों में भी कर्म दण्ड भोगना पड़ता है। जब तक तीनों मंत्र (ओ३म तथा तत् व सत् सांकेतिक) पूर्ण संत से प्राप्त नहीं होते।

❖ *अध्याय 9 के श्लोक 22 में कहा है कि जो निष्काम भाव से मेरा चिन्तन करते हुए उस पूर्ण परमात्मा की शास्त्रानुकूल पूजा करते हैं, उनकी भक्ति की रक्षा मैं ही करता हूँ।*

।। वेदों अनुसार साधना न करने वाले पूर्ण मुक्त नहीं।।

पवित्र गीता अध्याय 9 के श्लोक 23,24 में कहा है कि जो व्यक्ति अन्य देवी-देवताओं को पूजते हैं वे भी मेरी पूजा ही कर रहे हैं। परंतु उनकी यह पूजा अविधिपूर्वक यानि शास्त्रविरूद्ध है (देवी-देवताओं को नहीं पूजना चाहिए) क्योंकि सम्पूर्ण यज्ञों का भोक्ता व स्वामी मैं ही हूँ। वे भक्त मुझे अच्छी तरह नहीं जानते कि यह काल है। इसलिए इसकी पूजा करके भी पतन को प्राप्त होते हैं जिससे नरक व चौरासी लाख जूनियों का कष्ट सदा बना रहता है। जैसे गीता अध्याय 3 श्लोक 14-15 में कहा है कि सर्व यज्ञों में प्रतिष्ठित अर्थात् सम्मानित, जिसको यज्ञ समर्पण की जाती है वह परमात्मा (सर्व गतम् ब्रह्म) पूर्ण ब्रह्म है। वही कर्माधार बना कर सर्व प्राणियों को प्रदान करता है। परन्तु पूर्ण सन्त न मिलने तक सर्व यज्ञों का भोग (आनन्द) काल (मन रूप में) ही भोगता है, इसलिए कह रहा है कि मैं सर्व यज्ञों का भोक्ता व स्वामी हूँ।

।। श्राद्ध निकालने (पितर पूजने) वाले पितर बनेंगे, उनकी मुक्ति नहीं।।

❖ *गीता अध्याय 9 श्लोक 25 का अनुवाद :- (देवव्रता) देवताओं को पूजने वाले (देवान्) देवताओं को (यान्ति) प्राप्त होते हैं। (पित व्रता) पितरों को पूजने वाले (पितन्) पितरों को (यान्ति) पूजते हैं (भूतेज्या:) भूतों को पूजने वाले (भूतानि) भूतों को (यान्ति) प्राप्त होते हैं। (मद्याजिन:=मत् याजिन:) मेरा पूजन करने वाले (माम्) मुझको (अपि) भी (यान्ति) प्राप्त होते हैं।*

विवेचन :- इस श्लोक में गीता ज्ञान दाता ने स्पष्ट कहा है कि मेरी पूजा करने वाले मुझे भी प्राप्त होते हैं। पहले कहा है कि पितरों को पूजने वाले पितरों को, भूतों को पूजने वाले भूतों को, देवताओं को पूजने वाले देवताओं को प्राप्त होते हैं। अपनी पूजा करने वालों के लिए कहा है कि मेरा पूजन करने वाले मुझे ही प्राप्त होते हैं। ऐसा कहने के पीछे रहस्य यह है कि यदि ब्रह्म काल की शास्त्र अनुसार साधना अनन्य मन से करते हैं तो ब्रह्म काल को प्राप्त होते हैं। जो ब्रह्म काल को इष्ट रूप में मानकर साधना अन्य देवताओं की भी करते हैं, वे भूत-पितर आदि योनियों को भी प्राप्त करते हैं। जो काल ब्रह्म के शास्त्रानुसार साधक भी कुछ समय ब्रह्मलोक में सुख भोगकर पितर, भूत व अन्य प्राणियों के शरीरों को भी प्राप्त होते हैं।(9/25)

गीता अध्याय 9 के श्लोक 25 में कहा है कि देवताओं को पूजने वाले देवताओं को प्राप्त होते हैं, पितरों को पूजने वाले पितरों को प्राप्त होते हैं, भूतों को पूजने (पिण्ड दान करने) वाले भूतों को प्राप्त होते हैं अर्थात् भूत बन जाते हैं, शास्त्रानुकूल (पवित्र वेदों व गीता अनुसार) पूजा करने वाले मुझको भी प्राप्त होते हैं अर्थात् काल द्वारा निर्मित स्वर्ग व महास्वर्ग आदि में कुछ ज्यादा समय मौज कर लेते हैं।

विशेष :- जैसे कोई तहसीलदार की नौकरी (सेवा-पूजा) करता है तो वह तहसीलदार नहीं बन सकता। हाँ उससे प्राप्त धन से रोजी-रोटी चलेगी अर्थात् उसके आधीन ही रहेगा। ठीक इसी प्रकार जो जिस देव (श्री ब्रह्मा देव, श्री विष्णु देव तथा श्री शिव देव अर्थात् त्रिदेव) की पूजा

(नौकरी) करता है तो उन्हीं से मिलने वाला लाभ ही प्राप्त करता है। त्रिगुणमई माया अर्थात् तीनों गुण (रजगुण ब्रह्मा जी, सतगुण विष्णु जी, तमगुण शिव जी) तथा अन्य देवी-देवताओं की पूजा का निषेध पवित्र गीता अध्याय 7 श्लोक 12 से 15 तथा 20 से 23 तक में भी है। इसी प्रकार कोई पितरों की पूजा (नौकरी-सेवा) करता है तो पितरों के पास छोटा पितर बन कर उन्हीं के पास कष्ट उठाएगा। इसी प्रकार कोई भूतों (प्रेतों) की पूजा (सेवा) करता है तो भूत बनेगा क्योंकि सारा जीवन जिसमें आशक्तता बनी है अन्त में उन्हीं में मन फंसा रहता है। जिस कारण से उन्हीं के पास चला जाता है। कुछेक का कहना है कि पितर-भूत-देव पूजाऐं भी करते रहेंगे, आप से उपदेश लेकर साधना भी करते रहेंगे। ऐसा नहीं चलेगा। जो साधना पवित्र गीता जी में व पवित्र चारों वेदों में मना है वह करना शास्त्र विरुद्ध हुआ। जिसको पवित्र गीता अध्याय 16 श्लोक 23-24 में मना किया है कि जो शास्त्र विधि त्याग कर मनमाना आचरण (पूजा) करते हैं वे न तो सुख को प्राप्त करते हैं न परमगति को तथा न ही कोई कार्य सिद्ध करने वाली सिद्धि को ही प्राप्त करते हैं अर्थात् जीवन व्यर्थ कर जाते हैं। इसलिए अर्जुन तेरे लिए कर्तव्य (जो साधना के कर्म करने योग्य हैं) तथा अकर्तव्य (जो साधना के कर्म नहीं करने योग्य हैं) की व्यवस्था (नियम में) में शास्त्र ही प्रमाण हैं। अन्य साधना वर्जित हैं।

उदाहरण :- इसी का प्रमाण मार्कण्डेय पुराण (गीता प्रैस गोरखपुर से प्रकाशित पष्ठ 237 पर है, जिसमें कथा इस प्रकार है :- एक रूची नाम का ऋषि ब्रह्मचारी रह कर वेदों अनुसार साधना कर रहा था। जब वह 40 (चालीस) वर्ष का हुआ तब उस को अपने चार पूर्वज ऋषि-ब्राह्मण जो शास्त्र विरुद्ध साधना करके पितर बने हुए थे तथा कष्ट भोग रहे थे, दिखाई दिए। पितरों ने कहा कि बेटा रूची शादी करवा कर हमारे श्राद्ध निकाल, हम तो दुःखी हो रहे हैं। रूची ऋषि ने कहा पित्रमहो वेद में कर्म काण्ड मार्ग(श्राद्ध करना, पिण्ड भरवाना आदि) को मूर्खों की साधना कहा है। फिर आप मुझे क्यों उस गलत (शास्त्र विधि रहित) साधना पर लगा रहे हो। पितर बोले बेटा यह बात तो तेरी सत्य है कि वेद में पितर पूजा, भूत पूजा, देवी-देवताओं की पूजा (कर्म काण्ड) को अविद्या ही कहा है इसमें तनिक भी मिथ्या नहीं है। इसी उपरोक्त मार्कण्डेय पुराण में इसी लेख में पितरों ने कहा कि फिर पितर कुछ तो लाभ देते हैं।

विशेष :- यह अपनी अटकलें पितरों ने लगाई है, वह हमने पालन नहीं करना है क्योंकि पुराणों में आदेश किसी ऋषि विशेष का है जो पितर पूजने, भूत या अन्य देव पूजने को कहा है। परन्तु प्रभु का आदेश नहीं है। इसलिए किसी संत या ऋषि के कहने से प्रभु की आज्ञा का उल्लंघन करने से सजा के भागी होंगे।

उदाहरण :- एक समय एक व्यक्ति की दोस्ती एक पुलिस थानेदार से हो गई। उस व्यक्ति ने अपने दोस्त थानेदार से कहा कि मेरा पड़ौसी मुझे बहुत परेशान करता है। थानेदार (S.H.O.) ने कहा कि मार लट्ठ, मैं आप निपट लूंगा। थानेदार दोस्त की आज्ञा का पालन करके उस व्यक्ति ने अपने पड़ौसी को लट्ठ मारा, सिर में चोट लगने के कारण पड़ौसी की मत्यु हो गई। उसी क्षेत्र का अधिकारी होने के कारण वह थाना प्रभारी अपने दोस्त को पकड़ कर लाया, कैद में डाल दिया तथा उस व्यक्ति को मत्यु दण्ड मिला। उसका दोस्त थानेदार कुछ मदद नहीं कर सका। क्योंकि राजा का संविधान है कि यदि कोई किसी की हत्या करेगा तो उसे मत्यु दण्ड प्राप्त होगा। उस नादान व्यक्ति ने अपने दोस्त दरोगा की आज्ञा मान कर राजा का संविधान भंग कर दिया। जिससे जीवन से हाथ धो बैठा। ठीक इसी प्रकार पवित्र गीता जी व पवित्र वेद यह प्रभु का संविधान है। जिसमें

केवल एक पूर्ण परमात्मा की पूजा का ही विधान है, अन्य देवताओं - पितरों - भूतों की पूजा करना मना है। पुराणों में ऋषियों (थानेदारों) का आदेश है। जिनकी आज्ञा पालन करने से प्रभु का संविधान भंग होने के कारण कष्ट पर कष्ट उठाना पड़ेगा। इसलिए आन उपासना पूर्ण मोक्ष में बाधक है।

मेरे पूज्य गुरुदेव स्वामी रामदेवानन्द जी लगभग सोलह वर्ष की आयु में पूर्ण परमात्मा की प्राप्ति के लिए अचानक घर त्याग कर निकल गए। प्रतिदिन पहनने वाले वस्त्रों को अपने ही खेतों के निकट घने जंगल में किसी मत पशु की अस्थियों के पास डाल गए। शाम को घर न पहुँचने के कारण घर वालों ने जंगल में तलाश की। रात्रि का समय था। कपड़े पहचान कर दुःखी मन से पशु की अस्थियों को बच्चे की अस्थियाँ जान कर उठा लाए तथा यह सोचा कि बच्चा जंगल में चला गया, किसी हिंसक जानवर ने खा लिया। अन्तिम संस्कार कर दिया। सर्व क्रियाऐं की, तेरहवीं - बरसी आदि की तथा श्राद्ध भी निकालते रहे। लगभग 104 वर्ष की आयु प्राप्त होने के उपरान्त स्वामी जी अचानक अपने गाँव बड़ा पैंतावास जिला भिवानी, त. चरखीदादरी, हरयाणा में पहुँच गए। स्वामी जी का बचपन का नाम श्री हरिद्वारी जी था तथा पवित्र ब्राह्मण कुल में जन्म था। मुझ दास को पता चला तो मैं भी दर्शनार्थ पहुँच गया। स्वामी जी की भाभी जी जो लगभग 92 वर्ष की आयु की थी। मैंने उस वद्धा से पूछा कि हमारे गुरु जी के घर त्याग जाने के उपरान्त क्या महसूस किया? उस वद्धा ने बताया कि मेरा विवाह हुआ तब मुझे बताया गया कि इनका एक भाई हरिद्वारी था जो किसी हिंसक जानवर ने जंगल में खा लिया था। उसके श्राद्ध निकाले जा रहे हैं। मुझे भी इनके श्राद्ध निकालने को कहा गया। वद्धा ने बताया कि 70 श्राद्ध तो मैं अपने हाथों निकाल चुकी हूँ। जब कभी फसल अच्छी नहीं होती या कोई घर का सदस्य बिमार हो जाता तो अपने पुरोहित (गुरु जी) से कारण पूछते तो वह कहा करता कि हरद्वारी पितर बना है, वह तुम्हें दुःखी कर रहा है। श्राद्धों के निकालने में कोई अशुद्धि रही है। अब की बार सर्व क्रिया मैं स्वयं अपने हाथों से करूंगा। पहले मुझे समय नहीं मिला था, क्योंकि एक ही दिन में कई जगह श्राद्ध क्रियाऐं करने जाना पड़ा। इसलिए बच्चे को भेजा था। तब तक कुछ भेंट चढ़ाओ ताकि उसे शान्त किया जाए। तब उसे 21 या 51 जो भी कहता था डरते भेंट करते थे, फिर श्राद्धों के समय गुरु जी स्वयं श्राद्ध करते थे। तब मैंने कहा माता जी अब तो छोड़ दो इस गीता जी विरुद्ध साधना को, नहीं तो आप भी प्रेत बनोगी। गीता अध्याय 9 श्लोक 25 सुनाया। तब वह वद्धा कहने लगी गीता मैं भी पढती हूँ। दास ने कहा आपने पढा है, समझा नहीं। आगे से तो बन्द कर दो इस नादान साधना को। वद्धा ने उत्तर दिया न भाई, कैसे छोड़ दें श्राद्ध निकालना, यह तो सदियों पुरानी (लाग) परम्परा है। यह दोष भोली आत्माओं का नहीं है। यह दोष मुर्ख गुरुओं (नीम हकीमों) का है, जिन्होंने अपने पवित्र शास्त्रों को समझे बिना मनमाना आचरण (पूजा का मार्ग) बता दिया। जिस कारण न तो कोई कार्य सिद्ध होता है, न परमगति तथा न कोई सुख ही प्राप्त होता है। प्रमाण पवित्र गीता अध्याय 16 श्लोक 23-24।

अब दास (रामपाल दास-लेखक) की प्रार्थना है कि शिक्षित वर्ग अवश्य ध्यान दें तथा शास्त्र विधि अनुसार साधना करके पूर्ण परमात्मा के सनातन परमधाम (शाश्वतम् स्थानम्) अर्थात् सत्यलोक को प्राप्त करें, जिससे पूर्ण मोक्ष तथा परम शान्ति प्राप्त होती है। (गीता अध्याय 18 श्लोक 62) इसके लिए तत्वदर्शी संत की तलाश करो। (गीता अध्याय 4 श्लोक 34)

एक श्रद्धालु ने कहा कि मैं आप से उपदेश लेकर आप द्वारा बताई साधना भी करता रहूँगा

तथा श्राद्ध भी निकालता रहूँगा तथा अपने घरेलू देवी-देवताओं को भी उपरले मन से पूजता रहूँगा। इसमें क्या दोष है।

रामपाल दास की प्रार्थना :- संविधान की किसी भी धारा का उल्लंघन कर देने पर सजा अवश्य मिलेगी। इसलिए पवित्र गीता जी व पवित्र चारों वेदों में वर्णित व वर्जित विधि के विपरित साधना करना व्यर्थ है (प्रमाण पवित्र गीता जी अध्याय 16 श्लोक 23-24 में)। यदि कोई कहे कि मैं कार में पैंचर उपरले मन से कर दूंगा। नहीं, राम नाम की गाड़ी में पैंचर करना मना है। ठीक इसी प्रकार शास्त्र विरुद्ध साधना हानिकारक ही है।

एक श्रद्धालु ने कहा कि मैं और कोई विकार (मदिरा-मास आदि सेवन) नहीं करता। केवल तम्बाखु (बीड़ी-सिगरेट-हुक्का) सेवन करता हूँ। आपके द्वारा बताई पूजा व ज्ञान अतिउत्तम है। मैंने गुरु जी भी बनाया है, परन्तु यह ज्ञान आज तक किसी संत के पास नहीं है, मैं 25 वर्ष से घूम रहा हूँ तथा तीन गुरुदेव बदल चुका हूँ। कृप्या मुझे तम्बाखु सेवन की छूट दे दो, शेष सर्व शर्ते मंजूर हैं। तम्बाखु से भक्ति में क्या बाधा आती है?

दास की प्रार्थना :- दास ने प्रार्थना की कि अपने शरीर को ऑक्सीजन की आवश्यकता है। तम्बाखु का धुआँ कार्बन-डाई-ऑक्साइड है जो फेफड़ों को कमजोर व रक्त दूषित करता है। मानव शरीर प्रभु प्राप्ति व आत्म कल्याण के लिए ही प्राप्त हुआ है। इसमें परमात्मा पाने का रस्ता सुष्मना नाड़ी से प्रारम्भ होता है। जो नाक के दोनों छिद्र हैं उन्हें दायें को ईड़ा तथा बाएें को पिंगुला कहते हैं। इन दोनों के मध्य में सुष्मणा नाड़ी है जिसमें एक छोटी सुई (Needel) में धागा पिरोने वाले छिद्र के समान द्वार होता है, जो तम्बाखु के धुऐं से बंध हो जाता है। जिससे प्रभु प्राप्ति के मार्ग में अवरोध हो जाता है। यदि प्रभु पाने का रस्ता ही बन्द हो गया तो मानव शरीर व्यर्थ हुआ। इसलिए प्रभु भक्ति करने वाले साधक को प्रत्येक नशीले व अखाद्य (मांस आदि) पदार्थों का सर्वदा निषेध है।

एक श्रद्धालु ने कहा कि मैं तम्बाखु प्रयोग नहीं करता। मांस व मदिरा सेवन जरूर करता हूँ। इससे भक्ति में क्या बाधा है? यह तो खाने - पीने के लिए ही बनाई है तथा पेड़-पौधों में भी तो जीव है, वह खाना भी तो मांस भक्षण तुल्य ही है।

दास की प्रार्थना :- यदि कोई हमारे माता-पिता-भाई-बहन व बच्चों आदि को मार कर खाए तो कैसा लगे? ''जैसा दर्द आपने होवै, वैसा जान बिराने। कहै कबीर वे जाऐं नरक में, जो काटें शिश खुरांनें'' जो व्यक्ति पशुओं को मारते समय खुरों तथा शीश को बेरहमी से काट कर मांस खाते हैं वे नरक के भागी होंगे। जैसा दुःख अपने बच्चों व सम्बन्धियों की हत्या का होता है ऐसा ही दूसरे को जानना चाहिए। रही बात पेड़-पौधों को खाने की। इनको खाने का प्रभु का आदेश है तथा ये जड़ जूनी के हैं। अन्य चेतन प्राणियों का वध प्रभु आदेश विरुद्ध है, इसलिए अपराध (पाप) है।

मदिरा सेवन भी प्रभु आदेश नहीं है, परन्तु स्पष्ट मना है तथा मानव मात्र को बर्बाद करने का है। शराब पान किया हुआ व्यक्ति कुछ भी गलती कर सकता है। मदिरा धन - तन व पारिवारिक शान्ति की महा शत्रु है। प्यारे बच्चों के भावी चरित्र पर कुप्रभाव पड़ता है। मदिरा पान करने वाला व्यक्ति कितना ही नेक हो परन्तु उसकी न तो इज्जत रहती है तथा न ही विश्वास।

एक समय यह दास एक गाँव में सतसंग करने गया हुआ था। उस दिन नशा निषेध पर सतसंग किया। सतसंग के उपरान्त एक ग्यारह वर्षीय कन्या फूट-फूट कर रोने लगी। पूछने पर उस बेटी ने बताया कि महाराज जी मेरे पिता जी पालम हवाई अड्डे पर बढ़िया नौकरी करते हैं। परन्तु सर्व पैसे की शराब पी जाते हैं। मेरी मम्मी के मना करने पर इतना पीटते हैं कि शरीर पर

नीले दाग बन जाते हैं। एक दिन मेरे पापा जी मेरी मम्मी को पीटने लगे। मैं अपनी मम्मी के ऊपर गिर कर बचाव करने लगी तो मुझे भी पीटा। मेरा होंठ सूज गया। दस दिन में ठीक हुआ। मेरी मम्मी जी हमें छोड़ कर मेरे मामा जी के घर चली गई। छः महीने में मेरी दादी जी जाकर लाई। तब तक हम अपनी दादी जी के पास रही। पापा जी ने दवाई भी नहीं दिलाई। सुबह शीघ्र ही उठकर नौकरी पर चला गया। शाम को शराब पीकर आता। हम तीन बहनें हैं, दो मेरे से छोटी हैं। अब जब पापा जी शाम को आते हैं तो हम तीनों बहनें चारपाई के नीचे छुप जाती हैं।

विचार करों पुण्यात्माओं जिन बच्चों को पिताजी ने सीने से लगाना चाहिए था तथा बच्चे पिता जी के घर आने की राह देखते हैं कि पापा जी घर आयेंगे, फल लायेंगे। आज इस मानव समाज की दुश्मन शराब ने क्या घर घाल दिए। शराबी व्यक्ति अपनी तो हानि करता है साथ में बहुत व्यक्तियों की आत्मा दुखाने का भी पाप सिर पर रखता है। जैसे पत्नी के दुःख में उसके माता-पिता, बहन-भाई दुःखी, फिर स्वयं के माता-पिता, भाई-बहन, दादा-दादी आदि परेशान। एक शराबी व्यक्ति आस पास के भद्र व्यक्तियों की अशान्ति का कारण बनता है। क्योंकि घर में झगड़ा करता है। पत्नी व बच्चों की चिल्लाहट सुनकर पड़ौसी बीच-बचाव करें तो शराबी गले पड़ जाऐं, नहीं करें तो नेक व्यक्तियों को नींद नहीं आए। इस दास से उपदेश लेने के उपरान्त प्रतिदिन शराब पीने वाले लगभग पचास हजार व्यक्तियों ने सर्व नशीले पदार्थ व मांस भक्षण पूर्ण रूप से त्याग दिया है तथा जिस समय शाम को शराब प्रेतनी का नृत्य होता था अब वे पुण्यात्मायें अपने बच्चों सहित बैठकर संध्या आरती करते हैं। हरियाणा प्रदेश व निकटवर्ती प्रान्तों में लगभग दस हजार गाँवों व शहरों में आज भी प्रत्येक में चार -पाँच चैम्पियन (एक नम्बर के शराबी) उदाहरण हैं जो सर्व विकारों से रहित होकर अपना मानव जीवन सफल कर रहे हैं। कुछ कहते हैं कि हम इतनी नहीं पीते-खाते, बस कभी ले लेते हैं। जहर तो थोड़ा ही बुरा है, जो भक्ति व मुक्ति में बाधक है।

मान लिजिए दो किलो ग्राम घी का हलवा बनाया (सतभक्ति की)। फिर 250 ग्राम बालु रेत (तम्बाखु-मास-मदिरा सेवन व आन उपासना कर ली) भी डाल दिया। वह तो किया कराया व्यर्थ हुआ। इसलिए पूर्ण परमात्मा (परम अक्षर ब्रह्म) की पूजा पूर्ण संत से प्राप्त करके आजीवन मर्यादा में रह कर करते रहने से ही पूर्ण मोक्ष लाभ होता है।

❖ अध्याय 9 के श्लोक 26,27,28 का भाव है कि जो भी आध्यात्मिक या सांसारिक कार्य करे, सब मेरे मतानुसार वेदों में वर्णित पूजा विधि अनुसार ही कर्म करे, वह उपासक मुझ (काल) से ही लाभान्वित होता है। इसी का वर्णन इसी अध्याय के श्लोक 20,21 में किया है।

❖ अध्याय 9 के श्लोक 29 में भगवान कहते हैं कि मुझे किसी से द्वेष या प्यार नहीं है। परंतु तुरंत ही कह रहे हैं कि जो मुझे प्रेम से भजते हैं वे मुझे प्यारे हैं तथा मैं उनको प्रिय हूँ अर्थात् मैं उनमें और वे मेरे में हैं। राग व द्वेष का प्रत्यक्ष प्रमाण है - जैसे प्रहलाद परमात्मा के आश्रित थे तथा हिरणाकशिपु परमात्मा से द्वेष करता था। तब नृसिंह रूप धार कर भगवान ने अपने प्यारे भक्त की रक्षा की तथा राक्षस हिरणाकशिपु की आँतें निकाल कर समाप्त किया। प्रहलाद से प्रेम तथा हिरणाकशिपु से द्वेष प्रत्यक्ष सिद्ध है। इस तरह का ज्ञान काल का अपना मत है जो भ्रमित करने के लिए कहा है।

।। अति दुराचारी भी भक्ति करने वाला महात्मा के समान है।।

❖ *अध्याय 9 के श्लोक 30,31 में कहा है कि चाहे कितना ही अति दुराचारी (वैश्या या वैश्या गमन करने वाला) व्यक्ति (स्त्री-पुरूष) है, यदि वह परमात्मा को अन्तःकरण (हृदय) से चाहता है तो वह भी महात्मा मानने योग्य है, परंतु बलात्कारी न हो। कबीर साहेब कहते हैं, गरीबदास जी महाराज ने कहा है कि :-*

गरीब, कुष्टी होवे संत, बन्दगी कीजिए। वैश्या के विश्वास, चरण चित्त दीजिए।।

कबीर, आग पराई आपनी, हाथ दिए जल जाय। नारि पराई आपनी, परसे सर्वस जाय।।

भावार्थ :- यदि कोई कुष्ट रोगी गुरू जी से दीक्षा लेकर भक्ति कर रहा हो तो उससे घृणा न करना, उसको भक्तों वाला सम्मान प्रणाम करके दीजिए। यदि कोई वैश्या भी गुरू जी से दीक्षा लेकर साधना करती है तो उसको सम्मान से प्रणाम कीजिए। ऐसा करने से उसका मनोबल बढ़ेगा तथा बुराई करने से संकोच करेगी और सुधर जाएगी।

❖ *कबीर परमेश्वर जी ने कहा है कि यदि आप वैश्या तथा दुराचारी को इसलिए हेय समझते हो कि वे परस्त्री तथा पर-पुरूष से भोग-विलास करते हैं। आप अपनी विवाहित पत्नी से भोग-विलास (Sex) करते हैं और अपने को उनसे श्रेष्ठ मानते हो तो यह विचार करो कि यदि स्त्री मिलने करने से सब भ्रष्ट हो जाते हैं तो आप भी तो स्त्री या पुरूष से मिलन करते हो। जैसे अग्नि अपनी हो चाहे अन्य की, यदि हाथ दोगे तो जलोगे ही। अपनी अग्नि कोई बचाव नहीं करती। इस प्रकार विचार कर अपने कर्मों को देखो। तब दूसरे से कहो।*

❖ *व्यभीचार यानि दुराचार वह है जिसमें स्त्री-पुरूष स्वइच्छा से मिलन (Sex) करते हैं जो प्रत्येक सभ्य समाज की प्रतिष्ठा के विरूद्ध है। यह बलात्कार नहीं है, व्यभीचार कहा जाता है। यह मानव समाज पर कलंक है।*

❖ *बलात्कार वह है जो किसी लड़की या स्त्री से उसकी सहमति के बिना बलपूर्वक संभोग पुरूष द्वारा किया जाता है। वह नारी के लिए अभिशाप है। समाज के लिए अति पीड़ादायक तथा शर्मनाक है जो क्षम्य नहीं है। उसे दंडित किया जाना चाहिए। सुधरने के लिए भी सजा के दौरान अच्छे विचारों की पुस्तक तथा सत्संग सुनाए जाऐं। उस व्यक्ति को चाहिए कि अपनी गलती को सार्वजनिक करे जिससे समाज के अन्य सिरफिरों को नसीहत लगे। उनकी रूह काँप जाए। उनको पता चले कि जरा-सी चूक से जीवन नष्ट हो जाता है। समाज में स्वयं तो मुँह दिखाने लायक रहता ही नहीं, माता-पिता, भाई-बहन तथा कुल के लोगों का सिर भी शर्म से नीचा कर देता है। समाज में उनका जीना भी दुस्वार हो जाता है।*

व्यभीचारी भी समाज में अपने कुल को लज्जित करता है। समाज को बिगाड़ता है। यदि वे (स्त्री-पुरूष) परमात्मा के मार्ग पर लग जाते हैं तो सुधर भी जाता है।

एक समय एक औरत को किसी गाँव में पीटा जा रहा था। उसी समय एक महात्मा जी वहां आए। उन्होंने उस अबला का कसूर (दोष) पूछा तो पता चला कि यह दुराचारिणी (व्याभिचारिणी) है। तब महात्मा जी ने कहा कि मैं बताता हूँ इसको कैसे सजा देनी है। सब ने कहा बताओ दाता। महात्मा जी ने कहा सब एक-एक पत्थर अपने-2 हाथ में उठाओ तथा बारी-बारी इसको मारना है। परंतु पत्थर वह मारे जिसने यह पाप कभी भी न किया हो और आगे कभी भी न करे। यदि ऐसा हो, तो मारे, नहीं तो खैर नहीं है। देखते ही देखते सभी के हाथों से पत्थर छूट गए तथा अपने-अपने

घर को चले गए।

कबीर, बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिला कोए।
जब दिल खोजा आपना, मुझसे बुरा न कोए।।

भावार्थ :- कबीर परमेश्वर जी ने कहा है कि अन्य को आप जिन कर्मों के कारण दोष देखते हो, वे कर्म आप स्वयं भी कर रहे हो। यदि आप अपने मन की शरारत को देख लेंगे तो आप जी को अपने से बुरा यानि घटिया कोई दिखाई नहीं देगा।

अध्याय 9 के श्लोक 31 में कहा है कि ऐसा व्यक्ति सतसंग सुन कर जल्दी ही सुधर जाता है और फिर सुचारू रूप से भक्ति करके मुक्ति का प्रयत्न करता है। परन्तु तत्वज्ञान के अभाव से वह मेरी साधना पर आश्रित रहता है जिस कारण से उसे बहुत समय अर्थात् एक कल्प तक शान्ति प्राप्त होती है। इसलिए उस भक्त की भक्ति नष्ट हो जाती है, क्योंकि पूर्ण मुक्ति तो पूर्ण परमात्मा की भक्ति करने से होती है, उसे गीता बोलने वाला प्रभु कह रहा है कि मैं उस परमेश्वर के तत्वज्ञान को नहीं जानता, उसके लिए उन तत्वदर्शी सन्तों की खोज कर, गीता अध्याय 4 श्लोक 34 में। अध्याय 9 के श्लोक 34 में वर्णन है कि स्थिर मन से शास्त्रानुकूल पूजक शास्त्रविधि से भक्ति करने वाला (मद्भक्तै कहलाता) मत-भक्त (शास्त्रानुकूल साधक) बन कर मुझे प्रणाम (आदर) कर इस प्रकार अन्तरात्मा से (मत्परायण) शास्त्रानुकूल साधना पर आश्रित साधक भी मुझे ही प्राप्त होगा। भावार्थ है कि भूत-पितर नहीं बनेगा तथा पूर्ण मुक्त भी नहीं होगा।

❖ *अध्याय 9 के श्लोक 32,33,34 में कहा है कि चाहे पापिन स्त्री वैश्या तथा शुद्र भी क्यों न है मेरी भक्ति करने वाला मेरी वाली गति को प्राप्त हो जाता है। फिर पुण्य आत्माओं ब्राह्मण-राजर्षि का तो कहना ही क्या है? पूर्ण मोक्ष के लिए उस पूर्ण परमात्मा का भजन कर मेरा काल लोक तो नाशवान तथा दुःखरूप है यदि इसमें रहना है तो मेरा भजन कर तथा जो मेरे में मन वाला (अनन्य मन से और सर्व देवी-देवताओं की भक्ति तथा तीनों गुणों - ब्रह्मा-विष्णु-शिव की आस्था भी त्याग कर) मेरी भक्ति कर मेरे द्वारा लाभ प्राप्त करेगा अर्थात् शास्त्रानुकूल (वेदों में वर्णित भक्ति विधि के अनुसार) साधना करने वाला भक्त स्वर्ग में अपने पुण्यों को समाप्त करके फिर जन्म-मरण व नीच योनियों (कुत्ता-कुतिया, गधा-गधी आदि-2) में कष्ट पर कष्ट उठाएगा। यह भगवान काल (ब्रह्म) की वेदों अनुसार साधना करने का भगवान ज्योति निरंजन द्वारा लाभ दिया जाता है। इसका पूर्ण प्रमाण इसी अध्याय के श्लोक 20,21 में दिया गया है। क्योंकि गीता बोलने वाला प्रभु (काल) कह रहा है कि मेरी पूजा ओ३म नाम जाप की है (गीता अध्याय 8 श्लोक 13) उस पूर्ण परमात्मा की भक्ति ओं-तत्- सत् नाम जाप से करने का निर्देश है (गीता अध्याय 17 श्लोक 23 में) कोई तत्वदर्शी संत बताएगा, जिससे पूर्ण मोक्ष होगा (गीता अध्याय 4 श्लोक 34 में)।*

अदेश परमात्मा ब्रह्म (काल) की साधना भी मतानुसार करने से लाभ होगा। ब्रह्म भगवान ने अपनी पूजा का विधान बताया है कि आन उपासनाएँ {(देवी-देवताओं की पूजा व उनमें मुख्य तीन देवताओं (रजगुण ब्रह्मा, सतगुण विष्णु, तमगुण शिव) की पूजा को भी} त्याग कर केवल एक परमात्मा (ब्रह्म) पर आधारित हो कर अव्याभिचारिणी भक्ति से ब्रह्म पूजा करने वाला ही काल भगवान द्वारा विधान किए फल प्राप्त करेगा। स्वर्ग-नरक, जन्म-मरण चौरासी लाख जूनियों का कष्ट यह काल (ब्रह्म) भगवान का अटल विधान (नियम) है जो शास्त्रों (वेदों, गीता जी आदि) में दिए विचारों को काल भगवान अपना मत (यह मेरा मत है) कहता है। काल ब्रह्म की मुक्ति प्राप्त करके भी जीव सुखी नहीं है क्योंकि स्वयं भगवान (ब्रह्म) कह रहा है कि मेरी (गतिम्) मुक्ति

(अनुत्तम) अश्रेष्ठ है। क्योंकि भक्त आत्मा अपने तन-मन- धन व उद्धार मन से ब्रह्म (काल) साधना में जीवन भी खो देता है। यह जानकर कि मैं सुखी (पूर्ण मुक्त) हो जाऊँगा परंतु ऐसा नहीं होता। इसलिए ब्रह्म (काल) भगवान भी स्वयं गीता जी के अध्याय 7 के श्लोक 18 में कहता है कि वे भक्त वैसे तो उद्धार आत्मा हैं परंतु इतनी मेहनत के पश्चात् भी मेरी घटिया मुक्ति को ही प्राप्त होते हैं अर्थात् पूर्ण मुक्त नहीं, पूर्ण सुखी नहीं। इसलिए फिर भगवान कहता है कि अर्जुन तू मेरा बहुत प्रिय है। इसलिए गीता अध्याय 18 श्लोक 62, अध्याय 15 श्लोक 4 आदि-2 में कहा है कि तुझे सही ज्ञान बताता हूँ। तू उस पूर्ण परमात्मा की साधना कर। उसके लिए किसी तत्वदर्शी संत की तलाश कर, फिर जैसे वह पूजा विधि बताए ऐसे साधना करना (गीता अध्याय 4 श्लोक 34)। फिर तेरा जन्म-मरण चौरासी लाख जूनियों का कष्ट पूर्णतया मिट जाएगा। अर्थात् पूर्ण मोक्ष हो जाएगा।

❖ *विशेष :- गीता ज्ञान दाता काल ब्रह्म ने गीता अध्याय 9 के श्लोक 34 तथा अध्याय 18 श्लोक 65 में कहा है कि मुझे (माम् नमस्कुरू) नमस्कार (मद्भक्तः = मत् भक्तः) मेरा भक्त बन (मद्या जी = मत् याजी) मेरा पूजन करने वाला हो। (मत्परायणः = मत् परायणः) मेरे आश्रित हो यानि मेरे पर समर्पित हो। इस प्रकार मुझे ही प्राप्त होगा। गीता अध्याय 4 श्लोक 32 व 34 में कहा है कि पूर्ण परमात्मा पूर्ण मोक्ष मार्ग का ज्ञान स्वयं अपने मुख से बोली वाणी में विस्तार से बताता है। उससे सर्व पाप नाश हो जाते हैं। उस ज्ञान को तू तत्वदर्शी संतों के पास जाकर समझ। उनको (प्रणिपातेन) भली-भांति दण्डवत् प्रणाम करने से कपट छोड़कर प्रश्न करने से वे (तत्वदर्शिनः) परमात्म तत्व को भली-भांति जानने वाले महात्मा तुझे उस तत्वज्ञान का उपदेश करेंगे। विचार करना है कि गीता ज्ञान दाता ने अपने लिए तो केवल नमस्कार करने को कहा तथा पूर्ण परमात्मा के द्वारा दिए तत्वज्ञान जो पूर्ण मोक्षदायक है, को जानने वाले संत को दण्डवत् प्रणाम करने को कहा है। इससे स्वसिद्ध है कि तत्वदर्शी पूर्ण परमात्मा को कृपापात्र होने के कारण काल ब्रह्म से भी अधिक आदरणीय है।*

❑❑❑

।।नौवें अध्याय के अनुवाद सहित श्लोक।।

परमात्मने नमः

अथ नवमोऽध्यायः

अध्याय 9 का श्लोक 1

इदं तु ते गुह्यतमं प्रवक्ष्याम्यनसूयवे।
ज्ञानं विज्ञानसहितं यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्।१।

इदम्, तु, ते, गुह्यतमम्, प्रवक्ष्यामि, अनसूयवे,
ज्ञानम्, विज्ञानसहितम्, यत्, ज्ञात्वा, मोक्ष्यसे, अशुभात्।।1।।

अनुवाद : (ते) तुझ (अनसूयवे) दोष-दष्टिरहित भक्तके लिये (इदम्) इस (गुह्यतमम्) परम गोपनीय (विज्ञानसहितम्) विज्ञानसहित (ज्ञानम्) ज्ञानको पुनः (प्रवक्ष्यामि) भलीभाँति कहूँगा (तु) कि (यत्) जिसको (ज्ञात्वा) जानकर तू (अशुभात्) शास्त्रविरूद्ध अशुभ कर्मोसे (मोक्ष्यसे) मुक्त हो जाएगा।(1)

अध्याय 9 का श्लोक 2

राजविद्या राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम्।
प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम्।२।

राजविद्या, राजगुह्यम्, पवित्रम्, इदम्, उत्तमम्,
प्रत्यक्षावगमम्, धर्म्यम्, सुसुखम्, कर्तुम्,अव्ययम्।।2।।

अनुवाद : (इदम्) यह ज्ञान (राजविद्या) सब विद्याओंका राजा (राजगुह्यम्) सब गोपनीयोंका राजा (पवित्रम्) अति पवित्र (उत्तमम्) अति उत्तम (प्रत्यक्षावगमम्) प्रत्यक्ष फलवाला (धर्म्यम्) शास्त्रानुकूल धर्मयुक्त (कर्तुम्) साधन करनेमें (सुसुखम्) सुखदाई और (अव्ययम्) अविनाशी है।(2)

अध्याय 9 का श्लोक 3

अश्रद्दधानाः पुरुषा धर्मस्यास्य परन्तप।
अप्राप्य मां निवर्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि। ३ ।

अश्रद्दधानाः, पुरुषाः, धर्मस्य, अस्य, परन्तप,
अप्राप्य, माम्, निवर्तन्ते, मत्युसंसारवर्त्मनि।।3।।

अनुवाद : (परन्तप) हे अर्जुन! (अश्रद्दधानाः) श्रद्धारहित (पुरुषाः) मनुष्य (अस्य) इस उपर्युक्त (धर्मस्य) धर्मके भक्ति मार्ग को (अप्राप्य) न प्राप्त होकर (माम्) मुझ ब्रह्म के (मत्युसंसार वर्त्मनि) मत्युलोक चक्रमें (निवर्तन्ते) चक्र लगाते रहते हैं। (3)

अध्याय 9 का श्लोक 4

मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना।
मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः। ४ ।

मया, ततम्, इदम्, सर्वम्, जगत्, अव्यक्तमूर्तिना,
मत्स्थानि, सर्वभूतानि, न, च, अहम्, तेषु, अवस्थितः।।4।।

अनुवाद : (मया) मेरे से तथा (अव्यक्त मूर्तिना) अदृश साकार परमेश्वर से (इदम्)यह (सर्वम् जगत्)सर्व संसार (ततम्) विस्तारित व घेरा हुआ है अर्थात् पूर्ण परमात्मा द्वारा ही रचा गया है तथा वही वास्तव में नियन्तता है। (च) तथा (मत्स्थानि) मेरे अन्तर्गत (सर्वभूतानि) जो सर्व प्राणी हैं (तेषु) उनमें (अहम्) मैं (न अवस्थितः) स्थित नहीं हूँ। क्योंकि काल अर्थात् ज्योति निरंजन ब्रह्म अपने इक्कीसवें ब्रह्मण्ड में अलग से रहता है तथा प्रत्येक ब्रह्मण्ड में भी महाब्रह्मा, महाविष्णु, महाशिव रूप में भिन्न गुप्त रहता है। इसी का प्रमाण गीता अध्याय 7 श्लोक 12 में भी है। गीता अध्याय 13 श्लोक 17 में तथा अध्याय 18 श्लोक 61 में भी यही प्रमाण है कहा है कि पूर्ण परमात्मा प्रत्येक प्राणी के हृदय में विशेष रूप से स्थित है। वह सर्व प्राणियों को यन्त्र की तरह भ्रमण कराता है।(4)

अध्याय 9 का श्लोक 5

न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम्।
भूतभृन्न च भूतस्थो ममात्मा भूतभावनः। ५ ।

न, च, मत्स्थानि, भूतानि, पश्य, मे, योगम्, ऐश्वरम्,
भूतभृत्, न, च, भूतस्थः, मम, आत्मा, भूतभावनः।।5।।

अनुवाद : (च) और (भूतानि) सब प्राणी (मे) मेरे में (मत्स्थानि) स्थित (न) नहीं हैं (च) और (न) न ही (मम) मेरी (आत्मा) आत्मा (भूतभावनः) जीव उत्पन्न करने वाला (पश्य) जान वह (ऐश्वरम्) परम शक्ति युक्त पूर्ण परमात्मा (भूतभृत्) प्राणियों का धारण पोषण करने वाला (योगम्) अभेद सम्बन्ध शक्तिसे (भूतस्थः) प्राणियों में स्थित है। इसी का प्रमाण गीता अध्याय 15 श्लोक 16-17 में भी है कि पूर्ण परमात्मा कोई और है, वह सर्व जगत का पालन-पोषण करता है। यही प्रमाण गीता अध्याय 13 श्लोक 17 अध्याय 18 श्लोक 61 में है कहा है कि पूर्ण परमात्मा सर्व प्राणियों के हृदय में विशेष रूप से स्थित है। वह पूर्ण परमात्मा अपनी शक्ति से सर्व प्राणियों को यन्त्र की तरह भ्रमण कराता है। (5)

अध्याय 9 का श्लोक 6

यथाकाशस्थितो नित्यं वायुः सर्वत्रगो महान्।
तथा सर्वाणि भूतानि मत्स्थानीत्युपधारय। ६ ।

यथा, आकाशस्थितः, नित्यम्, वायुः, सर्वत्रगः, महान्,
तथा, सर्वाणि, भूतानि, मत्स्थानि, इति, उपधारय।।6।।

अनुवाद : (यथा) जैसे (सर्वत्रगः) सर्वत्र विचरने वाला (महान्) महान् (वायुः) वायु (नित्यम्) सदा (आकाशस्थितः) आकाशमें ही स्थित है (तथा) वैसे ही (सर्वाणि) सम्पूर्ण (भूतानि) प्राणी (मत्स्थानि) नियमित स्थित हैं (इति) ऐसा (उपधारय) समझ। (6)

अध्याय 9 का श्लोक 7

सर्वभूतानि कौन्तेय प्रकृतिं यान्ति मामिकाम्।
कल्पक्षये पुनस्तानि कल्पादौ विसृजाम्यहम्। ७ ।

सर्वभूतानि, कौन्तेय, प्रकृतिम्, यान्ति, मामिकाम्।
कल्पक्षये, पुनः, तानि, कल्पादौ, विसृजामि, अहम्।।7।।

अनुवाद : (कौन्तेय) हे अर्जुन! (कल्पक्षये) कल्पोंके अन्तमें (सर्वभूतानि) सब प्राणी

(मामिकाम्) मेरी (प्रकतिम्) प्रकतिको (यान्ति) प्राप्त होते हैं अर्थात् प्रकतिमें लीन होते हैं ओर (कल्पादौ) कल्पोंके आदिमें (तानि) उनको (अहम्) मैं (पुनः) फिर (विसजामि) रचता हूँ। (7)

अध्याय 9 का श्लोक 8

प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य विसृजामि पुनः पुनः।
भूतग्राममिमं कृत्स्नमवशं प्रकृतेर्वशात्। ८ ।

प्रकतिम्, स्वाम्, अवष्टभ्य, विसजामि, पुनः, पुनः।
भूतग्रामम्, इमम्, कत्स्नम्, अवशम्,प्रकतेः,वशात्।।8।।

अनुवाद : (स्वाम्) अपनी (प्रकतिम्) प्रकति अर्थात् दुर्गा को (अवष्टभ्य) अंगीकार करके अर्थात् पति-पत्नी रूप में रखकर (प्रकतेः) स्वभावके (वशात्) बलसे (अवशम्) परतन्त्र हुए (इमम्) इस (कत्स्नम्) सम्पूर्ण (भूतग्रामम्) प्राणी समुदायको (पुनः,पुनः) बार-बार उनके कर्मोंके अनुसार (विसजामि) रचता हूँ। (8)

अध्याय 9 का श्लोक 9

न च मां तानि कर्माणि निबध्नन्ति धनञ्जय।
उदासीनवदासीनमसक्तं तेषु कर्मसु। ९ ।

न, च, माम्, तानि, कर्माणि, निबध्नन्ति, धन जय,
उदासीनवत्, आसीनम्, असक्तम्, तेषु, कर्मसु।।9।।

अनुवाद : (धन जय) हे अर्जुन! (तेषु) उन (कर्मसु) कर्मोंमें (असक्तम्) आसक्तिरहित (च) और (उदासीनवत्) उदासीनके सदश (आसीनम्) स्थित (माम्) मुझे (तानि) वे (कर्माणि) कर्म (न) नहीं (निबध्नन्ति) बाँधते। (9)

अध्याय 9 का श्लोक 10

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्।
हेतुनानेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते। १०।

मया, अध्यक्षेण, प्रकतिः, सूयते, सचराचरम्,
हेतुना, अनेन, कौन्तेय, जगत्, विपरिवर्तते।।10।।

अनुवाद : (कौन्तेय) हे अर्जुन! (मया) मुझे (अध्यक्षेण) मालिक रूप में स्वीकार करने के कारण (प्रकतिः) प्रकति (सचराचरम्) चराचरसहित सर्वजगत्को (सूयते) पैदा करती है (अनेन) इस (हेतुना) हेतुसे ही (जगत्) यह संसार चक्र (विपरिवर्तते) घूम रहा है। (10)

अध्याय 9 का श्लोक 11

अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम्।
परं भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम्। ११।

अवजानन्ति, माम्, मूढाः, मानुषीम्, तनुम्, आश्रितम्,
परम्, भावम्, अजानन्तः, मम, भूतमहेश्वरम्।।11।।

अनुवाद : (मम्) मेरे (परम् भावम्) परम भाव को व (भूतमहेश्वरम्) सर्व प्राणियों के महान् ईश्वर अर्थात् पूर्ण परमात्मा को (अजानन्त) न जानते हुए (मूढाः) मूर्ख लोग (माम्) मुझको (मानुषीम्) मनुष्य (तनुम्) शरीर (आश्रितम्) धारण करने वाला (अवजानन्ति) तुच्छ समझते हैं

अर्थात् मुझे कष्ण रूप में समझते हैं। (11)

भावार्थ :- तत्वज्ञान के अभाव से मूर्ख प्राणी मुझे सर्व प्राणियों का प्रभु मानते हैं। मैं महेश्वर नहीं हूँ, महेश्वर तो पूर्ण परमात्मा है। जो गीता अध्याय 15 श्लोक 4 व 16, 17, गीता अध्याय 18 श्लोक 3,8,9,10 में वर्णन है तथा मुझे शरीर धारण करने वाला अवतार रूप में श्री कष्ण समझ रहा है, मैं श्री कष्ण नहीं हूँ। इसी का प्रमाण गीता अध्याय 7 श्लोक 24-25 में तथा गीता अध्याय 8 श्लोक 20 से 22 में दोनों (ब्रह्म तथा पूर्ण ब्रह्म) को अव्यक्त बताया है तथा विस्तत वर्णन है। उपरोक्त मूर्खों का विवरण निम्न श्लोक में भी दिया है कि वे कहने से भी नहीं मानते, अपनी जिद्द के कारण मुझे सर्वेश्वर-महेश्वर व श्री कष्ण ही मानते रहते हैं। यदि कोई तत्वदर्शी संत समझाएगा की पूर्ण परमात्मा कोई और है तथा श्री कष्ण जी ने गीता जी नहीं बोला तथा यह (काल) महेश्वर नहीं है। वे मूर्ख नहीं मानते।

विशेष :-- गीता 9 श्लोक 11 का अनुवाद अन्य अनुवाद कर्ता ने किया है उस में प्रथम पंक्ति के दूसरे अक्षर ''माम्'' को द्वितिय पंक्ति के ''भूत महेश्वरम्'' से जोड़ा हो जो व्याकरण दष्टिकोण से न्याय संगत नहीं है क्योंकि ''भूत महेश्वरम्'' के साथ ''मम्'' शब्द लिखा है अन्य अनुवाद कर्ताओं ने गीता ज्ञान दाता को सम्पूर्ण प्राणियों का महान् ईश्वर किया है। यदि ऐसा ही माना जाए तो पाठक जन कप्या इसका भावार्थ यह जाने की ब्रह्म कह रहा है कि मैं अपने इक्कीस ब्रह्मण्डों के सर्व प्राणियों का महान ईश्वर अर्थात् प्रमुख हूँ। वास्तव में उपरोक्त अनुवाद जो मुझ दास द्वारा किया है। वह यथार्थ है।

अध्याय 9 का श्लोक 12

मोघाशा मोघकर्माणो मोघज्ञाना विचेतसः।
राक्षसीमासुरीं चैव प्रकृतिं मोहिनीं श्रिताः।१२।

मोघाशाः, मोघकर्माणः, मोघज्ञानाः, विचेतसः,
राक्षसीम्, आसुरीम्, च, एव, प्रकतिम्, मोहिनीम् श्रिताः।।12।।

अनुवाद : (मोघाशाः) व्यर्थ आशा (मोघकर्माणः) व्यर्थ कर्म और (मोघज्ञानाः) व्यर्थ ज्ञानवाले (विचेतसः) विक्षिप्त चित अज्ञानीजन (राक्षसीम्) राक्षसी (आसुरीम्) आसुरी (च)और (मोहिनीम्)मोहिनी (प्रकतिम्)प्रकतिको (एव)ही (श्रिताः)धारण किये रहते हैं। (12)

अध्याय 9 का श्लोक 13

महात्मानस्तु मां पार्थ दैवीं प्रकृतिमाश्रिताः।
भजन्त्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम्।१३।

महात्मानः, तु, माम्, पार्थ, दैवीम्, प्रकतिम्, आश्रिताः,
भजन्ति, अनन्यमनसः, ज्ञात्वा, भूतादिम्, अव्ययम्।।13।।

अनुवाद : (तु) दूसरी तरफ (पार्थ) हे कुन्तीपुत्र! (दैवीम्) दैवी अर्थात् साधु (प्रकतिम्) स्वभाव के (आश्रिताः) धारण किए हुए से (महात्मानः) महात्माजन (भूतादिम्) सर्व प्राणियों के सनातन कारण (अव्ययम्) अविनाशी स्वरूप परमात्मा (ज्ञात्वा) तत्व से जानकर (माम्) मुझको (अनन्यमनसः) अनन्य मनसे युक्त होकर (भजन्ति) भजते हैं। (13)

भावार्थ :-- अध्याय 9 श्लोक सं. 11-12 में तो उन श्रद्धालुओं का वर्णन है जो पूर्ण परमात्मा तथा ब्रह्म को तत्व से नहीं जानते वे तो अन्य देवताओं की साधना स्वभाव वश करते हैं। अध्याय 9

श्लोक सं. 13 (जिसका सम्बन्ध अध्याय 7 श्लोक 17-18 से है कि ज्ञानी मुझे अच्छा लगता है ज्ञानी को मैं अच्छा लगता हूँ परन्तु वे मेरी अनुत्तम गति में ही आश्रित हैं) में कहा है कि जो मुझे तथा उस पूर्ण परमात्मा को जानते हैं वे फिर मुझे भजते हैं क्योंकि गीता अध्याय 17 श्लोक 23 में कहा है कि पूर्ण परमात्मा को प्राप्ति का तीन मन्त्र का स्मरण कहा है। ओम्-तत्-सत् ओम् जाप ब्रह्म का है। इस अध्याय 9 श्लोक 13 में उसी भाव से कहा है कि पूर्ण परमात्मा और मुझे (ब्रह्म को) तत्व से जानकर महात्मा जन मुझे भजते हैं। उनको अन्य मन्त्रों (तत् व सत्) का ज्ञान नहीं होता। इसलिए अपने आप निकाले निष्कर्ष से(दढव्रताः) दढता के साथ कोई ज्ञान यज्ञ अर्थात् स्तूति आदि (कीर्तन) करके कोई विराट रूप (सर्व संसार परमात्मा ही है) जानकर साधना करते हैं। उनके लिए सर्वसवा मैं ही हूँ। अध्याय 9 श्लोक 20 से 24 में अध्याय 9 श्लोक 11 से 19 का निष्कर्ष दिया है कि वे दोनों प्रकार के साधक (अन्य देवताओं को भजते वाले तथा मुझे वेदों के आधार से भजने वाले जिनको वास्तविक मन्त्र प्राप्त नहीं हुआ) वे दोनों ही विनाश को प्राप्त होते हैं। मोक्ष प्राप्त नहीं करते।

अध्याय 9 का श्लोक 14

सततं कीर्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढव्रताः।
नमस्यन्तश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते। १४।

सततम्, कीर्तयन्तः, माम्, यतन्तः, च, दढव्रताः,
नमस्यन्तः, च माम्, भक्त्या, नित्ययुक्ताः, उपासते।।14।।

अनुवाद : (दढव्रताः) दढ़ निश्चयवाले भक्तजन (सततम्) निरन्तर (कीर्तयन्तः) मेरे नाम और गुणोंका कीर्तन करते हुए (च) तथा मेरी प्राप्ति के लिए (यतन्तः) यत्न करते हुए (च) और (माम्) मुझको बार-बार (नमस्यन्तः) प्रणाम करते हुए (नित्ययुक्ताः) सदा श्रद्धायुक्त (भक्त्या) भक्तिसे (माम्) मेरी (उपासते) उपासना करते हैं। (14)

अध्याय 9 का श्लोक 15

ज्ञानयज्ञेन चाप्यन्ये यजन्तो मामुपासते।
एकत्वेन पृथक्त्वेन बहुधा विश्वतोमुखम्। १५।

ज्ञानयज्ञेन, च, अपि, अन्ये, यजन्तः, माम्, उपासते,
एकत्वेन, पथक्त्वेन, बहुधा, विश्वतोमुखम्।।15।।

अनुवाद : (अन्ये) दूसरे (माम्) मुझ ब्रह्मका (ज्ञानयज्ञेन) ज्ञानयज्ञके द्वारा (एकत्वेन) अभिन्न-भावसे (यजन्तः) पूजन करते हुए (अपि) भी (च) और दूसरे मनुष्य (बहुधा) बहुत प्रकारसे स्थित (विश्वतोमुखम्) मुझ विराट्स्वरूप परमेश्वरकी (पथक्त्वेन) प्रथक्-भावसे (उपासते) उपासना करते हैं। (15)

अध्याय 9 का श्लोक 16

अहं क्रतुरहं यज्ञः स्वधाहमहमौषधम्।
मन्त्रोऽहमहमेवाज्यमहमग्निरहं हुतम्। १६।

अहम्, क्रतुः, अहम्, यज्ञः, स्वधा, अहम्, अहम्, औषधम्,
मन्त्रः, अहम्, अहम्, एव, आज्यम्, अहम्, अग्निः, अहम्, हुतम्।।16।।

अनुवाद : (क्रतुः) यज्ञ करने वाला अर्थात् क्रतु (अहम्) मैं हूँ (यज्ञः) यज्ञ (अहम्) मैं हूँ, (स्वधा) स्वधा (अहम्) मैं हूँ (औषधम्) ओषधि (अहम्) मैं हूँ (मन्त्रः) मन्त्र (अहम्) मैं हूँ (आज्यम्) घत

(अहम्) मैं हूँ (अग्निः) अग्नि (अहम्) मैं हूँ और (हुतम्) हवनरूप क्रिया भी (अहम्) मैं (एव) ही हूँ।(16)

अध्याय 9 का श्लोक 17

पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामहः।
वेद्यं पवित्रमोङ्कार ऋक्साम यजुरेव च।१७।

पिता, अहम्, अस्य, जगतः, माता, धाता, पितामहः,
वेद्यम्, पवित्रम्, ओंकारः, ऋक्, साम, यजुः, एव, च।।17।।

अनुवाद : (अहम्) मैं (अस्य) इस (जगतः) इक्कीस ब्रह्मण्डों वाले जगत्का (धाता) धाता अर्थात् धारण करनेवाला (पिता) पिता (माता) माता (पितामहः) पितामह (च) और (वेद्यम्) जानने योग्य (पवित्रम्) पवित्र (ओंकारः) ओंकार तथा (ऋक्) ऋग्वेद (साम) सामवेद (च) और (यजुः) यजुर्वेद आदि तीनों वेद भी मैं ही हूँ। (17)

अध्याय 9 का श्लोक 18

गतिर्भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत्।
प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं बीजमव्ययम्।१८।

गतिः, भर्ता, प्रभुः, साक्षी, निवासः, शरणम्, सुहृत्, प्रभवः,
प्रलयः, स्थानम्, निधानम्, बीजम्,अव्ययम्।।18।।

अनुवाद : मैं (गतिः) स्थिति (भर्ता) भरण-पोषण करनेवाला (प्रभुः) स्वामी (साक्षी) शुभाशुभका देखनेवाला (निवासः) वासस्थान (शरणम्) शरण लेने योग्य (सुहृत्) प्रत्युपकार न चाहकर हित करनेवाला (प्रभवः, प्रलयः) सबकी उत्पतिप्रलयका हेतु (स्थानम्) स्थितिका आधार (निधानम्) निधान और (अव्ययम्) अविनाशी (बीजम्) कारण हूँ। (18)

अध्याय 9 का श्लोक 19

तपाम्यहमहं वर्षं निगृह्णाम्युत्सृजामि च।
अमृतं चैव मृत्युश्च सदसच्चाहमर्जुन।१९।

तपामि, अहम्, अहम्, वर्षम्, निगृहणामि, उत्सजामि, च,
अमतम्, च, एव, मत्युः, च, सत्, असत्, च, अहम्, अर्जुन।।19।।

अनुवाद : (अहम्) मैं ही (तपामि) सूर्यरूपसे तपता हूँ (वर्षम्) वर्षा का (निगृहणामि) आकर्षण करता हूँ (च) और उसे (उत्सजामि) बरसाता हूँ (अर्जुन) हे अर्जुन! (अहम्) मैं (एव) ही (अमतम्) अमत (च) और (मत्युः) मत्यु हूँ (च) और (सत् च असत्) सत् और असत् अर्थात् सच्च तथा झूठ का हेतु भी (अहम्) मैं ही हूँ। (19)

अध्याय 9 का श्लोक 20

त्रैविद्या मां सोमपाः पूतपापा-
यज्ञैरिष्ट्वा स्वर्गतिं प्रार्थयन्ते।
ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोक-
मश्नन्ति दिव्यान्दिवि देवभोगान्।२०।

त्रैविद्याः, माम्, सोमपाः, पूतपापाः, यज्ञैः, इष्ट्वा, स्वर्गतिम्, प्रार्थयन्ते,
ते, पुण्यम्, आसाद्य, सुरेन्द्रलोकम्, अश्नन्ति, दिव्यान्, दिवि, देवभोगान्।।20।।

अनुवाद : (त्रैविद्याः) तीनों वेदोंमें वर्णित विधि के अनुसार (सोमपाः) भक्ति रूपी अमृत पीने वाले (पूतपापाः) पुण्य आत्मा (माम्) मुझको (यज्ञैः) यज्ञोंके द्वारा (इष्ट्वा) इष्ट देव रूपमें पूजकर (स्वर्गतिम्) स्वर्ग की प्राप्ती (प्रार्थयन्ते) चाहते हैं (ते) वे (पुण्यम्) पुण्योंके फलरूप (सुरेन्द्रलोकम्) इन्द्र के स्वर्गलोक को (आसाद्य) प्राप्त होकर (दिवि)स्वर्ग में (दिव्यान्)दिव्य (देवभोगान्) देवताओंके भोगोंको (अश्नन्ति) भोगते हैं। (20)

अध्याय 9 का श्लोक 21

ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं-
क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।
एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना-
गतागतं कामकामा लभन्ते।२१।

ते, तम्, भुक्त्वा, स्वर्गलोकम्, विशालम्, क्षीणे, पुण्ये, मर्त्यलोकम्,
विशन्ति, एवम्, त्रयीधर्मम्, अनुप्रपन्नाः, गतागतम्, कामकामाः, लभन्ते।।21।।

अनुवाद : (ते) वे (तम्) उस (विशालम्) विशाल (स्वर्गलोकम्) स्वर्गलोकको (भुक्त्वा) भोगकर (पुण्ये) पुण्य के (क्षीणे) क्षीण होनेपर (मर्त्यलोकम्) मृत्युलोक को (विशन्ति) प्राप्त होते हैं। (एवम्) इस प्रकार (त्रयीधर्मम्) तीनों वेदोंमें कहे हुए भक्ति कर्मका (अनुप्रपन्नाः) आश्रय लेनेवाले और (कामकामाः) भोगोंकी ईच्छा से (गतागतम्) बार-बार आवागमनको (लभन्ते) प्राप्त होते हैं। (21)

अध्याय 9 का श्लोक 22

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्।२२।

अनन्याः, चिन्तयन्तः, माम्, ये, जनाः, पर्युपासते,
तेषाम्, नित्याभियुक्तानाम्, योगक्षेमम्, वहामि, अहम्।।22।।

अनुवाद : (ये) जो (अनन्याः) अनन्य प्रेमी (जनाः) भक्तजन (माम्) मुझको (चिन्तयन्तः) चिन्तन करते हुए (पर्युपासते) उस पूर्ण परमात्मा को निष्कामभावसे भजते हैं (तेषाम्) उन (नित्याभियुक्तानाम्) नित्य निरन्तर साधना करने वाले पुरुषोंका (योगक्षेमम्) योगक्षेम अर्थात् साधना की रक्षा (अहम्) मैं (वहामि) करता हूँ। (22)

भावार्थ :-- गीता ज्ञान दाता प्रभु कह रहा है कि जो पूर्ण परमात्मा को प्राप्त होने के लिए ओम्-तत्-सत् के मन्त्र में मेरे ओम् नाम का चिन्तन करते हुए उसे परमात्मा की उपासना करता है। उस की साधना की रक्षा भी मैं ही करता हूँ।

विशेष :-- अन्य अनुवाद कर्ताओं ने लिखा है कि ''जो अनन्य प्रेमी मुझको चिन्तन करते हुए निष्काम भाव से भजते हैं------- विचार करें :--चिन्तन करना तथा भजना एक ही अर्थ के बोधक है इसलिए अन्य अनुवाद कर्ताओं द्वारा किया अनुवाद न्याय संगत नहीं है।

अध्याय 9 का श्लोक 23

येऽप्यन्यदेवता भक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः।
तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम्।२३।

ये, अपि, अन्यदेवताः, भक्ताः, यजन्ते, श्रद्धया, अन्विताः,

ते, अपि, माम्, एव, कौन्तेय, यजन्ति, अविधिपूर्वकम्।।23।।

अनुवाद : (कौन्तेय) हे अर्जुन! (श्रद्धया) श्रद्धासे (अन्विताः) युक्त (अपि) भी (ये) जो (भक्ताः) भक्त (अन्यदेवताः) दूसरे देवताओंको (यजन्ते) पूजते हैं, (ते) वे (अपि) भी (माम्) मुझको (एव) ही (यजन्ति) पूजते हैं किंतु उनका वह पूजन (अविधिपूर्वकम्) अविधिपूर्वक अर्थात् शास्त्रविरूद्ध है।(23)

विशेष :--इसी का प्रमाण गीता अध्याय 16 श्लोक 23-24 में कहा है कि जो शास्त्र विधि को त्याग कर मनमाना (अविधिपूर्वक) आचरण (पूजा) करता है वह न तो परमशान्ति को प्राप्त होता है, उसका न कोई कार्य सिद्ध होता है तथा न ही उसकी परमगति ही होती है अर्थात् व्यर्थ है।

अध्याय 9 का श्लोक 24

अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च।

न तु मामभिजानन्ति तत्त्वेनातश्च्यवन्ति ते।२४।

अहम्, हि, सर्वयज्ञानाम्, भोक्ता, च, प्रभुः,एव, च,

न, तु, माम्,अभिजानन्ति,तत्त्वेन,अतः,च्यवन्ति,ते।।24।।

अनुवाद : (हि) क्योंकि (सर्वयज्ञानाम्) सम्पूर्ण यज्ञोंका (भोक्ता) भोक्ता (च) और (प्रभुः) स्वामी (च) भी (अहम्) मैं (एव) ही हूँ, (तु) परंतु (ते) वे (माम्) मुझे (तत्त्वेन) तत्त्वसे (न) नहीं (अभिजानन्ति) जानते (अतः) इसीसे (च्यवन्ति) गिरते हैं अर्थात् चौरासी लाख प्रकार के प्राणियों के शरीरों में कष्ट भोगते हैं। (24)

अध्याय 9 का श्लोक 25

यान्ति देवव्रता देवान्पितृन्यान्ति पितृव्रताः।

भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम्। २५।

यान्ति, देवव्रताः, देवान्, पितृन्, यान्ति, पितव्रताः।

भूतानि,यान्ति,भूतेज्याः,यान्ति, मद्याजिनः,अपि,माम्।।25।।

अनुवाद : (देवव्रताः) देवताओंको पूजनेवाले (देवान्) देवताओंको (यान्ति) प्राप्त होते हैं, (पितव्रताः) पितरोंको पूजनेवाले (पितृन्) पितरोंको (यान्ति) प्राप्त होते हैं, (भूतेज्याः) भूतोंको पूजनेवाले (भूतानि) भूतोंको (यान्ति) प्राप्त होते हैं और (मद्याजिनः) इसी तरह मतानुसार अर्थात् शास्त्रानुकुल पूजन करने वाले मेरे भक्त (अपि) भी (माम्) मुझे (यान्ति) प्राप्त होते हैं। (25)

अध्याय 9 का श्लोक 26

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।

तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः।२६।

पत्रम्, पुष्पम्, फलम्, तोयम्, यः, मे, भक्त्या, प्रयच्छति,

तत्, अहम्, भक्त्युपहृतम्, अश्नामि, प्रयतात्मनः।।26।।

अनुवाद : (यः) जो कोई भक्त (मे) मेरे लिये (भक्त्या) भक्तिभावसे (पत्रम्) पत्र (पुष्पम्) पुष्प (फलम्) फल (तोयम्) जल आदि (प्रयच्छति) अर्पण करता है (प्रयतात्मनः) प्रेमी भक्तका (भक्त्युपहृतम्) भक्तिपूर्वक अर्पण किया हुआ (तत्) वह (अहम्) मैं (अश्नामि) खाता हूँ। (26)

अध्याय 9 का श्लोक 27

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्।२७।

यत्, करोषि, यत्, अश्नासि, यत्, जुहोषि, ददासि, यत्,
यत्, तपस्यसि, कौन्तेय, तत्, कुरुष्व, मदर्पणम्।।27।।

अनुवाद : (कौन्तेय) हे अर्जुन! तू (यत्) जो कर्म (करोषि) करता है (यत्) जो (अश्नासि) खाता है (यत्) जो (जुहोषि) हवन करता है (यत्) जो (ददासि) दान देता है और (यत्) जो (तपस्यसि) तप करता है (तत्) वह सब (मदर्पणम्) मतानुसार अर्थात् शास्त्रविधि अनुसार मुझे अर्पण (कुरुष्व) कर।(27)

अध्याय 9 का श्लोक 28

शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः।
सन्न्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तो मामुपैष्यसि।२८।

शुभाशुभफलैः, एवम्, मोक्ष्यसे, कर्मबन्धनैः,
सन्न्यासयोगयुक्तात्मा, विमुक्तः, माम्, उपैष्यसि।।28।।

अनुवाद : (एवम्) इस प्रकार मतानुसार साधना करने (सन्न्यासयोगयुक्तात्मा) घर त्याग कर या हठ योग करके साधना करने वाले साधक (शुभाशुभफलैः) अपने हित व अहित के फल को जान कर (कर्मबन्धनैः) शास्त्र विधि रहित साधना जो हठयोग एक स्थान पर बन्ध कर बैठने से (मोक्ष्यसे) मुक्त हो जाएगा। ऐसे (विमुक्तः) शास्त्र विरुद्ध साधना के बन्धन से मुक्त होकर अर्थात् शास्त्र विधि अनुसार साधना करके (माम्) मुझसे ही (उपैष्यसि) लाभ प्राप्त करेगा। अर्थात् मेरे पास ही आएगा।(28)

अध्याय 9 का श्लोक 29

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्। २९।

समः, अहम्, सर्वभूतेषु, न, मे, द्वेष्यः, अस्ति, न, प्रियः,
ये, भजन्ति, तु, माम्, भक्त्या, मयि, ते, तेषु, च, अपि, अहम्।।29।।

अनुवाद : (अहम्) मैं (सर्वभूतेषु) सब प्राणियों में (समः) समभावसे व्यापक हूँ (न) न कोई (मे) मेरा (द्वेष्यः) दुश्मन है और (न) न (प्रियः) प्रिय (अस्ति) है (तु) परंतु (ये) जो भक्त (माम्) मुझको (भक्त्या) शास्त्र अनुकूल भक्ति विधि से (भजन्ति) भजते हैं (ते) वे (मयि) मुझमें हैं (च) और (अहम्) मैं (अपि) भी (तेषु) उनमें हूँ।(29)

अध्याय 9 का श्लोक 30

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः।३०।

अपि, चेत्, सुदुराचारः, भजते, माम्, अनन्यभाक्,
साधुः, एव, सः, मन्तव्यः, सम्यक्, व्यवसितः, हि, सः।।30।।

अनुवाद : (चेत्) यदि कोई (सुदुराचारः) अतिशय दुराचारी (अपि) भी (अनन्यभाक्)

अनन्यभावसे (माम्) मुझको (भजते) भजता है तो (सः) वह (साधुः) साधु (एव) ही (मन्तव्यः) मानने योग्य है (हि) क्योंकि (सः) वह (सम्यक्) यथार्थ (व्यवसितः) निश्चयवाला है।(30)

अध्याय 9 का श्लोक 31

क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति।
कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति। ३१।

क्षिप्रम्, भवति, धर्मात्मा, शश्वत्, शान्तिम्, निगच्छति,
कौन्तेय, प्रति, जानीहि, न, मे, भक्तः, प्रणश्यति।।31।।

अनुवाद : उपरोक्त साधक का ही निम्न श्लोक में विवरण किया है कि वह दुराचारी व्यक्ति मेरे को भजता है अर्थात् मेरे द्वारा दिए भक्ति मार्ग - मत अर्थात् सिद्धांत के आधार से शास्त्रों के पठन-पाठन करके (क्षिप्रम्) शीघ्र ही (धर्मात्मा) साधु जैसे गुणों वाला तो (भवति) हो जाता है परन्तु मेरी साधना से साधक (शश्वत्) कर्म आधार से जन्म-मत्यु का सदा रहने वाले चक्र के आधार से बहुत समय के लिए (शान्तिम्) शान्ति को (निगच्छति) प्राप्त करता है अर्थात् एक कल्प तक ब्रह्मलोक में रहता है। उसके पश्चात् कर्म अनुसार अन्य प्राणियों के शरीर धारण करता है। गीता अध्याय 9 श्लोक 7 में भी यही प्रमाण है कहा कि कल्प के अन्त में सर्व प्राणी प्रकति में लीन हो जाते है। कल्प की आदि में फिर उत्पन्न करता हूँ। (31)

(कौन्तेय) हे कुंती पुत्र! जो यह (न जानीहि) नहीं जानता (मे) मेरा (भक्तः) भक्त भी (प्रति) वापिस (प्रणश्यति) अदश्य हो जाता है अर्थात् मानव शरीर न प्राप्त करके अन्य प्राणियों के शरीर प्राप्त करता है।

विशेष :- इसी का प्रमाण पवित्र गीता अध्याय 7 श्लोक 18, तथा गीता अध्याय 4 श्लोक 40 में स्पष्ट किया है कि पथ भ्रष्ट साधक नष्ट हो जाता है तथा गीता अध्याय 6 श्लोक 30 में प्रणश्यति का अर्थ अदश्य होना लिखा है। इस श्लोक 30 में दो बार अर्थ किया है। इसलिए यहाँ अध्याय 9 श्लोक 31 में भी प्रणश्यति का अर्थ अदश्य ही अनुकूल है। इसीलिए गीता अध्याय 18 श्लोक 62 में कहा है कि अर्जुन तू सर्व भाव से उस परमात्मा की शरण में जा, उसकी कप्या से ही तू परमशान्ति को तथा सनातन परम धाम को अर्थात् सतलोक को प्राप्त होगा। इसी का प्रमाण गीता अध्याय 15 श्लोक 4 में भी है कि हे अर्जुन गीता अध्याय 4 श्लोक 34 में वर्णित तत्वदर्शी संत के मिलने पर उस परम पद परमेश्वर की खोज करनी चाहिए, जिसमें गए साधक फिर लौट कर संसार में जन्म-मत्यु में नहीं आते अर्थात् पूर्ण मोक्ष को प्राप्त करते हैं। जिस परमेश्वर से संसार रूपी वक्ष विस्तार को प्राप्त हुआ है अर्थात् जिस परमेश्वर ने सर्व ब्रह्मण्डों की रचना की है। मैं भी उसी आदि पुरुष परमेश्वर की शरण में हूँ। इसलिए उसी पूर्ण परमात्मा की भक्ति करनी चाहिए।

अध्याय 9 का श्लोक 32

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्। ३२।

माम्, हि, पार्थ, व्यपाश्रित्य, ये, अपि, स्युः, पापयोनयः,
स्त्रियः, वैश्याः, तथा, शूद्राः, ते, अपि, यान्ति, पराम्, गतिम्।।32।।

अनुवाद : (हि) क्योंकि (पार्थ) हे पार्थ! (ये) जो (अपि) भी (माम्) मुझ पर (व्यापाश्रित्य) आश्रित (स्युः) होवें (पापयोनयः) पापयोनि अर्थात् महा पापी (स्त्रियः वैश्याः) वैश्या स्त्री (तथा)

और (शूद्राः) शुद्र (ते) वे सब (अपि) भी (पराम गतिम्) परमगति को (यान्ति) प्राप्त हो जाते हैं।(32)

विशेष :- इस उपरोक्त श्लोक में गीता ज्ञान दाता ने कहा है कि मेरे आश्रित होकर परमगति अर्थात् पूर्ण मोक्ष प्राप्त करता है। कारण है कि पूर्ण मोक्ष के लिए गीता अध्याय 17 श्लोक 23 में तीन मन्त्र ओम्-तत्-सत् के जाप का वर्णन किया है। जिस से परमगति अर्थात् पूर्ण मोक्ष सम्भव है। इसमें ओम् मन्त्र गीता ज्ञान दाता का है। इसलिए इस ओम् मन्त्र का अर्थात् गीता ज्ञान दाता का आश्रय लेकर ही परम गति प्राप्त होती है। इसी लिए गीता ज्ञान दाता ने अपनी गति को गीता अध्याय 7 श्लोक 18 में अति अनुत्तम बताया है इसीलिए गीता अध्याय 18 श्लोक 62 व अध्याय 15 श्लोक 4 में अपने से अन्य परमेश्वर की शरण में जाने को कहा है।

अध्याय 9 का श्लोक 33

किं पुनर्ब्राह्मणाः पुण्या भक्ता राजर्षयस्तथा।
अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्। ३३।

किम्, पुनः, ब्राह्मणाः, पुण्याः, भक्ताः, राजर्षयः, तथा,
अनित्यम्, असुखम्, लोकम्, इमम्, प्राप्य, भजस्व, माम्।।33।।

अनुवाद : पवित्र गीता बोलने वाला प्रभु कह रहा है कि उपरोक्त श्लोक 32 में वर्णित पापी आत्मा भी मेरे वाली परमगति को प्राप्त कर सकते हैं तो (पुनः) फिर (ब्राह्मणाः) ब्राह्मणों (तथा) और (राजर्षयः) राजर्षि (पुण्या) पुण्यशील (भक्ताः) भक्तजनों के लिए (किम्) क्या कठिन है। (माम्) मुझ ब्रह्म के (इमम्) इस (अनित्यम्) नाश्वान (असुखम्) दुःखदाई (लोकम्) लोकों (प्राप्य) प्राप्त होकर अर्थात् जन्म लेकर (भजस्व) उस पूर्ण परमात्मा का भजन कर क्योंकि गीता अध्याय 8 श्लोक 8 से 10,1 व 3 तथा 20 से 22 में पूर्ण परमात्मा की प्राप्ति के लिए विस्तार से कहा है तथा अध्याय 8 श्लोक 5-7 व 13 में अपने विषय में कहा है। यहाँ भी संकेतिक संदेश उस पूर्ण परमात्मा के विषय में है तथा निम्न श्लोक 34 में अपने विषय में कहा है कि यदि मेरी शरण में रहना है तथा जन्म-मत्यु का कष्ट उठाते रहना है तो- (33)

विशेष :- इसलिए गीता अध्याय 18 श्लोक 62 में प्रमाण दिया है कि उस परमात्मा की शरण में जा, उसकी कप्या से ही तू परम शान्ति तथा सनातन परम धाम को प्राप्त होगा। निम्न श्लोक में कहा है कि मेरे वाली परमगति चाहिए तो-

अध्याय 9 का श्लोक 34

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः। ३४।

मन्मनाः, भव, मद्भक्तः, मद्याजी, माम्, नमस्कुरु,
माम्, एव, एष्यसि, युक्त्वा, एवम्, आत्मानम्, मत्परायणः।।34।।

अनुवाद : (मन्मनाः) मेरे में स्थिर मन वाला (मद्याजी) मेरा शास्त्रानुकूल पूजक (मद्भक्तः) मतानुसार अर्थात् मेरे बताए अनुसार साधक (भव) बन (माम्) मुझे (नमस्कुरु) प्रणाम कर। (एवम्) इस प्रकार (आत्मानम्) आत्मासे (मत्परायणः) मेरी शरण होकर शास्त्रानुकूल साधनमें (युक्त्वा) संलग्न होकर (एव) ही (माम्) मुझ से(एष्यसि) लाभ प्राप्त करेगा। (34)

भावार्थ :-- गीता अध्याय 4 श्लोक 5, अध्याय 2 श्लोक 12, अध्याय 10 श्लोक 2 में कहा है कि मेरे तथा तेरे बहुत जन्म हो चुके हैं। आगे भी हम सब जन्मते-मरते रहेगें। मेरी उत्पत्ति को ऋषि जन व देवता भी नहीं जानते। मेरी साधना करेगा तो युद्ध भी कर तथा मेरी भक्ति भी कर।

कप्या पाठक जन विचार करें :-- युद्ध करने वाले को शान्ति कहाँ। इसीलिए गीता अध्याय 8 श्लोक 5 से 10 व अध्याय 8 श्लोक 18 से 20 अध्याय 15 श्लोक 4, अध्याय 18 श्लोक 62,66 में परम् शान्ति के लिए तथा शाश्वत् (सदा रहने वाले) स्थान की प्राप्ति के लिए किसी अन्य परमेश्वर की शरण में जाने को कहा है। जन्म-मत्यु वाले को शान्ति कहाँ? यदि पूर्ण मुक्त होना है तो उस परमेश्वर की शरण में सर्व भाव से जा, जिस कारण तू परम शान्ति तथा सत्यलोक अर्थात् सनातन परम धाम को प्राप्त होगा। उसके लिए तत्वदर्शी संत की तलाश कर, मैं नहीं जानता(गीता अ. 18 श्लोक 62 तथा अ. 4 श्लोक 34)।

(इति अध्याय नौवाँ)

❑❑❑

दशवां अध्याय

।दिव्य।सारांश।।

❖ *अध्याय 10 के श्लोक 1 में कहा है कि हे महाबाहो (अर्जुन)! मेरे अमृत वचन सुन जो आप जैसे प्रिय भक्त के हित के लिए कहूँगा।*

।। ब्रह्म (काल) की उत्पत्ति का प्रमाण।।

❖ *अध्याय 10 के श्लोक 2 में कहा है कि अर्जुन मेरी उत्पत्ति (जन्म) को न तो देवता जानते हैं, न ही महर्षि जन जानते हैं क्योंकि यह सब मेरे से पैदा हुए हैं। इससे स्वसिद्ध है कि ब्रह्म (काल) की उत्पति तो हुई है परंतु देवता व ऋषि नहीं जानते। जैसे पिता जी की उत्पत्ति को बच्चे नहीं बता सकते, परन्तु दादा जी जानता है। इसी प्रकार इक्कीस ब्रह्मण्ड में सर्व देव-ऋषि आदि ज्योति निरंजन - ब्रह्म अर्थात् काल तथा प्रकृति (दुर्गा) के संयोग से उत्पन्न हुए हैं। इसलिए कह रहा है कि मेरी उत्पत्ति को इक्कीस ब्रह्मण्डों में कोई नहीं जानता, क्योंकि सर्व की उत्पत्ति मेरे से हुई है। केवल पूर्ण ब्रह्म ही काल (ब्रह्म) की उत्पत्ति बता सकता है। क्योंकि ब्रह्म (काल) की उत्पत्ति परम अक्षर ब्रह्म (पूर्ण ब्रह्म) से हुई है। जिसका गीता जी के अध्याय 3 के श्लोक 14,15 में ब्रह्म की उत्पत्ति का प्रत्यक्ष प्रमाण है।*

❖ *गीता अध्याय 2 श्लोक 12 अध्याय 4 श्लोक 5-9 में भी स्पष्ट है कि गीता ज्ञान दाता का भी जन्म व मृत्यु होता है। इसलिए यह कहीं पर आकार में भी है। नहीं तो कृष्ण जी तो अर्जुन के सामने ही खड़े थे। वे तो कह ही नहीं सकते कि मैं अनादि अजम (अजन्मा) हूँ। यह सर्व काल (अदृश ब्रह्म) ही श्री कृष्ण में बोल कर अपनी प्रतिष्ठा (स्थिति) की सही जानकारी गीता रूप में दे गया।*

❖ *अध्याय 10 के श्लोक 3 का अनुवाद : जो मुझ (ब्रह्म) को कभी का (अनादिम्) जन्म न लेने वाला यानि आकार में न आने वाला और काल लोक का महान् ईश्वर इस प्रकार तत्व से जानता है वह (मर्त्येषु) मनुष्यों में विद्वान अर्थात् तत्वदर्शी सन्त है जो तीनों वेदों में कहे शास्त्रानुकूल विचारों को तथा सर्व पापों की सही जानकारी देता है। (तीनों वेद - यजुर्वेद, सामवेद, ऋग्वेद।) वह पूर्ण परमात्मा की भक्ति करके सर्व पापों से मुक्ति पाता है। गीता जी के अध्याय 15 के श्लोक 17 में वर्णन है कि पूर्ण परमात्मा अविनाशी तो अन्य ही है जो तीनों लोकों में प्रवेश करके सबका धारण-पोषण करता है। गीता अध्याय 15 श्लोक 18 में कहा है कि मुझ (काल) को तो केवल इसलिए पुरुषोत्तम कहते हैं क्योंकि मैं इक्कीस ब्रह्मण्डों में मेरे आधीन स्थूल शरीर में नाशवान प्राणियों तथा अविनाशी जीवात्मा से उत्तम हूँ। इसलिए मुझे लोक वदे के आधार से अर्थात् सुने सुनाए ज्ञान के आधार से पुरुषोत्तम कहा है परंतु वास्तव में अविनाशी या पालनकर्ता तो अन्य परम अक्षर ब्रह्म है। गीता जी के अध्याय नं. 3 के श्लोक 14,15 में कहा है कि सर्वजीव अन्न से उत्पन्न होते हैं, अन्न वर्षा से होता है, वर्षा यज्ञ से होती है, यज्ञ शुभकर्मों से, कर्म ब्रह्म से उत्पन्न हुए। ब्रह्म अविनाशी परमात्मा से उत्पन्न हुआ। वही अविनाशी सर्वव्यापक परमात्मा ही यज्ञों में प्रतिष्ठित है, यज्ञों में पूज्य है, वही यज्ञों का फल भी देता है अर्थात् वास्तव में अधियज्ञ भी वही है।*

गीता जी के अध्याय 10 के श्लोक नं 2 में कहा है कि मेरी उत्पत्ति (प्रभवम्) को ऋषि व देव जन आदि कोई नहीं जानता। इससे सिद्ध है कि काल (ब्रह्म) भी उत्पन्न हुआ है।

❖ *गीता अध्याय 10 श्लोक 4-6 :- इन तीनों श्लोकों का भावार्थ है कि काल ब्रह्म ने कहा है कि मेरे अंतर्गत जितने प्राणी हैं, उनको मैं ही नाच नचा रहा हूँ क्योंकि काल का अंश मन है। काल ब्रह्म ने सर्व प्राणियों में मन रूप सॉफ्टवेयर डाल रखा है जिसके माध्यम से सर्व प्राणियों को प्रभावित करता है। उसी कारण से काल ब्रह्म ने कहा है कि निर्णय करने की शक्ति, ज्ञान, शंकारहित करना, क्षमा, दया, सत्य भाषण इन्द्रियों को वश में करना, मन निग्रह तथा सुख-दुःख, उत्पत्ति-प्रलय और भय-अभय तथा अहिंसा, संतोष, दान, कीर्ति और अपकीर्ति, ऐसे ये प्राणियों के भिन्न-भिन्न प्रकार के भाव मुझसे ही होते हैं। जैसे अर्जुन को शक्ति देकर महाभारत के युद्ध में कीर्ति करवा दी। फिर भीलों (जंगली लोगों) से मिटवाकर अपकीर्ति करवा दी। सब छल काल करता है, दयाल परमात्मा नहीं करता।(10/4-5)*

❖ *श्लोक 6 :- सात महर्षि जिन्हें सप्त ऋषि कहते हैं। ये तथा चार (सनक, सनंदन, संत, सनातन, ये चार) सनकादिक इससे पहले उत्पन्न हुए, ये तथा स्वायम्भुव आदि चौदह मनु ये मुझ (काल ब्रह्म) में भाव वाले सबके सब मेरे संकल्प से उत्पन्न हुए हैं जिनकी मेरे में समस्त प्रजा है। भावार्थ है कि काल ब्रह्म गीता ज्ञान दाता तो अपने इक्कीस ब्रह्माण्डों के प्राणियों का उत्पत्तिकर्ता है। इसलिए ये सब ऋषिजन काल ब्रह्म की उत्पत्ति यानि जन्म को नहीं जानते।(10/6)*

।। पूर्ण ज्ञानी पूर्ण परमात्मा की ही पूजा करता है, ब्रह्म (काल) की नहीं।।

अध्याय 10 के श्लोक 7 का भावार्थ है कि जो मेरी इस प्रकार शक्ति को, योग साधना को तत्व से जानता है वह निश्चल साधना से युक्त हो जाता है। इसमें कोई संश्य नहीं अर्थात् जो विद्वान पुरुष मतानुसार (शास्त्रानुसार) काल (ब्रह्म) की जितनी शक्ति, {केवल नाशवान प्राणियों, जो स्थूल शरीर में हैं तथा अविनाशी जीवात्मा जो काल (ब्रह्म) के जाल में हैं, से उत्तम है। इसलिए इसे पुरुषोत्तम कहते हैं। वास्तव में पुरुषोत्तम कोई अन्य ही है जिसे अविनाशी सर्वव्यापक परमात्मा कहते हैं (अध्याय 15 के श्लोक 16,17,18 फिर पढ़ें)} को तत्व से जान लेते हैं वे ही साधक पूर्ण परमात्मा की भक्ति को निःसंश्य अर्थात् निश्चल मन से करते हैं। इसमें कोई संश्य नहीं।

।। ब्रह्म (काल) द्वारा ही शास्त्र (वेद) उत्पन्न।।

अध्याय 10 के श्लोक 8 में वर्णन है कि जिनको तत्वदर्शी संत नहीं मिला, जिस कारण वे मुझे इस भाव से जानते हैं कि मैं सब शास्त्रों के नियमों (मतों) की उत्पति का कारण हूँ। {क्योंकि चारों वेद ब्रह्म (काल) ने ही उत्पन्न किए हैं, उनमें ॐ मन्त्र के जाप व यज्ञ तक का ज्ञान है जो केवल ब्रह्म (काल) का लाभ ही प्राप्त हो सकता है।} इसलिए सब साधक शास्त्रों अर्थात् वेदों के आधार से साधना करते हैं, श्रद्धा भाव से मुझ (ब्रह्म-काल) को भजते हैं। काल को ही सर्व जगत का उत्पत्तिकर्ता मानते हैं। उसी को भजते हैं।

।। ब्रह्म (काल) के उपासक उसी के आधार।।

अध्याय 10 के श्लोक 9 का भावार्थ है कि जिनको पूर्णज्ञानी तत्वदर्शी संत नहीं मिला वे मेरे द्वारा उत्पन्न (रचित) शास्त्रों के आधारित प्राणी इन्हीं के ज्ञाता, लीन मन वाले और आपस में

विचार विमर्श (हरि चर्चा) करते हुए और नित्य (ब्रह्मसे) संतुष्ट रहते हैं तथा मुझ (ब्रह्म-काल) में लीन (रमे) रहते हैं। उनको ऐसी बुद्धि मैं ही देता हूँ ताकि मेरे जाल में फँसे रहें।

अध्याय 10 के श्लोक 10 में कहा है कि उन अभ्यास योग में युक्त सप्रेम भजनेवालों की बुद्धि में अज्ञान रूपी अंधकार कर देता हूँ जिससे वे मुझ (काल) को प्राप्त होते हैं।

अध्याय 10 के श्लोक 11 में कहा है कि उनके ऊपर कृपा करने के लिए अज्ञान से उत्पन्न अंधकार को नष्ट करता हूँ। आत्म भावस्थ का भावार्थ है कि जैसे प्रेत किसी के शरीर में प्रवेश करके बोलता है वह ऐसा लगता है जैसे शरीरधारी जीवात्मा बोल रहा है परन्तु वह प्रेत आत्मभाव अर्थात् जीव की तरह स्थित होकर बोलता है। इसी प्रकार गीता ज्ञान दाता ब्रह्म कह रहा है कि मैं प्राणियों में आत्मभाव स्थ अर्थात् उनके शरीर में प्रेतवत् प्रवेश करके ज्ञान प्रदान करता हूँ। गीता ज्ञान दान के समय वही ब्रह्म (काल) श्री कृष्ण जी के शरीर में प्रेत की तरह प्रवेश करके गीता ज्ञान बोल रहा था लग रहा था जैसे श्री कृष्ण जी बोल रहा है। इस का प्रमाण गीता अध्याय 7 श्लोक 24-25 में है।

अध्याय 10 के श्लोक 11 में स्पष्ट कहा है कि जो भक्त मेरे आश्रित होकर मुझे भजते हैं। उनके अंदर (आत्म भावस्थः) जीव की तरह प्रवेश करके उनको सच्चाई (सत्यज्ञान) बता देता हूँ कि वास्तविक अविनाशी तथा अजन्मा परमात्मा तो कोई और ही है। मैं नहीं हूँ। इसलिए उस परमात्मा की भक्ति करो। फिर उस भक्त का पुनर्जन्म नहीं होता।

प्रमाण - गीता जी के अध्याय 8 के श्लोक 3, 8, 9, 10, 20, 21, 22, अध्याय 2 का श्लोक 17, अध्याय 18 के श्लोक 46,61, 62, अध्याय 15 के श्लोक 1 से 6, 16 से 18 तथा अध्याय 13 पूरा तथा गीता अध्याय 5 श्लोक 14, 15, 16, 19, 20, 24, 25, 26 तथा और अनेकों श्लोकों में गीता में भी अन्य परमात्मा की भक्ति करने को कहा है।

जब मैं (काल) कल्प के अंत में प्रलय करूंगा तो मुझे (काल) प्राप्त प्राणी स्वर्ग तथा महास्वर्ग में स्थित भी नष्ट होंगे। जब कल्प का प्रारम्भ करूंगा। तब फिर जन्म-मरण व चौरासी के चक्र में आएंगे अर्थात् पूर्ण मुक्त नहीं हैं। प्रमाण के लिए अध्याय 8 का श्लोक 16 तथा अध्याय 9 का श्लोक नं. 7 ।

अध्याय 10 के श्लोक 12 से 18 तक अर्जुन कह रहा है कि मैं आपको अजन्मा-अनादि, सर्व प्राणियों के महेश्वर (पुरुषोत्तम) देवताओं के भी देव आदि मानता हूँ तथा अध्याय 10 श्लोक 14 में अर्जुन ने कहा है कि आप के साकार मानुष जैसे रूप को तो कोई नहीं जानता । अब मुझे बताएँ कि मैं आपका भजन सुमरण कैसे करूं? अध्याय 10 के श्लोक 20 में काल ब्रह्म ने कहा है कि मैं सर्व जीवों में स्थित आत्मा हूँ व सब का जन्म-मरण व बीच में जो-जो उस जीव को सुख या दुःख देना है सबका कारण मैं (ब्रह्म) हूँ। क्योंकि सर्व जीवात्मा ब्रह्म (ज्योति निरंजन काल) के आधीन हैं। जैसे वह चाहे पक्षी हो, चाहे पशु हो, चाहे राजा या देवराज इन्द्र व ब्रह्मा-विष्णु-शिव और माई प्रकृति भी क्यों न हो, सबको गुप्त रूप में अपनी शक्ति के द्वारा सर्व प्राणियों को तीन लोक में परेशान कर रहा है। इसलिए आगे के श्लोक 21 से 42 तक काल ब्रह्म ने कहा है कि सब जीव जाति के जो-जो मुखिया प्राणी हैं वह मैं (काल) ही हूँ। जैसे शेर वन्य प्राणियों का काल (नाश करने वाला) पक्षियों में गरुड़ आदि-आदि तथा जुआ भी मैं ही हूँ, छल भी मैं (काल) ही हूँ। चूंकि काल (ब्रह्म) ही सर्व जीवों को धोखे में डाल कर एक दूसरे के आधीन करके परेशान करवाता है।

अध्याय 10 के श्लोक 19 से 42 तक में काल ब्रह्म ने कहा कि हे अर्जुन! (कुरुश्रेष्ठ) अब मैं तेरे लिए अपना अनन्त विस्तार बताऊँगा।

जो प्राणी मेरे अन्तर्गत है मैं उन सब प्राणियों में आत्मा हूँ, आदि-मध्य तथा अन्त भी मैं हूँ क्योंकि ये सब काल के रंग में रंगे हैं। इनको अन्य परमात्मा का ज्ञान नहीं है। मैं देवों में विष्णु, ग्रहों में सूर्य हूँ, तारों में चन्द्रमा हूँ, वेदों में साम वेद हूँ, रूद्रों में शंकर हूँ, धन का देवता कुबेर हूँ, सबसे ऊँचा पर्वत सुमेरु हूँ, बहस्पति स्कन्द, समुन्द्र (जल स्तोत्र) हूँ, मैं ही भगु ऋषि हूँ, शब्दों में एक अक्षर ओंकार हूँ, सब वक्षों में पीपल का वक्ष हूँ, सिद्धों में कपिल मुनि हूँ, देव ऋषियों में नारद हूँ, मनुष्यों में राजा हूँ, गौओं में कामधेनु हूँ, सर्पों में वासुकि हूँ, नागों में शेष नाग मैं ही हूँ, जंगली जानवरों में शेर तथा पक्षियों में गरूड़ हूँ। जल जीवों में मगर हूँ, धनुषधारियों में राम (श्री रामचन्द्र पुत्र श्री दशरथ) हूँ। मैं सबका नाश करने वाला मत्यु हूँ। इसलिए हे अर्जुन! भूतों (प्राणियों) का बीज (उत्पत्ति व प्रलय का कारण) मैं ही हूँ। मेरी विभूतियाँ तो अनन्त हैं। यह तो कुछ ही कहा है तथा जो भी अच्छी वस्तुएँ हैं वे मेरे से उत्पन्न जान। हे अर्जुन! इसे बहुत जानने से तुझे क्या प्रयोजन है? सुन, मैं इस सारे संसार (तीन लोकों) को एक अंश मात्र से धारण करके स्थित हूँ अर्थात् अधिक क्या बताऊँ? इस सारे संसार को मैं (काल) ही नचा रहा हूँ। जंगली जानवरों में शेर को शक्तिशाली बना दिया। वह सर्व वन्य प्राणियों को तंग रखता है अर्थात् भयभीत रखता है। जब चाहे खा जाता है। फिर मगर मच्छ जल के जीवों को परेशान अर्थात् भयभीत रखता है। जब चाहे खा जाता है। इसी प्रकार काल भगवान है जिसको चाहे खा जाता है अर्थात् 21 ब्रह्मण्ड में काल का राज्य है। यही सर्व प्राणियों के दुःख का कारण है जो स्वयं स्पष्ट कह रहा है।

(नोट :- काल ब्रह्म को जानने के लिए पढ़ें अध्याय ''सष्टि रचना'' में जो इसी पुस्तक के प्रारम्भ में है।)

विशेष :- गीता ज्ञान दाता अपनी फोकट महिमा बना रहा है। यह इसका मत है, परंतु वास्तविकता भिन्न है। काल ब्रह्म ने अध्याय 10 के श्लोक 40-42 में कहा है कि मैं सर्व का मालिक हूँ। मेरी दिव्य विभूतियों का अंत नहीं है। सम्पूर्ण संसार को अंश मात्र पर धारण करके मैं स्थित हूँ। यदि ऐसा है तो गीता अध्याय 15 श्लोक 4 तथा 17 में किसलिए कहा है कि तत्वज्ञान प्राप्ति के पश्चात् परमेश्वर के उस परम पद की खोज करनी चाहिए जहाँ पर गए साधक फिर लौटकर संसार में कभी नहीं आते। जिस परमेश्वर ने संसार रूपी वक्ष का विस्तार किया है यानि रचना की है। उसी की भक्ति करो।(15/4)

अध्याय 15 श्लोक 17 में कहा है कि उत्तम पुरूष यानि पुरूषोत्तम तो अन्य ही है जो परमात्मा कहा जाता है। वही वास्तव में अविनाशी परमेश्वर है जो तीनों लोकों में (क्षर पुरूष यानि काल ब्रह्म के लोक में, अक्षर पुरूष के लोक में तथा अपने परम अक्षर ब्रह्म के लोक में) प्रवेश करके सबका धारण-पोषण करता है।

गीता अध्याय 18 श्लोक 62 में कहा है कि सर्वभाव से उस परमेश्वर की शरण में जा। उस परमेश्वर की कपा से ही तू परम शांति को तथा सनातन परम धाम को प्राप्त होगा। जिस परमेश्वर के विषय में अध्याय 18 श्लोक 46 तथा 61 में तथा अध्याय 8 के श्लोक 3, 8-10, 20-22 में बताया है और भी अन्य अध्यायों में अनेकों श्लोकों में गीता ज्ञान दाता ने अपने से अन्य परमेश्वर की महिमा कही है। परंतु इस अध्याय 10 श्लोक 40-42 में केवल छल करके अर्जुन को डरा रहा है। यह सारी व्यवस्था झूठ और छल से करता है। किसी को भी सत्य नहीं बताता। पाठकों को यहाँ शंका भी होगी कि यदि काल ब्रह्म सब झूठ बोलता है तो गीता के शेष ज्ञान को सत्य कैसे माना जा सकता है। इसने अध्यात्म का कुछ सत्य ज्ञान बोला तो किसलिए? इसका कारण यह है कि एक तो इसने

अपने को ज्ञान सागर सिद्ध करके अपनी महिमा बताई है। दूसरा इसको पता है कि वेद ज्ञान संसार में पढ़ा जा रहा है। यदि सब उसके विपरित बोलूंगा तो मेरी पोल खुल जाएगी। तीसरा पूर्ण परमात्मा के हाथ में इसका भी संचालन (Remote) है। उसने इसके मुख से कहलवाया है कि मैं काल हूँ। (गीता अध्याय 11 श्लोक 32 में) परमात्मा ने बताया है कि यह झूठा है। अपने को सबका कर्ता बताता है।

सूक्ष्मवेद में परमेश्वर कबीर जी से प्राप्त ज्ञान को संत गरीबदास जी ने कहा है कि :-

ज्योत स्वरूपी कह निरंजन, मैं ही कर्ता भाई।

एक न कर्ता दो न कर्ता, नौ ठहराए भाई। दसवां भी धूंधर में मिल जागा, सत कबीर दुहाई।

भावार्थ :- काल ब्रह्म अपने आपको सर्व प्राणियों का उत्पत्तिकर्ता इस अध्याय 10 के श्लोक 40-42 में बता रहा है। पौराणिक दस अवतार कर्ता बताते हैं। कबीर जी ने कहा है कि जैसे नौ अवतार मर गए जो कर्ता माने जाते थे। दसवां भी ऐसे ही नष्ट हो जाएगा। केवल कबीर ही सर्व का उत्पत्तिकर्ता, पालनकर्ता तथा कुल का स्वामी है। परमेश्वर कबीर जी ने भी बताया है कि :-

औंकार निश्चय भया, या कूँ कर्ता मत जान। साच्चा शब्द कबीर का, पर्दे मांही पहचान।।

भावार्थ :- काल ब्रह्म की साधना का नाम औंकार यानि ओम् (ॐ) है। यह तो पक्की बात है यानि सत्य है, परंतु ज्योति निरंजन काल को कर्ता मत जान। परमात्मा की प्राप्ति का सच्चा भक्ति मंत्र कबीर जी ने बताया है। वह गुप्त रखा गया है। संत से उसे गुप्त विधि से जानकर पहचान लेना। वह बताएगा कि कुल का मालिक काल ब्रह्म से अन्य है।

❑❑❑

।।दशवें अध्याय के अनुवाद सहित श्लोक।।

परमात्मने नमः

अथ दशमोऽध्यायः

अध्याय 10 का श्लोक 1 (भगवान उवाच)

भूय एव महाबाहो शृणु मे परमं वचः।
यत्तेऽहं प्रीयमाणाय वक्ष्यामि हितकाम्यया ।१।

भूयः, एव, महाबाहो, श्रणु, मे, परमम्, वचः,
यत्, ते, अहम्, प्रीयमाणाय, वक्ष्यामि, हितकाम्यया।।1।।

अनुवाद : (महाबाहो) हे महाबाहो! (भूयः) फिर (एव) भी (मे) मेरे (परमम्) परम रहस्य और प्रभावयुक्त (वचः) वचनको (श्रणु) सुन (यत्) जिसे (अहम्) मैं (ते) तुझ (प्रीयमाणाय) अतिशय प्रेम रखनेवालेके लिये (हितकाम्यया) हितकी इच्छासे (वक्ष्यामि) कहूँगा। (1)

अध्याय 10 का श्लोक 2

न मे विदुः सुरगणाः प्रभवं न महर्षयः।
अहमादिर्हि देवानां महर्षीणां च सर्वशः।२।

न, मे, विदुः, सुरगणाः, प्रभवम्, न, महर्षयः,
अहम्, आदिः, हि, देवानाम्, महर्षीणाम्, च, सर्वशः।।2।।

अनुवाद : (मे) मेरी (प्रभवम्) उत्पतिको (न) न (सुरगणाः) देवतालोग जानते हैं और (न) न (महर्षयः) महर्षिजन ही (विदुः) जानते हैं, (हि) क्योंकि (अहम्) मैं (सर्वशः) सब प्रकारसे (देवानाम्) देवताओंका (च) और (महर्षीणाम्) महर्षियोंका भी (आदिः) आदि कारण हूँ। (2)

अध्याय 10 का श्लोक 3

यो मामजमनादिं च वेत्ति लोकमहेश्वरम्।
असम्मूढः स मर्त्येषु सर्वपापैः प्रमुच्यते।३।

यः, माम्, अजम्, अनादिम्, च, वेत्ति, लोकमहेश्वरम्,
असम्मूढः, सः, मर्त्येषु, सर्वपापैः,प्रमुच्यते।।3।।

अनुवाद : (यः) जो विद्वान व्यक्ति (माम्) मुझको (च) तथा (अनादिम्) सदा रहने वाले अर्थात् पुरातन (अजम्) जन्म न लेने वाले (लोक महेश्वरम्) सर्व लोकों के महान ईश्वर अर्थात् सर्वोच्च परमेश्वर को (वेत्ति) जानता है (सः) वह (मर्त्येषु) शास्त्रों को सही जानने वाला अर्थात् वेदों के अनुसार ज्ञान रखने वाला मनुष्यों में (असम्मूढः) ज्ञानवान अर्थात् तत्वदर्शी विद्वान् तत्वज्ञान के आधार से सत्य साधना करके(सर्वपापैः) सम्पूर्ण पापों से (प्रमुच्यते) मुक्त हो जाता है वही व्यक्ति पापों के विषय में विस्तत वर्णन के साथ कहता है अर्थात् वही संष्टि ज्ञान व कर्मों का सही वर्णन करता है अर्थात् अज्ञान से पूर्ण रूप से मुक्त कर देता है। (3)

अध्याय 10 का श्लोक 4.5

बुद्धिर्ज्ञानमसम्मोहः क्षमा सत्यं दमः शमः।
सुखं दुःखं भवोऽभावो भयं चाभयमेव च ।४।

अहिंसा समता तुष्टिस्तपो दानं यशोऽयशः।
भवन्ति भावा भूतानां मत्त एव पृथग्विधाः।५।

बुद्धिः, ज्ञानम्, असम्मोहः, क्षमा, सत्यम्, दमः, शमः,
सुखम्, दुःखम्, भवः, अभावः, भयम्, च, अभयम्, एव, च।।
अहिंसा, समता, तुष्टिः, तपः, दानम्, यशः, अयशः,
भवन्ति, भावाः, भूतानाम्, मत्तः, एव, पथग्विधाः।।4, 5।।

अनुवाद : (बुद्धिः) निश्चय करनेकी शक्ति (ज्ञानम्) यथार्थ ज्ञान (असम्मोहः) असंमूढता अर्थात् अज्ञान रूप मोह से रहित (क्षमा) क्षमा (सत्यम्) सत्य (दमः) इन्द्रियोंका वशमें करना, (शमः) मनका निग्रह (एव) तथा (सुखम्,दुःखम्) सुख-दुःख (भवः, अभावः) उत्पति प्रलय (च) और (भयम्, अभयम्) भय-अभय (च) तथा (अहिंसा) अहिंसा (समता) समता (तुष्टिः) संतोष (तपः) तप (दानम्) दान (यशः) कीर्ति और (अयशः) अपकीर्ति (भूतानाम्) प्राणियोंके (पथग्विधाः) नाना प्रकारके (भावाः) भाव (मतः) नियमानुसार (एव) ही (भवन्ति) होते हैं। (5)

अध्याय 10 का श्लोक 6

महर्षयः सप्त पूर्वे चत्वारो मनवस्तथा।
मद्भावा मानसा जाता येषां लोक इमाः प्रजाः। ६।

महर्षयः, सप्त, पूर्वे, चत्वारः, मनवः, तथा,
मद्भावाः, मानसाः, जाताः, येषाम्, लोके,इमाः,प्रजाः।।6।।

अनुवाद : (सप्त) सात (महर्षयः) महर्षिजन (चत्वारः) चार उनसे भी (पूर्वे) पूर्व होनेवाले सनकादि (तथा) तथा (मनवः) स्वायम्भुव आदि चौदह मनु ये (मद्भावाः) मुझमें भाववाले सब के सब (मानसाः) मेरे संकल्पसे (जाताः) उत्पन्न हुए हैं (येषाम्) जिनकी (लोके) संसारमें (इमाः) यह (प्रजाः) सम्पूर्ण प्रजा है। (6)

अध्याय 10 का श्लोक 7

एतां विभूतिं योगं च मम यो वेत्ति तत्त्वतः।
सोऽविकम्पेन योगेन युज्यते नात्र संशयः।७।

एताम्, विभूतिम्, योगम्, च, मम, यः, वेत्ति, तत्त्वतः,
सः, अविकम्पेन, योगेन, युज्यते, न, अत्र, संशयः।।7।।

अनुवाद : (यः) जो प्राणी (मम) मेरी (एताम्) इस प्रकार (विभूतिम्) विभूतिको (च) और (योगम्) योगशक्तिको (तत्त्वतः) तत्वसे (वेत्ति) जानता है (सः) वह (अविकम्पेन) निश्चल (योगेन) भक्तियोगसे (युज्यते) युक्त हो जाता है (अत्र) इसमें (संशयः) संशय (न) नहीं है। (7)

अध्याय 10 का श्लोक 8

अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते।
इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भावसमन्विताः। ८ ।

अहम्, सर्वस्य, प्रभवः, मत्तः, सर्वम्, प्रवर्तते,
इति, मत्वा, भजन्ते, माम्, बुधाः, भावसमन्विताः।।8।।

अनुवाद : (अहम्) मैं ही (सर्वस्य) सबका (प्रभवः) उत्पतिका कारण हूँ (मतः) मेरे ज्ञान अनुसार (सर्वम्) सब जगत (प्रवर्तते) चेष्टा करता है (इति) इस प्रकार (मत्वा) समझकर (भावसमन्विताः) श्रद्धा और भक्तिसे युक्त (बुधाः) ज्ञानी भक्तजन जिनको तत्वदर्शी संत नहीं मिला वे (माम्) मुझे ही (भजन्ते) निरन्तर भजते हैं। (8)

अध्याय 10 का श्लोक 9

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च। ९ ।

मच्चित्ताः, मद्गतप्राणाः, बोधयन्तः, परस्परम्,
कथयन्तः, च, माम्, नित्यम्, तुष्यन्ति, च, रमन्ति, च।।9।।

अनुवाद : (मद्गतप्राणाः) मेरे पर आधारित प्राणी (बोधयन्तः) इसीको जानने वाले (च) और (मच्चित्ताः) मेरे में लीन मन वाले (परस्परम्) आपसमें (कथयन्तः) विचार विमर्श करते हुए (च) और (नित्यम्) नित्य (तुष्यन्ति) संतुष्ट होते हैं (च) तथा (माम्) मुझमें (रमन्ति) लीन रहते हैं। (9)

अध्याय 10 का श्लोक 10

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते। १०।

तेषाम्, सततयुक्तानाम्, भजताम्, प्रीतिपूर्वकम्,
ददामि, बुद्धियोगम्, तम्, येन, माम्, उपयान्ति, ते।।10।।

अनुवाद : (तेषाम्) उन (सततयुक्तानाम्) निरन्तर ज्ञान पर विचार विमर्श में लगे हुओं तथा (प्रीतिपूर्वकम्) प्रेमपूर्वक (भजताम्) भजनेवालों को (तम्) उसी सत्र का (बुद्धियोगम्) ज्ञान योग (ददामि) देता हूँ (येन) जिससे (ते) वे (माम्) मुझको (उपयान्ति) प्राप्त होते हैं। (10)

अध्याय 10 का श्लोक 11

तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता। ११।

तेषाम्, एव, अनुकम्पार्थम्, अहम्, अज्ञानजम्, तमः,
नाशयामि, आत्मभावस्थः, ज्ञानदीपेन, भास्वता।।11।।

अनुवाद : (अहम्) मैं (एव) ही (तेषाम्) उनके ऊपर (अनुकम्पार्थम्) कृपा करनेके लिये (अज्ञानजम्) अज्ञानसे उत्पन्न (तमः) अन्धकारको (नाशयामि) नष्ट करता हूँ। (आत्मभावस्थः) प्रेतवत् प्रवेश करके आत्मा की तरह शरीर में स्थापित होकर जैसे जीवात्मा बोलती है। उसी भाव से अर्थात् आत्म भाव से आत्मा में स्थित होकर (ज्ञानदीपेन) ज्ञानरूप दीपक (भास्वता) प्रकाशमय करता हूँ। (11)

अध्याय 10 का श्लोक 12,13 (अर्जुन उवाच)

परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान्।
पुरुषं शाश्वतं दिव्यमादिदेवमजं विभुम्। १२।

आहुस्त्वामृषयः सर्वे देवर्षिर्नारदस्तथा।
असितो देवलो व्यासः स्वयं चैव ब्रवीषि मे।१३।

परम्, ब्रह्म परम्, धाम, पवित्रम्, परमम्, भवान्,
पुरुषम्, शाश्वतम्, दिव्यम्, आदिदेवम्, अजम्, विभुम्,
आहुः, त्वाम्, ऋषयः, सर्वे, देवर्षिः, नारदः, तथा,
असितः, देवलः, व्यासः, स्वयम्, च, एव, ब्रवीषि, मे।।12, 13।।

अनुवाद : (भवान्) आप (परम्) परम (ब्रह्म) ब्रह्म (परम्) परम (धाम) धाम और (परमम्) परम (पवित्रम्) पवित्र हैं क्योंकि (त्वाम्) आपको (सर्वे) सब (ऋषयः) ऋषिगण (शाश्वतम्) सनातन (दिव्यम्) दिव्य (पुरुषम्) पुरुष एवं (आदिदेवम्) देवोंका भी आदिदेव (अजम्) अजन्मा और (विभुम्) सर्वव्यापी (आहुः) कहते हैं (तथा) वैसे ही (देवर्षिः) देवर्षि (नारदः) नारद तथा (असितः) असित और (देवलः) देवल ऋषि तथा (व्यासः) महर्षि व्यास भी कहते हैं (च) और (स्वयम्) स्वयं आप (एव)ही (मे) मेरे लिए (ब्रवीषि) कहते हैं। (12,13)

अध्याय 10 का श्लोक 14

सर्वमेतदृतं मन्ये यन्मां वदसि केशव।
न हि ते भगवन्व्यक्तिं विदुर्देवा न दानवाः।१४।

सर्वम्, एतत्, ऋतम्, मन्ये, यत्, माम्, वदसि, केशव,
न, हि, ते, भगवन्, व्यक्तिम्, विदुः, देवाः, न, दानवाः।।14।।

अनुवाद : (केशव) हे केशव! (यत्) जो कुछ भी (माम्) मुझको (वदसि) आप कहते हैं (एतत्) इस (सर्वम्) सबको मैं (ऋतम्) सत्य (मन्ये) मानता हूँ। (भगवन्) हे भगवन्! (ते) आपके (व्यक्तिम्) मनुष्य जैसे साकार स्वरूपको (न) न तो (दानवाः) दानव (विदुः) जानते हैं और (न) न (देवाः) देवता (हि) ही। (14)

अध्याय 10 का श्लोक 15

स्वयमेवात्मनात्मानं वेत्थ त्वं पुरुषोत्तम।
भूतभावन भूतेश देवदेव जगत्पते।१५।

स्वयम्, एव, आत्मना, आत्मानम्, वेत्थ, त्वम्,
पुरुषोत्तम, भूतभावन, भूतेश, देवदेव, जगत्पते।।15।।

अनुवाद : (भूतभावन) हे प्राणियों को उत्पन्न करनेवाले! (भूतेश) हे प्राणियों के प्रभु! (देवदेव) हे देवोंके देव! (जगत्पते) हे जगत्के स्वामी! (पुरुषोत्तम) हे पुरुषोतम! (त्वम्) आप (स्वयम्) स्वयं (एव) ही (आत्मना) अपनेसे (आत्मानम्) अपनेको (वेत्थ) जानते हैं। (15)

अध्याय 10 का श्लोक 16

वक्तुमर्हस्यशेषेण दिव्या ह्यात्मविभूतयः।
याभिर्विभूतिभिर्लोकानिमांस्त्वं व्याप्य तिष्ठसि। १६।

वक्तुम्, अर्हसि, अशेषेण, दिव्याः, हि, आत्मविभूतयः,
याभिः, विभूतिभिः, लोकान्, इमान्,त्वम्, व्याप्य, तिष्ठसि।।16।।

अनुवाद : (हि) क्योंकि (त्वम्) आप ही उन (दिव्याः आत्मविभूतयः) अपनी दिव्य विभूतियोंको

(अशेषेण) सम्पूर्णतासे (वक्तुम्) कहनेमें (अर्हसि) समर्थ हैं (याभिः) जिन (विभूतिभिः) विभूतियोंके द्वारा आप (इमान्) इन सब (लोकान्) लोकोंको (व्याप्य) व्याप्त करके (तिष्ठसि) स्थित हैं। (16)

अध्याय 10 का श्लोक 17

कथं विद्यामहं योगिंस्त्वां सदा परिचिन्तयन्।
केषु केषु च भावेषु चिन्त्योऽसि भगवन्मया। १७।

कथम्, विद्याम्, अहम्, योगिन्, त्वाम्, सदा, परिचिन्तयन्,
केषु, केषु, च, भावेषु, चिन्त्यः, असि, भगवन्, मया।।17।।

अनुवाद : (योगिन्) हे योगेश्वर! (अहम्) मैं (कथम्) किस प्रकार (सदा) निरन्तर (परिचिन्तयन्) चिन्तन करता हुआ (त्वाम्) आपको (विद्याम्) जानूँ (च) और (भगवन्) हे भगवन्! आप (केषु, केषु) किन-किन (भावेषु) भावोंमें (मया) मेरे द्वारा (चिन्त्यः) चिन्तन करनेयोग्य (असि) हैं।(17)

अध्याय 10 का श्लोक 18

विस्तरेणात्मनो योगं विभूतिं च जनार्दन।
भूयः कथय तृप्तिर्हि शृण्वतो नास्ति मेऽमृतम्। १८।

विस्तरेण, आत्मनः, योगम्, विभूतिम्, च, जनार्दन,
भूयः, कथय, तप्तिः, हि, श्रण्वतः, न, अस्ति, मे, अमतम्।।18।।

अनुवाद : (जनार्दन) हे जनार्दन! (आत्मनः) अपनी (योगम्) योगशक्तिको (च) और (विभूतिम्) विभूतिको (भूयः) फिर भी (विस्तरेण) विस्तारपूर्वक (कथय) कहिये (हि) क्योंकि आपके (अमतम्) अमतमय वचनोंको (श्रण्वतः) सुनते हुए (मे) मेरी (तप्तिः) तप्ति (न) नहीं होती अर्थात् (अस्ति) सुननेकी उत्कण्ठा बनी ही रहती है। (18)

अध्याय 10 का श्लोक 19 (भगवान उवाच)

हन्त ते कथयिष्यामि दिव्या ह्यात्मविभूतयः।
प्राधान्यतः कुरुश्रेष्ठ नास्त्यन्तो विस्तरस्य मे। १९।

हन्त, ते, कथयिष्यामि, दिव्याः, हि, आत्मविभूतयः,
प्राधान्यतः, कुरुश्रेष्ठ, न, अस्ति, अन्तः, विस्तरस्य, मे।।19।।

अनुवाद : (कुरुश्रेष्ठ) हे कुरुश्रेष्ठ! (हन्त) अब मैं जो (दिव्याःआत्मविभूतयः) मेरी दिव्य विभूतियाँ हैं (ते) तेरे लिये (प्राधान्यतः) प्रधानतासे (कथयिष्यामि) कहूँगा (हि) क्योंकि (मे) मेरे (विस्तरस्य) विस्तारका (अन्तः) अन्त (न) नहीं (अस्ति) है। (19)

अध्याय 10 का श्लोक 20

अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः।
अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एव च। २०।

अहम्, आत्मा, गुडाकेश, सर्वभूताशयस्थितः,
अहम्, आदिः, च, मध्यम्, च, भूतानाम्, अन्तः, एव, च।।20।।

अनुवाद : (गुडाकेश) हे अर्जुन! (अहम्) मैं (सर्वभूताशयस्थितः) सब प्राणियों में स्थित (आत्मा) आत्मा हूँ अर्थात् आत्मा काल इशारे पर नाचती है इसलिए कहा है (च) तथा (भूतानाम्)

सम्पूर्ण प्राणियों का (आदिः) आदि, (मध्यम्) मध्य (च) और (अन्तः) अन्त (च) भी (अहम्) मैं (एव) ही हूँ। (20)

अध्याय 10 का श्लोक 21

आदित्यानामहं विष्णुर्ज्योतिषां रविरंशुमान्।
मरीचिर्मरुतामस्मि नक्षत्राणामहं शशी। २१।

आदित्यानाम्, अहम्, विष्णुः, ज्योतिषाम्, रविः, अंशुमान्,
मरीचिः, मरुताम्, अस्मि, नक्षत्राणाम्, अहम्, शशी।।21।।

अनुवाद : (अहम्) मैं (आदित्यानाम्) अदितिके बारह पुत्रोंमें (विष्णुः) विष्णु और (ज्योतिषाम्) ज्योतियोंमें (अंशुमान्) किरणोंवाला (रविः) सूर्य (अस्मि) हूँ तथा (अहम्) मैं (मरुताम्) उनचास वायुदेवताओंका (मरीचिः) तेज और (नक्षत्राणाम्) नक्षत्रोंका (शशी) अधिपति चन्द्रमा। (21)

अध्याय 10 का श्लोक 22

वेदानां सामवेदोऽस्मि देवानामस्मि वासवः।
इन्द्रियाणां मनश्चास्मि भूतानामस्मि चेतना। २२।

वेदानाम्, सामवेदः, अस्मि, देवानाम्, अस्मि, वासवः,
इन्द्रियाणाम्, मनः, च, अस्मि, भूतानाम्, अस्मि, चेतना।।22।।

अनुवाद : (वेदानाम्) वेदोंमें (सामवेदः) सामवेद (अस्मि) हूँ (देवानाम्) देवोंमें (वासवः) इन्द्र (अस्मि) हूँ, (इन्द्रियाणाम्) इन्द्रियोंमें (मनः) मन (अस्मि) हूँ, (च) और (भूतानाम्) भूतप्राणियोंकी (चेतना) चेतना अर्थात् जीवनीशक्ति (अस्मि) हूँ। (22)

अध्याय 10 का श्लोक 23

रुद्राणां शङ्करश्चास्मि वित्तेशो यक्षरक्षसाम्।
वसूनां पावकश्चास्मि मेरुः शिखरिणामहम्। २३।

रुद्राणाम्, शंकरः, च, अस्मि, वित्तेशः, यक्षरक्षसाम्,
वसूनाम्, पावकः, च, अस्मि, मेरुः, शिखरिणाम्, अहम्।।23।।

अनुवाद : (रुद्राणाम्) एकादश रुद्रोंमें (शंकरः) शंकर (अस्मि) हूँ (च) और (यक्षरक्षसाम्) यक्ष तथा राक्षसोंमें (वित्तेशः) धनका स्वामी कुबेर हूँ (अहम्) मैं (वसूनाम्) आठ वसुओंमें (पावकः) अग्नि (अस्मि) हूँ (च) और (शिखरिणाम्) शिखरवाले पर्वतोंमें (मेरुः) सुमेरु पर्वत। (23)

अध्याय 10 का श्लोक 24

पुरोधसां च मुख्यं मां विद्धि पार्थ बृहस्पतिम्।
सेनानीनामहं स्कन्दः सरसामस्मि सागरः। २४।

पुरोधसाम्, च, मुख्यम्, माम्, विद्धि, पार्थ, बहस्पतिम्,
सेनानीनाम्, अहम्, स्कन्दः, सरसाम्, अस्मि, सागरः।।24।।

अनुवाद : (पुरोधसाम्) पुरोहितोंमें (मुख्यम्) मुखिया (बहस्पतिम्) बहस्पति (माम्) मुझको (विद्धि) जान। (पार्थ) हे पार्थ! (अहम्) मैं (सेनानीनाम्) सेनापतियोंमें (स्कन्दः) स्कन्द (च) और (सरसाम्) जलाशयोंमें (सागरः) समुद्र (अस्मि) हूँ। (24)

अध्याय 10 का श्लोक 25

महर्षीणां भृगुरहं गिरामस्म्येकमक्षरम्।
यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि स्थावराणां हिमालयः। २५।

महर्षीणाम्, भगुः, अहम्, गिराम्, अस्मि, एकम्, अक्षरम्,
यज्ञानाम्, जपयज्ञः, अस्मि, स्थावराणाम्, हिमालयः।।25।।

अनुवाद : (अहम्) मैं (महर्षीणाम्) महर्षियोंमें (भगुः) भगु और (गिराम्) शब्दोंमें (एकम्) एक (अक्षरम्) अक्षर अर्थात् ओंकार (अस्मि) हूँ। (यज्ञानाम्) सब प्रकारके यज्ञोंमें (जपयज्ञः) जपयज्ञ और (स्थावराणाम्) स्थिर रहनेवालोंमें (हिमालयः) हिमालय पहाड़ (अस्मि) हूँ। (25)

अध्याय 10 का श्लोक 26

अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां देवर्षीणां च नारदः।
गन्धर्वाणां चित्ररथः सिद्धानां कपिलो मुनिः। २६।

अश्वत्थः, सर्ववक्षाणाम्, देवर्षीणाम्, च, नारदः,
गन्धर्वाणाम्, चित्ररथः, सिद्धानाम्,कपिलः,मुनिः।।26।।

अनुवाद : (सर्ववक्षाणाम्) सब वक्षोंमें (अश्वत्थः) पीपलका वक्ष (देवर्षीणाम्) देवर्षियोंमें (नारदः) नारद मुनि, (गन्धर्वाणाम्) गन्धर्वोंमें (चित्ररथः) चित्ररथ (च) और (सिद्धानाम्) सिद्धोंमें (कपिलः) कपिल (मुनिः) मुनि। (26)

अध्याय 10 का श्लोक 27

उच्चैःश्रवसमश्वानां विद्धि माममृतोद्भवम्।
ऐरावतं गजेन्द्राणां नराणां च नराधिपम्। २७।

उच्चैः, श्रवसम्, अश्वानाम्, विद्धि, माम्, अमतोद्भवम्,
ऐरावतम्, गजेन्द्राणाम्, नराणाम्, च, नराधिपम्।।27।।

अनुवाद : (अश्वानाम्) घोड़ोंमें (अमतोद्भवम्) अमतके साथ उत्पन्न होनेवाला (उच्चैःश्रवसम्) उच्चैःश्रवा नामक घोड़ा, (गजेन्द्राणाम्) श्रेष्ठ हाथियोंमें (ऐरावतम्) ऐरावत नामक हाथी (च) और (नराणाम्) मनुष्योंमें (नराधिपम्) राजा (माम्) मुझको (विद्धि) जान। (27)

अध्याय 10 का श्लोक 28

आयुधानामहं वज्रं धेनूनामस्मि कामधुक्।
प्रजनश्चास्मि कन्दर्पः सर्पाणामस्मि वासुकिः। २८।

आयुधानाम्, अहम्, वज्रम्, धेनूनाम्, अस्मि, कामधुक्,
प्रजनः, च, अस्मि, कन्दर्पः, सर्पाणाम्, अस्मि, वासुकिः।।28।।

अनुवाद : (अहम्) मैं (आयुधानाम्) शस्त्रोंमें (वज्रम्) वज्र और (धेनूनाम) गौओंमें (कामधुक्) कामधेनु (अस्मि) हूँ। (प्रजनः) शास्त्रोक्त रीतिसे सन्तानकी उत्पतिका हेतु (कन्दर्पः) कामदेव (अस्मि) हूँ (च) और (सर्पाणाम्) सर्पोंमें (वासुकिः) सर्पराज वासुकि (अस्मि) हूँ। (28)

अध्याय 10 का श्लोक 29

अनन्तश्चास्मि नागानां वरुणो यादसामहम्।
पितृणामर्यमा चास्मि यमः संयमतामहम्। २९।

अनन्तः, च, अस्मि, नागानाम्, वरुणः, यादसाम्, अहम्,
पितृणाम्, अर्यमा, च, अस्मि, यमः, संयमताम्, अहम्।।29।।

अनुवाद : (अहम्) मैं (नागानाम्) नागोंमें (अनन्तः) शेषनाग (च) और (यादसाम्) जलचरोंका अधिपति (वरुणः) वरुण देवता (अस्मि) हूँ (च) और (पितृणाम्) पितरोंमें (अर्यमा) अर्यमा नामक पितर तथा (संयमताम्) शासन करनेवालोंमें (यमः) यमराज (अहम्) मैं (अस्मि) हूँ। (29)

अध्याय 10 का श्लोक 30

प्रह्लादश्चास्मि दैत्यानां कालः कलयतामहम्।
मृगाणां च मृगेन्द्रोऽहं वैनतेयश्च पक्षिणाम्। ३०।

प्रहलादः, च, अस्मि, दैत्यानाम्, कालः, कलयताम्, अहम्,
मगाणाम्, च, मगेन्द्रः, अहम्, वैनतेयः, च, पक्षिणाम्।।30।।

अनुवाद : (अहम्) मैं (दैत्यानाम्) दैत्योंमें (प्रहलादः) प्रहलाद (च) और (कलयताम्) गणना करनेवालोंका (कालः) समय (अस्मि) हूँ (च) तथा (मगाणाम्) पशुओंमें (मगेन्द्रः) मगराज सिंह (च) और (पक्षिणाम्) पक्षियोंमें (अहम्) मैं (वैनतेयः) गरुड़। (30)

अध्याय 10 का श्लोक 31

पवनः पवतामस्मि रामः शस्त्रभृतामहम्।
झषाणां मकरश्चास्मि स्त्रोतसामस्मि जाह्नवी। ३१।

पवनः, पवताम्, अस्मि, रामः, शस्त्रभताम्, अहम्,
झषाणाम्, मकरः, च, अस्मि, स्त्रोतसाम्, अस्मि, जाह्नवी।।31।।

अनुवाद : (अहम्) मैं (पवताम्) पवित्र करनेवालोंमें (पवनः) वायु और (शस्त्रभताम्) शस्त्रधारियोंमें (रामः) श्रीराम (अस्मि) हूँ तथा (झषाणाम्) मछलियोंमें (मकरः) मगर (अस्मि) हूँ (च) और (स्त्रोतसाम्) नदियोंमें (जाह्नवी) गंगा (अस्मि) हूँ। (31)

अध्याय 10 का श्लोक 32

सर्गाणामादिरन्तश्च मध्यं चैवाहमर्जुन।
अध्यात्मविद्या विद्यानां वादः प्रवदतामहम्। ३२।

सर्गाणाम्, आदिः, अन्तः, च, मध्यम्, च, एव, अहम्, अर्जुन,
अध्यात्मविद्या, विद्यानाम्, वादः, प्रवदताम्, अहम्।।32।।

अनुवाद : (अर्जुन) हे अर्जुन! (सर्गाणाम्) सष्टियोंका (आदिः) आदि (च) और (अन्तः) अन्त (च) तथा (मध्यम्) मध्य भी (अहम्) मैं (एव) ही हूँ। (अहम्) मैं (विद्यानाम्) विद्याओंमें (अध्यात्मविद्या) अध्यात्मविद्या अर्थात् ब्रह्मविद्या और (प्रवदताम्) परस्पर विवाद करनेवालोंका (वादः) तत्व-निर्णयके लिये किया जानेवाला वाद हूँ। (32)

अध्याय 10 का श्लोक 33

अक्षराणामकारोऽस्मि द्वन्द्वः सामासिकस्य च।
अहमेवाक्षयः कालो धाताहं विश्वतोमुखः। ३३।

अक्षराणाम्, अकारः, अस्मि, द्वन्द्वः, सामासिकस्य, च,
अहम्, एव, अक्षयः, कालः, धाता, अहम्, विश्वतोमुखः।।33।।

अनुवाद : (अहम्) मैं (अक्षराणाम्) अक्षरोंमें (अकारः) ओंकार हूँ (च) और (सामासिकस्य) समासोंमें (द्वन्द्वः) द्वन्द्व नाम समास (अस्मि) हूँ, (अक्षयः) समाप्त न होने वाला (कालः) काल तथा (विश्वतोमुखः) सब ओर मुखवाला विराट्स्वरूप (धाता) धारण करनेवाला भी (अहम्) मैं (एव) ही।(33)

अध्याय 10 का श्लोक 34

मृत्युः सर्वहरश्चाहमुद्भवश्च भविष्यताम्।
कीर्तिः श्रीर्वाक्च नारीणां स्मृतिर्मेधा धृतिः क्षमा। ३४।

मत्युः, सर्वहरः, च, अहम्, उद्भवः, च, भविष्यताम्,
कीर्तिः, श्रीः, वाक्, च, नारीणाम्, स्मतिः, मेधा, धतिः, क्षमा।।34।।

अनुवाद : (अहम्) मैं (सर्वहरः) सबका नाश करनेवाला (मत्युः) मत्यु (च) और (भविष्यताम्) उत्पन्न होनेवालोंका (उद्भवः) उत्पत्ति-हेतु हूँ (च) तथा (नारीणाम्) स्त्रियोंमें (कीर्तिः) कीर्ति, (श्रीः) श्री, (वाक्) वाक्, (स्मतिः) स्मति, (मेधा) मेधा, (धतिः) धति (च) और (क्षमा) क्षमा हूँ।(34)

अध्याय 10 का श्लोक 35

बृहत्साम तथा साम्नां गायत्री छन्दसामहम्।
मासानां मार्गशीर्षोऽहमृतूनां कुसुमाकरः। ३५।

बहत्साम, तथा, साम्नाम्, गायत्री, छन्दसाम्, अहम्,
मासानाम्, मार्गशीर्षः, अहम्, ऋतूनाम्, कुसुमाकरः।।35।।

अनुवाद : (तथा) तथा (साम्नाम्) गायन करनेयोग्य श्रुतियोंमें (अहम्) मैं (बहत्साम) बहत्साम और (छन्दसाम्) छन्दोंमें (गायत्री) गायत्री छन्द हूँ तथा (मासानाम्) महीनोंमें (मार्गशीर्षः) मार्गशीर्ष और (ऋतूनाम्) ऋतुओंमें (कुसुमाकरः) वसन्त (अहम्) मैं। (35)

अध्याय 10 का श्लोक 36

द्यूतं छलयतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम्।
जयोऽस्मि व्यवसायोऽस्मि सत्त्वं सत्त्ववतामहम्। ३६।

द्यूतम्, छलयताम्, अस्मि, तेजः, तेजस्विनाम्, अहम्,
जयः, अस्मि, व्यवसायः, अस्मि, सत्वम्, सत्ववताम्, अहम्।।36।।

अनुवाद : (अहम्) मैं (छलयताम्) छल करनेवालोंमें (द्यूतम्) जूआ और (तेजस्विनाम्) प्रभावशाली पुरुषोंका (तेजः) प्रभाव (अस्मि) हूँ। (अहम्) मैं (जयः) विजय (अस्मि) हूँ। (व्यवसायः) निश्चय और (सत्त्ववताम्) सात्त्विक पुरुषोंका (सत्त्वम्) सात्त्विक भाव (अस्मि) हूँ। (36)

अध्याय 10 का श्लोक 37

वृष्णीनां वासुदेवोऽस्मि पाण्डवानां धनञ्जयः।
मुनीनामप्यहं व्यासः कवीनामुशना कविः। ३७।

वष्णीनाम्, वासुदेवः, अस्मि, पाण्डवानाम्, धन जयः,
मुनीनाम्, अपि, अहम्, व्यासः, कवीनाम्, उशना, कविः।।37।।

अनुवाद : (वष्णीनाम्) वष्णिवंशियोंमें (वासुदेवः) वासुदेव अर्थात् मैं स्वयं तेरा सखा (पाण्डवानाम्) पाण्डवोंमें (धन जयः) धन जय अर्थात् तू, (मुनीनाम्) मुनियोंमें (व्यासः) वेदव्यास और (कवीनाम्) कवियोंमें (उशना) शुक्राचार्य (कविः) कवि (अपि) भी (अहम्) मैं ही (अस्मि)

हूँ।(37)

अध्याय 10 का श्लोक 38

दण्डो दमयतामस्मि नीतिरस्मि जिगीषताम्।
मौनं चैवास्मि गुह्यानां ज्ञानं ज्ञानवतामहम्। ३८।

दण्डः, दमयताम्, अस्मि, नीतिः, अस्मि, जिगीषताम्,
मौनम्, च, एव, अस्मि, गुह्यानाम्, ज्ञानम्, ज्ञानवताम्, अहम्।।38।।

अनुवाद : (दमयताम्) दमन करनेवालोंका (दण्डः) दण्ड अर्थात् दमन करनेकी शक्ति (अस्मि) हूँ, (जिगीषताम्) जीतनेकी इच्छावालोंकी (नीतिः) नीति (अस्मि) हूँ, (गुह्यानाम्) गुप्त रखने योग्य भावोंका रक्षक (मौनम्) मौन (अस्मि) हूँ (च) और (ज्ञानवताम्) ज्ञानवानोंका (ज्ञानम्) ज्ञान (अहम्) मैं (एव) ही। (38)

अध्याय 10 का श्लोक 39

यच्चापि सर्वभूतानां बीजं तदहमर्जुन।
न तदस्ति विना यत्स्यान्मया भूतं चराचरम्। ३९।

यत्, च, अपि, सर्वभूतानाम्, बीजम्, तत्, अहम्, अर्जुन,
न, तत्, अस्ति, विना, यत्, स्यात्, मया भूतम्, चराचरम्।।39।।

अनुवाद : (च) और (अर्जुन) हे अर्जुन! (यत्) जो (सर्वभूतानाम्) सब प्राणियोंकी (बीजम्) उत्पत्तिका कारण है, (तत्) वह (अपि) भी (अहम्) मैं ही हूँ क्योंकि ऐसा (तत्) वह (चराचरम्) चर और अचर कोई भी (भूतम्) प्राणी (न) नहीं (अस्ति) है, (यत्) जो (मया) मुझसे (विना) रहित (स्यात्) हो। (39)

अध्याय 10 का श्लोक 40

नान्तोऽस्ति मम दिव्यानां विभूतीनां परन्तप।
एष तूद्देशतः प्रोक्तो विभूतेर्विस्तरो मया। ४०।

न, अन्तः, अस्ति, मम, दिव्यानाम्, विभूतीनाम्, परन्तप,
एषः, तु, उद्देशतः, प्रोक्तः, विभूतेः, विस्तरः, मया।।40।।

अनुवाद : (परन्तप) हे परंतप! (मम) मेरी (दिव्यानाम्) दिव्य (विभूतीनाम्) विभूतियोंका (अन्तः) अन्त (न) नहीं (अस्ति) है (मया) मैंने अपनी (विभूतेः) विभूतियोंका (एषः) यह (विस्तरः) विस्तार (तु) तो तेरे लिये (उद्देशतः) एकदेशसे अर्थात् संक्षेपसे (प्रोक्तः) कहा है। (40)

अध्याय 10 का श्लोक 41

यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसम्भवम्। ४१।

यत्, यत्, विभूतिमत्, सत्वम्, श्रीमत्, ऊर्जितम्, एव, वा,
तत्, तत्, एव अवगच्छ, त्वम्, मम्, तेजों शसम्भवम्।।41।।

अनुवाद : (यत्) जो (यत्) जो (एव) भी (विभूतिमत्) विभूतियुक्त अर्थात् ऐश्वर्ययुक्त (श्रीमत्) उच्च नियमित विचार (वा) और (ऊर्जितम्) शक्तियुक्त (सत्वम्) वस्तु है (तत्) उस (तत्) उसको (त्वम्) तू (मम्) मेरे (तेजों श सम्भवम् एव) तेजके अंशकी ही अभिव्यक्ति (अवगच्छ) जान। (41)

अध्याय 10 का श्लोक 42

अथवा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन।
विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्। ४२।

अथवा, बहुना, एतेन, किम्, ज्ञातेन्, तव, अर्जुन,
विष्टभ्य, अहम्, इदम्, कत्स्नम्, एकांशेन, स्थितः, जगत्।।42।।

अनुवाद : (अथवा) अथवा (अर्जुन) हे अर्जुन! (एतेन) इसे (बहुना) बहुत (ज्ञातेन) जाननेसे (तव) तेरा (किम्) क्या प्रयोजन है (अहम्) मैं (इदम्) इस (कत्स्नम्) सम्पूर्ण (जगत्) जगतको अपनी योगशक्तिके (एकांशेन) एक अंशमात्रसे (विष्टभ्य) धारण करके (स्थितः) स्थित हूँ।(41)

(इति अध्याय दशवाँ)

❑❑❑

ग्यारहवां अध्याय

।।दिव्य सारांश।।

।। अर्जुन द्वारा भगवान काल की वास्तविकता जानने की प्रार्थना।।

अध्याय 11 के श्लोक 1 से 4 में अर्जुन ने पूछा कि जो आपने नाना प्रकार से अपनी स्थिति बताई है, यह मैं ठीक से नहीं समझ पाया, क्योंकि मेरी बुद्धि तुच्छ है। मैं जो आपको अपना साला मानता था वह मोह भी नष्ट हो गया है, क्योंकि अर्जुन डर गया था कि यह कोई और बला है। इसीलिए अर्जुन ने कहा आपकी महिमा अनन्त है। कृप्या आप वास्तव में क्या हो? आप अपना वास्तविक अविनाशी रूप दिखाने की कृप्या करें।

।। अर्जुन को भगवान (काल) द्वारा दिव्य दृष्टि प्रदान करना तथा अपना वास्तविक काल रूप दिखाना।।

अध्याय 11 के श्लोक 5 से 8 तक में भगवान (काल) कह रहा है कि वह रूप तू (अर्जुन) इन आँखों से नहीं देख सकता। इसलिए तुझे दिव्य दृष्टि देता हूँ। अब देख। यह कहकर काल ब्रह्म ने अपना वास्तविक काल रूप दिखाया तथा बताया कि देख जहाँ-2 जिसका स्थान मेरे शरीर में है।

विचार करें :- जैसे प्रत्येक टेलीविजन (टी.वी.) में कार्यक्रम देखें जा सकते हैं, ऐसे ही एक ब्रह्मण्ड का सर्व विवरण प्रत्येक मानव-देव आदि शरीरों में देखा जा सकता है।

।। संजय द्वारा काल रूप का वर्णन।।

अध्याय 11 के श्लोक 9 से 14 में वर्णन है कि संजय द्वारा विश्वरूप (काल रूप) का वर्णन :- कई नेत्रों, कई मुखों वाला तथा शस्त्रों सहित कई हाथों वाला असीम काल (विराट) रूप अर्जुन ने देखा। हजारों सूर्य एक साथ उदय हो जाएँ ऐसे तेजोमय रूप में अर्जुन ने शरीर को देखा। यह सब देखते हुए काल देव से आश्चर्य चकित तथा हर्षित होते हुए बोला।

।। अर्जुन द्वारा काल रूप का आँखों देखा हाल बताना।।

अध्याय 11 के श्लोक 15-30 का सारांश :-

अध्याय 11 के श्लोक 21 में अर्जुन आँखों देखा हाल कह रहा है कि वे ही देवताओं के समूह आपमें भयभीत होकर आपके मुख में प्रवेश कर रहे हैं। कुछ भयभीत हो कर हाथ जोड़े आपके गुणों का उच्चारण (कीर्तन) करते हैं, ऋषियों-सिद्धों का समुदाय कल्याण हो! ऐसा कहकर उत्तम-2 स्त्रोतों द्वारा आपकी स्तुति करते हैं अर्थात् आप अपने उपासको को भी खा रहे हो। अध्याय 11 के श्लोक 15 से 30 तक में अर्जुन कह रहा है कि हे देव! आपके शरीर में सम्पूर्ण देवताओं तथा प्राणियों के समूह को तथा कमल पर ब्रह्मा को तथा सम्पूर्ण ऋषियों को देख रहा हूँ। और आपको कई भुजाओं, पेट, मुख और नेत्रों से युक्त देखता हूँ। परंतु इसका कोई वार-पार नहीं देख रहा हूँ तथा आपके इस भंयकर रूप को देख रहा हूँ।

अन्य आपको हैरान होकर देख रहे हैं तथा व्याकुल हो रहे हैं। मैं (अर्जुन) भी व्याकुल हो रहा हूँ। चूंकि हे विष्णो! आपके भयंकर रूप को देखकर मैं बहुत डर गया हूँ। धीरज व शांति नहीं पा रहा

हूँ तथा वे सब धृतराष्ट्र के पुत्र व राजाओं का समुदाय आपमें प्रवेश कर रहा है। कई तो बहुत वेग (स्पीड) से आपके मुख में जा रहे हैं तथा कुछ आपकी दाढ़ो (जाड़ों) द्वारा कुचले जा रहे हैं, कुछ दाँतों में लगे हुए दिखाई दे रहे हैं। और जैसे नदियाँ समुद्र में गिर रही हों ऐसे मनुष्य लोक (पृथ्वी लोक) के वीर (योद्धा) भी आपमें प्रवेश कर रहे हैं। तथा जैसे कीट-पतंग अग्नि पर गिरते हैं ऐसे सब प्राणी (देव- ऋषि-सिद्ध- आम जीव सहित) आपके मुख में प्रवेश कर रहे हैं और आप सम्पूर्ण लोकों (ब्रह्मा-लोक, विष्णु-लोक, शिव-लोक तथा सर्व चौदह लोकों समेत) को खा (ग्रास) रहे हो और बार-2 होंठ चाट रहे हो। आपके शरीर की अग्नि सम्पूर्ण जगत को जला रही है।

।। अर्जुन पूछता है कि आप वास्तव में कौन हो?।।

अध्याय 11 के श्लोक 31 में अर्जुन पूछता है कि हे उग्ररूप वाले देवश्रेष्ठ! आपको नमस्कार हो। कृप्या मुझे बताईये कि वास्तव में आप कौन हैं? मैं विशेष रूप से जानना चाहता हूँ।

ध्यान रहे कि श्री कृष्ण की बहन सुभद्रा का विवाह अर्जुन से हुआ था। इस नाते से श्री कृष्ण अर्जुन के साले थे। अर्जुन पूछ रहा है कि आप कौन हो? विचारणीय विषय यह भी है कि क्या व्यक्ति अपने साले से पूछता है कि आप कौन हो? इससे सिद्ध है कि काल ब्रह्म ने विराट रूप दिखाया था। श्री कृष्ण को कुछ समय अन्तर्ध्यान कर दिया था। इससे यह भी सिद्ध हुआ कि गीता का ज्ञान काल ने कहा है जो गीता अध्याय 11 श्लोक 32 में स्वयं कह रहा है कि मैं काल हूँ।

।। गीता ज्ञान दाता स्वयं को काल बताता है।।

अध्याय 11 के श्लोक 32-46 का सारांश :-

अध्याय 11 के श्लोक 32 में काल भगवान कह रहा है कि मैं लोकों का नाश करने वाला बढ़ा हुआ काल हूँ। इस समय लोकों को नष्ट करने के लिए आया (प्रकट हुआ) हूँ। जो प्रतिपक्षियों की सेना में स्थित योद्धा लोग हैं वे सब तेरे बिना भी नहीं रहेंगे अर्थात् मैं खा जाऊँगा। ❖ अध्याय 11 के श्लोक 33,34 में कहा है कि अतःएव तू उठ, यश प्राप्त कर, शत्रुओं को जीत कर धन-धान्य से सम्पन्न राज्य को भोग। ये सब पहले ही मेरे द्वारा मारे हुए हैं। अर्जुन (सव्यसाचिन - बाँए हाथ से भी बाण चलाने का अभ्यास होने से ''सव्यसाची'' नाम अर्जुन का पड़ा) तू केवल निमित्त मात्र बन जा। तू वैरियों को जीतेगा। युद्ध कर। ❖ अध्याय 11 के श्लोक 35 में संजय ने कहा कांपता हुआ अर्जुन भयभीत हो कर प्रणाम करता हुआ भगवान कृष्ण (क्योंकि अर्जुन मान रहा था यह कृष्ण है परंतु वह तो काल था) के प्रति गद्-गद् वाणी बोला ❖ अध्याय 11 श्लोक 36 में - हे अन्तर्यामी! भयभीत राक्षस दिशाओं में भाग रहे हैं। सिद्धगणों का समूह नमस्कार कर रहा है। ❖ अध्याय 11 के श्लोक 37,38 में अर्जुन कह रहा है कि हे ब्रह्मा के भी आदिकर्त्ता महान आत्मा! आपको क्यों न नमस्कार करें? हे जगन्निवास! आप सत्-असत् उनसे भी परे अक्षर वह आप हैं। (डरता अर्जुन काल को सर्वस्व कह रहा है) ❖ अध्याय 11 के श्लोक 39 में अर्जुन कह रहा है कि आप ही ब्रह्मा के पिता हैं (अर्थात् काल ही ब्रह्मा का पिता हैं) आपको बार-2 नमस्कार हो। ❖ अध्याय 11 के श्लोक 40 से 44 तक में अर्जुन कह रहा है कि मेरे से भूल हो गई कि मैंने आपको सीधा नाम से हे कृष्ण, हे यादव, हे सखे (साथी) अर्थात् साला इस प्रकार हठात् कहा तथा आम साथियों के सामने ऐसा कह कर अपमानित किया। मैं क्षमा चाहता हूँ। आप सबसे बड़े गुरु हैं। आपसे बड़ा कोई नहीं है। मैं आप ईश्वर को प्रणाम तथा प्रार्थना करता हूँ। आप क्षमा करो। आप हमारे सर्व अपराध सहन करने वाले

हो। यह सब वचन अर्जुन विशेष भयभीत हो कर कह रहा है। ❖ अध्याय 11 के श्लोक 45 में अर्जुन कह रहा है कि पहले न देखे हुए आपके इस विराट (काल) रूप को देख कर मैं (अर्जुन) हर्षित हो रहा हूँ और मेरा मन भय से अति व्याकुल भी हो रहा है। आप उस देव रूप को मुझे दिखाईये। हे देवेश! हे जगन्निवास! प्रसन्न होईए। ❖ अध्याय 11 के श्लोक 46 में अर्जुन कह रहा है कि मैं वैसे ही आपको मुकुट धारण किए हुए, गदा चक्र हाथ में लिए हुए देखना चाहता हूँ। हे विश्वरूप! सहस्राबाहो (हजार भुजा वाले) उसी चतुर्भुज रूप में प्रकट होईए।

इससे यह भी सिद्ध हुआ कि गीता ज्ञान दाता हजार भुजाओं वाला काल ब्रह्म है। श्री कष्ण तो श्री विष्णु जी थे जिनकी चार भुजा हैं। चार भुजा वाला दो भुजा बना सकता है, परंतु हजार नहीं बना सकता। हजार भुजा वाला भगवान चार भुजा, दो भुजा बना सकता है।

।। ब्रह्म (काल) भगवान की प्राप्ति अति असंभव।।

अध्याय 11 के श्लोक 47-48 का सारांश :-

❖ अध्याय 11 के श्लोक 47 में काल भगवान ने कहा है कि हे अर्जुन! मैंने प्रसन्न होकर यह सीमा रहित विराट (आदि काल) रूप आपको दिखाया है, जिसे तेरे अतिरिक्त पहले किसी ने नहीं देखा था।

48 में कहा है कि हे अर्जुन! मनुष्य लोक में इस प्रकार (विश्वरूप वाला) मैं न वेदों के अध्ययन से अर्थात् वेदों में वर्णित विधि से साधना करने से, न यज्ञों से, न दान से, न क्रियाओं से और न उग्र तपों से तेरे अतिरिक्त दूसरे द्वारा देखा जा सकता हूँ। अर्थात् मैं (काल कह रहा है) किसी भी प्रकार की साधना से किसी द्वारा नहीं प्राप्त हो सकता।

विचार करें :- भगवान काल (ब्रह्म) स्पष्ट करता है कि मेरी प्राप्ति असम्भव है। महाभारत में प्रमाण मिलता है कि जब भगवान कष्ण कौरव- पाण्डवों का समझौता करवाने के लिए गए थे तो दुर्योधन उलटा बोला था। तब श्री कष्ण जी ने विराट रूप दिखाया था। फिर यहाँ पर कह रहा है कि अर्जुन तेरे अतिरिक्त किसी ने मेरा यह विराट रूप पहले नहीं देखा। इससे सिद्ध है कि यह रूप काल ने दिखाया था। वह महाभारत में श्री कष्ण जी ने दिखाया था। इसलिए गीता श्री कष्ण जी ने नहीं बोली, यह काल (ब्रह्म) ने बोली थी। दोनों विराट रूपों में बहुत अंतर था और विचार पूर्वक सोचें तो संजय भी विराट रूप को आँखों देख कर धतराष्ट्र को बता रहा है। फिर यह कहना कि तेरे अतिरिक्त किसी के द्वारा नहीं देखा जा सकता। यही सिद्ध करता है कि काल भगवान ने गीता का ज्ञान दिया है न कि श्री कष्ण जी ने।

अध्याय 11 के श्लोक 49 में भगवान कह रहा है कि अर्जुन तू मूर्खों की तरह इस विकराल रूप को देख कर डर मत। भय रहित होकर उसी (चतुर्भुज रूप को) रूप को फिर देख। अध्याय 11 के श्लोक 50 में संजय कह रहा है कि फिर भगवान ने मनुष्य (कष्ण) रूप में हो कर डरे हुए अर्जुन को आश्वासन दिया। ❖ अध्याय 11 के श्लोक 51 में अर्जुन ने कहा है कि हे जनार्दन! आपको पहले चतुर्भुज रूप में फिर अब मनुष्य रूप में देख कर अब स्वाभाविक स्थिति में (भय रहित) हो गया हूँ।

।। चतुर्भुज महाविष्णु रूप में काल के भी दर्शन वेदों, तप, दान यज्ञ आदि से नहीं, केवल अनन्य भक्ति से।।

अध्याय 11 के श्लोक 52,53 में काल ब्रह्म ने कहा है कि यह मेरा जो रूप (चतुर्भुज रूप) देखा इसके दर्शन भी बहुत ही दुर्लभ हैं। देवता भी इस रूप के दर्शन को सदा ही तरसते हैं। यह चतुर्भुज

रूप भी न वेदों में वर्णित विधि से, न तप से, न दान से और न यज्ञ से देखा जा सकता है अर्थात् इस चतुर्भुज रूप का दर्शन अति असम्भव है। क्योंकि काल भगवान ब्रह्म लोक में महाविष्णु रूप में चतुर्भुज रूप में रहता है। वहाँ पर पहुँच कर ही काल को चतुर्भुज रूप में देखा जा सकता है। ब्रह्म लोक में जिस स्थान पर काल (ब्रह्म) तीन गुप्त स्थानों पर महाब्रह्मा-महाविष्णु तथा महाशिव रूप में रहता है वहाँ पर वेदों में वर्णित विधि से नहीं जाया जा सकता। केवल ब्रह्मलोक में बने महास्वर्ग में ही जाया जा सकता है। (अध्याय 9 के श्लोक 20,21 में प्रमाण है) इसलिए कहा है कि मेरे इस चतुर्भुज रूप को भी देखना बहुत दुर्लभ है परंतु यह रूप केवल अनन्य भक्ति अर्थात् केवल एक इष्ट (काल) की साधना से अन्य देवी-देवताओं की तथा ब्रह्मा, विष्णु, शिव (तीनों गुण - रज, सत, तम) की साधना छोड़ केवल ज्योति निरंजन के साधक महा स्वर्ग (ब्रह्मलोक) में काल को चतुर्भुज रूप में ही देख सकते हैं। विराट रूप तो किसी भी साधना से नहीं देखा जा सकता जो काल भगवान का वास्तविक रूप है।

अध्याय 11 के श्लोक 54 में कहा है कि यह मेरा चतुर्भुज रूप भी (जो न वेदों से, न दान से, न तप से, न क्रियाओं से देखा जा सकता है) केवल अनन्य भक्ति से प्राप्त हो सकता है जो मुझे (मेरे महत्व को) तत्व से जानता है। भाव यह है कि अर्जुन तत्व से जान चुका था कि काल भगवान एक प्रबल शक्ति है। इसके अतिरिक्त कहीं ठिकाना नहीं है। सर्व जीवों को यही नचा रहा है। फिर भय युक्त होकर एक विशेष प्रेम वश उसी चतुर्भुज रूप तथा महात्मा (देवरूप चतुर्भुज) रूप को विशेष आस्था से (अनन्य मन से केवल एक भगवान काल में आसक्त होकर) देख रहा था। तब काल भगवान कहता है कि यह मेरा चतुर्भुज (महाविष्णु) रूप भी अनन्य भक्ति से देखा जा सकता है।

गीता ज्ञान दाता प्रभु कह रहा है कि जो साधक मेरी भक्ति अनन्य मन से मेरे बताए मतानुसार करता है वह मुझे इस काल रूप में तथा चतुर्भुज रूप में उस समय देख सकता है जिस समय मैं इन्हें खाता हूँ। ये मेरे में प्रवेश करते हैं। अन्यथा किसी भी क्रिया व जाप-तप-यज्ञ आदि से जो मेरे द्वारा वेदों में बताई है मेरे दर्शन नहीं कर सकता। जैसे गीता अध्याय 11 श्लोक 21 में अर्जुन आँखों देखा हाल बता रहा है कि हे भगवन्! जो ऋषिजन तथा देवता लोग व सिद्धों के समुदाय आप की स्तुति वेद मन्त्रों द्वारा कर रहे हैं आप उन सर्व को खा रहे है। वे आप के इस काल रूप को देख कर भयभीत हो रहे हैं। इसी का प्रमाण यहाँ गीता अध्याय 11 श्लोक 54 में है की मेरा साधक मेरे जाल में रह जाता है। अपनी साधना का वर्णन गीता ज्ञान दाता ने वेदों में ही वर्णन किया है। यजुर्वेद अध्याय 40 मन्त्र 15 तथा वेदों का ज्ञान सारांश रूप में श्री मद्भगवत् गीता है। जिस के अध्याय 8 श्लोक 13 में तथा अध्याय 3 श्लोक 10 से 13 में कहा है कि मेरा एक ओं अक्षर है तथा यज्ञ है जो अनन्य मन से मुझे इष्ट मानकर साधना करता है वह मुझे ही प्राप्त होता है। इसी को अनन्य भक्ति कहा है। इससे मोक्ष नहीं है। न ही काल प्रभु के दर्शन प्राप्ति। केवल मत्यु पश्चात् जब वह काल प्रभु प्रतिदिन एक लाख मानव शरीरधारी प्राणियों को खाता है। उस समय वह कभी विराट रूप में दर्शन देता है। कभी चतुर्भुज रूप में महाविष्णु रूप में। उसी का विवरण इस अध्याय 11 श्लोक 54 में है। ब्रह्म का अनन्य साधक ब्रह्मलोक में इसी काल के महाविष्णु रूप में चतुर्भुज रूप में दर्शन करता है। जिसे देवता भी नहीं देख सकते।

एक टीकाकार ने अनुवाद किया है कि मेरा वही विराट रूप वेदों से, तपों से, दान से, क्रिया से देखा व प्राप्त नहीं किया जा सकता परंतु अनन्य मन से देखा जा सकता है। जो ठीक नहीं है। चूंकि वेदों में वर्णित साधना के अतिरिक्त साधना तो शास्त्रविरूद्ध है जो गीता अध्याय 16 श्लोक 23

में मना किया है तथा विराट रूप का वर्णन तो अध्याय 11 के श्लोक 47,48 में समाप्त हो चुका है। काल भगवान कह रहा है यह मेरा विराट रूप न तो तेरे अतिरिक्त पहले किसी ने देखा तथा न ही तेरे अतिरिक्त किसी के द्वारा भविष्य में देखा जा सकता है। जब अर्जुन ने काल रूप से अति भयभीत हो कर कहा है कि (गीता जी के अध्याय 11 के श्लोक 46,47 में) आप अपना चतुर्भुज रूप गदा-चक्र हाथ में लिए हुए हे विश्वरूप! हे हजार भुजा (सहस्राबाहु) वाले उसी चतुर्भुज रूप से प्रकट होईए। फिर गीता जी के अध्याय 11 के श्लोक 49 में कहा है कि मेरे इस भंयकर रूप से डर मत। फिर से मेरे उसी (विष्णु) शांत रूप को देख। यदि विकराल रूप को फिर से देखने को कहने का क्या तात्पर्य? वह तो अर्जुन देख ही रहा था। फिर गीता जी के अध्याय 11 के श्लोक 50 में कहा है कि यह कह कर वासुदेव भगवान ने वैसे ही अपने महात्मा (देव रूप चतुर्भुज रूप जैसा अर्जुन देखना चाहता था) रूप को दिखाया तथा फिर मनुष्य (कृष्ण) रूप में आकर भगवान ने कहा कि जो यह चतुर्भुज रूप मैंने तुझे दिखाया इसको भी देवता लोग दर्शन को तरसते हैं।

फिर इसमें यह नहीं कहा कि यह किसी ने तेरे अतिरिक्त पहले नहीं देखा। क्योंकि त्रिलोकिय विष्णु भक्त ही जो अनन्य मन से केवल एक विष्णु का जाप करने वाले सामिप्य मुक्ति प्राप्त विष्णु लोक में विष्णु के चतुर्भुज रूप को देख सकते हैं। वरना विष्णु रूप तो आम भक्त देवता ने देख रखा है। जो विष्णु रूप अर्जुन को दिखाया तथा कहा कि जो मुझे तत्व से जानते हैं अर्थात् मेरे महास्वर्ग को महाविष्णु की महिमा को जानते हैं वे ही अनन्य मन से भक्ति करके मुझे प्राप्त कर सकते हैं। यज्ञ से, वेदों से, तपों से तथा दान से तो वह भी नहीं प्राप्त कर सकते। केवल स्वर्ग-नरक आदि में जाते हैं। {प्रमाण के लिए अध्याय 9 का श्लोक 20,21} जिस समय चतुर्भुज रूप में काल भगवान आए वह नूर श्री विष्णु जी (त्रिलोकिय जिसके श्री कृष्ण अवतार आए थे) से बहुत ज्यादा था। क्योंकि काल एक हजार कला का है, श्री विष्णु जी (कृष्ण) केवल 16 कला के हैं। एक तो 16 वाट की टयूब हो और एक हो एक हजार वाट की। दोनों टयूब ही नजर आती हैं। परंतु रोशनी में जमीन-आसमान का अंतर है। इससे सिद्ध है कि काल (ब्रह्म) साधना सिद्धि भी एक ॐ मन्त्र को गुरु जी से लेकर अनन्य भक्ति (देवी-देवताओं, माई-मसानी, सेढ-शितला, भेरों भूत, हनुमान को भूलकर केवल एक इष्ट में पतिव्रता की तरह रह कर अव्याभिचारिणी भक्ति) से ही हो सकती है। तब वह अनन्य भक्ति युक्त साधक भगवान काल की कृप्या से ही उसके चतुर्भुज रूप के दर्शन ब्रह्मलोक में कर सकता है, जहाँ इसने सतोगुण प्रधान क्षेत्र बना कर एक और विष्णु लोक बना रखा है। कबीर परमात्मा के ज्ञान को सन्त गरीबदास जी ने बताया है कि वेदों के पढ़ने वाले जो ॐ नाम को मुख्य रूप में जाप नहीं करते इसके अतिरिक्त वेदों का पाठ, वेदों में वर्णित यज्ञ-तप-दान आदि करते है या अन्य क्रियाएं करते हैं वे काल भगवान के चतुर्भज (महाविष्णु) रूप को भी नहीं देख सकते अर्थात् उन्हें ब्रह्मलोक भी प्राप्त नही होता। वे साधक स्वर्ग में या विष्णु लोक में बने स्वर्ग में चले जाते हैं। ब्रह्म की अनन्य भक्ति एक ओं अक्षर से होती है। इस के साथ कोई अन्य अक्षर नहीं जोड़ा जाता। जैसे हरि ओम् आदि। केवल यज्ञ आदि करने से भी ब्रह्मलोक प्राप्त नहीं होता। ॐ मन्त्र के जाप रूपी बीज को यज्ञ रूपी खाद व जल द्वारा उगाया व पकाया जाता है। जिस से ब्रह्म की प्राप्ति अर्थात् ब्रह्मलोक प्राप्त होता है। जहाँ पर ब्रह्म महाविष्णु रूप में चतुर्भुज रूप में रहता है। वह साधना तत्वदर्शी सन्त द्वारा प्राप्त करने से सफल होती है। ॐ नाम का जाप एक ब्रह्म को ही इष्ट रूप में जानकर करने से अनन्य भक्ति कहलाती है। इसी से ब्रह्मलोक प्राप्ति होती है। परन्तु

मत्यु के पश्चात् ब्रह्म साधक तप्तशिला पर अवश्य जाता है। ततपश्चात् कर्म अनुसार ब्रह्मलोक प्राप्त करता है। फिर महाकल्प के पश्चात् पुनः पथ्वी पर अन्य योनियों में जन्म लेता है। पूर्ण मोक्ष प्राप्त नहीं होता। सन्त गरीबदास जी ने कहा है :--

ऋग,यजु:,साम, अथर्व भाषै जामें नाम मूल नहीं राखै।

रामायण में प्रमाण है कि तुलसी दास जी कहते हैं कि -

कलियुग केवल नाम अधारा। सुमिर सुमिर नर उतरो पारा।।

कबीर साहेब कहते हैं कि -

कबीर, कलियुग में जीवन थोड़ा है, करले बेग सम्भार। योग साधना नहीं बन सकै, केवल नाम आधार।।

इससे सिद्ध है कि अन्य साधना से नहीं केवल नाम से मुक्ति है।

कई भक्त जन व संत जन कहते हैं कि अनन्य मन से भक्ति का भाव है कि राग-द्वेष, काम-क्रोध को त्याग कर भक्ति करें। इन विकारों को मारने के लिए तो भक्ति करते हैं। यदि ये ही समाप्त हो जाएं तो आत्मा का वास्तविक निर्विकार अस्तित्व हो जाएगा जो परमात्मा के तुल्य है। इन विकारों को ठीक करने का उपाय है एक ईश्वर के एक नाम का आसरा अन्य देवी-देवताओं का नहीं। गरीबदास जी महाराज कहते हैं कि -

आत्म और परमात्मा, एकै नूर जहूर। बिच में झांई कर्म की, तातें कहिए दूर।।

अध्याय 11 के श्लोक 55 में काल भगवान ने कहा है कि हे अर्जुन! जो मेरे द्वारा बताए मार्ग (मतानुसार) मत्परमः यानि मेरे से श्रेष्ठ परम अक्षर ब्रह्म की भक्ति साधना (कर्म) करने वाला मतावलम्बी भक्त (साधक) आसक्ति रहित है, वह मेरा आसक्ति रहित भक्त तथा सर्व प्राणियों से वैर भाव रहित है मुझको प्राप्त होता है। मतानुसार अर्थात् वेदों में वर्णित साधना के अनुसार (क्योंकि ब्रह्म साधना का मत (विचार) वेदों में वर्णन है या अब गीता जी में) जो साधक साधना करता है वह उत्तम साधक कहलाता है। वह भी काल को ही प्राप्त होता है अर्थात् काल (ज्योति निरंजन) के जाल में ही रहता है। अन्य साधना जो शास्त्रानुकूल नहीं है उसको करने वाले पापी तथा राक्षस स्वभाव के कहे हैं। गीता अध्याय 7 श्लोक 12 से 15, गीता जी के अध्याय 16 के श्लोक 23,24 ।

विचार करें :- काल ब्रह्म ने कहा है कि जो वैर भाव रहित भक्त है वही मुझे प्राप्त कर सकता है तथा स्वयं कह रहे हैं कि युद्ध कर अर्जुन। वैर बिना युद्ध अति असम्भव। विशेष बात है कि गीता जी के अध्याय 1 के श्लोक 30 से 39 व 46, अध्याय 2 के श्लोक 4,5 में अर्जुन वैर रहित है तथा कहा है कि मैं युद्ध नहीं करूँगा। इससे अच्छा तो भीख मांग कर गुजारा कर लूँगा। फिर प्रहलाद से प्यार तथा हिरणाकशिपु से वैर भगवान का स्वसिद्ध है।

कप्या पाठक विचार करें कि गीता ज्ञान दाता का मत कितना सही है क्योंकि निर्विकारी होना न भगवान ब्रह्मा के वश, न भगवान विष्णु के क्योंकि भगवान विष्णु ने जैसा पौराणिक मानते हैं कि भगवान शिव की रक्षार्थ भस्मासुर को गंडहथ नाच नचा कर भस्म कर दिया। भस्मासुर से वैर तथा श्री शिव जी से राग प्रत्यक्ष है। इसी प्रकार प्रहलाद भक्त से राग तथा हिरण्यकशिपु से द्वेष प्रत्यक्ष है। भगवान भी निर्विकार नहीं हो सके। विकार रहित तथा पूर्ण परमात्मा की प्राप्ति तो कबीर साहेब द्वारा बताई विधि से ही हो सकती है। इसी का वर्णन गीता अध्याय 8 श्लोक 28 में है कि पूर्ण ज्ञान होने पर तत्वदर्शी सन्त द्वारा बताए भक्ति मार्ग का अनुसरण करने वाला साधक वेदों में वर्णित भक्ति को ब्रह्म में त्याग कर इस से भी आगे के पद अर्थात् सत्य लोक स्थान को प्राप्त करने वाले

ज्ञान के आधार से साधना करता है।

❖ *विशेष :- गीता के इस अध्याय 11 श्लोक 55 में ''मत्परमः'' शब्द है। इसका अर्थ है मेरे से दूसरा श्रेष्ठ परमात्मा। काल ने कहा है कि जो मेरे द्वारा बताए मत के अनुसार (मत्परमः) मेरे से अन्य व श्रेष्ठ परमात्मा की भक्ति मेरा भक्त करता है, वह मुझे प्राप्त होता है। कारण यह है कि वेदों में ज्ञान परम अक्षर ब्रह्म का भी है।*

परम अक्षर ब्रह्म काल ब्रह्म से श्रेष्ठ है, परंतु भक्ति के मंत्र काल ब्रह्म के हैं। जिस कारण से साधक काल के जाल में ही रह जाता है। गीता अध्याय 12 के श्लोक 1 में अर्जुन ने प्रश्न किया है कि जो आपको सर्वेसवा मानकर आपको भजते हैं तथा दूसरे अविनाशी परमात्मा को भजते हैं। उनमें से किसका ज्ञान और भक्ति उत्तम है? इससे भी यही सिद्ध होता है कि गीता अध्याय 11 के इस श्लोक 55 में मत्परमः = मत् परमः का अर्थ मेरे से अन्य श्रेष्ठ परमात्मा है। गीता में स्थान-स्थान पर कहा है कि यह रहस्यमय ज्ञान है। इसको तत्वदर्शी संत ही जानता है।

❑❑❑

।।ग्यारहवें अध्याय के अनुवाद सहित श्लोक।।

परमात्मने नमः

अथैकादशोऽध्यायः

अध्याय 11 का श्लोक 1(अर्जुन उवाच)

मदनुग्रहाय परमं गुह्यमध्यात्मसञ्ज्ञितम्।
यत्त्वयोक्तं वचस्तेन मोहोऽयं विगतो मम ।१।

मदनुग्रहाय, परमम्, गुह्यम्, अध्यात्मसञ्ज्ञितम्,
यत्, त्वया, उक्तम्, वचः, तेन, मोहः, अयम्, विगतः, मम।।1।।

अनुवाद : (त्वया) आपने (अनुग्रहाय) कृपा करने के लिए (मत्) शास्त्रों के अनुकूल विचार (यत्) जो (परमम्) श्रेष्ठ (गुह्यम्) गुप्त (अध्यात्मसञ्ज्ञितम्) अध्यात्मिकविषयक (वचः) वचन अर्थात् उपदेश (उक्तम्) कहा (तेन) उससे (मम) मेरा (अयम्) यह (मोहः) मोह (विगतः) नष्ट हो गया।(1)

अध्याय 11 का श्लोक 2

भवाप्ययौ हि भूतानां श्रुतौ विस्तरशो मया।
त्वत्तः कमलपत्राक्ष माहात्म्यमपि चाव्ययम् ।२।

भवाप्ययौ, हि, भूतानाम्, श्रुतौ, विस्तरशः, मया,
त्वत्तः, कमलपत्राक्ष, माहात्म्यम्, अपि, च, अव्ययम्।।2।।

अनुवाद : (हि) क्योंकि (कमलपत्राक्ष) हे कमलनेत्र! (मया) मैंने (त्वत्तः) आपसे (भूतानाम्) प्राणियोंकी (भवाप्ययौ) उत्पति और प्रलय (विस्तरशः) विस्तारपूर्वक (श्रुतौ) सुने हैं (च) तथा आपकी (अव्ययम्) अविनाशी (माहात्म्यम्) महिमा (अपि) भी सुनी है। (2)

अध्याय 11 का श्लोक 3

एवमेतद्यथात्थ त्वमात्मानं परमेश्वर।
द्रष्टुमिच्छामि ते रूपमैश्वरं पुरुषोत्तम।३।

एवम्, एतत्, यथा, आत्थ, त्वम्, आत्मानम्, परमेश्वर,
द्रष्टुम्, इच्छामि, ते, रूपम्, ऐश्वरम्, पुरुषोत्तम।।3।।

अनुवाद : (परमेश्वर) हे परमेश्वर! (त्वम्) आप (आत्मानम्) अपनेको (यथा) जैसा (आत्थ) कहते हैं (एतत्) यह ठीक (एवम्) ऐसा ही है परंतु (पुरुषोत्तम) हे पुरुषोत्तम्! (ते) आपके (ऐश्वरम्, रूपम्) ज्ञान, ऐश्वर्य, शक्ति, बल, वीर्य और तेज से युक्त ईश्वरीय-रूपको मैं प्रत्यक्ष (द्रष्टुम्) देखना (इच्छामि) चाहता हूँ। (3)

अध्याय 11 का श्लोक 4

मन्यसे यदि तच्छक्यं मया द्रष्टुमिति प्रभो।
योगेश्वर ततो मे त्वं दर्शयात्मानमव्ययम्।४।

मन्यसे, यदि, तत्, शक्यम्, मया, द्रष्टुम्, इति, प्रभो,
योगेश्वर, ततः, मे, त्वम्, दर्शय, आत्मानम्, अव्ययम्।।4।।

अनुवाद : (प्रभो) हे प्रभो! (यदि) यदि (मया) मेरेद्वारा (तत्) आपका वह रूप (द्रष्टुम्) देखा जाना (शक्यम्) शक्य है (इति) ऐसा (मन्यसे) आप मानते हैं (ततः) तो (योगेश्वर) हे योगेश्वर! (त्वम्) आप (आत्मानम् अव्ययम्) असली अविनाशी स्वरूप के (मे) मुझे (दर्शय) दर्शन कराइये।(4)

अध्याय 11 का श्लोक 5(श्री भगवान उवाच)

पश्य मे पार्थ रूपाणि शतशोऽथ सहस्रशः।
नानाविधानि दिव्यानि नानावर्णाकृतीनि च। ५ ।

पश्य, मे, पार्थ, रूपाणि, शतशः, अथ, सहस्त्रशः,
नानाविधानि, दिव्यानि, नानावर्णाकतीनि, च।।5।।

अनुवाद : (पार्थ) हे पार्थ! (अथ) अब तू (मे) मेरे (शतशः, सहस्त्रशः) सैकड़ों हजारों (नानाविधानि) नाना प्रकारके (च) और (नानावर्णाकतीनि) नाना वर्ण तथा नाना आकतिवाले (दिव्यानि) अलौकिक (रूपाणि) रूपोंको (पश्य) देख। (5)

अध्याय 11 का श्लोक 6

पश्यादित्यान्वसून्रुद्रानश्विनौ मरुतस्तथा।
बहून्यदृष्टपूर्वाणि पश्याश्चर्याणि भारत। ६ ।

पश्य, आदित्यान्, वसून्, रुद्रान्, अश्विनौ, मरुतः, तथा,
बहूनि, अदष्टपूर्वाणि, पश्य, आश्चर्याणि, भारत।।6।।

अनुवाद : (भारत) हे भरतवंशी अर्जुन! मुझमें (आदित्यान्) आदित्योंको अर्थात् अदितिके द्वादश पुत्रोंको (वसून्) आठ वसुओंको (रुद्रान्) एकादश रुद्रोंको (अश्विनौ) दोनों अश्विनीकुमारोंको और (मरुतः) उनचास मरुद्गणोंको (पश्य) देख (तथा) तथा और भी (बहूनि) बहुत से (अदष्टपूर्वाणि) पहले न देखे हुए (आश्चर्याणि) आश्चर्यमय रूपोंको (पश्य) देख। (6)

अध्याय 11 का श्लोक 7

इहैकस्थं जगत्कृत्स्नं पश्याद्य सचराचरम्।
मम देहे गुडाकेश यच्चान्यद्द्रष्टुमिच्छसि। ७ ।

इह, एकस्थम्, जगत्, कत्स्न्रम्, पश्य, अद्य, सचराचरम्,
मम, देहे, गुडाकेश, यत्, च, अन्यत्, द्रष्टुम्, इच्छसि।।7।।

अनुवाद : (गुडाकेश) हे अर्जुन! (अद्य) अब (इह) इस (मम) मेरे (देहे) शरीरमें (एकस्थम्) एक जगह स्थित (सचराचरम्) चराचरसहित (कत्स्न्रम्) सम्पूर्ण (जगत्) जगत्को (पश्य) देख तथा (अन्यत्) और (च) भी (यत्) जो कुछ (द्रष्टुम्) देखना (इच्छसि) चाहता हो सो देख। (7)

अध्याय 11 का श्लोक 8

न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा।
दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम्। ८ ।

न, तु, माम्, शक्यसे, द्रष्टुम्, अनेन, एव, स्वचक्षुषा,
दिव्यम्, ददामि, ते, चक्षुः, पश्य, मे, योगम्, ऐश्वरम्।।8।।

अनुवाद : (तु) परंतु (माम्) मुझको तू (अनेन) इन (स्वचक्षुषा) अपने प्राकत नेत्रोंद्वारा (द्रष्टुम्) देखनेमें (एव) निःसंदेह (न,शक्यसे) समर्थ नहीं है इसीसे मैं (ते) तुझे (दिव्यम्) दिव्य अर्थात्

अलौकिक (चक्षुः) चक्षु (ददामि) देता हूँ उससे तू (मे) मेरी (ऐश्वरम्) ईश्वरीय (योगम्) योगशक्तिको (पश्य) देख।(8)

अध्याय 11 का श्लोक 9(संजय उवाच)

एवमुक्त्वा ततो राजन्महायोगेश्वरो हरिः।
दर्शयामास पार्थाय परमं रूपमैश्वरम्। ९ ।

एवम्, उक्त्वा, ततः, राजन्, महायोगेश्वरः, हरिः,
दर्शयामास, पार्थाय, परमम्, रूपम्, ऐश्वरम्।।9।।

अनुवाद : (राजन्) हे राजन्! (महायोगेश्वरः) महायोगेश्वर और (हरिः) भगवान्ने (एवम्) इस प्रकार (उक्त्वा) कहकर (ततः) उसके पश्चात् (पार्थाय) अर्जुनको (परमम्) परम (ऐश्वरम्) ऐश्वर्ययुक्त (रूपम्) स्वरूप (दर्शयामास) दिखलाया।(9)

अध्याय 11 का श्लोक 10.11

अनेकवक्त्रनयनमनेकाद्भुतदर्शनम् ।
अनेकदिव्याभरणं दिव्यानेकोद्यतायुधम्। १० ।

दिव्यमाल्याम्बरधरं दिव्यगन्धानुलेपनम्।
सर्वाश्चर्यमयं देवमनन्तं विश्वतोमुखम्। ११ ।

अनेकवक्त्रनयनम्, अनेकाद्भुतदर्शनम्,
अनेकदिव्याभरणम्, दिव्यानेकोद्यतायुधम्।।10।।
दिव्यमाल्याम्बरधरम्, दिव्यगन्धानुलेपनम्,
सर्वाश्चर्यमयम्, देवम्, अनन्तम्, विश्वतोमुखम्।।11।।

अनुवाद : (अनेकवक्त्रनयनम्) अनेक मुख और नेत्रोंसे युक्त (अनेकाद्भुतदर्शनम्) अनेक अद्भुत दर्शनोंवाले (अनेकदिव्याभरणम्) बहुत से दिव्य भूषणोंसे युक्त और (दिव्यानेकोद्यतायुधम्) बहुत से दिव्य शस्त्रोंको हाथों में उठाये हुए (दिव्य माल्याम्बरधरम्) दिव्य माला और वस्त्रोंको धारण किये हुए और (दिव्यगन्धानुलेपनम्) दिव्य गन्धका सारे शरीरमें लेप किये हुए (सर्वाश्चर्यमयम्) सब प्रकार के आश्चर्यों से युक्त (अनन्तम्) सीमारहित और (विश्वतोमुखम्) सब ओर मुख किये हुए विराट्स्वरूप (देवम्) भगवान को अर्जुनने देखा।(10-11)

अध्याय 11 का श्लोक 12

दिवि सूर्यसहस्रस्य भवेद्युगपदुत्थिता।
यदि भाः सदृशी सा स्याद्भासस्तस्य महात्मनः। १२।

दिवि, सूर्यसहस्त्रस्य, भवेत्, युगपत्, उत्थिता,
यदि, भाः, सदशी, सा, स्यात्, भासः, तस्य, महात्मनः।।12।।

अनुवाद : (दिवि) आकाशमें (सूर्यसहस्त्रस्य) हजार सूर्योंके (युगपत्) एक साथ (उत्थिता) उदय होनेसे उत्पन्न जो (भाः) प्रकाश (भवेत्) हो (सा) वह भी (तस्य) उस (महात्मनः) परमात्माके (भासः) प्रकाशके (सदशी) सदश (यदि) कदाचित् ही (स्यात्) हो।(12)

अध्याय 11 का श्लोक 13

तत्रैकस्थं जगत्कृत्स्नं प्रविभक्तमनेकधा।
अपश्यद्देवदेवस्य शरीरे पाण्डवस्तदा। १३।

तत्र, एकस्थम्, जगत्, कत्स्न्रम्, प्रविभक्तम्, अनेकधा,
अपश्यत्, देवदेवस्य, शरीरे, पाण्डवः, तदा।।13।।

अनुवाद : (पाण्डवः) पाण्डुपुत्र अर्जुनने (तदा) उस समय (अनेकधा) अनेक प्रकार से (प्रविभक्तम्) विभक्त अर्थात् पथक्-पथक् (कत्स्न्रम्) सम्पूर्ण (जगत्) जगत्को (देवदेवस्य) देवोंके देव श्रीकष्णभगवान्के (तत्र) उस (शरीरे) शरीरमें (एकस्थम्) एक जगह स्थित (अपश्यत्) देखा।(13)

अध्याय 11 का श्लोक 14

ततः स विस्मयाविष्टो हृष्टरोमा धनञ्जयः।
प्रणम्य शिरसा देवं कृताञ्जलिरभाषत।१४।

ततः, सः, विस्मयाविष्टः, हृष्टरोमा, धन जयः,
प्रणम्य, शिरसा, देवम्, कता जलिः, अभाषत।।14।।

अनुवाद : (ततः) उसके अनन्तर (सः) वह (विस्मयाविष्टः) आश्चर्यसे चकित और (हृष्टरोमा) पुलकित शरीर (धन जयः) अर्जुन (देवम्) काल देव से (शिरसा) सिरसे (प्रणम्य) प्रणाम करके (कता जलिः) हाथ जोड़कर (अभाषत) बोला।(14)

अध्याय 11 का श्लोक 15(अर्जुन उवाच)

पश्यामि देवांस्तव देव देहे
सर्वांस्तथा भूतविशेषसङ्घान्।
ब्रह्माणमीशं कमलासनस्थ-
मृषींश्च सर्वानुरगांश्च दिव्यान्।१५।

पश्यामि, देवान्, तव, देव, देहे, सर्वान्, तथा, भूतविशेषसंघान्, ब्रह्माणम्,
ईशम्, कमलासनस्थम्, ऋषीन्, च, सर्वान्, उरगान्, च, दिव्यान्।।15।।

अनुवाद : (देव) हे देव! (तव) आपके (देहे) शरीरमें (सर्वान्) सम्पूर्ण (देवान्) देवोंको (तथा) तथा (भूतविशेषसंघान्) अनेक भूतोंके समुदायोंको (कमलासनस्थम्) कमलके आसनपर विराजित (ब्रह्माणम्) ब्रह्माको (ईशम्) महादेवको (च) और (सर्वान्) सम्पूर्ण (ऋषीन्) ऋषियोंको (च) तथा (दिव्यान्) दिव्य (उरगान्) सर्पोंको (पश्यामि) देखता हूँ।(15)

अध्याय 11 का श्लोक 16

अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रं-
पश्यामि त्वां सर्वतोऽनन्तरूपम्।
नान्तं न मध्यं न पुनस्तवादिं-
पश्यामि विश्वेश्वर विश्वरूप।१६।

अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रम्, पश्यामि, त्वाम्, सर्वतः, अनन्तरूपम्, न, अन्तम्,
न, मध्यम्, न, पुनः, तव, आदिम्, पश्यामि, विश्वेश्वर, विश्वरूप।।16।।

अनुवाद : (विश्वेश्वर) हे सम्पूर्ण विश्वके स्वामिन्! (त्वाम्) आपको (अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रम्) अनेक भुजा, पेट, मुख और नेत्रोंसे युक्त तथा (सर्वतः) सब ओरसे (अनन्तरूपम्) अनन्त रूपोंवाला (पश्यामि) देखता हूँ। (विश्वरूप) हे विश्वरूप! मैं (तव) आपके (न) न (अन्तम्) अन्तको (पश्यामि)

देखता हूँ (न) न (मध्यम्) मध्यको (पुनः) और (न) न (आदिम्) आदिको ही।(16)

अध्याय 11 का श्लोक 17

किरीटिनं गदिनं चक्रिणं च
तेजोराशिं सर्वतो दीप्तिमन्तम्।
पश्यामि त्वां दुर्निरीक्ष्यं समन्ता-
द्दीप्तानलार्कद्युतिमप्रमेयम् ।१७।

किरीटिनम्, गदिनम्, चक्रिणम्, च, तेजोराशिम्, सर्वतः, दीप्तिमन्तम्,
पश्यामि, त्वाम्, दुर्निरीक्ष्यम्, समन्तात्, दीप्तानलार्कद्युतिम्, अप्रमेयम्।।17।।

अनुवाद : (त्वाम्) आपको मैं (किरीटिनम्) मुकुटयुक्त (गदिनम्) गदायुक्त (च) और (चक्रिणम्) चक्रयुक्त तथा (सर्वतः) सब ओरसे (दीप्तिमन्तम्) प्रकाशमान (तेजोराशिम्) तेज पुंज के (दीप्तानलार्कद्युतिम्) प्रज्वलित अग्नि और सूर्य के सदृश ज्योतियुक्त (दुर्निरीक्ष्यम्) कठिनतासे देखे जाने योग्य और (समन्तात्) सब ओरसे (अप्रमेयम्) अप्रमेयस्वरूप (पश्यामि) देखता हूँ।(17)

अध्याय 11 का श्लोक 18

त्वमक्षरं परमं वेदितव्यं-
त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम्।
त्वमव्ययः शाश्वतधर्मगोप्ता
सनातनस्त्वं पुरुषो मतो मे।१८।

त्वम्, अक्षरम्, परमम्, वेदितव्यम्, त्वम्, अस्य, विश्वस्य, परम्, निधानम्, त्वम्,
अव्ययः, शाश्वतधर्मगोप्ता, सनातनः, त्वम्, पुरुषः, मतः, मे।।18।।

अनुवाद : (त्वम्) आप ही (वेदितव्यम्) जानने योग्य (परमम्) परम (अक्षरम्) अक्षर अर्थात् परब्रह्म परमात्मा हैं (त्वम्) आप ही (अस्य) इस (विश्वस्य) जगत्के (परम्) परम (निधानम्) आश्रय हैं (त्वम्) आप ही (शाश्वतधर्मगोप्ता) अनादि धर्मके रक्षक हैं और (त्वम्) आप ही (अव्ययः) अविनाशी (सनातनः) सनातन (पुरुषः) पुरुष हैं ऐसा (मे) मेरा (मतः) मत है।(18)

अध्याय 11 का श्लोक 19

अनादिमध्यान्तमनन्तवीर्य-
मनन्तबाहुं शशिसूर्यनेत्रम्।
पश्यामि त्वां दीप्तहुताशवक्त्रं-
स्वतेजसा विश्वमिदं तपन्तम्।१९।

अनादिमध्यान्तम्, अनन्तवीर्यम्, अनन्तबाहुम्, शशिसूर्यनेत्रम्,
पश्यामि, त्वाम्, दीप्तहुताशवक्त्रम्, स्वतेजसा, विश्वम्, इदम्, तपन्तम्।।19।।

अनुवाद : (त्वाम्) आपको (अनादिमध्यान्तम्) आदि, अन्त और मध्यसे रहित, (अनन्तवीर्यम्) अनन्त सामर्थ्यसे युक्त (अनन्तबाहुम्) अनन्त भुजावाले (शशिसूर्यनेत्रम्) चन्द्र सूर्यरूप नेत्रोंवाले (दीप्तहुताशवक्त्रम्) प्रज्वलित अग्निरूप मुखवाले और (स्वतेजसा) अपने तेजसे (इदम्) इस (विश्वम्) जगत्को (तपन्तम्) संतप्त करते हुए (पश्यामि) देखता हूँ।(19)

अध्याय 11 का श्लोक 20

द्यावापृथिव्योरिदमन्तरं हि
व्याप्तं त्वयैकेन दिशश्च सर्वाः।
दृष्ट्वाद्भुतं रूपमुग्रं तवेदं-
लोकत्रयं प्रव्यथितं महात्मन्।२०।

द्यावापथिव्योः, इदम्, अन्तरम्, हि, व्याप्तम्, त्वया, एकेन, दिशः, च, सर्वाः,
दष्ट्वा, अद्भुतम्, रूपम्, उग्रम्, तव, इदम्, लोकत्रयम्, प्रव्यथितम्, महात्मन्।।20।।

अनुवाद : (महात्मन्) हे महात्मन्! (इदम्) यह (द्यावापथिव्योः, अन्तरम्) स्वर्ग और पथ्वीके बीचका सम्पूर्ण आकाश (च) तथा (सर्वाः) सब (दिशः) दिशाएँ (एकेन) एक (त्वया) आपसे (हि) ही (व्याप्तम्) परिपूर्ण हैं तथा (तव) आपके (इदम्) इस (अद्भुतम्) अलौकिक और (उग्रम्) भयंकर (रूपम्) रूपको (दष्ट्वा) देखकर (लोकत्रयम्) तीनों लोक (प्रव्यथितम्) अति व्यथाको प्राप्त हो रहे हैं।(20)

अध्याय 11 का श्लोक 21

अमी हि त्वां सुरसङ्घा विशन्ति
केचिद्भीताः प्राञ्जलयो गृणन्ति।
स्वस्तीत्युक्त्वा महर्षिसिद्धसङ्घाः
स्तुवन्ति त्वां स्तुतिभिः पुष्कलाभिः। २१।

अमी, हि, त्वाम्, सुरसंघा, विशन्ति, केचित्, भीताः।
प्रा जलयः, गणन्ति, स्वस्ति, इति, उक्त्वा, महर्षिसिद्धसंघाः,
स्तुवन्ति, त्वाम्, स्तुतिभिः, पुष्कलाभिः।।21।।

अनुवाद : (अमी) वे ही (सुरसंघा हि) देवताओंके समूह (त्वाम्) आपमें (विशन्ति) प्रवेश करते हैं और (केचित्) कुछ (भीताः) भयभीत होकर (प्रा जलयः) हाथ जोड़े (गणन्ति) उच्चारण करते हैं तथा (महर्षिसिद्धसंघाः) महर्षि और सिद्धोंके समुदाय (स्वस्ति) 'कल्याण हो' (इति) ऐसा (उक्त्वा) कहकर (पुष्कलाभिः) उत्तम-उत्तम (स्तुतिभिः) स्तोत्रोंद्वारा (त्वाम्) आपकी (स्तुवन्ति) स्तुति करते हैं। फिर भी आप उन्हें खा रहे हो।(21)

अध्याय 11 का श्लोक 22

रुद्रादित्या वसवो ये च साध्या-
विश्वेऽश्विनौ मरुतश्चोष्मपाश्च।
गन्धर्वयक्षासुरसिद्धसङ्घा-
वीक्षन्ते त्वां विस्मिताश्चैव सर्वे। २२।

रुद्रादित्याः, वसवः, ये, च, साध्याः, विश्वे, अश्विनौ, मरुतः, च, ऊष्मपाः,
च, गन्धर्वयक्षासुरसिद्धसंघाः, वीक्षन्ते, त्वाम्, विस्मिताः, च, एव, सर्वे।।22।।

अनुवाद : (ये) जो (रुद्रादित्याः) ग्यारह रुद्र और बारह आदित्य (च) और (वसवः) आठ वसु, (साध्याः) साधकगण, (विश्वे) विश्वेदेव, (अश्विनौ) अश्विनीकुमार (च) तथा (मरुतः) मरुदगण (च) और (ऊष्मपाः) पितरोंका समुदाय (च) तथा (गन्धर्वयक्षासुरसिद्धसंघा) गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और सिद्धोंके समुदाय हैं वे (सर्वे) सब (एव) ही (विस्मिताः) विस्मित होकर (त्वाम्) आपको

(वीक्षन्ते) देखते हैं। (22)

अध्याय 11 का श्लोक 23

रूपं महत्ते बहुवक्त्रनेत्रं-
महाबाहो बहुबाहूरुपादम्।
बहूदरं बहुदंष्ट्राकरालं-
दृष्ट्वा लोकाः प्रव्यथितास्तथाहम्। २३।

रूपम्, महत्, ते, बहुवक्त्रनेत्रम्, महाबाहो, बहुबाहूरुपादम्,
बहूदरम्, बहुदंष्ट्राकरालम्, दृष्टवा, लोकाः, प्रव्यथिताः, तथा, अहम्।।23।।

अनुवाद : (महाबाहो) हे महाबाहो (ते) आपके (बहुवक्त्रनेत्रम्) बहुत मुख और नेत्रोंवाले (बहुबाहूरुपादम्) बहुत हाथ, जंघा और पैरोंवाले (बहूदरम्) बहुत उदरोंवाले और (बहुदंष्ट्राकरालम्) बहुत-सी दाढ़ोंके कारण अत्यन्त विकराल (महत्) महान् (रूपम्) रूपको (दृष्टवा) देखकर (लोकाः) सब लोग (प्रव्यथिताः) व्याकुल हो रहे हैं (तथा) तथा (अहम) मैं भी व्याकुल हो रहा हूँ।(23)

अध्याय 11 का श्लोक 24

नभःस्पृशं दीप्तमनेकवर्णं-
व्यात्ताननं दीप्तविशालनेत्रम्।
दृष्ट्वा हि त्वां प्रव्यथितान्तरात्मा
धृतिं न विन्दामि शमं च विष्णो। २४।

नभःस्पृशम्, दीप्तम्, अनेकवर्णम्, व्यात्ताननम्, दीप्तविशालनेत्रम्,
दृष्टवा, हि, त्वाम्, प्रव्यथितान्तरात्मा, धृतिम्, न, विन्दामि, शमम्, च, विष्णो।।24।।

अनुवाद : (हि) क्योंकि (विष्णो) हे विष्णो! (नभःस्पृशम्) आकाशको स्पर्श करनेवाले, (दीप्तम्) देदीप्यमान, (अनेकवर्णम्) अनेक वर्णोंसे युक्त तथा (व्यात्ताननम्) फैलाये हुए मुख और (दीप्तविशालनेत्रम्) प्रकाशमान विशाल नेत्रोंसे युक्त (त्वाम्) आपको (दृष्टवा) देखकर (प्रव्यथितान्तरात्मा) भयभीत अन्तःकरणवाला मैं (धृतिम्) धीरज (च) और (शमम्) शान्ति (न) नहीं (विन्दामि) पाता हूँ।(24)

अध्याय 11 का श्लोक 25

दंष्ट्राकरालानि च ते मुखानि
दृष्ट्वैव कालानलसन्निभानि।
दिशो न जाने न लभे च शर्म
प्रसीद देवेश जगन्निवास। २५।

दंष्ट्राकरालानि, च, ते, मुखानि, दृष्टवा, एव, कालानलसन्निभानि,
दिशः, न, जाने, न, लभे, च, शर्म, प्रसीद, देवेश, जगन्निवास।।25।।

अनुवाद : (दंष्ट्राकरालानि) दाढ़ोंके कारण विकराल (च) और (कालानलसन्निभानि) प्रलयकालकी अग्निके समान प्रज्वलित (ते) आपके (मुखानि) मुखोंको (दृष्टवा) देखकर मैं (दिशः) दिशाओंको (न) नहीं (जाने) जानता हूँ (च) और (शर्म) सुख (एव) भी (न) नहीं (लभे) पाता हूँ इसलिए (देवेश) हे देवेश! (जगन्निवास) हे जगन्निवास! आप (प्रसीद) प्रसन्न हों।(25)

अध्याय 11 का श्लोक 26.27

अमी च त्वां धृतराष्ट्रस्य पुत्राः
सर्वे सहैवावनिपालसङ्घैः।
भीष्मो द्रोणः सूतपुत्रस्तथासौ
सहास्मदीयैरपि योधमुख्यैः।२६।
वक्त्राणि ते त्वरमाणा विशन्ति
दंष्ट्राकरालानि भयानकानि।
केचिद्विलग्ना दशनान्तरेषु
सन्दृश्यन्ते चूर्णितैरुत्तमाङ्गैः।२७।

अमी, च, त्वाम्, धतराष्ट्रस्य, पुत्राः, सर्वे, सह, एव, अवनिपालसंघैः,
भीष्मः, द्रोणः, सूतपुत्रः, तथा, असौ, सह, अस्मदीयैः, अपि, योधमुख्यैः।।26।।
वक्त्राणि, ते, त्वरमाणाः, विशन्ति, दंष्ट्राकरालानि, भयानकानि, केचित्,
विलग्नाः, दशनान्तरेषु, संदश्यन्ते, चूर्णितैः, उत्तमांगैः।।27।।

अनुवाद : (अमी) वे (सर्वे, एव) सभी (धतराष्ट्रस्य) धतराष्ट्रके (पुत्राः) पुत्र (अवनिपालसंघैः, सह) राजाओंके समुदायसहित (त्वाम्) आपमें प्रवेश कर रहे हैं (च) और (भीष्मः) भीष्मपितामह, (द्रोणः) द्रोणाचार्य (तथा) तथा (असौ) वह (सूतपुत्रः) कर्ण और (अस्मदीयैः) हमारे पक्षके (अपि) भी (योधमुख्यैः) प्रधान योद्धाओंके (सह) सहित सबकेसब (ते) आपके (दंष्ट्राकरालानि) दाढ़ोंके कारण विकराल (भयानकानि) भयानक (वक्त्राणि) मुखोंमें (त्वरमाणाः) बड़े वेगसे दौड़ते हुए (विशन्ति) प्रवेश कर रहे हैं और (केचित्) कई एक (चूर्णितैः) चूर्ण हुए (उत्तमांगैः) सिरोंसहित आपके (दशनान्तरेषु) दाँतोंके बीचमें (विलग्नाः) लगे हुए (संदश्यन्ते) दीख रहे हैं।(26,27)

अध्याय 11 का श्लोक 28

यथा नदीनां बहवोऽम्बुवेगाः
समुद्रमेवाभिमुखा द्रवन्ति।
तथा तवामी नरलोकवीरा-
विशन्ति वक्त्राण्यभिविज्वलन्ति।२८।

यथा, नदीनाम्, बहवः, अम्बुवेगाः, समुद्रम्, एव, अभिमुखाः, द्रवन्ति, तथा,
तव, अमी, नरलोकवीराः, विशन्ति, वक्त्राणि, अभिविज्वलन्ति।।28।।

अनुवाद : (यथा) जैसे (नदीनाम्) नदियोंके (बहवः) बहुतसे (अम्बुवेगाः) जलके प्रवाह स्वाभाविक ही (समुद्रम्) समुद्रके (एव) ही (अभिमुखाः) सम्मुख (द्रवन्ति) दौड़ते हैं अर्थात् समुद्रमें प्रवेश करते हैं, (तथा) वैसे ही (अमी) वे (नरलोकवीराः) नरलोक अर्थात् इस पथ्वी लोक के वीर भी (तव) आपके (अभिविज्वलन्ति) प्रज्वलित (वक्त्राणि) मुखोंमें (विशन्ति) प्रवेश कर रहे हैं।(28)

अध्याय 11 का श्लोक 29

यथा प्रदीप्तं ज्वलनं पतङ्गा-
विशन्ति नाशाय समृद्धवेगाः।
तथैव नाशाय विशन्ति लोका-
स्तवापि वक्त्राणि समृद्धवेगाः।२९।

यथा, प्रदीप्तम्, ज्वलनम्, पतंगाः, विशन्ति, नाशाय, समृद्धवेगाः,

तथा, एव, नाशाय, विशन्ति, लोकाः, तव, अपि, वक्त्राणि, समृद्धवेगाः।।29।।

अनुवाद : (यथा) जैसे (पतंगाः) पतंग मोहवश (नाशाय) नष्ट होनेके लिये (प्रदीप्तम्) प्रज्वलित (ज्वलनम्) अग्निमें (समृद्धवेगाः) अति वेगसे दौड़ते हुए (विशन्ति) प्रवेश करते हैं, (तथा) वैसे (एव) ही ये (लोकाः) सब लोग (अपि) भी (नाशाय) अपने नाशके लिये (तव) आपके (वक्त्राणि) मुखोंमें (समृद्धवेगाः) अति वेगसे दौड़ते हुए (विशन्ति) प्रवेश कर रहे हैं।(29)

अध्याय 11 का श्लोक 30

लेलिह्यसे ग्रसमानः समन्ता-
ल्लोकान्समग्रान्वदनैर्ज्वलद्भिः।
तेजोभिरापूर्य जगत्समग्रं-
भासस्तवोग्राः प्रतपन्ति विष्णो। ३०।

लेलिह्यसे, ग्रसमानः, समन्तात्, लोकान्, समग्रान्, वदनैः, ज्वलद्भिः,

तेजोभिः, आपूर्य, जगत्, समग्रम्, भासः, तव, उग्राः, प्रतपन्ति, विष्णो।।30।।

अनुवाद : (समग्रान्) सम्पूर्ण (लोकान्) लोकोंको (ज्वलद्भिः) प्रज्वलित (वदनैः) मुखोंद्वारा (ग्रसमानः) ग्रास करते हुए (समन्तात्) सब ओरसे (लेलिह्यसे) बार-बार चाट रहे हैं, (विष्णो) हे विष्णो! (तव) आपका (उग्राः) भयानक (भासः) प्रकाश (समग्रम्) सम्पूर्ण (जगत्) जगत्को (तेजोभिः) तेजके द्वारा (आपूर्य) परिपूर्ण करके (प्रतपन्ति) तपा रहा है।(30)

अध्याय 11 का श्लोक 31

आख्याहि मे को भवानुग्ररूपो-
नमोऽस्तु ते देववर प्रसीद।
विज्ञातुमिच्छामि भवन्तमाद्यं-
न हि प्रजानामि तव प्रवृत्तिम्। ३१।

आख्याहि, मे, कः, भवान्, उग्ररूपः, नमः, अस्तु, ते, देववर, प्रसीद, विज्ञातुम्,

इच्छामि, भवन्तम्, आद्यम्, न, हि, प्रजानामि, तव, प्रवृत्तिम्।।31।।

अनुवाद : (मे) मुझे (आख्याहि) बतलाइये कि (भवान्) आप (उग्ररूपः) उग्ररूपवाले (कः) कौन हैं? (देववर) हे देवोंमें श्रेष्ठ! (ते) आपको (नमः) नमस्कार (अस्तु) हो आप (प्रसीद) प्रसन्न होइये। (आद्यम्) आदियम अर्थात् पुरातन काल (भवन्तम्) आपको मैं (विज्ञातुम्) विशेषरूपसे जानना (इच्छामि) चाहता हूँ (हि) क्योंकि मैं (तव) आपकी (प्रवृत्तिम्) प्रवृत्तिको (न) नहीं (प्रजानामि) जानता।(31)

अध्याय 11 का श्लोक 32(भगवान उवाच)

कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो-
लोकान् समाहर्तुमिह प्रवृत्तः।
ऋतेऽपि त्वां न भविष्यन्ति सर्वे
येऽवस्थिताः प्रत्यनीकेषु योधाः। ३२।

कालः, अस्मि, लोकक्षयकृत्, प्रवृद्धः, लोकान्, समाहर्तुम्, इह, प्रवृत्तः,

ऋते, अपि, त्वाम्, न, भविष्यन्ति, सर्वे, ये, अवस्थिताः, प्रत्यनीकेषु, योधाः।।32।।

अनुवाद : (लोकक्षयकृत्) लोकोंका नाश करनेवाला (प्रवृद्धः) बढ़ा हुआ (कालः) काल (अस्मि) हूँ। (इह) इस समय (लोकान्) इन लोकोंको (समाहर्तुम्) नष्ट करने के लिये (प्रवृत्तः) प्रकट हुआ हूँ इसलिये (ये) जो (प्रत्यनीकेषु) प्रतिपक्षियोंकी सेनामें (अवस्थिताः) स्थित (योधाः) योद्धा लोग हैं, (ते) वे (सर्वे) सब (त्वाम्) तेरे (ऋते) बिना (अपि) भी (न) नहीं (भविष्यन्ति) रहेंगे अर्थात् तेरे युद्ध न करनेसे भी इन सबका नाश हो जायेगा।(32)

अध्याय 11 का श्लोक 33

तस्मात्त्वमुत्तिष्ठ यशो लभस्व
जित्वा शत्रून् भुङ्क्ष्व राज्यं समृद्धम्।
मयैवैते निहताः पूर्वमेव
निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन्। ३३।

तस्मात्, त्वम्, उत्तिष्ठ, यशः, लभस्व, जित्वा, शत्रून्,
भुङ्क्ष्व, राज्यम्, समृद्धम्, मया, एव, एते, निहताः,
पूर्वम्, एव, निमित्तमात्रम्, भव, सव्यसाचिन्।33।।

अनुवाद : (तस्मात्) अतएव (त्वम्) तू (उत्तिष्ठ) उठ! (यशः) यश (लभस्व) प्राप्त कर और (शत्रून्) शत्रुओंको (जित्वा) जीतकर (समृद्धम्) धन-धान्यसे सम्पन्न (राज्यम्) राज्यको (भुङ्क्ष्व) भोग (एते) ये सब शूरवीर (पूर्वम्, एव) पहलेहीसे (मया) मेरे ही द्वारा (निहताः) मारे हुए हैं। (सव्यसाचिन्) हे सव्यसाचिन्! (निमित्तमात्रम्, एव) तू तो केवल निमित्तमात्र (भव) बन जा।(33)

अध्याय 11 का श्लोक 34

द्रोणं च भीष्मं च जयद्रथं च
कर्णं तथान्यानपि योधवीरान्।
मया हतांस्त्वं जहि मा व्यथिष्ठा-
युध्यस्व जेतासि रणे सपत्नान्। ३४।

द्रोणम्, च, भीष्मम्, च, जयद्रथम्, च, कर्णम्, तथा, अन्यान्, अपि, योधवीरान्,
मया, हतान्, त्वम्, जहि, मा, व्यथिष्ठाः, युध्यस्व, जेतासि, रणे, सपत्नान्।।34।।

अनुवाद : (द्रोणम्) द्रोणाचार्य (च) और, (भीष्मम्) भीष्मपितामह (च) तथा (जयद्रथम्) जयद्रथ (च) और (कर्णम्) कर्ण (तथा) तथा (अन्यान्, अपि) और भी बहुत से (मया) मेरे द्वारा (हतान्) मारे हुए (योधविरान्) शूरवीर योद्धाओंको (त्वम्) तू (जहि) मार। (मा, व्यथिष्ठाः) भय मत कर। (रणे) युद्धमें (सपत्नान्) वैरियोंको (जेतासि) जीतेगा। इसलिए (युध्यस्व) युद्ध कर।(34)

अध्याय 11 का श्लोक 35(संजय उवाच)

एतच्छ्रुत्वा वचनं केशवस्य
कृताञ्जलिर्वेपमानः किरीटी।
नमस्कृत्वा भूय एवाह कृष्णं-
सगद्गदं भीतभीतः प्रणम्य। ३५।

एतत्, श्रुत्वा, वचनम्, केशवस्य, कृता जलिः, वेपमानः, किरीटी, नमस्कृत्वा,
भूयः, एव, आह, कृष्णम्, सगद्गदम्, भीतभीतः, प्रणम्य।।35।।

अनुवाद : (केशवस्य) केशवभगवान्‌के (एतत्) इस (वचनम्) वचनको (श्रुत्वा) सुनकर (किरीटी) मुकुटधारी अर्जुन (कृताञ्जलिः) हाथ जोड़कर (वेपमानः) काँपता हुआ (नमस्कृत्वा) नमस्कार करके, (भूयः) फिर (एव) भी (भीतभीतः) अत्यन्त भयभीत होकर (प्रणम्य) प्रणाम करके (कृष्णम्) भगवान् श्रीकृष्णके प्रति (सगद्गदम्) गदगद वाणीसे (आह) बोला -(35)

अध्याय 11 का श्लोक 36(अर्जुन उवाच)

स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या
जगत्प्रहृष्यत्यनुरज्यते च।
रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति
सर्वे नमस्यन्ति च सिद्धसङ्घाः। ३६।

स्थाने, हृषीकेश, तव, प्रकीर्त्या, जगत्, प्रहृष्यति, अनुरज्यते, च,
रक्षांसि, भीतानि, दिशः, द्रवन्ति, सर्वे, नमस्यन्ति, च, सिद्धसंघाः।।36।।

अनुवाद : (हृषीकेश) हे अन्तर्यामिन्! (स्थाने) यह योग्य ही है कि (तव) आपके (प्रकीर्त्या) नाम-गुण और प्रभावके कीर्तनसे (जगत्) जगत् (प्रहृष्यति) अति हर्षित हो रहा है (च) और (अनुरज्यते) अनुरागको भी प्राप्त हो रहा है तथा (भीतानि) भयभीत (रक्षांसि) राक्षसलोग (दिशः) दिशाओंमें (द्रवन्ति) भाग रहे हैं (च) और (सर्वे) सब (सिद्धसंघा) सिद्धगणोंके समुदाय (नमस्यन्ति) नमस्कार कर रहे हैं।(36)

अध्याय 11 का श्लोक 37

कस्माच्च ते न नमेरन्महात्मन्
गरीयसे ब्रह्मणोऽप्यादिकर्त्रे।
अनन्त देवेश जगन्निवास
त्वमक्षरं सदसत्तत्परं यत्। ३७।

कस्मात्, च, ते, न, नमेरन्, महात्मन्, गरीयसे, ब्रह्मणः,
अपि, आदिकर्त्रे, अनन्त, देवेश, जगन्निवास,
त्वम्, अक्षरम्, सत्, असत्, तत्परम्, यत्।।37।।

अनुवाद : (महात्मन्) हे महात्मन्! (ब्रह्मणः) समर्थ प्रभु (अपि) भी (आदिकर्त्रे) आदिकर्त्ता भी है (च) और (गरीयसे) सबसे बड़े भी हैं (ते) आपके लिये ये (कस्मात्) कैसे (न, नमेरन्) नमस्कार न करें क्योंकि (अनन्त) हे अनन्त! (देवेश) हे देवेश! (जगन्निवास) हे जगन्निवास! (यत्) जो (सत्) सत् (असत्) असत् और (तत्परम्) उनसे परे (अक्षरम्)अक्षर अर्थात् सच्चिदानन्दघन ब्रह्म हैं, वह (त्वम्) आप ही हैं।(37)

अध्याय 11 का श्लोक 38

त्वमादिदेवः पुरुषः पुराण-
स्त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम्।
वेत्तासि वेद्यं च परं च धाम
त्वया ततं विश्वमनन्तरूप। ३८।

त्वम्, आदिदेवः, पुरुषः, पुराणः, त्वम्, अस्य, विश्वस्य,
परम्, निधानम्, वेत्ता, असि, वेद्यम्, च, परम्, च,
धाम, त्वया, ततम्, विश्वम्, अनन्तरूप।।38।।

अनुवाद : (त्वम्) आप (आदिदेवः) आदिदेव और (पुराणः) सनातन (पुरुषः) पुरुष हैं, (त्वम्) आप (अस्य) इस (विश्वस्य) जगत्के (परम्) परम (निधानम्) आश्रय (च) और (वेत्ता) जाननेवाले (च) तथा (वेद्यम्) जाननेयोग्य और (परम्) परम (धाम) धाम (असि) हैं। (अनन्तरूप) हे अनन्तरूप! (त्वया) आपसे यह सब (विश्वम्) जगत् (ततम्) व्याप्त अर्थात् परिपूर्ण है।(38)

अध्याय 11 का श्लोक 39

वायुर्यमोऽग्निर्वरुणः शशाङ्कः
प्रजापतिस्त्वं प्रपितामहश्च।
नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्वः
पुनश्च भूयोऽपि नमो नमस्ते।३९।

वायुः, यमः, अग्निः, वरुणः, शशांक, प्रजापतिः, त्वम्, प्रपितामहः, च,
नमः, नमः, ते, अस्तु, सहस्त्रकत्वः, पुनः, च, भूयः, अपि, नमः, नमः, ते।।39।।

अनुवाद : (त्वम्) आप (वायुः) वायु (यमः) यमराज (अग्निः) अग्नि (वरुणः) वरुण (शशांकः) चन्द्रमा (प्रजापतिः) प्रजाके स्वामी ब्रह्मा (च) और (प्रपितामहः) ब्रह्माके भी पिता हैं। (ते) आपके लिये (सहस्त्रकत्वः) हजारों बार (नमः) नमस्कार! (नमः) नमस्कार (अस्तु) हो!! (ते) आपके लिये (भूयः) फिर (अपि) भी (पुनः, च) बार-बार (नमः) नमस्कार! (नमः) नमस्कार!!(39)

अध्याय 11 का श्लोक 40

नमः पुरस्तादथ पृष्ठतस्ते
नमोऽस्तु ते सर्वत एव सर्व।
अनन्तवीर्यामितविक्रमस्त्वं-
सर्वं समाप्नोषि ततोऽसि सर्वः।४०।

नमः, पुरस्तात्, अथ, पष्ठतः, ते, नमः, अस्तु, ते, सर्वतः, एव, सर्व,
अनन्तवीर्य, अमितविक्रमः, त्वम्, सर्वम्, समाप्नोषि, ततः, असि, सर्वः।।40।।

अनुवाद : (अनन्तवीर्य) हे अनन्त सामर्थ्यवाले! (ते) आपके लिये (पुरस्तात्) आगेसे (अथ) और (पष्ठतः) पीछेसे भी (नमः) नमस्कार (सर्व) हे सर्वात्मन्! (ते) आपके लिये (सर्वतः) सब ओरसे (एव) ही (नमः) नमस्कार (अस्तु) हो क्योंकि (अमितविक्रमः) अनन्त पराक्रमशाली (त्वम्) आप (सर्वम्) सब संसारको (समाप्नोषि) व्याप्त किये हुए हैं (ततः) इससे आप ही (सर्वः) सर्वरूप (असि) हैं।(40)

अध्याय 11 का श्लोक 41, 42

सखेति मत्वा प्रसभं यदुक्तं-
हे कृष्ण हे यादव हे सखेति।
अजानता महिमानं तवेदं-
मया प्रमादात्प्रणयेन वापि।४१।

यच्चावहासार्थमसत्कृतोऽसि
विहारशय्यासनभोजनेषु ।
एकोऽथवाप्यच्युत तत्समक्षं-
तत्क्षामये त्वामहमप्रमेयम्।४२।
पितासि लोकस्य चराचरस्य

सखा, इति, मत्वा, प्रसभम्, यत्, उक्तम्, हे कष्ण, हे यादव, हे सखे,
इति, अजानता, महिमानम्, तव, इदम्, मया, प्रमादात्, प्रणयेन, वा, अपि।।41।।
यत्, च, अवहासार्थम्, असत्कतः, असि, विहारशय्यासनभोजनेषु,
एकः, अथवा, अपि, अच्युत, तत्समक्षम्, तत्, क्षामये, त्वाम्, अहम्, अप्रमेयम्।।42।।

अनुवाद : (तव) आपके (इदम्) इस (महिमानम्) प्रभावको (अजानता) न जानते हुए आप मेरे (सखा) सखा हैं (इति) ऐसा (मत्वा) मानकर (प्रणयेन) प्रेमसे (वा) अथवा (प्रमादात्) प्रमादसे (अपि) भी (मया) मैंने (हे कष्ण) हे कष्ण (हे यादव) हे यादव! (हे सखे) हे सखे! (इति) इस प्रकार (यत्) जो कुछ बिना सोचे समझे (प्रसभम्) हठात् (उक्तम्) कहा है (च) और (अच्युत) हे अच्युत! आप (यत्) जो मेरे द्वारा (अवहासार्थम्) विनोदके लिये (विहारशय्यासनभोजनेषु) विहार, शय्या आसन और भोजनादिमें (एकः) अकेले (अथवा) अथवा (तत्समक्षम्) उन सखाओंके सामने (अपि) भी (असत्कतः) अपमानित किये गये (असि) हैं (तत्) वह सब अपराध (अप्रमेयम्) अप्रमेयस्वरूप अर्थात् अचिन्त्य प्रभाववाले (त्वाम्) आपसे (अहम्) मैं (क्षामये) क्षमा करवाता हूँ।(41,42)

अध्याय 11 का श्लोक 43

पितासि लोकस्य चराचरस्य
त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान्।
न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यो-
लोकत्रयेऽप्यप्रतिमप्रभाव ।४३।

पिता, असि, लोकस्य, चराचरस्य, त्वम्, अस्य, पूज्यः, च, गुरुः, गरीयान्,
न, त्वत्समः, अस्ति, अभ्यधिकः, कुतः, अन्यः, लोकत्रये, अपि, अप्रतिमप्रभाव।।43।।

अनुवाद : (त्वम्) आप (अस्य) इस (चराचरस्य) चराचर (लोकस्य) जगत्के (पिता) पिता (च) और (गरीयान्) सबसे बड़े (गुरुः) गुरु एवं (पूज्यः) अति पूजनीय (असि) हैं (अप्रतिमप्रभाव) हे अनुपम प्रभाववाले! (लोकत्रये) तीनों लाकोंमें (त्वत्समः) आपके समान (अपि) भी (अन्यः) दूसरा कोई (न) नहीं (अस्ति) है फिर (अभ्यधिकः) अधिक तो (कुतः) कैसे हो सकता है।(43)

अध्याय 11 का श्लोक 44

तस्मात्प्रणम्य प्रणिधाय कायं-
प्रसादये त्वामहमीशमीड्यम्।

पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः
प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम्।४४।

तस्मात्, प्रणम्य, प्रणिधाय, कायम्, प्रसादये, त्वाम्, अहम्, ईशम्, ईड्यम्,
पिता, इव, पुत्रस्य, सखा, इव, सख्युः, प्रियः, प्रियायाः, अर्हसि, देव, सोढुम्।।44।।

अनुवाद : (तस्मात्) अतऐव प्रभो! (अहम्) मैं (कायम्) शरीरको (प्रणिधाय) भलीभाँति चरणोंमें निवेदित कर (प्रणम्य) प्रणाम करके (ईड्यम्) स्तुति करने योग्य (त्वाम्) आप (ईशम्) प्रभु को (प्रसादये) प्रसन्न होनेके लिये प्रार्थना करता हूँ (देव) हे देव! (पिता) पिता (इव) जैसे (पुत्रस्य) पुत्रके (सखा) सखा (इव) जैसे (सख्युः) सखाके और (प्रियः) प्रेमी पति जैसे (प्रियायाः) प्रियतमा पत्नीके अपराध सहन करते हैं वैसे ही आप भी मेरे अपराधको (सोढुम्) सहन करने (अर्हसि) योग्य हैं।(44)

अध्याय 11 का श्लोक 45

अदृष्टपूर्वं हृषितोऽस्मि दृष्ट्वा
भयेन च प्रव्यथितं मनो मे।
तदेव मे दर्शय देवरूपं-
प्रसीद देवेश जगन्निवास।४५।

अदृष्टपूर्वम्, हृषितः, अस्मि, दृष्टवा, भयेन, च, प्रव्यथितम्, मनः,
मे, तत्, एव, मे, दर्शय, देवरूपम्, प्रसीद, देवेश, जगन्निवास।।45।।

अनुवाद : (अदृष्टपूर्वम्) पहले न देखे हुए आपके इस आश्चर्यमय रूपको (दृष्टवा) देखकर (हृषितः) हर्षित (अस्मि) हो रहा हूँ (च) और (मे) मेरा (मनः) मन (भयेन) भयसे (प्रव्यथितम्) अति व्याकुल भी हो रहा है, इसलिए आप (तत्) उस अपने (देवरूपम्) चतुर्भुज विष्णुरूपको (एव) ही (मे) मुझे (दर्शय) दिखलाइये। (देवेश) हे देवेश! (जगन्निवास) हे जगन्निवास! (प्रसीद) प्रसन्न होइये।(45)

अध्याय 11 का श्लोक 46

किरीटिनं गदिनं चक्रहस्त-
मिच्छामि त्वां द्रष्टुमहं तथैव।
तेनैव रूपेण चतुर्भुजेन
सहस्त्रबाहो भव विश्वमूर्ते।४६।

किरीटिनम्, गदिनम्, चक्रहस्तम्, इच्छामि, त्वाम्, द्रष्टुम्, अहम्,
तथा, एव, तेन, एव, रूपेण, चतुर्भुजेन, सहस्रबाहो, भव, विश्वमूर्ते।।46।।

अनुवाद : (अहम्) मैं (तथा) वैसे (एव) ही (त्वाम्) आपको (किरीटिनम्) मुकुट धारण किये हुए तथा (गदिनम् चक्रहस्तम्) गदा और चक्र हाथमें लिये हुए (द्रष्टुम्) देखना (इच्छामि) चाहता हूँ, (विश्वमूर्ते) हे विश्वस्वरूप! (सहस्रबाहो) हे सहस्त्रबाहो! आप (तेन एव) उसी (चतुर्भुजेन रूपेण) चतुर्भुजरूपसे प्रकट (भव) होइये।(46)

अध्याय 11 का श्लोक 47(भगवान उवाच)

मया प्रसन्नेन तवार्जुनेदं-
रूपं परं दर्शितमात्मयोगात्।
तेजोमयं विश्वमनन्तमाद्यं-
यन्मे त्वदन्येन न दृष्टपूर्वम्।४७।

मया, प्रसन्नेन, तव, अर्जुन, इदम्, रूपम्, परम्, दर्शितम्, आत्मयोगात्,
तेजोमयम्, विश्वम्, अनन्तम्, आद्यम्, यत्, मे, त्वदन्येन, न, दष्टपूर्वम्।।47।।

अनुवाद : (अर्जुन) हे अर्जुन! (प्रसन्नेन) अनुग्रहपूर्वक (मया) मैंने (आत्मयोगात्) अपनी योगशक्तिके प्रभावसे (इदम्) यह (मे) मेरा (परम्) परम (तेजोमयम्) तेजोमय (आद्यम्) सबका आदि और (अनन्तम्) सीमारहित (विश्वम्) विराट् (रूपम्) रूप (तव) तुझको (दर्शितम्) दिखलाया है (यत्) जिसे (त्वदन्येन) तेरे अतिरिक्त दूसरे किसीने (न दष्टपूर्वम्) पहले नहीं देखा था।(47)

अध्याय 11 का श्लोक 48

न वेदयज्ञाध्ययनैर्न दानै-
र्न च क्रियाभिर्न तपोभिरुग्रैः।
एवंरूपः शक्य अहं नृलोके
द्रष्टुं त्वदन्येन कुरुप्रवीर।४८।

न, वेदयज्ञाध्ययनैः, न, दानैः, न, च, क्रियाभिः, न, तपोभिः,
उग्रैः, एवंरूपः, शक्यः, अहम्, नलोके, द्रष्टुम्, त्वदन्येन, कुरुप्रवीर।।48।।

अनुवाद : (कुरुप्रवीर) हे अर्जुन! (नलोके) मनुष्यलोकमें (एवंरूपः) इस प्रकार विश्वरूपवाला (अहम्) मैं (न) न (वेदयज्ञाध्ययनैः) वेद अध्ययनसे, न यज्ञों से (न) न (दानैः) दानसे (न) न (क्रियाभिः) क्रियाओंसे (च) और (न) न (उग्रैः) उग्र (तपोभिः) तपोंसे ही (त्वदन्येन)तेरे अतिरिक्त दूसरेके द्वारा (द्रष्टुम्)देखा जा (शक्यः) सकता हूँ।(48)

अध्याय 11 का श्लोक 49

मा ते व्यथा मा च विमूढभावो-
दृष्ट्वा रूपं घोरमीदृङ्ममेदम्।
व्यपेतभीः प्रीतमनाः पुनस्त्वं-
तदेव मे रूपमिदं प्रपश्य।४९।

मा, ते, व्यथा, मा, च, विमूढभावः, दष्टवा, रूपम्, घोरम्, ईदक्, मम, इदम्,
व्यपेतभीः, प्रीतमनाः, पुनः, त्वम्, तत्, एव, मे, रूपम्, इदम्, प्रपश्य।।49।।

अनुवाद : (मम) मेरे (ईदक्) इस प्रकारके (इदम्) इस (घोरम्) विकराल (रूपम्) रूपको (दष्टवा) देखकर (ते) तुझको (व्यथा) व्याकुलता (मा) नहीं होनी चाहिये (च) और (विमूढभावः) मूढ़भाव भी (मा) नहीं होना चाहिये। (त्वम्) तू (व्यपेतभीः) भयरहित और (प्रीतमनाः) प्रीतियुक्त मनवाला होकर (तत्, एव) उसी (मे) मेरे (इदम्) इस (रूपम्) रूपको (पुनः) फिर (प्रपश्य) देख।(49)

अध्याय 11 का श्लोक 50(संजय उवाच)

इत्यर्जुनं वासुदेवस्तथोक्त्वा
स्वकं रूपं दर्शयामास भूयः।
आश्वासयामास च भीतमेनं-
भूत्वा पुनः सौम्यवपुर्महात्मा।५०।

इति, अर्जुनम्, वासुदेवः, तथा, उक्त्वा, स्वकम्, रूपम्, दर्शयामास, भूयः,
आश्वासयामास, च, भीतम्, एनम्, भूत्वा, पुनः, सौम्यवपुः, महात्मा।।50।।

अनुवाद : (वासुदेवः) वासुदेव भगवान्ने (अर्जुनम्) अर्जुनके प्रति (इति) इस प्रकार (उक्त्वा) कहकर (भूयः) फिर (तथा) वैसे ही (स्वकम्) अपने (रूपम्) चतुर्भुज रूपको (दर्शयामास) दिखलाया (च) और (पुनः) फिर (महात्मा) महात्मा क ष्ण (सौम्यवपुः) सौम्यमूर्ति (भूत्वा) होकर (एनम्) इस (भीतम्) भयभीत अर्जुनको (आश्वासयामास) धीरज दिया।(50)

अध्याय 11 का श्लोक 51(अर्जुन उवाच)

दृष्ट्वेदं मानुषं रूपं तव सौम्यं जनार्दन।
इदानीमस्मि संवृत्तः सचेताः प्रकृतिं गतः।५१।

द ष्टवा, इदम्, मानुषम्, रूपम्, तव, सौम्यम्, जनार्दन,
इदानीम्, अस्मि, संव त्तः, सचेताः, प्रक तिम्, गतः।।51।।

अनुवाद : (जनार्दन) हे जनार्दन! (तव) आपके (इदम्) इस (सौम्यम्) अतिशान्त (मानषुम्, रूपम्) मनुष्य रूपको (द ष्टवा) देखकर (इदानीम्) अब मैं (सचेताः) स्थिर-चित्त (संव त्तः) हो गया (अस्मि) हूँ और (प्रक तिम्) अपनी स्वाभाविक स्थितिको (गतः) प्राप्त हो गया हूँ।(51)

अध्याय 11 का श्लोक 52(श्री भगवान उवाच)

सुदुर्दर्शमिदं रूपं दृष्टवानसि यन्मम।
देवा अप्यस्य रूपस्य नित्यं दर्शनकाङ्क्षिणः।५२।

सुदुर्दर्शम्, इदम्, रूपम्, द ष्टवान्, असि, यत्, मम।
देवाः, अपि, अस्य, रूपस्य, नित्यम्, दर्शनकाङ्क्षिणः।।52।।

अनुवाद : (मम) मेरा (यत्) जो (रूपम्) चतुर्भुज रूप (द ष्टवान्) देखा (असि) है, (इदम्) यह (सुदुर्दर्शम्) सुदुर्दर्श है अर्थात् इसके दर्शन बड़े ही दुर्लभ हैं। (देवाः) देवता (अपि) भी (नित्यम्) सदा (अस्य) इस (रूपस्य) रूपके (दर्शनकांङ्क्षिणः) दर्शनकी आकाङ्क्षा करते रहते हैं।(52)

अध्याय 11 का श्लोक 53

नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया।
शक्य एवंविधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा।५३।

न, अहम्, वेदैः, न, तपसा, न, दानेन, न, च, इज्यया।
शक्यः, एवंविधः, द्रष्टुम्, द ष्टवान्, असि, माम्, यथा।।53।।

अनुवाद : (यथा) जिस प्रकार तुमने (माम्) मुझको (द ष्टवान्) चतुर्भुज रूप में देखा (असि) है (एवंविधः) इस प्रकार (अहम्) मैं (न) न (वेदैः) वेदोंसे (न) न (तपसा) तपसे (न) न (दानेन) दानसे (च) और (न) न (इज्यया) यज्ञसे ही (द्रष्टुम्) देखा (शक्यः) जा सकता हूँ।(53)

अध्याय 11 का श्लोक 54

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परन्तप।५४।

भक्त्या, तु, अनन्यया, शक्यः, अहम्, एवंविधः, अर्जुन।
ज्ञातुम्, द्रष्टुम्, च, तत्त्वेन्, प्रवेष्टुम्, च, परन्तप।।54।।

अनुवाद : (तु) परंतु (परन्तप) हे परन्तप (अर्जुन) अर्जुन! (अनन्यया, भक्त्या) अनन्यभक्ति के द्वारा (एवंविधः) इस प्रकार चतुर्भुज रूप में (अहम्) मैं (द्रष्टुम्) प्रत्यक्ष देखनेके लिये (च) और

(तत्त्वेन) तत्वसे (ज्ञातुम्) जाननेके लिये (च) तथा (प्रवेष्टुम्) मेरे काल-जाल में भली-भाँति प्रवेश करनेके लिए (शक्यः) शक्य हूँ अर्थात् शुलभ हूँ।(54)

अध्याय 11 का श्लोक 55

मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः सङ्गवर्जितः।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव।५५।

मत्कर्मकत्, मत्परमः, मद्भक्तः, संगवर्जितः,
निर्वैरः, सर्वभूतेषु, यः, सः, माम्, एति, पाण्डव।।55।।

अनुवाद : (पाण्डव) हे अर्जुन! (यः) जो (मत्कर्मकत्) मेरे प्रति शास्त्रानुकूल सम्पूर्ण कर्त्तव्य-कर्मोको करनेवाला है, (मत्परमः) मेरे मतानुसार श्रेष्ठ (मद्भक्तः) मतावलम्बी मेरा भक्त (संगवर्जितः) आसक्तिरहित है और (सर्वभूतेषु) सम्पूर्ण प्राणियोंमें (निर्वैरः) वैरभावसे रहित है (सः) वह (माम्) मुझको ही (एति) प्राप्त होता है। अर्थात् मेरे ब्रह्म लोक में बने महास्वर्ग में आ जाता है। जहाँ कभी-2 विष्णु रूप में यह काल दर्शन देता है। ब्रह्म काल को वास्तविक रूप में प्राप्त नहीं किया जा सकता।(55)

मतानुसार अर्थात् वेदों में वर्णित साधना के अनुसार {ब्रह्म साधना का मत(विचार) वेदों में वर्णन है या अब गीता जी में} जो साधक साधना करता है वह उत्तम साधक कहलाता है। क्योंकि अन्य साधना जो शास्त्रानुकूल नहीं है उसको करने वाले पापी तथा राक्षस स्वभाव के कहें हैं। इसी का प्रमाण गीता अध्याय 7 श्लोक 12 से 18, 20 से 23 तक में विस्तत विवरण कहा है तथा शास्त्र विधि को त्याग कर मनमाना आचरण अर्थात् मनमानी पूजा करना व्यर्थ है, (प्रमाण गीता जी के अध्याय 16 के श्लोक 23, 24) वह भी काल को ही प्राप्त होता है अर्थात् काल(ज्योति निरंजन) के जाल में ही रहता है। पूर्ण परमात्मा को प्राप्त करने की विधि से गीता बोलने वाला भगवान भी अपरिचित है। इसलिए कहा है कि तत्वदर्शी संतों को खोज(गीता अध्याय 4 श्लोक 34 तथा अध्याय18 श्लोक 62)।

भावार्थ :- अध्याय 11 के श्लोक 55 में काल भगवान ने कहा है कि हे अर्जुन! जो मेरे द्वारा बताए मार्ग (मतानुसार) मत्परमः यानि मेरे से श्रेष्ठ परम अक्षर ब्रह्म की भक्ति साधना (कर्म) करने वाला मतावलम्बी भक्त (साधक) आसक्ति रहित है, वह मेरा आसक्ति रहित भक्त तथा सर्व प्राणियों से वैर भाव रहित है मुझको प्राप्त होता है। मतानुसार अर्थात् वेदों में वर्णित साधना के अनुसार (क्योंकि ब्रह्म साधना का मत (विचार) वेदों में वर्णन है या अब गीता जी में) जो साधक साधना करता है वह उत्तम साधक कहलाता है। वह भी काल को ही प्राप्त होता है अर्थात् काल (ज्योति निरंजन) के जाल में ही रहता है। अन्य साधना जो शास्त्रानुकूल नहीं है उसको करने वाले पापी तथा राक्षस स्वभाव के कहे हैं। गीता अध्याय 7 श्लोक 12 से 15, गीता जी के अध्याय 16 के श्लोक 23,24 ।

विचार करें :- काल ब्रह्म ने कहा है कि जो वैर भाव रहित भक्त है वही मुझे प्राप्त कर सकता है तथा स्वयं कह रहे हैं कि युद्ध कर अर्जुन। वैर बिना युद्ध अति असम्भव। विशेष बात है कि गीता जी के अध्याय 1 के श्लोक 30 से 39 व 46, अध्याय 2 के श्लोक 4,5 में अर्जुन वैर रहित है तथा कहा है कि मैं युद्ध नहीं करूँगा। इससे अच्छा तो भीख मांग कर गुजारा कर लूँगा। फिर प्रहलाद से प्यार तथा हिरणाकशिपु से वैर भगवान का स्वसिद्ध है।

कप्या पाठक विचार करें कि गीता ज्ञान दाता का मत कितना सही है क्योंकि निर्विकारी होना न भगवान ब्रह्मा के वश, न भगवान विष्णु के क्योंकि भगवान विष्णु ने जैसा पौराणिक मानते हैं कि

भगवान शिव की रक्षार्थ भस्मासुर को गंडहथ नाच नचा कर भस्म कर दिया। भस्मासुर से वैर तथा श्री शिव जी से राग प्रत्यक्ष है। इसी प्रकार प्रहलाद भक्त से राग तथा हिरण्यकशिपु से द्वेष प्रत्यक्ष है। भगवान भी निर्विकार नहीं हो सके। विकार रहित तथा पूर्ण परमात्मा की प्राप्ति तो कबीर साहेब द्वारा बताई विधि से ही हो सकती है। इसी का वर्णन गीता अध्याय 8 श्लोक 28 में है कि पूर्ण ज्ञान होने पर तत्वदर्शी सन्त द्वारा बताए भक्ति मार्ग का अनुसरण करने वाला साधक वेदों में वर्णित भक्ति को ब्रह्म में त्याग कर इस से भी आगे के पद अर्थात् सत्य लोक स्थान को प्राप्त करने वाले ज्ञान के आधार से साधना करता है।

❖ विशेष :- गीता के इस अध्याय 11 श्लोक 55 में ''मत्परमः'' शब्द है। इसका अर्थ है मेरे से दूसरा श्रेष्ठ परमात्मा। काल ने कहा है कि जो मेरे द्वारा बताए मत के अनुसार (मत्परमः) मेरे से अन्य व श्रेष्ठ परमात्मा की भक्ति मेरा भक्त करता है, वह मुझे प्राप्त होता है। कारण यह है कि वेदों में ज्ञान परम अक्षर ब्रह्म का भी है।

परम अक्षर ब्रह्म काल ब्रह्म से श्रेष्ठ है, परंतु भक्ति के मंत्र काल ब्रह्म के हैं। जिस कारण से साधक काल के जाल में ही रह जाता है। गीता अध्याय 12 के श्लोक 1 में अर्जुन ने प्रश्न किया है कि जो आपको सर्वेसवा मानकर आपको भजते हैं तथा दूसरे अविनाशी परमात्मा को भजते हैं। उनमें से किसका ज्ञान और भक्ति उत्तम है? इससे भी यही सिद्ध होता है कि गीता अध्याय 11 के इस श्लोक 55 में मत्परमः = मत् परमः का अर्थ मेरे से अन्य श्रेष्ठ परमात्मा है। गीता में स्थान-स्थान पर कहा है कि यह रहस्यमय ज्ञान है। इसको तत्वदर्शी संत ही जानता है।

(इति अध्याय ग्यारहवाँ)

❑❑❑

बारहवां अध्याय

॥दिव्य सारांश॥

विशेष - अध्याय 12 पूरा ब्रह्म साधना से होने वाले लाभ का परिचय देता है तथा अध्याय 13 पूर्ण ब्रह्म की महिमा से परिचित करवाता है।

❖ *जैसा कि गीता अध्याय 11 श्लोक 55 में गीता ज्ञान कहने वाले ने परम परमात्मा का वर्णन किया है। अर्जुन ने उसी को स्पष्ट करने को कहा है।*

अध्याय 12 के श्लोक 1 में अर्जुन ने प्रश्न किया कि जो कोई आपको निरन्तर भजते हैं तथा जो अविनाशी अदृश परमेश्वर को अति उत्तम भाव से भजते हैं। उनमें योग वेता कौन हैं अर्थात् भक्ति मार्ग का जानने वाला कौन है?

।। सत्यनाम व सारनाम के बिना ब्रह्म के उपासक काल जाल में ही रहते हैं।।

अध्याय 12 के श्लोक 2 में काल भगवान कह रहा है कि जो मुझे भजते हैं वे मुझे अतिउत्तम मान्य हैं। अध्याय 12 के श्लोक 3,4 में फिर कहा है कि जो कोई इन्द्रियों को भली-भाँति वश में करके मन बुद्धि से परे सर्वव्यापी, नित्य, अचल, अदृश, अविनाशी परमात्मा को शास्त्रों में दिए भक्ति के वास्तविक निर्देश को त्याग कर अर्थात् शास्त्रविधि को त्याग कर मन-माना आचरण (पूजा) करते हैं वे सम्पूर्ण प्राणियों का हित चाहने वाले सर्वत्र सम भाव वाले भी मुझको ही प्राप्त होते हैं। यही प्रमाण गीता अध्याय 7 श्लोक 18 में है कि ज्ञानी आत्मा है तो उदार परन्तु तत्वज्ञान के अभाव के कारण मेरी अनुत्तम अर्थात् अश्रेष्ठ गति में ही आश्रित है।

विशेष :-- पवित्र वेदों व गीता जी में जानकारी तो उस अविनाशी अकथनीय अदृश (पूर्ण ब्रह्म सतपुरुष) की सही दे रखी है, परंतु पूजा विधि एक अक्षर ''ॐ'' मन्त्र, यज्ञ आदि केवल निराकार काल भगवान का ही वर्णन कर रखा है। इसलिए मार्कण्डेय जैसे निर्गुण उपासक ''ॐ'' मन्त्र का जाप करते हुए परमात्मा को निर्गुण-निराकार-अविनाशी मान कर साधना करते रहे अंत में पहुँचे महास्वर्ग में यानि ब्रह्मलोक में। इसलिए भगवान कह रहा है कि वे साधक भी मेरे जाल से बाहर नहीं हैं अर्थात् जो मेरे(कृष्ण रूप के व विष्णु रूप के) उपासक विष्णु लोक में आ जाएंगे। मुझे ही प्राप्त होकर अपने पुण्यों कर्मों की कमाई रूपी मलाई खा कर नरक में चले जाएंगे। इसलिए मेरे को (विष्णु रूप में) भजने वाले जल्दी उपलब्धि प्राप्त कर लेते हैं परंतु यह भी साधना नादानों की ही है, अच्छी नहीं। क्योंकि गीता अध्याय 17 श्लोक 23 में पूर्ण परमात्मा की यथार्थ साधना का निर्देश बताया है उस पूर्ण परमात्मा की साधना का ॐ-तत्-सत् यह तीन मन्त्र के जाप का निर्देश है। यहाँ गीता अध्याय 12 श्लोक 3-4 में कहा है कि जो साधक उस पूर्ण परमात्मा कि साधना अनिर्देश अर्थात् शास्त्रों के कथन विरूद्ध {शास्त्रविधि को त्याग कर मनमाना आचरण (पूजा)}करते हैं वे उस पूर्ण परमात्मा को प्राप्त न करके ॐ नाम का जाप करके ब्रह्म लोक को प्राप्त करते हैं। इस प्रकार काल लोक में ही रह जाते हैं। यही प्रमाण गीता अध्याय 7 श्लोक 18 में है कि ये ज्ञानी आत्मा हैं तो उदार परन्तु तत्वज्ञान के अभाव के कारण मेरी अनुत्तम अर्थात् अश्रेष्ठ गति में ही आश्रित हैं।

अध्याय 12 के श्लोक 5 से 8 में कहा है कि जो निराकार मान कर साधना करते हैं वे शरीर को कष्ट दे कर कोशिश करते हैं यह दुःख पूर्वक होती है जिसको आम साधक नहीं कर सकता।

इसलिए मेरी (विष्णु रूप की) पूजा अनन्य भक्ति से करते हैं उनका जल्दी उद्धार करके मत लोक से पीछा (कुछ समय के लिए) छुड़वा दूंगा तथा वे मेरे को विष्णु मान कर पूजते हैं इसलिए विष्णु लोक में ही आ जाएंगे। वहाँ अपने पुण्यों को समाप्त करके फिर जल्दी ही नरक व चौरासी लाख जूनियों में चले जाते हैं। गीता जी के अध्याय 14 के श्लोक 6, 14, 18 ।

अध्याय 12 के श्लोक 9 से 18 तक में भगवान (ब्रह्म) कह रहा है कि मन को अचल करने (रोकने में) में सफल नहीं है तो अभ्यास योग(नाम जाप) कर। यदि अभ्यास योग में भी असमर्थ है तो शास्त्रानुकूल कर्म करता रहे। यदि ऐसा भी नहीं कर सकता तो मन-बुद्धि आदि पर विजय प्राप्त करने वाला होकर कर्म फलों को त्याग कर इससे (त्याग से) तुरंत शांति हो जाती है। जो भक्त राग-द्वेष रहित है वह मुझे अतिप्रिय है।

विशेष : काल ब्रह्म ने कहा है कि मन को रोक कर कर्मफल का त्याग कर दें। जब मन रूक गया तो मुक्ति निश्चित है। {मन तो न शिव से, न ब्रह्मा से, न विष्णु से तथा न ब्रह्म(काल) से रूक सका। अर्जुन मन कैसे रोक सकता है? मन स्वयं काल(ब्रह्म) है। एक हजार भुजाओं (कलाओं) वाले भगवान को तो परम अक्षर ब्रह्म(पूर्णब्रह्म सतपुरुष) के जाप से (जो असंख्य भुजाओं वाला है) रोका जा सकता है। उस परमात्मा के उपासक संत से नाम लेकर गुरु मर्यादा में रहते हुए नाम अभ्यास योग से युक्त भक्त ही मुक्त हो सकता है।} पाठक स्वयं विचार करें ब्रह्म साधना से मन रूक नहीं सकता। इसलिए पूर्ण मुक्ति नहीं है।

अध्याय 12 के श्लोक 19,20 में कहा है कि जो निन्दा स्तुति में समान समझने वाला मननशील, रूखे-सूखे भोजन में संतुष्ट, ममता रहित, स्थिर बुद्धि भक्ति सहित साधक मुझे बहुत प्रिय है और जो मैंने ऊपर विधान (मत) बताया है उसका आचरण (सेवन) करने वाला अतिशय प्रिय है। अर्थात् काम, क्रोध, राग-द्वेष, लोभ-मोह से रहित, निन्दा स्तुति में सम रहने वाला भक्त मुझे बहुत प्रिय है। पाठक स्वयं विचार करें।

ऐसी क्षमता तो तीनों भगवानों (ब्रह्मा, विष्णु, शिव) में भी नहीं है तो आम भक्त (साधक) ऐसा कैसे कर सकता? इसलिए वह काल (ब्रह्म) भगवान को प्रिय हो नहीं सकता और परमात्मा प्राप्ति भी नहीं हो सकती। इति सिद्धम् कि कर्म आधार पर स्वर्ग, नरक, चौरासी लाख जूनियाँ ही जीव को ब्रह्म साधना से अन्तिम उपलब्धि होती है।

विशेष :- अगले अध्याय 13 के श्लोक 12 से अन्तिम श्लोक 34 तक गीता ज्ञान दाता ने अपने से अन्य परमेश्वर का ज्ञान करवाया है। श्लोक 29 तथा 32 में सामान्य ज्ञान है। उसी पूर्ण परमात्मा के विषय में इस अध्याय 12 के श्लोक 20 में कहा है कि जो साधक मत परमाः यानि मेरे से श्रेष्ठ परमात्मा की भक्ति ऊपर बताए नियमों में रहकर करता है, वह मुझे अतिशय प्रिय है।

विवेचन :- ''मत्परमाः'' शब्द का अर्थ एस्कोन वाले अनुवादक ने ''मुझ परमेश्वर को सब कुछ मानते हुए'' किया है तथा अन्य अनुवादकों ने ''मत्परमाः'' शब्द का अर्थ मेरे परयाण होकर'' किया है जो अनुचित है। इसका अर्थ ''मेरे से श्रेष्ठ'' करना उचित है क्योंकि गीता अध्याय 8 श्लोक 13 में एस्कोन वालों ने ''परमा'' का अर्थ ''परम'' किया है। परम का अर्थ श्रेष्ठ है। अन्य अनुवादकों ने भी इसी अध्याय 8 के श्लोक 13 में ''परमा'' का अर्थ ''परम'' किया है जो उचित है। यदि इस अध्याय 12 के श्लोक 20 में ''परमा'' का अर्थ ''परम'' कर दिया जाए तो ''मत् + परमाः'' का अर्थ मेरे से परम यानि श्रेष्ठ परमात्मा के भक्त मुझे अतिशय प्रिय हैं, सही अनुवाद बन जाता है जो आगे के

अध्याय 13 के श्लोक 12-28 तथा 30, 32-34 तक से संबंधित है। वैसे तो अध्याय 13 सम्पूर्ण में गीता ज्ञान दाता से अन्य पूर्ण परमात्मा का ज्ञान है। अब आगे पढ़ेंगे, देखेंगे प्रत्यक्ष प्रमाण, परंतु लेखक का उद्देश्य यह है कि पाठकों को अन्य अनुवादकों के द्वारा किया गया अर्थों का अनर्थ भी दिखाऊँ। जैसे इस अध्याय 12 के श्लोक में ''परमा'' का अनर्थ कर रखा है। एस्कोन वालों ने मत् का अर्थ मुझे तो ठीक किया, ''परमा'' का अर्थ परमात्मा कर दिया, यह गलत है। एस्कोन वालों ने गीता अध्याय 8 श्लोक 3 में ''परमम्'' का अर्थ ''दिव्य'' किया है। यह ठीक है। इस प्रकार अर्थ करने से मत् परमाः का अर्थ मेरे से दिव्य परमात्मा को भजने वाला मुझे अतिशय प्रिय है क्योंकि प्रधानमंत्री के भक्त यानि फैन को प्रान्त के मंत्री विशेष सम्मान देते हैं जो मुख्यमंत्री के भक्त यानि प्रशंसक होते हैं। इसी प्रकार परम अक्षर ब्रह्म के भक्त को काल विशेष सम्मान देता है। इस अध्याय 12 श्लोक 20 में गीता ज्ञान दाता से अन्य का वर्णन है जिसके विषय में अगला अध्याय 13 भरा पड़ा है।

❑❑❑

।।बारहवें अध्याय के अनुवाद सहित श्लोक।।

विशेष :- गीता के इस बारहवें अध्याय में काल ब्रह्म यानि गीता ज्ञान दाता ने अपनी भक्ति का ज्ञान कराया है तथा गीता अध्याय 13 में अपने से अन्य परम अक्षर ब्रह्म का ज्ञान करवाया है जिसके विषय में गीता अध्याय 2 श्लोक 17, अध्याय 18 श्लोक 46, 61, 62, 66 तथा अन्य अनेकों श्लोकों में वर्णन है। जैसा कि गीता अध्याय 11 श्लोक 55 में गीता ज्ञान बताने वाले ने कहा है कि जो साधक (मत्परमाः) मेरे से परम यानि परम अक्षर ब्रह्म को वेदों वाले मत के अनुसार भजते हैं। वे भी मुझे ही प्राप्त होते हैं। (इसका विस्तार से वर्णन अध्याय 11 श्लोक 55 के सारांश में कर दिया है, वहाँ से पढ़ें।) उसी के विषय में अर्जुन ने गीता के इस अध्याय 12 के श्लोक 1 में अर्जुन ने दोनों के विषय में जानना चाहा है। उसका उत्तर आगे श्लोक 2, 3, 4, 5 में स्पष्ट किया है। फिर श्लोक 6-19 तक अपनी जानकारी दी है तथा श्लोक 20 में अपने से अन्य पूर्ण परमात्मा का ज्ञान करवाया है। उसके पश्चात् अध्याय 13 प्रारम्भ हो जाता है जिसमें पूर्ण परमात्मा की महिमा बताई है।

परमात्मने नमः

अथ द्वादशोऽध्यायः

(अर्जुन उवाच) अध्याय 12 का श्लोक 1

एवं सततयुक्ता ये भक्तास्त्वां पर्युपासते।
ये चाप्यक्षरमव्यक्तं तेषां के योगवित्तमाः।।१।।

एवम्, सततयुक्ताः, ये, भक्ताः, त्वाम्, पर्युपासते,
ये, च, अपि, अक्षरम्, अव्यक्तम्, तेषाम्, के, योगवित्तमाः।।1।।

अनुवाद : (ये) जो (भक्ताः) भक्तजन (एवम्) पूर्वोक्त प्रकारसे (सततयुक्ताः) निरंन्तर आपके भजन-ध्यानमें लगे रहकर (त्वाम्) आप (च) और (ये) दूसरे जो केवल (अक्षरम्) अविनाशी सच्चिदानन्दघन (अव्यक्तम्) अदृश को (अपि) भी (पर्युपासते) अतिश्रेष्ठ भावसे भजते हैं (तेषाम्) उन दोनों प्रकारके उपासकोंमें (योगवित्तमाः) अति उत्तम योगवेता अर्थात् यथार्थ रूप से भक्ति विधि को जानने वाला(के) कौन हैं?(1)

विशेष :- गीता ज्ञान देने वाले ने श्लोक नं. 2 में अपनी पूजा के विषय में ज्ञान बताया है।

(भगवान उवाच) अध्याय 12 का श्लोक 2

मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते।
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः।।२।।

मयि, आवेश्य, मनः, ये, माम्, नित्ययुक्ताः, उपासते,
श्रद्धया, परया, उपेताः, ते, मे, युक्ततमाः, मताः।।2।।

अनुवाद : (मयि) मुझमें (मनः) मनको (आवेश्य) एकाग्र करके (नित्ययुक्ताः) निरन्तर मेरे भजन ध्यानमें लगे हुए (ये) जो भक्तजन (परया) अतिशय श्रेष्ठ (श्रद्धया) श्रद्धासे (उपेताः) युक्त होकर (माम्) मुझे (उपासते) भजते हैं, (ते) वे (मे) मुझको (युक्ततमाः) साधकों में अति उत्तम (मताः) मान्य है ये मेरे विचार हैं। (2)

अध्याय 12 का श्लोक 3, 4

ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते।
सर्वत्रगमचिन्त्यं च कूटस्थमचलं ध्रुवम्।३।
सन्नियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः।
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः ।४।

ये, तु, अक्षरम्, अनिर्देश्यम्, अव्यक्तम्, पर्युपासते,
सर्वत्रगम्, अचिन्त्यम्, च, कूटस्थम्, अचलम्, ध्रुवम्।।3।।
सन्नियम्य, इन्द्रियग्रामम्, सर्वत्र, समबुद्धयः,
ते, प्राप्नुवन्ति, माम्, एव, सर्वभूतहिते, रताः।।4।।

अनुवाद : (तु) परंतु (ये) जो (इन्द्रियग्रामम्) इन्द्रियों के समुदाय को (सन्नियम्य) भली प्रकारसे वशमें करके (अचिन्त्यम्) मन-बुद्धिसे परे, अर्थात् तत्वज्ञान के अभाव से (सर्वत्रगम्) सर्वव्यापी (च) और (कूटस्थम्) सदा एकरस रहने वाले (ध्रुवम्) नित्य (अचलम्) अचल (अव्यक्तम्) अदृश (अक्षरम्) अविनाशी परमात्मा को (अनिर्देश्यम्) शास्त्रों के निर्देश के विपरीत अर्थात् शास्त्रविधि त्यागकर (पर्युपासते) निरंतर एकीभावसे ध्यान करते हुए भजते हैं (ते) वे (सर्वभूतहिते) सम्पूर्ण भूतों के हितमें (रताः) रत और (सर्वत्र) सबमें (समबुद्धयः) समानभाववाले योगी (माम्) मुझको (एव) ही (प्राप्नुवन्ति) प्राप्त होते हैं।(4)

भावार्थ :- पूर्ण परमात्मा की भक्ति मंत्रों का ज्ञान न होने के कारण उस परमात्मा की भक्ति काल ब्रह्म वाली साधना करके करते हैं। वे काल जाल में ही रह जाते हैं।

अध्याय 12 का श्लोक 5

क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम्।
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते ।५।

क्लेशः, अधिकतरः, तेषाम्, अव्यक्तासक्तचेतसाम्,
अव्यक्ता, हि, गतिः, दुःखम्, देहवद्भिः, अवाप्यते।।5।।

अनुवाद : (तेषाम्) उन (अव्यक्त आसक्त चेतसाम्) अदृश पूर्ण ब्रह्म में आसक्तचित्तवाले पुरुषोंके साधनमें (क्लेशः) वाद-विवाद रूपी क्लेश अर्थात् कष्ट (अधिकतरः) विशेष है (हि) क्योंकि (देहवद्भिः) देहाभिमानियों के द्वारा (अव्यक्ता) अव्यक्तविषयक (गतिः) गति (दुःखम्) दुःखपूर्वक (अवाप्यते) प्राप्त की जाती है। (5)

विशेष :-- इस श्लोक 5 में क्लेश अर्थात् कष्ट का भावार्थ है कि पूर्ण परमात्मा की साधना मन के आनन्द से विपरित चल कर की जाती है। मन चाहता है शराब पीना, तम्बाखु पीना, मांस खाना, नाचना, गाना आदि इन को त्यागना ही क्लेश कहा है। परमेश्वर की भक्ति विधि का यथार्थ ज्ञान न होने के कारण आपस में वाद-विवाद करके दुःखी रहते हैं। एक दूसरे से अपने ज्ञान को श्रेष्ठ मानकर अन्य से इर्षा करते है जिस कारण से क्लेश होता है।

अध्याय 12 का श्लोक 6

ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि सन्न्यस्य मत्पराः।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते। ६ ।

ये, तु, सर्वाणि, कर्माणि, मयि, सन्न्यस्य, मत्पराः,
अनन्येन, एव, योगेन, माम्, ध्यायन्तः, उपासते।।6।।

अनुवाद : (तु) परंतु (ये) जो (मत्पराः) मेरे से श्रेष्ठ परमात्मा की भक्ति (सर्वाणि) सम्पूर्ण (कर्माणि) कर्मोंको (मयि) मुझमें (सन्न्यस्य) अर्पण करके (माम्) मुझको (एव) ही (अनन्येन) अनन्य (योगेन) भक्तियोगसे (ध्यायन्तः) निरन्तर चिन्तन करते हुए (उपासते) भजते हैं। (6)

अध्याय 12 का श्लोक 7

तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात्।
भवामि नचिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम्। ७ ।

तेषाम्, अहम्, समुद्धर्त्ता, मत्युसंसारसागरात्,
भवामि, नचिरात्, पार्थ, मयि, आवेशितचेतसाम्।।7।।

अनुवाद : (पार्थ) हे अर्जुन! (तेषाम्) उन (मयि) मुझमें (आवेशित चेतसाम्) चित्त लगानेवाले प्रेमी भक्तोंका (अहम्) मैं (नचिरात्) शीघ्र ही (मत्यु संसार सागरात्) मत्युरूप संसारसमुद्रसे (समुद्धर्त्ता) उद्धार करनेवाला (भवामि) होता हूँ। (7)

अध्याय 12 का श्लोक 8

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय।
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः। ८ ।

मयि, एव, मनः, आधत्स्व, मयि, बुद्धिम् निवेशय,
निवसिष्यसि, मयि, एव, अतः, ऊर्ध्वम्, न, संशयः।।8।।

अनुवाद : (मयि) मुझमें (मनः) मनको (आधत्स्व) लगा और (मयि) मुझमें (एव) ही (बुद्धिम्) बुद्धिको (निवेशय) लगा (अतः) इसके (ऊर्ध्वम्) उपरान्त तू (मयि) मुझमें (एव) ही (निवसिष्यसि) निवास करेगा इसमें कुछ भी (संशयः) संश्य (न) नहीं है। (8)

अध्याय 12 का श्लोक 9

अथ चित्तं समाधातुं न शक्नोषि मयि स्थिरम्।
अभ्यासयोगेन ततो मामिच्छाप्तुं धनञ्जय। ९ ।

अथ, चित्तम्, समाधातुम्, न, शक्नोषि, मयि, स्थिरम्,
अभ्यासयोगेन, ततः, माम्, इच्छ, आप्तुम्, धन जय।।9।।

अनुवाद : (अथ) यदि तू (चित्तम्) मनको (मयि) मुझमें (स्थिरम्) अचल (समाधातुम्) स्थापन करनेके लिये (न, शक्नोषि) समर्थ नहीं है (ततः) तो (धन जय) हे अर्जुन! (अभ्यासयोगेन) अभ्यासरूप योगके द्वारा (माम्) मुझको (आप्तुम्) प्राप्त होनेके लिए (इच्छ) इच्छा कर। (9)

अध्याय 12 का श्लोक 10

अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसि मत्कर्मपरमो भव।
मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन्सिद्धिमवाप्स्यसि। १०।

अभ्यासे, अपि, असमर्थः, असि, मत्कर्मपरमः, भव,
मदर्थम्, अपि, कर्माणि, कुर्वन्, सिद्धिम्, अवाप्स्यसि।।10।।

अनुवाद : (अभ्यासे) अभ्यासमें (अपि) भी (असमर्थः) असमर्थ (असि) है तो केवल (मत्कर्मपरमः) मेरे प्रति शास्त्रानुकूल शुभ कर्म करने वाला (भव) हो (मदर्थम्) मेरे लिए (कर्माणि) कर्मोंको (कुर्वन्) करता हुआ (अपि) भी (सिद्धिम्) सिद्धि अर्थात् उद्देश्यको (अवाप्स्यसि) प्राप्त होगा। (10)

अध्याय 12 का श्लोक 11

अथैतदप्यशक्तोऽसि कर्तुं मद्योगमाश्रितः।
सर्वकर्मफलत्यागं ततः कुरु यतात्मवान्।११।

अथ, एतत्, अपि, अशक्तः, असि, कर्तुम्, मद्योगम्, आश्रितः,
सर्वकर्मफलत्यागम्, ततः, कुरु, यतात्मवान्।।11।।

अनुवाद : (अथ) यदि (मद्योगम्) मेरे मतानुसार कर्म योगके (आश्रितः) आश्रित होकर (एतत्) उपर्युक्त साधनको (कर्तुम्) करनेमें (अपि) भी तू (अशक्तः) असमर्थ (असि) है (ततः) तो (यतात्मवान्) प्रयत्नशील हो कर (सर्वकर्मफलत्यागम्) सब कर्मोंके फलका त्याग (कुरु) कर। (11)

अध्याय 12 का श्लोक 12

श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाद्ध्यानं विशिष्यते।
ध्यानात्कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्।१२।

श्रेयः, हि, ज्ञानम्, अभ्यासात्, ज्ञानात्, ध्यानम्, विशिष्यते,
ध्यानात्, कर्मफलत्यागः, त्यागात्, शान्तिः, अनन्तरम्।।12।।

अनुवाद : (अभ्यासात्) तत्वज्ञान के अभाव से शास्त्रविधि को त्याग कर मनमाने अभ्यास से (ज्ञानम्) ज्ञान (श्रेयः) श्रेष्ठ है (ज्ञानात्) शास्त्रों में वर्णित साधना न करके केवल ज्ञान ही ग्रहण करके विद्वान प्रसिद्ध होने वाले के ज्ञानसे (ध्यानम्) सहज ध्यान अर्थात् सहज समाधि (विशिष्यते) श्रेष्ठ है और (ध्यानात्) ध्यानसे भी (कर्मफलत्यागः) कर्मोंके फल का त्याग करके नाम जाप करना श्रेष्ठ है (हि) क्योंकि (त्यागात्) कर्म फल त्याग कर भक्ति करने के कारण उस त्याग से (अनन्तरम्) तत्काल ही (शान्तिः) शान्ति होती है। (12)

अध्याय 12 का श्लोक 13.14

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहङ्कारः समदुःखसुखः क्षमी।१३।
सन्तुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः।१४।

अद्वेष्टा, सर्वभूतानाम्, मैत्रः, करुणः, एव, च,
निर्ममः, निरहंकारः, समदुःखसुखः, क्षमी।।13।।
सन्तुष्टः, सततम्, योगी, यतात्मा, दढनिश्चयः,
मयि, अर्पितमनोबुद्धिः, यः, मद्भक्तः, सः, मे, प्रियः।।14।।

अनुवाद : (यः) जो (सर्वभूतानाम्) सब प्राणियों में (अद्वेष्टा) द्वेष-भावसे रहित (मैत्रः) प्रेमी (च) और (करुणः) दयालु है (एव) तथा (निर्ममः) ममतासे रहित (निरहंकारः) अहंकारसे रहित (समदुःखसुखः) सुख दुःख में सम और (क्षमी) क्षमावान् हैं (योगी) वह योगी (सततम्) निरन्तर (सन्तुष्टः) संतुष्ट है। (यतात्मा) निर्विकारी अर्थात् मन-इन्द्रियोंसहित शरीरको वशमें किये हुए है (दढनिश्चयः) दढ़ निश्चयवाला है (सः) वह (मयि) मुझमें (अर्पितमनोबुद्धिः) अर्पण किये हुए मन-बुद्धिवाला (मद्भक्तः) नियमानुसार भक्ति करने वाला मेरा भक्त (मे) मुझको (प्रियः) प्रिय है।(13,14)

अध्याय 12 का श्लोक 15

यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः।१५।

यस्मात्, न, उद्विजते, लोकः, लोकात्, न, उद्विजते, च, यः,
हर्षामर्षभयोद्वेगैः, मुक्तः, यः, सः, च, मे, प्रियः।।15।।

अनुवाद : (यस्मात्) जिससे (लोकः) कोई भी जीव (न,उद्विजते) उद्वेगको प्राप्त नहीं होता (च) और (यः) जो स्वयं भी (लोकात्) किसी जीवसे (न, उद्विजते) उद्वेगको प्राप्त नहीं होता (च) तथा (यः) जो (हर्षामर्षभयोद्वेगैः) हर्ष, अमर्ष, भय और उद्वेगादिसे (मुक्तः) रहित है (सः) वह भक्त (मे) मुझको (प्रियः) प्रिय है। (15)

अध्याय 12 का श्लोक 16

अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः।
सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः।१६।

अनपेक्षः, शुचिः, दक्षः, उदासीनः, गतव्यथः,
सर्वारम्भपरित्यागी, यः, मद्भक्तः, सः, मे, प्रियः।।16।।

अनुवाद : (यः) जो (अनपेक्षः) आकांक्षासे रहित (शुचिः) बाहर-भीतरसे शुद्ध (दक्षः) चतुर (उदासीनः) पक्षपातसे रहित और (गतव्यथः) दुःखोंसे छूटा हुआ है (सः) वह (सर्वारम्भ परित्यागी) सब आरम्भोंका त्यागी अर्थात् जिसने शास्त्रविधि विरूद्ध भक्ति कर्म आरम्भ कर रखे थे। उनको त्यागकर शास्त्रविधि अनुसार करने वाला (मद्भक्तः) मतानुसार मेरा भक्त (मे) मुझको (प्रियः) प्रिय है।(16)

अध्याय 12 का श्लोक 17

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः।१७।

यः, न, हृष्यति, न, द्वेष्टि, न, शोचति, न, काङ्क्षति,
शुभाशुभपरित्यागी, भक्तिमान्, यः, सः, मे, प्रियः।।17।।

अनुवाद : (यः) जो (न) न (हृष्यति) हर्षित होता है (न) न (द्वेष्टि) द्वेष करता है (न) न (शोचति) शोक करता है (न) न (काङ्क्षति) कामना करता है तथा (यः) जो (शुभाशुभ परित्यागी) शुभ और अशुभ सम्पूर्ण कर्मोंका त्यागी है (सः) वह (भक्तिमान्) भक्तियुक्त (मे) मुझको (प्रियः) प्रिय है।(17)

अध्याय 12 का श्लोक 18

समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः सङ्गविवर्जितः।१८।

समः, शत्रौ, च, मित्रे, च, तथा, मानापमानयोः,
शीतोष्णसुखदुःखेषु, समः, संगविवर्जितः।।18।।

अनुवाद : (शत्रौ, मित्रे) शत्रु-मित्रमें (च) और (मानापमानयोः) मान-अपमानमें (समः) सम है (तथा) तथा (शीतोष्णसुखदुःखेषु) सर्दी गर्मी और सुख-दुःखादि द्वन्द्वोंमें (समः) सम है (च) और (संगविवर्जितः) आसक्तिसे रहित है।(18)

अध्याय 12 का श्लोक 19

तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी सन्तुष्टो येन केनचित्।
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः।१९।

तुल्यनिन्दास्तुतिः, मौनी, सन्तुष्टः, येन, केनचित्,
अनिकेतः, स्थिरमतिः, भक्तिमान्, मे, प्रियः, नरः।।19।।

अनुवाद : (तुल्यनिन्दास्तुतिः) निन्दा स्तुति को समान समझनेवाला (मौनी) मननशील और (येन,केनचित्) जिस किसी प्रकारसे (सन्तुष्टः) संतुष्ट है और (अनिकेतः) ममता और आसक्तिसे रहित है वह (स्थिरमतिः) स्थिरबुद्धि (भक्तिमान्) भक्तिमान् (नरः) मनुष्य (मे) मुझको (प्रियः) प्रिय है।(19)

अध्याय 12 का श्लोक 20

ये तु धर्म्यामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते।
श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः। २०।

ये, तु, धर्म्यामतम्, इदम्, यथा, उक्तम्, पर्युपासते,
श्रद्धानाः, मत्परमाः, भक्ताः, ते, अतीव, मे, प्रियाः।।20।।

अनुवाद : (तु) परंतु (ये) जो (श्रद्धानाः) श्रद्धायुक्त पुरुष (मत्परमाः) मेरे से उत्तम परमात्मा को शास्त्रानुकूल साधना के परायण होकर (इदम्) इस (यथा, उक्तम्) ऊपर कहे हुए (धर्म्यामतम्) धर्ममय अमत के अनुसार (पर्युपासते) पूर्ण श्रद्धा से पूजा अर्थात् उपासना करते हैं (ते) वे (भक्ताः) भक्त (मे) मुझको (अतीव) अतिशय (प्रियाः) प्रिय हैं।(20)

विशेष :- अगले अध्याय 13 के श्लोक 12 से अन्तिम श्लोक 34 तक गीता ज्ञान दाता ने अपने से अन्य परमेश्वर का ज्ञान करवाया है। श्लोक 29 तथा 32 में सामान्य ज्ञान है। उसी पूर्ण परमात्मा के विषय में इस अध्याय 12 के श्लोक 20 में कहा है कि जो साधक मत परमाः यानि मेरे से श्रेष्ठ परमात्मा की भक्ति ऊपर बताए नियमों में रहकर करता है, वह मुझे अतिशय प्रिय है।

विवेचन :- ''मत्परमाः'' शब्द का अर्थ एस्कोन वाले अनुवादक ने ''मुझ परमेश्वर को सब कुछ मानते हुए'' किया है तथा अन्य अनुवादकों ने ''मत्परमाः'' शब्द का अर्थ मेरे परयाण होकर'' किया है जो अनुचित है। इसका अर्थ ''मेरे से श्रेष्ठ'' करना उचित है क्योंकि गीता अध्याय 8 श्लोक 13 में एस्कोन वालों ने ''परमा'' का अर्थ ''परम'' किया है। परम का अर्थ श्रेष्ठ है। अन्य अनुवादकों ने भी इसी अध्याय 8 के श्लोक 13 में ''परमा'' का अर्थ ''परम'' किया है जो उचित है। यदि इस अध्याय 12 के श्लोक 20 में ''परमा'' का अर्थ ''परम'' कर दिया जाए तो ''मत् + परमाः'' का अर्थ मेरे से परम यानि श्रेष्ठ परमात्मा के भक्त मुझे अतिशय प्रिय हैं, सही अनुवाद बन जाता है जो आगे के अध्याय 13 के श्लोक 12-28 तथा 30,32-34 तक से संबंधित है। वैसे तो अध्याय 13 सम्पूर्ण में अन्य पूर्ण परमात्मा का ज्ञान है। अब आगे पढ़ेंगे, देखेंगे प्रत्यक्ष प्रमाण, परंतु लेखक का उद्देश्य यह है कि पाठकों को अन्य अनुवादकों के द्वारा किया गया अर्थों का अनर्थ भी दिखाऊँ। जैसे इस अध्याय 12 के श्लोक 20 में ''परमा'' का अनर्थ कर रखा है। एस्कोन वालों ने मत् का अर्थ मुझे तो ठीक किया, ''परमा'' का अर्थ परमात्मा कर दिया, यह गलत है। एस्कोन वालों ने गीता अध्याय 8 श्लोक 3 में ''परमम्'' का अर्थ ''दिव्य'' किया है। यह ठीक है। इस प्रकार अर्थ करने से मत् परमाः का अर्थ मेरे से दिव्य परमात्मा को भजने वाला मुझे अतिशय प्रिय है क्योंकि प्रधानमंत्री के भक्त यानि फैन को प्रान्त के मंत्री विशेष सम्मान देते हैं। इसी प्रकार परम अक्षर ब्रह्म के भक्त को काल विशेष सम्मान देता है। इस अध्याय 12 श्लोक 20 में गीता ज्ञान दाता से अन्य का वर्णन है।

(इति अध्याय बारहवाँ)

❑❑❑

तेरहवां अध्याय

।।दिव्य सारांश।।

पूर्ण परमात्मा की महिमा का वर्णन

विशेष :- श्रीमद्भगवत गीता का अध्याय 13 पूरा गीता ज्ञानदाता से अन्य समर्थ पूर्ण परमात्मा की महिमा से भरा है तथा अध्याय 12 में गीता ज्ञानदाता काल ब्रह्म ने अपनी महिमा बताई है।

।। क्षेत्र व क्षेत्रज्ञ की परिभाषा ।।

गीता अध्याय 13 के श्लोक 1 से 6 तक वर्णन है कि शरीर तथा इस शरीर में विकारों (काम, क्रोध, लोभ-मोह, अहंकार आदि) तथा निराकार स्थिति में तथा दश इन्द्रियों तथा उनमें विद्यमान विषय शब्द-स्पर्श-रूप-रस व गंध आदि का विवरण है। जो इन सर्व कारणों को जानता है वह क्षेत्रज्ञ (पंडित) कहलाता है। गीता बोलने वाला कह रहा है कि क्षेत्रज्ञ भी मुझे जान।

पिंड का अर्थ है शरीर (क्षेत्र यहाँ शरीर को कहा है) तथा क्षेत्रज्ञ का अर्थ है शरीर के बारे में जानने वाला कि इसमें कमलों में कौन परमात्मा कहाँ-2 पर स्थित हैं तथा सुषमना द्वार कहाँ है? कमलों की जानकारी हो उसे क्षेत्रज्ञ अर्थात् शरीर को जानने वाला क्षेत्रज्ञ (पंडित) कहा है। इसका विवरण छन्दों (वेदों के मन्त्रों) में तथा बहुत से ऋषियों ने भी किया है।

।। आन उपासना को व्याभिचारिणी भक्ति बताना ।।

गीता अध्याय 13 के श्लोक 7 से 11 तक कहा है कि जो कोई मान-सम्मान से दुःखी व सुखी न हो कर आडम्बर पूजा रहित, अहिंसा वादी, क्षमा स्वभाव युक्त गुरु जी की सेवा श्रद्धा भक्ति से करते हुए तथा शुद्धि पूर्वक अन्तःकरण में स्थित आत्मा को सही स्थिर करके तथा पूर्ण वैराग्य (प्रत्येक वस्तु से आसक्ति को हटा कर) होकर स्त्री-पुत्र-धन आदि में कोई आस्था न रहे और ममता, उपास्य देव व अनउपास्य देव की प्राप्ति या न प्राप्ति में ईश्वरिय रजा में अर्थात् इष्ट वादिता को छोड़ कर श्रेष्ठ ज्ञान के आश्रित समचित रह कर केवल मेरी अव्याभिचारिणी भक्ति {केवल एक इष्ट की उपासना, अन्य देवताओं की साधना को व्यभिचारिणी, वैश्या, जैसी बताई है जो एक पति पर स्थाई न होकर मन भटकाती है। वह कहीं आदर नहीं पाती} *ऐसे एक पूर्ण परमात्मा को न भज कर सब की पूजा को व्यभिचारिणी (वैश्या) जैसी भक्ति की संज्ञा दी है। आम व्यक्ति जो भक्ति भाव का न हो उनसे प्रेम न करना, आध्यात्म ज्ञान (भक्ति का ज्ञान) का नित्य चिंतन सर्व को तत्व ज्ञान रूप से देखना (समभाव रखना) यह तो श्रेष्ठ ज्ञान है। इसके विपरीत सब अज्ञान है। नशा करना, शराब, तम्बाखू, मांस, भांग प्रयोग करना, राग द्वेष रखना, आन उपासना (देवी-देताओं की पूजा, व्रत, तीर्थ, गंगा स्नान, गोवर्धन 'गिरीराज' की फेरी, मन्दिर में मूर्ति की पूजा) करना आदि अज्ञान कहा है तथा व्याभिचारिणी भक्ति कहा है।*

।। पूर्ण परमात्मा ही जानने व भक्ति योग्य है।।

गीता अध्याय 13 के श्लोक 12 से 18 में भगवान (काल-ब्रह्म) कह रहा है कि जो जानने योग्य है जिसको जान कर परमानन्द (अमर पद) को प्राप्त होता है, उस पूर्ण परमात्मा के ज्ञान को भली भाँति कहूँगा। वह अनादि वाला (जिसकी उत्पत्ति न हो) परम अक्षर ब्रह्म (पूर्ण परमात्मा/सतपुरुष) न तो सत और न असत कहा जा सकता है। {सत का अर्थ अक्षर (अविनाशी) तथा असत का अर्थ क्षर (नाशवान) ही कहा जा सकता है। क्योंकि यह परमात्मा तो अन्य ही है। जैसा गीता जी के अध्याय 15 के श्लोक 16 में कहा है कि दो भगवान हैं- एक क्षर (असत/नाशवान) और दूसरा अक्षर (अविनाशी/सत)।

फिर अध्याय 15 के 17वें श्लोक में कहा है कि वास्तव में अविनाशी तो इनसे भी भिन्न अन्य ही है जिसे अविनाशी परमेश्वर इस नाम से कहा गया है जो तीनों लोकों में प्रवेश करके सबका धारण-पोषण करता है। (कृप्या देखें गीता जी के अध्याय 15 के श्लोक 16 व 17 में)}

वह सब ओर हाथ-पैर, तथा सिर-नेत्र वाला, सब ओर कान वाला है का तात्पर्य है कि वह सर्वव्यापक है अर्थात् उसकी पहुँच से तथा दृष्टि से कोई बाहर नहीं है। वही सबको अपने में समाये हुए स्थित हैं गरीबदास जी महाराज कहते हैं कि -

जाके अर्ध रूम पर सकल पसारा, ऐसा पूर्ण ब्रह्म हमारा।

गरीब, अनन्त कोटि ब्रह्मण्ड का, एक रति नहीं भार। सतगुरु पुरुष कबीर हैं, कुल के सिरजन हार।।

भावार्थ :- संत गरीबदास जी ने परमात्मा के साथ ऊपर जाकर सर्व मण्डलों को देखा। परमात्मा की महिमा व लीला को देखा।

वही परमात्मा (पूर्णब्रह्म) सब इन्द्रियों के जानने वाला है। चूंकि उसी मालिक ने ब्रह्म (काल) को भी उत्पन्न किया। {गीता जी के अध्याय 3 के श्लोक 14,15 में कहा है कि सर्व प्राणी अन्न से उत्पन्न होते हैं, अन्न वर्षा से होता है, वर्षा यज्ञ से, यज्ञ शुभकर्मो से होती है, कर्म ब्रह्म (काल) से हुए। ब्रह्म (काल) अविनाशी (परम अक्षर) भगवान से उत्पन्न हुआ। वही परम अक्षर ब्रह्म (पूर्ण परमात्मा) सब यज्ञों में प्रतिष्ठित (विद्यमान है, पूज्य है, यज्ञों का फल देने वाला अधियज्ञ) है।} *वह इन्द्रियों से रहित आसक्ति रहित, सबका धारण पोषण करने वाला और सत्यलोक में रहते हुए तथा यहाँ अपनी निराकार शक्ति से सर्व का संचालक होते हुए गुणों को भोगने वाला, सर्व प्राणियों के अन्दर व बाहर और चर-अचर (सर्व का मूल कारण होने), निराकार शक्ति रूप में सूक्ष्म (अदृश्य) होने से न जाना जाने वाला (अविज्ञय) है अर्थात् उस अविनाशी परमात्मा (सतपुरुष) को कोई नहीं जान सकता। निराकार शक्ति से सर्व कार्य करने वाला होने से वह नजदीक से नजदीक सब प्राणियों के हृदय में (कार्य सिद्धि के लिए तुरन्त लाभ दे देता है, इसलिए दूर नहीं) और दूर सतलोक में भी है। {उस परमेश्वर (सतपुरुष) का भेद न होने से दूर भी है क्योंकि उसके दर्शन पूर्ण गुरु सतनाम व सारनाम दाता से नाम ले कर आजीवन गुरु मर्यादा में रह कर किए जा सकते हैं अन्यथा नहीं}*

एक सर्व शक्तिमान होने के कारण (अविभक्तम् = विभागरहित) उस परमेश्वर की शक्ति सर्व प्राणियों (असंख ब्रह्मण्डों में सर्वशक्तिमान तथा सर्वव्यापक) में स्थित है। वही (परमात्मा) जानने योग्य है जो सर्व ब्रह्मण्डों, जिसमें काल ब्रह्म के इक्कीस ब्रह्मण्ड जिनमें श्री ब्रह्मा, श्री विष्णु, श्री शिव के लोक सहित 14 लोक, स्वर्ग, मृत्यु तथा पाताल लोक और परब्रह्म के सात संख ब्रह्मण्डों सहित का पालन कर्त्ता और उत्पन्न करने वाला वह परमात्मा माया धारी काल से अन्य कहा जाता है।

ज्ञान सागर अति उजागर, निर्विकार निरंजनम। ब्रह्म ज्ञानी महा ध्यानी, सत सुकृत दुःख भंजनं।

आदरणीय गरीबदास जी महाराज अपनी अमृत वाणी 'ब्रह्मवेदी' में उसी पूर्ण परमात्मा के विषय में कहा है। गीता अध्याय 13 श्लोक 17 में कहा है कि वही पूर्ण परमात्मा सबके हृदय में विशेष रूप में स्थित है। जैसे सूर्य एक स्थान पर होते हुए भी सर्व प्राणियों को अपने साथ ही दिखाई देता है, परन्तु आँखे उसे देख सकती हैं इसलिए कह सकते हैं कि सूर्य आँखों में ही विशेष रूप से विद्यमान है क्योंकि आँखें ही प्रकाश देख सकती हैं। जो ऊष्णता (सूर्य) का विशेष रूप में गुण है। उसे केवल महसूस किया जा सकता है। इसी प्रकार पूर्ण परमात्मा सत्यलोक में रह कर भी प्रत्येक प्राणी के हृदय कमल में जीव के साथ सूर्य की ऊष्णता की तरह अपनी निराकार शक्ति द्वारा अभेद भी रहता है।

गीता अध्याय 13 श्लोक 18 में क्षेत्र (शरीर) तथा जानने योग्य (परमात्मा-पूर्णब्रह्म) उत्तम ज्ञान संक्षेप में कहा है। (मद्भक्त) - मतभक्त विचारों पर चलने वाला भक्त उसी विचारों वाला हो जाता है। यदि श्रीमद्भगवद् का सन्धि छेद करें तो श्री-मत-भगवत्-गीता। यहाँ 'श्रीमत' का अर्थ है कि अति उत्तम विचार (मत्) जो भगवान ने दिए, गीता का अर्थ ज्ञान है। इसलिए श्रीमद्भगवद् गीता का अर्थ है जो श्रेष्ठ विचार भगवान ने स्वयं दिए वह ज्ञान है। मद्भक्त का भावार्थ 'मत (विचार) भक्त (साधक)' बनता है अर्थात् ऊपर के ज्ञान (मत) विचारों को जान कर वह मद्भक्त उन्हीं विचारों (मत वाला) के भाव वाला हो जाता है। प्रकरण वश मत् का अर्थ मेरा भी होता है जो भगवत भक्त इस उत्तम ज्ञान को जान कर उन्हीं विचारों अनुरूप हो जाता है तथा काल (ब्रह्म) के जाल से निकल जाता है। यहां तक कि गीता जी के अध्याय 7 के श्लोक 24 में कहा है कि बुद्धिहीन मेरे अनुत्तम (गन्दे) अटल (अविनाशी) काल भाव कि मैं अदृश्य हूँ कभी आकार में सर्व के समक्ष नहीं आता को नहीं जानते। इसलिए मुझे व्यक्ति (कृष्ण) रूप में ही समझते हैं अर्थात् मैं व्यक्ति (आकार) रूप में कभी नहीं आता।

अन्य अनुवाद कर्त्ताओं ने इस श्लोक के टीका में जो अनुत्तम शब्द है का अर्थ किसी ने ज्यों का त्यों लिख दिया - अनुत्तम = अनुत्तम। किसी-किसी ने अनुत्तम = सर्व श्रेष्ठ किया है। उत्तम का अर्थ अच्छा (श्रेष्ठ) और अनुत्तम का अर्थ बुरा (गन्दा) अर्थात् अश्रेष्ठ हुआ।

विशेष :-- कुछ श्रद्धालु कहते हैं कि समास में अनुत्तम का अर्थ उत्तम ही होता है। यदि ऐसा माने तो गीता ज्ञान दाता ने पूर्ण शान्ति तथा स्थाई स्थान यानि अमर लोक की प्राप्ति के लिए किसी अन्य परमात्मा की शरण में जाने के लिए क्यों कहा प्रमाण गीता अध्याय 18 श्लोक 46, 62, 66 अध्याय 15 श्लोक 4 तथा अपने से अन्य परमात्मा के विषय में ज्ञान किसलिए बताया है। प्रमाण गीता अध्याय 13 श्लोक 12 से 17,22 से 24, 27-28,30-31-34 अध्याय 15 श्लोक 16-17 अध्याय 5 श्लोक 6,10,13 से 21 तथा 24-25-26 अध्याय 3 श्लोक 15-19 अध्याय 6 श्लोक 7,19-20-25-26-27 अध्याय 4 श्लोक 31-32 अध्याय 17 श्लोक 23-25-27 अध्याय 8 श्लोक 1-3,8 से 10,17 से 22

यह सब पूर्ण ज्ञान न होने के कारण तथा भावना वश इष्टवादिता वश होकर स्वयं भी अंधेरे में तथा पाठक भी अज्ञान को ही प्राप्त होते हैं। अर्थ का अनर्थ किया है। अनुत्तम का सर्वश्रेष्ठ अर्थ किया है। इसी प्रकार गीता अध्याय 18 श्लोक 66 में व्रज का अर्थ आना किया है जबकि व्रज का अर्थ जाना होता है। ऐसे अन्य अनुवाद कर्त्ताओं ने अर्थ का अनर्थ किया है।

।। पूर्ण परमात्मा तथा राष्ट्री प्रकति दोनों अनादि ।।

गीता अध्याय 13 श्लोक 19 में कहा है कि राष्ट्री प्रकति (प्रथम माया अर्थात् जिसे राजेश्वरी शक्ति भी कहते हैं, जिससे परमेश्वर ने सर्व ब्रह्मण्डों को ठहराया है) और पुरुष (पूर्ण परमात्मा) इन दोनों को ही अनादि (सदा रहने वाला और जिसकी उत्पत्ति न हुई हो) जान। चूंकि पुरुष (परमात्मा-पूर्णब्रह्म) पहले अनामी लोक में अकेला रहता था। सर्व आत्माऐं प्रभु के शरीर में समाई थी। बाद में कविर्देव पूर्ण परमात्मा ने नीचे के तीन लोक अगम लोक, अलख लोक तथा सतलोक की रचना अपनी शब्द शक्ति से की तथा स्वयं भी अपनी शब्द शक्ति से सतपुरुष सतलोक में स्वयं प्रकट हुआ, इसीलिए स्वयंभू कहलाता है तथा आदि माया (प्रकति) को परम हंस से हंस शब्द शक्ति से बनाया तथा सर्व जीव प्रकति में प्रवेश किए। इसलिए जब परब्रह्म (अक्षर पुरुष) महाप्रलय करता है उस समय ज्योति निरंजन औंकार को सर्व लोकों समेत समाप्त करेगा। उस समय प्रकति को उसी रूप में सुक्ष्म बना कर परब्रह्म लोक में रखा जाता है और ब्रह्म (ज्योति निरंजन काल) बीज रूप में रखा जाता है तथा इसकी उत्पत्ति फिर होती है। यही प्रकति लड़की रूप में इसके साथ होती है। काल (ब्रह्म) के नीचे के लोक रचे जाते हैं। तीन अच्छी आत्माओं (श्रेष्ठ आत्माओं) को ब्रह्म (ज्योति निरंजन) भगवान अपनी प्रकति (अष्टंगी) से रति क्रिया करके उत्पन्न करता है उनको श्री ब्रह्मा, श्री विष्णु, श्री महेश की उपाधी देता है। ये नई श्रेष्ठ आत्माएँ होती है। पहले वाले विष्णु, ब्रह्मा, शिव चौरासी लाख योनियों में चले जाते हैं।

क्योंकि यही काल भगवान ब्रह्म लोक में तीन रूपों (महाविष्णु- महाब्रह्मा-महाशिव) में रहता है। और वहां पर तीनों बच्चों की उत्पत्ति करके उन्हें चेतनाहीन रख कर पालन करता रहता है। जवान होने पर अलग-2 जगह पर रख देता है। जिससे इन्हें मालूम ही नहीं कि हम कहाँ से आए। इसलिए इसी अध्याय के श्लोक 19 में प्रकति व पूर्ण परमात्मा को अनादि कहा है और विकारों (काम, क्रोध, लोभ, मोह, राग-द्वेष) को, गुणों (रजगुण-ब्रह्मा, सतगुण-विष्णु, तमगुण-शिव) को भी प्रकति (आदिमाया- प्रकति) से उत्पन्न जान।

गीता अध्याय 13 श्लोक 20 में कहा है कि जगत की उत्पत्ति का कारण तथा कर्म (कार्य) के लिए प्रकति ही मुख्य है तथा पुरुष (सतपुरुष) अपने भक्त का सुख-दुःख का कारण कहा जाता है क्योंकि पूर्ण ब्रह्म (परम अक्षर पुरुष) सर्वव्यापक तथा सर्वशक्तिमान व सर्व जीवों में स्थित होते हुए भी उन जीवों के कष्ट को बिना नियमित साधना (पूर्ण गुरु जो सतनाम व सारनाम देता है। उससे दीक्षा लेकर साधना किए बिना) दूर नहीं कर सकता। जीव को शक्ति दे कर जीव स्थिति में चला रहा वही पूर्ण परमात्मा इस सुख-दुःख का कारण कहा है।

गीता अध्याय 13 श्लोक 21 में कहा है कि ''परम अक्षर ब्रह्म'' (सतपुरुष) सूर्य की तरह सर्वव्यापक होने से प्रकति में भी स्थित है। प्रकति से उत्पन्न तीनों गुणों रजगुण ब्रह्मा जी, सतगुण विष्णु जी तथा तमगुण शिव जी की उपासना का भी भोग लगाने वाला मूल परमात्मा ही है। सर्व को कर्म आधार पर नियमानुसार फल देने वाला भी वही पूर्ण ब्रह्म ही है। इसलिए गुणों का भोक्ता कहा है। गुणों का संग (तीनों देवताओं की उपासना) करने से अच्छी-बुरी योनियों में (प्राणी) जन्म लेते हैं। गीता अध्याय 13 श्लोक 22 में कहा है कि यही सतपुरुष (पूर्ण परमात्मा) उपद्रष्टा (सब को बाहर-भीतर से देखने वाला) तथा अनुमन्ता (कर्म अनुसार कर्म की अनुमति देने वाला), धारण करने वाला और सर्वस्वा होने के कारण महेश्वर (पूर्णब्रह्म) है जो इस शरीर (क्षेत्र) में भी है। इसी

को क्षेत्री व शरीरी भी कहा है। उसे परमात्मा (अकाल पुरुष) कहा गया है।

❖ अध्याय 13 श्लोक 23 में कहा है कि इस प्रकार जो कोई परमात्मा (पूर्णब्रह्म) तथा प्रकति (अष्टंगी) को गुणों (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) सहित ठीक से जान लेता है। वह सब प्रकार से पूर्णब्रह्म की उपासना करके वर्तमान में भी फिर नहीं जन्मता अर्थात् उसी जीवन में अपनी भक्ति को सुचारू करके (पूर्ण गुरु तत्वदर्शी संत की तलाश करके) मुक्त हो जाता है।

''अन्य अनुवादकर्ताओं का गोल-माल''

गीता अध्याय 13 श्लोक 22 में मेरे से अन्य सब अनुवादकों ने गलत अनुवाद किया है। लिखा है कि देह यानि शरीर में स्थित यह आत्मा वास्तव में परमात्मा ही है। यही ब्रह्मादि का भी स्वामी होने से महेश्वर है। सबका धारण-पोषण करने वाला होने से भर्ता है, जीव रूप में भोक्ता है।

पाठकजन विचार करें :- अनुवादक ने आत्मा को ब्रह्मादिक यानि ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव का भी स्वामी बताया है जो आध्यात्मिक ज्ञान का टोटा स्पष्ट दिखाई देता है। देखें इस अनुवादक जयदयाल गोयन्दका द्वारा अनुवादित गीता अध्याय 13 श्लोक 22 की फोटोकॉपी :-

॥ श्रीहरिः ॥ 17

श्रीमद्भगवद्गीता

पदच्छेद, अन्वय और

साधारण भाषाटीकासहित

सं० २०७१ इकहत्तरवाँ पुनर्मुद्रण १०,०००

कुल मुद्रण ९,२०,५००

प्रकाशक एवं मुद्रक—
गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५
(गोबिन्दभवन-कार्यालय, कोलकाता का संस्थान)
फोन : (०५५१) २३३४७२१, २३३१२५०; फैक्स : (०५५१) २३३६९९७
e-mail : booksales@gitapress.org website : www.gitapress.org

अध्याय १३

उपद्रष्टानुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः।
परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन्पुरुषः परः॥ २२॥

उपद्रष्टा, अनुमन्ता, च, भर्ता, भोक्ता, महेश्वरः,
परमात्मा, इति, च, अपि, उक्तः, देहे, अस्मिन्, पुरुषः, परः॥ २२॥

अस्मिन् = इस
देहे (स्थितः) अपि = देहमें स्थित
पुरुषः = यह आत्मा
(वास्तवमें)
परः (एव) = परमात्मा[३] ही है। (वही)
उपद्रष्टा = साक्षी होनेसे उपद्रष्टा
च = और
अनुमन्ता = यथार्थ सम्मति देनेवाला होनेसे अनुमन्ता,
भर्ता = सबका धारण-पोषण करनेवाला होनेसे भर्ता,
भोक्ता = जीवरूपसे भोक्ता,
महेश्वरः = ब्रह्मा आदिका भी स्वामी होनेसे महेश्वर
च = और
परमात्मा = शुद्ध सच्चिदानन्दघन होनेसे परमात्मा—
इति = ऐसा
उक्तः = कहा गया है।

यह फोटोकॉपी गीता अध्याय 13 श्लोक 22 की है जिसका अनुवाद जयदयाल गोयन्दका ने किया है तथा गीता प्रैस गोरखपुर से प्रकाशित है।

इसमें स्पष्ट है कि अनुवादक को तत्वज्ञान का अभाव रहा है। जिस कारण से गलत अनुवाद किया है कि इस देही (शरीर) में स्थित (पुरुषः) आत्मा वास्तव में परमात्मा ही है। यही सबका पालन-पोषण करने वाला ब्रह्मादिक (ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव) का भी स्वामी होने से महेश्वर तथा शुद्ध सच्चिदानंद होने से (परमात्मा) परमात्मा ऐसा कहा गया है। यह अनुवाद पूर्ण रूप से गलत है। कष्ण कपा मूर्ति श्री श्री मद् ए.सी. भक्ति वेदान्त स्वामी प्रभुपाद द्वारा अनुवादित तथा भक्ति वेदान्त बुक ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित में इस अध्याय 13 के श्लोक 22 का अनुवाद ठीक किया है। इन्होंने इस श्लोक की सँख्या 23 लिखी है, मूल पाठ वही है।

गीतोपनिषद्

श्रीमद्भगवद्गीता

यथारूप

कृष्णकृपामूर्ति

श्री श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद

संस्थापकाचार्य : अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ

अध्याय १३ श्लोक २३ ४३७

उपद्रष्टानुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः।
परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन्पुरुषः परः॥ २३॥

उपद्रष्टा—साक्षी; **अनुमन्ता**—अनुमति देने वाला; **च**—भी; **भर्ता**—स्वामी; **भोक्ता**—परम भोक्ता; **महा-ईश्वरः**—परमेश्वर; **परम्-आत्मा**—परमात्मा; **इति**—भी; **च**—तथा; **अपि**—निस्सन्देह; **उक्तः**—कहा गया है; **देहे**—शरीर में; **अस्मिन्**—इस; **पुरुषः**—भोक्ता; **परः**—दिव्य।

तो भी इस शरीर में एक अन्य दिव्य भोक्ता है, जो ईश्वर है, परम स्वामी है और साक्षी तथा अनुमति देने वाले के रूप में विद्यमान है और जो परमात्मा कहलाता है।

यह फोटोकॉपी गीता अध्याय 13 श्लोक 22/23 की है। अनुवादक ने अनुवाद कुछ-कुछ ठीक किया है, कुछ गलत किया है। जो गलत किया है, उस पर प्रकाश डालता हूँ। अनुवाद में लिखा है कि इस शरीर में एक अन्य दिव्य भोक्ता है जो ईश्वर है। शब्दार्थ में ''पुरूषः'' का अर्थ भोक्ता किया है और ''परः'' का अर्थ दिव्य किया है जबकि ''पुरूषः'' का अर्थ परमात्मा है और परः का अर्थ अन्य यानि दूसरा है। अनुवाद में भी गलत किया है। अनुवाद में यह तो स्पष्ट है कि जीवात्मा से अन्य परमात्मा भी शरीर में है। यह दास (रामपाल दास यानि अनुवादक व लेखक) भी यही कहता है कि जीवात्मा के साथ परम अक्षर ब्रह्म की शक्ति अभेद है। परंतु अन्य अनुवादक तत्वज्ञान से परिचित नहीं हैं। जिस कारण से कोई न कोई गलती कर ही देते हैं। उदाहरण के लिए = जयदयाल गोयन्दका ने तो पूर्ण रूप से इस अध्याय 13 के श्लोक 22 का अनुवाद गलत किया है जो आप जी ने इस श्लोक के अनुवाद की फोटोकॉपी में देख लिया है। एस्कोन वाले ने भी शब्दों का अर्थ गलत किया है। जैसे मूल पाठ में स्पष्ट है कि शरीर में आत्मा के साथ अन्य परमात्मा है (अस्मिन देहे) इस शरीर में (परः पुरूषः) अन्य परमेश्वर है जो (उपद्रष्टः, अनुमन्ता, भर्ता, भोक्ता महेश्वरः परमात्मा इति च अपि उक्तः) जीवात्मा के प्रत्येक कार्य पर दृष्टि रखने से उपदृष्टा किसी भी कार्य करने के विचार के समय अपनी प्रेरणा से अनुमति देने वाला और सर्व का धारण-पोषण करने से भर्ता, धार्मिक अनुष्ठानों में भोग लगाने वाला होने से भोक्त और ब्रह्मादिक (ब्रह्मा, विष्णु, शिव को ब्रह्मादिक कहा जाता है जैसे ब्रह्मा के चारों पुत्रों को सनकादिक कहते हैं) तथा क्षर पुरूष यानि काल ब्रह्म तथा अक्षर पुरूष का भी स्वामी यानि ईश होने से महेश्वर तथा आत्मा से भी श्रेष्ठ होने से परमात्मा कहा गया है। यथार्थ अनुवाद यह है। एस्कोन वालों ने ''पुरूषः परः'' का अर्थ गलत किया है जो इस प्रकार है :- पुरूषः का अर्थ भोक्ता किया है, परः का अर्थ दिव्य किया है जो

गलत है। अनुवाद में भी गलत लिखा है कि ''इस शरीर में एक अन्य दिव्य भोक्ता है जो ईश्वर है।'' जबकि यथार्थ अनुवाद ऊपर मेरे द्वारा किया गया है। इस प्रकार गीता का यथार्थ भावार्थ गीता पाठकों तक नहीं पहुँच पाया जिसकी पूर्ति इस पुस्तक ''गरिमा गीता की'' में की गई है।

।। मनमुखी साधना व्यर्थ।।

गीता अध्याय 13 के श्लोक 24 में कहा है कि आत्मतत्व में पहुँचने के लिए कुछ तो आत्मध्यान (मैडिटेशन) के द्वारा दूसरे कुछ ज्ञान योग (केवल कीर्तन व पाठ करके) से, दूसरे जो वे कर्मयोग से आत्म दर्शन करते हैं। क्योंकि परमात्मा पूर्णब्रह्म को पाने के लिए आत्म शुद्धि की जाती है। उसके तरीके ऊपर वर्णन किए हैं। आत्म शुद्धि तो समझो खेत (क्षेत्र) संवार दिया। यदि उसमें सत्यनाम बीज नहीं बोया तथा सारनाम रूपी कलम नहीं चढ़ाई तो भी केवल आत्म शुद्धि से भी बात नहीं बनेगी अर्थात् मुक्ति नहीं। इसलिए काल भगवान सत्यनाम की जानकारी नहीं देता। केवल एक अक्षर औंकार (ऊँ) मन्त्र का जाप बताता है। यह मन्त्र (बीज) है। इस मन्त्र से केवल स्वर्ग-महास्वर्ग तथा फिर जन्म-मरण ही प्राप्त हो सकता है अर्थात् पूर्ण मुक्ति नहीं। यहाँ पर ज्ञान तो दे दिया आम के पौधे (पूर्णब्रह्म-पूर्णपुरुष) का परंतु बीज (मन्त्र-नाम) दे दिया बबूल (काल-ब्रह्म) का। इस लिए जीव आम का फल (पूर्ण मुक्ति) प्राप्त नहीं कर पाते तथा अंत में तप्त शिला पर काल भूनता है उस समय पछताते हैं। फिर क्या बने?

कबीर, करता था तो क्यों रह्या, अब कर क्यों पछताय। बोवै पेड़ बबूल का, आम कहाँ से खाय।।

विशेष :-- गीता अध्याय 13 श्लोक 24 का भावार्थ है कि जो सांख्य योगी अर्थात् तत्वज्ञानी शिक्षित व्यक्ति हैं वे अपनी साधना तत्वज्ञान के आधार से दूध और पानी छानकर प्रारम्भ करते हैं। दूसरे कर्म योगी अर्थात् जो ज्ञानी व शिक्षित हैं। उनको शिक्षित व्यक्ति जैसी सलाह देता है वे उनके कहने पर कर्मयोग आधार से अर्थात् ज्ञान की कांट छांट न करके भक्ति कर्म में लग जाते हैं। वे कर्मयोगी कार्य करते-2 साधना करते हैं। गीता अध्याय 5 श्लोक 4-5 में कहा है कि दोनों प्रकार के साधक (सांख्य योगी व कर्मयोगी) समान भक्ति फल प्राप्त करते हैं।

।। भक्ति के लिए अक्षर ज्ञान आवश्यक नहीं।।

गीता अध्याय 13 के श्लोक 25 में कहा है कि परंतु इनसे अन्य भक्त स्वयं विद्वान न होने से दूसरों से सुनकर उपासना करते हैं तथा वे सुन कर मार्ग पर लगने वाल` (श्रुति परायणः) भी यदि उनकी भक्ति पूर्ण संत के अनुसार है (सतनाम व सारनाम की करते हैं) तो मत्यु (जन्म-मरण) से तर जाते हैं मुक्त हो जाते हैं, चाहे वे विद्वान भी न हों अर्थात् भक्ति मुक्ति के लिए पढ़ा लिखा अर्थात् विद्वान होना आवश्यक नहीं है। उसकी साधना शास्त्र विधि अनुसार होनी चाहिए।

गीता अध्याय 13 के श्लोक 26 में वर्णन है कि हे अर्जुन! जितने भी स्थावर जंगम जीव हैं वे क्षेत्र (शरीर रूप खेत) तथा क्षेत्रज्ञ (ब्रह्म) के संयोग से ही उत्पन्न समझ। क्योंकि इस मिट्टी आदि पांच तत्व के पुतले को पूर्ण पुरुष सतपुरुष की शक्ति ही चला रही है तथा काल अपनी प्रकति (दुर्गा) के संयोग से जीव उत्पन्न करता है।

।।पूर्ण ज्ञानी वही है जो केवल पूर्ण परमात्मा को अविनाशी मानता है।।

गीता अध्याय 13 के श्लोक 27 का भाव है कि परमात्मा (पूर्णब्रह्म) को जो अविनाशी रूप से जानता है वह (साधक) सही जानने वाला है कि जीव स्थूल शरीर में नष्ट होता नजर आता है परंतु

सूक्ष्म शरीर में जीवित रहता है। वह भी परमात्मा की शक्ति से ही जीवित है। उसकी शक्ति के बिना जीव निष्क्रिय है। जैसे देवी भागवत् महापुराण में प्रकति देवी (अष्टंगी) कहती है कि हे ब्रह्मा, विष्णु, महेश! तुम और सर्व प्राणी मेरी शक्ति से चल रहे हो। यदि मैं अपनी शक्ति वापिस ले लूं तो तुम, जगत तथा सर्व प्राणी शुन्य (असहाय) हो जायेंगे। देखें देवी भागवद् महापुराण। फिर इस प्रकति (माया) को शक्ति सतपुरुष से ही प्राप्त है। इसलिए शक्ति का मूल श्रोत पूर्ण परमात्मा होने का कारण कहा है कि उसी शक्ति से क्षेत्रज्ञ (काल) के द्वारा जीव उत्पन्न होते हैं।

गीता अध्याय 13 के श्लोक 28 में कहा है कि जो साधक उसी परमात्मा को समान भाव से सर्वत्र स्थित मानता है वह आत्मघात नहीं कर रहा है। (सूर्य दूर स्थान पर होते हुए भी उसकी ऊष्णता निराकार रूप में सर्वव्यापक है)सत्य ज्ञान होने से सही मार्ग पर लग कर पूर्ण गुरु (जो पूर्णब्रह्म के सतनाम व सारनाम का दाता है) से नाम ले कर मुक्त हो जाता है। इससे परमगति (पूर्ण मुक्ति) को प्राप्त होता है। क्योंकि पूर्ण परमात्मा सतपुरुष की भक्ति न करके तीन लोक (ब्रह्मा, विष्णु, शिव व माई-प्रकति व काल-ब्रह्म) की साधना से जीव की लख चौरासी जूनियों में भ्रमणा-भटकणा नहीं मिटती। इसलिए यह साधना व्यर्थ है। यह काल साधना तो सर्व जीव बहुत बार कर चुके हैं। इन्द्र, कुबेर, ईश (भगवान पद ब्रह्मा, विष्णु, शिव) जैसी अच्छी उपाधी काल (ब्रह्म) साधना से अनेकों बार प्राप्त की। परंतु पूर्ण संत न मिलने से पूर्ण परमात्मा (परमेश्वर) का ज्ञान नहीं हुआ। इसलिए उत्तम साधना नहीं मिली। पूर्ण मुक्ति (परमगति) नहीं हुई। अध्याय 13 में सारे अध्याय में पूर्ण परमात्मा की जानकारी दी है कि उस परमात्मा की भक्ति से जीव पूर्ण मोक्ष अर्थात् अनादि मोक्ष प्राप्त कर सकता है। परंतु गीता जी में पूर्ण पुरुष की भक्ति कैसे करें? यह जानकारी कहीं नहीं। वह जानकारी केवल पूर्ण संत (सतगुरु) अर्थात् तत्वदर्शी संत ही दे सकते हैं। जिसका विवरण गीता अध्याय 4 मंत्र 34 में है। इसलिए गीता जी के अध्याय 13 के श्लोक 28 में कहा है कि जिसको उस परमात्मा की वास्तविक स्थिति का ज्ञान हो गया वह (आत्मना आत्मानम्, न हिनस्ति) आत्म घात से बच गया। इसमें स्पष्ट है कि काल (ब्रह्म) स्वयं कहता है कि यदि मेरी भक्ति साधक करता है तो कुछ समय के लिए जन्म-मरण (कल्प अंत तक) मैं भी समाप्त कर सकता हूँ। मेरी भक्ति भी तीनों गुणों (ब्रह्मा-रजगुण, विष्णु-सतगुण, शिव-तमगुण) से ऊपर उठ कर (अर्थात् इन भगवानों की भक्ति को भी त्याग कर) केवल एक अक्षर ''ऊँ'' का जाप करें। परंतु पूर्ण मुक्ति के लिए उस परमात्मा (पूर्ण ब्रह्म) की भक्ति पूर्ण आचार्य (गुरु) से नाम मन्त्र लेकर उसकी सेवा श्रद्धा से करके प्राप्त कर सकते हैं। इससे स्वसिद्ध है कि जो पूर्णब्रह्म की भक्ति करता है वह आत्मघात (आत्म हत्या) से बच जाता है। इससे यह सिद्ध हुआ कि इस भक्ति के अतिरिक्त जो आन देव (ब्रह्मा, विष्णु, शिव, देवी-देवताओं, जिनकी भक्ति तो पहले ही ब्रह्म साधना में भी बाधक है इससे आगे ब्रह्म-काल) की साधना करना भी आत्मघात के समान अर्थात् व्यर्थ है। इसी का प्रमाण यजुर्वेद अध्याय 40 में भी है। कबीर साहेब कहते हैं -

कबीर, जो यम (काल) को कर्त्ता (भगवान) भाखै (कहै)। तजै सुधा (अमत) नर विष (जहर) को चाखै।।

इस वाणी का भावार्थ है कि जो कोई साधक ब्रह्म (काल/यम) को भगवान जान कर पूजता है तथा वह अमत (सतपुरुष) को छोड़ कर जहर (काल की साधना से जन्म-मरण, चौरासी लाख योनियों की पीड़ा रूपी जहर) को चाख रहा है। अर्थात् पूर्ण परमात्मा के पूर्ण मोक्ष का आनन्द न मिल कर काल (ब्रह्म) साधना से होने वाले जन्म-मरण व अन्य प्राणियों के कष्टमय जीवन को आनन्द समझ रहा है। इसलिए उस परमात्मा (पूर्णब्रह्म) की साधना करो तथा सतलोक में जहाँ

सुख का सागर है अर्थात् कोई कष्ट नाम की वस्तु नहीं है, न जन्म-मरण है, वहाँ चलो!

।। शब्द ।।

मन तू चलि रे सुख के सागर। जहां शब्द सिंध रत्नागर।।टेक।।
कोटि जन्म जुग भरमत हो गये, कुछ नहीं हाथि लग्या रे।
कूकर (कुत्ता) शुकर (सूअर) खर (गधा) भया बौरे, कौआ हंस बुगा रे।।1।।
कोटि जन्म जुग राजा किन्हा, मिटि न मन की आशा।
भिक्षुक होकर दर–दर हांढा, मिल्या न निरगुण रासा।।2।।
इन्द्र कुबेर ईश की पदवी, ब्रह्मा वरूण धर्मराया।
विष्णु नाथ के पुर कूं पहुँचा, बहुरि अपूठा आया।।3।।
असंख जन्म जुग मरते होय गये, जीवित क्यौं न मरै रे।
द्वादश मधि महल मठ बौरे, बहुरि न देह धरै रे।।4।।
दोजिख भिसति सबै तैं देखें, राज पाट के रसिया।
त्रिलोकी से त्रिपति नांहि, यौह मन भोगी खसिया।।5।।
सतगुरु मिलैं तो इच्छा मेटैं, पद मिलि पदह समाना।
चल हंसा उस देश पठाऊं, आदि अमर अस्थाना।।6।।
च्यारि मुक्ति जहां चंपी करि हैं, माया होय रही दासी।
दास गरीब अभै पद परसै, मिले राम अविनासी।।7।।

भावार्थ :- ***कपया इस शब्द को ध्यान पूर्वक विचारें। इसमें आदरणीय गरीबदास जी महाराज कह रहे हैं कि हे मन! तू सुख के सागर सतलोक चल। इस काल (ब्रह्म) लोक में असंखों जन्म मरते-जन्मते हो गए। अभी तक कुछ हाथ नहीं आया। चौरासी लाख योनियों का कष्ट करोड़ों बार उठाया। कुकर (कुत्ता) सुकर (सुअर) खर (गधा) जैसी कष्टमई योनियों में तंग पाया। आगे कहा कि ब्रह्म (काल) साधना करके ऊँ जाप, तप, यज्ञ, हवन, दान आदि करके राजा बना। इन्द्र (स्वर्ग का राजा) बना और ब्रह्मा-विष्णु-शिव के उत्तम पद पर भी रहा। कुबेर (धन का देवता) बना, वरुण (जल का देवता) भी बना और उत्तम लोक विष्णु जी के लोक में भी विष्णु (कष्ण, राम आदि) की साधना करके कुछ समय पुण्य कर्मों के भोग को भोगकर वापिस जन्म-मरण, नरक के चक्र में गिर गया।***

यदि तत्वदर्शी संत सतगुरू मिल जाता तो काल लोक को असार तथा सत्यलोक को सर्व सुखदायी का ज्ञान करवाकर काल ब्रह्म के लोक की सर्व नाशवान वस्तुओं की इच्छा समाप्त करता। स्वर्ग का राजा यानि देवराज इन्द्र भी मरता है। फिर गधा बनता है तो पथ्वी के राज को प्राप्त करके भी राज भोगकर राजा गधा बनता है। इस प्रकार के ज्ञान से पूर्ण परमात्मा की भक्ति से साधक का मन काल ब्रह्म के लोक से हटकर परम अक्षर ब्रह्म यानि सतपुरूष में तथा उसके सनातन परम धाम की प्राप्ति की हृदय से इच्छा करता है। इस कारण से *''जहाँ आशा तहाँ बासा होई, मन कर्म वचन सुमरियो सोई।''*

भावार्थ है कि साधक की आस्था जिस प्रभु तथा लोक को प्राप्त करने की होती है तो उसी को प्राप्त करता है। उसी लोक को प्राप्त करने की साधना करके उसी में निवास करता है। इसलिए उसी का स्मरण मन-कर्म-वचन से करना चाहिए। तत्वज्ञान से साधक की आस्था सतपुरूष (परमेश्वर) तथा उसके सतलोक को प्राप्त करने की होती है। जिस कारण से अमर लोक प्राप्त होता है। फिर उस साधक की कभी मत्यु नहीं होती। वह परम अक्षर ब्रह्म यानि अविनाशी राम कबीर मिल जाता है। ऐसी सच्चाई तत्वदर्शी संत बताता है। सत्यलोक में जो चार मुक्तियों का सुख

है। वह सदा बना रहता है। काल ब्रह्म के लोक में एक दिन समाप्त होता है। साधक नरक में भी जाता है। अन्य प्राणियों के शरीरों में भी कष्ट भोगता है। सतलोक में सदा सुखी रहता है।

।। देवी-देवताओं का राजा इन्द्र भी गधा बनता है।।

एक समय मार्कण्डेय ऋषि निरंकार ईश्वर मान कर ब्रह्म (काल) की कई वर्षों से साधना कर रहे थे। इन्द्र (जो स्वर्ग का राजा है) को चिंता बनी कि कहीं यह साधक अधिक तप करके इन्द्र की पदवी प्राप्त न करले। चूंकि इन्द्र की पदवी (पोस्ट) अधिक यज्ञ करके या अधिक तप करके प्राप्त की जाती है। उसका (इन्द्र का) शासन काल बहत्तर चौकड़ी (चतुर्युगी) युग का होता है। उसके शासन काल के दौरान यदि कोई साधक इन्द्र की पदवी पाने योग्य साधना कर लेता है तो उस वर्तमान इन्द्र (स्वर्ग के राजा) को बीच में ही पद से हटा कर नए साधक को इन्द्र पद दे दिया जाता है। इसलिए इन्द्र को यह चिंता बनी रहती है कि कोई तप या यज्ञ करके मेरे राज्य को न छीन ले। इसलिए वह उस साधक का तप या यज्ञ बीच में खण्ड करवा देता है।

इसी उद्देश्य से इन्द्र ने मार्कण्डेय ऋषि के पास एक उर्वसी स्वर्ग से भेजी। उर्वसी ने अपनी सिद्धि शक्ति से सुहावना मौसम बनाया तथा खूब नाची-गाई। अंत में निवस्त्र हो गई। तब मार्कण्डेय ऋषि ने कहा कि हे बहन! हे बेटी! हे माई! आप यहाँ किस लिए आई? इस पर उर्वसी ने कहा कि हे मार्कण्डेय गुसांई! आप जीत गए मैं हार गई। आप एक बार इन्द्र लोक में चलो नहीं तो मेरा मजाक करेंगे कि तू हारकर आई है। मार्कण्डेय बोले मैं जहाँ की साधना (महास्वर्ग-ब्रह्म लोक की साधना) कर रहा हूँ। वहाँ पर जो नाचने वाली तथा गाने वाली हैं उनके पैर धोने वाली तेरे जैसी सात-2 बान्दियाँ हैं। तेरे को क्या देखूं। तेरे से अगली कोई अधिक सुन्दर हो उसे भेज दे। इस पर उर्वसी ने कहा कि इन्द्र की पटरानी मैं ही हूँ अर्थात् मेरे से सुन्दर कोई नहीं है।

इस पर मार्कण्डेय गोंसाई बोले कि जब इन्द्र मरेगा तब क्या करेगी? उर्वसी बोली मैं चौदह इन्द्र वरूंगी अर्थात् मैं तो एक बनी रहूँगी मेरे सामने चौदह इन्द्र अपनी-2 इन्द्र पदवी भोग कर मर जाएंगे। मेरी आयु स्वर्ग की पटरानी के रूप में है। (72 गुणा 14) 1008 चतुर्युग तक अर्थात् एक ब्रह्मा के दिन (एक कल्प) की आयु एक इन्द्र की पटरानी शची की है।

मार्कण्डेय ऋषि बोले चौदह इन्द्र भी मरेंगे तब क्या करेगी? उर्वसी बोली जितने इन्द्र मैं भोगुंगी वे गधे बनेंगे तथा मैं गधी बनूंगी। मार्कण्डेय ऋषि बोले, हे सुंदरी! जिस लोक का राजा तो गधा बनेगा और रानी गधी बनेगी, ऐसे लोक में चलने के लिए क्यों कह रही है?

उर्वशी बोली, मेरी इज्जत रखने के लिए। वहाँ मेरा उपहास करेंगे कि तू तो हारकर आई है। मार्कण्डेय ऋषि बोले कि गधियों की कैसी इज्जत? तू आज भी गधी है क्योंकि तू चौदह खसम करेगी यानि चौदह पुरूषों को पति बनाएगी। मरने के पश्चात् तो गधी बनेगी ही। उर्वशी शर्मिन्दा होकर चली गई।

इस प्रसंग से यह भी सिद्ध हुआ है कि काल ब्रह्म के लोक में तथा अक्षर पुरूष यानि परब्रह्म के लोक में कितनी ही लंबी आयु हो, अंत अवश्य है। मंत्यु निश्चित है, परंतु सत्यलोक में ऐसा नहीं है। संत गरीबदास जी ने बताया है कि इतनी लंबी आयु के बाद भी यहाँ मंत्यु होगी। आपको सत्यपुरूष की भक्ति बताने वाला तत्वदर्शी संत नहीं मिला। जिस कारण से जन्म-मंत्यु का कष्ट झेल रहे हो।

गरीब, एती उम्र, बुलंद मरेगा अंत रे। सतगुरु लगे न कान, न भेटैं संत रे।।

स्वर्ग लोक से इन्द्र आया तथा कहने लगा कि हे बन्द निवाज! आप जीत गए हम हार गए।

चलो इन्द्र की गद्दी प्राप्त करो। इस पर मार्कण्डेय ऋषि बोले- रे-रे इन्द्र क्या कह रहा है? इन्द्र का राज मेरे किस काम का। मैं तो ब्रह्म लोक की साधना कर रहा हूँ। वहाँ पर तेरे जैसे इन्द्र अलिलों (नील संख्या) में हैं उन्होंने मेरे चरण छुए। तू भी अनन्य मन से (नीचे की साधना - ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा देवी-देवताओं की आस्था त्यागकर एक प्रभु में आस्था को अनन्य मन कहते हैं) ब्रह्म की साधना कर ले। ब्रह्म लोक में साधक कल्पों तक मुक्त हो जाता है।

इन्द्र ने कहा ऋषि जी, फिर कभी देखेंगे। अब तो आनन्द करने दो। यहाँ विशेष विचारने की बात है कि इन्द्र जी को मालूम है कि इस क्षणिक स्वर्ग के राज का सुख भोग कर गधा बनुंगा। फिर भी मन व इन्द्रियों के वश हुआ विकारों के आनन्द को नहीं त्यागना चाहता। इसी प्रकार जो शराब पीता है उसे उत्तम मान कर त्यागना नहीं चाहता। इसी प्रकार ब्रह्मा, विष्णु, शिव भी अपनी पदवी को भोग कर मर जाएंगे और फिर चौरासी लाख योनियों को प्राप्त होगें। नई श्रेष्ठ आत्मा काल निरंजन के घर प्रकति (अष्टंगी) के उदर से जन्म लेती है तथा उन्हें फिर तीन लोक का राज्य दे देता है- ब्रह्मा को शरीर बनाना, विष्णु को स्थिति और शिव को संहार (प्रलय)। चूंकि काल (ब्रह्म) शापवश प्रतिदिन एक लाख (मनुष्य-देव-ऋषि) शरीर धारी प्राणी खाता है। उसके लिए इसके तीनों पुत्र व्यवस्था बनाए रखते हैं।

आदरणीय गरीबदास साहेब जी कह रहे हैं कि हे मूर्ख मन! असंख्यों जन्म हो गए इस काल लोक में कष्ट उठाते। अब जीवित मर ले। जीवित मरना है - न पथ्वी के राज की चाह, न स्वर्ग के राज की, न ब्रह्मा-विष्णु-शिव बनने की चाह, न शराब-तम्बाखू-सुल्फा, न अफीम, न माँस प्रयोग की इच्छा तथा तीन लोक व ब्रह्म लोक की साधना को त्याग कर उस पूर्ण परमात्मा (पूर्णब्रह्म सतपुरुष) की साधना अनन्य (अव्याभिचारिणी) भक्ति करके सतलोक (सच्चखण्ड) चला जा। फिर तेरा जन्म-मरण सदा के लिए समाप्त हो जाएगा। जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण पवित्र गीता जी के अध्याय 13 में तथा रह-रह कर प्रत्येक अध्याय में दिया है।

फिर कहा है कि कोई पूर्ण संत (सतगुरु) मिले तो सही ज्ञान (जो गीता जी के अध्याय 13 पूरे में है) बता कर उत्तम साधना सतनाम तथा सारनाम दे कर पार करे। जहाँ (सतलोक में) चार मुक्ति जो ब्रह्म साधना की अंतिम उपलब्धि है वहाँ (सतलोक के) के स्थाई सुख के सामने तुच्छ है तथा माया (सर्व सुविधा देने वाली) वहाँ आम भक्त (हंस) की सेवक है। अर्थात् हर सुविधा तथा सुख चरणों में पड़ा रहता है। इन्द्र का स्वर्ग राज, सतलोक की तुलना में कौवे की बीट (टटी) के समान है। तथा मिले राम अविनाशी (परम अक्षर ब्रह्म) की प्राप्ति हो जाएगी। उसको प्राप्त करके पूर्ण मुक्त (परम गति को प्राप्त) हो जाएगा।

।। क्षेत्र (शरीर) क्षेत्रज्ञ (ब्रह्म) तथा क्षेत्री (परमात्मा-आत्मा सहित) को जानकर भक्त काल-जाल से मुक्त हो जाता है।।

अध्याय 13 के श्लोक 29 में कहा है कि जो कोई साधक सम्पूर्ण कर्मों को प्रकति के वश होकर किए जा रहे हैं ऐसे समझ लेता है व इस जीव को निर्दोष जानता है। फिर पूर्ण परमात्मा की साधना पूर्ण गुरु रूपी वकील करके मुकदमा लड़ कर पार होने की चेष्टा करता है।

अध्याय 13 के श्लोक 30 में कहा है कि जब (कोई साधक) सम्पूर्ण प्राणियों के भिन्न-2 भाव को तथा विस्तार (उत्पत्ति) को एक ही में स्थित देखता है तब वह उस पूर्ण परमात्मा (ततः ब्रह्म) को प्राप्त हो जाता है। देखने का भाव है कि ज्ञान रूपी आँखों से मूल ज्ञान के आधार पर अपनी साधना

बदल कर पूर्ण संत (गुरु) की शरण जा कर पूर्ण मुक्ति प्राप्त कर जाता है। क्योंकि उसे काल (ब्रह्म) के जाल की पूर्ण जानकारी हो जाती है।

अध्याय 13 के श्लोक 31 में कहा है कि हे अर्जुन! अनादि (सदा एक रस तथा जिसकी उत्पत्ति कभी नहीं होती) होने से तथा निर्गुण होने से यह अविनाशी परमात्मा पूर्णब्रह्म शरीर में रहता हुआ भी न कुछ करता है तथा न लिप्त ही होता है। जैसे सूर्य का प्रकाश सर्व अच्छे बुरे पदार्थों पर पड़ता है, परन्तु लिप्त नहीं होता, इसी प्रकार पूर्ण परमात्मा अपनी निराकार शक्ति से सर्व कार्य करता हुआ स्वयं कुछ करता नजर नहीं आता।

अध्याय 13 श्लोक 31 का भाव है कि जैसे सूर्य दूरस्थ होने से भी जल के घड़े में दृष्टिगोचर होता है तथा निर्गुण शक्ति अर्थात् ताप प्रभावित करता रहता है, इसी प्रकार पूर्ण परमात्मा अपने सत्यलोक में रहते हुए भी प्रत्येक आत्मा में प्रतिबिम्ब रूप से रहता है। जैसे अवतल लैंस पर सूर्य की किरणें अधिक ताप पैदा कर देती हैं तथा उत्तल लैंस पर अपना स्वाभाविक प्रभाव ही रखती हैं। इसी प्रकार शास्त्र विधि अनुसार साधक अवतल लैंस बन जाता है। जिससे ईश्वरीय शक्ति का अधिक लाभ प्राप्त करता है तथा शास्त्र विधि त्याग कर मनमाना आचरण करने वाला साधक केवल कर्म संस्कार ही प्राप्त करता है।

अध्याय 13 के श्लोक 32 में कहा है कि जैसे प्रकाश सब जगह पर व्याप्त है। फिर भी सुक्ष्म होने के कारण निर्लेप है। ऐसे ही शरीर में जीव आत्मा भी निर्लेप है। चूंकि परमात्मा में आत्मा ऐसे रहती है जैसे वायु में गंध। इसलिए दोनों ही शरीर में विद्यमान रहते हैं तथा आत्मा का गुण भी परमात्मा से मिलता जुलता है। शरीर में आत्मा जीव संज्ञा में है परंतु परमात्मा निर्लेप अर्थात् अविनाशी है।

अध्याय 13 के श्लोक 33 में कहा है कि हे अर्जुन! जिस प्रकार एक सूर्य इस सम्पूर्ण लोक (ब्रह्मण्ड) को प्रकाशित करता है उसी प्रकार एक ही पूर्ण परमात्मा (पूर्णब्रह्म) सम्पूर्ण क्षेत्र (ब्रह्मण्ड-पिंड) को प्रकाशित (शक्ति युक्त बनाता है जिससे यह पुतला चलता रहता है) करता है क्योंकि पिंड (शरीर/क्षेत्र) तथा ब्रह्मण्ड की रचना समान है जैसे एक आत्मा सर्व शरीर को शक्ति देती है ऐसे पूर्ण परमात्मा ब्रह्मण्ड को शक्ति देता है।

अध्याय 13 के श्लोक 34 में कहा है कि इस प्रकार क्षेत्र (शरीर) तथा क्षेत्रज्ञ (ब्रह्म) के भेद को तत्व ज्ञान रूपी आँखों से अच्छी तरह जान लेता है। वे प्राणी प्रकति (काल की शक्ति सहयोगिनी-माया-अष्टंगी) से मुक्त होकर पूर्ण ब्रह्म को प्राप्त हो जाते हैं अर्थात् काल जाल से निकल जाते हैं। परम शांति (पूर्ण मुक्ति) को प्राप्त हो जाता है। गीता जी के अध्याय 13 के श्लोक 1,2 में स्पष्ट है कि जो क्षेत्र (शरीर-पिण्ड) को जानता है वह क्षेत्रज्ञ कहलाता है तथा वह क्षेत्रज्ञ भी मुझे (काल को) ही जान। इसलिए अध्याय 13 के श्लोक 34 का भावार्थ है कि जो क्षेत्र (शरीर) तथा क्षेत्रज्ञ (काल) को जान लेता है वह पूर्ण परमात्मा को प्राप्त हो जाता है अर्थात् काल साधना त्याग कर पूर्ण परमात्मा की साधना करके माया व काल के जाल से मुक्त हो जाते हैं।

❑❑❑

।।तेरहवें अध्याय के अनुवाद सहित श्लोक।।

परमात्मने नमः

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

अध्याय 13 का श्लोक 1 (''भगवान उवाच'')

इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते।
एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः।१।

इदम्, शरीरम्, कौन्तेय, क्षेत्रम्, इति, अभिधीयते,
एतत्, यः, वेत्ति, तम्, प्राहुः, क्षेत्रज्ञः, इति, तद्विदः।।1।।

अनुवाद : (कौन्तेय) हे अर्जुन! (इदम्) यह (शरीरम्) शरीर (क्षेत्रम्) क्षेत्र (इति) इस नामसे (अभिधीयते) कहा जाता है और (एतत्) इसको (यः) जो (वेत्ति) जानता है (तम्) उसे (क्षेत्रज्ञः) क्षेत्रज्ञ (इति) इस नामसे (तद्विदः) तत्वको जाननेवाले ज्ञानीजन (प्राहुः) कहते हैं। (1)

अध्याय 13 का श्लोक 2

क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतं मम।२।

क्षेत्रज्ञम्, च, अपि, माम्, विद्धि, सर्वक्षेत्रेषु, भारत,
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोः, ज्ञानम्, यत्, तत्, ज्ञानम्, मतम्, मम।।2।।

अनुवाद : (भारत) हे अर्जुन! तू (सर्वक्षेत्रेषु) सब क्षेत्रोंमें अर्थात् शरीरों में (क्षेत्रज्ञम्) जानने वाला (अपि) भी (माम्) मुझे ही (विद्धि) जान (च) ओर (क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोः) क्षेत्र-क्षेत्रज्ञका (यत्) जो (ज्ञानम्) तत्वसे जानना है (तत्) वह (ज्ञानम्) ज्ञान है (मम) मेरा (मतम्) मत अर्थात् विचार है। (2)

अध्याय 13 का श्लोक 3

तत्क्षेत्रं यच्च यादृक्च यद्विकारि यतश्च यत्।
स च यो यत्प्रभावश्च तत्समासेन मे शृणु।३।

तत्, क्षेत्रम्, यत्, च, यादक्, च, यद्विकारि, यतः, च, यत्,
सः, च, यः, यत्प्रभावः, च, तत्, समासेन, मे, श्रणु।।3।।

अनुवाद : (तत्) वह (क्षेत्रम्) क्षेत्र (यत्) जो (च) और (यादक्) जैसा है (च) तथा (यद्विकारि) जिन विकारों वाला है (च) ओर (यतः) जिस कारण से (यत्) जो हुआ है (च) तथा (सः) वह (यः) जो (च) और (यत्प्रभावः) जिस प्रभाव वाला है (तत्) वह सब (समासेन) संक्षेप में (मे) मुझसे (श्रणु) सुन।(3)

अध्याय 13 का श्लोक 4

ऋषिभिर्बहुधा गीतं छन्दोभिर्विविधैः पृथक्।
ब्रह्मसूत्रपदैश्चैव हेतुमद्भिर्विनिश्चितैः।४।

ऋषिभिः, बहुधा, गीतम्, छन्दोभिः, विविधैः, पथक्,
ब्रह्मसूत्रपदैः, च, एव, हेतुमद्भिः, विनिश्चितैः।।4।।

अनुवाद : (ऋषिभिः) ऋषियोंद्वारा (बहुधा) बहुत प्रकार से (गीतम्) कहा गया है और (विविधैः) विविध (छन्दोभिः) वेदमन्त्रोंद्वारा भी (पथक्) विभागपूर्वक (गीतम्) कहा गया है (च) तथा (विनिश्चितैः) भली भाँति निश्चय किये हुए (हेतुमद्भिः) युक्तियुक्त (ब्रह्मसूत्रपदैः) ब्रह्मसूत्र के पदों द्वारा (एव) भी कहा गया है। (4)

अध्याय 13 का श्लोक 5

महाभूतान्यहङ्कारो बुद्धिरव्यक्तमेव च।
इन्द्रियाणि दशैकं च पञ्च चेन्द्रियगोचराः।५।

महाभूतानि, अहंकारः, बुद्धिः, अव्यक्तम्, एव, च,
इन्द्रियाणि, दश, एकम्, च, प च, च, इन्द्रियगोचराः।।5।।

अनुवाद : (महाभूतानि) पाँच महाभूत (अंहकारः) अंहकार (बुद्धिः) बुद्धि (च) और (अव्यक्तम्) अप्रत्यक्ष (एव) भी (च) तथा (दश) दस (इन्द्रियाणि) इन्द्रियाँ, (एकम्) एक मन (च) और (प च) पाँच (इन्द्रियगोचराः) इन्द्रियोंके विषय अर्थात् शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध। (5)

अध्याय 13 का श्लोक 6

इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं सङ्घातश्चेतना धृतिः।
एतत्क्षेत्रं समासेन सविकारमुदाहृतम्।६।

इच्छा, द्वेषः, सुखम्, दुःखम्, सङ्घातः, चेतना, धतिः,
एतत्, क्षेत्रम्, समासेन, सविकारम्, उदाहृतम्।।6।।

अनुवाद : (इच्छा) इच्छा (द्वेषः) द्वेष (सुखम्) सुख (दुःखम्) दुःख (सङ्घातः) स्थूल देहका पिण्ड (चेतना) चेतना और (धतिः) धति इस प्रकार (सविकारम्) विकारों के सहित (एतत्) यह (क्षेत्रम्) क्षेत्र (समासेन) संक्षेप में (उदाहृतम्) कहा गया है। (6)

अध्याय 13 का श्लोक 7

अमानित्वमदम्भित्वमहिंसा क्षान्तिरार्जवम्।
आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रहः।७।

अमानित्वम्, अदम्भित्वम्, अहिंसा, क्षान्तिः, आर्जवम्,
आचार्योपासनम्, शौचम्, स्थैर्यम्, आत्मविनिग्रहः।।7।।

अनुवाद : (अमानित्वम्) अभिमानका अभाव (अदम्भित्वम्) दम्भाचरणका अभाव (अहिंसा) किसी भी प्राणीको किसी प्रकार भी न सताना (क्षान्तिः) क्षमाभाव (आर्जवम्) सरलता (आचार्योपासनम्) श्रद्धाभक्तिसहित गुरुकी सेवा (शौचम्) बाहर-भीतर की शुद्धि (स्थैर्यम्) अन्तःकरणकी स्थिरता और (आत्मविनिग्रहः) आत्मशोध। (7)

अध्याय 13 का श्लोक 8

इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहङ्कार एव च।
जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम् ।८।

इन्द्रियार्थेषु, वैराग्यम्, अनहंकारः, एव, च,
जन्ममत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम्।।8।।

अनुवाद : (इन्द्रियार्थेषु) इन्द्रियों के आनन्दके भोगोंमें (वैराग्यम्) आसक्तिका अभाव (च) और (अनहंकारः,एव) अहंकारका भी अभाव (जन्ममत्युजरा व्याधिदुःख, दोषानुदर्शनम्) जन्म, मत्यु, जरा और रोग आदि में दुःख और दोषों का बार-बार विचार करना। (8)

अध्याय 13 का श्लोक 9

असक्तिरनभिष्वङ्गः पुत्रदारगृहादिषु।
नित्यं च समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु ।९।

असक्तिः, अनभिष्वङ्गः, पुत्रदारगहादिषु,
नित्यम्, च, समचित्तत्वम्, इष्टानिष्टोपपत्तिषु।।9।।

अनुवाद : (पुत्रदारगहादिषु) पुत्र-स्त्री-घर और धन आदिमें (असक्तिः) आसक्तिका अभाव (अनभिष्वङ्गः) ममताका न होना (च) तथा (इष्टानिष्टोपपत्तिषु) उपास्य देव-इष्ट या अन्य अनउपास्य देव की प्राप्ति या अप्राप्ति में अर्थात् इष्टवादिता को भूलकर (नित्यम्) सदा ही (समचित्तत्वम्) चितका सम रहना।(9)

अध्याय 13 का श्लोक 10

मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी।
विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि ।१०।

मयि, च, अनन्ययोगेन, भक्तिः, अव्यभिचारिणी,
विविक्तदेशसेवित्वम्, अरतिः, जनसंसदि।।10।।

अनुवाद : (मयि) मुझे (अनन्ययोगेन) अनन्य भक्ति के द्वारा (अव्यभिचारिणी) केवल एक इष्ट पर आधारित (भक्तिः) भक्ति (च) तथा (विविक्तदेशसेवित्वम्) एकान्त और शुद्ध देश में रहने का स्वभाव और (जनसंसदि) विकारी मनुष्यों के समुदाय में (अरतिः) प्रेम का न होना।(10)

अध्याय 13 का श्लोक 11

अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम्।
एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा।११।

अध्यात्मज्ञाननित्यत्वम्, तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम्,
एतत्, ज्ञानम्, इति, प्रोक्तम्, अज्ञानम्, यत्, अतः, अन्यथा।।11।।

अनुवाद : (अध्यात्मज्ञाननित्यत्वम्) अध्यात्मज्ञानमें नित्य स्थिति और (तत्वज्ञानार्थदर्शनम्) तत्वज्ञानके हेतु देखना (एतत्) यहसब (ज्ञानम्) ज्ञान है और (यत्) जो (अतः) इससे (अन्यथा) विपरीत है (अज्ञानम्) वह अज्ञान है (इति) ऐसा (प्रोक्तम्) कहा है।(11)

अध्याय 13 का श्लोक 12

ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वामृतमश्नुते।
अनादिमत्परं ब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यते।१२।

ज्ञेयम्, यत्, तत्, प्रवक्ष्यामि, यत्, ज्ञात्वा, अमतम्, अश्नुते।
अनादिमत्, परम्, ब्रह्म, न, सत्, तत्, न, असत्, उच्यते।।12।।

अनुवाद : (यत्) जो (ज्ञेयम्) जानने योग्य है तथा (यत्) जिसको (ज्ञात्वा) जानकर मनुष्य (अमतम्) परमानन्दको (अश्नुते) प्राप्त होता है (तत्) उसको (प्रवक्ष्यामि) भलीभाँति कहूँगा। (तत्) वह (अनादिमत्) अनादिवाला (परम्) परम (ब्रह्म) ब्रह्म (न) न (सत्) सत् ही (उच्यते) कहा जाता है (न) न (असत्) असत् ही।(12)

अध्याय 13 का श्लोक 13

सर्वतःपाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।
सर्वतःश्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति।१३।

सर्वतः पाणिपादम्, तत्, सर्वतो क्षिशिरोमुखम्।
सर्वतःश्रुतिमत्, लोके, सर्वम्, आवत्य, तिष्ठति।।13।।

अनुवाद : (तत्) वह (सर्वतःपाणिपादम्) सब ओर हाथ-पैरवाला (सर्वतो क्षिशिरोमुखम्) सब ओर नेत्र सिर और मुखवाला तथा (सर्वतःश्रुतिमत्) सब ओर कानवाला है। क्योंकि वह (लोके)संसारमें (सर्वम्) सबको (आवत्य) व्याप्त करके (तिष्ठति) स्थित है।(13)

अध्याय 13 का श्लोक 14

सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम्।
असक्तं सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च।१४।

सर्वेन्द्रियगुणाभासम्, सर्वेन्द्रियविवर्जितम्।
असक्तम्, सर्वभत्, च, एव, निर्गुणम्, गुणभोक्त, च।।14।।

अनुवाद : (सर्वेन्द्रियगुणाभासम्) सम्पूर्ण इन्द्रियोंके विषयोंको जाननेवाला है परंतु वास्तवमें (सर्वेन्द्रियविवर्जितम्) सब इन्द्रियोंसे रहित है (च) तथा (असक्तम्) आसक्तिरहित होनेपर (एव) भी (सर्वभत्) सबका धारण-पोषण करनेवाला (च) और (निर्गुणम्) निर्गुण होनेपर भी (गुणभोक्त) गुणोंको भोगनेवाला है।(14)

अध्याय 13 का श्लोक 15

बहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च।
सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयं दूरस्थं चान्तिके च तत्।१५।

बहिः, अन्तः, च, भूतानाम्, अचरम्, चरम्, एव, च।
सूक्ष्मत्वात्, तत्, अविज्ञेयम्, दूरस्थम्, च, अन्तिके, च, तत्।।15।।

अनुवाद : (भूतानाम्) चराचर सब भूतोंके (बहिः अन्तः) बाहर-भीतर परिपूर्ण है (च) और (चरम् अचरम्) चर-अचररूप (एव) भी वही है (च) और (तत्) वह (सूक्ष्मत्वात्) सूक्ष्म होनेसे (अविज्ञेयम्) अविज्ञेय है अर्थात् जिसकी सही स्थिति न जानी जाए। (च) तथा (अन्तिके) अति समीपमें (च) और (दूरस्थम्) दूरमें भी स्थित (तत्) वही है।(15)

अध्याय 13 का श्लोक 16

अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम्।
भूतभर्तृ च तज्ज्ञेयं ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च।१६।

अविभक्तम्, च, भूतेषु, विभक्तम्, इव, च, स्थितम्।
भूतभर्त, च, तत्, ज्ञेयम्, ग्रसिष्णु, प्रभविष्णु, च।।16।।

अनुवाद : (अविभक्तम्) विभागरहित होनेपर (च) भी (भूतेषु) प्राणियों में (विभक्तम् इव) विभक्त-सा (स्थितम्) स्थित है (च) तथा (तत्) वह (ज्ञेयम्) जाननेयोग्य परमात्मा (भूतभर्त) विष्णुरूपसे भूतों को धारण-पोषण करनेवाला (च) और (ग्रसिष्णु) संहार करनेवाला (च) तथा (प्रभविष्णु) सबको उत्पन्न करनेवाला है।(16)

अध्याय 13 का श्लोक 17

ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते।
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम्।१७।

ज्योतिषाम्, अपि, तत्, ज्योतिः, तमसः, परम्, उच्यते।
ज्ञानम्, ज्ञेयम्, ज्ञानगम्यम्, हृदि, सर्वस्य, विष्ठितम्।।17।।

अनुवाद : (तत्) वह पूर्णब्रह्म (ज्योतिषाम्) ज्योतियों का (अपि) भी (ज्योतिः) ज्योति एवं (तमसः) मायाधारी काल से (परम्) अन्य (उच्यते) कहा जाता है वह परमात्मा (ज्ञानम्) बोधस्वरूप (ज्ञेयम्) जानने के योग्य एवं (ज्ञानगम्यम्) तत्त्वज्ञान से प्राप्त करने योग्य है और (सर्वस्य) सबके (हृदि) हृदय में (विष्ठितम्) विशेष रूप से स्थित है।(17)

अध्याय 13 का श्लोक 18

इति क्षेत्रं तथा ज्ञानं ज्ञेयं चोक्तं समासतः।
मद्भक्त एतद्विज्ञाय मद्भावायोपपद्यते।१८।

इति, क्षेत्रम् तथा, ज्ञानम्, ज्ञेयम्, च, उक्तम्, समासतः।
मद्भक्तः, एतत्, विज्ञाय, मद्भावाय, उपपद्यते।।18।।

अनुवाद : (इति) इस प्रकार (क्षेत्रम्) शरीर (तथा) तथा (ज्ञेयम्) जानने योग्य परमात्मा का (ज्ञानम्) ज्ञान (समासतः) संक्षेपसे (उक्तम्) कहा है (च) और (मद्भक्तः) मत् भक्त अर्थात् इस मत् अर्थात् विचार को जानने वाला जिज्ञासु को मद्भक्त कहा है अर्थात् मेरे मत् को जानने वाला मेरा भक्त(एतत्) इसको (विज्ञाय) तत्त्वसे जानकर (मद्भावाय) मतावलम्बी अर्थात् मेरे उसी विचार भाव को (उपपद्यते) प्राप्त हो जाता है काल अर्थात् मेरे ब्रह्म साधना त्याग कर पूर्णब्रह्म अर्थात् सतपुरुष की साधना करके जन्म-मरण से पूर्ण रूप से मुक्त हो जाता है।(18)

विशेष :-- यजुर्वेद अध्याय 40 मन्त्र 9 में कहा है कि जो साधक पूर्व जन्मों में ब्रह्म साधना करता था। वह वर्तमान जन्म में भी उसी भाव से भावित रहता है। वह ब्रह्म साधना ही करता है। जब उसे तत्वदर्शी सन्त जो ब्रह्म व पूर्ण ब्रह्म की भक्ति की भिन्नता बताता है, मिल जाता है तो तुरन्त सत्य साधना पर लग जाता है।

अध्याय 13 का श्लोक 19

प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि।
विकारांश्च गुणांश्चैव विद्धि प्रकृतिसम्भवान्।१९।

प्रकतिम्, पुरुषम्, च, एव, विद्धि, अनादी, उभौ, अपि।
विकारान्, च, गुणान्, च, एव, विद्धि, प्रकतिसम्भवान्।।19।।

अनुवाद : (प्रकतिम्) प्रकति अर्थात् प्रथम माया जिसे पराशक्ति भी कहते हैं (च) और (पुरुषम्) पूर्ण परमात्मा (उभौ) इन दोनोंको (एव) ही तू (अनादी) अनादि (विद्धि) जान (च) और (विकारान्) राग-द्वेषादि विकारोंको (च) तथा (गुणान्) त्रिगुणात्मक तीनों गुणों अर्थात् रजगुण ब्रह्मा,सतगुण विष्णु तथा तमगुण शिव जी को (अपि) भी (प्रकतिसम्भवान् एव) प्रकतिसे ही उत्पन्न (विद्धि) जान। यही प्रमाण गीता अध्याय 14 श्लोक 5 में भी है कि तीनों गुण अर्थात् रजगुण ब्रह्मा, सतगुण विष्णु तथा तमगुण शिव जी प्रकति से उत्पन्न हैं।(19)

अध्याय 13 का श्लोक 20

कार्यकरणकर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिरुच्यते।
पुरुषः सुखदुःखानां भोक्तृत्वे हेतुरुच्यते। २०।

कार्यकरणकर्तत्वे, हेतुः, प्रकतिः, उच्यते।
पुरुषः सुखदुःखानाम्, भोक्तत्वे, हेतुः, उच्यते।।20।।

अनुवाद : (कार्यकरणकर्तत्वे) कार्य और करणको उत्पन्न करनेमें (हेतुः) हेतु (प्रकतिः) प्रकति (उच्यते) कही जाती है और (पुरुषः) सतपुरुष (सुखदुःखानाम्) सुख-दुःखोंके (भोक्तत्वे) जीवात्मा को भोग भोगवाने के कारण भोगनेमें (हेतुः) हेतु (उच्यते) कहा जाता है। गीता अध्याय 18 श्लोक 61 में कहा है कि परमेश्वर सर्व प्राणियों को यन्त्र की तरह कर्मानुसार भ्रमण कराता हुआ सर्व प्राणियों के हृदय में स्थित है। गीता अध्याय 15 श्लोक 17 में कहा है कि पूर्ण परमात्मा तो गीता ज्ञान दाता से अन्य है। वही अविनाशी परमात्मा तीनों लोकों में प्रवेश करके सर्व का धारण पोषण करता है।(20)

अध्याय 13 का श्लोक 21

पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुङ्क्ते प्रकृतिजान्गुणान्।
कारणं गुणसङ्गोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु। २१।

पुरुषः, प्रकतिस्थः, हि, भुङ्क्ते, प्रकतिजान्, गुणान्।
कारणम्, गुणसंगः, अस्य, सदसद्योनिजन्मसु।।21।।

अनुवाद : (पुरुषः) परमात्मा अपनी सर्वव्यापकता से (प्रकतिस्थः) प्रकति अर्थात् दुर्गा में विद्यमान है यानि दुर्गा का भी स्वामी है। इसलिए (प्रकतिजान्) प्रकतिसे उत्पन्न (गुणान्) तीनों गुणों अर्थात् रजगुण ब्रह्मा, सतगुण विष्णु तथा तमगुण शिव को भी गति उसी से मिलती है जिस कारण (भुङ्क्ते) जीवात्मा को कर्मानुसार भोग भोगवाने के कारण भोगता है और इन (गुणसंगः) गुणोंका संग ही (अस्य) इस जीवात्माके (सदसद्योनिजन्मसु)अच्छी-बुरी योनियोंमें जन्म लेनेका(कारणम्)कारण है। यही प्रमाण गीता अध्याय 14 श्लोक 5 में भी है तथा अध्याय 18 श्लोक 16 में भी है।(21)

अध्याय 13 का श्लोक 22

उपद्रष्टानुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः।
परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन्पुरुषः परः। २२।

उपद्रष्टा, अनुमन्ता, च, भर्ता, भोक्ता, महेश्वरः।
परमात्मा, इति, च, अपि, उक्तः, देहे, अस्मिन्, पुरुषः, परः।।22।।

अनुवाद : (अस्मिन्) इस (देहे अपि) देहमें भी स्थित (पुरुषः) यह सतपुरुष अर्थात् पूर्ण ब्रह्म वास्तव में (परः) सर्वोपरि प्रभु तो गीता ज्ञान दाता से दूसरा अर्थात् अन्य ही है। वही (उपद्रष्टा) साक्षी होनेसे उपद्रष्टा (च) और (अनुमन्ता) यथार्थ सम्मति देने वाला होने से अनुमन्ता (भर्ता) सबका धारण-पोषण करनेवाला होनेसे भर्ता (भोक्ता) जीवात्मा को भोग भोगवाने के कारण भोक्ता, (महेश्वरः) ब्रह्म व परब्रह्म आदि का भी स्वामी होने से महेश्वर यानि सब स्वामियों का स्वामी अर्थात् पूर्ण ब्रह्म (च) और (परमात्मा) परमात्मा (इति) ऐसा (उक्तः) कहा गया है। यही प्रमाण गीता अध्याय 15 श्लोक 16-17 में है जिनमें तीन प्रभुओं यानि पुरुषों का वर्णन है। 1. क्षर पुरुष जो ब्रह्म

है। 2. अक्षर पुरूष जो परब्रह्म है। ये दोनों नाशवान प्रभु हैं। 3. इनसे तीसरा परम अक्षर पुरूष है जो परम अक्षर ब्रह्म यानि संत भाषा में सत्य पुरूष है जिसका वर्णन गीता अध्याय 8 श्लोक 3 में है जो इन दोनों पुरूषों (क्षर पुरूष तथा अक्षर पुरूष) से अन्य तथा पुरूषोत्तम है जिसे परमात्मा कहा गया है। वह तीनों के 1. क्षर पुरूष के लोक में 2. अक्षर पुरूष के लोक में तथा 3. अपने अमर लोक जो चार लोकों का समूह है, में प्रवेश करके सबका धारण-पोषण करता है। वह वास्तव में अविनाशी परमेश्वर है।(22)

अध्याय 13 का श्लोक 23

य एवं वेत्ति पुरुषं प्रकृतिं च गुणैः सह।
सर्वथा वर्तमानोऽपि न स भूयोऽभिजायते। २३।

यः, एवम्, वेत्ति, पुरुषम्, प्रकतिम्, च, गुणैः, सह,
सर्वथा, वर्तमानः, अपि, न, सः, भूयः, अभिजायते।।23।।

अनुवाद : (एवम्) इस प्रकार (पुरुषम्) सतपुरुषको (च) और (गुणैः) गुणों अर्थात् रजगुण ब्रह्मा, सतगुण विष्णु तथा तमगुण शिव जी के (सह) सहित (प्रकतिम्) माया अर्थात् दुर्गा को (यः) जो (वेत्ति) तत्त्वसे जानता है (सः) वह (सर्वथा) सब प्रकारसे (वर्तमानः) वर्तमान में शास्त्र विरुद्ध भक्ति साधना से मुड़ जाता है अर्थात् शास्त्र विधि अनुसार भक्ति कर्मों को वर्तमान में ही करता हुआ (अपि) भी (भूयः) फिर (न) नहीं (अभिजायते) जन्मता।(23)

अध्याय 13 का श्लोक 24

ध्यानेनात्मनि पश्यन्ति केचिदात्मानमात्मना।
अन्ये साङ्ख्येन योगेन कर्मयोगेन चापरे। २४।

ध्यानेन, आत्मनि, पश्यन्ति, केचित्, आत्मानम्, आत्मना।
अन्ये, साङ्ख्येन, योगेन, कर्मयोगेन, च, अपरे।।24।।

अनुवाद : (आत्मानम्) परमात्माको (केचित्) कितने ही मनुष्य तो (आत्मना) अपनीदिव्य दष्टि से (ध्यानेन) ध्यानके द्वारा (आत्मनि) अपने शरीर में अपने अन्तःकरण में (पश्यन्ति) देखते हैं, (अन्ये) अन्य कितने ही (साङ्ख्येन योगेन) ज्ञानयोग के द्वारा (च) और (अपरे) दूसरे कितने ही (कर्मयोगेन) कर्मयोगके द्वारा देखते हैं अर्थात् अनुभव करते हैं। गीता अध्याय 5 श्लोक 4-5 में भी प्रमाण है।(24)

अध्याय 13 का श्लोक 25

अन्ये त्वेवमजानन्तः श्रुत्वान्येभ्य उपासते।
तेऽपि चातितरन्त्येव मृत्युं श्रुतिपरायणाः। २५।

अन्ये, तु, एवम्, अजानन्तः, श्रुत्वा, अन्येभ्यः, उपासते।
ते, अपि, च, अतितरन्ति, एव, मत्युम्, श्रुतिपरायणाः।।25।।

अनुवाद : (तु) इसके विपरित (अन्ये) इनसे दूसरे (एवम्) इस प्रकार (अजानन्तः) न जानते हुए (अन्येभ्यः) दूसरोंसे अर्थात् तत्वके जाननेवाले पुरुषोंसे (श्रुत्वा) सुनकर ही तदनुसार (उपासते) उपासना करते हैं (च) और (ते) वे (श्रुतिपरायणाः) कही सुनी मानने वाले (अपि) भी (मत्युम्) मत्युरूप संसारसागरको (अतितरन्ति, एव) निःसन्देह तर जाते हैं। गीता अध्याय 5 श्लोक 4-5 में भी प्रमाण है।(25)

अध्याय 13 का श्लोक 26

यावत्सञ्जायते किञ्चित्सत्त्वं स्थावरजङ्गमम्।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात्तद्विद्धि भरतर्षभ। २६।

यावत्, स जायते, किंचित, सत्त्वम्, स्थावरजंगमम्।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात्, तत्, विद्धि, भरतर्षभ।।26।।

अनुवाद : (भरतर्षभ) हे भरतर्षभ अर्जुन! (यावत्) यावन्मात्र (किंचित्) जितने भी (स्थावरजंगमम्) स्थावरजंगम (सत्त्वम्) प्राणी (स जायते) उत्पन्न होते हैं, (तत्) उन सबको तू (क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात्) क्षेत्र और क्षेत्रज्ञके संयोगसे ही उत्पन्न (विद्धि) जान।(26)

अध्याय 13 का श्लोक 27

समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम्।
विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति। २७।

समम्, सर्वेषु, भूतेषु, तिष्ठन्तम्, परमेश्वरम्।
विनश्यत्सु, अविनश्यन्तम्, यः, पश्यति, सः, पश्यति।।27।।

अनुवाद : (यः) जो (विनश्यत्सु) नष्ट होते हुए (सर्वेषु) सब (भूतेषु) चराचर भूतोंमें (परमेश्वरम्) परमेश्वरको (अविनश्यन्तम्) नाशरहित और (समम्) समभावसे (तिष्ठन्तम्) स्थित (पश्यति)देखता है (सः)वही यथार्थ (पश्यति)देखता है अर्थात् वह पूर्णज्ञानी है।(27)

अध्याय 13 का श्लोक 28

समं पश्यन्हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम्।
न हिनस्त्यात्मनात्मानं ततो याति परां गतिम्। २८।

समम्, पश्यन्, हि, सर्वत्र, समवस्थितम्, ईश्वरम्।
न, हिनस्ति, आत्मना, आत्मानम्, ततः, याति, पराम्, गतिम्।।28।।

अनुवाद : (हि) क्योंकि (सर्वत्र) सबमें (समवस्थितम्) सर्वव्यापक (ईश्वरम्) उत्तम पुरूष अर्थात् परमेश्वरको (समम्) समान (पश्यन्) देखता हुआ (आत्मना) अपनेद्वारा (आत्मानम्) अपनेको (न हिनस्ति) नष्ट नहीं करता अर्थात् आत्मघात नहीं करता (ततः) इससे वह (पराम्) परम (गतिम्) गतिको (याति) प्राप्त होता है।(28)

अध्याय 13 का श्लोक 29

प्रकृत्यैव च कर्माणि क्रियमाणानि सर्वशः।
यः पश्यति तथात्मानमकर्तारं स पश्यति। २९।

प्रकत्या, एव, च, कर्माणि, क्रियमाणानि, सर्वशः।
यः, पश्यति, तथा, आत्मानम्, अकर्तारम्, सः, पश्यति।।29।।

अनुवाद : (च) और (यः) जो साधक (कर्माणि) सम्पूर्ण कर्मोंको (सर्वशः) सब प्रकारसे (प्रकत्या) प्रकतिके द्वारा (एव) ही (क्रियमाणानि) किये जाते हुए (पश्यति) देखता है (तथा) और (आत्मानम्) परमात्माको (अकर्तारम्) अकर्त्ता देखता है (सः) वही यथार्थ (पश्यति) देखता है।(29)

अध्याय 13 का श्लोक 30

यदा भूतपृथग्भावमेकस्थमनुपश्यति।
तत एव च विस्तारं ब्रह्म सम्पद्यते तदा। ३०।

यदा, भूतपृथग्भावम्, एकस्थम्, अनुपश्यति।
ततः, एव, च, विस्तारम्, ब्रह्म, सम्पद्यते तदा।।30।।

अनुवाद : (यदा) जब कोई साधक (भूतपृथग्भावम्) प्राणियों के भिन्न-2 भावको (च) तथा (विस्तारम्) विस्तार को (अनुपश्यति) देखता है अर्थात् जान लेता है (तदा) तब वह भक्त (एकस्थम्) एक परमात्मा में स्थित (ततः ब्रह्म) उस पूर्ण परमात्मा को (एव) ही (सम्पद्यते) प्राप्त हो जाता है।(30)

अध्याय 13 का श्लोक 31

अनादित्वान्निर्गुणत्वात्परमात्मायमव्ययः ।
शरीरस्थोऽपि कौन्तेय न करोति न लिप्यते। ३१।

अनादित्वात्, निर्गुणत्वात्, परमात्मा, अयम्, अव्ययः।
शरीरस्थः, अपि, कौन्तेय, न, करोति, न, लिप्यते।।31।।

अनुवाद : (कौन्तेय) हे अर्जुन! (अनादित्वात्) अनादि होने से और (निर्गुणत्वात्) उसकी शक्ति निर्गुण होने से (अयम्) यह (अव्ययः) अविनाशी (परमात्मा) परमात्मा (शरीरस्थः) शरीर में रहता हुआ (अपि) भी वास्तव में (न) न तो (करोति) कुछ करता है और (न) न (लिप्यते) लिप्त ही होता है।(31)

भावार्थ - श्लोक 31 का भाव है कि जैसे सूर्य दूरस्थ होने से भी जल के घड़े में दृष्टिगोचर होता है तथा निर्गुण शक्ति अर्थात् ताप प्रभावित करता रहता है, इसी प्रकार पूर्ण परमात्मा अपने सत्यलोक में रहते हुए भी प्रत्येक आत्मा में प्रतिबिम्ब रूप से रहता है। जैसे अवतल लैंस पर सूर्य की किरणें अधिक ताप पैदा कर देती हैं तथा उत्तल लैंस पर अपना स्वाभाविक प्रभाव ही रखती हैं। इसी प्रकार शास्त्र विधि अनुसार साधक अवतल लैंस बन जाता है। जिससे ईश्वरीय शक्ति का अधिक लाभ प्राप्त करता है तथा शास्त्र विधि त्यागकर मनमाना आचरण करने वाला साधक केवल कर्म संस्कार ही प्राप्त करता है। उसे उत्तल लैंस जानो।

अध्याय 13 का श्लोक 32

यथा सर्वगतं सौक्ष्म्यादाकाशं नोपलिप्यते।
सर्वत्रावस्थितो देहे तथात्मा नोपलिप्यते। ३२।

यथा, सर्वगतम्, सौक्ष्म्यात्, आकाशम्, न, उपलिप्यते।
सर्वत्र, अवस्थितः, देहे, तथा, आत्मा, न, उपलिप्यते।।32।।

अनुवाद : (यथा) जिस प्रकार (सर्वगतम्) सर्वत्र व्याप्त (आकाशम्) आकाश (सौक्ष्म्यात्) सूक्ष्म होने के कारण (न, उपलिप्यते) लिप्त नहीं होता (तथा) वैसे ही (देहे) देहमें घड़े में सूर्य सदृश (सर्वत्र) सर्वत्र (अवस्थितः) स्थित (आत्मा) आत्मा सहित परमात्मा देहके गुणोंसे (न,उपलिप्यते) लिप्त नहीं होता।(32)

अध्याय 13 का श्लोक 33

यथा प्रकाशयत्येकः कृत्स्नं लोकमिमं रविः।
क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं प्रकाशयति भारत। ३३।

यथा, प्रकाशयति, एकः, कृत्स्नम्, लोकम्, इमम्, रविः।
क्षेत्रम्, क्षेत्री, तथा, कृत्स्नम्, प्रकाशयति, भारत।।33।।

अनवुद : (भारत) हे अर्जुन! (यथा) जिस प्रकार (एकः) एक (रविः) सूर्य (इमम्) इस (कत्स्न्रम्) सम्पूर्ण (लोकम्) ब्रह्मण्डको (प्रकाशयति) प्रकाशित करता है (तथा) उसी प्रकार (क्षेत्री) पूर्ण ब्रह्म (कत्स्न्रम्) सम्पूर्ण (क्षेत्रम्) शरीर अर्थात् ब्रह्मण्डको (प्रकाशयति) प्रकाशित करता है।(33)

अध्याय 13 का श्लोक 34

क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोरेवमन्तरं ज्ञानचक्षुषा।
भूतप्रकृतिमोक्षं च ये विदुर्यान्ति ते परम्।३४।

क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोः, एवम्, अन्तरम्, ज्ञानचक्षुषा।
भूतप्रकतिमोक्षम्, च, ये, विदुः, यान्ति, ते, परम्।।34।।

अनुवाद : (एवम्) इस प्रकार (क्षेत्र) शरीर (च) तथा (क्षेत्रज्ञयो) ब्रह्म कालके (अन्तरम्) भेदको (ये) जो (ज्ञानचक्षुषा) ज्ञान रूपी नेत्रों से अर्थात् तत्वज्ञान से (विदुः) अच्छी तरह जान लेता है, (ते भूत) वे प्राणी (प्रकति) प्रकति से अर्थात् काल की छोड़ी हुई शक्ति माया अष्टंगी से (मोक्षम्) मुक्त हो कर (परम्) गीता ज्ञान दाता से दूसरे पूर्ण परमात्मा को (यान्ति) प्राप्त होते हैं। गीता अध्याय 13 श्लोक 1-2 में कहा है कि क्षेत्रज्ञ अर्थात् शरीर को जानने वाला क्षेत्रज्ञ कहा जाता है। इसलिए क्षेत्रज्ञ भी मुझे ही जान। इससे सिद्ध हो कि क्षेत्रज्ञ ज्ञान दाता काल अर्थात् ब्रह्म है।(34)

(इति अध्याय तेरहवाँ)

❑❑❑

❁ चौदहवां अध्याय ❁

।।दिव्य सारांश।।

।। ब्रह्म (काल) द्वारा अति उत्तम ज्ञान की जानकारी।।

❖ *गीता अध्याय 14 श्लोक 1 का अनुवाद :- गीता ज्ञान दाता ने कहा है कि अब मैं तेरे को (ज्ञानानाम्) ज्ञानों में भी (उतमम्) अति उत्तम (परम्) अन्य विशेष (ज्ञानम्) ज्ञान को (भूयः) फिर (प्रवक्ष्यामि) कहूँगा (यत्) जिसको (ज्ञात्वा) जानकर (सर्वे) सब (मुनय) साधक जन (इतः) इस संसार से मुक्त होकर (पराम्) अन्य विशेष (सिद्धिम्) सिद्धि को (गताः) प्राप्त हो गये।*

भावार्थ :- गीता ज्ञान दाता ने अध्याय 9 श्लोक 1-3 में ब्रह्म स्तर का यानि अपने स्तर का उत्तम ज्ञान बताया है तथा सर्व को सब ज्ञानों का राजा कहा है। गीता के इस अध्याय 14 के श्लोक 1-2 में कहा है कि पहले जो सब उत्तम ज्ञान व ज्ञानों के राजा ज्ञान से भी अन्य विशेष उत्तम यानि सर्वश्रेष्ठ अन्य ज्ञान को कहूँगा जिस ज्ञान को जानकर मुनिजन यानि साधक इस काल ब्रह्म के लोक से अन्य विशेष सिद्धि को प्राप्त हो गए हैं।

❖ *गीता अध्याय 14 श्लोक 2 का अनुवाद :- (इदम्) इस (ज्ञानम्) ज्ञान को (उपाश्रित्य) आश्रय करके (मम) मेरे (साधर्म्यम्) धर्म यानि गुण का (आगताः) प्राप्त हुए पुरूष यानि परमात्मा जैसे गुणों को भक्ति करके प्राप्त करके अविनाशी धर्म को प्राप्त हुए साधक (सर्गे) सष्टि में पुनः (न उपजायन्ते) नहीं होते (च) और (प्रलय) प्रलय के समय भी (न व्यथन्ति) व्याकुल नहीं होते।*

भावार्थ :- काल ब्रह्म ने कहा है कि इस अन्य विशेष ज्ञान को जानकर साधक परासिद्धि को प्राप्त होते हैं। सूक्ष्मवेद में भी कहा है कि ''परासिद्धि पूर्ण पटरानी अमरलोक की कहूँ निशानी'' यानि परासिद्धि सतलोक में है। उसे प्राप्त साधक उस अमर लोक में अमर शरीर प्राप्त करता है। वह परमात्मा जैसे अविनाशी धर्मयुक्त हो जाता है। जिस कारण से वह जन्म-मरण से मुक्ति प्राप्त कर लेता है। उस ज्ञान के आश्रित हुआ साधक पूर्ण मोक्ष प्राप्त करता है।

अध्याय 14 के श्लोक 1,2 में भगवान (ब्रह्म) ने कहा कि हे अर्जुन! सर्व ज्ञानों में अति उत्तम (परम्) अन्य ज्ञान को फिर कहूंगा जिसको जान कर सर्व भक्त आत्मा (मुनिजन) अध्याय 13 के श्लोक 34 में कहे गीता ज्ञान दाता से अन्य अर्थात् दूसरे पूर्ण परमात्मा को प्राप्त हो गए। {क्योंकि जिनको पूर्ण ज्ञान हो जाता है वह पूर्ण परमात्मा का मार्ग अपना कर भक्ति करते हैं। ब्रह्म (काल), ब्रह्मा, विष्णु, शिव व देवी-देवताओं की साधना से ऊपर पूर्ण परमात्मा/सतपुरुष की भक्ति करते हैं। इसलिए परम धाम (सतलोक) में चले जाते हैं।} वह पूर्ण ब्रह्म का उपासक साधु गुणों से युक्त होकर प्रभु जैसी शक्ति (गुणों) वाला हो जाता है अर्थात् ब्रह्म के तुल्य हो जाता है तथा सत्य भक्ति पूर्णब्रह्म की करने वाले स्वभाव का हो जाता है, वह अन्य देवों की साधना नहीं करता।

गरीब, अनन्त कोटि ब्रह्मा हुए, अनन्त कोटि हुए ईश (ब्रह्म)।
साहिब तेरी बंदगी (भक्ति) से, जीव हो जावे जगदीश (ब्रह्म)।।

भावार्थ :- जो साधक तत्वदर्शी संत से दीक्षा लेकर भक्ति करते हैं। वे काल ब्रह्म के देवताओं (ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव) जैसी शक्ति वाले हो जाते हैं। वे जीव यहाँ के जगदीश के तुल्य हो जाते हैं। यदि ये आशीर्वाद देकर अपनी भक्ति कमाई को नष्ट करना चाहें तो अपने प्रशंसक को बहुत लाभ दे सकते हैं और भगवान प्रसिद्ध हो सकते हैं।

पूर्ण परमात्मा के क्या धर्म- गुण होते हैं?

।। भगवान कष्ण अर्थात् विष्णु जी भी प्रभु हैं परंतु समर्थ नहीं।।

जैसे भगवान कष्ण तीन लोक के प्रभु (विष्णु अवतार) हैं। वे भगवान से मिलते गुणों वाले हैं। श्री कष्ण जी ने राजा मोरध्वज के इकलौते पुत्र ताम्रध्वज को आरे से चिरवा कर मरवाया तथा फिर जीवित कर दिया। ये ईश्वरीय गुणों में से एक गुण (सिद्धि) है। इसके कारण (श्री कष्ण) भी प्रभु हैं परंतु पूर्ण नहीं।

क्योंकि महाभारत के युद्ध में अर्जुन का पुत्र अभिमन्यु मारा गया था जो श्री कष्ण जी का भानजा था। श्री कष्ण की बहन सुभद्रा का अर्जुन से विवाह हुआ था। अभिमन्यु कष्ण की बहन सुभद्रा का पुत्र था। भगवान श्री कष्ण जी उसे जीवित नहीं कर सके। चूंकि ये प्रभु तो हैं परंतु पूर्ण नहीं हैं। इसी प्रकार भगवान श्री कष्ण के सामने (दुर्वासा के शापवश) भगवान श्री कष्ण का सर्व यादव कुल नष्ट हो गया। जिसमें भगवान के पुत्र प्रद्युमन, पौत्र अनिरूद्ध आदि आपस में लड़ कर मर गए। भगवान कष्ण नहीं बचा पाए और एक शिकारी ने प्रभास क्षेत्र में भगवान को तीर मार कर हत्या की। इससे सिद्ध हुआ कि श्री कष्ण जी भी प्रभु हैं, परंतु पूर्ण परमात्मा नहीं। ये केवल तीन लोक में परमात्मा (श्रेष्ठ आत्मा) हैं।

साहेब कबीर (कविर्देव) पूर्ण परमात्मा है

।। मतक गाय को जीवित करना।।

बन्दी छोड़ कबीर साहेब पूर्ण परमात्मा हैं। ये अनंत करोड़ ब्रह्मण्ड के विधाता हैं। एक समय कबीर साहेब के सत उपदेश को सुन कर हिन्दु तथा मुसलमान उनसे नाराज हो गए और सिकंदर लौधी दिल्ली के बादशाह (जो काशी गया हुआ था) के पास बहु संख्या में इक्टठे हो कर आ गए। कबीर साहेब की झूठी शिकायत की। मुसलमानों ने कहा कि यह कबीर हमारे धर्म की छवि धूमिल करता है। कहता है मस्जिद में खुदा नहीं हैं। मैं ही खुदा हूँ। मांस खाने वाले पापी प्राणी हैं। उनको खुदा सजा देगा और वे नरक में जाएंगे।

कबीर, मांस अहारी मानई, प्रत्यक्ष राक्षस जानि।
ताकी संगति मति करै, होइ भक्ति में हानि।।1।।
कबीर, मांस मछलिया खात हैं, सुरापान से हेत।
ते नर नरकै जाहिंगे, माता पिता समेत।।2।।
कबीर, मांस मांस सब एक है, मुरगी हिरनी गाय।
जो कोई यह खात है, ते नर नरकहिं जाय।।3।।
कबीर, जीव हनै हिंसा करै, प्रगट पाप सिर होय।
निगम पुनि ऐसे पाप तें, भिस्त गया नहिंकोय।।4।।
कबीर, तिलभर मछली खायके, कोटि गऊ दै दान।
काशी करौत ले मरै, तौ भी नरक निदान।।5।।
कबीर, बकरी पाती खात है, ताकी काढी खाल।
जो बकरीको खात है, तिनका कौन हवाल।।6।।
कबीर, अंडा किन बिसमिल किया, घुन किन किया हलाल।
मछली किन जबह करी, सब खाने का ख्याल।।7।।

कबीर, मुला तुझै करीम का, कब आया फरमान।
घट फोरा घर घर दिया, साहब का नीसान।।8।।
कबीर, काजी का बेटा मुआ, उरमैं सालै पीर।
वह साहब सबका पिता, भला न मानै बीर।।9।।
कबीर, पीर सबनको एकसी, मूरख जानैं नाहिं।
अपना गला कटायकै, भिश्त बसै क्यों नाहिं।।10।।
कबीर, जोरी करि जबह करै, मुखसों कहै हलाल।
साहब लेखा मांगसी, तब होसी कौन हवाल।।11।।
कबीर, जोर कीयां जुलूम है, मागै ज्वाब खुदाय।
खालिक दर खूनी खडा, मार मुही मुँह खाय।।12।।
कबीर, गला काटि कलमा भरै, कीया कहै हलाल।
साहब लेखा मांगसी, तब होसी कौन हवाल।।13।।
कबीर, गला गुसाकों काटिये, मियां कहरकौ मार।
जो पांचू बिस्मिल करै, तब पावै दीदार।।14।।
कबीर, कबिरा सोई पीर हैं, जो जानै पर पीर।
जो पर पीर न जानि है, सो काफिर बेपीर।।15।।
कबीर, कहता हूं कहि जात हूं, कहा जो मान हमार।
जाका गला तुम काटि हो, सो फिर काटै तुम्हार।।16।।
कबीर, हिन्दू के दाया नहीं, मिहर तुरकके नाहिं।
कहै कबीर दोनूं गया, लख चौरासी मांहि।।17।।
कबीर, मुसलमान मारै करद सों, हिंदू मारे तरवार।
कह कबीर दोनूं मिलि, जावैं यमके द्वार।।18।।
कबीर, पानी पथ्वी के हते, धूंआं सुनि के जीव।
हुक्के में हिंसा घनी, क्योंकर पावै पीव।।19।।
कबीर, छाजन भोजन हक्क है, और दोजख देइ।
आपन दोजख जात है, और दोजख देइ।।20।।

❖ *भावार्थ :- वाणी सँख्या 1-2 :- जो मानव (स्त्री-पुरूष) माँस खाते हैं। उनको प्रत्यक्ष राक्षस जानो। भक्त को चाहिए कि ऐसे पापी का साथ न करें। उसके संग रहने से कभी भक्त भी गलती कर देगा। जिससे उसकी भक्ति में हानि हो जाएगी।(1)*

जो व्यक्ति माँस खाते हैं, मछलियों का माँस खाते हैं और शराब का सेवन करते हैं। वे अपने माता-पिता सहित नरक में जाऐंगे। कारण यह है कि युवा बच्चे माता-पिता के धन से शराब व माँस सेवन करते हैं तो माता-पिता को भी दोष लगता है। वद्ध होने पर वे बच्चे माता-पिता के भोजन में भी माँस को मिलाकर खिलाऐंगे। फिर उनको भी माँस की आदत पड़ जाती है। इस प्रकार पूरा परिवार नरक में गिरता है।(2)

❖ *वाणी सँख्या 3-4 :- जो व्यक्ति जीव हिंसा करते हैं। फिर उनका माँस खाते हैं। धार्मिक अनुष्ठानों में भी माँस का भोग लगाते हैं। वे प्रत्यक्ष पाप को सिर पर ले रहे हैं। ऐसे जैसे मुसलमान गाय के माँस को धार्मिक अनुष्ठान में उत्तम मानते हैं। हिन्दू गाय के माँस से परहेज करते हैं, परंतु सूअर, हिरण आदि के माँस खाने को पाप नहीं मानते। उनसे कहा है कि माँस तो माँस ही है, चाहे वह किसी प्राणी का है। उसके खाने से नरक ही मिलेगा।(3-4)*

❖ *वाणी सँख्या 5-6 :- जो व्यक्ति गाय दान करते हैं यानि धर्म करते हैं। वे यदि तिलभर माँस मछली या अन्य किसी जीव का खाएगा तो उसका वह गऊ दान का धर्म समाप्त हो जाएगा। वह नरक में गिरेगा।(5)*

❖ *विचार करो कि जो बकरी कोई पाप नहीं करती थी। झाड़ियों के पत्ते खाकर जीवन जी रही थी। माँसाहारी व्यक्तियों ने उसको मारकर खा लिया या सिंह-चीता मारकर खा गया। यानि सादा जीवन जीने वाले जीव को भी कष्ट झेलना पड़ा तो जो माँस खाकर पाप का जीवन जी रहे हैं। एक दिन उनका कितना बुरा हाल होगा? इसलिए पाप से परहेज करें। इसी में भलाई है।(6)*

❖ *वाणी सँख्या 7 :- मुसलमान कहते हैं कि हम बकरे, गाय व मुर्गे या अन्य भैंस-भैंसा को बिस्मल करके गला काटकर हलाल करते हैं। फिर पाप नहीं लगता। उनसे कहा है कि यदि गला काटकर कलमा (मंत्र) पढ़कर हलाल कर देते हो तो अण्डा आपने खाया, उसका तो गला ही नहीं है। यदि कलमा पढ़ने से पाप नहीं लगता तो अपने बच्चे पर कलमा पढ़कर गला काटो, पता चले कि कितना कष्ट पहुँचता है। घुन यानि लकड़ी में लगा कीड़ा भी लकड़ी में जला है। उसका भी पाप लगता है। जो पूर्ण संत से दीक्षा लेकर भक्ति करते हैं, उनके पाप नष्ट हो जाते हैं। जो उपरोक्त बहाने बनाकर पाप से बचना भी बताते हैं और माँस भी खाते हैं। वे माँस खाने के लिए मनघड़न्त मिथ्या कहानी बनाते हैं । पूर्ण संत माँस-शराब आदि बुराईयाँ छुड़वाता है। पूर्व में किए पाप भक्ति से नष्ट होते हैं।*

❖ *वाणी सँख्या 8-11 :- कबीर परमेश्वर जी ने कहा है कि हे मुल्ला जी! (मुल्ला मुसलमानों का धर्म प्रचारक होता है) आपको करीम यानि दयावान परमात्मा का आदेश माँस खाने व हलाल करने का नहीं है। उसके बनाए जीव को मारकर आप भी पाप के भागी बने हो और अन्य के घर-घर जाकर उसे बाँटते हो, उन्हें भी पाप के भागी बनाते हो।(8)*

❖ *वाणी सँख्या 9 :- एक काजी (मुसलमान गुरू) के बेटे की मत्यु हो गई। उसके (उर) हृदय में महाकष्ट हुआ। परमात्मा तो सर्व प्राणियों का पिता यानि उत्पत्तिकर्ता है। उसके किसी पुत्र/पुत्री यानि जीव को मारने से वह उस मारने वाले से खुश नहीं होगा।(9)*

❖ *वाणी सँख्या 10 :- दर्द तो सबको एक जैसा होता है। मूर्ख व्यक्ति नहीं जानते। दूसरे जीवों को हलाल या बली चढ़ाकर उनको स्वर्ग भेजने का दावा करने वाले अपना गला कटवाकर कलमा पढ़वाकर हलाल होकर स्वर्ग क्यों नहीं जाते?(10)*

❖ *वाणी सँख्या 11-13 :- जोर-जबरदस्ती करके जीवों को मारते हो, यह जुल्म (पाप) है। परमात्मा इसका जवाब माँगेगा। कहेगा कि बता किसके आदेश से जीव मारा था। उस समय हत्यारे के पास कोई उत्तर नहीं होगा। खालिक यानि संष्टिकर्ता के द्वार पर वह खूनी बुरी तरह पिटेगा। उसके मुख पर अनेकों थप्पड़ लगेंगे। उसे नरक में डाला जाएगा। अन्य जीव का गला काटकर हलाल (धर्म) किया कहता है, तेरा परमात्मा हिसाब लेगा। तब बुरा हाल यानि दुर्गति होगी।(11-13)*

❖ *वाणी सँख्या 14-20 :- कबीर जी ने उपदेश दिया है कि हे मियाँ जी! क्रोध का गला काटकर लड़ाई-झगड़े वाले कहर (जुल्म) को मार। जब काम, क्रोध, मोह, लोभ तथा अहंकार इन पाँचों को बिसमल कर, (बलि चढ़ा) तब परमात्मा के दर्शन संभव हैं।(14)*

❖ *जो अन्य की पीड़ा को समझता है। वही वास्तव में पीर (गुरू) है। जो दूसरे की पीड़ा को नहीं समझता, वह काफिर (गद्दार) निर्दयी (बेपीर) है।(15)*

❖ *कबीर जी ने उपदेश दिया है कि कान खोलकर सुन ले, जिसका गला तुम काटते हो, वह भविष्य में एक दिन तुम्हारा गला काटकर बदला लेगा। यह परमात्मा का नियम है।(16)*

❖ *जो हिन्दू हिंसा करते हैं, उनकी दया समाप्त है। मुसलमान हिंसा करते हैं, उनकी दया का नाश हो चुका है। जो जीव हिंसा करते हैं, वे चौरासी लाख योनियों में गिरकर कष्ट उठाते हैं।(17)*

❖ *मुसलमान करद (पैनी छुरी) से जीव धीरे-धीरे काटते हैं तथा हिन्दू तलवार से एक झटके में जीव काटते हैं। दोनों अपने तरीके को अच्छा व पाप न होने वाला कहते हैं। कबीर जी ने कहा है कि जीव हत्या चाहे धीरे-धीरे करद से करो, चाहे झटके के साथ तलवार से करो जो पाप समान है। दोनों प्रकार के हत्यारे नरक के भागी होंगे।(18)*

❖ *जो हुक्का पीते हैं यानि तम्बाकू सेवन करने वाले हुक्के के लिए अग्नि तैयार करते हैं तो पथ्वी के जीव मारते हैं। हुक्के में पानी डालते हैं, उसमें पानी के जीव मारते हैं तथा तम्बाकू का धुँआ छोड़ते हैं, उससे वायु के जीवों को मारते हैं। इस प्रकार हुक्का पीने वाले अत्यधिक जीव हिंसा करते हैं। उनको कैसे परमात्मा मिलेगा? अर्थात् कभी नहीं।(19)*

❖ *परमात्मा ने जो अनाज, फल, मेवा, दूध, दही आदि-आदि अमत भोजन खाने को दिया, वह ही हक्क यानि अच्छा यानि नेक है, अन्य नरक देने वाला है। जो जनता को भ्रमित करके पाप करने की प्रेरणा देते हैं, वे आप भी नरक में जाते हैं, अन्य को भी नरक ले जाते हैं।(20)*

यह कबीर काफिर है। मांस मिट्टी भी नहीं खाता। इसके दिल में दया नहीं है। यह धर्म के विपरीत साधना करता है और करवाता है। सिंकदर लौधी राजा ने कहा कि लाओ उस कबीर को पकड़ कर। इतना कहना था कि दस सिपाही गए तथा साहेब कबीर को बाँध लाए। राजा के सामने खड़ा कर दिया। साहेब कबीर चुप-चाप खड़े हैं। सिंकदर लौधी ने पूछा कौन है तू? बोलता क्यों नहीं? तू अपने आपको खुदा कहता है।

तब साहेब कबीर ने कहा मैं ही अलख अल्लाह हूँ। इस सच्चाई से दुःख मान कर सिकंदर लौधी ने एक गऊ के तलवार से दो टुकड़े कर दिये। गऊ को गर्भ था और बच्चे के भी दो टुकड़े हो गए। तब सिकंदर लौधी राजा ने कहा कि कबीर, यदि तू खुदा है तो इस गऊ को जीवित कर दे अन्यथा तेरा सिर भी कलम कर (काट) दिया जाएगा। साहेब कबीर ने एक बार हाथ गऊ के दोनों टुकड़ों को लगाया तथा दूसरी बार उसके बच्चे के टुकड़ों को लगाया। उसी समय दोनों माँ-बेटा जीवित हो गए। साहेब कबीर ने गऊ से दूध निकालकर बहुत बड़ी देग (बाल्टी) भर दी तथा कहाः-

मैं ही अलख अल्ला हूँ, कुतुब गोस और पीर। गरीबदास खालिक धणी, मेरा नाम कबीर।।
गऊ अपनी अम्मा है, इस पर छुरी न बाह। गरीबदास घी दूध को, सब ही आत्म खाय।।
कबीर, दिनको रोजा रहत हैं, रात हनत हैं गाय। यह खून वह बंदगी, कहुं क्यों खुशी खुदाय।।
कबीर, खूब खाना है खीचडी, मांहीं परी टुक लौन। मांस पराया खायकै, गला कटावै कौन।।
मुसलमान गाय भखी, हिन्दु खाया सूअर। गरीबदास दोनों दीन से, राम रहिमा दूर।।
गरीब, जीव हिंसा जो करत हैं, या आगै क्या पाप। कंटक जूनि जिहान में, सिंह भेढिया और सांप।।

❖ *भावार्थ :- परमेश्वर कबीर बन्दी छोड़ जी ने उपस्थित दर्शकों तथा सिकंदर राजा से कहा कि जिस जननी को आप माता कहते हो, उसने केवल एक वर्ष दूध पिलाया। गऊ माता ने अपने को 08-10 वर्ष दूध पिलाया। घी, दही, मक्खन खिलाया। वह गऊ अपनी माता है। इसको मत मारो। इसके घी, दूध को हिन्दू-मुसलमान आदि-आदि सर्व धर्म के व्यक्ति पीते-खाते हैं। मुसलमान भाई दिन में रोजा (व्रत) रखते हो। उसे परमात्मा की भक्ति मानते हो। रात्रि में गाय या अन्य जीव मारकर खा लेते हो। भक्ति करके खून (हत्या) कर देने से परमात्मा कैसे प्रसन्न होगा?*

❖ *कबीर परमेश्वर जी ने उत्तम निर्दोष भोजन बताया है कि खिचड़ी नमकीन बनाओ और खाओ। दूसरे का गला काटकर फिर बदले में क्यों अपना गला कटाते हो?*

❖ *मुसलमान सूअर के माँस का परहेज करते हैं, गाय के माँस को खाना पाप नहीं मानते। दूसरी ओर हिन्दू गाय के माँस को खाने को पाप मानते हैं, सूअर का माँस खाने से परहेज नहीं मानते। दोनों ही भक्ति करके परमात्मा को प्राप्त करने की बात करते हैं। इस प्रकार की साधना से हिन्दुओं से राम तथा मुसलमानों से रहीम कोसों दूर है यानि परमात्मा कभी नहीं मिलेगा। यह भूल है। परमात्मा कबीर जी के शिष्य गरीबदास जी ने बताया है कि जो जीव हिंसा करते हैं, इससे अधिक कोई पाप नहीं है। वे व्यक्ति अगले जन्मों में जंगली माँसाहारी जीवों (सिंह, भेड़िया आदि-आदि) की योनियों में कष्ट उठाते हैं। साँप आदि का जीवन भोगते हैं।*

जब साहेब कबीर खड़े हुए तो उनके शरीर से असंख्यों बिजलियों जैसा प्रकाश दिखाई देने लगा। राजा सिकंदर लौधी ने साहेब कबीर के चरणों में गिर कर क्षमा याचना की तथा कहा कि -

आप कबीर अल्लाह हैं, बख्सो इबकी बार।
दास गरीब शाह कुं, अल्लाह रूप दीदार।।

भावार्थ :- सिकंदर लोधी सम्राट ने कहा कि हे कबीर साहेब! आप वास्तव में भगवान हो। मुझे क्षमा करो। दिल्ली के बादशाह सिकंदर लौधी ने साहेब कबीर को पालकी में बैठा कर साहेब कबीर के घर भिजवाया।

★ सिकंदर लौधी का जलन का रोग ठीक किया।

★ श्री रामानन्द जी का सिकंदर लौधी ने तलवार से सिर कलम (कत्ल) कर दिया था परमेश्वर कबीर जी ने उसे जीवित कर दिया।

।। मृत लड़के कमाल को जीवित करना।।

एक लड़के का शव (लगभग 12 वर्ष का) नदी में बहता हुआ आ रहा था। सिकंदर लौधी के धार्मिक गुरु (पीर) शेखतकी ने कहा कि मैं तो कबीर साहेब को तब खुदा मानूं जब मेरे सामने इस मुर्दे को जीवित कर दे। साहेब ने सोचा कि यदि यह शेखतकी मेरी बात को मान लेगा और पूर्ण परमात्मा को जान लेगा तो हो सकता है सर्व मुसलमानों को सतमार्ग पर लगा कर काल के जाल से मुक्त करवा दे। सिकंदर लौधी राजा तथा सैकड़ों सैनिक उस दरिया पर विद्यमान थे। तब साहेब कबीर ने कहा कि शेख जी - पहले आप प्रयत्न करें, कहीं बाद में कहो कि यह तो मैं भी कर सकता था। इस पर शेखतकी ने कहा कि ये कबीर तो सोचता है कि कुछ समय पश्चात यह मुर्दा बह कर आगे निकल जाएगा और मुसीबत टल जाएगी। साहेब कबीर ने उसी समय कहा कि हे जीवात्मा! जहाँ भी है कबीर हुक्म से इस शव में प्रवेश कर और बाहर आजा। तुरंत ही वह बारह वर्षीय लड़का जीवित हो कर बाहर आया और साहेब के चरणों में दण्डवत् प्रणाम की। सब उपस्थित व्यक्तियों ने कहा कि साहेब ने कमाल कर दिया। उस लड़के का नाम 'कमाल' रख दिया तथा साहेब ने उसे अपने बच्चे के रूप में अपने साथ रखा। इस घटना की चर्चा दूर-2 तक होने लगी। कबीर साहेब की महिमा बहुत हो गई। लाखों बुद्धिमान भक्त आत्मा एक परमात्मा (साहेब कबीर) की शरण में आ कर अपना आत्म कल्याण करवाने लगे। परंतु शेखतकी अपनी बेईज्जती मान कर साहेब कबीर से ईर्ष्या रखने लगा।

परमेश्वर कबीर जी द्वारा मृत लड़के कमाल को जीवित करना

परमेश्वर कबीर जी द्वारा कब्र से निकाल कर मंत लड़की कमाली को जीवित करना

।। मृत लड़की कमाली को जीवित करना।।

एक दिन शेखतकी अवसर पाकर बहु सँख्या में मुसलमानों को बहकाकर सिंकदर लौधी के पास ले गया। उस समय साहेब कबीर सिंकदर लौधी के विशेष आग्रह पर उनके मकान पर दिल्ली में ही थे। सिंकदर लौधी ने इतने व्यक्तियों के आने का कारण पूछा तो बताया कि शेखतकी कह रहा है कि यह कबीर काफिर है। कोई जादू जन्त्र जानता है। यदि यह कबीर मेरी लड़की जो मर चुकी है और लगभग 15 दिन से कब्र में दबा रखी है, को जीवित कर देगा तो मैं और सर्व उपस्थित व्यक्ति भी इस कबीर की शरण में आ जाएंगे अन्यथा इस काफिर को सजा दी जाएगी। साहेब कबीर यही सोच कर कि हो सकता है यह नादान आत्मा ऐसे ही सतमार्ग स्वीकार कर ले, अपना भी उद्धार कर ले और अन्य आत्माओं का भी कल्याण करवा दे। चूंकि ये सर्व प्राणी आज चाहे मुसलमान हैं चाहे हिन्दू हैं, चाहे सिक्ख हैं और चाहे ईसाई बने हुए हैं सब कबीर साहेब (पूर्ण परमात्मा) का ही अंश हैं। काल भगवान इनको भ्रमित किए हुए है। कबीर साहेब ने कहा कि आज से तीसरे दिन आपकी कब्र में दबी हुई लड़की जीवित हो जाएगी। निश्चित समय पर हजारों की संख्या में दर्शक कब्र के आस-पास खड़े हो गए। कबीर साहेब ने कहा हे शेखतकी! आप भी कोशिश करें। उपस्थित जनों ने कहा कि यदि शेखतकी के पास शक्ति होती तो अपनी बच्ची को कौन मरने दे? कृप्या आप ही दया करें। तब कबीर साहेब ने कब्र फुड़वा कर उस कई दिन पुराने शव को जीवित कर दिया। वह लगभग 13 वर्ष की लड़की का शव था। तब सभी उपस्थित व्यक्तियों ने कहा कि कबीर साहेब ने कमाल कर दिया - कमाल कर दिया। कबीर साहेब ने उस लड़की का नाम कमाली रखा। लड़की ने अपने पिता शेखतकी के साथ जाने से मना कर दिया तथा कहा कि हे नादान प्राणियों! यह स्वयं पूर्ण परमात्मा (सतपुरुष) आए हैं। इनके चरणों में गिर कर अपना आत्म-कल्याण करवा लो। यह दयालु परमेश्वर हैं। हजारों व्यक्तियों ने साहेब के (मद्भक्त) मतावलम्बी अर्थात् साहेब कबीर के विचारों के अनुसार भक्त बन कर अपना कल्याण करवाया अर्थात् नाम दान लिया तथा कबीर साहेब ने उस कमाली लड़की को अपनी बेटी रूप में रखा।

।। मृत लड़के सेऊ (शिव) को जीवित करना।।

एक समय साहेब कबीर अपने भक्त सम्मन के यहाँ अचानक दो सेवकों (कमाल व शेखफरीद) के साथ पहुँच गए। सम्मन के घर कुल तीन प्राणी थे। सम्मन, सम्मन की पत्नी नेकी और सम्मन का पुत्र सेऊ। भक्त सम्मन इतना गरीब था कि कई बार अन्न भी घर पर नहीं होता था। सारा परिवार भूखा सो जाता था। आज वही दिन था। भक्त सम्मन ने अपने गुरुदेव कबीर साहेब से पूछा कि साहेब खाने का विचार बताएँ, खाना कब खाओगे? कबीर साहेब ने कहा कि भाई भूख लगी है। भोजन बनाओ। सम्मन अन्दर घर में जा कर अपनी पत्नी नेकी से बोला कि अपने घर अपने गुरुदेव भगवान आए हैं। जल्दी से भोजन तैयार करो। तब नेकी ने कहा कि घर पर अन्न का एक दाना भी नहीं है। सम्मन ने कहा पड़ोस वालों से उधार मांग लाओ। नेकी ने कहा कि मैं मांगने गई थी लेकिन किसी ने भी उधार आटा नहीं दिया। उन्होंने आटा होते हुए भी जान बूझ कर नहीं दिया और कह रहे हैं कि आज तुम्हारे घर तुम्हारे गुरु जी आए हैं। तुम कहा करते थे कि हमारे गुरु जी भगवान हैं। आपके गुरु जी भगवान हैं तो तुम्हें माँगने की आवश्यकता क्यों पड़ी? ये ही भर देगें तुम्हारे घर को आदि-2 कह कर मजाक करने लगे। सम्मन ने कहा लाओ आपका चीर गिरवी रख

कर तीन सेर आटा ले आता हूँ। नेकी ने कहा यह चीर फटा हुआ है। इसे कोई गिरवी नहीं रखता। सम्मन सोच में पड़ जाता है और अपने दुर्भाग्य को कोसते हुए कहता है कि मैं कितना अभागा हूँ। आज घर भगवान आए और मैं उनको भोजन भी नहीं करवा सकता। हे परमात्मा! ऐसे पापी प्राणी को पथ्वी पर क्यों भेजा। मैं इतना नीच रहा हूँगा कि पिछले जन्म में कोई पुण्य नहीं किया। अब सतगुरु को क्या मुंह दिखाऊँ? यह कह कर अन्दर कोठे में जा कर फूट-2 कर रोने लगा। तब उसकी पत्नी नेकी कहने लगी कि हिम्मत करो। रोवो मत। परमात्मा आए हैं। इन्हें ठेस पहुँचेगी। सोचेंगे हमारे आने से तंग आ कर रो रहा है। सम्मन चुप हुआ। फिर नेकी ने कहा आज रात्रि में दोनों पिता पुत्र जा कर तीन सेर (पुराना बाट किलो ग्राम के लगभग) आटा चुरा कर लाना। केवल संतों व भक्तों के लिए। तब लड़का सेऊ बोला माँ - गुरु जी कहते हैं चोरी करना पाप है। फिर आप भी मुझे शिक्षा दिया करती कि बेटा कभी चोरी नहीं करनी चाहिए। जो चोरी करते हैं उनका सर्वनाश होता है। आज आप यह क्या कह रही हो माँ? क्या हम पाप करेंगे माँ? अपना भजन नष्ट हो जाएगा। माँ हम चौरासी लाख योनियों में कष्ट पाएंगे। ऐसा मत कहो माँ। माँ आपको मेरी कसम। तब नेकी ने कहा पुत्र तुम ठीक कह रहे हो। चोरी करना पाप है परंतु पुत्र हम अपने लिए नहीं बल्कि संतों के लिए करेंगे। नेकी ने कहा बेटा - ये नगर के लोग अपने से बहुत चिड़ते हैं। हमने इनको कहा था कि हमारे गुरुदेव कबीर साहेब (पूर्ण परमात्मा) आए हुए हैं। इन्होंने एक मतक गऊ तथा उसके बच्चे को जीवित कर दिया था जिसके टुकड़े सिंकदर लौधी ने करवाए थे। एक लड़के तथा एक लड़की को जीवित कर दिया। सिंकदर लौधी राजा का जलन का रोग समाप्त कर दिया तथा श्री रामानन्द जी (कबीर साहेब के गुरुदेव) जो सिंकदर लौधी ने तलवार से कत्ल कर दिया था वे भी कबीर साहेब ने जीवित कर दिए थे। इस बात का ये नगर वाले मजाक कर रहे हैं और कहते हैं कि आपके गुरु कबीर तो भगवान हैं तुम्हारे घर को भी अन्न से भर देंगे। फिर क्यों अन्न (आटे) के लिए घर घर डोलती फिरती हो?

बेटा ये नादान प्राणी हैं यदि आज साहेब कबीर इस नगरी का अन्न खाए बिना चले गए तो काल भगवान भी इतना नाराज हो जाएगा कि कहीं इस नगरी को समाप्त न कर दे। हे पुत्र! इस अनर्थ को बचाने के लिए अन्न की चोरी करनी है। हम नहीं खाएंगे। केवल अपने सतगुरु तथा आए भक्तों को प्रसाद बना कर खिलाएगें। यह कह कर नेकी की आँखों में आँसू भर आए और कहा पुत्र नाटियो मत अर्थात् मना नहीं करना। तब अपनी माँ की आँखों के आँसू पौंछता हुआ लड़का सेऊ कहने लगा - माँ रो मत, आपका पुत्र आपके आदेश का पालन करेगा। माँ आप तो बहुत अच्छी हो न।

अर्ध रात्रि के समय दोनों पिता (सम्मन) पुत्र (सेऊ) चोरी करने के लिए चले दिए। एक सेठ की दुकान की दीवार में छिद्र किया। सम्मन ने कहा कि पुत्र मैं अन्दर जाता हूँ। यदि कोई व्यक्ति आए तो धीरे से कह देना मैं आपको आटा पकड़ा दूंगा और ले कर भाग जाना। तब सेऊ ने कहा नहीं पिता जी, मैं अन्दर जाऊँगा। यदि मैं पकड़ा भी गया तो बच्चा समझ कर माफ कर दिया जाऊँगा। सम्मन ने कहा पुत्र यदि आपको पकड़ कर मार दिया तो मैं और तेरी माँ कैसे जीवित रहेंगे? सेऊ प्रार्थना करता हुआ छिद्र द्वार से अन्दर दुकान में प्रवेश कर जाता है। तब सम्मन ने कहा पुत्र केवल तीन सेर आटा लाना, अधिक नहीं। लड़का सेऊ लगभग तीन सेर आटा अपनी फटी पुरानी चद्दर में बाँध कर चलने लगा तो अंधेरे में तराजू के पलड़े पर पैर रखा गया। जोर दार आवाज हुई जिससे दुकानदार जाग गया और सेऊ को चोर-चोर करके पकड़ लिया और रस्से से बाँध दिया। इससे पहले सेऊ ने वह चद्दर में बँधा हुआ आटा उस छिद्र से बाहर फैंक दिया और

कहा पिता जी मुझे सेठ ने पकड़ लिया है। आप आटा ले जाओ और सतगुरु व भक्तों को भोजन करवाना। मेरी चिंता मत करना। आटा ले कर सम्मन घर पर गया तो सेऊ को न पा कर नेकी ने पूछा लड़का कहाँ है? सम्मन ने कहा उसे सेठ जी ने पकड़ कर थम्ब से बाँध दिया। तब नेकी ने कहा कि आप वापिस जाओ और लड़के सेऊ का सिर काट लाओ। क्योंकि लड़के को पहचान कर अपने घर पर लाएंगे। फिर सतगुरु को देख कर नगर वाले कहेंगे कि ये हैं जो चोरी करवाते हैं। हो सकता है सतगुरु देव को परेशान करें। हम पापी प्राणी अपने दाता को भोजन के स्थान पर कैद न दिखा दें। यह कह कर माँ अपने बेटे का सिर काटने के लिए अपने पति से कह रही है वह भी गुरुदेव जी के लिए। सम्मन ने हाथ में कर्द (लम्बा छुरा) लिया तथा दुकान पर जा कर कहा सेऊ बेटा, एक बार गर्दन बाहर निकाल। कुछ जरूरी बातें करनी हैं। कल तो हम नहीं मिल पाएंगे। हो सकता है ये आपको मरवा दें। तब सेऊ उस सेठ (बनिए) से कहता है कि सेठ जी बाहर मेरा बाप खड़ा है। कोई जरूरी बात करना चाहता है। कृप्या करके मेरे रस्से को इतना ढीला कर दो कि मेरी गर्दन छिद्र से बाहर निकल जाए। तब सेठ ने उसकी बात को स्वीकार करके रस्सा इतना ढीला कर दिया कि गर्दन आसानी से बाहर निकल गई। तब सेऊ ने कहा पिता जी मेरी गर्दन काट दो। यदि आप मेरी गर्दन नहीं काटोगे तो आप मेरे पिता नहीं हो। सम्मन ने एक दम कर्द मारी और सिर काट कर घर ले गया। सेठ ने लड़के का कत्ल हुआ देख कर उसके शव को घसीट कर साथ ही एक पजावा (ईटें पकाने का भट्ठा) था उस खण्डहर में डाल गया।

जब नेकी ने सम्मन से कहा कि आप वापिस जाओ और लड़के का धड़ भी बाहर मिलेगा उठा लाओ। जब सम्मन दुकान पर पहुँचा उस समय तक सेठ ने उस दुकान की दीवार के छिद्र को बंद कर लिया था। सम्मन ने शव की घसीट (चिन्हों) को देखते हुए शव के पास पहुँच कर उसे उठा लाया। ला कर अन्दर कोठे में रख कर ऊपर पुराने कपड़े (गुदड़) डाल दिए और सिर को अलमारी के ताख (एक हिस्से) में रख कर खिड़की बंद कर दी।

कुछ समय के बाद सूर्य उदय हुआ। नेकी ने स्नान किया। फिर सतगुरु व भक्तों का खाना बनाया। फिर सतगुरु कबीर साहेब जी से भोजन करने की प्रार्थना की। नेकी ने साहेब कबीर व दोनों भक्त (कमाल तथा शेख फरीद), तीनों के सामने आदर के साथ भोजन परोस दिया। साहेब कबीर ने कहा इसे छः दौनों में डाल कर आप तीनों भी साथ बैठो। यह प्रेम प्रसाद पाओ। बहुत प्रार्थना करने पर भी साहेब कबीर नहीं माने तो छः दौनों में प्रसाद परोसा गया। पाँचों प्रसाद के लिए बैठ गए। तब साहेब कबीर ने कहा :-

आओ सेऊ जीम लो, यह प्रसाद प्रेम।
शीश कटत हैं चोरों के, साधों के नित्य क्षेम।।

भावार्थ :- साहेब कबीर ने कहा कि सेऊ आओ भोजन पाओ। सिर तो चोरों के कटते हैं। संतों (भक्तों) के नहीं। उनको तो क्षमा होती है। साहेब कबीर ने इतना कहा था उसी समय सेऊ के धड़ पर सिर लग गया। कटे हुए का कोई निशान भी गर्दन पर नहीं था तथा पंगत (पंक्ति) में बैठ कर भोजन करने लगा। बोलो कबीर साहेब (कविरमितौजा) की जय।

गरीब, सेऊ धड़ पर शीश चढ़ा, बैठा पंगत माहीं।
नहीं घरहरा गर्दन कै, औह सेऊ अक नाहीं।।

भावार्थ :- जो सिर अलमारी की ताक में रखा था। वह लड़के शिव (सेऊ) के धड़ पर अपने आप लग गया। लड़का जीवित होकर उठकर भोजन खाने वाली पंक्ति में आकर बैठ गया। सम्मन

(पिता) तथा नेकी (माता) को विश्वास नहीं हो रहा था कि यह वही बेटा सेऊ है कि नहीं क्योंकि लड़की की गर्दन पर कटे का निशान (चिन्ह) भी नहीं था।

सम्मन तथा नेकी ने देखा कि गर्दन पर कोई चिन्ह भी नहीं है। लड़का जीवित कैसे हुआ? अन्दर जा कर देखा तो वहाँ शव तथा शीश नहीं था। केवल रक्त के छीटें लगे थे जो इस पापी मन के संश्य को समाप्त करने के लिए प्रमाण बकाया था।

ऐसी-2 बहुत लीलाएँ साहेब कबीर (कविरग्नि) ने की हैं जिनसे यह स्वसिद्ध है कि ये ही पूर्ण परमात्मा हैं। सामवेद संख्या नं. 822 में कहा है कि कविर्देव अपने विधिवत् साधक साथी की आयु बढ़ा देता है।

।। ब्रह्म (काल) व प्रकति (दुर्गा) से सर्व प्राणी व ब्रह्मा, विष्णु, शिव की उत्पत्ति।।

अध्याय 14 के श्लोक 3 में हे अर्जुन! मेरी प्रकति तो योनि (गर्भाधान स्थान है) तथा (अहम् ब्रह्म) मैं ब्रह्म (काल) उसमें गर्भ स्थापन करता हूँ। उससे सर्व प्राणियों की उत्पत्ति होती है। अध्याय 14 के श्लोक 4 में कहा है कि हे अर्जुन! सब योनियों में जितनी मूर्ति (शरीरधारी प्राणी) उत्पन्न होती हैं। प्रकति तो उन सब की गर्भधारण करने वाली माता है और मैं ब्रह्म (काल) उसमें बीज स्थापना करने वाला पिता हूँ।

।। तीनों ब्रह्मा (रजगुण), विष्णु (सतगुण), शिव (तमगुण) आत्मा को शरीर में बाँधते हैं अर्थात् मुक्त नहीं होने देते।।

अध्याय 14 के श्लोक 5 में कहा है कि हे अर्जुन! सत्वगुण (विष्णु) रजोगुण (ब्रह्मा) तमोगुण (शिव) ये प्रकति (दुर्गा) से उत्पन्न तीनों गुण अविनाशी जीव आत्मा को शरीर में बाँधते हैं अर्थात् पूर्ण मुक्ति बाधक हैं।

अध्याय 14 के श्लोक 6 में कहा है कि उन तीनों गुणों में सतगुण (विष्णु) निर्मल होने के कारण प्रकाश करने वाला (यह नकली अनामी लोक काल द्वारा बनाया हुआ) सुखदायक ज्ञान के सम्बन्ध में जीव को बाँधता है। पार नहीं होने देता। चौरासी में डालता है। एक बहुत ही भावुक भक्त आत्मा से मैंने भगवान काल की सष्टि तथा उसके द्वारा दी जाने वाली चौरासी लाख योनियों में कष्ट तथा एक लाख प्राणियों का काल द्वारा प्रतिदिन भक्षण करना समझाया तथा आगे सतलोक व परम गति का मार्ग बताया। नहीं तो आपको व सर्व देवताओं को काल खाएगा। इस पर उस पुण्य आत्मा ने कहा कि मैं तो बिल्कुल सतलोक नहीं जाऊँगा। चूंकि यदि मैं सतलोक चला गया तो भगवान की भूख कौन बुझाएगा? यहाँ पर वह प्राणी सतगुण प्रधान है जो उसके सतमार्ग का बाधक बन गया। विवेक बिना सतगुणी उदारात्मा होने पर भी काल के जाल से नहीं बच पाती।

।। ब्रह्मा (रजोगुण) की उपासना से उपलब्धि।।

अध्याय 14 के श्लोक 7 में कहा है कि हे अर्जुन! राग-रूप रजोगुण (ब्रह्मा) भी जीव को कर्म तथा उसके फल भोग की कामना के कारण बाँधे रखता है अर्थात् मुक्त नहीं होने देता। विषयों के भोगों के कारण मौज करने के वश हो कर काल जाल से नहीं निकल पाता।

एक समय मार्कण्डेय ऋषि ने इन्द्र जी (स्वर्ग के राजा) से कहा कि आपको मालूम भी है कि इन्द्र का राज भोगकर गधे की जूनी में जाओगे। इसलिए इस इन्द्र के राज को त्याग कर ब्रह्म का

भजन कर। तेरा चौरासी से पीछा छूट जाएगा। इस पर इन्द्र जी ने कहा कि फिर कभी देखेंगे। अब तो मौज मनाने दो ऋषि जी।

विचार करें :-- फिर कब देखेंगे? क्या गधा बनने के बाद? फिर तो गधे को कुम्हार देखेगा। एक क्विंटल वजन कमर पर, ऊपर से डण्डा लगेगा। ज्ञान होते हुए भी रजोगुणवश प्राणी भी काल जाल से मुक्त नहीं हो पाता।

।। शिव (तमोगुण) की उपासना से प्राप्ति।।

अध्याय 14 के श्लोक 8 का अनुवाद : हे अर्जुन! सब शरीर धारियोंको मोहित करनेवाले तमोगुणको तो अज्ञान से उत्पन्न जान। वह इस जीवात्माको प्रमाद आलस्य और निंद्राके द्वारा बाँधता है।

लंकापति राजा रावण ने भगवान शिव (तमगुण) की कठिन साधना व भक्ति की। यहाँ तक कि उसने अपने शरीर को भी काट कर समर्पित कर दिया। उसके बदले में भगवान शिव ने रावण को दश सिर व बीस भुजा प्रदान की। जब रावण को श्री राम ने मारा तो दश बार सिर काटे थे। रावण की भक्ति के परिणाम स्वरूप उसे फिर दश बार सिर वापिस लगे थे अर्थात् दश बार गर्दन कटने पर भी मरा नहीं। फिर गर्दन नई लग जाती थी। परंतु तमोगुण (अहंकार) समाप्त नहीं हुआ जिससे इतना अज्ञानी (अंधा) हो गया कि अपनी ही माता (जगत जननी) सीता का अपहरण कर लिया। तमोगुण ने उसका ज्ञान हर लिया तथा सर्वनाश को प्राप्त हुआ। यह तमगुण (शिव शंकर) की साधना का परिणाम है। गीता जी में भगवान ब्रह्म (काल) बताना चाहते हैं कि इन तीनों गुणों की भक्ति से भी जीव पार नहीं हो सकता। इससे अच्छी तो मेरी (ब्रह्म) साधना है परंतु यह भी पूर्ण मुक्तिदायक नहीं है। वह घटिया मुक्ति भगवान ब्रह्म (काल) ने स्वयं अध्याय 7 श्लोक 18 में कही है।

❖ *अध्याय 14 श्लोक 9 में कहा है कि हे अर्जुन (भारत)! सतगुण सुख में लगाता है तथा रजोगुण कर्म में और तमोगुण ज्ञान को ढ़ककर प्रमाद (उल्ट मार्ग) में भी लगाता है।*

❖ *अध्याय 14 के श्लोक 10 से 17 तक कहा है कि एक गुण दूसरे को दबाकर अपना प्रभाव प्राणी पर बनाए रखता है।*

एक भला व्यक्ति (जिसका सतगुण बढ़ा हुआ था तथा अन्य दोनों गुण दबे हुए थे) सतगुणी भाव से किसी लावारिस (जिसका कोई नाती जीवित नहीं था) रोगी को यह कहकर घर ले आया कि मैं आप की सेवा भी करूंगा तथा आपका ईलाज भी कराऊँगा। आप मुझे अपना पुत्र ही समझो। घर लाकर रजोगुण के बढ़ जाने पर (दोनों गुण दबे रहने पर) बढ़िया कपड़े सिलवाए, ईलाज करवाना प्रारम्भ कर दिया। एक दिन उस रोगी ने उसके पत्थर के फर्श पर थूक दिया। उस दिन उठाकर उस रोगी को घर से बाहर पटक दिया। तब तमोगुण बढ़ा हुआ था, दोनों गुण दबे हुए थे।

।। विष्णु (सतोगुण) की उपासना से प्राप्ति।।

अध्याय 14 के श्लोक 18 में कहा है कि सतगुण में स्थित (अर्थात् विष्णु उपासक) स्वर्ग आदि उच्च लोकों में चला जाता है। फिर जन्म-मरण, नरक, चौरासी लाख योनियों में चला जाता है। रजगुण उपासक (ब्रह्मा का साधक) मनुष्य लोक (पथ्वी लोक) पर मनुष्य का एक आध जन्म प्राप्त कर फिर नरक व चौरासी लाख जूनियों में चला जाता है। तमगुण प्रधान (शिव उपासक) अधोगति (नरक तथा लख चौरासी जूनियों) को सीधा प्राप्त होता है।

।। ब्रह्मा, विष्णु, शिव कर्त्ता नहीं।।

गीता अध्याय 14 श्लोक 19 का अनुवाद :- काल ब्रह्म ने कहा है कि (यदा) जब यानि जिस स्थिति में (दृष्टा) ज्ञान की आँखों से देखने वाला अल्प ज्ञान के कारण (गुणेभ्यः) तीनों गुणों यानि रजगुण ब्रह्मा, सतगुण विष्णु तथा तमगुण शिव के अतिरिक्त (अन्य कर्तरम्) अन्य कोई कर्ता (न) नहीं (अनुपश्यति) देखता यानि इन तीनों देवों से ऊपर कोई परमात्मा स्वीकार नहीं करता (च) तथा किसी से सुनकर (गुणेभ्य) तीनों गुण रूप ब्रह्मा रजगुण, विष्णु सतगुण तथा शिव तमगुण से (परम् वेति) अन्य परम अक्षर ब्रह्म को भी जानता है। (सः) वह (मत् भावम्) मेरे भाव को (अधिगच्छति) प्राप्त होता है।

भावार्थ :- काल ब्रह्म ने स्पष्ट किया है कि जिसको पूर्ण ज्ञान नहीं है, वह श्री ब्रह्मा रजगुण, श्री विष्णु सतगुण तथा श्री शिव तमगुण के अतिरिक्त किसी को सृष्टि का कर्ता नहीं जानता। यदि किसी तत्वदर्शी संत से इनसे अन्य परम दिव्य परमात्मा के विषय में जान लेता है तो वह मुझे ही परम अक्षर ब्रह्म मानकर मेरे भाव को प्राप्त करता है यानि वह भी मेरे ही जाल में रह जाता है।

अध्याय 14 के श्लोक 19 में वर्णन है कि इस सर्व ज्ञान को तत्व से जान कर तीन गुणों (ब्रह्मा, विष्णु, शिव) के अतिरिक्त किसी अन्य को कर्त्ता नहीं जानता। इन गुणों से (परम) अन्य परम अक्षर ब्रह्म को भी जानता है। वह मेरे मतावलम्बी भाव को प्राप्त होता है अर्थात् वह साधक अध्याय 13 में दिए मत (विचारों) का अनुसरण करने वाला है। उसे मत-भावम् (मद्भावम्) कहा जाता है (अध्याय 3 के श्लोक नं. 31,32 में अपना मत कहा है) तथा मेरे जाल में रह जाता है।

।। ब्रह्मा, विष्णु, शिव की साधना त्याग कर पूर्ण परमात्मा की साधना करनी चाहिए।।

❖ *अध्याय 14 के श्लोक 20 में कहा है कि वह जीवात्मा इस शरीर (दुःख की जड़) की उत्पत्ति अर्थात् जन्म-मरण का कारण गुणों को समझ लेता है तथा वह तीनों गुणों को उलंघ कर अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु, महेश की भक्ति छोड़ कर, जन्म-मरण, बुढापा व सर्व दुःखों से मुक्त होकर (पूर्ण मुक्ति पूर्ण परमात्मा प्राप्ति करके) परमानन्द को प्राप्त हो जाता है।*

❖ *अध्याय 14 के श्लोक 21 में अर्जुन ने प्रश्न किया है कि हे भगवन! इन तीनों गुणों से अतीत हुए भक्त के क्या लक्षण होते हैं? तथा कैसे आचरण वाला होता है? कैसे इन तीनों गुणों (ब्रह्मा, विष्णु, शिव) से अतीत (परे) होता है?*

।। तीनों गुणों से अतीत अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु, शिव की भक्ति से ऊपर उठे भक्त के लक्षण।।

अध्याय 14 के श्लोक 22 से 25 में कहा है कि जो भक्त किसी देव की महिमात्मक प्रशंसा सुन कर उस पर आसक्त नहीं होता क्योंकि उसे पूर्ण ज्ञान है कि यह देव (गुण) केवल इतनी ही महिमा रखता है जो जीव के उद्धार के लिए पर्याप्त नहीं है। जैसे भगवान कृष्ण (विष्णु-सतगुण) ने कंश-केशि, शिशुपाल आदि मारे तथा सुदामा को धन दे दिया। आम जीव के कल्याण के लिए पर्याप्त नहीं है। क्योंकि भगवान विष्णु (सतगुण) का उपासक केवल स्वर्ग आदि उत्तम लोकों में जा सकता है। फिर चौरासी लाख जूनियों का संकट बना रहेगा। इसलिए वह साधक अपने विचार स्थिर रखता है तथा अपना स्वभाव मोह वश नहीं बदलता और न ही उन देवों (ब्रह्मा, विष्णु, शिव)

से द्वेष करता। न ही उनकी आकांक्षा (इच्छा) करता जो उनकी शक्ति से परिचित है, उनको वहीं तक समझता है तथा अविचलित स्थित एक रस इनसे भी परे परमात्मा में लीन रहता है तथा सुख-दुःख, मिट्टी-सोना, प्रिय-अप्रिय, निन्दा-स्तुति में सम भाव में रहता है। मान-अपमान, मित्र-वैरी को समान समझता है तथा सर्व प्रथम अभिमान का त्याग करता है। वह (भक्त) गुणातीत कहा जाता है।

।। ब्रह्म (काल) की उपासना का लाभ - देवी-देवताओं व ब्रह्मा, विष्णु, शिव की भक्ति त्याग कर ही होता है।।।

अध्याय 14 के श्लोक 26 में कहा है कि - और जो (भक्त) अव्याभिचारिणी भक्ति योग के द्वारा अर्थात् केवल एक इष्ट की साधना (अन्य देवी-देवताओं, भूतों-पित्रों तथा ब्रह्मा, विष्णु, शिव की पूजा त्याग कर) करता है वह आत्मा अव्याभिचारी है। जैसे कोई स्त्री अपने पति के साथ-2 अन्य पुरुष का संग करती है वह व्याभिचारिणी स्त्री कहलाती है जो अपने एक पति पर आश्रित नहीं हुई। इसलिए व्याभिचारी भक्त हैं जो एक इष्ट पर आधारित नहीं हैं।, जो अनन्य मन से (केवल एक इष्ट की आशा से) भक्ति करते हैं और जो एक इष्ट पर आधारित हैं वे अव्याभिचारिणी भक्ति करने वाले कहे हैं।

ऐसा भक्त केवल मुझे (काल-ब्रह्म को एक अक्षर ऊँ मन्त्र से) भजता है। वह साधक तीनों गुणों (ब्रह्मा, विष्णु, शिव) की भक्ति त्याग कर जो काल (ब्रह्म) को अनन्य मन से केवल ऊँ मन्त्र से भजता है, वह साधक उस पूर्ण परमात्मा (परम अक्षर ब्रह्म, परम अविनाशी भगवान) को प्राप्त होने के योग्य होता है क्योंकि पूर्ण परमात्मा को प्राप्त करने की साधना में तीन नामों में प्रथम ॐ नाम भी है।

।। पूर्ण परमात्मा की प्राप्ति में काल ब्रह्म सहयोगी।।

अध्याय 14 के श्लोक 27 में ब्रह्म काल कह रहा है कि पूर्ण परमात्मा के अविनाशी अमत का तथा शाश्वत् धर्म का और एकान्तिक सुख की पहली अवस्था (प्रतिष्ठा) मैं ही हूँ। यह काल ही सत्यनाम उपासक भक्त को पार होने के लिए अपना सिर झुका कर रास्ता देता है। तब कबीर हंस उस काल के सिर पर पैर रख कर सतलोक जाता है। काल ने कबीर साहेब से कहा है कि - ''जो भी भक्त होवै तुम्हारा। मम सिर पग दे होवै पारा।।''

परमात्मा की तीन अवस्था (प्रतिष्ठा) है। तीन ही परमात्मा हैं -

गीता अध्याय 17 श्लोक 23 में ओं-तत्-सत् इस तीन मन्त्र के जाप से पूर्ण परमात्मा की प्राप्ति कही है।

1. क्षर यह काल ब्रह्म है, इसका ओम् (ॐ) नाम है। 2. अक्षर अर्थात् परब्रह्म है। इसका तत् जो सांकेतिक मन्त्र है। 3. परम अक्षर ब्रह्म अर्थात् पूर्णब्रह्म है। इसका सत् मन्त्र है जो सांकेतिक है।

पहली प्रतिष्ठा अर्थात् अवस्था ब्रह्म है। ब्रह्म लोक को पार करके परब्रह्म (अक्षर पुरुष) का लोक आता है। जब कबीर साहेब का उपासक हंस सतलोक जाता है तो पहली अवस्था (प्रतिष्ठा) काल ब्रह्म के लोक को पार करना है। यह प्रथम अवस्था भी तब होगी जबोऊँ मन्त्र का जाप काल के दुःख को ध्यान में रखते हुए करता है। जैसे सतनाम में (क्षर-ब्रह्म का मन्त्र ऊँ है तथा अक्षर पुरुष/परब्रह्म का मन्त्र सोहं) दोनों मन्त्रों का स्वांसों द्वारा जाप करना होता है। पूर्ण गुरु से ले कर

ऊँ मन्त्र का जाप काल के ऋण से मुक्त करता है। तब काल (ब्रह्म) अपनी हद (21 ब्रह्मण्ड) से स्वयं अपने सिर पर पैर रखवा कर परब्रह्म लोक में जाने देता है। क्योंकि जिस भक्त आत्मा के पास सतनाम के साथ सार नाम भी है तथा वह अंतिम स्वांस तक गुरुदेव जी की शरण में रहता है उसमें इतनी भक्ति शक्ति हो जाती है कि काल (क्षर/ब्रह्म/ज्योति निरंजन) विवश हो जाता है तथा उस हंस के सामने अपना सिर झुका देता है। फिर वह भक्त उसके सिर पर पैर रख कर परब्रह्म लोक में चला जाता है। यह पहली प्रतिष्ठा (अवस्था) हुई।

दूसरी अवस्था (प्रतिष्ठा) है कि परब्रह्म के अर्थात् अक्षर पुरुष के लोक को पार करना है। यह दूसरी अवस्था (प्रतिष्ठा) है। उसके लिए अक्षर पुरुष का जाप सोहं मन्त्र है। यदि इसके साथ सार नाम नहीं मिला तो भी अधूरा काम है। सोहं मन्त्र का जाप का अभ्यास अधिक हो जाने पर सारनाम दिया जाता है। सारनाम के जाप के अभ्यास की कमाई की शक्ति से परब्रह्म का लोक पार हो जाता है। क्योंकि सोहं मन्त्र के जाप अभ्यास (कमाई) से परब्रह्म का यात्रा ऋण मुक्त हो जाता है। अक्षर पुरुष के लोक को पार करने के बाद सोहं मन्त्र भी नहीं रहता। फिर केवल सारनाम सुरति निरति का जाप है। जिसको सार शब्द गुरु जी से प्राप्त हो गया, वह सार शब्द प्राप्त हंस उस शब्द की कमाई से उत्पन्न ध्वनि के आधार पर सतलोक में अपने सही स्थान पर चला जाता है। (जो ध्वनि शरीर में सुनती है, यह तो काल जाल ही है) यह तीसरी अवस्था (प्रतिष्ठा) हुई। यहाँ पर पूर्ण मुक्त हंस रहते हैं।

अध्याय 14 के श्लोक 27 में ब्रह्म (ज्योति निरंजन) ने कहा है कि उस पूर्ण परमात्मा के सच्चे आनन्द को प्राप्त कराने में मैं (काल) ही प्रतिष्ठा अर्थात् आश्रय हूँ का साधारण सा भाव पाठक इस प्रकार समझे कि जैसे किसी ने डोमिसाईल (प्रमाण पत्र) बनवाना हो तो उसका प्रथम प्रतिष्ठा (अवस्था) पटवारी होता है। वह लिख कर देता है कि यह इस क्षेत्र तथा गाँव का रहने वाला है परंतु डोमिसाईल बनाने वाला अन्य उच्च अधिकारी होता है। इसी प्रकार पूर्ण परमात्मा को प्राप्त करने में काल भगवान पहली प्रतिष्ठा है।

❑❑❑

।।चौदहवें अध्याय के अनुवाद सहित श्लोक।।

परमात्मने नमः

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

अध्याय 14 का श्लोक 1

परं भूयः प्रवक्ष्यामि ज्ञानानां ज्ञानमुत्तमम्।
यज्ज्ञात्वा मुनयः सर्वे परां सिद्धिमितो गताः। १।

परम्, भूयः, प्रवक्ष्यामि, ज्ञानानाम्, ज्ञानम्, उत्तमम्,
यत्, ज्ञात्वा, मुनयः, सर्वे, पराम्, सिद्धिम्, इतः, गताः।।1।।

अनुवाद :(ज्ञानानाम्) ज्ञानोंमें भी (उत्तमम् तत्) अति उत्तम उस (परम्) अन्य परम (ज्ञानम्) ज्ञानको मैं (भूयः) फिर (प्रवक्ष्यामि) कहूँगा, (यत्) जिसको (ज्ञात्वा) जानकर (सर्वे) सब (मुनयः) मुनिजन (इतः) इस संसारसे मुक्त होकर (पराम्) परम (सिद्धिम्) सिद्धिको (गताः) प्राप्त हो गये हैं अर्थात् पूर्ण परमात्मा को प्राप्त हो गए हैं।(1)

अध्याय 14 का श्लोक 2

इदं ज्ञानमुपाश्रित्य मम साधर्म्यमागताः।
सर्गेऽपि नोपजायन्ते प्रलये न व्यथन्ति च । २।

इदम्, ज्ञानम्, उपाश्रित्य, मम, साधर्म्यम्, आगताः,
सर्गे, अपि, न, उपजायन्ते, प्रलये, न, व्यथन्ति, च।।2।।

अनुवाद : (इदम्) इस (ज्ञानम्) ज्ञानको (उपाश्रित्य) आश्रय करके अर्थात् धारण करके (मम) मेरे (साधर्म्यम्) जैसे गुणों को (आगताः) प्राप्त हुए साधक (सर्गे) सष्टिके आदिमें (न उपजायन्ते) उत्पन्न नहीं होते (च) और (प्रलये) प्रलयकाल में (अपि) भी (न व्यथन्ति) व्याकुल नहीं होते।(2)

अध्याय 14 का श्लोक 3

मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन्गर्भं दधाम्यहम्।
सम्भवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत । ३।

मम, योनिः, महत्, ब्रह्म, तस्मिन्, गर्भम्, दधामि, अहम्,
सम्भवः, सर्वभूतानाम्, ततः, भवति, भारत।।3।।

अनुवाद : (भारत) हे अर्जुन! (मम) मेरी (महत्) मूल प्रकति अर्थात् दुर्गा तो सम्पूर्ण प्राणियोंकी (योनिः) योनि है अर्थात् गर्भाधानका स्थान है और (अहम् ब्रह्म) मैं ब्रह्म-काल (तस्मिन्) उस योनिमें (गर्भम्) गर्भको (दधामि) स्थापन करता हूँ (ततः) उस संयोगसे (सर्वभूतानाम्) सब प्राणियों की (सम्भवः) उत्पत्ति (भवति) होती है।(3)

अध्याय 14 का श्लोक 4

सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः सम्भवन्ति याः।
तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता। ४।

सर्वयोनिषु, कौन्तेय, मूर्तयः, सम्भवन्ति, याः,
तासाम्, ब्रह्म, महत्, योनिः, अहम्, बीजप्रदः, पिता।।4।।

अनुवाद : (कौन्तेय) हे अर्जुन! (सर्वयोनिषु) सब योनियों में (याः) जितनी (मूर्तयः) मूर्तियाँ अर्थात् शरीरधारी प्राणी (सम्भवन्ति) उत्पन्न होते हैं, (महत्) मूल प्रकति तो (तासाम्) उन सबकी (योनिः) गर्भ धारण करने वाली माता है और (अहम् ब्रह्म) मैं (बीजप्रदः) बीज को स्थापन करने वाला (पिता) पिता हूँ।(4)

अध्याय 14 का श्लोक 5

सत्त्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसम्भवाः।
निबध्नन्ति महाबाहो देहे देहिनमव्ययम्।५।

सत्त्वम्, रजः, तमः, इति, गुणाः, प्रकतिसम्भवाः,
निबध्नन्ति, महाबाहो, देहे, देहिनम्, अव्ययम्।।5।।

अनुवाद : (महाबाहो) हे अर्जुन! (सत्त्वम्) सत्त्वगुण, (रजः) रजोगुण और (तमः) तमोगुण (इति) ये (प्रकतिसम्भवाः) प्रकतिसे उत्पन्न (गुणाः) तीनों गुण (अव्ययम्) अविनाशी (देहिनम्) जीवात्माको (देहे) शरीरमें (निबध्नन्ति) बाँधते हैं।(5)

अध्याय 14 का श्लोक 6

तत्र सत्त्वं निर्मलत्वात्प्रकाशकमनामयम्।
सुखसङ्गेन बध्नाति ज्ञानसङ्गेन चानघ।६।

तत्र, सत्त्वम्, निर्मलत्वात्, प्रकाशकम्, अनामयम्,
सुखसंगेन, बध्नाति, ज्ञानसंगेन, च, अनघ।।6।।

अनुवाद : (अनघ) हे निष्पाप! (तत्र) उन तीनों गुणोंमें (सत्त्वम्) सत्वगुण तो (निर्मलत्वात्) निर्मल होनेके कारण (प्रकाशकम्) प्रकाश करनेवाला और (अनामयम्) नकली अनामी है वह (सुखसंगेन) सुखके सम्बन्धसे (च) और (ज्ञानसंगेन) ज्ञानके सम्बन्धसे अर्थात् उसके अभिमानसे (बध्नाति) बाँधता है।(6)

अध्याय 14 का श्लोक 7

रजो रागात्मकं विद्धि तृष्णासङ्गसमुद्भवम्।
तन्निबध्नाति कौन्तेय कर्मसङ्गेन देहिनम्। ७

रजः, रागात्मकम्, विद्धि, तष्णासंगसमुद्भवम्,
तत्, निबध्नाति, कौन्तेय, कर्मसंगेन, देहिनम्।।7।।

अनुवाद : (कौन्तेय) हे अर्जुन! (रागात्मकम्) रागरूप (रजः) रजोगुण को (तष्णासंगसमुद्भवम्) कामना और आसक्तिसे उत्पन्न (विद्धि) जान (तत्) वह (देहिनम्) इस जीवात्मा को (कर्मसंगेन) कर्मों के और उनके फल के सम्बन्ध से (निबध्नाति) बाँधता है।(7)

अध्याय 14 का श्लोक 8

तमस्त्वज्ञानजं विद्धि मोहनं सर्वदेहिनाम्।
प्रमादालस्यनिद्राभिस्तन्निबध्नाति भारत। ८

तमः, तु, अज्ञानजम्, विद्धि, मोहनम्, सर्वदेहिनाम्,
प्रमादालस्यनिद्राभिः, तत्, निबध्नाति, भारत।।8।।

अनुवाद : (भारत) हे अर्जुन! (सर्वदेहिनाम्) सब शरीरधारियों को (मोहनम्) मोहित करने वाले (तमः) तमोगुणको (तु) तो (अज्ञानजम्) अज्ञानसे उत्पन्न (विद्धि) जान। (तत्) वह इस जीवात्मा को (प्रमादालस्यनिद्राभिः) प्रमाद आलस्य और निंद्राके द्वारा (निबध्नाति) बाँधता है।(8)

अध्याय 14 का श्लोक 9

सत्त्वं सुखे सञ्जयति रजः कर्मणि भारत।
ज्ञानमावृत्य तु तमः प्रमादे सञ्जयत्युत।९

सत्त्वम्, सुखे, स जयति, रजः, कर्मणि, भारत,
ज्ञानम्, आवत्य, तु, तमः, प्रमादे, स जयति, उत।।9।।

अनुावद : (भारत) हे अर्जुन! (सत्त्वम्) सत्वगुण (सुखे) सुखमें (स जयति) लगाता है और (रजः) रजोगुण (कर्मणि) कर्ममें तथा (तमः) तमोगुण (तु) तो (ज्ञानम्) ज्ञानको (आवत्य) ढककर (प्रमादे) प्रमादमें (उत) भी (स जयति) लगाता है। (9)

अध्याय 14 का श्लोक 10

रजस्तमश्चाभिभूय सत्त्वं भवति भारत।
रजः सत्त्वं तमश्चैव तमः सत्त्वं रजस्तथा।१०

रजः, तमः, च, अभिभूय, सत्त्वम्, भवति, भारत,
रजः, सत्त्वम्, तमः, च, एव, तमः, सत्त्वम्, रजः, तथा।।10।।

अनुवाद : (भारत) हे अर्जुन! (रजः) रजोगुण (च) और (तमः) तमोगुणको (अभिभूय) दबाकर (सत्त्वम्) सत्वगुण, (सत्त्वम्) सत्वगुण (च) और (तमः) तमोगुणको दबाकर (रजः) रजोगुण (तथा) वैसे (एव) ही (सत्त्वम्) सत्वगुण और (रजः) रजोगुणको दबाकर (तमः) तमोगुण (भवति) होता है अर्थात् बढ़ता है। (10)

अध्याय 14 का श्लोक 11

सर्वद्वारेषु देहेऽस्मिन्प्रकाश उपजायते।
ज्ञानं यदा तदा विद्याद्विवृद्धं सत्त्वमित्युत।११

सर्वद्वारेषु, देहे, अस्मिन्, प्रकाशः, उपजायते,
ज्ञानम्, यदा, तदा, विद्यात्, विवद्धम्, सत्त्वम्, इति, उत।।11।।

अनुवाद : (यदा) जिस समय (अस्मिन्) इस (देहे) देहमें तथा (सर्वद्वारेषु) अन्तःकरण और इन्द्रियोंमें (प्रकाशः) चेतनता और (ज्ञानम्) विवेकशक्ति (उपजायते) उत्पन्न होती है (तदा) उस समय (इति) ऐसा (विद्यात्) जानना चाहिए (उत) कि (सत्त्वम्) सत्वगुण (विवद्धम्) बढ़ा है। (11)

अध्याय 14 का श्लोक 12

लोभः प्रवृत्तिरारम्भः कर्मणामशमः स्पृहा।
रजस्येतानि जायन्ते विवृद्धे भरतर्षभ।१२

लोभः, प्रवत्तिः, आरम्भः, कर्मणाम्, अशमः, स्पहा,
रजसि, एतानि, जायन्ते, विवद्धे, भरतर्षभ।।12।।

अनुवाद : (भरतर्षभ) हे अर्जुन! (रजसि) रजोगुणके (विवंद्धे) बढ़ने पर (लोभः) लोभ (प्रवंत्तिः) प्रवंति स्वार्थबुद्धिसे (कर्मणाम्) कर्मोंका सकाम-भावसे (आरम्भः) आरम्भ (अशमः) अशान्ति और (स्पंहा) विषय-भोगोंकी लालसा (एतानि) ये सब (जायन्ते) उत्पन्न होते हैं। (12)

अध्याय 14 का श्लोक 13

अप्रकाशोऽप्रवृत्तिश्च प्रमादो मोह एव च।
तमस्येतानि जायन्ते विवृद्धे कुरुनन्दन। १३।

अप्रकाशः, अप्रवंत्तिः, च, प्रमादः, मोहः, एव, च,
तमसि, एतानि, जायन्ते, विवंद्धे, कुरुनन्दन।।13।।

अनुवाद : (कुरुनन्दन) हे अर्जुन! (तमसि) तमोगुणके (विवंद्धे) बढ़नेपर अन्तःकरण और इन्द्रियोंमें (अप्रकाशः) अप्रकाश (अप्रवंत्तिः) कर्तव्य-कर्मोंमें अप्रवंति (च) और (प्रमादः) प्रमाद अर्थात् व्यर्थ चेष्टा (च) और (मोहः) निन्द्रादि अन्तःकरणकी मोहिनी वंतियाँ (एतानि) ये सब (एव) ही (जायन्ते) उत्पन्न होते हैं।(13)

अध्याय 14 का श्लोक 14

यदा सत्त्वे प्रवृद्धे तु प्रलयं याति देहभृत्।
तदोत्तमविदां लोकानमलान्प्रतिपद्यते। १४।

यदा, सत्त्वे, प्रवंद्धे, तु, प्रलयम्, याति, देहभंत्,
तदा, उत्तमविदाम्, लोकान्, अमलान्, प्रतिपद्यते।।14।।

अनुवाद : (यदा) जब (देहभंत्) यह मनुष्य (सत्त्वे) सत्वगुणकी (प्रवंद्धे) वंद्धिमें (प्रलयम्) मंत्युको (याति) प्राप्त होता है (तदा) तब (तु) तो (उत्तमविदाम्) उत्तम कर्म करनेवालोंके (अमलान्) निर्मल दिव्य स्वर्गादि (लोकान्) लोकोंको (प्रतिपद्यते) प्राप्त होता है।(14)

अध्याय 14 का श्लोक 15

रजसि प्रलयं गत्वा कर्मसङ्गिषु जायते।
तथा प्रलीनस्तमसि मूढयोनिषु जायते। १५।

रजसि, प्रलयम्, गत्वा, कर्मसंगिषु, जायते,
तथा, प्रलीनः, तमसि, मूढयोनिषु जायते।।15।।

अनुवाद : (रजसि) रजोगुण के बढ़ने पर (प्रलयम्) मंत्यु को (गत्वा) प्राप्त होकर (कर्मसंगिषु) कर्मों की आसक्ति वाले मनुष्यों में (जायते) उत्पन्न होता है (तथा) तथा (तमसि) तमोगुण के बढ़ने पर (प्रलीनः) मरा हुआ मनुष्य कीट, पशु आदि (मूढयोनिषु) मूढ. योनियों में (जायते) उत्पन्न होता है।(15)

अध्याय 14 का श्लोक 16

कर्मणः सुकृतस्याहुः सात्त्विकं निर्मलं फलम्।
रजसस्तु फलं दुःखमज्ञानं तमसः फलम्। १६।

कर्मणः, सुकंतस्य, आहुः, सात्त्विकम्, निर्मलम्, फलम्,
रजसः, तु, फलम्, दुःखम्, अज्ञानम्, तमसः, फलम्।।16।।

अनुवाद : (सुकंतस्य) श्रेष्ठ (कर्मणः) कर्मका तो (सात्त्विकम्) सात्विक अर्थात् सुख, ज्ञान और

वैराग्यादि (निर्मलम्) निर्मल (फलम्) फल (आहुः) कहा है (तु) किन्तु (रजसः) राजस कर्म का (फलम्) फल (दुःखम्) दुःख एवम् (तमसः) तामस कर्म का (फलम्) फल (अज्ञानम्) अज्ञान कहा है।(16)

अध्याय 14 का श्लोक 17

सत्त्वात्सञ्जायते ज्ञानं रजसो लोभ एव च।
प्रमादमोहौ तमसो भवतोऽज्ञानमेव च।१७।

सत्त्वात्, स जायते, ज्ञानम्, रजसः, लोभः, एव, च
प्रमादमोहौ, तमसः, भवतः, अज्ञानम्, एव, च।।17।।

अनुवाद : (सत्त्वात्) सत्वगुणसे (ज्ञानम्) ज्ञान (स जायते) उत्पन्न होता है (च) और (रजसः) रजोगुणसे (एव) निःसंदेह ही (लोभः) लोभ (च) तथा (तमसः) तमोगुणसे (प्रमादमोहौ) प्रमाद और मोह (भवतः) उत्पन्न होते हैं और (अज्ञानम्) अज्ञान (एव) ही होता है।(17)

अध्याय 14 का श्लोक 18

ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः।
जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः।१८।

ऊर्ध्वम्, गच्छन्ति, सत्त्वस्थाः, मध्ये, तिष्ठन्ति, राजसाः,
जघन्यगुणवत्तिस्थाः, अधः, गच्छन्ति, तामसाः।।18।।

अनुवाद : (सत्त्वस्थाः) सत्वगुणमें स्थित पुरुष अर्थात् विष्णु उपासक (ऊर्ध्वम्) ऊपर वाले स्वर्गादि लोकोंको (गच्छन्ति) जाते हैं रजोगुणमें स्थित (राजसाः) राजस पुरुष अर्थात् ब्रह्मा उपासक (मध्ये) मध्य वाले पथ्वी लोक में अर्थात् मनुष्यलोकमें ही (तिष्ठन्ति) रहते हैं और (जघन्यगुणवत्तिस्थाः) तमोगुणके कार्यरूप निद्रा, प्रमाद और आलस्यादिमें स्थित (तामसाः) तामस पुरुष अर्थात् शिव उपासक (अधः) नीचे वाले पताल अर्थात् नरकों तथा अधोगति अर्थात् कीट, पशु आदि नीच योनियों को (गच्छन्ति) प्राप्त होते हैं। उदाहरण - रावण, भष्मासुर आदि।(18)

अध्याय 14 का श्लोक 19

नान्यं गुणेभ्यः कर्तारं यदा द्रष्टानुपश्यति।
गुणेभ्यश्च परं वेत्ति मद्भावं सोऽधिगच्छति।१९।

न, अन्यम्, गुणेभ्यः, कर्तारम्, यदा, द्रष्टा, अनुपश्यति,
गुणेभ्यः, च, परम्, वेत्ति, मद्भावम्, सः, अधिगच्छति।।19।।

अनुवाद : (यदा) जिस समय (द्रष्टा) विवेक शील साधक (गुणेभ्यः) तीनों गुणों - ब्रह्मा, विष्णु, शिव से (अन्यम्) अन्य को (कर्तारम्) करतार अर्थात् भगवान (न) नहीं (अनुपश्यति) देखता (सः) वह (च) और (गुणेभ्यः) तीनों गुणों अर्थात् रजगुण ब्रह्मा, सतगुण विष्णु तथा तम्गुण शिव जी से (परम्) दूसरे पूर्ण परमात्मा को (वेत्ति) तत्वसे जानता है (मद्भावम्) वह मेरे मता अनुकूल विचारों को (अधिगच्छति) प्राप्त होता है।(19)

भावार्थ :- श्लोक 19 का भावार्थ है कि जो साधक भक्ति तो तीनों प्रभुओं की ही करता है, अन्य को नहीं मानता तथा यह भी समझ लेता है कि वास्तव में भक्ति तो परमेश्वर की ही करनी चाहिए तो वह कभी न कभी सत्य भक्ति स्वीकार कर लेता है।

अध्याय 14 का श्लोक 20

गुणानेतानतीत्य त्रीन्देही देहसमुद्भवान्।
जन्ममृत्युजरादुःखैर्विमुक्तोऽमृतमश्नुते ।२०।

गुणान्, एतान्, अतीत्य, त्रीन्, देही, देहसमुद्भवान्,
जन्ममत्युजरादुःखै, विमुक्तः, अमतम्, अश्नुते।।20।।

अनुवाद : वह (देही) जीवात्मा (देहसमुद्भवान्) शरीरकी उत्पत्तिके कारणरूप (एतान्) इन (त्रीन्) तीनों (गुणान्) गुणों अर्थात् तीनों रजगुण ब्रह्मा जी, सतगुण विष्णु जी, तमगुण शिव जी का(अतीत्य) उल्लंघन करके तथा पूर्ण परमात्मा की शास्त्र विधि अनुसार पूजा करके (जन्ममत्युजरा दुःखैः) जन्म, मत्यु, वद्धावस्था और सब प्रकारके दुःखों से (विमुक्तः) मुक्त हुआ (अमतम्) परमानन्द को अर्थात् पूर्ण मुक्त होकर अमरत्व को (अश्नुते) प्राप्त होता है।(20)

अध्याय 14 का श्लोक 21(अर्जुन उवाच)

कैर्लिङ्गैस्त्रीन्गुणानेतानतीतो भवति प्रभो।
किमाचारः कथं चैतांस्त्रीन्गुणानतिवर्तते।२१।

कैः, लिंगैः, त्रीन्, गुणान्, एतान्, अतीतः, भवति, प्रभो,
किमाचारः, कथम्, च, एतान्, त्रीन्, गुणान्, अतिवर्तते।।21।।

अनुवाद : (एतान्) इन (त्रीन्) तीनों (गुणान्) गुणोंसे (अतीतः) अतीत भक्त (कैः) किन-किन (लिंगैः) लक्षणोंसे युक्त होता है (च) और (किमाचारः) किस प्रकार के आचरणों वाला (भवति) होता है तथा (प्रभो) हे प्रभो! मनुष्य (कथम्) कैसे (एतान्) इन (त्रीन्) तीनों (गुणान्) गुणों से (अतिवर्तते) अतीत होता है अर्थात् ऊपर उठ जाता है।(21)

अध्याय 14 का श्लोक 22(भगवान उवाच)

प्रकाशं च प्रवृत्तिं च मोहमेव च पाण्डव।
न द्वेष्टि सम्प्रवृत्तानि न निवृत्तानि काङ्क्षति।२२।

प्रकाशम्, च, प्रवत्तिम्, च, मोहम्, एव, च, पाण्डव,
न, द्वेष्टि, सम्प्रवत्तानि, न, निवत्तानि, काङ्क्षति।।22।।

अनुवाद : (पाण्डव) हे अर्जुन! जो साधक (प्रकाशम्) सत्वगुण के कार्यरूप प्रकाश को (च) और (प्रवत्तिम्) रजोगुण के कार्यरूप प्रवति को (च) तथा (मोहम्) तमोगुण के कार्य रूप मोह को (एव) ही (न) न (सम्प्रवत्तानि) प्रवत होने पर उनसे (द्वेष्टि) द्वेष करता है (च) और (न) न (निवत्तानि) निवत होने पर उनकी (काङ्क्षति) आकांक्षा करता है।(22)

अध्याय 14 का श्लोक 23

उदासीनवदासीनो गुणैर्यो न विचाल्यते।
गुणा वर्तन्त इत्येव योऽवतिष्ठति नेङ्गते।२३।

उदासीनवत्, आसीनः, गुणैः, यः, न, विचाल्यते,
गुणाः, वर्तन्ते, इति, एव, यः, अवतिष्ठति, न, इंगते।।23।।

अनुवाद : (यः) जो (उदासीनवत्) सर्व पदार्थों के भोग से उदास हुआ होता है उस उदासीन अर्थात् साक्षी के सदश (आसीनः) स्थित हुआ (गुणैः) गुणों के द्वारा (न,विचाल्यते) विचलित नहीं

किया जा सकता और (गुणाः,एव) गुण ही गुणोंमें (वर्तन्ते) बरतते हैं (इति) ऐसा समझता हुआ (यः) जो सच्चिदानन्द घन परमात्मा में एकीभावसे (अवतिष्ठति) स्थित रहता है एवं (न,इंगते) उस स्थिति से कभी विचलित नहीं होता।(23)

भावार्थ - श्लोक 23 का भावार्थ है कि जो साधक पूर्ण परमात्मा के तत्वज्ञान से पूर्ण परिचित हो जाता है वह फिर तीनों गुणों अर्थात् तीनों प्रभुओं श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी तथा श्री शिव जी से मिलने वाले क्षणिक सुख से प्रभावित नहीं होता। इनकी स्थिति व शक्ति से परिचित है। जैसे गीता अध्याय 2 श्लोक 46 में प्रमाण है कि पूर्ण रूप से परिपूर्ण जल से भरे हुए बहुत बड़े जलाशय अर्थात् झील के प्राप्त हो जाने पर छोटे जलाशय में जितनी श्रद्धा रह जाती है, छोटे जलाशय बुरे नहीं लगते परन्तु उनकी क्षमता से परिचित हो जाने से बड़े जलाशय में पूर्ण आस्था बन जाती है। इसी प्रकार पूर्ण ब्रह्म के ज्ञान के पश्चात् अन्य प्रभुओं से घणा नहीं बनती, परन्तु पूर्ण आस्था उस पूर्ण परमात्मा में स्वत् बन जाती है।

अध्याय 14 का श्लोक 24

समदुःखसुखः स्वस्थः समलोष्टाश्मकाञ्चनः।
तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः। २४।

समदुःखसुखः, स्वस्थः, समलोष्टाश्मका चनः,
तुल्यप्रियाप्रियः, धीरः, तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः।।24।।

अनुवाद : (स्वस्थः) अपने तत्व ज्ञान पर आधारित (समदुःखसुखः) दुःख सुखको समान समझनेवाला (समलोष्टाश्मका चनः) मिट्टी पत्थर और स्वर्णमें समान भाववाला (धीरः) तत्व ज्ञानी (तुल्यप्रियाप्रियः) प्रिय तथा अप्रियको एक सा माननेवाला और (तुल्यनिन्दात्म संस्तुतिः) अपनी निन्दास्तुतिमें भी समान भाववाला है।(24)

अध्याय 14 का श्लोक 25

मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः।
सर्वारम्भपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते। २५।

मानापमानयोः, तुल्यः, तुल्यः, मित्रारिपक्षयोः,
सर्वारम्भपरित्यागी, गुणातीतः, सः, उच्यते।।25।।

अनुवाद : (मानापमानयोः) जो मान और अपमानमें (तुल्यः) सम है (मित्रारिपक्षयोः) मित्र और वैरीके पक्षमें भी (तुल्यः) सम है एवं (सर्वारम्भपरित्यागी)राग वश किसी का लाभ करने वाले तथा द्वेष वश किसी को हानि करने वाले सम्पूर्ण आरम्भों का त्यागी है (सः) वह भक्त (गुणातीतः) तीनों भगवानों (रजगुण ब्रह्मा, सतगुण विष्णु तथा तम् गुण शिव जी की निराकार शक्ति से प्रभावित नहीं होता वह) गुणातीत (उच्यते) कहा जाता है।(25)

अध्याय 14 का श्लोक 26

मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते।
स गुणान्समतीत्यैतान्ब्रह्मभूयाय कल्पते। २६।

माम्, च, यः, अव्यभिचारेण, भक्तियोगेन, सेवते,
सः, गुणान्, समतीत्य, एतान्, ब्रह्मभूयाय, कल्पते।।26।।

अनुवाद : (च) और (यः) जो भक्त (अव्यभिचारेण) अव्यभिचारी (भक्तियोगेन) भक्तियोगके

द्वारा (माम्) मुझको निरन्तर (सेवते) भजता है (सः) वह भी (एतान्) इन (गुणान्) तीनों गुणोंको (समतीत्य) भलीभाँति लाँघकर (ब्रह्मभूयाय) सच्चिदानन्दघन ब्रह्मको प्राप्त होनेके लिये (कल्पते) योग्य बन जाता है अर्थात् उसी एक पूर्ण परमात्मा की ही कल्पना करता है।(26)

भावार्थ :-- गीता अध्याय 14 श्लोक 26 का भावार्थ है कि जो व्यक्ति पूर्ण परमात्मा की प्राप्ति के तत्वज्ञान से परिचित होने के पश्चात् मेरी पूजा करने वाला अथार्त् ब्रह्म का साधक यदि श्री ब्रह्मा जी (रजगुण) श्री विष्णु जी (सतगुण) तथा श्री शिव जी (तम्गुण) की भी साधना साथ-2 करता है तो वह पूर्ण परमात्मा की प्राप्ति के लिए तीनों भगवानों (गुणों) का उल्लंघन कर देता है अर्थात् इस से अपनी आस्था तुरन्त हटाकर सत्य साधना में अव्यभिचारिणी भक्ति अर्थात् एक पूर्ण परमात्मा में ही पूर्ण आस्था करके उसको प्राप्त करने योग्य बन जाता है। वह गीता अध्याय 17 श्लोक 23 में वर्णित ओम्-तत्-सत् मन्त्र का जाप करता है।

अध्याय 14 का श्लोक 27

ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहममृतस्याव्ययस्य च।
शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्य च।२७।

ब्रह्मणः, हि, प्रतिष्ठा, अहम्, अमतस्य, अव्ययस्य, च,
शाश्वतस्य, च, धर्मस्य, सुखस्य, ऐकान्तिकस्य, च।।27।।

अनुवाद : (हि) क्योंकि उस (अव्ययस्य) अविनाशी (ब्रह्मणः) पूर्ण परमात्मा का (च) और (अमतस्य) अमतका (च) तथा (शाश्वतस्य) नित्य (धर्मस्य) पूजाका (च) और (ऐकान्तिकस्य) अखण्ड एकरस के (सुखस्य) आनन्द की (प्रतिष्ठा) अवस्था अर्थात् भूमिका (अहम्) में हूँ अर्थात् उस परमात्मा की प्राप्ति भी मेरे माध्यम से ही होती है।(27)

(इति अध्याय चौदहवाँ)

❑❑❑

पंद्रहवां अध्याय

।।दिव्य सारांश।।

''गीता अध्याय 15 श्लोक 1-4 का सारांश''

।। सृष्टि रूपी वृक्ष का वर्णन।।

अध्याय 15 के श्लोक 1 में कहा है कि ऊपर को पूर्ण परमात्मा रूपी जड़ वाला नीचे को तीनों गुण (रजगुण ब्रह्मा जी, सतगुण विष्णु जी, तमगुण शिवजी) रूपी शाखा वाला संसार रूपी एक अविनाशी विस्तृत वृक्ष है। जैसे पीपल का वृक्ष है। उसकी डार व साखाएँ होती हैं। जिसके छोटे-छोटे हिस्से (टहनियाँ) पते आदि हैं। जो संसार रूपी वृक्ष के सर्वांग जानता है, वह वेद के तात्पर्य को जानने वाला पूर्ण ज्ञानी अर्थात् तत्वदर्शी संत है। कबीर परमेश्वर जी कहते हैं :--

कबीर, अक्षर पुरुष एक पेड़ है, निरंजन (ब्रह्म) वाकि डार। तीनों देवा शाखा हैं, पात रूप संसार।।

कबीर, हम ही अलख अल्लाह हैं, मूल रूप करतार। अनन्त कोटि ब्रह्मण्ड का, मैं ही सिरजनहार।।

यह उल्टा लटका हुए संसार रूपी वृक्ष है। ऊपर को जड़ें (पूर्णब्रह्म परमात्मा-परम अक्षर पुरुष) सतपुरुष है, अक्षर पुरुष (परब्रह्म) जमीन से बाहर दिखाई देने वाला तना है तथा ज्योति निरंजन (ब्रह्म/क्षर) डार है और तीनों देवा (ब्रह्मा-विष्णु-महेश) शाखा हैं। छोटी टहनियाँ और पत्ते देवी-देवता व आम जीव जानों।

❖ *अध्याय 15 के श्लोक 2 में कहा है कि उस (अक्षर पुरुष रूपी) वृक्ष की नीचे और ऊपर गुणों (ब्रह्मा-रजगुण, विष्णु-सतगुण, शिव-तमगुण) रूपी फैली हुई विषय विकार (काम, क्रोध, मोह, लोभ, अहंकार) रूपी कोपलें व डाली (ब्रह्मा-विष्णु-शिव) रूपी। इस जीवात्मा को कर्मों के अनुसार बाँधने का मुख्य कारण है तथा नीचे पाताल लोक में, ऊपर स्वर्ग लोक में व्यवस्थित किए हुए हैं।* (गीता जी के अध्याय 14 के श्लोक 5 में प्रमाण है कि – हे महाबाहो (अर्जुन)! सतगुण, रजगुण, तथा तमगुण जो प्रकृति (माया) से उत्पन्न हुए हैं। ये तीनों गुण जीवात्मा को शरीर में बाँधते हैं।)

❖ *अध्याय 15 के श्लोक 3 में गीता बोलने वाला ब्रह्म कह रहा है कि इस (रचना) का न तो शुरु का ज्ञान, न अंत का और न ही वैसा स्वरूप (जैसा दिखाई देता है) पाया जाता है तथा यहाँ विचार काल में अर्थात् तेरे मेरे इस गीता ज्ञान संवाद में मुझे भी इसकी अच्छी तरह स्थिति का ज्ञान नहीं है। इस स्थाई स्थिति वाले मजबूत संसार रूपी वृक्ष अर्थात् सृष्टि रचना को पूर्ण ज्ञान रूप (सुक्ष्म वेद के ज्ञान से) शस्त्र से काट कर अर्थात् अच्छी तरह जान कर काल (ब्रह्म) व ब्रह्मा-विष्णु-शिव तीनों गुणों व पित्रों- भूतों- देवी- देवताओं, भैरों, गूगा पीर आदि से मन हट जाता है। इसलिए इस संसार रूपी वृक्ष को काटना कहा है।*

अध्याय 15 के श्लोक 4 में गीता ज्ञान दाता ने बताया है कि उपरोक्त तत्वदर्शी संत जिसका गीता अध्याय 15 श्लोक 1 व अध्याय 4 श्लोक 34 में भी वर्णन है मिलने के पश्चात उस स्थान (सतलोक-सच्चखण्ड) की खोज करनी चाहिए जिसमें गए हुए साधक फिर लौट कर (जन्म-मरण में) इस संसार में नहीं आते अर्थात् अनादि मोक्ष प्राप्त करते हैं और जिस परमात्मा से आदि समय से चली आ रही सृष्टि उत्पन्न हुई है। मैं काल ब्रह्म भी उसी अविगत पूर्ण परमात्मा की शरण में हूँ। उसी पूर्ण परमात्मा की ही भक्ति पूर्ण निश्चय के साथ करनी चाहिए, अन्य की नहीं।

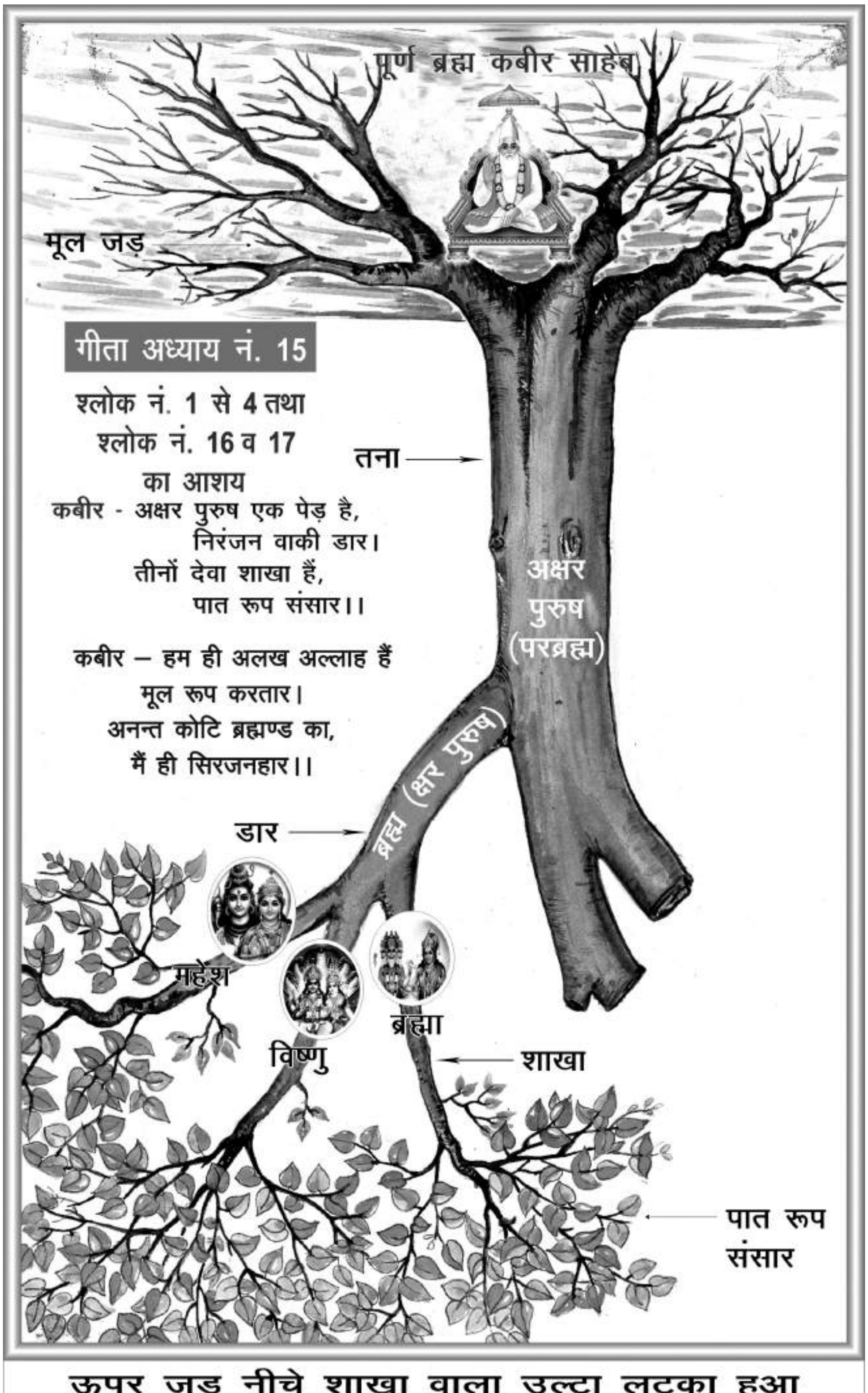

ऊपर जड़ नीचे शाखा वाला उल्टा लटका हुआ संसार रूपी वृक्ष का चित्र

इसी का प्रमाण पवित्र गीता अध्याय 18 मंत्र 46, 61, 62, 66 में भी है कि गीता ज्ञान दाता ने अपने से अन्य परमेश्वर बताया है। उसी की शरण में जाने को कहा है तथा अपना इष्ट देव यानि पूज्यदेव भी उसी को बताया है कि मैं उसी की शरण हूँ।

अन्य प्रमाण :- गीता अध्याय 18 श्लोक 64 में यह भी प्रमाण है कि गीता ज्ञान दाता ने कहा है कि सब गोपनीय से भी अति गोपनीय वचन सुन जो तेरे हित में कहूँगा कि जिस परमेश्वर का मैंने इसी अध्याय 18 श्लोक 61, 62 में किया है, उसकी शरण में तेरे को जाने को कहा है। (इति) यह (मे) मेरा (दृढ़म् इष्टः) पक्के तौर पर पूज्य देव है।

विशेष :- अन्य अनुवादकों ने अध्याय 18 के इस श्लोक 64 में ''इष्टः'' शब्द का अर्थ प्रिय किया है जो उचित नहीं है। गीता अध्याय 9 श्लोक 20 में ''इष्टवा'' शब्द का अर्थ ''पूजा करके'' किया तथा इसी अध्याय 18 के श्लोक 70 में ''इष्टः'' शब्द का अर्थ ''पूजित'' किया है। यदि श्लोक 64 में भी ''पूजित'' कर दिया जाता तो सब ठीक हो जाता। गीता अध्याय 18 के श्लोक 63 में स्पष्ट कर दिया कि गोपनीय से भी अति गोपनीय ज्ञान मेरे द्वारा इस गीता शास्त्र में तुझे कह दिया है। जैसे उचित लगे, कर। गीता अध्याय 8 श्लोक 5 तथा 7 में अपनी भक्ति करने से अपनी प्राप्ति कही है। श्लोक 8, 9, 10 में श्लोक 3 वाले परम अक्षर ब्रह्म की भक्ति कही है। उसकी भक्ति करने वाला उसको प्राप्त होगा। इस अध्याय 18 के श्लोक 64 में भी इसी को अपना इष्ट देव यानि पूजित देव बताया है।

❖ *''तत्वदर्शी सन्त की पहचान'' :-- उपरोक्त गीता अध्याय 15 श्लोक 1 में कहा है कि जो सन्त संसार रूपी वृक्ष के सर्व भागों को भिन्न-2 बताए, वह वेद के तात्पर्य को जानने वाला यानि तत्वदर्शी सन्त है। जो आप जी ने ऊपर पढ़ा कि संसार रूपी वृक्ष की जड़े (मूल)तो परम अक्षर ब्रह्म है, तना अक्षर पुरूष अर्थात् परब्रह्म है, डार क्षरपुरूष अर्थात् ब्रह्म (काल) है तथा तीनों शाखाऐं रजगुण ब्रह्मा जी, सतगुण विष्णु जी तथा तमगुण शिवजी है तथा पत्ते रूपी प्राणी हैं।*

दूसरी पहचान :-- गीता अध्याय 8 श्लोक 16 में कहा है कि ब्रह्मलोक से लेकर सर्व लोक नाश्वान हैं। गीता अध्याय 8 श्लोक 17 में कहा है कि परब्रह्म का एक दिन एक हजार युग का होता है इतनी ही रात्रि होती है। जो इस अवधी को जानता है व काल को तत्व से जानने वाला है अर्थात् तत्वदर्शी सन्त है। कृप्या देखें गीता अध्याय 8 श्लोक 17 के अनुवाद में।

❖ *गीता अध्याय 15 के श्लोक 5-15 तक का सारांश :-*

।। पूर्ण परमात्मा की जानकारी ।।

गीता अध्याय 15 श्लोक 5-6 का सारांश :-

अध्याय 15 के श्लोक 5 में कहा है कि जिनकी आसक्ति प्रत्येक वस्तु से हटकर प्रभु प्राप्ति में लग गई वही साधक उस अविनाशी परमेश्वर के अविनाशी पद को प्राप्त करते हैं तथा श्लोक 6 में कहा है कि स्वयं काल भगवान कह रहा है कि जिस सतलोक में गए साधक लौट कर संसार में नहीं आते उस सतलोक को न सूर्य, न अग्नि और न चन्द्रमा प्रकाशित कर सकते हैं। वह सत्यलोक मेरे लोक से श्रेष्ठ है तथा मेरा परम धाम है। क्योंकि काल (ब्रह्म) भी उसी सतलोक से निष्कासित है। इसलिए कहता है कि मेरा परम धाम (वास्तविक ठिकाना) भी वही सतलोक है।

अध्याय 15 के श्लोक 7 में कहा है कि मेरे इस जीव लोक यानि काल लोक में आदि परमात्मा की अंश जीवात्मा ही प्रकृति में स्थित मन (काल का दूसरा स्वरूप मन है) इन्द्रियों सहित ये छःओं

द्वारा आकर्षित जाती हैं।

❖ अध्याय 15 के श्लोक 8 में कहा है कि जैसे गन्ध का मालिक वायु गन्ध को साथ रखती है (ले जाती है)। ऐसे ही पूर्ण परमात्मा अपनी जीवात्मा का स्वामी होने के कारण उसे एक शरीर से दूसरे शरीर में जो उसे (जीवात्मा को) प्राप्त हुआ है, में निराकार शक्ति द्वारा ले जाता है अर्थात् अलग नहीं होता।

❖ अध्याय 15 श्लोक 9 में कहा है कि यह परमात्मा (जो आत्मा के साथ है) कान-आँख व त्वचा, जिह्वा, नाक और मन के माध्यम से ही विषयों (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध) का सेवन करता है।

❖ अध्याय 15 के श्लोक 10 में कहा है कि मूर्ख व्यक्ति (इसी परमात्मा सहित आत्मा) को शरीर छोड़ कर जाते हुए तथा शरीर में स्थित तथा गुणों के भोगता (आनन्द लेने वाले) को नहीं जानते। जिनको संष्टि रूपी वक्ष का पूर्ण ज्ञान हो गया उन्हें ज्ञान नेत्रों वाले अर्थात् पूर्ण ज्ञानी कहते हैं। वे ही जानते हैं। विशेष प्रमाण के लिए देखें गीता जी के अध्याय 13 के श्लोक 22 से 27 में जिसमें कहा है कि तत्वदर्शी संत सही जानता है कि अविनाशी परमेश्वर जीवों को नष्ट यानि मंत्यु के पश्चात् समभाव स्थित रहता है यानि मंत्यु के पश्चात् अन्य शरीर में जाने से पहले तथा अन्य शरीर में प्रवेश के पश्चात् भी भिन्न नहीं होता यानि उस परमेश्वर की शक्ति अदंश्य रूप में सबको प्रभावित रखती है।

❖ अध्याय 15 के श्लोक 11 में कहा है कि भगवत् प्राप्ति का यत्न करने वाले (प्रयत्नशील) योगी (साधक) अपनी आत्मा में स्थित परमात्मा को सही प्रकार से जानते हैं (देखते हैं) और जिनके अन्तःकरण शुद्ध नहीं हैं वे अज्ञानीजन यत्न करने पर भी इस परमात्मा को सही नहीं जानते (देखते)। पूर्ण ज्ञान होने पर प्रतिदिन महसूस होता है कि उस पूर्ण परमात्मा की आज्ञा के बिना एक पत्ता भी नहीं हिलता अर्थात् सर्व प्राणियों का आधार परमेश्वर ही है। जो नादान हैं वे सोचते हैं कि मैं कर रहा हूँ। जब यह प्राणी पूर्ण परमात्मा की शरण में आ जाता है तब पूर्ण ब्रह्म (पूर्ण परमात्मा कविर्देव) उस प्यारे भक्त के सर्व सम्भव तथा असम्भव कार्य करता है। नादान भक्तों को ज्ञान नहीं होता, जो ज्ञानवान हैं उन्हें पता होता है कि यह सर्व कार्य पूर्णब्रह्म समर्थ ही कर सकता है, जीव के वश में नहीं है। जैसे एक छोटा-सा बच्चा दीवार के साथ खड़े मूसल (काष्ठ का भारी गोल कड़ी जैसा होता है) को उठाने की चेष्टा करता है। पिता जी मना करता है तो रोने लगता है। फिर उस बच्चे को प्रसन्न करने के लिए उस मूसल को ऊपर से पकड़ कर पिता जी स्वयं उठा लेता है तथा वह अबोध बालक केवल हाथों से पकड़ कर चल देता है। पिता जी कहता है कि देखो मेरे पुत्र ने मूसल उठा लिया। फिर वह बच्चा गर्व से हँसता हुआ चलता है। मान रहा है कि मैंने मूसल उठा लिया। परंतु समझदार व्यक्ति जान जाता है कि मूसल उठाना बच्चे के वश से बाहर की बात है।

❖ अध्याय 15 के श्लोक 12,13 में कहा है कि जो सूर्य चन्द्रमा-अग्नि आदि में प्रकाश है। यह मेरा ही समझ और मैं (काल उस परमात्मा के नौकर की तरह) पंथ्वी में प्रवेश करके उसी परमात्मा की शक्ति से सब प्राणियों को धारण करता हूँ। चन्द्रमा होकर औषधियों में रस (गुण) को प्रवेश करता हूँ (पुष्ट करता हूँ)। आदरणीय गरीबदास जी महाराज (साहेब कबीर जी के शिष्य) कहते हैं कि :-

गरीब, काल (ब्रह्म) तो पीसे पीसना, जौरा है पनिहार।
ये दो असल मजूर (नौकर) हैं, मेरे सतगुरु (अर्थात् कबीर) के दरबार।।

भावार्थ :- ब्रह्म भगवान तो पूर्ण ब्रह्म का आटा पीसता है और जौरा (मौत) पूर्ण ब्रह्म कबीर साहेब का पानी भरती है अर्थात् ये दोनों मेरे कबीर सतगुरु (पूर्णब्रह्म) के नौकर (मजदूर) हैं। इन्हीं

के आदेशानुसार चलते हैं।

विशेष : स्वयं काल (ब्रह्म) कह रहा है कि अध्याय 15 के श्लोक 4 में कहा है कि मैं (ब्रह्म-काल) उसी परमात्मा की शरण हूँ, आश्रित हूँ। अध्याय 18 श्लोक 64 में अपना इष्टदेव भी इसी को बताया है।

❖ *अध्याय 15 के श्लोक 14 में कहा है कि मैं (ब्रह्म) सब प्राणियों के शरीर में शरण (आश्रितः) लेकर महाब्रह्मा-महाविष्णु-महाशिव रूप से सर्व कमलों में निवास करके नौकर की तरह प्राण व अपान (वायु) के आधार से संयुक्त जठराग्नि हो कर चार प्रकार से अन्न को पचाता हूँ।*

❖ *अध्याय 15 के श्लोक 15 का अनुवाद है कि मैं सब प्राणियों के हृदय में अंतर्यामी रूप से रहता हूँ और जीव को शास्त्रानुकूल विचार (मत) स्थित करता हूँ। मैं ही स्मति, ज्ञान और अपोहन (संश्य निवारण कर्त्ता) और वेदान्त कर्त्ता अर्थात् चारों वेदों को मैं ही प्रकाशित करता हूँ। भावार्थ है कि काल ब्रह्म कह रहा है कि वेद ज्ञान का दाता भी मैं ही हूँ और वेदों को जानने वाला मैं ही सब वेदों द्वारा जानने योग्य हूँ।*

इस श्लोक में ब्रह्म भगवान ने कहा है कि मैं प्राणियों के हृदय में अपना शास्त्रानुकूल ज्ञान स्थापित करता हूँ तथा उन सर्व शास्त्रों, वेद ज्ञान, स्मति आदि को मैं (ब्रह्म) जानता हूँ तथा उनमें मेरा ही विशेष ज्ञान है। इसलिए लोक व वेद में मुझको ही श्रेष्ठ भगवान जानने योग्य मानते हैं।

विशेष :- सूक्ष्मवेद में कहा है कि प्रत्येक प्राणी के अंतःकरण (हृदय) में काल ब्रह्म तथा पूर्ण ब्रह्म यानि परम अक्षर ब्रह्म प्रतिबिंब की तरह विद्यमान है जैसे एक प्रसारण केन्द्र से एक प्रोग्राम करोड़ों टैलीविजनों में विद्यमान रहता है। जब तक जीव को मानव शरीर में तत्वदर्शी संत से दीक्षा नहीं मिलती, तब तक उस प्राणी पर काल ब्रह्म अपना अधिकार रखता है। पूर्ण संत से दीक्षा के पश्चात् काल ब्रह्म मैदान छोड़ जाता है। पूर्ण परमात्मा सर्व प्राणियों के कर्मानुसार भ्रमण करता है। सत्य भक्ति करने वालों को सत्यलोक यानि सनातन परम धाम में ले जाता है।

गीता अध्याय 13 श्लोक 17 में कहा है कि पूर्ण परमात्मा सर्व प्राणियों के हृदय में विशेष रूप से स्थित है। यही प्रमाण अध्याय 18 श्लोक 61 में है। इससे सिद्ध है कि सर्व प्रभु (ब्रह्मा,विष्णु, शिव व ब्रह्म तथा पूर्ण ब्रह्म) शरीर में भिन्न-2 स्थानों पर दिखाई देते हैं जबकि सर्व प्रभु जीव के शरीर से बाहर हैं, परंतु सर्व समर्थ होने से परम अक्षर ब्रह्म की शक्ति से ही सर्व कार्य होते हैं।

''तीन पुरूषों (प्रभुओं) का वर्णन''

❖ *गीता अध्याय 15 के श्लोक 16-20 का सारांश :-*

।। ब्रह्म (काल) नाशवान है।।

अध्याय 15 के श्लोक 16 का भाव है कि इस पथ्वी वाले लोक (ब्रह्म के इक्कीस ब्रह्मण्ड तथा परब्रह्म के सात शंख ब्रह्मण्ड दोनों ही पथ्वी वाला लोक कहलाता है, जैसे मिट्टी के चाहे प्याले, प्लेट, घड़े आदि बने हो, कहलाते हैं मिट्टी वाले ही) में दो प्रकार के प्रभु (पुरुष) हैं।

1. क्षर - नाशवान भगवान (ब्रह्म-काल) है।

2. अक्षर - परब्रह्म अविनाशी है तथा इन दोनों प्रभुओं के लोकों में दो ही स्थिति जीव की है। जो पंच भौतिक स्थूल शरीर है यह नाशवान है। उसमें जीव आत्मा को अविनाशी कहा है।

।। वास्तव में अविनाशी पूर्ण परमात्मा ।।

क्षर पुरुष (ब्रह्म-काल) की तथा इसके इक्कीस ब्रह्मण्डों में प्राणियों की स्थिति ऐसी जानों जैसे सफेद प्याला चाय पीने वाला, वह तो स्पष्ट नाशवान दिखाई देता है। हाथ से छूटते ही जमीन पर गिरते ही टुकड़े-टुकडे हो जाता है।

दूसरा अक्षर पुरुष (कुछ अविनाशी परब्रह्म) है। जैसे स्टील (इस्पात) का बना कप हो जो अविनाशी (स्थाई) नजर आता है। कितनी बार गिरे टुकड़े-2 नहीं होता, इसलिए स्थाई धातु माना जाता है। परन्तु वास्तव में अविनाशी धातु इस्पात भी नहीं है। बहुत समय उपरान्त स्टील को जंग लगेगा तथा विनाश को प्राप्त होगा। इस प्रकार अक्षर पुरुष (परब्रह्म) को अविनाशी भी कहा है क्योंकि एक हजार बार ब्रह्म की मत्यु हो जाएगी तब एक दिन परब्रह्म (अक्षर पुरुष) का पूरा होगा। फिर इतनी ही रात्रि। इस पर तीस दिन-रात का एक महीना तथा 12 महीने का एक वर्ष तथा 100 वर्ष की आयु परब्रह्म (अक्षर पुरुष) की है। इसलिए परब्रह्म को अक्षर पुरुष कहा है, परन्तु सौ वर्ष पूरे होने पर इसकी मत्यु होगी तथा सर्व ब्रह्मण्डों का विनाश होगा। फिर नए सिरे से परब्रह्म (अक्षर पुरुष) तथा ब्रह्म (काल) के सर्व ब्रह्मण्डों की रचना पूर्ण ब्रह्म कविर्देव (कबीर परमेश्वर) ही कर देगा।

तीसरी धातु सोना (स्वर्ण) है, जिसको जंग नहीं लगता। वास्तव में स्थाई (अविनाशी) धातु इन उपरोक्त दोनों मिट्टी तथा इस्पात से अन्य है। इसी प्रकार गीता अध्याय 15 मंत्र 17 में कहा है कि वास्तव में अविनाशी परमात्मा तो उपरोक्त दोनों पुरुषों (प्रभुओं) क्षर पुरुष (ब्रह्म) तथा अक्षर पुरुष (परब्रह्म) से भी अन्य ही है जो वास्तव में अविनाशी परमात्मा परमेश्वर कहा जाता है। वही तीनों लोकों में प्रवेश करके सर्व का धारण-पोषण करता है।

❖ *अध्याय 15 के श्लोक 17 का भाव है कि श्रेष्ठ परमात्मा (पुरुषोत्तम) तो क्षर पुरूष तथा अक्षर पुरुष से कोई और ही है जो अविनाशी परमेश्वर(पूर्ण ब्रह्म) नाम से जाना जाता है तथा तीनों लोकों में प्रवेश करके सब का धारण व पालन पोषण भी वही करता है। जैसे कबीर साहेब कहते हैं कि :-*

कबीर, अक्षर पुरुष (परब्रह्म) एक पेड़ है, निरंजन (ब्रह्म) वाकि डार।
तीनों देवा (ब्रह्मा–विष्णु–महेश) शाखा हैं, पात रूप संसार।।
कबीर, हम ही अलख अल्लाह हैं, मूल रूप करतार।
अनन्त कोटि ब्रह्मण्ड का, मैं ही सिरजनहार।।

इसमें स्पष्ट है कि अक्षर पुरुष तो पेड़ (तना) जो जमीन से ऊपर नजर आता है फिर उसके कोई मोटी डाली (डार) क्षर (काल-ब्रह्म) जानों। तीनों देवता ब्रह्मा-विष्णु-शंकर शाखा और छोटी टहनियाँ हैं तथा पत्ते रूप में सर्व संसार है।

यहां पर मूल (जड़) निःअक्षर (अविनाशी परमात्मा पूर्ण ब्रह्म जो दिखाई नहीं देता) है। इसलिए आगे कबीर साहेब कहते हैं :--

कबीर, एकै साधै सब सधै, सब साधै सब जाय। माली सीचैं मूल को, फूलै–फलै अघाय।।

इस वाणी का भाव है कि एक जड़ (मूल) रूपी पूर्णब्रह्म की सेवा साधना से सर्व वक्ष प्रफूलित (हरा-भरा)रहता है। तना (परब्रह्म-अक्षर) व डार (ब्रह्म) साखा (ब्रह्मा-विष्णु-महेश) की पूजा से (पानी डालने से) वह सारा पौधा सूख जाएगा अर्थात् साधना व्यर्थ जाएगी। आदरणीय गरीबदास जी महाराज कहते हैं कि :-

कर्म भ्रम भारी लगे, संसा सूल बंबूल। डाली पानों डोलते, परसत नाहीं मूल।।

इसलिए एक ही परमेश्वर (सतपुरुष, कबीर साहेब) की शरण लेकर पूर्ण मुक्त हो सकते हैं व काल जाल से बच सकते हैं।

इसी का प्रमाण गीता अध्याय 15 श्लोक 1 से 4 में वक्ष का उदाहरण देकर कहा है।

अध्याय 15 के श्लोक 16,17 का भावार्थ जानने के लिए यह उपरोक्त उदाहरण ध्यान से पढ़े फिर सोचें। क्योंकि काल, ब्रह्मा, विष्णु, शंकर व माई से ज्यादा शक्तिशाली (एक हजार भुजाओं का) है इसलिए तीन लोक के प्राणी इसे (काल को) ही पुरुषोत्तम मानते हैं। केवल इसी लिए श्लोक 18 में पुरुषोत्तम कहा है।

अध्याय 15 के श्लोक 18 का भाव है कि काल (ब्रह्म) कह रहा है कि मैं पंच भौतिक स्थूल शरीर में जो नाशवान (क्षर) प्राणि है उनसे तथा जीवात्मा (जो अविनाशी है) से शक्तिशाली हूँ। इसलिए मुझ (काल-ब्रह्म) को ही श्रेष्ठ (पुरुषोत्तम) भगवान जानते हैं। वास्तव में पूर्ण अविनाशी व उत्तम पुरुष तो अन्य ही है। जिसका वर्णन उपरोक्त श्लोक 17 में है।

मेरे इक्कीस ब्रह्मण्डों में सर्व प्राणियों से शक्तिशाली हूँ। वे चाहे स्थूल शरीर में नाशवान गुणों वाले हैं तथा चाहे जीवात्मा में अविनाशी गुणों युक्त हैं। इन सर्व का मालिक हूँ, इसलिए लोक वेद के आधार पर मुझे पुरुषोत्तम मानते हैं। परन्तु वास्तव में पुरुषोत्तम तो कोई और ही है। जिसका वर्णन उपरोक्त श्लोक 17 में है।

लोक वेद :- लोकवेद क्षेत्रीय सुने सुनाए शास्त्र विरुद्ध ज्ञान को कहते हैं। जैसे किसी क्षेत्र में दुर्गा जी की पूजा का महत्व ज्यादा है। किसी क्षेत्र में श्री हनुमान जी की, किसी क्षेत्र में श्री गणेश जी की, किसी क्षेत्र में श्री खाटू श्याम जी की, किसी में श्री राम और किसी में श्री कष्ण जी की पूजा का जोर केवल लोकवेद के आधार पर होता है। जैसे अभी तक एक ब्रह्मण्ड का भी ज्ञान पूर्ण नहीं था। न ब्रह्मा जी को, न श्री विष्णु जी को व न श्री शिव जी को एक ब्रह्म की भी पूर्ण जानकारी नहीं थी। श्री देवीभागवत महापुराण के तीसरे स्कंद में अपने पुत्र श्री नारद जी के पूछने पर कि एक ब्रह्मण्ड की उत्पत्ति कैसे हुए, श्री ब्रह्मा जी ने बताया कि बेटा नारद मुझे नहीं मालूम मैं कमल के फूल पर कैसे उत्पन्न हुआ? मुझे पैदा करने वाला कौन है? फिर तीनों ब्रह्मा - विष्णु - शिव जी को दुर्गा ने एक विमान में बैठाकर ब्रह्मलोक में भेजा। वहाँ एक-एक ब्रह्मा - विष्णु - शिव और देखकर आश्चर्य में पड़ गए। फिर देवी के पास जाकर ब्रह्मा जी - विष्णु जी - शिव जी स्वयं स्वीकार कर रहे हैं कि हम तो जन्म तथा मत्यु में नाशवान हैं, हम अविनाशी नहीं हैं। हमारा तो आविर्भाव (जन्म) तथा तिरोभाव (मत्यु) होता है। इसके विपरित लोक वेद के आधार पर इन्हीं तीनों प्रभुओं को अजर-अमर, सर्वेश्वर, महेश्वर, अजन्मा, वासुदेव, इनके माता-पिता नहीं आदि उपमा से जानते थे। इन्हीं की पूजा को अन्तिम मान रखा था। जबकि पवित्र गीता अध्याय 7 श्लोक 12 से 15 तक तीनों गुणों (रजगुण ब्रह्मा, सतगुण विष्णु, तमगुण शिव जी) की पूजा करने वालों को मूर्ख - राक्षस स्वभाव वाले, मनुष्यों में नीच, दुष्कर्म करने वाले कहा है। लोक वेद (क्षेत्रीय शास्त्र विरुद्ध ज्ञान) के आधार पर वेदों को पढ़ने वाले ऋषि जिनको तत्वदर्शी संत नहीं मिला स्वयं ही निष्कर्ष निकाल कर ब्रह्म (काल) को पुरुषोत्तम कहते रहे। पूर्ण परमात्मा कविर् देव स्वयं ही अपनी महिमा बताते हैं तथा सत्य ज्ञान (स्वस्थ ज्ञान) को स्वयं संदेशवाहक बन कर लाते हैं। (यजुर्वेद अध्याय 29 मंत्र 25 में प्रमाण है।) तब स्वयं ही साधक, प्रभु तथा सतगुरु की भूमिका अदा करते हैं। दोहा :

कबीर पीछे लागा जाऊँ था, लोक वेद के साथ। रास्ते में सतगुरु मिलें, दीपक दे दिया हाथ।।

उपरोक्त अमतवाणी का भावार्थ है :- यह दास पहले श्री हनुमान जी, श्री खाटू श्याम जी तथा

श्री विष्णु जी अर्थात् श्री कृष्ण जी, श्री रामचन्द्र जी आदि का पक्का पूजारी था। व्रत रखना आदि सर्व शास्त्र विधि रहित साधना कर रहा था। 17 फरवरी सन् 1988 के शुभ दिन तत्वदर्शी परम संत पूज्य गुरुदेव स्वामी रामदेवानन्द जी महाराज ने यह तत्वज्ञान रूपी दीपक प्रदान कर दिया जिसकी रोशनी से पता चला कि गलत मार्ग जा रहा था। सर्व पूजा अपने ही पवित्र शास्त्रों (पवित्र गीता जी व पवित्र चारों वेदों) के विपरित कर रहा था जो लोक वेद के आधार पर ही कर रहा था। इसलिए उपरोक्त अमृतवाणी में प्रभु कबीर साहेब जी हमें समझाने के लिए कह रहे हैं कि तुम लोकवेद के आधार पर शास्त्रविरुद्ध साधना कर रहे हो, अब इस तत्वज्ञान के आधार पर शास्त्र विधि अनुसार पूर्ण संत से उपदेश प्राप्त करके अपना कल्याण करवाओ। व्यर्थ साधना मत करो।

पूर्ण परमात्मा एक भोले - भाले साधक की भूमिका करके कह रहे हैं कि मैं पहले लोकवेद (शास्त्र विरुद्ध सुना सुनाया ज्ञान) के आधार से साधना कर रहा था, पूर्ण संत (तत्वदर्शी संत) मिले, जिन्होंने वास्तविक पूजा विधि तथा तत्वज्ञान रूपी दीपक प्रदान कर दिया। अब तत्वज्ञान के प्रकाश में मार्ग नहीं भूलेंगे।

गीता अध्याय 15 श्लोक 19 का भावार्थ है कि हे अर्जुन जो ज्ञानी आत्मा तत्वदर्शी सन्त के अभाव से मुझे श्लोक 18 के आधार से पुरूषोत्तम जानता है वह मुझे ही पूर्ण प्रभु, जानकर भजता है। इसलिए गीता ज्ञान दाता प्रभु ने गीता अध्याय 7 श्लोक 18 में कहा है कि ये सर्व ज्ञानी आत्मा है तो उद्धार परन्तु तत्वदर्शी सन्त के अभाव से मुझे पूर्ण परमात्मा जानकर भजते हैं। जिस कारण से मेरी अनुत्तम भक्ति अर्थात् अश्रेष्ठ मोक्ष में ही लीन हैं।

।। गीता एक शास्त्र है ।।

अध्याय 15 के श्लोक 20 में कहा है कि हे निष्पाप अर्जुन! यह अति रहस्ययुक्त गोपनीय शास्त्र मेरे द्वारा कहा गया है। इसको सही तरीके से जो जान लेता है वह तत्वदर्शी सन्त के पास जाकर ज्ञानवान (पूर्ण ज्ञानी) हो जाएगा तथा (काल-जाल से निकल जाएगा) धन्य-धन्य हो जाता है।

वह गीता अध्याय 4 श्लोक 34 में वर्णित तत्वदर्शी सन्त की खोज करके धन्य हो जाएगा। पूर्ण परमात्मा (सतपुरुष) को प्राप्त करने की विधि काल भगवान ने कहीं पर नहीं कही है। जो यज्ञों व ऊँ मन्त्र के जाप का वर्णन है वह केवल स्वर्ग प्राप्ति तथा महास्वर्ग प्राप्ति का है न कि पूर्णब्रह्म व पूर्ण मुक्ति का। इसलिए वह ज्ञानी पुरुष जो यह जान भी लेगा कि कोई पालनकर्त्ता तथा दयालु भगवान तो अन्य ही है। लेकिन पहुँच से बाहर होने के कारण फिर काल साधना करता हुआ काल के जाल में ही रहेगा। उस पूर्ण परमात्मा की भक्ति विधि व पूर्ण ज्ञान को प्राप्त करने के लिए गीता अध्याय 4 श्लोक 34 में।

<u>प्रश्न</u> : एक भक्त ने कहा कि फल तो टहनियों से ही मिलता है, जड़ (मूल) से नहीं?

<u>उत्तर</u> : फल तो टहनियों ने ही देने हैं परंतु सेवा (पूजा) जड़ (मूल) की ही करनी पड़ेगी। यदि जड़ में पानी नहीं डालेंगे तो भक्ति रूपी पौधा सूख जाएगा। इसलिए जड़ में खाद-पानी डालने से टहनियाँ अपने आप फल देंगी।

नोट :- कृपा देखें भक्ति रूपी पौधे का चित्र सोलहवें अध्याय में इसी पुस्तक के पृष्ठ 506 पर।

तत्वज्ञान के अभाव से सर्व श्रद्धालुओं ने भक्ति रूपी पौधे को टहनियों की तरफ से जमीन में लगा रखा था। मूल (जड़) ऊपर को कर रखी थी। इसलिए संकेत किया है कि भक्ति रूपी पौधे को सीधा लगाओ। जड़ (मूल) अर्थात् पूर्ण परमात्मा की पूजा करो जिससे खुराक तीनों गुण (रजगुण

ब्रह्मा - सतगुण - विष्णु - तमगुण - शिव) रूपी टहनियों तक पहुँचेगी, फिर भक्ति रूपी फल लगेगा। बिना मांगे ही तीनों प्रभु आप को कर्माधार पर सर्व सुविधा प्रदान करेंगे। इसी का प्रमाण गीता अध्याय 3 श्लोक 10 से 15 तक है कहा है कि परमात्मा संष्टि उत्पन्न करके सब को यज्ञ (शास्त्रानुसार भक्ति कर्म) करने को कहा था तथा कहा था कि शास्त्रानुकूल साधना पूर्ण परमात्मा की करो जो यज्ञों में प्रतिष्ठित है जिस से ब्रह्म की उत्पति हुई। इस प्रकार इन देवताओं को उन्नत करो। वे उन्नत हुए देवता तुम्हे बिना मांगे ही सर्व सुख प्रदान करेंगे।

दूसरा उदाहरण :- मान लिजिए आपको सरकारी नौकरी चाहिए। आप अपने राजा (मुख्यमंत्री) की पूजा करोगे अर्थात् प्रार्थना-पत्र लिखोगे। फिर आप की प्रार्थना (पूजा) स्वीकार करके मुख्यमंत्री जी आपकी नौकरी किसी विभाग में लगा देगा। फिर भी पूजा - नौकरी (सेवा) मुख्यमंत्री जी की (सरकार की) ही करते रहोगे। परन्तु आप को मुख्यमंत्री जी द्वारा निर्धारित मेहनताना (आय) अधिकारी देंगे। वे भी उसी मालिक के उच्च नौकर होते हैं। यदि आप उन उच्च अधिकारियों की ही पूजा करते रहते तो वे आपको केवल चाय-पानी पिला सकते थे। जिससे आप का निर्वाह नहीं चलता। परन्तु साकार की पूजा (नौकरी)करने पर वे आप के जान-पहचान वाले अधिकारीगण आप को सर्व सुविधा प्रदान करेंगे, इसी प्रकार पूर्ण परमात्मा (कविर्देव) की पूजा करने से तीनों देवता श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी, श्री शिव जी आपको आपका केवल मेहनताना (किया कर्म) देते रहेंगे। यदि आपने पूर्ण परमात्मा की पूजा (नौकरी) त्याग दी तो सर्व सुविधाऐं बन्द हो जायेंगी। कंप्या देखें इसी पुस्तक के पंष्ठ 487 पर संसार रूपी वंक्ष का चित्र।

इसलिए पूर्णब्रह्म सतपुरुष ही पूजा के योग्य है। सर्व यज्ञों में प्रतिष्ठित अर्थात् सर्व धार्मिक कार्यों में उसी को मुख्य रख कर सर्वयज्ञ करनी चाहिये। फिर वही परमात्मा आपको सर्व सुविधाऐं प्रदान अपने अन्य प्रभुओं द्वारा करवाएगा। वह पूर्ण परमात्मा भाग्य से ज्यादा भी दे देता है। परन्तु अन्य प्रभु केवल कर्माधार ही प्रदान कर सकते हैं। जैसे अपने कर्मचारी को मुख्यमंत्री जी निर्धारित मेहनताना (आय) से अतिरिक्त बोनस भी दे देता है। परन्तु अधिकारी केवल निर्धारित तनख्वाह (आय) ही दे सकते हैं। ठीक इसी प्रकार तत्वज्ञान को जानकर पूर्ण संत की तलाश करके उपदेश प्राप्त करके आत्म कल्याण अर्थात् पूर्ण मोक्ष प्राप्त करें।

❑❑❑

।।पंद्रहवे अध्याय के अनुवाद सहित श्लोक।।

परमात्मने नमः

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

अध्याय 15 का श्लोक 1

ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित्।१।

ऊर्ध्वमूलम्, अधःशाखम्, अश्वत्थम्, प्राहुः, अव्ययम्,
छन्दांसि, यस्य, पर्णानि, यः, तम्, वेद, सः, वेदवित्।।1।।

अनुवाद : (ऊर्ध्वमूलम्) ऊपर को पूर्ण परमात्मा यानि आदि पुरुष परमेश्वर रूपी जड़ वाला (अधःशाखम्) नीचे को तीनों गुण अर्थात् रजगुण ब्रह्मा, सतगुण विष्णु व तमगुण शिव रूपी शाखा वाला (अव्ययम्) अविनाशी (अश्वत्थम्) विस्तारित पीपल का वक्ष है, (यस्य) जिसके (छन्दांसि) जैसे वेद में छन्द है ऐसे संसार रूपी वक्ष के भी विभाग छोटे-छोटे हिस्से टहनियाँ व (पर्णानि) पत्ते (प्राहुः) कहे हैं (तम्) उस संसाररूप वक्षको (यः) जो (वेद) विस्तार से जानता है यानि सर्व विभागों को जानता है (सः) वह (वेदवित्) वेद के तात्पर्य को जानने पूर्ण ज्ञानी अर्थात् तत्वदर्शी है।(1)

भावार्थ :- गीता अध्याय 4 श्लोक 34 में कहा है कि अर्जुन पूर्ण परमात्मा के तत्वज्ञान को जानने वाले तत्वदर्शी संतों के पास जा कर उनसे विनम्रता से पूर्ण परमात्मा का भक्ति मार्ग प्राप्त कर, मैं उस पूर्ण परमात्मा की प्राप्ति का मार्ग नहीं जानता। इसी अध्याय 15 श्लोक 3 में भी कहा है कि इस संसार रूपी वक्ष के विस्तार को अर्थात् सष्टि रचना को मैं यहाँ विचार काल में अर्थात् इस गीता ज्ञान में नहीं बता पाऊँगा क्योंकि मुझे इस के आदि (प्रारम्भ) तथा अन्त (जहाँ तक यह फैला है अर्थात् सर्व ब्रह्मण्डों का विवरण) का ज्ञान नहीं है। तत्वदर्शी सन्त के विषय में इस अध्याय 15 श्लोक 1 में बताया है कि वह तत्वदर्शी संत कैसा होगा जो संसार रूपी वक्ष का पूर्ण विवरण बता देगा कि मूल तो पूर्ण परमात्मा है, तना अक्षर पुरुष अर्थात् परब्रह्म है, डार ब्रह्म अर्थात् क्षर पुरुष है तथा शाखा तीनों गुण (रजगुण ब्रह्मा जी, सतगुण विष्णु जी, तमगुण शिव जी)है तथा पात रूप संसार अर्थात् सर्व ब्रह्मण्ड़ों का विवरण बताएगा वह तत्वदर्शी संत है।

अध्याय 15 का श्लोक 2

अधश्चोर्ध्वं प्रसृतास्तस्य शाखा
गुणप्रवृद्धा विषयप्रवालाः।
अधश्च मूलान्यनुसन्ततानि
कर्मानुबन्धीनि मनुष्यलोके ।२।

अधः, च, ऊर्ध्वम्, प्रसताः, तस्य, शाखाः, गुणप्रवद्धाः,
विषयप्रवालाः, अधः, च, मूलानि, अनुसन्ततानि, कर्मानुबन्धीनि, मनुष्यलोके।।2।।

अनुवाद : (तस्य) उस वक्ष की (अधः) नीचे (च) और (ऊर्ध्वम्) ऊपर (गुणप्रवद्धाः) तीनों गुणों ब्रह्मा-रजगुण, विष्णु-सतगुण, शिव-तमगुण रूपी (प्रसता) फैली हुई हैं (विषयप्रवालाः) विकार-काम क्रोध, मोह, लोभ अहंकार रूपी कोपल (शाखाः) डाली ब्रह्मा, विष्णु, शिव (कर्मानुबन्धीनि) जीव को

कर्मों में बाँधने की (मूलानि) जड़ें मुख्य कारण हैं (च) तथा (मनुष्यलोके) मनुष्यलोक, स्वर्ग-नरक लोक, पथ्वी लोक में (अधः) नीचे -पाताल लोक, चौरासी लाख जूनियों में ऊपर स्वर्ग लोक आदि में (अनुसन्ततानि) व्यवस्थित किए हुए हैं। (2)

अध्याय 15 का श्लोक 3

न रूपमस्येह तथोपलभ्यते
नान्तो न चादिर्न च सम्प्रतिष्ठा।
अश्वत्थमेनं सुविरूढमूल-
मसङ्गशस्त्रेण दृढेन छित्त्वा।३।

न, रूपम्, अस्य, इह, तथा, उपलभ्यते, न, अन्तः, न, च, आदिः, न, च,
सम्प्रतिष्ठा, अश्वत्थम्, एनम्, सुविरूढमूलम्, असङ्गशस्त्रेण, दढेन, छित्वा।।3।।

अनुवाद : (अस्य) इस रचना का (न) न (आदिः) शुरूवात (च) तथा (न) न (अन्तः) अन्त है (न) न (तथा) और वैसा (रूपम्) इसका वास्तविक स्वरूप (उपलभ्यते) पाया जाता है (च) तथा (इह) यहाँ विचार काल में अर्थात् मेरे द्वारा दिया जा रहा गीता ज्ञान में पूर्ण जानकारी मुझे भी (न) नहीं है (सम्प्रतिष्ठा) क्योंकि सर्वब्रह्मण्डों की रचना की अच्छी तरह स्थिति का मुझे भी ज्ञान नहीं है (एनम्) इस (सुविरूढमूलम्) अच्छी तरह स्थाई स्थिति वाला (अश्वत्थम्) पीपल के वक्ष के ज्ञान को (असङ्गशस्त्रेण) निर्लेप तत्वज्ञान रूपी (दढेन्) दढ़ शस्त्र से अर्थात् निर्मल तत्वज्ञान के द्वारा (छित्वा) काटकर अर्थात् निरंजन की भक्ति को क्षणिक जानकर। (3)

अध्याय 15 का श्लोक 4

ततः पदं तत्परिमार्गितव्यं-
यस्मिन्गता न निवर्तन्ति भूयः।
तमेव चाद्यं पुरुषं प्रपद्ये
यतः प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी।४।

ततः, पदम्, तत्, परिमार्गितव्यम्, यस्मिन्, गताः, न, निवर्तन्ति, भूयः,
तम्, एव्, च, आद्यम्, पुरुषम्, प्रपद्ये, यतः, प्रवतिः, प्रसता, पुराणी।।4।।

अनुवाद : {जब गीता अध्याय 4 श्लोक 34 अध्याय 15 श्लोक 1 में वर्णित तत्वदर्शी संत मिल जाए} (ततः) इसके पश्चात् (तत्) उस परमेश्वर के (पदम्) परम पद अर्थात् सतलोक को (परिमार्गितव्यम्) भलीभाँति खोजना चाहिए (यस्मिन्) जिसमें (गताः) गये हुए साधक (भूयः) फिर (न, निवर्तन्ति) लौटकर संसारमें नहीं आते (च) और (यतः) जिस परम अक्षर ब्रह्म से (पुराणी) आदि (प्रवतिः) रचना-सष्टि (प्रसता) उत्पन्न हुई है (तम्) उस (आद्यम्)सनातन (पुरुषम्) पूर्ण परमात्मा की (एव) ही (प्रपद्ये) मैं शरण में हूँ। पूर्ण निश्चय के साथ उसी परमात्मा का भजन करना चाहिए।(4)

अध्याय 15 का श्लोक 5

निर्मानमोहा जितसङ्गदोषा-
अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः।
द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसञ्ज्ञै-
र्गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत्।५।

निर्मानमोहाः, जितसंगदोषाः, अध्यात्मनित्याः, विनिवत्तकामाः,

द्वन्द्वैः, विमुक्ताः, सुखदुःखस ज्ञैः, गच्छन्ति, अमूढाः, पदम्, अव्ययम्, तत्।।5।।

अनुवाद : (निर्मानमोहाः) जिनका मान और मोह नष्ट हो गया है (जितसंगदोषाः) आसक्तता नष्ट हो गई (अध्यात्मनित्याः) हर समय पूर्ण परमात्मा में व्यस्त रहते हैं (विनिवत्तकामाः) कामनाओं से रहित (सुखदुःखस जैः) सुख-दुःख रूपी (द्वन्द्वैः) अधंकारसे (विमुक्ताः) अच्छी तरह रहित (अमूढाः) विद्वान (तत्) उस (अव्ययम्) अविनाशी (पदम्) सतलोक स्थान को (गच्छन्ति) जाते हैं। (5)

अध्याय 15 का श्लोक 6

न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम।६।

न, तत्, भासयते, सूर्यः, न, शशांकः, न, पावकः,

यत्, गत्वा, न, निवर्तन्ते, तत्, धाम, परमम्, मम्।।6।।

अनुवाद : (यत्) जहाँ (गत्वा) जाकर (न,निवर्तन्ते) लौटकर संसारमें नहीं आते (तत्) उस स्थान को (न) न (सूर्यः) सूर्य (भासयते) प्रकाशित कर सकता है (न) न (शशांक) चन्द्रमा और (न) न (पावकः) अग्नि ही (तत् धाम) वह सतलोक (परमम् मम्) मेरे लोक से श्रेष्ठ है। गीता जी के अन्य अनुवाद कर्ताओं ने लिखा है कि ''वह मेरा परम धाम है'' यदि यह भी माने तो यह गीता बोलने वाला ब्रह्म सत्यलोक अर्थात् परम धाम से निष्कासित है, इसलिए कहा है कि मेरा परमधाम भी वही है तथा मेरे लोक से श्रेष्ठ है, जहाँ जाने के पश्चात् फिर जन्म-मत्यु में नहीं आते। इसीलिए अध्याय 15 श्लोक 4 में कहा है कि उसी आदि पुरूष परमात्मा की मैं शरण हूँ। (6)

अध्याय 15 का श्लोक 7

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।
मनःषष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति।७।

मम, एव, अंशः, जीवलोके, जीवभूतः, सनातनः,

मनःषष्ठानि, इन्द्रियाणि, प्रकतिस्थानि, कर्षति।।7।।

अनुवाद : (जीवलोके) मतलोक में (सनातनः) आदि परमात्मा (अंशः) अंश (जीवभूतः) जीवात्मा (एव) ही (प्रकतिस्थानि) प्रकतिमें स्थित (मम) मेरे द्वारा (मनः) काल का दूसरा स्वरूप मन है इस मन व (इन्द्रियाणि) पाँच इन्द्रियों (षष्ठानि) सहित इन छःओं द्वारा (कर्षति) आकर्षित करके सताई जाती है अर्थात् कषित की जाती है। (7)

अध्याय 15 का श्लोक 8

शरीरं यदवाप्नोति यच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः।
गृहीत्वैतानि संयाति वायुर्गन्धानिवाशयात्।८।

शरीरम्, यत्, अवाप्नोति, यत्, च, अपि, उत्क्रामति, ईश्वरः,

गहीत्वा, एतानि, संयाति, वायुः, गन्धान्, इव, आशयात्।।8।।

अनुवाद : (वायुः) हवा (गन्धान्) गन्धको (आशयात्) ले जाती है क्योंकि गंध की वायु मालिक है (इव) इसी प्रकार (ईश्वरः) सर्व शक्तिमान प्रभु (अपि) भी इस जीवात्मा को (एतानि) इन पाँच इन्द्रियों व मन सहित सुक्ष्म शरीर (गहीत्वा) ग्रहण करके जीवात्मा (यत्) जिस पुराने शरीरको (उत्क्रामति) त्याग कर (च) और (यत्) जिस नए (शरीरम्) शरीरको (अवाप्नोति) प्राप्त होता है उसमें संस्कारवश (संयाति) ले जाता है। गीता अध्याय 18 श्लोक 61 में भी प्रमाण है। (8)

अध्याय 15 का श्लोक 9

श्रोत्रं चक्षुः स्पर्शनं च रसनं घ्राणमेव च।
अधिष्ठाय मनश्चायं विषयानुपसेवते। ९ ।

श्रोत्रम्, चक्षुः, स्पर्शनम्, च, रसनम्, घ्राणम्, एव, च,
अधिष्ठाय, मनः, च, अयम्, विषयान्, उपसेवते।।9।।

अनुवाद : (अयम्) यह परमात्मा का अंश जीव आत्मा (श्रोत्रम्) कान (चक्षुः) आँख (च) और (स्पर्शनम्) त्वचा (च) और (रसनम्) रसना (घ्राणम्) नाक (च) और (मनः) मनके (अधिष्ठाय) माध्यम से (एव) ही (विषयान्) विषयों अर्थात् शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध आदि का (उपसेवते) सेवन करता है। फिर उस का कर्म भोग जीवात्मा को ही भोगना पड़ता है। (9)

अध्याय 15 का श्लोक 10

उत्क्रामन्तं स्थितं वापि भुञ्जानं वा गुणान्वितम्।
विमूढा नानुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः। १०।

उत्क्रामन्तम्, स्थितम्, वा, अपि, भु जानम्, वा, गुणान्वितम्,
विमूढाः, न, अनुपश्यन्ति, पश्यन्ति, ज्ञानचक्षुषः।।10।।

अनुवाद : (विमूढाः) अज्ञानीजन (उत्क्रामन्तम्) अन्त समय में शरीर त्याग कर जाते हुए अर्थात् शरीर से निकल कर जाते हुए (वा) अथवा (स्थितम्) शरीरमें स्थित (वा) अथवा (भु जानम्) भोगते हुए (गुणान्वितम्) इन गुणों वाले आत्मा से अभेद रूप में रहने वाले परमात्मा को (अपि) भी (न,अनुपश्यन्ति) नहीं देखते अर्थात् नहीं जानते (ज्ञानचक्षुषः) ज्ञानरूप नेत्रोंवाले अर्थात् पूर्ण ज्ञानी (पश्यन्ति) जानते हैं। इसी का प्रमाण गीता अध्याय 2 श्लोक 12 से 23 तक भी है। (10)

अध्याय 15 का श्लोक 11

यतन्तो योगिनश्चैनं पश्यन्त्यात्मन्यवस्थितम्।
यतन्तोऽप्यकृतात्मानो नैनं पश्यन्त्यचेतसः। ११।

यतन्तः, योगिनः, च, एनम्, पश्यन्ति, आत्मनि, अवस्थितम्,
यतन्तः, अपि, अकतात्मानः, न, एनम्, पश्यन्ति, अचेतसः।।11।।

अनुवाद : (यतन्तः) यत्न करनेवाले (योगिनः) योगीजन (आत्मनि) अपने हृदय में (अवस्थितम्) स्थित (एनम्) इस परमात्माको जो आत्मा के साथ अभेद रूप से रहता है जैसे सूर्य का ताप अपना निर्गुण प्रभाव निरन्तर बनाए रहता है को (पश्यन्ति) देखता है (च) और (अकतात्मानः) जिन्होंने अपने अन्तःकरणको शुद्ध नहीं किया अर्थात् शास्त्र विधि अनुसार भक्ति कर्म न करने वाले (अचेतसः) अज्ञानीजन तो (यतन्तः) यत्न करते रहनेपर (अपि) भी (एनम्) इसको (न, पश्यन्ति) नहीं देखते। (11)

विशेष :- श्लोक 12 से 15 तक पवित्र गीता बोलने वाला ब्रह्म अर्थात् क्षर पुरुष अपनी स्थिति बता रहा है कि मेरे अन्तर्गत अर्थात् इक्कीस ब्रह्मण्डों में सर्व प्राणियों का आधार हूँ। इन ब्रह्मण्डों में जितने भी प्रकाश स्रोत हैं उन्हें मेरे ही जान। मैं ही वेदों को बोलने वाला ब्रह्म हूँ। वेदों व वेदान्त का कर्त्ता मैं ही हूँ। चारों वेदों को मैं ही जानता हूँ तथा चारों वेदों में मेरी ही भक्ति विधि का वर्णन है। विचार करें - जैसे उल्टा लटका हुआ संसार रूपी वक्ष है। इसकी मूल तो आदि पुरुष परमेश्वर अर्थात् पूणब्रह्म है तथा तना अक्षर पुरुष अर्थात् परब्रह्म है, डार क्षर पुरुष अर्थात् यह गीता व वेदों

को बोलने वाला ब्रह्म (काल) है। तीनों गुण रूप(रजगुण ब्रह्मा जी, सतगुण विष्णु जी, तमगुण शिवजी) शाखाऐं हैं तथा पत्ते रूप अन्य प्राणी हैं, पेड़ को आहार मूल (जड़) से प्राप्त होता है। फिर वह आहार तना में जाता है, तना से डार में तथा डार से उन शाखाओं में जाता है जो उस डार पर आधारित हैं। ऐसे ही शाखाओं से पत्तों तक आहार जाता है, परन्तु वास्तव में सर्व का पालन कर्त्ता तथा वास्तव में अविनाशी परमेश्वर परमात्मा भी इन दोनों (क्षर पुरुष तथा अक्षर पुरुष) से अन्य परम अक्षर ब्रह्म है जो गीता अध्याय 8 श्लोक 1 तथा 3 में वर्णन है तथा विशेष वर्णन इन निम्न श्लोक 16,17 में व इसी अध्याय 15 के ही 1 से 4 तक में है। इसी अध्याय 15 के श्लोक 15 में कहा है कि मैं प्राणियों के हृदय में स्थित हूँ। यह काल महाशिव रूप में हृदय कमल में दिखाई देता है। गीता अध्याय 13 श्लोक 17 में कहा है वह पूर्ण परमात्मा सर्व प्राणियों के हृदय में विशेष रूप से स्थित है तथा अध्याय 18 श्लोक 61 में भी यही प्रमाण है। इस प्रकार इस मानव शरीर वह ब्रह्म तथा पूर्ण परमात्मा व ब्रह्मा विष्णु महेश का भी इसी शरीर में दर्शन होता है। परन्तु सर्व परमात्मा दूरस्थ होकर शरीर में अलग-2 स्थानों पर दिखाई देते है।

अध्याय 15 का श्लोक 12

यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम्।
यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम्। १२।

यत्, आदित्यगतम्, तेजः, जगत्, भासयते, अखिलम्,
यत्, चन्द्रमसि, यत्, च, अग्नौ, तत्, तेजः, विद्धि, मामकम्।।12।।

अनुवाद : (आदित्यगतम्) सूर्यमें स्थित (यत्) जो (तेजः) तेज (अखिलम्) सम्पूर्ण (जगत्) जगत्को (भासयते) प्रकाशित करता है (च) तथा (यत्) जो तेज (चन्द्रमसि) चन्द्रमामें है और (यत्) जो (अग्नौ) अग्निमें है (तत्) उसको तू (मामकम्) मेरा ही (तेजः) तेज (विद्धि) जान। (12)

अध्याय 15 का श्लोक 13

गामाविश्य च भूतानि धारयाम्यहमोजसा।
पुष्णामि चौषधीः सर्वाः सोमो भूत्वा रसात्मकः। १३।

गाम्, आविश्य, च, भूतानि, धारयामि, अहम्, ओजसा,
पुष्णामि, च, ओषधीः, सर्वाः, सोमः, भूत्वा, रसात्मकः।।13।।

अनुवाद : (च) और (अहम्) मैं ही (गाम्) पृथ्वीमें (आविश्य) प्रवेश करके (ओजसा) शक्तिसे (भूतानि) मेरे अन्तर्गत प्राणियों को (धारयामि) धारण करता हूँ (च) और (रसात्मकः) रसस्वरूप अर्थात् अमृतमय (सोमः) चन्द्रमा (भूत्वा) होकर (सर्वाः) सम्पूर्ण (ओषधीः) ओषधियोंको अर्थात् वनस्पतियोंको (पुष्णामि) पुष्ट करताहूँ। (13)

अध्याय 15 का श्लोक 14

अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः।
प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम्। १४।

अहम्, वैश्वानरः, भूत्वा, प्राणिनाम्, देहम्, आश्रितः,
प्राणापानसमायुक्तः, पचामि, अन्नम्, चतुर्विधम्।।14।।

अनुवाद : (अहम्) मैं ही (प्राणिनाम्) मेरे अन्तर्गत प्राणियोंके (देहम्) शरीरमें (आश्रितः) शरण रहनेवाला (प्राणापानसमायुक्तः) प्राण और अपानसे संयुक्त (वैश्वानरः) जठराग्नि (भूत्वा)होकर

(चतुर्विधम्)चार प्रकारके (अन्नम्)अन्नको (पचामि)पचाता हूँ।(14)

अध्याय 15 का श्लोक 15

सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो-
मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च।
वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो-
वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम्।१५।

सर्वस्य, च, अहम्, हृदि, सन्निविष्टः, मत्तः, स्मतिः, ज्ञानम्, अपोहनम्,
च, वेदैः, च, सर्वैः, अहम्, एव, वेद्यः, वेदान्तकत्, वेदवित्, एव, च, अहम्।।

अनुवाद : (अहम्) मैं (सर्वस्य) मेरे इक्कीस ब्रह्मण्ड़ों के सब प्राणियोंके (हृदि) हृदय में (सन्निविष्टः) स्थित हूँ (च) और (मत्तः) मुझ से ही शास्त्रानुकूल मत तथा अपने स्तर का मत स्थापित किया जाता है (अहम्) मैं (एव) ही (स्मतिः) स्मति (ज्ञानम्) ज्ञान (च) और (अपोहनम्) अपोहन-संश्य निवारण करता हूँ (च) और (वेदान्तकत्) वेदान्तका कर्त्ता यानि वेदों का रचनहार हूँ (वेदवित्) वेदोंको जानने वाला (च) और (सर्वैः) सब (वेदैः) वेदों द्वारा (वेद्यः) जाननेके योग्य भी (अहम्) मैं (एव) ही हूँ।(15)

अध्याय 15 का श्लोक 16

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते।१६।

द्वौ, इमौ, पुरुषौ, लोके, क्षरः, च, अक्षरः, एव, च,
क्षरः, सर्वाणि, भूतानि, कूटस्थः, अक्षरः, उच्यते।।16।।

अनुवाद : (लोके) इस संसारमें (द्वौ) दो प्रकारके (पुरुषौ) भगवान हैं (क्षरः) नाशवान् (च) और (अक्षरः) अविनाशी (एव) इसी प्रकार (इमौ) इन दोनों लोकों में (सर्वाणि) सम्पूर्ण (भूतानि) भूतप्राणियोंके शरीर तो (क्षरः) नाशवान् (च) और (कूटस्थः) जीवात्मा (अक्षरः) अविनाशी (उच्यते) कहा जाता है।(16)

अध्याय 15 का श्लोक 17

उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः।
यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः।१७।

उत्तमः, पुरुषः, तु, अन्यः, परमात्मा, इति, उदाहृतः,
यः, लोकत्रयम् आविश्य, बिभर्ति, अव्ययः, ईश्वरः।।17।।

अनुवाद : (उत्तमः) उत्तम (पुरुषः) भगवान (तु) तो उपरोक्त दोनों प्रभुओं क्षर पुरुष तथा अक्षर पुरुष से (अन्यः) अन्य ही है (यः) जो (लोकत्रयम्) तीनों लोकोंमें (आविश्य) प्रवेश करके (बिभर्ति) सबका धारण पोषण करता है एवं (अव्ययः) अविनाशी (ईश्वरः) परमेश्वर (परमात्मा) परमात्मा (इति) इस प्रकार (उदाहृतः) कहा गया है। यह प्रमाण गीता अध्याय 13 श्लोक 22, अध्याय 8 श्लोक 3 में भी है।(17)

नोट :- इस श्लोक नं. 17 में तीन लोक इस प्रकार हैं :- 1. क्षर पुरुष का लोक 2. अक्षर पुरुष का लोक 3. परम अक्षर पुरुष का लोक जो अविनाशी क्षेत्र है जो चार भागों में बाँटा है :- 1. सत्यलोक 2. अलख लोक 3. अगम लोक 4. अकह यानि अनामी लोक जिसमें कबीर परमेश्वर भिन्न-भिन्न रूपों में विराजमान हैं।

अध्याय 15 का श्लोक 18

यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः। १८।

यस्मात्, क्षरम्, अतीतः, अहम्, अक्षरात्, अपि, च, उत्तमः,
अतः, अस्मि, लोके, वेदे, च, प्रथितः, पुरुषोत्तमः।।18।।

अनुवाद : (यस्मात्) क्योंकि (अहम्) मैं मेरे काल लोक के इक्कीस ब्रह्मण्डों के क्षेत्र में मेरे आधीन (क्षरम्) नाशवान् स्थूल शरीर में विराजमान प्राणियों से तो सर्वथा (अतीतः) श्रेष्ठ हूँ (च) और (अक्षरात्) अविनाशी जीवात्मासे (अपि) भी (उत्तमः) उत्तम हूँ (च) और (अतः) इसलिये (लोके वेदे)लोक वेद में अर्थात् कहे सुने ज्ञान के आधार से वेदमें (पुरुषोत्तमः) श्रेष्ठ भगवान(प्रथितः) प्रसिद्ध (अस्मि) हूँ पवित्र गीता बोलने वाला ब्रह्म-क्षर पुरुष कह रहा है कि मैं तो लोक वेद में अर्थात् सुने-सुनाए ज्ञान के आधार पर केवल मेरे इक्कीस ब्रह्मण्ड़ों में ही श्रेष्ठ प्रभु प्रसिद्ध हूँ। वास्तव में पुरुषोत्तम यानि पूर्ण परमात्मा तो कोई और ही है। जिसका विवरण इसी अध्याय के श्लोक 17 में पूर्ण रूप से दिया है।(18)

कबीर परमात्मा ने उदाहरणार्थ कहा है :-

पीछे लागा जाऊं था लोक वेद के साथ, रस्ते में सतगुरू मिले दीपक दीन्हा हाथ।

भावार्थ है :-- कबीर प्रभु ने कहा है कि जब तक साधक को पूर्ण सन्त नहीं मिलता तब तक लोक वेद अर्थात् कहे सुने ज्ञान के आधार से साधना करता है उस आधार से कोई विष्णु जी को पूर्ण प्रभु परमात्मा कहता है कि क्षर पुरूष अर्थात् ब्रह्म को पूर्ण ब्रह्म कहता है। परन्तु तत्वज्ञान से पता चलता है कि पूर्ण परमात्मा तो कबीर जी है।

अध्याय 15 का श्लोक 19

यो मामेवमसम्मूढो जानाति पुरुषोत्तमम्।
स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत। १९।

यः, माम्, एवम्, असम्मूढः, जानाति, पुरुषोत्तमम्,
सः, सर्ववित्, भजति, माम्, सर्वभावेन, भारत।।19।।

अनुवाद : (भारत) हे भारत! (यः) जो (असम्मूढः) ज्ञानी पुरुष (माम्) मुझको (एवम्) इस प्रकार तत्वदर्शी संत के अभाव से (पुरुषोत्तमम्) पुरुषोत्तम (जानाति) जानता है (सः) वह (सर्वभावेन) सब प्रकारसे (माम्) मुझकोही (सर्ववित्) सर्वस्वा जानकर (भजति) भजता है।(19)

अध्याय 15 का श्लोक 20

इति गुह्यतमं शास्त्रमिदमुक्तं मयानघ।
एतद्बुद्ध्वा बुद्धिमान्स्यात्कृतकृत्यश्च भारत। २०।

इति, गुह्यतमम्, शास्त्रम्, इदम्, उक्तम्, मया, अनघ,
एतत्, बुद्ध्वा, बुद्धिमान्, स्यात्, कतकत्यः, च, भारत।।20।।

अनुवाद : (अनघ) हे निष्पाप (भारत) अर्जुन! (इति) इस प्रकार (इदम्) यह (गुह्यतमम्) अति रहस्ययुक्त गोपनीय (शास्त्रम्) शास्त्र (मया) मेरे द्वारा (उक्तम्) कहा गया (च) और (एतत्) इसको (बुद्ध्वा) तत्वसे जानकर (बुद्धिमान्) ज्ञानवान् (कतकत्यः) कतार्थ (स्यात्) हो जाता है अर्थात् पूर्ण संत जो तत्वदर्शी संत हो उसकी तलाश करके उपदेश प्राप्त करके काल जाल से निकल जाता है।(20)

(इति अध्याय पन्द्रहवाँ)

❑❑❑

सोलहवां अध्याय

(दिव्य सारांश)

।। श्री मद्भगवत् गीता अध्याय 16 का सारांश।।

।। सुर व असुर स्वभाव के व्यक्तियों का वर्णन।।

विशेष :- अध्याय 16 के श्लोक 1 से 3 तक उन पुण्यात्माओं के लक्षण वर्णित हैं जो पिछले जन्मों में वेदों अनुसार अर्थात् शास्त्र अनुकूल ब्रह्म साधना ओ3म् नाम से किया करते थे। जिसके कारण ब्रह्मलोक में कुछ समय सुख भोगकर जब पुनः मानव जन्म मिलता है तथा पूर्ण परमात्मा की भक्ति तत्वदर्शी संत से प्राप्त करके करते थे जो पार नहीं हो सके, जब कभी मानव जन्म प्राप्त होता है तो वे निम्न लक्षणों वाले होते हैं।

❖ *गीता अध्याय 16 के श्लोक 1 से 3 तक में काल ब्रह्म ने दैवी स्वभाव (उदार आत्माओं) का वर्णन किया है कि वे निर्भय, निर्वैरी, धार्मिक अनुष्ठान करने वाले मदुभाषी, किसी की निन्दा नहीं करते, कामी (सैक्सी), क्रोधी, लोभी, लालची, अहंकारी नहीं होते। वे किसी से भी अपना सम्मान नहीं करवाते। वे लाज (शर्म) वाले होते हैं। ये दान, स्वाध्यायः यज्ञ आदि करते हैं। ये पिछले जन्मों से भक्ति करते हुए आ रहे हैं। इसीलिए उनके स्वभाव देव पुरुषों अर्थात् संतों जैसे होते हैं।*

विशेष :- इस श्लोक नं. 1 में मूल पाठ में ''तप'' शब्द का तात्पर्य कठोर तप से नहीं है। शास्त्रानुकूल साधना करने में जो कष्ट होता है, उसे तप कहा है। जैसे शास्त्र विधि अनुसार साधक को पूर्व शास्त्रविरूद्ध साधना त्यागनी होती है। जिस समाज में साधक रह रहा होता है, उस समाज के व्यक्ति उसका घोर विरोध करते हैं। उस विरोध का सामना स्वधर्म पालन में करना यहाँ ''तप'' कहा है।

❖ *गीता अध्याय 16 के श्लोक 4 में कहा है कि जिन व्यक्तियों में पाखण्ड, अभिमान, क्रोध, कठोरता, अज्ञान है वे राक्षस वति (स्वभाव) के हैं जो इन राक्षसी वति को साथ लिए हुए उत्पन्न हुए हैं अर्थात् इन आत्माओं को पिछले जन्म में संतों का संग नहीं मिला। जो शास्त्र विधि त्याग कर मनमाना आचरण करते रहे अर्थात् आन उपासना (रजगुण ब्रह्मा, सतगुण विष्णु, तमगुण शिव की तथा भूत-पितर, देवी व भैरवों आदि की) करते रहे। जब कभी उन्हें मानव शरीर प्राप्त होता है तो भी साधना उसी पूर्व स्वभाववश ही करते हैं। जिसके परिणाम स्वरूप वे उच्च विचारों (मत) वाले नहीं हुए।*

❖ *अध्याय 16 के श्लोक 5 में कहा है कि जो व्यक्ति संत स्वभाव वाले हैं वे भक्ति करके मुक्ति प्राप्ति के लिए जन्में हैं। यदि पूर्ण संत गुरु मिल गया तो मुक्ति है यदि पूरा गुरु (सतनाम व सारनाम देने वाला) नहीं मिला तो गलत साधना से जीवन व्यर्थ हो जाएगा, और जो राक्षसी स्वभाव के व्यक्ति हैं वे भक्ति नहीं करते, यदि भक्ति करते भी हैं तो शास्त्र विधि रहित व पाखण्ड युक्त लोकवेद अनुसार, साथ में विकार (तम्बाखु सेवन, मांस, मदिरा सेवन) भी करते रहते हैं, जो विकार नहीं करते तो भी स्वभाव वश आन-उपासना पर ही आरूढ़ रहते हैं। कोई समझाने की कोशिश करता है तो नाराज हो जाते हैं। वे अशुभ कर्मों के बन्धन में बंध जाते हैं अर्थात् चौरासी*

लाख जूनियों के बन्धन में जकड़े जाते हैं। अर्जुन आप (दैवी) साधु स्वभाव के साथ उत्पन्न हुए हो। इसलिए चिंता मत कर।

गीता अध्याय 16 के श्लोक 6 में कहा है कि इस संसार में दो प्रकार के व्यक्तियों का समुह है। एक संत स्वभाव के दूसरे राक्षस स्वभाव के। साधु स्वभाव वालों के लक्षण तो ऊपर (1,2,3 श्लोकों में) विस्तार से बताए हैं। अब राक्षसी स्वभाव वाले व्यक्तियों के लक्षण विस्तार से सुन।

❖ *गीता अध्याय 16 के श्लोक 7 में कहा है कि राक्षस स्वभाव के व्यक्ति प्रवति व निवति को भी नहीं जानते। उनमें न तो शुद्धि है, न आचरण ठीक है,सच्चाई भी नहीं जानते हैं।*

❖ *गीता अध्याय 16 के श्लोक 8 में कहा है कि वे राक्षस स्वभाव वाले कहा करते हैं कि संसार निराधार है। असत्य तथा बिना भगवान के है अपने आप (नर-मादा के संयोग से) उत्पन्न है। केवल काम (सैक्स) ही इसका कारण है।*

❖ *गीता अध्याय 16 के श्लोक 9 में कहा है कि राक्षस वति के व्यक्ति मिथ्या ज्ञान का अनुसरण करके ये नष्ट आत्मा (गिरी हुई आत्मा) मंद बुद्धि हैं। वे अपकार (बुरा) करने वाले क्रूरकर्मी (भयंकर कर्म करने वाले) जगत के नाश के लिए ही उत्पन्न होते हैं।*

❖ *गीता अध्याय 16 का श्लोक 10 - राक्षस वति के व्यक्ति पाखण्ड, मान, मद्य युक्त, मुश्किल से पूर्ण होने वाली इच्छाओं का आश्रय लेकर मोह (अज्ञान) वश मिथ्या सिद्धांतों को ग्रहण करके भ्रष्ट आचरणों को धारण किए हुए घूमा करते हैं।*

❖ *गीता अध्याय 16 के श्लोक 11 में कहा है कि उन राक्षस स्वभाव के व्यक्तियों का मरने के बाद भी यह स्वभाव समाप्त नहीं होता। असंख्य चिंताओं के आधारित, विषय भोगों में तत्पर रहने वाले इसी को सुख मान कर निश्चय करने वाले होते हैं।*

❖ *गीता अध्याय 16 के श्लोक 12 में कहा है कि वे राक्षस स्वभाव वाले चाहे वे संत कहलाते हैं, चाहे उनके उपासक या स्वयं ही शास्त्र विधि रहित साधना करने वाले व्यक्ति आशाओं की सैकड़ों फांसियों से बन्धे हुए काम-क्रोध के आश्रित हो कर विषय भोगों के लिए अन्याय पूर्वक धन इक्कट्ठा करने की कोशिश करते हैं तथा भक्ति भी शास्त्र विधि रहित ही करते हैं।*

उदाहरणः-- एक समय यह दास (संत रामपाल दास) गुजराज प्रान्त के शहर अहमदाबाद में सत्संग कर रहा था। वहाँ एक व्यक्ति ने सत्संग सुना उस के पश्चात् मुझ दास से दिक्षा प्राप्त की उसने बताया कि यहाँ एक सुप्रसिद्ध सन्त जी का आश्रम है। उस सन्त का शिष्य मेरा रिश्तेदार बना। उस रिश्तेदार को सन्त जी ने कई प्रकार की दवाईयाँ बनाने को कहा। उसने गुरू जी के आदेश से अच्छे वैद्यों की देख-रेख में दवाईयाँ तैयार की । एक प्रकार की दवाई के पैकेट पर 9 रूपये खर्च आए। सन्त जी ने कहा आप मुझे 5 रूपये प्रति पैकेट दो। मैं इन दवाईयों को परमार्थ में मुफ्त वितरित करूंगा। उस रिश्तेदार ने गुरूदेव की आज्ञा जान कर स्वीकार कर लिया। उस सन्त जी ने उस दवाई का पैकेट 15 रूपये में भक्तों को बेचना शुरू कर दिया। उस दवाई बेचने का कार्य अपने एक निजी सेवक को दिया। जब मेरे रिश्तेदार को पता चला तो सन्त जी के समक्ष विरोध किया तथा कहा तेरे इस अन्याय का भाण्डा फोड़ करूंगा। मेरा तो लाखों का नुक्सान हो गया। आप मालामाल हो रहे हो। उस सन्त ने उसे धमका दिया तथा कहा कि कहीं जुबान खोल दी तो खैर नहीं है। उस के पीछे गुन्डें लगा दिए। हरिद्वार में उस रिश्तेदार पर जानलेवा हमला किया। स्वांस थे बच गया।

❖ *गीता अध्याय 16 के श्लोक 13 का भाव है कि राक्षस स्वभाव वाले कहा करते हैं कि मैंने आज ज्यादा धन प्राप्त किया है। मैं ये कर दूंगा, वह प्राप्त कर लूंगा, मेरे पास इतना धन है, फिर भविष्य में इतना और हो जाएगा।*

❖ *अध्याय 16 के श्लोक 14 का अर्थ है कि वे राक्षस वति के व्यक्ति कहा करते हैं कि वे शत्रु मेरे द्वारा मार दिए गए हैं। उन दूसरे शत्रुओं को भी मैं मार डालूंगा। मैं भगवान हूँ - मैं सिद्ध, बलवान व सुखी हूँ।*

❖ *गीता अध्याय 16 का श्लोक 15,16 :- वे राक्षस स्वभाव के कहा करते हैं कि मैं बड़ा धनी और बड़े कुटुम्ब वाला हूँ। मेरे समान दूसरा कौन है? यज्ञ करूंगा, दान दूंगा, मस्ती करूँगा। इस प्रकार अज्ञान से मोहित अनेक प्रकार से चित वाले मोह जाल में फंसे विषयों में विशेष आसक्त (राक्षस लोग) घोर गंदे नरक में गिरते हैं।*

❖ ***गीता अध्याय 16 श्लोक 17 से 20 तक का भावार्थ है कि जो शास्त्र विधि रहित मनमानी पूजा*** {तीनों गुणों रजगुण ब्रह्मा, सतगुण विष्णु, तमगुण शिवजी तथा अन्य निम्न देवों की पूजा करना, पितर पूजना (श्राद्ध निकालना) भूत पूजना (पिण्ड भरवाना, तेरहवीं–सतरहवीं करना), फूल (अस्थियाँ) उठा कर क्रिया कर्म करवाने ले जाना आदि शास्त्र विधि रहित पूजा है, प्रमाण पवित्र गीता अध्याय 7 श्लोक 12 से 15 तथा 20 से 23 तथा गीता अध्याय 9 श्लोक 22 से 25 तक में है} ***करने वाले पापियों, घमण्डियों, एक दूसरे की निंदा करने वालों को जो मेरी आज्ञा का उल्लंघन करने वालों क्रुरकर्मी नीच व्यक्तियों को मैं (ब्रह्म) बार-बार असुर योनियों में डालता हूँ। वे मूर्ख मुझे न प्राप्त होकर अर्थात् मेरे महास्वर्ग में (जो ब्रह्मलोक में बना है) न जाकर क्षणिक सुख स्वर्गादि में भोग कर अति नीच गति को प्राप्त होते हैं अर्थात् घोर नरक में गिरते हैं। फिर इसी से सम्बन्धित गीता अध्याय 16 श्लोक 23-24 में है कि जो व्यक्ति शास्त्र विधि को त्याग कर अपनी इच्छा से मनमाना आचरण (पूजा) करते हैं वह न तो सुख प्राप्त करता है, न कोई कार्य सिद्ध होता है तथा न ही परमगति को प्राप्त होता है। इसलिए अर्जुन जो भक्ति करने तथा न करने योग्य पूजा विधि है, उनके लिए तो शास्त्र ही प्रमाण हैं। अन्य किसी व्यक्ति विशेष या संत,ऋषि विशेष के द्वारा दिए भक्ति मार्ग को स्वीकार नहीं करना चाहिए, जो शास्त्र विरुद्ध हो।***

।। विकारी प्राणी भक्ति नहीं कर सकते ।।

अध्याय 16 के श्लोक 21,22 का भाव है कि काम,क्रोध, लोभ जीव को नरक के द्वार में डालने वाले हैं। जो इनसे रहित है केवल वही परमगति (पूर्णमुक्ति) को प्राप्त कर सकते हैं अन्यथा नहीं। कबीर साहेब भी प्रमाण देते हैं -

कबीर, कामी क्रोधी लालची, इन से भक्ति न होय।
भक्ति करै कोई सूरमा, जाति वर्ण कुल खोय।।

।। शास्त्र विरूद्ध पूजा व्यर्थ ।।

अध्याय 16 के श्लोक 23,24 में कहा है कि जो व्यक्ति शास्त्र विधि को छोड़कर अपनी मन मर्जी से {रजगुण ब्रह्मा, सतगुण विष्णु, तमगुण शिवजी तथा अन्य देवी-देवों की पूजा, मूर्ती पूजा, पितर पूजा, भूत पूजा, श्राद्ध निकालना, पिण्ड भरवाना, धाम पूजा, गोवर्धन की परिक्रमा करना, तीर्थो के चक्कर लगाना, तप करना, पीपल-जाँटी-तुलसी की पूजा, बिना गुरु के नाम जाप, यज्ञ,

दान करना, गुड़गांवा वाली देवी, बेरी वाली, कलकते वाली, सींक पाथरी वाली माता की पूजा, समाध की पूजा, गुगा पीर, जोहड़ वाला बाबा, तिथि पूजा (किसी भी प्रकार का व्रत करना), बाबा श्यामजी की पूजा, हनुमान आदि की पूजा शास्त्र विरूद्ध कहलाती हैं।} पूजा करते हैं, वे न तो सुखी हो सकते, उनको न सिद्धि यानि आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त होती है और न ही उनको मुक्ति प्राप्त होती। इसलिए अर्जुन शास्त्र विधि से करने योग्य कर्म कर जो तेरे लिए शास्त्र ही प्रमाण हैं कि गलत साधना लाभ के स्थान पर हानिकारक होती है।

नोट :- कपा देखें सीधा तथा उल्टा रोपा गया भक्ति रूपी पौधे का चित्र जिससे शीघ्र संशय समाप्त हो जाएगा। कबीर जी ने कहा है कि :-

कबीर एकै साधे सब सधै, सब साधे सब जाय।
माली सींचे मूल कूँ, फलै फूलै अघाय।।

❑❑❑

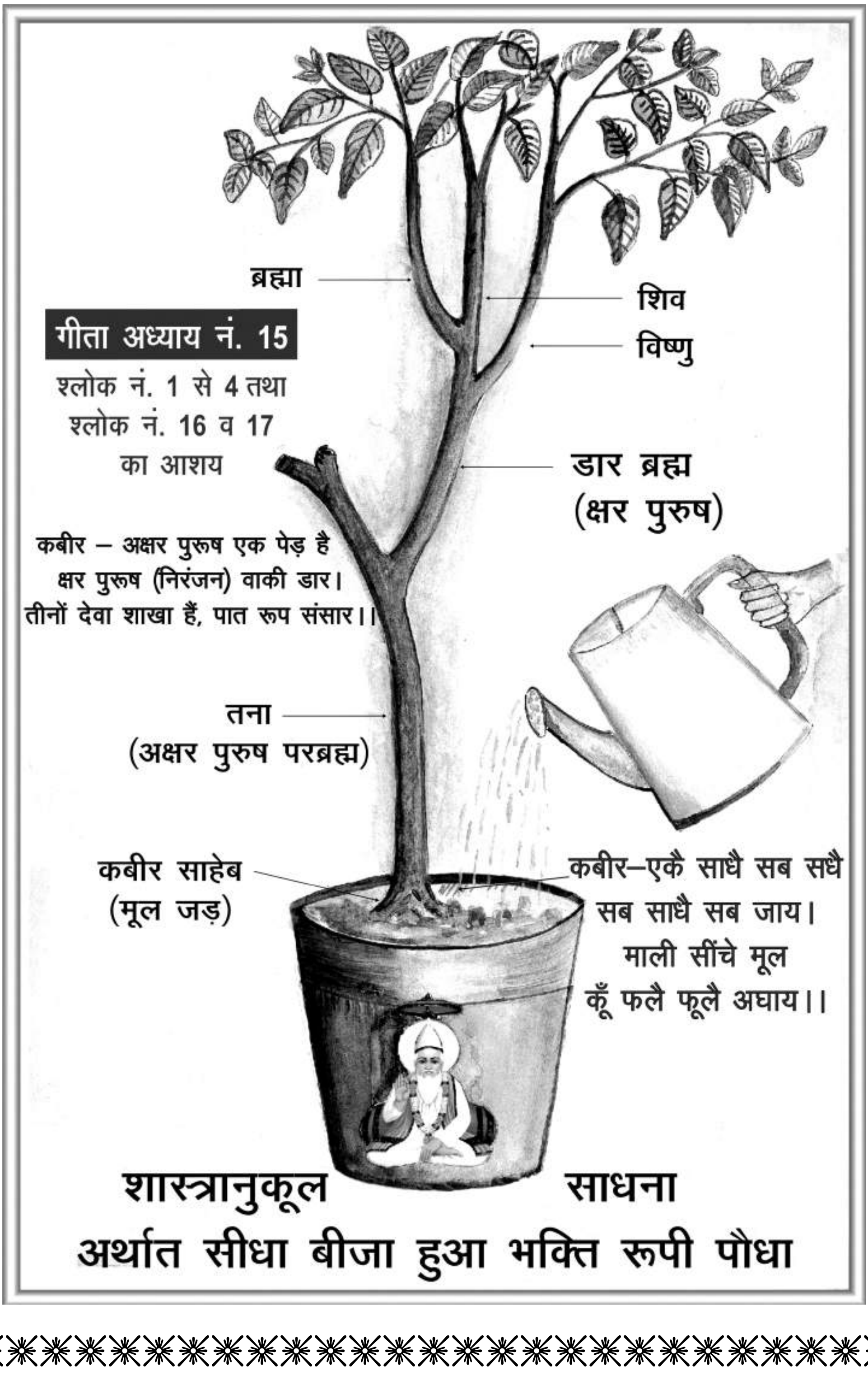
ब्रह्मा
शिव
विष्णु
गीता अध्याय नं. 15
श्लोक नं. 1 से 4 तथा
श्लोक नं. 16 व 17
का आशय
डार ब्रह्म
(क्षर पुरुष)
कबीर – अक्षर पुरूष एक पेड़ है
क्षर पुरूष (निरंजन) वाकी डार।
तीनों देवा शाखा हैं, पात रूप संसार।।
तना
(अक्षर पुरुष परब्रह्म)
कबीर साहेब
(मूल जड़)
कबीर–एकै साधै सब सधै
सब साधै सब जाय।
माली सींचे मूल
कूँ फलै फूलै अघाय।।
शास्त्रानुकूल साधना
अर्थात सीधा बीजा हुआ भक्ति रूपी पौधा

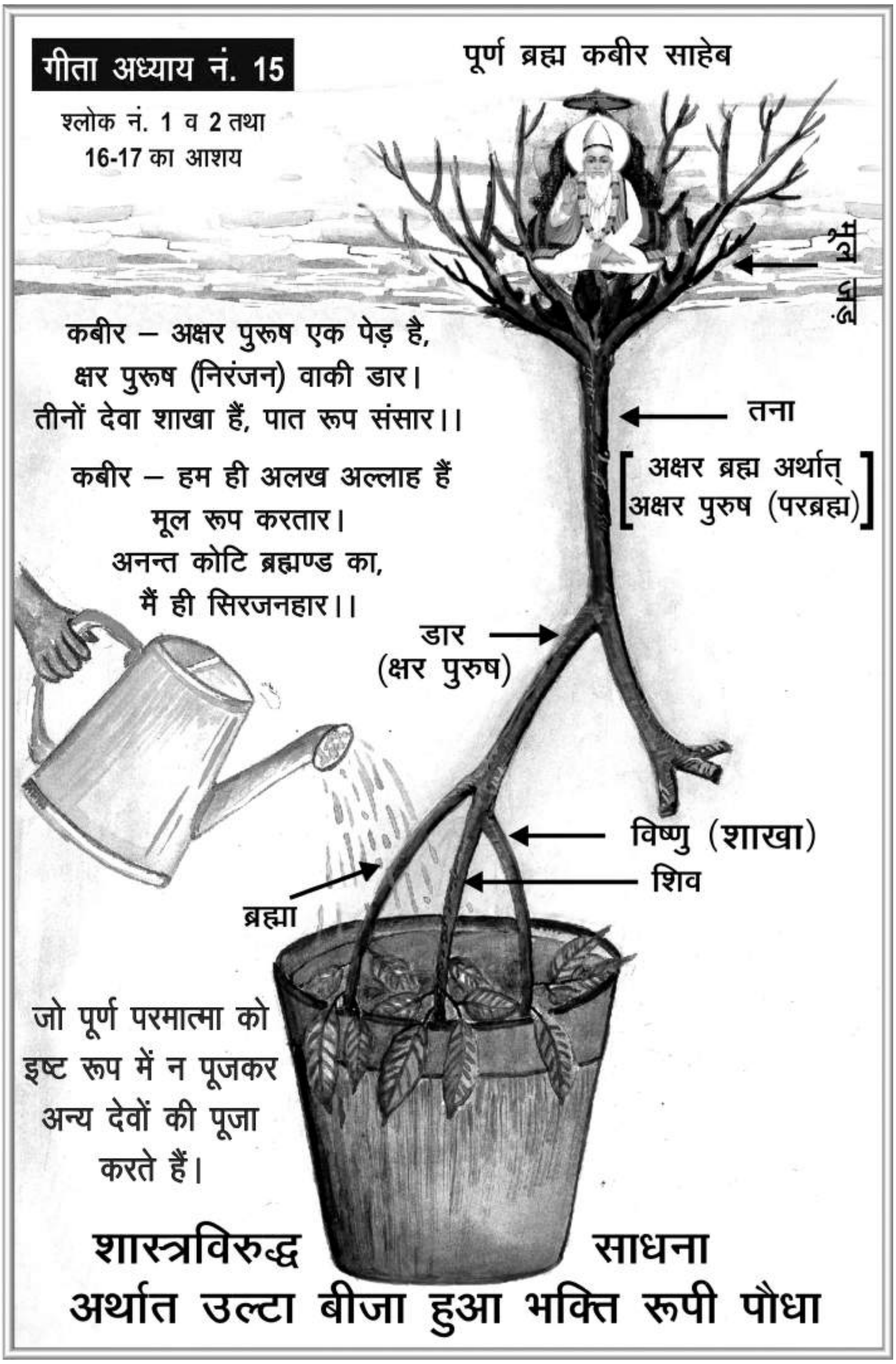
गीता अध्याय नं. 15
श्लोक नं. 1 व 2 तथा
16-17 का आशय
पूर्ण ब्रह्म कबीर साहेब
मूल जड़
कबीर – अक्षर पुरूष एक पेड़ है,
क्षर पुरूष (निरंजन) वाकी डार।
तीनों देवा शाखा हैं, पात रूप संसार।।
कबीर – हम ही अलख अल्लाह हैं
मूल रूप करतार।
अनन्त कोटि ब्रह्मण्ड का,
मैं ही सिरजनहार।।
तना
अक्षर ब्रह्म अर्थात्
अक्षर पुरुष (परब्रह्म)
डार
(क्षर पुरुष)
विष्णु (शाखा)
शिव
ब्रह्मा
जो पूर्ण परमात्मा को
इष्ट रूप में न पूजकर
अन्य देवों की पूजा
करते हैं।
शास्त्रविरुद्ध साधना
अर्थात उल्टा बीजा हुआ भक्ति रूपी पौधा

।।सोलहवें अध्याय के अनुवाद सहित श्लोक।।

परमात्मने नमः

अथ षोडशोऽध्यायः

विशेष :- श्लोक 1 से 3 तक में उन पुण्यात्माओं का विवरण है जो पिछले मानव जन्मों में वेदों अनुसार अर्थात् शास्त्र अनुकूल साधना करते हुए आ रहे हैं, जो अपनी साधना ब्रह्म के ओ३म् मंत्र से ही करते थे, आन उपासना नहीं करते थे। फिर भी तत्वदर्शी संत (जो गीता अध्याय 4 श्लोक 34 में कहा है) के अभाव से यह भी व्यर्थ है।

अध्याय 16 का श्लोक 1

अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम् ।१।

अभयम्, सत्त्वसंशुद्धिः, ज्ञानयोगव्यवस्थितिः,
दानम्, दमः, च, यज्ञः, च, स्वाध्यायः, तपः, आर्जवम्।।1।।

अनुवाद : (अभयम्) निर्भय (सत्वसंशुद्धि) अन्तःकरणकी पूर्ण निर्मलता (ज्ञानयोगव्यवस्थितिः) ज्ञानी (च) और (दानम्) दान (दमः) संयम (यज्ञः) यज्ञ करनेसे (स्वाध्यायः) धार्मिक शास्त्रों पठन पाठन (तपः) भक्ति मार्ग में कष्ट सहना रूपी तप (च) और (आर्जवम्) आधीनता। (1)

अध्याय 16 का श्लोक 2

अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम्।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम्।२।

अहिंसा, सत्यम्, अक्रोधः, त्यागः, शान्तिः, अपैशुनम्,
दया, भूतेषु, अलोलुप्त्वम्, मार्दवम्, ह्रीः, अचापलम्।।2।।

अनुवाद : (अहिंसा) मन, वाणी और शरीरसे किसी प्रकार भी किसीको कष्ट न देना (सत्यम्) सत्यवादी (अक्रोधः) अपना अपकार करनेवालेपर भी क्रोधका न होना (त्यागः) परमात्मा के लिए सिर भी सौंप दे (शान्तिः) अन्तःकरणकी उपरति अर्थात् चितकी चंचलताका अभाव (अपैशुनम्) निन्दादि न करना (भूतेषु) प्राणियोंमें (दया) दया (अलोलुप्त्वम्) निर्विकार (मार्दवम्) कोमलता (ह्रीः) बुरे कर्मो में लज्जा (अचापलम्) चापलूसी रहित। (2)

अध्याय 16 का श्लोक 3

तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता।
भवन्ति सम्पदं दैवीमभिजातस्य भारत। ३ ।

तेजः, क्षमा, धतिः, शौचम्, अद्रोहः, नातिमानिता,
भवन्ति, सम्पदम्, दैवीम्, अभिजातस्य, भारत।।3।।

अनुवाद : (तेजः) तेज (क्षमा) क्षमा (धतिः) धैर्य (शौचम्) शुद्धि (अद्रोहः) निर्वैरी और (नातिमानिता) अपनेआप को नहीं पूजवावै (भारत) हे अर्जुन! (दैवीम्,सम्पदम्) भक्ति भावको (अभिजातस्य) लेकर उत्पन्न हुए पुरुषके लक्षण (भवन्ति) होते हैं। (3)

विशेष :- श्लोक 4 से 20 तक उन व्यक्तियों के लक्षणों का वर्णन है जो पहले कभी मानव शरीर

में थे तब भी शास्त्र विधि अनुसार साधना नहीं की। फिर अन्य योनियों व नरक आदि में तथा क्षणिक सुख स्वर्ग आदि का भोग कर फिर मानव शरीर में आते हैं तो भी स्वभाववश वैसी ही साधना व विकारों में आरुढ़ रहते हैं।

अध्याय 16 का श्लोक 4

दम्भो दर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च।
अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ सम्पदमासुरीम्। ४ ।

दम्भः, दर्पः, अभिमानः, च, क्रोधः, पारुष्यम्, एव, च,
अज्ञानम्, च, अभिजातस्य, पार्थ, सम्पदम्, आसुरीम्,।।4।।

अनुवाद : (पार्थ) हे पार्थ! (दम्भः) पाखण्ड (दर्पः) घमण्ड (च) और (अभिमानः) अभिमान (च) तथा (क्रोधः) क्रोध (पारुष्यम्) कठोरता (च) और (अज्ञानम्) अज्ञान (एव) वास्तव में ये सब (आसुरीम्) राक्षसी (सम्पदम्) सम्पदाके (अभिजातस्य) सहित उत्पन्न हुए पुरुषके लक्षण हैं। (4)

अध्याय 16 का श्लोक 5

दैवी सम्पद्विमोक्षाय निबन्धायासुरी मता।
मा शुचः सम्पदं दैवीमभिजातोऽसि पाण्डव। ५ ।

दैवी, सम्पत्, विमोक्षाय, निबन्धाय, आसुरी, मता,
मा, शुचः, सम्पदम्, दैवीम्, अभिजातः, असि, पाण्डव।।5।।

अनुवाद : (दैवी,सम्पत्) संत लक्षण (विमोक्षाय) मुक्ति के लिये और (आसुरी) आसुरी सम्पदा (निबन्धाय) बाँधनेके लिये (मता) मानी गयी है। इसलिये (पाण्डव) हे अर्जुन! तू (मा, शुचः) शोक मत कर क्योंकि तू (दैवीम्, सम्पदम्) भक्तिभावको (अभिजातः) लेकर उत्पन्न हुआ (असि) है। (5)

अध्याय 16 का श्लोक 6

द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन्दैव आसुर एव च।
दैवो विस्तरशः प्रोक्त आसुरं पार्थ मे शृणु। ६ ।

द्वौ, भूतसर्गौ, लोके, अस्मिन्, दैवः, आसुरः, एव, च,
दैवः, विस्तरशः, प्रोक्तः, आसुरम्, पार्थ, मे, श्रणु।।6।।

अनुवाद : (पार्थ) हे अर्जुन! (अस्मिन्) इस (लोके) लोकमें (भूतसर्गौ) प्राणियोंकी सष्टि (द्वौ एव) दो ही प्रकारकी है एक तो (दैवः) संत-स्वभाव वाला (च) और दूसरा (आसुरः) राक्षसी-स्वभाव वाला उनमेंसे (दैवः) संत स्वभाव वालों का (विस्तरशः) विस्तारपूर्वक (प्रोक्तः) विवरण पहले कहा गया अब तू (आसुरम्) राक्षसी-स्वभाव वाले (मे) मुझसे (श्रणु) सुन। (6)

अध्याय 16 का श्लोक 7

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च जना न विदुरासुराः।
न शौचं नापि चाचारो न सत्यं तेषु विद्यते। ७ ।

प्रवत्तिम्, च, निवत्तिम्, च, जनाः, न, विदुः, आसुराः,
न, शौचम्, न, अपि, च, आचारः, न, सत्यम्, तेषु, विद्यते।।7।।

अनुवाद : (आसुराः) आसुर-स्वभाववाले (जनाः) मनुष्य अर्थात् चाहे वे संत कहलाते हैं, चाहे उनके शिष्य या स्वयं शास्त्र विधि रहित साधना करने वाले व्यक्ति (प्रवत्तिम्) प्रवति (च) और

(निवत्तिम्) निवति इन दोनोंको (च) भी (न) नहीं (विदुः) जानते इसलिये (तेषु) उनमें (न) न तो (शौचम्) अंतर भीतरकी शुद्धि है (न) न (आचारः) श्रेष्ठ आचरण है (च) और (सत्यम्) सच्चाई (अपि) भी (न) नहीं (विद्यते) जानी जाती है। (7)

विशेष :- गीता अध्याय 15 श्लोक 15 तथा अध्याय 9 श्लोक 17 में वेद्यः या वेद्यम् का अर्थ जानना किया है।

अध्याय 16 का श्लोक 8

असत्यमप्रतिष्ठं ते जगदाहुरनीश्वरम्।
अपरस्परसम्भूतं किमन्यत्कामहैतुकम्। ८।

असत्यम्, अप्रतिष्ठम्, ते, जगत्, आहुः, अनीश्वरम्,
अपरस्परसम्भूतम्, किम्, अन्यत्, कामहैतुकम्।।8।।

अनुवाद : (ते) वे आसुरी स्वभाव वाले मनुष्य (आहुः) कहा करते हैं कि (जगत्) जगत् (अप्रतिष्ठम्) अवस्थारहित (असत्यम्) सर्वथा असत्य और (अनीश्वरम्) बिना ईश्वरके (अपरस्परसम्भूतम्) अपने-आप केवल नर-मादाके संयोगसे उत्पन्न है (कामहैतुकम्) केवल काम अर्थात् सैक्स ही इसका कारण है (अन्यत्) इसके सिवा और (किम्) क्या है। ऐसी धारणा वाले प्राणी राक्षस स्वभाव के होते हैं। (8)

अध्याय 16 का श्लोक 9

एतां दृष्टिमवष्टभ्य नष्टात्मानोऽल्पबुद्धयः।
प्रभवन्त्युग्रकर्माणः क्षयाय जगतोऽहिताः। ९।

एताम्, दष्टिम्, अवष्टभ्य, नष्टात्मानः, अल्पबुद्धयः,
प्रभवन्ति, उग्रकर्माणः, क्षयाय, जगतः, अहिताः।।9।।

अनुवाद : (एताम्) इस (दष्टिम्) अपने दष्टि कोण से मिथ्या ज्ञानको (अवष्टभ्य) अवलम्बन करके (नष्टात्मानः) नाशात्मा (अल्पबुद्धयः) जिनकी बुद्धि मन्द है वे (अहिताः) सबका अपकार करनेवाले (उग्रकर्माणः) भयंकर कर्म करने वाले क्रूरकर्मी (जगतः) जगत्के (क्षयाय) नाशके लिये ही (प्रभवन्ति) उत्पन्न होते हैं। (9)

अध्याय 16 का श्लोक 10

काममाश्रित्य दुष्पूरं दम्भमानमदान्विताः।
मोहाद्गृहीत्वासद्ग्राहान्प्रवर्तन्तेऽशुचिव्रताः। १०।

कामम्, आश्रित्य, दुष्पूरम्, दम्भमानमदान्विताः,
मोहात्, गहीत्वा, असद्ग्राहान्, प्रवर्तन्ते, अशुचिव्रताः।।10।।

अनुवाद : (दम्भमानमदान्विताः) दम्भ, मान और मदसे युक्त मनुष्य (दुष्पूरम्) किसी प्रकार भी पूर्ण न होनेवाली (कामम्) कामनाओंका (आश्रित्य) आश्रय लेकर (मोहात्) अज्ञानसे (असद्ग्राहान्) मिथ्या शास्त्र विरुद्ध सिद्धान्तोंको (गहीत्वा) ग्रहण करके और (अशुचिव्रताः)भ्रष्ट आचरणोंको धारण करके संसारमें (प्रवर्तन्ते) विचरते हैं। (10)

अध्याय 16 का श्लोक 11

चिन्तामपरिमेयां च प्रलयान्तामुपाश्रिताः।
कामोपभोगपरमा एतावदिति निश्चिताः। ११।

चिन्ताम्, अपरिमेयाम्, च, प्रलयान्ताम्, उपाश्रिताः,
कामोपभोगपरमाः, एतावत्, इति, निश्चिताः।।11।।

अनुवाद : (प्रलयान्ताम्) मत्युपर्यन्त रहनेवाली (अपरिमेयाम्) असंख्य (चिन्ताम्) चिन्ताओंका (उपाश्रिताः) आश्रय लेनेवाले (कामोपभोगपरमाः) विषयभोगोंके भोगनेमें तत्पर रहनेवाले (च) और (एतावत्) इतना ही सुख है (इति) इस प्रकार (निश्चिताः) माननेवाले होते हैं। (11)

अध्याय 16 का श्लोक 12

आशापाशशतैर्बद्धाः कामक्रोधपरायणाः।
ईहन्ते कामभोगार्थमन्यायेनार्थसञ्चयान्।१२।

आशापाशशतैः, बद्धाः, कामक्रोधपरायणाः,
ईहन्ते, कामभोगार्थम्, अन्यायेन, अर्थस चयान्।।12।।

अनुवाद : (आशापाशशतैः) आशाकी सैकड़ों फाँसियोंसे (बद्धाः) बँधे हुए मनुष्य (कामक्रोधपरायणाः) काम-क्रोधके परायण होकर (कामभोगार्थम्) विषय-भोगोंके लिये (अन्यायेन) अन्यायपूर्वक (अर्थस चयान्) धनादि पदार्थोंको संग्रह करनेकी (ईहन्ते) चेष्टा करते रहते हैं। (12)

अध्याय 16 का श्लोक 13

इदमद्य मया लब्धमिमं प्राप्स्ये मनोरथम्।
इदमस्तीदमपि मे भविष्यति पुनर्धनम्।१३।

इदम्, अद्य, मया, लब्धम्, इमम्, प्राप्स्ये, मनोरथम्,
इदम्, अस्ति, इदम्, अपि, मे, भविष्यति, पुनः, धनम्।।13।।

अनुवाद : (मया) मैंने (अद्य) आज (इदम्) यह (लब्धम्) प्राप्त कर लिया और अब (इमम्) इस (मनोरथम्) मनोरथको (प्राप्स्ये) प्राप्त कर लूँगा। (मे) मेरे पास (इदम्) यह इतना (धनम्) धन (अस्ति) है और (पुनः) फिर (अपि) भी (इदम्) यह (भविष्यति) हो जाऐगा। (13)

अध्याय 16 का श्लोक 14

असौ मया हतः शत्रुर्हनिष्ये चापरानपि।
ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवान्सुखी।१४।

असौ, मया, हतः, शत्रुः, हनिष्ये, च, अपरान्, अपि,
ईश्वरः, अहम्, अहम्, भोगी, सिद्धः, अहम्, बलवान्, सुखी।।14।।

अनुवाद : (असौ) वह (शत्रुः) शत्रु (मया) मेरे द्वारा (हतः) मारा गया (च) और उन (अपरान्) दूसरे शत्रुओंको (अपि) भी (अहम्) मैं (हनिष्ये) मार डालूँगा। (अहम्) मैं (ईश्वरः) ईश्वर हूँ (भोगी) ऐश्वर्यको भोगनेवाला हूँ। (अहम्) मैं (सिद्धः) सब सिद्धियोंसे युक्त हूँ और (बलवान्) बलवान् तथा (सुखी) सुखी हूँ। (14)

अध्याय 16 का श्लोक 15.16

आढ्योऽभिजनवानस्मि कोऽन्योऽस्ति सदृशो मया।
यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्य इत्यज्ञानविमोहिताः।१५।

अनेकचित्तविभ्रान्ता मोहजालसमावृताः।
प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ।१६।

आढ्यः, अभिजनवान्, अस्मि, कः, अन्यः, अस्ति, सदृशः, मया,
यक्ष्ये, दास्यामि, मोदिष्ये, इति, अज्ञानविमोहिताः।।15।।
अनेकचितविभ्रान्ताः, मोहजालसमावृताः,
प्रसक्ताः, कामभोगेषु, पतन्ति, नरके, अशुचौ।।16।।

अनुवाद : (आढ्यः) बड़ा धनी और (अभिजनवान्) बड़े कुटुम्बवाला या अधिक शिष्यों वाला (अस्मि) हूँ। (मया) मेरे (सदृशः) समान (अन्यः) दूसरा (कः) कौन (अस्ति) है मैं (यक्ष्ये) यज्ञ करूँगा (दास्यामि) दान दूँगा और (मोदिष्ये) आमोद-प्रमोद करूँगा। (इति) इस प्रकार (अज्ञानविमोहिताः) अज्ञानसे मोहित रहनेवाले तथा (अनेकचितविभ्रान्ताः) अनेक प्रकारसे भ्रमित चितवाले (मोहजालसमावृताः) मोहरूप जालसे समावृत और (कामभोगेषु) विषयभोगोंमें (प्रसक्ताः) अत्यन्त आसक्त आसुरलोग (अशुचौ) महान् अपवित्र (नरके) नरकमें (पतन्ति) गिरते हैं। (15-16)

अध्याय 16 का श्लोक 17

आत्मसम्भाविताः स्तब्धा धनमानमदान्विताः।
यजन्ते नामयज्ञैस्ते दम्भेनाविधिपूर्वकम्।१७।

आत्सम्भाविताः, स्तब्धाः, धनमानमदान्विताः,
यजन्ते, नामयज्ञैः, ते, दम्भेन, अविधिपूर्वकम्।।17।।

अनुवाद : (ते) वे (आत्मसम्भाविताः) अपनेआपको ही श्रेष्ठ माननेवाले (स्तब्धाः) गंदे स्वभाव पर अडिग (धनमानमदान्विताः) धन और मानके मदसे युक्त होकर (नामयज्ञैः) नाममात्रके यज्ञोंद्वारा अर्थात् मनमानी भक्ति द्वारा (दम्भेन) पाखण्डसे (अविधिपूर्वकम्) शास्त्र विधि रहित (यजन्ते) पूजन करते हैं। (17)

अध्याय 16 का श्लोक 18

अहङ्कारं बलं दर्पं कामं क्रोधं च संश्रिताः।
मामात्मपरदेहेषु प्रद्विषन्तोऽभ्यसूयकाः।१८।

अहंकारम्, बलम्, दर्पम्, कामम्, क्रोधम्, च, संश्रिताः,
माम्, आत्मपरदेहेषु, प्रद्विषन्तः, अभ्यसूयकाः।।18।।

अनुवाद : (अहंकारम्) अहंकार (बलम्) बल (दर्पम्) घमण्ड (कामम्) कामना और (क्रोधम्) क्रोधादिके (संश्रिताः) परायण (च) और (अभ्यसूयकाः) दूसरोंकी निन्दा करनेवाले (आत्मपरदेहेषु) प्रत्येक शरीर में परमात्मा आत्मा सहित तथा (माम्) मुझसे (प्रद्विषन्तः) द्वेष करनेवाले होते हैं।(18)

अध्याय 16 का श्लोक 19

तानहं द्विषतः क्रूरान्संसारेषु नराधमान्।
क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु।१९।

तान् अहम्, द्विषतः, क्रूरान्, संसारेषु, नराधमान्,
क्षिपामि, अजस्त्रम्, अशुभान्, आसुरीषु, एव, योनिषु।।19।।

अनुवाद : (अहम्) मैं (तान्) उन (द्विषतः) द्वेष करनेवाले (अशुभान्) पापाचारी और (क्रूरान्) क्रूरकर्मी (नराधमान्) नराधमोंको (एव) वास्तव में (संसारेषु) संसारमें (अजस्त्रम्) बार-बार (आसुरीषु) आसुरी (योनिषु) योनियोंमें (क्षिपामि) डालता हूँ। (19)

अध्याय 16 का श्लोक 20

आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि।
मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम्।२०।

आसुरीम्, योनिम्, आपन्नाः, मूढाः, जन्मनि, जन्मनि,
माम् अप्राप्य, एव, कौन्तेय, ततः, यान्ति, अधमाम्, गतिम्।।20।।

अनुवाद : (कौन्तेय) हे अर्जुन! (मूढाः) वे मुर्ख (माम्) मुझको (अप्राप्य) न प्राप्त होकर (एव) ही (जन्मनि) जन्म (जन्मनि) जन्ममें (आसुरीम्) आसुरी (योनिम्) योनिको (आपन्नाः) प्राप्त होते हैं फिर (ततः) उससे भी (अधमाम्) अति नीच (गतिम्) गतिको (यान्ति) प्राप्त होते हैं अर्थात् घोर नरकोंमें पड़ते हैं। (20)

विशेष :- उपरोक्त मंत्र 6 से 20 तक का विवरण गीता अध्याय 7 श्लोक 12 से 15 तथा 20 से 23 तक तथा अध्याय 9 श्लोक 21 से 25 में भी है।

अध्याय 16 का श्लोक 21

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत्। २१।

त्रिविधम्, नरकस्य, इदम्, द्वारम्, नाशनम्, आत्मनः,
कामः क्रोधः, तथा, लोभः, तस्मात्, एतत्, त्रयम्, त्यजेत्।।21।।

अनुवाद : (कामः) काम (क्रोधः) क्रोध (तथा) तथा (लोभः) लोभ (इदम्) ये (त्रिविधम्) तीन प्रकारके (नरकस्य) नरकके (द्वारम्) द्वार (आत्मनः) आत्माका (नाशनम्) नाश करनेवाले अर्थात् आत्मघाती हैं। (तस्मात्) अतएव (एतत्) इन (त्रयम्) तीनोंको (त्यजते) त्याग देना चाहिये। (21)

अध्याय 16 का श्लोक 22

एतैर्विमुक्तः कौन्तेय तमोद्वारैस्त्रिभिर्नरः।
आचरत्यात्मनः श्रेयस्ततो याति परां गतिम्। २२।

एतैः, विमुक्तः, कौन्तेय, तमोद्वारैः, त्रिभिः, नरः,
आचरति, आत्मनः, श्रेयः, ततः, याति, पराम्, गतिम्।।22।।

अनुवाद : (कौन्तेय) हे अर्जुन! (एतैः) इन (त्रिभिः) तीनों (तमोद्वारैः) नरकके द्वारोंसे (विमुक्तः) मुक्त (नरः) पुरुष (आत्मनः) आत्मा के (श्रेयः) कल्याणका (आचरति) आचरण करता है (ततः) इससे वह (पराम्) परम (गतिम्) गतिको (याति) जाता है अर्थात् पूर्ण परमात्मा को प्राप्त हो जाता है। (22)

अध्याय 16 का श्लोक 23

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्। २३।

यः, शास्त्रविधिम्, उत्सृज्य, वर्तते, कामकारतः,
न, सः, सिद्धिम्, अवाप्नोति, न, सुखम्, न, पराम्, गतिम्।।23।।

अनुवाद : (यः) जो पुरुष (शास्त्रविधिम्) शास्त्रविधिको (उत्सृज्य) त्यागकर (कामकारतः) अपनी इच्छासे मनमाना (वर्तते) आचरण करता है (सः) वह (न) न (सिद्धिम्) सिद्धिको

(अवाप्नोति) प्राप्त होता है (न) न (पराम्) परम (गतिम्) गतिको और (न) न (सुखम्) सुखको ही।(23)

अध्याय 16 का श्लोक 24

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि। २४।

तस्मात्, शास्त्रम्, प्रमाणम्, ते, कार्याकार्यव्यवस्थितौ,
ज्ञात्वा, शास्त्रविधानोक्तम्, कर्म, कर्तुम्, इह, अर्हसि।।24।।

अनुवाद : (तस्मात्) इससे (ते) तेरे लिये (कार्याकार्यव्यवस्थितौ) कर्तव्य और अकर्तव्यकी व्यवस्थामें (शास्त्रम्) शास्त्र ही (प्रमाणम्) प्रमाण है (इह) इसे (ज्ञात्वा) जानकर (शास्त्रविधानोक्तम्) शास्त्रविधिसे नियत (कर्म) कर्म ही (कर्तुम्) करने (अर्हसि) योग्य है। (24)

(इति अध्याय सोलहवाँ)

❑❑❑

सतरहवां अध्याय

।।दिव्य सारांश।।

{विशेष :- गीता अध्याय 17 में प्रवेश से पहले यह व्याख्या ध्यानपूर्वक पढ़ें व समझें। गीता अध्याय 16 के श्लोक 1 से 5 में अच्छे स्वभाव वाले दैवी प्रकति वाले व्यक्तियों का वर्णन है, परंतु वे भी शास्त्रविरूद्ध साधना करते हैं। श्लोक 6-9, 14-20 में कहा है कि जो कहते हैं कि संसार का कोई ईश्वर या परमेश्वर कर्ता नहीं है। यह तो नर-मादा के संयोग से उत्पन्न होता है। काम (Sex) इसका कारण है। वे शास्त्रविधि त्यागकर मनमाना आचरण करके अपना जीवन नष्ट करते हैं तथा मानव शरीर में बने कमल चक्रों में विराजमान मुख्य देवताओं, मुझे तथा परमेश्वर को क्रश करने वाले हैं। उन कुकर्मियों को बार-बार असुर योनि में डालता हूँ। फिर इस अध्याय 16 के श्लोक 23-24 में गीता ज्ञान दाता ने कहा है कि :-

अध्याय 16 श्लोक 23 का अनुवाद :- जो साधक शास्त्रविधि को त्यागकर अपनी इच्छा से मनमाना आचरण करता है यानि शास्त्र वर्णित साधना मंत्रों के अतिरिक्त अन्य नाम जाप करता है। अन्य साधना शास्त्रविरूद्ध करता है, वह न सिद्धि को प्राप्त होता है यानि सत्य साधना से होने वाली भक्ति की शक्ति जिसके बल से साधक सनातन परम धाम जाता है, वह सिद्धि उसे प्राप्त नहीं होती, न उसे कोई सुख प्राप्त होता है, न उसकी गति यानि मुक्ति होती है अर्थात् शास्त्र के विपरित भक्ति करना व्यर्थ है क्योंकि इन तीनों लाभों को प्राप्त करने के लिए साधक परमात्मा की भक्ति करता है।

गीता अध्याय 16 श्लोक 24 का अनुवाद :- इससे तेरे लिए कर्तव्य यानि जो साधना कर्म करने योग्य हैं और अकर्तव्य अर्थात् जो न करने वाला भक्ति कर्म है, उसके निर्णय के लिए शास्त्र ही प्रमाण मानना है। इस अध्याय 17 में उन्हीं के विषय में अर्जुन ने प्रश्न किया है कि ये जो शास्त्रविधि त्यागकर साधना करते हैं। उनकी साधना है तो व्यर्थ, परंतु उनकी श्रद्धा कितने प्रकार की व कैसी होती है?}

गीता अध्याय 17 के श्लोक 1 में अर्जुन ने प्रश्न किया कि शास्त्रविधि को त्यागकर यानि शास्त्र के विपरित मनमाना आचरण करके श्रद्धा से युक्त हुए साधना (पूजन) करने वाले व्यक्ति किस निष्ठा (वत्ति) के होते है? सात्विक या राजसी वा तामसी अर्थात् तीनों गुणों (रजगुण ब्रह्मा जी, सतगुण विष्णु जी, तमगुण शिवजी) तथा इनसे भी नीचे के देवी-देवताओं के साधकों के स्वभाव तथा चरित्र कैसे होते हैं?

।। सर्व प्राणी शास्त्र विधि रहित भक्ति भी स्वभाव अनुसार ही करते हैं।।

गीता ज्ञान दाता का उत्तर :-

(गीता अध्याय 17 श्लोक 2 से 10 तक का सारांश)

गीता ज्ञान दाता ने उत्तर दिया है कि शास्त्रविधि को त्यागकर साधना करने वाले वाले स्वभाव वश साधना करते हैं। जिसका अंतःकरण जैसा है, उसे वैसी पूजाओं में श्रद्धा होती है।

❖ *सात्विक वत्ति के व्यक्ति अन्य देवी-देवताओं तथा श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी, श्री शिव जी को पूजते हैं तथा विशेष कर इष्ट रूप में विष्णु जी की पूजा करते हैं जो शास्त्रविरूद्ध है।*

❖ राजस वृत्ति के व्यक्ति यक्षों व राक्षसों की व तीनों उपरोक्त प्रभुओं को भी पूजते हैं, परन्तु इष्ट रूप में ब्रह्मा जी की उपासना रजोगुण प्रधान व्यक्ति करते हैं जो शास्त्रविरूद्ध है।

❖ तामस वृत्ति के भूतों, पित्रों तथा तीनों ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी, श्री शिव जी की भी पूजा करते हैं तथा तमोगुण प्रधान व्यक्तियों का उपास्य देव शिव होता है। जैसे रावण ने भगवान शिव की साधना इष्ट मान कर की जिस से नरक का भागी हुआ और उससे निम्न स्तर की साधना भूतों-पितरों की पूजा करके सीधे नरक चले जाते हैं। जो शास्त्र विधि के विरूद्ध साधना करते हैं वे दुष्ट आत्मा मुझे तथा उस परमात्मा को भी कष्ट देते हैं तथा वे राक्षस वृत्ति के जान। उनको भोजन भी वृत्ति (स्वभाव) वश ही पसंद होता है। सात्विक मनुष्यों को साधारण भोजन दाल, दूध, दही-घी, मक्खन, शहद, मीठे फल आदि पसंद तथा राजसी मनुष्य कड़वे (शराब, पान, हुक्का) खट्टे, ज्यादा नमक वाले, ज्यादा गर्म-रूखे, मुख जलाने वाले (मिर्च) आदि जो रोगों का कारण होते हैं पसंद होता है।

तामसी व्यक्ति गला-सड़ा, रस रहित अपवित्र (मांस-शराब-तम्बाखु आदि) बासी, झूठा आहार पसंद करते हैं।

।। शास्त्र विधि को त्याग कर साधना करने वाले भगवानों के लिए दुःखदाई तथा नरक के अधिकारी।।

अध्याय 17 के श्लोक 6 का अनुवाद :-- शरीर में स्थित मुझे तथा प्राणियों के मुखिया (ब्रह्मा, विष्णु, शिव, प्रकृति-आदि माया व गणेश) तथा शरीर में हृदय में स्थित कपड़े में धागे की तरह व्यवस्थित करके रहने वाले पूर्ण परमात्मा को परेशान (कृश) करने वाले अज्ञानियों को राक्षसी स्वभाव वाले ही जान जो मतानुसार (शास्त्र विधि अनुसार) साधना नहीं करते और मनमुखी साधना तथा आचरण करते हैं।

विशेष : मानव शरीर (स्थूल शरीर) में कुल कमल चक्र नौ हैं, परंतु सात कमल हैं जो सामान्य ऋषि की पहुँच में हैं। यहाँ पर सात कमल चक्रों का वर्णन किया जाता है।

प्रत्येक चक्र में भिन्न-भिन्न देवताओं का प्रभाव है। जैसे टैलिविजन चैनल (T.V. Channel) से प्रसारण तो एक स्थान यानि प्रसारण केन्द्र से होता है, वही करोड़ों टैलिविजनों में देखा जाता है। इसी प्रकार प्रत्येक देवता अन्य स्थानों पर रहते हुए भी मानव शरीर में बने कमल चक्रों में दिखाई देते हैं।

❖ रीढ़ की हड्डी गुदा के पास समाप्त होती है। उससे दो ऊँगल ऊपर -

1. मूल कमल - इसमें गणेश जी रहते हैं। इस कमल की चार पंखुड़ियाँ हैं। फिर मूल कमल से लगभग दो ऊँगल ऊपर रीड की हड्डी के साथ अन्दर की तरफ

2. स्वाद कमल (चक्र) है जिसमें ब्रह्मा सावित्री रहते हैं। इस कमल की छः पंखुड़ियाँ हैं।

3. स्वाद चक्र से ऊपर नाभि के सामने रीड की हड्डी के साथ नाभि कमल है उसमें भगवान विष्णु व लक्ष्मी रहते हैं। इनकी आठ पंखुड़ियाँ हैं।

4. इससे ऊपर हृदय के पीछे एक हृदय कमल है उसमें भगवान शिव व पार्वती रहते हैं। इस हृदय कमल की 12 पंखुड़ियाँ हैं।

5. इनसे ऊपर कण्ठ कमल है जो कण्ठ के पास पीछे रीढ की हड्डी से ही चिपका हुआ है। इसमें प्रकृति देवी (अष्टंगी माई) रहती है। इस कमल की सोलह पंखुड़ियाँ हैं।

शरीर (पिण्ड) में कमलों (चक्रों) का चित्र

6. इससे ऊपर त्रिकुटी कमल है। इसकी दो पंखुड़ियाँ हैं। (एक सफेद दूसरी काली रंग की।) इसमें पूर्ण परमात्मा रहता है। जैसे सूर्य दूर स्थान पर होते हुए भी प्रत्येक मानव के शरीर पर प्रभाव डालता रहता है, परन्तु दिखाई आँखों से ही देता है, यहाँ पर ऐसा भाव जानना है तथा इसके साथ-साथ आत्मा के साथ अन्तःकरण में भी रहता है। जैसे धागा पूरे कपड़े में समाया हुआ होता है तथा अन्य कसीदाकारी भी होती है जो कुछ हिस्से पर ही होती है।

7. इससे ऊपर जहाँ चोटी रखते हैं उस स्थान पर अन्दर की ओर सहंस्रार कमल है जहाँ ज्योति निंरजन (हजार पंखुड़ियों रूप में प्रकाश रूप में) स्वयं काल (ब्रह्म) रहता है। इस कमल की एक हजार पंखुड़ियाँ हैं। इसीलिए इस श्लोक में कहा है कि जो राक्षस स्वभाव के व्यक्ति शास्त्रानुकूल साधना नहीं करते वे शरीर में रहने वाले मुझे तथा प्राणी प्रमुख ब्रह्मा, विष्णु, शिव, गणेश, आद्या (प्रकति) तथा पूर्ण परमात्मा जो आत्मा के साथ अभेद रूप से रहता है (जैसे गंध और वायु रहती हैं) को परेशान करते हैं, उन्हें घोर नरक में डालता हूँ।

❖ *भक्त सम्मन को अपने गुरुदेव जी के लिए अपने ईकलौते पुत्र सेऊ की गर्दन काटनी पड़ी तो भी पीछे नहीं हटा। यह शास्त्रानुकूल साधक का शरीर सम्बन्धी तप हुआ। जैसे कबीर साहेब सत्य साधना का विवरण दिया करते थे। झूठी साधना (देवी-देवताओं, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, माता मसानी, मूर्ति पूजा) को अधूरी तथा मोक्ष बाधक बताते थे। शराब पीना, मांस खाना, तम्बाखु प्रयोग करना महा पाप है। हिन्दु-मुस्लिम एक ही परमात्मा के जीव हैं। मस्जिद व मन्दिर में भगवान नहीं है। भगवान तो पूर्ण संत से नाम लेकर शास्त्रानुकूल साधना करने से शरीर में ही प्राप्त होता है। जैसे गाय, भैंस, भेड़, बकरी, या कोई भी स्तन धारी मादा प्राणी है। उसके शरीर में से ही दूध प्राप्त होता है। बिना बच्चे वाली मादा के शरीर में दूध नहीं होता परंतु जब वह मादा नए दूध होती है अर्थात् गर्भधारण करती है। फिर बच्चे को जन्म देती है। तब दूध प्राप्त होता है। इसी प्रकार जब यह मनुष्य शरीर धारी प्राणी पूर्ण गुरु (तत्वदर्शी संत) से नाम ले लेता है। फिर सुमरण करता है तथा आजीवन गुरु मर्यादा में रहता है तो उसमें भक्ति रूपी बच्चा तैयार होता है। फिर परमात्मा से मिलने वाला लाभ (दूध) प्राप्त होता है। अन्य कहीं पर परमात्मा प्राप्ति नहीं है। वैसे तो परमात्मा की शक्ति निराकार रूप में सर्व व्यापक है। जैसे सूर्य का प्रकाश व ताप दिन के समय सर्व स्थानों पर प्रभाव डालता है, परंतु ऊर्जा संग्रह तो सौलर यन्त्र ही करता है यानि मानव शरीर में भक्ति से परमात्मा की शक्ति संग्रह होती है जो लाभ देती है। कार्य सिद्ध करती है, मोक्ष देती है। ऐसे ही प्रभु आकार में सत्यलोक में रहते हुए भी घर, खेत, मन्दिर, मस्जिद आदि में भी है। परंतु वह जीव को कोई लाभ नहीं दे रहा है। लाभ गुरू से नाम प्राप्त व्यक्ति को ही मिलता है।*

अन्य उदाहरण :- जैसे सूर्य का प्रकाश व ताप अपने विधान के अनुसार ही लाभ प्रदान करता है। सर्दियों में पूर्ण ताप प्रदान नहीं कर पाता जिस की पूर्ति के लिए आग जलानी पड़ती है या हीटर-वातानुकूल करने वाले (Air conditioner) यन्त्र का प्रयोग अवश्य करना पड़ता है या मोटे व ऊनी वस्त्र धारण करके ताप पूर्ति की जाती है। इसी प्रकार हम सत्यलोक में उस पूर्ण परमात्मा का पूर्ण लाभ प्राप्त कर रहे थे। अब हम उस परमेश्वर से दूर आने से सर्दियों वाले शरद क्षेत्र में आ गए हैं। उसके कुछ गुण प्राप्त करने के लिए वही साधन अपनाने पड़ेंगे जो हमारी रक्षा कर सकें अर्थात् शास्त्र विधि (उपरोक्त गर्मी पैदा करने वाले वास्तविक साधनों को) त्याग कर अन्य उपाय (शास्त्र विधि रहित) करने का कोई लाभ नहीं है। (प्रमाण पवित्र गीता अध्याय 16 श्लोक 23-24 में)।

जब दुःखी प्राणी संत (परमात्मा प्रकट किए हुए साधक) के पास जाता है। उसके आशीर्वाद

से सुखी हो जाता है। वहाँ परमात्मा उस संत में मिला अर्थात् उस पूर्ण संत ने ताप प्रदान करने वाले साधन (शास्त्र विधि अनुसार साधना) प्रदान किए जिससे उसको ईश्वरीय गुणों का लाभ प्राप्त हुआ। क्योंकि परमात्मा के यही गुण होते हैं। किसी धर्म के अन्दर मांस, मदिरा, तम्बाखु सेवन का आदेश नहीं है अर्थात् सख्त मनाही है। जो बकरी काट कर भगवान पूजन करते हैं वे भक्ति नहीं कर रहे बल्कि नरक के अधिकारी बन रहे हैं। इन सच्ची बातों का बुरा मान कर धर्म के झूठे ठेकेदारों कथित मुल्ला, काजी व कथित पंडितों ने कबीर साहेब को बहुत तंग किया। कभी सरसों के उबलते हुए तेल में डाला। कभी खूनी हाथी के आगे डाला आदि-आदि। यह वाणी सम्बन्धी तप कहा जाता है।

गीता अध्याय 17 के कुछ श्लोकों का हिन्दी अनुवाद

गीता अध्याय 17 श्लोक 1-10 :-

अध्याय 17 श्लोक 1 का अनुवाद : श्लोक 1 में अर्जुन ने जानना चाहा कि हे कृष्ण! जो मनुष्य शास्त्रविधिको त्यागकर श्रद्धासे युक्त हुए देवादिका पूजन करते हैं। उनकी स्थिति फिर कौन-सी सात्विकी है अथवा राजसी तामसी?(1)

❖ *गीता ज्ञान देने वाले काल ब्रह्म ने उत्तर दिया :-*

अध्याय 17 श्लोक 2 का अनुवाद : मनुष्यों की वह स्वभाव से उत्पन्न श्रद्धा सात्विकी और राजसी तथा तामसी ऐसे तीनों प्रकार की ही होती है। उस अज्ञान अंधकाररूप जंजाल को सुन।(2)

अध्याय 17 श्लोक 3 का अनुवाद : हे भारत! सभी की श्रद्धा उनके अन्तःकरण के अनुरूप होती है। यह व्यक्ति श्रद्धामय है इसलिये जो पुरुष जैसी श्रद्धावाला है, वह स्वयं वास्तव में वही है।(3)

अध्याय 17 श्लोक 4 का अनुवाद : सात्विक पुरुष श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी, श्री शिव जी आदि देवताओं को पूजते हैं, राजस पुरुष यक्ष और राक्षसोंको तथा अन्य जो तामस मनुष्य हैं वे प्रेत और भूतगणों को पूजते हैं तथा मुख्य रूप से श्री शिव जी को भी इष्ट मानते हैं।(4)

अध्याय 17 श्लोक 5 का केवल हिन्दी अनुवाद : जो मनुष्य शास्त्रविधिसे रहित केवल मन माना घोर तपको तपते हैं तथा पाखण्ड और अहंकारसे युक्त एवं कामना के आसक्ति और भक्ति बल के अभिमान से भी युक्त हैं।(5)

अध्याय 17 श्लोक 6 का अनुवाद : शरीर में रहने वाले प्राणियों के मुखिया - ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा गणेश व प्रकृति को व मुझे तथा इसी प्रकार शरीर के हृदय कमल में जीव के साथ रहने वाले पूर्ण परमात्मा को परेशान करने वाले उनको अज्ञानियोंको राक्षसस्वभाववाले ही जान। गीता अध्याय 13 श्लोक 17 तथा अध्याय 18 श्लोक 61 में कहा है कि पूर्ण परमात्मा विशेष रूप से सर्व प्राणियों के हृदय में स्थित है।(6)

अध्याय 17 श्लोक 7 का अनुवाद : भोजन भी सबको अपनी अपनी प्रकृतिके अनुसार तीन प्रकारका प्रिय होता है इसलिए वैसे ही यज्ञ तप और दान भी तीन-तीन प्रकारके होते हैं उनके इस भेदको तू मुझसे सुन।(7)

अध्याय 17 श्लोक 8 का अनुवाद : आयु, बुद्धि, बल, आरोग्य, सुख और प्रीतिको बढ़ानेवाले रसयुक्त चिकने और स्थिर रहनेवाले तथा स्वभावसेही मनको प्रिय ऐसे आहार अर्थात् भोजन करनेके पदार्थ सतोगुण प्रधान अर्थात् विष्णु के उपासक को जिनका विष्णु उपास्य देव है। उनको ऊपर लिखे आहार करना पसंद होते हैं।(8)

अध्याय 17 श्लोक 9 का अनुवाद : कडुवे, खट्टे, लवणयुक्त बहुत गरम, तीखे, रूखे, दाहकारक और दुःख चिन्ता तथा रोगोंको उत्पन्न करनेवाले आहार राजस पुरुषको रजोगुण प्रधान अर्थात् जिनका ब्रह्मा उपास्य देव है उनको ऊपर लिखे आहार स्वीकार होते हैं। क्योंकि हिरणाकशिपु राक्षस ने ब्रह्मा की उपासना की थी।(9)

अध्याय 17 श्लोक 10 का अनुवाद : जो भोजन अधपका रसरहित दुर्गन्धयुक्त बासी और उच्छिष्ट है तथा जो अपवित्र भी है वह भोजन तामस पुरुषको प्रिय होता है। तमोगुण प्रधान व्यक्तियों का उपास्य देव शिव है तथा वे उनसे निम्न स्तर के भूत प्रेतों को पूजते हैं उनको आहार ऊपर लिखित पसंद होता है। (10)

❖ *गीता अध्याय 17 श्लोक 11-13 का सारांश :-*

''यज्ञों की जानकारी''

❖ *गीता ज्ञान दाता ने श्लोक 11 में बताया है कि यज्ञ यानि धार्मिक अनुष्ठान शास्त्र विधि अनुसार (पूर्ण गुरू के बताए अनुसार) बिना कार्य सिद्धि के मनुष्य का कर्तव्य मानकर मन को तत्वज्ञान से समझाकर किया जाता है। वह सात्विक है यानि यथार्थ यज्ञ है।(17/11)*

❖ *अध्याय 17 श्लोक 12 में कहा है कि जो यज्ञ दम्भ यानि पाखण्ड आचरण के लिए किया जाता है तथा फल प्राप्ति की इच्छा रखकर किया जाता है, उस यज्ञ को राजस समझ।(17/12)*

❖ *अध्याय 17 श्लोक 13 में तामस यज्ञ के लक्षण बताए हैं। कहा है कि शास्त्रविधि से हीन यानि जो शास्त्र में वर्णित नहीं है तथा जिसमें अन्न दान से रहित यानि जिस धार्मिक कार्यक्रम में भोजन नहीं कराया जाता (लंगर नहीं लगाया जाता) तथा जिसमें गुरू को दक्षिणा नहीं दी जाती और जो बिना श्रद्धा के किया जाता है, वह यज्ञ तामस कहा जाता है।*

गीता अध्याय 17 श्लोक 14-19 का सारांश :-

''तप की परिभाषा''

गीता अध्याय 17 के श्लोक 14 से 19 में तप की व्याख्या बताई है जो करना चाहिए। जैसे इसी अध्याय 17 के श्लोक 5-7 में घोर तप करना शास्त्रविधि रहित होने से व्यर्थ कहा है जो अकर्तव्य है। जो घोर तप करते हैं, वे असुर स्वभाव वाले बताया है। इसी अध्याय 17 श्लोक 14-19 में कर्तव्य तप के लक्षण बताए हैं :-

❖ *अध्याय 17 श्लोक 14 :- देव यानि देवता, द्विज यानि ब्राह्मण अर्थात् विद्वान गुरू तथा प्राज्ञ यानि तत्वदर्शी संत का पूजन यानि सत्कार, पवित्र रहना यानि सफाई रखना, सरलता यानि नम्रता करना, ब्रह्मचर्य रखना यानि जति धर्म का पालन करना {जति दो प्रकार के होते हैं :- 1. जो आजीवन ब्रह्मचर्य का पालन करता है। विवाह नहीं करता। 2. जो विवाह करता है तथा अपनी स्त्री तक ही सीमित रहता है।}, अहिंसा को आधार मानता है यानि जो किसी को तन-मन, वचन से पीड़ा नहीं देता, स्वयं कष्ट उठा लेता है। जो सत्संग में आने वाले भाई-बहनों, वृद्धों, रोगियों, असहायों की सेवा करता है, सत्संग में जो भी सेवा मिलती है, उसे पूरी निष्ठा से करता है। यह शरीर संबंधी तप कहा है।(17/14)*

वाणी संबंधी तप :-

अध्याय 17 श्लोक 15 :- जो साधक किसी के कटु वचन कहने पर भी नहीं भड़कता, सबसे प्यार से बोलता है। सत्य भाषण करता है यानि स्वार्थ या भय के कारण झूठ नहीं बोलता अपितु

यथार्थ न्याय की बात कहता है। उसके लिए कितना भी कष्ट सहना पड़े, प्रवाह नहीं करता है, वह वाणी संबंधी तप कहा जाता है। जैसे परमेश्वर कबीर जी ने सत्य ज्ञान कहा। स्वार्थी तत्कालीन धर्मगुरूओं ने ढ़ेर सारी यातनाऐं दी, परंतु अडिग रहे। यह वाणी रूपी तप है जो करना चाहिए। (स्वाध्याय अभ्यसनम्) प्रतिदिन सुबह, दोपहर व शाम तीनों समय की संध्या यानि आरती करना। धर्म ग्रंथों को पढ़ना, धार्मिक पुस्तकों जो ग्रन्थ-शास्त्रों को सरल करके लिखी गई हैं, उनको पढ़ना वाणी संबंधी तप कहा जाता है।(17/15)

❖ *गीता अध्याय 17 श्लोक 16 :- इसमें बताया है कि मन को शांत व प्रसन्न रखना मन को बुराईयों से हटाकर शुभ कर्मों तथा शास्त्रविधि अनुसार साधना में लगाना, बड़बड़ न बोलकर यानि मौन रहना। यहाँ पर मौन का अर्थ यह नहीं है कि किसी से बोलना ही नहीं है। इस मौन का भावार्थ है कि कोई व्यक्ति भक्त या संत को अभद्र भाषा भी बोलता है तो उत्तर न दे। अपने ज्ञान को बताने के लिए अनावश्यक बड़-बड़ न करे। कोई इच्छ से सुनना चाहे तो अवश्य समझाए। कबीर परमेश्वर जी ने सूक्ष्मवेद यानि तत्वज्ञान में कहा है कि :-*

कबीर, कहते को कहे जान दे, गुरू की सीख तू लेय।
साकट और श्वान (कुत्ते) को उल्ट जवाब न देय।।

भावार्थ :- यदि कोई व्यक्ति भक्त-संत को अनाप-सनाप बातें कहता है तो भक्त को चाहिए कि वह अपने गुरू द्वारा बताए ज्ञान को आधार बनाकर शांत रहे। गुरू जी बताते हैं कि यदि कुत्ता आपकी ओर भौंकता है तो उसे कुछ मत कहो, चले जाओ या शांत खड़े रहो। यदि कुत्ते को भौंकने से रोकने की कोशिश करोगे तो और अधिक भौंकेगा। इसी प्रकार यदि साकट यानि दुष्ट व्यक्ति को उत्तर दोगे तो और अधिक बकवास करेगा। इसलिए अपने मन को समझाकर संयम बरतना मन संबंधी तप कहा है।(17/16)

❖ *अध्याय 17 श्लोक 17 :- करने योग्य तप यानि कर्तव्य भक्ति कर्मों में तप उसे कहते हैं जो स्वधर्म पालन में आने वाली कठिनाइयाँ जो सेवा करने में, दान करने में, समाज के व्यंग्य सहने में जो-जो मानसिक या शारीरिक पीड़ा होती है, वह वास्तविक तप है। उस तप को यानि भक्ति कर्मों को करने वाले साधक पुरूषों (स्त्री-पुरूष) द्वारा श्रद्धा से किया जाता है। यह तप यानि साधना सात्विक कहा जाता है। जो पूर्व के श्लोकों में बताया है, वह ही वास्तविक तप है।(17/17)*

❖ *अध्याय 17 श्लोक 18 :- जो तप यानि साधना सत्कार, मान और पूजा करवाने के लिए पाखण्ड से किया जाता है, वह (अध्रुवम्) निराधार यानि अनिश्चित फल वाला (चलम्) चलायमान यानि क्षणिक यहाँ राजस तप कहा गया है जो शास्त्रविधि विरूद्ध होने के कारण व्यर्थ है।(17/18)*

घोर तप के विषय में श्लोक 19 में कहा है। इसका संबंध इसी अध्याय 17 के श्लोक 5-6 से है।

❖ *अध्याय 17 श्लोक 19 :- मूढ़ग्राहेण आत्मनः पीड़या क्रियते यत् तपः यानि जो मूर्ख आत्मा मूर्खतापूर्वक हठ से अपने शरीर को पीड़ा देकर तप करते हैं। जैसे पाँच धूने लगाकर तप करते हैं। वर्षों खड़ा या बैठकर तप करते हैं या जल में खड़े होकर तप करते हैं। जैसे भस्मासुर ने शीर्षासन करके ऊपर को पैर नीचे को सिर कर किया, वह तप तथा ''परस्य उत्सात् अनार्थम्'' यानि दूसरे का अनष्टि यानि बुरा करने के लिए किया गया तप तामस कहा जाता है। जैसे वर्तमान में एक ट्रेंड चल रहा है। यदि किसी की किसी से कहा-सुनी यानि झगड़ा हो जाता है तो वे एक-दूसरे का अनिष्ट करवाने के लिए जन्त्र-मन्त्र करने वाले तांत्रिकों व सेवड़ों के पास धन लुटाते हैं। उनसे अपने शत्रु का नाश करने की फीस देते हैं। ऐसी साधना करने वाले तांत्रिकों द्वारा किया यह तप जिससे*

अन्य को कष्ट देने के उद्देश्य से किया जाता है, वह तामस तप है, पाप देने वाला है।(17/19)

❖ *गीता अध्याय 17 श्लोक 20-22 का सारांश :-*

सात्विक दान :- गीता अध्याय 17 श्लोक 20 :- जो दान अपना भक्ति कर्तव्य कर्म जानकर बिना स्वार्थ के देश, काल तथा पात्र के प्राप्त होने पर दिया जाता है, वह दान सात्विक यानि यथार्थ दान कहा जाता है। देश, काल व पात्र से तात्पर्य है कि गुरू धारण करके उनके आदेशानुसार किया दान लाभदायक है। देश का अर्थ है स्थान, काल का अर्थ समय। गुरू जी आवश्यकता अनुसार गरीब, दुःखियों, असहायों की सहायता करने को कहें, करो अन्यथा गुरू जी को दान दे दो जो सुपात्र है। वह अपने आप आपके दान को खर्च करे। वह दान सही है।(17/20)

विशेष :- परमेश्वर कबीर जी ने संत गरीबदास जी को सूक्ष्मवेद यानि तत्वज्ञान में कहा है :-

बिन इच्छा जो दान देत है, सोई दान कहावै। फल चाहै नहीं तास का अमरापुर जावै।

भावार्थ :- जो साधक फल की इच्छा न करके दान करता है, वही वास्तविक दान है जो भक्त के मोक्ष में भी सहयोग करता है तथा यहाँ संसारिक सुख भी प्रदान करता है।

❖ *अध्याय 17 श्लोक 21 :- जो दान क्लेशपूर्वक यानि जैसे चंदा माँगने वाले को धन दुःखी मन से मजबूरी में दिया जाता है, वह दान व्यर्थ है और जो दान के बदले में परमात्मा से कुछ लाभ फल प्राप्ति के लिए दिया जाता है, वह दान राजस है यानि उसका मोक्ष में सहयोग नहीं है।(17/21)*

❖ *अध्याय 17 श्लोक 22 :- जो दान कुपात्र को दिया जाता है तथा मन मारकर तिरस्कारपूर्वक बिना श्रद्धा के दिया जाता है, वह तामस दान कहा जाता है जो व्यर्थ है।(17/22)*

❖ *अध्याय 17 के श्लोक 21 से 22 तक का भाव है इसमें भगवान तप व यज्ञ कैसे होते हैं? तथा उनके प्रकार व फल बताएँ? क्योंकि यज्ञ, दान, तप का लाभ भी परम अक्षर ब्रह्म (पूर्णब्रह्म) ही देता है। इसलिए कहा है कि उस परमात्मा (परम अक्षर ब्रह्म) के निमित किया कर्म श्रेष्ठ है तथा पूर्ण मुक्ति दाता है। अन्य परमात्माओं (ब्रह्म व परब्रह्म) के निमित कर्म पूर्ण मुक्ति दायक नहीं है। फिर भी ब्रह्म से अधिक सुखदाई परमात्मा परब्रह्म है परंतु पूर्ण सुखदायक, जन्म-मरण से पूर्ण मुक्त करने वाला भगवान पूर्णब्रह्म ही है। वह साहेब कबीर हैं। इसी को सत साहेब कहते हैं।*

अध्याय 17 के 23 से 28 श्लोकों का हिन्दी अनुवाद

❖ *विशेष :- गीता अध्याय 15 श्लोक 1-4 तथा 16-17 में संसार को एक वृक्ष के समान बताया है। उस वृक्ष की जड़ तो परम अक्षर ब्रह्म यानि पूर्ण ब्रह्म बताया है। जिसे परम अक्षर ब्रह्म, सत्य पुरूष, परम दिव्य पुरूष आदि-आदि नामों से भी जाना जाता है। तना अक्षर पुरूष बताया है तथा डार क्षर पुरूष यानि काल ब्रह्म बताया है। तीनों देवताओं (रजगुण ब्रह्मा, सतगुण विष्णु तथा तमगुण शिव) को शाखा बताया है। तीनों देवताओं और अन्य देवताओं की साधना गीता अध्याय 7 श्लोक 12-15 तथा 20-23 में व्यर्थ बताई है। गीता अध्याय 7 के ही श्लोक 16-18 में गीता ज्ञान दाता ने अपनी साधना से होने वाली गति यानि मोक्ष अनुत्तम बताया है तथा गीता अध्याय 8 श्लोक 13 में अपनी भक्ति साधना का केवल एक अक्षर ॐ (ओम्) मंत्र अंतिम श्वांस तक स्मरण करने को बताया है। गीता अध्याय 8 के ही श्लोक 3 में परम अक्षर ब्रह्म अपने से अन्य समर्थ प्रभु बताया है तथा इसी अध्याय 8 के श्लोक 5 तथा 7 में अपनी पूजा करने को कहा है तथा श्लोक 8-10 में परम अक्षर ब्रह्म की भक्ति की प्रेरणा की है। उसकी प्राप्ति के मंत्रों की जानकारी इस अध्याय 17 के श्लोक 23-28 में बताई है जिससे गीता अध्याय 15 के श्लोक 4 में कहा परम पद प्राप्त होता है जहाँ जाने के पश्चात्*

साधक लौटकर कभी संसार में नहीं आता तथा गीता अध्याय 18 श्लोक 62 में कही परमशांति प्राप्त होती है तथा सनातन परम धाम प्राप्त होता है। गीता ज्ञान दाता ने अपनी भक्ति का मंत्र केवल एक ॐ (ओम्) अक्षर कहा है। ओम् (ॐ) की साधना से ब्रह्मलोक प्राप्त होता है। गीता अध्याय 8 श्लोक 16 में स्पष्ट किया है कि ब्रह्मलोक में गए साधक भी पुनरावर्ती में रहते हैं यानि उनका जन्म-मरण रहता है। ब्रह्मलोक में भक्ति की कमाई यानि पुण्य समाप्त होने के पश्चात् साधक का पुनर्जन्म होता है यानि जन्म-मरण से मुक्ति नहीं मिलती। इस अध्याय 17 श्लोक 23-28 में ॐ मंत्र जो क्षर पुरूष का है तथा तत् मंत्र जो सांकेतिक है, यह अक्षर पुरूष की साधना का है तथा सत् मंत्र भी सांकेतिक है। यह परम अक्षर पुरूष की साधना का है। इन तीनों मंत्रों के जाप से पूर्ण मोक्ष प्राप्त होता है। जैसी गीता अध्याय 18 श्लोक 62 तथा 66 में गीता ज्ञान दाता ने कहा है कि हे अर्जुन! तू सर्व भाव से उस परमेश्वर की शरण में जा। उस परमेश्वर की ही कपा से तू परम शांति को तथा (शाश्वतम् स्थानम्) सनातन परम धाम यानि अमर लोक को प्राप्त होगा। यह गीता अध्याय 18 श्लोक 62 में कहा है। फिर गीता अध्याय 18 श्लोक 66 में गीता ज्ञान देने वाले काल ब्रह्म यानि क्षर पुरूष ने स्पष्ट किया है कि यदि उस परमेश्वर यानि परम अक्षर पुरूष की शरण में जाना है तो (सर्व धर्मान् परित्यज्य माम् एकम् शरणम् व्रज) मेरी साधना यानि जो ॐ (ओम्) की साधना है, उसकी धार्मिक कमाई यानि मेरे स्तर की सब धार्मिक क्रियाओं की भक्ति मुझ में त्यागकर उस एकम् यानि जिसके समान अन्य कोई नहीं है। उस समर्थ की शरण में (व्रज) जाओ। मैं तुझे मेरी भक्ति के प्रतिफल में सब पापों से मुक्त कर दूँगा। तू चिंता मत कर।

अध्याय 17 श्लोक 23 का अनुवाद : ओं (ॐ) मन्त्र ब्रह्म यानि क्षर पुरुष का तत् यह सांकेतिक मंत्र परब्रह्म यानि अक्षर पुरुष का सत् यह सांकेतिक मन्त्र सच्चिदानंद घन ब्रह्म यानि परम अक्षर पुरुष (पूर्णब्रह्म) का है। ऐसे यह तीन प्रकार के पूर्ण परमात्मा के नाम सुमरण का आदेश कहा है और सष्टि के आदिकाल में विद्वानों ने उसी तत्वज्ञान के आधार से वेद तथा यज्ञादि बनाए। उसी आधार से साधना करते थे।(23)

श्लोक 24 का अनुवाद : इसलिये भगवान की स्तुति करने वालों तथा शास्त्रविधि से नियत क्रियाऐं बताने वालों की यज्ञ, दान और तप व स्मरण क्रियाएँ सदा 'ॐ' इस नाम को उच्चारण करके ही आरम्भ होती हैं अर्थात् तीनों नामों के जाप में ओं से ही स्वांस द्वारा प्रारम्भ किया जाता है।(24)

अध्याय 17 श्लोक 25 का अनुवाद : अक्षर पुरूष अर्थात् परब्रह्म के तत् मन्त्र के जाप पर स्वांस इति अर्थात् अन्त होता है तथा फल को न चाहकर नाना प्रकार की यज्ञ, तपरूप क्रियाएँ तथा दान रूप क्रियाएँ कल्याण की इच्छा वाले अर्थात् केवल जन्म-मत्यु से पूर्ण छुटकारा चाहने वाले पुरुषों द्वारा की जाती हैं अर्थात् यह तत जाप सांकेतिक मन्त्र है जो परब्रह्म का जाप मन्त्र है और सतनाम के स्वांस द्वारा जाप में तत् मन्त्र पर स्वांस का इति अर्थात् अन्त होता है।(25)

अध्याय 17 श्लोक 26 का अनुवाद : 'सत्' यह सारनाम का सांकेतिक मंत्र है। इसे पूर्ण परमात्मा के नाम के साथ सत्यभाव में और श्रेष्ठभाव में प्रयोग किया जाता है तथा हे पार्थ! उत्तम कर्ममें ही सत् शब्द अर्थात् सारनाम का प्रयोग किया जाता है अर्थात् पूर्वोक्त दोनों मन्त्रों ओं व तत् के साथ जोड़ा जाता है।(26)

अध्याय 17 श्लोक 27 का अनुवाद : तथा यज्ञ तप और दान में जो स्थिति है भी 'सत्' इस प्रकार कही जाती है और उस परमात्मा के लिये किए हुए शास्त्र अनुकूल किया भक्ति कर्म में ही वास्तव में सत् शब्द के अन्त में कोई अन्य शब्द तत्वदर्शी संत द्वारा कहा जाता है। जैसे सत् साहेब,

सतगुरू, सत् पुरूष, सतलोक, सतनाम आदि शब्द बोले जाते हैं।(27)

अध्याय 17 श्लोक 28 का अनुवाद : हे अर्जुन! बिना श्रद्धा के किया हुआ हवन दिया हुआ दान एवं तपा हुआ तप और जो कुछ भी किया हुआ शुभ कर्म है वह समस्त 'असत्' अर्थात् व्यर्थ है इस प्रकार कहा जाता है इसलिये वह हमारे लिए न तो इस लोकमें लाभदायक है और न मरनेके बाद ही।(28)

।। ऊँ-तत्-सत् का विस्तृत वर्णन।।

विशेष :- गीता अध्याय 4 श्लोक 34 में वर्णित तत्वदर्शी संत ही पूर्ण परमात्मा के तत्वज्ञान को सही बताता है, उन्हीं से पूछो, मैं (गीता बोलने वाला प्रभु) नहीं जानता। इसी का प्रमाण गीता अध्याय 15 श्लोक 1 से 4 तक तथा 16-17 तक भी है। इसीलिए यहाँ गीता अध्याय 17 श्लोक 23 से 28 तक का भाव समझें।

अध्याय 17 के श्लोक 23 से 28 तक में कहा है कि पूर्ण परमात्मा के पाने के ऊँ, तत्, सत् यह तीन नाम हैं। इस तीन नाम के जाप का प्रारम्भ स्वांस द्वारा ओं (ॐ) नाम से किया जाता है। तत्वज्ञान के अभाव से स्वयं निष्कर्ष निकाल कर शास्त्रविधि सहित साधना करने वाले ब्रह्म तक की साधना में प्रयोग मन्त्रों के साथ 'ऊँ' मन्त्र लगाते हैं। जैसे 'ऊँ भागवते वासुदेवाय नमः', 'ऊँ नमो शिवायः' आदि-2। यह जाप (काल-ब्रह्म यानि क्षर पुरूष तक व उनके आश्रित तीनों ब्रह्मा जी, विष्णु जी, शंकर जी से लाभ लेने के लिए) स्वर्ग प्राप्ति तक का है। फिर भी शास्त्र विधि रहित होने से उपरोक्त मंत्र व्यर्थ हैं बेसक इन मंत्रों से कुछ लाभ भी प्राप्त हो।

तत् नाम का तात्पर्य है कि (अक्षर पुरूष = अक्षर ब्रह्म) परब्रह्म की साधना का सांकेतिक मन्त्र है। यह तत् मन्त्र सांकेतिक है। वह पूर्ण गुरु से लेकर जपा जाता है। स्वयं या अनाधिकारी से प्राप्त करके जाप करना भी व्यर्थ है। यह तत् मन्त्र इष्ट की प्राप्ति के लिए विशेष मन्त्र है तथा सत् जाप मन्त्र पूर्ण परमात्मा का है जो सारनाम के साथ जोड़ा जाता है। उससे पूर्ण मुक्ति होती है। सतशब्द अविनाशी का प्रतीक है। वह सारनाम है। लेकिन वेदों व शास्त्रों में न तत् नाम है और न ही सत मन्त्र है। केवल ऊँ नाम है। आदरणीय गरीबदास साहेब जी (साहेब कबीर के शिष्य) संत कहते हैं कि कबीर परमेश्वर ने बताया कि जो गुप्त सोहं मंत्र मैं ही इस काल लोक में लाया हूँ तथा सतशब्द (सारनाम) गुप्त रहा है, वह केवल अधिकारी को ही दिया जाता है।

गरीब, सोहं शब्द हम जग में लाए। सार शब्द हम गुप्त छुपाए।।

यह सत शब्द (सारशब्द) पूर्ण गुरु ही दे सकता है। अन्य जप, दान, यज्ञ आदि श्रद्धा से व शास्त्रानुकूल किए जाऐं तो उनका जो फल निहीत (कुछ समय स्वर्ग प्राप्ति) है वह मिल जाएगा। यदि ऐसे नहीं किए तो वह फल भी नहीं है। फिर भी जब तक सारनाम (सत्शब्द) नहीं मिला तो ओ३म तथा तत् मंत्र (सांकेतिक) भी व्यर्थ हैं। कुछ साधक केवल 'ऊँ-तत्-सत्' इसी को मूल मन्त्र मान कर बार-2 अभ्यास करते हैं जो व्यर्थ है, बिना श्रद्धा के किया हुआ धार्मिक अनुष्ठान या जप न तो इसी लोक में लाभदायक है तथा न मरने के बाद। इसलिए गुरु आज्ञानुसार पूर्ण श्रद्धा भाव से आध्यात्मिक कर्म लाभदायक हैं। भक्ति चाहे नीचे के प्रभुओं की करो, चाहे पूर्ण परमात्मा सतलोक प्राप्ति की करो, वह साधना शास्त्रानुकूल तथा श्रद्धा पूर्वक ही लाभदायक है।

केवल सोहं शब्द तक की साधना भी काल जाल तक है। परमेश्वर कबीर (कविर्देव) जी की अमृत वाणी :-

कबीर, जो जन होगा जौहरी, लेगा शब्द विलगाय। सोहं – सोहं जप मुए, व्यर्था जन्म गंवाए।।

कोटि नाम संसार में, उनसे मुक्ति न होए। सारनाम मुक्ति का दाता, वाकुं जाने न कोए।।

भावार्थ :- परमेश्वर कबीर बन्दी छोड़ ने कहा है कि जिसको तत्वज्ञान होगा, वह पारखी होता है। वह नाम के भेद को समझेगा। केवल सोहं नाम जाप से मोक्ष नहीं है। केवल सोहं जाप करने से मानव जीवन नष्ट हो जाता है। सत्यनाम दो अक्षर का होता है। उसके पश्चात् सारनाम का जाप करते हैं। सब मंत्रों के जाप की साधना से जीव का कल्याण होता है।

आदरणीय गरीबदास साहेब जी की अमृत वाणी :-

गरीब, सोहं ऊपर और है, सतसुकृत एक नाम। सब हंसों का बास है, नहीं बस्ती नहीं गाम।।

सोहं में थे ध्रुव प्रहलादा, ओ३म सोहं वाद विवादा।

नामा छिपा ओ३म तारी, पीछे सोहं भेद विचारी। सार शब्द पाया जद लोई, आवागवन बहुर न होई।।

भावार्थ :- उपरोक्त अमृत वाणी में परमात्मा प्राप्त महान आत्मा आदरणीय गरीबदास साहेब जी ने कहा है कि जो केवल ओ३म व सोहं के मंत्र जाप तक सीमित है, वे भी काल के जाल में ही हैं। जैसे पूर्ण परमात्मा कविर्देव चारों युगों में आते हैं, तब पूर्ण विधि स्वयं ही वर्णन करके जाते हैं। इसी पूर्ण परमात्मा के नाम रहते हैं - सतयुग में सतसुकृत जी, त्रेतायुग में मुनिन्द्र जी, द्वापर युग में करूणामय जी तथा कलयुग में वास्तविक कविर्देव नाम से ही प्रकट होते हैं। जब पूर्ण ब्रह्म कविर्देव सतयुग में सतसकुत नाम से आए थे तो वास्तविक ज्ञान वर्णन करते थे। जो उस समय के ऋषियों द्वारा वर्णित ज्ञान के विपरित (सत्य) ज्ञान था। क्योंकि ऋषिजन वेदों को ठीक से न समझ कर ओ३म मंत्र को पूर्ण ब्रह्म का मानकर जाप करते तथा कराते थे तथा ब्रह्म को पूर्ण ब्रह्म ही बताते थे। पूर्ण परमात्मा कहा करते थे कि ब्रह्म से ऊपर परब्रह्म, उससे ऊपर पूर्ण ब्रह्म पूर्ण शक्ति युक्त प्रभु है। इस ज्ञान को स्वीकार न करके उस परमपिता को वामदेव (उल्टा ज्ञान देने वाला) कहने लगे। वास्तविक सत्सुकृत नाम भुलाकर प्रचलित उर्फ नाम वामदेव से ही जानने लगे। यही पूर्ण परमात्मा श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी तथा श्री शिव जी को मिले, तत्वज्ञान समझाया। तीनों प्रभुओं ने प्रथम मंत्र प्राप्त किया, परन्तु आगे नाम प्राप्त करने में कालवश होकर रूची नहीं रखी। यही परमात्मा श्री नारद जी आदि से भी मिलें। श्री नारद जी को भी उपदेश दिया। इनको केवल 'सोहं' मंत्र दिया। फिर नारद जी ने यही मंत्र ध्रुव तथा प्रहलाद को भी प्रदान किया जिससे वे भी काल जाल में ही रहे।

पूर्ण ब्रह्म कविरग्नि (कबीर परमेश्वर) पहली बार प्रमाणित मंत्रों (ओ३म - किलियम् - हरियम्- श्रीयम् - सोहं) में से कोई एक मंत्र साधक को प्रदान करते थे। फिर साधक की पूर्ण परमात्मा को प्राप्त करने की अति उत्सुक्ता देख कर फिर वास्तविक मंत्र ओ३म + तत् (सांकेतिक) प्रदान करते थे, जिसे सतनाम कहा जाता है। जैसे नारद जी को मार्ग दर्शन किया तो नारद जी ने उत्सुकता (लग्न) तो बहुत लगाई, परन्तु मन में शंका फिर भी रही कि आज तक अन्य किसी ऋषि-महर्षि ने पूर्ण परमात्मा का विवरण नहीं दिया, क्या पता सत्य है या असत्य? इस एक महात्मा पर विश्वास करना बुद्धिमता नहीं। यह भाव अन्तःकरण में समाया रहा। ऊपर से औपचारिकता आवश्यकता से अधिक करते रहे। अंतर्यामी पूर्ण परमेश्वर सतसुकृत उर्फ वामदेव जी ने महर्षि नारद जी को वास्तविक मंत्र (ओ३म + तत्) नहीं प्रदान किया। केवल सोहं नाम प्रदान किया तथा नारद जी की प्रार्थना पर उसे केवल (सोहं) एक नाम दान करने की आज्ञा दे दी। पूर्ण परमात्मा के सच्चे संत के अतिरिक्त यदि कोई ब्रह्म तक के साधक अधिकारी संत से उपदेश लेता है तो काल (ब्रह्म) उसे ब्रह्मलोक में बने नकली (झूठे) सत्यलोक में भेज देता है। वहाँ उन्हें उच्च पद प्रदान कर देता है

तथा सोहं मंत्र के जाप की कमाई को समाप्त करवा कर फिर कर्माधार पर नरक, फिर पथ्वी पर नाना प्रकार के प्राणियों के शरीर में पीड़ा बनी रहती है। ओ३म नाम के जाप के साधक ब्रह्मलोक में बने महास्वर्ग में चले जाते हैं तथा फिर स्वर्ग सुख भोगकर जन्म-मत्यु तथा नरक के विकट चक्र में पड़े रहते हैं। जो दो मंत्र का सत्यनाम जिसमें एक ओ३म मंत्र + तत् मंत्र (गुप्त) है, को मुझ दास से प्राप्त करके जो साधक साधना करता है और तीसरे (सत्) नाम को प्राप्त करने योग्य नहीं हुआ तथा देहान्त हो गया, वह साधक काल के हाथ नहीं लगेगा। पूर्ण परमात्मा कविर् देव ने ब्रह्मण्ड में एक ऐसा स्थान बनाया है जिसका न ब्रह्म (काल) को पता है और न अन्य ब्रह्मादिक को। वह साधक उस लोक में चला जाता है। वहाँ पर पूर्ण परमात्मा की तरफ से सर्व सुख लाभ मिलते रहते हैं। साधक की सत्यनाम की कमाई समाप्त नहीं होती। फिर कभी सत्यभक्ति युग आने पर उन्हीं पुण्यात्माओं को मानव शरीर प्रदान कर देता है। पूर्व सत्यनाम (सच्चे नाम) की कमाई के आधार पर जितनी जिसने कमाई की थी, लगातार कई मनुष्य जन्म मिलते रहेंगे, हो सकता है फिर किसी समय पूर्ण संत मिल जाए, जिससे शीघ्र ही भक्ति प्रारम्भ हो जाएगी तथा नाना प्रकार के प्राणियों के शरीर धारण करने व नरक में गिरने से बचा रहता है। परन्तु मुक्ति फिर भी बाकी है। उसके बिना सत्यनाम व केवल सोहं नाम का जाप भी व्यर्थ ही सिद्ध हुआ।

इसी प्रकार श्री नामदेव साहेब जी पहले ओ३म नाम को वास्तविक व अन्तिम प्रभु साधना का मंत्र जानकर निश्चिन्त थे। तब पूर्ण परमात्मा कविर् देव (कबीर साहेब) मिले। उनको तत्वज्ञान समझाया। श्री नामदेव जी की श्रद्धा देखकर परमात्मा ने केवल सोहं मंत्र प्रदान किया। फिर बहुत समय उपरान्त श्री नामदेव जी की असीम श्रद्धा तथा पूर्ण प्रभु पाने की तड़फ देखकर नए सिरे से ओ३म + तत् नाम जोड़ कर सत्यनाम प्रदान किया तथा तत्पश्चात् सारनाम (सत् शब्द) दिया, जिसे सारशब्द भी कहा है। इसप्रकार श्रीनामदेव साहेब जी की पूर्ण मुक्ति हुई। इससे पूर्व की वाणी श्री नामदेव की संग्रह करके भक्तजन इन्हें ब्रह्म उपासक ही मानते हैं।

श्रद्धा-भाव बिना भक्ति व्यर्थ

।। भगवान कष्ण का विदुर के घर अलूणा साक खाना ।।

भक्ति करै बिन भाव रे, सो कोनै काजा। विदुर कै जीमन उठ गए, तज दूर्योधन राजा।।
व्यंजन छतीसों छाड़ कर पाया साक अलूणा। थाल नहीं था विदूर के, धनि जीमत दौंना।।

भावार्थ :- एक समय भगवान कष्ण (तीन लोक के धनी) कौरवों तथा पाण्डवों का समझौता करवाने के लिए इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली) आए। उस समय दुर्योधन राजा था। लेकिन दुर्योधन ने भगवान की सलाह को नहीं माना। जिसमें श्री कष्णचन्द्र जी ने कहा था कि आप पाण्डवों को आधा राज दे दो। लड़ाई अच्छी नहीं होती। अंत में यह भी कह दिया था कि पाण्डवों को केवल पाँच (5) गाँव दे दो। परंतु दुर्योधन इस बात पर भी तैयार नहीं हुआ और कहा कि सूई की नौंक के बराबर भी स्थान पाण्डवों के लिए नहीं है। आपने मेरे (दुर्योधन के) यहाँ खाना खाना है क्योंकि राजा लोग राजाओं के घर भोजन करते शोभा देते हैं। श्री कष्ण जी ने देखा कि यहाँ भाव नहीं है। केवल औपचारिकता (Formalty) है। श्री कष्ण जी श्रद्धालु भक्त विदुर जी के घर (झौपड़ी) पर पहुँच गए। विदुर द्वारा भोजन के लिए प्रार्थना करने पर भगवान ने कहा कि भूख लगी है। जो बना है वही लाओ। यह कह मिट्टी के दौने में स्वयं साक (जो बिना नमक वाला था) डाल कर खाने लगे। यह देखकर विदुर

जी शर्म के मारे अपने भाग्य को कोस भी रहे हैं और सराह भी रहे हैं। कोस तो इसलिए रहे हैं कि मैं इतना निर्धन हूँ कि भगवान को स्वादिष्ट भोजन नहीं करा सका। मालिक क्या इस गरीब के घर बार-2 आते हैं? सराह इसलिए रहा था कि मैं कितना शौभाग्यशाली हूँ कि स्वयं त्रिलोक स्वामी भगवान चल कर दर्शन देने आए हैं। न जाने कौन से जन्म का कोई शुभ कर्म उदय हुआ है जो मालिक को इतने प्यार से देख पाया हूँ।

कबीर, साधु भूखा भाव का, धन का भूखा ना। जो कोई भूखा धन का, वो तो साधु ना।।

विशेष :- उस दिन कौरवों ने श्री कृष्ण जी को अपने राजमहल में भोजन करने का न्योता दे रखा था। पाण्डवों ने भी अपने घर भोजन करने का न्योता दे रखा था। भक्त विदुर जी ने भी अपने घर भोजन करने का न्योता दे रखा था। श्री कृष्ण जी कौरवों के दुर्व्यव्हार से दुःखी होकर यह विचार करके कि मैं यदि पाण्डवों के घर भोजन खाऊँगा तो विदुर को दुःख होगा। यदि विदुर के घर भोजन खाऊँगा तो पाण्डव दुःखी होंगे। सीधे द्वारिका को चले गए। भक्त विदुर जी को आशा नहीं थी कि श्री कृष्ण जी मेरे घर आऐंगे क्योंकि श्री कृष्ण पाण्डवों के रिश्तेदार (अर्जुन के साले) होने के कारण बहुत बार हस्तिनापुर (वर्तमान में पुरानी दिल्ली) में आया और रूका करते थे। विदुर भक्त भी प्रत्येक बार अपने घर आने की कहते थे। कार्य की अधिकता समय के अभाव से पहले कभी भी श्री कृष्ण विदुर जी के घर चाहकर भी नहीं जा पाए थे। उस बार भी विदुर जी को श्री कृष्ण जी के अपने घर आने की आशा शून्य थी। इसलिए विशेष तैयारी नहीं की थी। पूर्ण परमात्मा ने अपने भक्त विदुर का सम्मान जगत में बढ़ाने के लिए श्री कृष्ण रूप धारण करके विदुर भक्त के घर बिना नमक (अलुणां) साग खाया था। महिमा श्री कृष्ण जी की हुई जो आज तक उदाहरण है। समर्थ को अपनी महिमा बनाने की इच्छा नहीं है। भक्ति को बढ़ावा देना उद्देश्य रहता है। आगे की कथा से भी यही स्पष्ट होगा कि सुपच सुदर्शन के रूप में परमेश्वर कबीर जी ही गए थे।

।। पाण्डवों की यज्ञ में सुपच सुदर्शन द्वारा शंख बजाना।।

सर्व विदित है कि महाभारत के युद्ध में अर्जुन युद्ध करने से मना करके शस्त्र त्याग कर युद्ध के मैदान में दोनों सेनाओं के बीच में खड़े रथ के पिछले हिस्से में आंखों से आँसू बहाता हुआ बैठ गया। तब भगवान कृष्ण के अंदर प्रवेश काल शक्ति (ब्रह्म) ने अर्जुन को युद्ध करने की राय दी। तब अर्जुन ने कहा भगवान! यह महापाप मैं नहीं करूँगा। इससे अच्छा तो भिक्षा का अन्न भी खाकर गुजारा कर लेंगे। तब भगवान काल श्री कृष्ण के शरीर में प्रवेश काल ने कहा कि अर्जुन युद्ध कर। तुझे कोई पाप नहीं लगेगा। देखें गीता जी के अध्याय 11 श्लोक 33, अध्याय 2 श्लोक 37,38 में।

महाभारत में लेख (प्रकरण) आता है कि कृष्ण जी के कहने से अर्जुन ने युद्ध करना स्वीकार कर लिया। घमासान युद्ध हुआ। करोड़ों व्यक्ति व सर्व कौरव युद्ध में मारे गए और पाण्डव विजयी हुए। तब पाण्डव प्रमुख युधिष्ठिर को राज्य सिंहासन पर बैठाने के लिए स्वयं भगवान कृष्ण ने कहा तो युधिष्ठिर ने यह कहते हुए गद्दी पर बैठने से मना कर दिया कि मैं ऐसे पाप युक्त राज्य को नहीं करूंगा। जिसमें करोड़ों व्यक्ति मारे गए थे। उनकी पत्नियाँ विधवा हो गई, करोड़ों बच्चे अनाथ हो गए, अभी तक उनके आँसू भी नहीं सूखे हैं। किसी प्रकार भी बात बनती न देख कर श्री कृष्ण जी ने कहा कि आप भीष्म जी से सलाह कर लो। क्योंकि जब व्यक्ति स्वयं फैसला लेने में असफल रहे तब किसी स्वजन से विचार कर लेना चाहिए। युधिष्ठिर ने यह बात स्वीकार कर ली। तब श्री कृष्ण जी

युधिष्ठिर को साथ ले कर वहाँ पहुँचे जहाँ पर श्री भीष्म शर (तीरों की) सैय्या (चारपाई) पर अंतिम स्वांस गिन रहे थे, वहाँ जा कर श्री कृष्ण जी ने भीष्म से कहा कि युधिष्ठिर राज्य गद्दी पर बैठने से मना कर रहे हैं। कृप्या आप इन्हें राजनीति की शिक्षा दें।

भीष्म जी ने बहुत समझाया परंतु युधिष्ठिर अपने उद्देश्य से विचलित नहीं हुआ। यही कहता रहा कि इस पाप से युक्त रूधिर से सने राज्य को भोग कर मैं नरक प्राप्ति नहीं चाहूँगा। फिर श्री कृष्ण जी ने कहा कि आप एक धर्म यज्ञ करो। जिससे आपको युद्ध में हुई हत्याओं का पाप नहीं लगेगा। इस बात पर युधिष्ठिर सहमत हो गया और एक धर्म यज्ञ की। फिर राज गद्दी पर बैठ गया। हस्तिनापुर (दिल्ली) का राजा बन गया।

(प्रमाण :-- सुखसागर के पहले स्कन्ध के आठवें अध्याय से सहाभार पृष्ठ नं. 48 से 53 आठवाँ तथा नौवां अध्याय।।)

कुछ वर्षो प्रयान्त युधिष्ठिर को भयानक स्वपन आने शुरु हो गए। जैसे बहुत सी औरतें रोती-बिलखती हुई अपनी चूड़ियाँ फोड़ रहीं हैं तथा उनके मासूम बच्चे अपनी मां के पास खड़े कुछ बैठे पिता-पिता कह कर रो रहे हैं मानों कह रहे हो हे राजन्! हमें भी मरवा दे, भेज दे हमारे पिता के पास। कई बार बिना शीश के धड़ दिखाई देते हैं। किसी की गर्दन कहीं पड़ी है, धड़ कहीं पड़ा है, हा-हा कार मची हुई है। युधिष्ठिर की नींद उचट जाती है, घबरा कर बिस्तर पर बैठ कर हाँफने लग जाता है। सारी-2 रात बैठ कर या महल में घूम कर व्यतीत करता है। एक दिन द्रौपदी ने बड़े पति की यह दशा देखी परेशानी का कारण पूछा तो युधिष्ठिर कुछ नहीं- कुछ नहीं कह कर टाल गए। जब द्रौपदी ने कई रात्रियों में युधिष्ठिर की यह दुर्दशा देखी तो एक दिन चारों (अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेव) को बताया कि आपका बड़ा भाई बहुत परेशान है। कारण पूछो। तब चारों भाईयों ने बड़े भईया से प्रार्थना करके पूछा कि कृप्या परेशानी का कारण बताओ। अधिक आग्रह करने पर युद्धिष्ठर ने अपनी सर्व कहानी सुनाई। पाँचों भाई इस परेशानी का कारण जानने के लिए भगवान श्रीकृष्णजी के पास गए तथा बताया कि बड़े भईया युधिष्ठिर जी को भयानक स्वपन आ रहे हैं। जिनके कारण उनकी रात्रि की नींद व दिन का चैन व भूख समाप्त हो गई है। कृप्या कारण व समाधान बताएँ। सर्व बात सुनकर श्री कृष्ण जी बोले युद्ध में किए हुए पाप परेशान कर रहे हैं। इन पापों का निवारण यज्ञ से होता है।

गीता जी के अध्याय 3 के श्लोक 13 का हिन्दी अनुवाद : यज्ञ में प्रतिष्ठित इष्ट (पूर्ण परमात्मा) को भोग लगाने के बाद बने प्रसाद को खाने वाले श्रेष्ठ पुरुष सब पापों से मुक्त हो जाते हैं जो पापी लोग अपना शरीर पोषण करने के लिये ही अन्न पकाते हैं वे तो पाप को ही खाते हैं अर्थात् यज्ञ करके सर्व पापों से मुक्त हो जाते हैं। और कोई चारा न देख कर पाण्डवों ने श्री कृष्ण जी की सलाह स्वीकार कर ली। यज्ञ की तैयारी की गई। सर्व पृथ्वी के मानव, ऋषि, सिद्ध, साधु व स्वर्ग लोक के देव भी आमन्त्रित करने को, श्री कृष्ण जी ने कहा कि जितने अधिक व्यक्ति भोजन खाएंगें उतना ही अधिक पुण्य होगा। परंतु संतों व साधुओं से विशेष लाभ होता है उनमें भी कोई परम शक्ति युक्त संत होगा वह पूर्ण लाभ दे सकता है तथा यज्ञ पूर्ण होने का साक्षी एक पांच मुख वाला (पंचजन्य) शंख एक सुसज्जित ऊँचे आसन पर रख दिया तथा कहा कि जब इस यज्ञ में कोई भक्ति की कमाई वाला (परम शक्ति युक्त) संत भोजन ग्रहण करेगा तो यह शंख स्वयं आवाज करेगा। इतनी गूँज होगी की पूरी पृथ्वी पर तथा स्वर्ग लोक तक आवाज सुनाई देगी।

यज्ञ की तैयारी हुई। निश्चित दिन को सर्व आदरणीय आमन्त्रित भक्तगण, अठासी हजार ऋषि, तेतीस करोड़ देवता, नौ नाथ, चौरासी सिद्ध, ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि पहुँच गए। यज्ञ कार्य शुरु हुआ। यज्ञ का बचा प्रसाद (भण्डारा)सर्व उपस्थित महानुभावों व भक्तों तथा जनसाधारण को बरताया (खिलाया)। स्वयं भगवान कृष्ण जी ने भी भोजन खा लिया। परंतु शंख नहीं बजा। शंख नहीं बजा तो यज्ञ सम्पूर्ण नहीं हुई। उस समय युधिष्ठिर ने श्री कृष्ण जी से पूछा - हे मधुसुदन! शंख नहीं बजा। सर्व महापुरुषों व आगन्तुकों ने भोजन ग्रहण कर लिया। कारण क्या है? श्री कृष्ण ने कहा कि इनमें कोई सच्चा साधक (सतनाम व सारनाम उपासक) नहीं है। तब युधिष्ठिर को बड़ा आश्चर्य हुआ कि इतने महा मण्डलेश्वर जिसमें वशिष्ट मुनि, मार्कण्डे, लोमष ऋषि, नौ नाथ(गोरखनाथ जैसे), चौरासी सिद्ध आदि-2 व स्वयं भगवान श्री कृष्ण ने भी भोजन खा लिया। परंतु शंख नहीं बजा। कृष्ण जी ने कहा ये सर्व मान बड़ाई के भूखें हैं। परमात्मा चाहने वाला कोई नहीं तथा अपनी मनमुखी साधना करके सिद्धि दिखा कर दुनियाँ को आकर्षित करते हैं। भोले लोग इनकी वाह-2 करते हैं तथा इनके इर्द-गिर्द मण्डराते हैं। ये स्वयं भी पशु जूनी में जाएंगे तथा अपने अनुयाईयों को नरक ले जाएंगे।

गरीब, साहिब के दरबार में, गाहक कोटि अनन्त। चार चीज चाहै हैं, रिद्धि सिद्धि मान महंत।।
गरीब, ब्रह्म रन्द्र के घाट को, खोलत है कोई एक। द्वारे से फिर जाते हैं, ऐसे बहुत अनेक।।
गरीब, बीजक की बातां कहैं, बीजक नाहीं हाथ। पृथ्वी डोबन उतरे, कह–कह मीठी बात।।
गरीब, बीजक की बातां कहैं, बीजक नाहीं पास। ओरों को प्रमोदही, अपन चले निरास।।

भावार्थ :- परमात्मा की भक्ति करने वालों को तत्वज्ञान न होने के कारण शास्त्रविधि त्यागकर साधना करके मोक्ष के स्थान पर नरक व अन्य प्राणियों के शरीर प्राप्त करते हैं। उनकी साधना का उद्देश्य रिद्धि-सिद्धि प्राप्त करना है। काल ब्रह्म के लोक में अष्ट सिद्धि - नौ निद्धि (रिद्धि) हैं। कठोर तप या जन्त्र-मन्त्र करके इनमें से एक या दो सिद्धि या रिद्धि प्राप्त हो जाती हैं। उनके कारण मान-बड़ाई की चाह बढ़ जाती है। महंत यानि किसी आश्रम की गद्दी प्राप्त करके महंत की पदवी प्राप्त करना ही भक्ति का उद्देश्य होता है जो मानव जीवन का नाशक है। फिर वे महंत जी गुरु पद पर विराजमान होकर अनुयाईयों को बीजक की बात बताने का दावा करते हैं यानि तत्वज्ञान बताने की बातें करते हैं। उनके पास बीजक (तत्वज्ञान) नहीं है। वे पृथ्वी के मानव को नष्ट करने के लिए जन्मे हैं। मीठी-मीठी बातें बनाकर जीवों को अपने जाल में फंसाकर काल जाल में रखते हैं। अन्य को बीजक ज्ञान (तत्वज्ञान) बताने की कहते हैं, उनके पास बीजक नहीं है। जिस कारण से स्वयं भी संसार से भक्तिहीन जाएेंगे, निराशा ही हाथ लगेगी। तत्वज्ञान न होने के कारण त्रिवेणी के सामने वाले ब्रह्मरंद्र को नहीं खोल पाते। ऐसे अनेकों हैं। कोई तत्वज्ञानी ही सतगुरू की कृपा से सत्य साधना करके ब्रह्मरंद्र के द्वार को खोल पाता है यानि मुक्ति पाता है।

{प्रमाण के लिए गीता जी के कुछ श्लोक :--

अध्याय 9 का श्लोक 20

त्रैविद्याः, माम्, सोमपाः, पूतपापाः, यज्ञैः, इष्टवा, स्वर्गतिम्, प्रार्थयन्ते,
ते, पुण्यम्, आसाद्य, सुरेन्द्रलोकम्, अश्नन्ति, दिव्यान्, दिवि, देवभोगान्।।20।।

अनुवाद : (त्रैविद्याः) तीनों वेदों में (ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेद, चौथा अथर्ववेद तो विज्ञान की जानकारी देता है। सृष्टि उत्पत्ति का ज्ञान है, भक्ति का कम है।) विधान किए हुए भक्ति कर्मों से (सोमपाः) सोमरसको पीनेवाले (पूतपापाः) पापरहित पुरुष (माम्) मुझको (यज्ञैः) यज्ञोंके द्वारा (इष्टवा) पूज्य देव के रूप में पूज कर

(स्वर्गतिम्) स्वर्गकी प्राप्ति (प्रार्थयन्ते) चाहते हैं (ते) वे पुरुष (पुण्यम्) अपने पुण्योंके फलरूप (सुरेन्द्रलोकम्) इन्द्र के लोक स्वर्गलोक को (आसाद्य) प्राप्त होकर (दिवि) स्वर्गमें (दिव्यान्) दिव्य (देवभोगान्) देवताओंके भोगोंको (अश्नन्ति) भोगते हैं।

अध्याय 9 का श्लोक 21

ते, तम्, भुक्त्वा, स्वर्गलोकम्, विशालम्, क्षीणे, पुण्ये, मर्त्यलोकम्, विशन्ति,
एवम्, त्रयीधर्मम्, अनुप्रपन्नाः, गतागतम्, कामकामाः, लभन्ते।।21।।

अनुवाद : (ते) वे (तम्) उस (विशालम्) विशाल (स्वर्गलोकम्) स्वर्गलोकको (भुक्त्वा) भोगकर (पुण्ये) पुण्य (क्षीणे) क्षीण होने पर (मर्त्यलोकम्) मत्युलोक को (विशन्ति) प्राप्त होते हैं। (एवम्) इस प्रकार (त्रयीधर्मम्) तीनों वेदोंमें कहे हुए आध्यात्मिक कर्मका (अनुप्रपन्नाः) आश्रय लेने वाले और (कामकामाः) भोगों की कामनावस (गतागतम्) बार–बार आवागमन को (लभन्ते) प्राप्त होते हैं।

अध्याय 16 का श्लोक 17

आत्सम्भाविताः, स्तब्धाः, धनमानमदान्विताः,
यजन्ते, नामयज्ञैः, ते, दम्भेन, अविधिपूर्वकम्।।17।।

अनुवाद : (ते) वे (आत्मसम्भाविताः) अपनेआपको ही श्रेष्ठ माननेवाले (स्तब्धाः) घमण्डी पुरुष (धनमानमदान्विताः) धन और मानके मदसे युक्त होकर (नामयज्ञैः) केवल नाममात्रके यज्ञोंद्वारा (दम्भेन) पाखण्डसे (अविधिपूर्वकम्) शास्त्रविधिरहित (यजन्ते) पूजन करते हैं।

अध्याय 16 का श्लोक 18

अहंकारम्, बलम्, दर्पम्, कामम्, क्रोधम्, च, संश्रिताः,
माम्, आत्मपरदेहेषु, प्रद्विषन्तः, अभ्यसूयकाः।।18।।

अनुवाद : (अहंकारम्) अहंकार (बलम्) बल (दर्पम्) घमण्ड (कामम्) कामना और (क्रोधम्) क्रोधादिके (संश्रिताः) परायण (च) और (अभ्यसूयकाः) दूसरोंकी निन्दा करनेवाले पुरुष (आत्मपरदेहेषु) प्रत्येक शरीर में परमात्मा आत्मा सहित तथा (माम्) मुझसे (प्रद्विषन्तः) द्वेष करनेवाले होते हैं।

अध्याय 16 का श्लोक 19

तान् अहम्, द्विषतः, क्रूरान्, संसारेषु, नराधमान्,
क्षिपामि, अजस्त्रम्, अशुभान्, आसुरीषु, एव, योनिषु।।19।।

अनुवाद : (तान्) उन (द्विषतः) द्वेष करनेवाले (अशुभान्) पापाचारी और (क्रूरान्) क्रूरकर्मी (नराधमान्) नराधमोंको (अहम्) मैं (संसारेषु) संसारमें (अजस्त्रम्) बार–बार (आसुरीषु) आसुरी (योनिषु) योनियोंमें (एव) ही (क्षिपामि) डालता हूँ।

अध्याय 16 का श्लोक 20

आसुरीम्, योनिम्, आपन्नाः, मूढाः, जन्मनि, जन्मनि,
माम् अप्राप्य, एव, कौन्तेय, ततः, यान्ति, अधमाम्, गतिम्।।20।।

अनुवाद : (कौन्तेय) हे अर्जुन! (मूढाः) वे मूढ (माम्) मुझको (अप्राप्य) न प्राप्त होकर (एव) ही (जन्मनि) जन्म (जन्मनि) जन्ममें (आसुरीम्) आसुरी (योनिम्) योनिको (आपन्नाः) प्राप्त होते हैं फिर (ततः) उससे भी (अधमाम्) अति नीच (गतिम्) गतिको (यान्ति) प्राप्त होते हैं अर्थात् घोर नरकोंमें पड़ते हैं।

अध्याय 16 का श्लोक 23

यः, शास्त्रविधिम्, उत्सृज्य, वर्तते, कामकारतः,
न, सः, सिद्धिम्, अवाप्नोति, न, सुखम्, न, पराम्, गतिम्।।23।।

अनुवाद : (यः) जो पुरुष (शास्त्रविधिम्) शास्त्रविधिको (उत्सृज्य) त्यागकर (कामकारतः) अपनी इच्छासे

मनमाना (वर्तते) आचरण करता है (सः) वह (न) न (सिद्धिम्) सिद्धिको (अवाप्नोति)प्राप्त होता है (न)न (पराम्)परम (गतिम्)गतिको और(न) न (सुखम्) सुखको ही ।}

विशेष :- तत्वज्ञान के अभाव से ऋषियों व देवताओं में अहंकार व घमण्ड तथा मान-बड़ाई की चाह सदा रही है। क्रोध भी चर्म सीमा पर रहा। जिस कारण से पाण्डवों की यज्ञ उनके भोजन करने से सफल नहीं हुई। उदाहरण :- ऋषि विश्वामित्र व ऋषि वशिष्ठ जी का वैर भाव किसी से छिपा नहीं है। ऋषि वशिष्ठ ने ऋषि विश्वामित्र से कहा था कि आओ राज ऋषि। इस पर विश्वामित्र ने इतना क्रोध किया कि ऋषि वशिष्ठ के सौ पुत्रों की हत्या कर दी। ऐसा अनर्थ राक्षस करता है।

अन्य उदाहरण :- विष्णु पुराण के अध्याय 4 के श्लोक 72-94 तक प्रमाण है कि ऋषि वशिष्ठ जी ने राजा निमि को श्राप दिया कि तेरी मृत्यु हो यानि सीधी भाषा, तू मर जा। उस राजा की मृत्यु हो गई। उस राजा ने ऋषि वशिष्ठ को मृत्यु होने का श्राप दिया जिससे उसकी भी मृत्यु हो गई। कारण यह था :- राजा निमि के पुरोहित ऋषि वशिष्ठ जी थे। राजा निमि ने एक हजार वर्ष तक यज्ञ करने का संकल्प लिया और अपने पुरोहित वशिष्ठ से यज्ञ करने के लिए निवेदन किया। उसी दौरान देवराज इन्द्र ने पाँच सौ वर्षों तक यज्ञ करने के लिए ऋषि वशिष्ठ जी को होता (हवनकर्ता) बनने का निमंत्रण भेजा। ऋषि वशिष्ठ ने विचार किया कि पहले इन्द्र का यज्ञ कर दूँ। उसमें अधिक धन-माल मिलेगा। राजा का यज्ञ बाद में करूंगा। राजा को पता चला कि ऋषि वशिष्ठ इन्द्र का यज्ञ करने गए हैं तो उसने ऋषि गौतम जी से अपना एक हजार वर्ष का यज्ञ प्रारम्भ करवा दिया। इन्द्र का पाँच सौ वर्ष का यज्ञ करके ऋषि वशिष्ठ जी लौटे तो राजा को अन्य ऋषि से अनुष्ठान करवाता देखकर श्राप दे दिया कि निमि तेरी मौत हो जाए। राजा ने भी ऋषि को मृत्यु का श्राप दे दिया और दोनों मर गए।

विचार करें पाठकजन! क्या ये ऋषि मोक्ष के अधिकारी हैं। ऐसे-ऐसे अनेकों प्रमाण हैं ऋषियों के घमण्ड, मान-बड़ाई, ईर्ष्यावश क्रोध से अनर्थ करने के। अधिक जानकारी के लिए कृपा पढ़ें पुस्तक ''आध्यात्मिक ज्ञान गंगा'' में।

''पाण्डव यज्ञ की शेष कथा''

श्री कृष्ण भगवान ने अपनी शक्ति से युधिष्ठिर को उन सर्व महा मण्डलेश्वरों के भविष्य में होने वाले जन्म दिखाए जिसमें किसी ने कैंचवे का, किसी ने भेड़-बकरी, भैंस व शेर आदि के रूप बना रखे थे।

यह सब देख कर युधिष्ठिर ने कहा - हे भगवन! फिर तो पृथ्वी संत रहित हो गई। भगवान कृष्ण ने कहा जब पृथ्वी संत रहित हो जाएगी तो यहाँ आग लग जाएगी। सर्व जीव-जन्तु आपस में लड़ मरेंगे। यह तो पूरे संत की शक्ति से सन्तुलन बना रहता है। फिर मैं (भगवान विष्णु) पृथ्वी पर आ कर राक्षस वृत्ति के लोगों को समाप्त करता हूँ जिससे संत सुखी हो जाएं। जिस प्रकार जमींदार अपनी फसल से हानि पहुँचने वाले अन्य पौधों को जो झाड़-खरपतवार आदि को काट-काट कर बाहर डाल देता है तब वह फसल स्वतन्त्रता पूर्वक फलती-फूलती है। पूर्ण संत उस फसल में सिचांई सा सुख प्रदान करते हैं। पूर्ण संत सबको समान सुख देते हैं। जिस प्रकार पानी दोनों प्रकार के पौधों का पोषण करते हैं। उनमें सर्व जीव के प्रति दया भाव होता है। श्री कृष्ण जी ने फिर कहा अब मैं आपको पूर्ण संत के दर्शन करवाता हूँ। एक महात्मा दिल्ली के उत्तर पूर्व में रहते हैं। उसको बुलवाना है। तब युधिष्ठिर ने कहा कि उस ओर संतों को आमन्त्रित करने का कार्य भीमसैन को

सौंपा था। पता करते हैं कि वह उन महात्मा तक पहुँचा या नहीं। भीमसैन को बुलाकर पूछा तो उसने बताया कि मैं उस से मिला था। उनका नाम स्वपच सुदर्शन है। बाल्मिकी जाति में गहस्थी संत हैं। एक झौंपड़ी में रहता है। उन्होंने यज्ञ में आने से मना कर दिया। इस पर श्री कष्ण जी ने कहा कि संत मना नहीं किया करते। सर्व वार्ता जो उनके साथ हुई है वह बताओ। तब भीम सैन ने आगे बताया कि मैंने उनको आमन्त्रित करते हुए कहा कि हे संत परवर! हमारी यज्ञ में आने का कष्ट करना। उनको पूरा पता बताया। उसी समय वे (सुदर्शन संत जी) कहने लगे भीम सैन आप के पाप के अन्न को खाने से संतों को दोष लगेगा। आपने तो घोर पाप कर रखा है। करोड़ों जीवों की हत्या करके आज आप राज्य का आनन्द ले रहे हो। युद्ध में वीरगति को प्राप्त सैनिकों की विधवा पत्नी व अनाथ बच्चे रह-रह कर अपने पति व पिता को याद करके फूट-फूट कर घंटों रोते हैं। बच्चे अपनी माँ से लिपट कर पूछ रहे हैं - माँ, पापा छुट्टी नहीं आए? कब आएंगे? हमारे लिए नए वस्त्र लाएंगे। दूसरी लड़की कहती है कि मेरे लिए नई साड़ी लाएंगे। बड़ी होने पर जब मेरी शादी होगी तब मैं उसे बाँधकर ससुराल जाऊँगी। वह लड़का (जो दस वर्ष की आयु का है) कहता है कि मैं अब की बार पापा (पिता जी) से कहूँगा कि आप नौकरी पर मत जाना। मेरी माँ तथा भाई-बहन आपके बिना बहुत दुःख पाते हैं। माँ तो सारा दिन-रात आपकी याद करके जब देखो एकांत स्थान पर रो रही होती है। या तो हम सबको अपने पास बुला लो या आप हमारे पास रहो। छोड़ दो नौकरी को। मैं जवान हो गया हूँ। आपकी जगह मैं फौज में जा कर देश सेवा करूंगा। आप अपने परिवार में रहो। आने दो पिता जी को, बिल्कुल नहीं जाने दूँगा। (उन बच्चों को दुःखी होने से बचाने के लिए उनकी माँ ने उन्हें यह नहीं बताया कि आपके पिता जी युद्ध में मर चुके हैं क्योंकि उस समय वे बच्चे अपने मामा के घर गए हुए थे। केवल छोटा बच्चा जो डेढ़ वर्ष की आयु का था वही घर पर था। अन्य बच्चों को जान बूझ कर नहीं बुलाया था।) इस प्रकार उन मासूम बच्चों की आपसी वार्ता से दुःख पाकर उनकी माँ का हृदय पति की याद के दुःख से भर आया। उसे हल्का करने के लिए (रोने के लिए) दूसरे कमरे में जा कर फूट-फूट कर रोने लगी। तब सारे बच्चे माँ के ऊपर गिरकर रोने लगे। सम्बन्धियों ने आकर शांत करवाया। कहा कि बच्चों को स्पष्ट बताओ कि आपके पिता जी युद्ध में वीरगति को प्राप्त हो गए। जब बच्चों को पता चला कि हमारे पापा (पिता जी) अब कभी नहीं आएंगे तब उस स्वार्थी राजा को कोसने लगे जिसने अपने भाई बटवारे के लिए दुनियाँ के लालों का खून पी लिया। यह कोई देश रक्षा की लड़ाई भी नहीं थी जिसमें हम संतोष कर लेते कि देश के हित में प्राण त्याग दिए हैं। इस खूनी राजा ने अपने ऐशो-आराम के लिए खून की नदी बहा दी। अब उस पर मौज कर रहा है। आगे संत सुदर्शन (स्वपच) बता रहे हैं कि भीम ऐसे-2 करोड़ों प्राणी युद्ध की पीड़ा से पीड़ित हैं। उनकी हाय आपको चैन नहीं लेने देगी चाहे करोड़ यज्ञ करो। ऐसे दुष्ट अन्न को कौन खाए? यदि मुझे बुलाना चाहते हो तो मुझे पहले किए हुए सौ (100) यज्ञों का फल देने का संकल्प करो अर्थात् एक सौ यज्ञों का फल मुझे दो तब मैं आपके भोजन पाऊँ। सुदर्शन जी के मुख से इस बात को सुन कर भीम ने बताया कि मैं बोला आप तो कमाल के व्यक्ति हो, सौ यज्ञों का फल मांग रहे हो। यह हमारी दूसरी यज्ञ है। आपको सौ का फल कैसे दें? इससे अच्छा तो आप मत आना। आपके बिना कौन सी यज्ञ सम्पूर्ण नहीं होगी। जब स्वयं भगवान कष्ण जी साथ हैं। सर्व वार्ता सुन कर श्री कष्ण जी ने कहा भीम! संतों के साथ ऐसा अभद्र-व्यवहार नहीं किया करते। सात समुद्रों का अंत पाया जा सकता है परंतु सतगुरु (कबीर साहेब) के संत का पार नहीं पा सकते। उस महात्मा सुदर्शन (स्वपच) के एक बाल

के समान तीन लोक भी नहीं हैं। मेरे साथ चलो, उस परमपिता परमात्मा के प्यारे हंस को लाने के लिए।

तब पाँचों पाण्डव व श्री कृष्ण भगवान रथ में सवार होकर चले। सन्त के निवास से एक मील दूर रथ खड़ा करके नंगे पैरों स्वपच की झोंपड़ी पर पहुँचे। उस समय स्वयं कबीर साहेब (करुणामय साहेब जी स्वपच के गुरुदेव थे क्योंकि साहिब कबीर द्वापर युग में करुणामय नाम से अपने सतलोक से आए थे तथा सुदर्शन को अपना सतलोक का सत्य ज्ञान समझाया था) सुदर्शन स्वपच का रूप बना कर झोपड़ी में बैठ गए व सुदर्शन को अपनी गुप्त प्रेरणा से मन में संकल्प उठा कर कहीं दूर के संत या भक्त से मिलने भेज दिया जिसमें आने व जाने में कई रोज लगने थे। तब सुदर्शन के रूप में सतगुरु की चमक व शक्ति देख कर सर्व पाण्डव बहुत प्रभावित हुए। स्वयं श्री कृष्णजी ने लम्बी दण्डवत् प्रणाम की। तब देखा देखी सर्व पाण्डवों ने भी ऐसा ही किया। कृष्ण जी की ओर दृष्टि डाल कर सुपच सुदर्शन जी ने आदर पूर्वक कहा कि - हे त्रिभुवननाथ! आज इस दीन के द्वार पर कैसे? मेरा अहोभाग्य है कि आज दीनानाथ विश्वम्भर मुझ तुच्छ को दर्शन देने स्वयं चल कर आए हैं। सबको आदर पूर्वक बैठना दिया तथा आने का कारण पूछा। श्री कृष्ण जी ने कहा कि हे जानी-जान! आप सर्व गति (स्थिति) से परीचित हैं। पाण्डवों ने यज्ञ की है। वह आपके बिना सम्पूर्ण नहीं हो रही है। कृप्या इन्हें कृतार्थ करें। उसी समय वहां उपस्थित भीम की ओर संकेत करते हुए महात्मा जी सुदर्शन रूप में विराजमान परमेश्वर कबीर जी ने कहा कि यह वीर मेरे पास आया था तथा मैंने अपनी विवशता से इसे अवगत करवाया था। श्री कृष्ण जी ने कहा कि - हे पूर्णब्रह्म! आपने स्वयं अपनी वाणी में कहा है कि -

"संत मिलन को चालिए, तज माया अभिमान। ज्यों ज्यों पग आगे धरै, सो–सो यज्ञ समान।।"

आज पांचों पाण्डव राजा हैं तथा मैं स्वयं द्वारिकाधीश आपके दरबार में राजा होते हुए भी नंगे पैरों उपस्थित हूँ। अभिमान का नामों निशान भी नहीं है तथा स्वयं भीम ने भी खड़ा हो कर उस दिन कहे हुए अपशब्दों की चरणों में पड़ कर क्षमा याचना की। इसलिए हे नाथ! आज यहाँ आपके दर्शनार्थ आए आपके छः सेवकों के कदमों के यज्ञ समान फल को स्वीकार करते हुए सौ आप रखो तथा शेष हम भिक्षुकों को दान दो ताकि हमारा भी कल्याण हो। इतना आधीन भाव सर्व उपस्थित जनों में देख कर जगतगुरु (करुणामय)सुदर्शन रूप में अति प्रसन्न हुए।

कबीर, साधू भूखा भाव का, धन का भूखा नाहिं। जो कोई धन का भूखा, वो तो साधू नाहिं।।

उठ कर उनके साथ चल पड़े। जब सुदर्शन जी यज्ञशाला में पहुँचे तो चारों ओर एक से एक ऊँचे सुसज्जित आसनों पर विराजमान महा मण्डलेश्वर सुदर्शन जी के रूप (दोहरी धोती घुटनों से थोड़ी नीचे तक, छोटी-2 दाड़ी, सिर के बिखरे केश न बड़े न छोटे, टूटी-फूटी जूती। मैले से कपड़े, तेजोमय शरीर) को देखकर अपने मन में सोच सोचने लगे ऐसे अपवित्र व्यक्ति से शंख सात जन्म भी नहीं बज सकता है। यह तो हमारे सामने ऐसे है जैसे सूर्य के सामने दीपक। श्रीकृष्ण जी ने स्वयं उस महात्मा का आसन अपने हाथों लगाया (बिछाया) क्योंकि श्री कृष्ण श्रेष्ठ आत्मा हैं, (परमात्मा हैं) उन्होंने सुदामा व भिलनी को भी हृदय से चाहा। यहाँ तो स्वयं परमेश्वर पूर्णब्रह्म सतपुरुष, (अकाल मूर्ति) आए हैं। द्रौपदी से कहा कि हे बहन! सुदर्शन महात्मा जी आए हैं, भोजन तैयार करो। बहुत पहुँचे हुए संत हैं। द्रौपदी देख रही है कि संत लक्षण तो एक भी नहीं दिखाई देते हैं। यह तो एक गृहस्थी गरीब (कंगाल) व्यक्ति नजर आता है। न तो वस्त्र भगवां, न गले में माला, न तिलक, न सिर पर बड़ी जटा, न मुण्ड ही मुण्डवा रखा और न ही कोई चिमटा, झोली, करमण्डल लिए हुए था। फिर भी श्री कृष्ण जी के कहते ही स्वादिष्ट भोजन कई प्रकार का बनाकर एक सुन्दर

थाल (चांदी का) में परोस कर सुदर्शन जी के सामने रख कर मन में सोचने लगी कि आज यह भक्त भोजन खा कर ऊँगली चाटता रह जाएगा। जिन्दगी में ऐसा भोजन कभी नहीं खाया होगा। सुदर्शन जी ने नाना प्रकार के भोजन को इक्ट्ठा किया तथा खिचड़ी सी बनाई। उस समय द्रौपदी ने देखा कि इसने तो सारा भोजन (खीर, खांड, हलुवा, सब्जी, दही, बड़े आदि) घोल कर एक कर लिया। तब मन में दुर्भावना पूर्वक विचार किया कि इस मूर्ख हब्शी ने तो खाना खाने का भी ज्ञान नहीं। यह काहे का संत? कैसा शंख बजाएगा। {क्योंकि खाना बनाने वाली स्त्री की यह भावना होती है कि मैं ऐसा स्वादिष्ट भोजन बनाऊँ कि खाने वाला मेरे भोजन की प्रशंसा कई जगह करे)। प्रत्येक बहन की यही आशा होती है।

वह बेचारी एक घंटे तक धुएँ से आँखें खराब करती है और मेरे जैसा कह दे कि नमक तो है ही नहीं, तब उसका मन बहुत दुःखी होता है। इसलिए संत जैसा मिल जाए उसे खा कर सराहना ही करते हैं। यदि कोई न खा सके तो नमक कह कर 'संत' नहीं मांगता। संतों ने नमक का नाम राम–रस रखा हुआ है। कोई ज्यादा नमक खाने का अभ्यस्त हो तो कहेगा कि भईया– रामरस लाना। घर वालों को पता ही न चले कि क्या मांग रहा है? क्योंकि सतसंग में सेवा में अन्य सेवक ही होते हैं। न ही भोजन बनाने वालों को दुःख हो। एक समय एक नया भक्त किसी सतसंग में पहली बार गया। उसमें किसी ने कहा कि भक्त जी रामरस लाना। दूसरे ने भी कहा कि रामरस लाना तथा थोड़ा रामरस अपनी हथेली पर रखवा लिया। उस नए भक्त ने खाना खा लिया था। परंतु पंक्ति में बैठा अन्य भक्तों के भोजन पाने का इंतजार कर रहा था कि इकट्ठे ही उठेंगे। यह भी एक औपचारिकता सतसंग में होती है। उसने सोचा रामरस कोई खास मीठा खाद्य पदार्थ होगा। यह सोच कर कहा मुझे भी रामरस देना। तब सेवक ने थोड़ा सा रामरस (नमक) उसके हाथ पर रख दिया। तब वह नया भक्त बोला – ये के कान कै लाना है, चौखा सा (ज्यादा) रखदे। तब उस सेवक ने दो तीन चमच्च रख दिया। उस नए भक्त ने उस बारीक नमक को कोई खास मीठा खाद्य प्रसाद समझ कर फांका मारा। तब चुपचाप उठा तथा बाहर जा कर कुल्ला किया। फिर किसी भक्त से पूछा रामरस किसे कहते हैं? तब उस भक्त ने बताया कि नमक को रामरस कहते हैं। तब वह नया भक्त कहने लगा कि मैं भी सोच रहा था कि कहें तो रामरस परंतु है बहुत खारा। फिर विचार आया कि हो सकता है नए भक्तों पर परमात्मा प्रसन्न नहीं हुए हों। इसलिए खारा लगता हो। मैं एक बार फिर कोशिश करता, अच्छा हुआ जो मैंने आपसे स्पष्ट कर लिया। फिर उसे बताया गया कि नमक को रामरस किस लिए कहते हैं?}

स्वपच सुदर्शन जी ने उस सारे भोजन को पाँच ग्रास बना कर खा लिया। पाँच बार शंख ने आवाज की। उसके बाद शंख ने आवाज नहीं की।

गरीबदास जी महाराज की वाणी
(सतग्रन्थ साहिब पष्ठ नं. 862)

राग बिलावल से

व्यंजन छतीसों परोसिया जहाँ द्रौपदी रानी।
बिन आदर सतकार के, कही शंख ना बानी।।
पंच गिरासी बालमीक, पंचै बर बोले।
आगे शंख पंचायन, कपाट न खोले।।
बोले कष्ण महाबली, त्रिभुवन के साजा।

बाल्मिक प्रसाद से, शंख अखण्ड क्यों न बाजा।।
द्रोपदी सेती कष्ण देव, जब ऐसे भाखा।
बाल्मिक के चरणों की, तेरे ना अभिलाषा।।
प्रेम पंचायन भूख है, अन्न जग का खाजा।
ऊँच नीच द्रोपदी कहा, शंख अखण्ड यूँ नहीं बाजा।।
बाल्मिक के चरणों की, लई द्रोपदी धारा।
अखण्ड शंख पंचायन बाजीया, कण–कण झनकारा।।

उस समय श्री कष्ण ने सोचा कि इन महात्मा सुदर्शन के भोजन खा लेने से भी शंख अखण्ड क्यों नहीं बजा? अपनी दिव्य दष्टि से देखा? तब द्रौपदी से कहा - द्रौपदी, भोजन सब प्राणी अपने-2 घर पर रूखा-सूखा खा कर ही सोते हैं। आपने बढ़िया भोजन बना कर अपने मन में अभिमान पैदा कर लिया। बिना आदर सतकार के किया हुआ धार्मिक अनुष्ठान (यज्ञ, हवन, पाठ) सफल नहीं होता। फिर आपने इस साधारण से व्यक्ति को क्या समझ रखा है? यह पूर्णब्रह्म हैं। इसके एक बाल के समान तीनों लोक भी नहीं हैं। आपने अपने मन में इस महापुरुष के बारे में गलत विचार किए हैं उनसे आपका अन्तःकरण मैला (मलीन) हो गया है। इनके भोजन ग्रहण कर लेने से तो यह शंख स्वर्ग तक आवाज करता और सारा ब्रह्मण्ड गूंज उठता। अब यह पांच बार बोला है। इसलिए कि आपका भ्रम दूर हो जाए क्योंकि और किसी ऋषि के भोजन पाने से तो यह टस से मस नहीं हुआ। अब आप अपना मन साफ करके इन्हें पूर्ण परमात्मा समझकर इनके चरणों को धो कर पीओ, ताकी तेरे हृदय का मैल (पाप) साफ हो जाए।

उसी समय द्रौपदी ने अपनी गलती को स्वीकार करते हुए संत से क्षमा याचना की और सुपच सुदर्शन गहस्थी भक्त के चरण अपने हाथों धो कर चरणामत बनाया। रज भरे (धूलि युक्त) जल को पीने लगी। जब आधा पी लिया तब भगवान कष्ण ने कहा द्रौपदी कुछ अमत मुझे भी दे दो ताकि मेरा भी कल्याण हो। यह कह कर कष्ण जी ने द्रौपदी से आधा बचा हुआ चरणामत पीया। उसी समय वही पंचायन शंख इतने जोरदार आवाज से बजा कि स्वर्ग तक ध्वनि सुनि। बहुत समय तक अखण्ड बजता रहा तब वह पाण्डवों की यज्ञ सफल हुई।

❖ *विशेष :- पाठकों को भ्रम उत्पन्न होगा कि ऋषि तो मान-बड़ाई ईर्ष्यावश थे, परंतु उस यज्ञ में श्री कष्ण जी तो स्वयं श्री विष्णु जी थे जो सतोगुण प्रधान हैं। उनके भोजन से भी शंख किस कारण से नहीं बजा? इसका उत्तर यह है :- प्रथम तो श्री विष्णु जी के पास सत्यनाम व सारनाम वाली साधना नहीं थी जो पाप नाश करती है। दूसरे ये ऊपर से तो सतोगुणी हैं, परंतु अंदर राग-द्वेष से भरे हैं। प्रमाण :- श्री शिव महापुराण के विद्यवेश्वर संहित खण्ड में प्रमाण है कि एक समय श्री ब्रह्मा जी श्री विष्णु जी के पास गए। उस समय श्री विष्णु जी शेष शैय्या पर विराजमान थे। श्री लक्ष्मी जी उनकी सेवा कर रही थी। अन्य पारखद (देवगण जो सेवादार हैं) आसपास खड़े थे। ब्रह्मा जी को आता देखकर अपनी मानहानि विचारकर श्री विष्णु जी ने श्री ब्रह्मा जी की आवभगत यानि सम्मान नहीं किया। बैठे-बैठे कहा, आओ! कैसे आना हुआ? श्री ब्रह्मा जी ने अपनी मानहानि समझी और श्री विष्णु जी से कहा कि हे पुत्र विष्णु! देख तेरा बाप आया हूँ। सारे संसार का उत्पत्तिकर्ता मैं ही हूँ। इसलिए तू मेरा पुत्र है। तेरे को अभिमान हो गया है। अपने बाप का भी सम्मान नहीं करता। तेरे को ठीक करता हूँ। श्री विष्णु जी ऊपर से तो सतोगुणी दिखावा कर रहे थे, परंतु अंदर से जल-भुन गए थे। बोले, हे पुत्र ब्रह्मा! तू मेरी नाभि से उत्पन्न हुआ है। इसलिए मेरा पुत्र है। तू अपने बाप का*

सम्मान नहीं करता। तेरा दिमाग ठीक करना पड़ेगा। यह कहकर मरने-मारने के लिए तैयार हो गए। फिर इनके पिता काल ब्रह्म ने इनके मध्य में तेजोमय स्तंभ खड़ा करके युद्ध रूकवाया।

पाठकों का भ्रम निवारण हो गया होगा कि इस कारण से श्री कष्ण जी से भी पाण्डव यज्ञ सम्पूर्ण नहीं हुई। रही बात देवताओं की, वे भी तेतीस (33) करोड़ की सँख्या में देवराज इन्द्र सहित यज्ञ में उपस्थित थे। एक समय देवराज इन्द्र की पालकी को चार ऋषि उठाकर चल रहे थे। इन्द्र ने अपनी रानी से विलास (Sex) करने की प्रबल इच्छा हुई थी। वह कार्यालय से अपने महल को जा रहा था। उसको शीघ्र जाने की इच्छा थी। वासनावश अंधा हो रहा था। पालकी को ले जाने वाले एक ऋषि के पैर में लंग (कुछ लंगड़ापन) था। जिस कारण से पालकी धीरे चल रही थी। उस कामांध (स्त्री भोग के लिए विवेक नष्ट) इन्द्र ने उस ऋषि को लात दे मारी कि तू धीरे-धीरे क्यों चल रहा है? शीघ्र नहीं चला जाता। ऋषि को दुःख हुआ और पालकी छोड़ दी। इन्द्र को शॉप दे दिया कि पत्नी मिलन से पहले ही तेरी मत्यु हो जाएगी। वही हुआ। अन्य देवताओं की कथा लिखने लगूँ तो एक पुस्तक अलग से तैयार हो जाएगी। समझदार को संकेत ही पर्याप्त होता है।

प्रमाण के लिए बन्दी छोड़ गरीबदास जी महाराज कत

।। अचला का अंग।।

(सत ग्रन्थ साहिब पष्ठ नं. 359)

गरीब, सुपच रूप धरि आईया, सतगुरु पुरुष कबीर।
तीन लोक की मेदनी, सुर नर मुनिजन भीर।।97।।
गरीब, सुपच रूप धरि आईया, सब देवन का देव।
कष्णचन्द्र पग धोईया, करी तास की सेव।।98।।
गरीब, पांचौं पंडौं संग हैं, छठ्ठे कष्ण मुरारि।
चलिये हमरी यज्ञ में, समर्थ सिरजनहार।।99।।
गरीब, सहंस अठासी ऋषि जहां, देवा तेतीस कोटि।
शंख न बाज्या तास तैं, रहे चरण में लोटि।।100।।
गरीब, पंडित द्वादश कोटि हैं, और चौरासी सिद्ध।
शंख न बाज्या तास तैं, पिये मान का मध।।101।।
गरीब, पंडौं यज्ञ अश्वमेघ में, सतगुरु किया पियान।
पांचौं पंडौं संग चलैं, और छठा भगवान।।102।।
गरीब, सुपच रूप को देखि करि, द्रौपदी मानी शंक।
जानि गये जगदीश गुरु, बाजत नाहीं शंख।।103।।
गरीब, छप्पन भोग संजोग करि, कीनें पांच गिरास।
द्रौपदी के दिल दुई हैं, नाहीं दढ़ विश्वास।।104।।
गरीब, पांचौं पंडौं यज्ञ करी, कल्पवक्ष की छांहिं।
द्रौपदी दिल बंक हैं, शंख अखण्ड बाज्या नांहि।।105।।
गरीब, छप्पन भोग न भोगिया, कीन्हें पंच गिरास।
खड़ी द्रौपदी उनमुनी, हरदम घालत श्वास।।107।।
गरीब, बोलै कष्ण महाबली, क्यूं बाज्या नहीं शंख।
जानराय जगदीश गुरु, काढत है मन बंक।।108।।

गरीब, द्रौपदी दिल कूं साफ करि, चरण कमल ल्यौ लाय।
बालमीक के बाल सम, त्रिलोकी नहीं पाय।।109।।
गरीब, चरण कमल कूं धोय करि, ले द्रौपदी प्रसाद।
अंतर सीना साफ होय, जरैं सकल अपराध।।110।।
गरीब, बाज्या शंख सुभान गति, कण कण भई अवाज।
स्वर्ग लोक बानी सुनी, त्रिलोकी में गाज।।111।।
गरीब, पंडौं यज्ञ अश्वमेघ में, आये नजर निहाल।
जम राजा की बंधि में, खल हल पर्या कमाल।।113।।

सत ग्रन्थ साहिब पृष्ठ नं. 328

।।पारख का अंग।।

गरीब, सुपच शंक सब करत हैं, नीच जाति बिश चूक।
पौहमी बिगसी स्वर्ग सब, खिले जो पर्वत रूंख।
गरीब, करि द्रौपदी दिलमंजना, सुपच चरण जी धोय।
बाजे शंख सर्व कला, रहे अवाजं गोय।।
गरीब, द्रौपदी चरणामृत लिये, सुपच शंक नहीं कीन।
बाज्या शंख असंख धुनि, गण गंधर्व ल्यौलीन।।
गरीब, फिर पंडौं की यज्ञ में, संख पचायन टेर।
द्वादश कोटि पंडित जहां, पडी सभन की मेर।।
गरीब, करी कृष्ण भगवान कूं, चरणामृत स्यौं प्रीत।
शंख पंचायन जब बज्या, लिया द्रोपदी सीत।।
गरीब, द्वादश कोटि पंडित जहां, और ब्रह्मा विष्णु महेश।
चरण लिये जगदीश कूं, जिस कूं रटता शेष।।
गरीब, बालमीक के बाल समि, नाहीं तीनौं लोक।
सुर नर मुनि जन कृष्ण सुधि, पंडौं पाई पोष।।
गरीब, बाल्मीक बैंकुठ परि, स्वर्ग लगाई लात।
संख पचायन घुरत हैं, गण गंर्धव ऋषि मात।।
गरीब, स्वर्ग लोक के देवता, किन्हैं न पूर्या नाद।
सुपच सिंहासन बैठतैं, बाज्या अगम अगाध।।
गरीब, पंडित द्वादश कोटि थे, सहिदे से सुर बीन।
संहस अठासी देव में, कोई न पद में लीन।
गरीब, बाज्या संख स्वर्ग सुन्या, चौदह भवन उचार।
तेतीसौं तत्त न लह्या, किन्हैं न पाया पार।।

।। सतनाम व सारनाम बिना सर्व साधना व्यर्थ।।

यज्ञ संवाद में स्वयं कृष्ण भगवान कहते हैं कि युधिष्ठिर ये सर्व भेष धारी व सर्व ऋषि, सिद्ध, देवता, ब्राह्मण आदि सब पाखण्डी लोग हैं। ये सबके सब मान-बड़ाई के भूखे क्रोधी तथा लालची हैं। सर्प से भी खूंखार हैं। जरा-सी बात पर लड़ मरते हैं। शॉप दे देते हैं। हत्या-हिंसा करते समय आगा-पीछा नहीं देखते। इनके अन्दर भाव भक्ति नहीं है। सिर्फ दिखावा करके दुनियां के भोले-भाले

भक्तों को अपनी महिमा जनाए बैठे हैं। कृप्या पाठक विचार करें कि वह समय द्वापर युग का था उस समय के संत बहुत ही अच्छे साधु थे क्योंकि आज से लगभग साढे पाँच हजार वर्ष पूर्व आम व्यक्ति के विचार भी नेक होते थे। आज से 30,40 वर्ष पहले आम व्यक्ति के विचार आज की तुलना में बहुत अच्छे होते थे। इसकी तुलना को साढे पांच हजार वर्ष पूर्व का विचार करें तो आज के संतों-साधुओं से उस समय के सन्यासी साधु बहुत ही उच्च थे। फिर भी स्वयं भगवान ने कहा ये सब पशु हैं, शास्त्रविधि अनुसार उपासना करने वाले उपासक नहीं हैं। यही कड़वी सच्चाई गरीबदास जी महाराज ने षटदर्शन घमोड़ बहदा तथा बहदे के अंग में, तक्र वेदी में, सुख सागर बोध में तथा आदि पुराण के अंग में कही है कि जो साधना यह साधक कर रहे हैं वह सत्यनाम व सारनाम बिना बहदा (अनावश्यक) है।

।। षटदर्शन घमोड़ बहदा।।

(सत ग्रन्थ साहिब पृष्ठ नं. 534)

षट दर्शन षट भेष कहावैं, बहुविधि धूंधू धार मचावैं।
तीरथ ब्रत करैं तरबीता, वेद पुराण पढ़त हैं गीता।।
चार संप्रदा बावन द्वारे, जिन्हौं नहीं निज नाम बिचारे।
माला घालि हूये हैं मुकता, षट दल ऊवा बाई बकता।।
बैरागी बैराग न जानैं, बिन सतगुरु नहीं चोट निशानैं।
बारह बाट बिटंब बिलोरी, षट दर्शन में भक्ति ठगौरी।।
सन्यासी दश नाम कहावैं, शिव शिव करैं न शंशय जावैं।
निर्बानी निहकछ निसारा, भूलि गये हैं ब्रह्म द्वारा।।
सुनि सन्यासी कुल कर्म नाशी, भगवैं प्यौंदी भूले द्यौंहदी।
छल छिद्र की भक्ति न कीजै, आगै जुवाब कहों क्या दीजै।।
भ्रम कर्म भैरौं कूं पूजैं, सत्य शब्द साहिब नहीं सूझैं।
माला मुकटी ककड हुकटी, बांना गौड़ी भांग भसौड़ी।।
जती जलाली पद बिन खाली, नाम न रता घोरी घता।
मढी बसंता ओढै कंथा, वनफल खावैं नगर न जावैं।।
हाथौं करुवा काँधै फरुवा, खौलि बनावैं सिद्ध कहावैं।
भूले जोगी रिद्धि के रोगी, कान चिरावैं भस्म रमावैं।।
तपा अकाशी बारह मासी, मौंनी पीठी पंच अंगीठी।
कन्द कपाली अंदर खाली, बाहर सिद्धा ये हैं गद्धा।।
यौह बी बहदा है ————————।।

।। अथ बहदे का ग्रन्थ।।

(सतग्रन्थ साहिब पृष्ठ नं. 536)

खाखी और निर्बानी नागा, सिद्ध जमात चलावैं है। रणसींगे तुरही तुतकारा, गागड भांग घुटावैं हैं।।
यौह बी बहदा है ————————।।
काशी गया प्रयाग महोदधि, जगन्नाथ कूं जावैं हैं।
लौहा गर और पुष्कर परसे, द्वारा दाग दगावैं हैं।।
यौह बी बहदा है ————————।।
तीर तुपक तरवार कटारी, जम धड जोर बंधावैं हैं।

हरि पैड़ी हरि हेत न जान्या, वहां जाय तेग चलावैं हैं।।
यौह बी बहदा है – – – – – – – ।।
काटैं शीश नहीं दिल करुणा, जग में साध कहावैं हैं।
जो नर जाके दर्शन जाहीं, तिस कूं भी नरक पठावैं हैं।।
यौह बी बहदा है – – – – – – – ।।

।।कुंभ के मेले में प्रथम स्नान करने पर कत्ले आम।।

एक समय हरिद्वार में कुंभ का मेला लगा। उसमें नागा महात्माओं (तमगुण श्री शिव जी के उपासकों)तथा वैष्णों (सतगुण श्री विष्णु जी के उपासकों) संतों का प्रथम स्नान करने के लिए झगड़ा हुआ। जिसमें 25 हजार नकली संत तलवारों व छुरों से आपस में लड़ कर मर गए। अनजान व्यक्ति इन्हें महात्मा समझता है परंतु सतनाम तथा सारनाम बिना जीव विकार ग्रस्त ही रहता है। चाहे कितना ही सिद्धि युक्त क्यों न हो जाए। जैसे दुर्वासा जी ने बच्चों के मजाक करने मात्र से शाप दिया जिससे भगवान कष्ण व यादव कुल नष्ट हो गया।

ऋषि वशिष्ठ जी, ऋषि विश्वामित्र जी को राज ऋषि कह कर पुकारते थे। जिस से विश्वामित्र जी अपमान समझते थे तथा वशिष्ठ जी से कहते थे कि आप मुझे ब्रह्म ऋषि कहो परन्तु वशिष्ठ उन्हें राज ऋषि ही कह कर सम्बोधित करते थे। इस इर्ष्या वश विश्वामित्र जी ने वशिष्ठ जी के सौ पुत्रों की हत्या कर दी। एक बार रात्रि के समय श्री विश्वामित्र जी ऋषि वशिष्ठ की हत्या करने के उद्देश्य से उसी वक्ष पर छुप कर बैठ गया। जिस वक्ष के नीचे वशिष्ठ जी सन्धया आरती करते थे। संध्या आरती के पश्चात् उपस्थित शिष्यों ने वशिष्ठ जी से कहा हे गुरूदेव! विश्वामित्र बड़ा दुष्ट है जिसने हमारे सौ गुरू भाईयों की हत्या कर दी। तब वासिष्ठ जी ने कहा बच्चों! विश्वामित्र जैसा महान ऋषि एक भी नहीं है यदि उनमें अभिमान तथा क्रोध न हो। अपने शत्रु के द्वारा अपनी प्रसंशा सुनकर ऋषि विश्वामित्र आत्मविभोर हो गए तथा ऊपर से टहनी पकड़ कर रोते हुए वक्ष से नीचे उतरे तथा वाशिष्ठ जी के चरण पकड़ कर अपने कुकत्य की क्षमा याचना की। तब ऋषि वाशिष्ठ जी ने ऋषि विश्वामित्र जी से कहा आओं ब्रह्म ऋषि। आज आप में अभिमान व क्रोध का नामोनिशान नहीं है। आज आप ब्रह्म ऋषि बने हो तो आगे से मैं ब्रह्म ऋषि कह के पुकारूंगा।

विचार करें:-- ऋषि विश्वामित्र जी ने बारह वर्ष घोर तप करके चमत्कारिक शाक्ति प्राप्त की। जिससे अपने भक्त त्रिशंकु के लिए अलग से स्वर्ग रचना करने को तैयार हो गए थे। स्वर्ग के राजा इन्द्र की प्रार्थना पर तथा त्रिशंकु को इन्द्र द्वारा स्वर्ग में स्थान देने की स्वीकति के उपरान्त उद्देश्य बदला था। फिर भी अभिमान व ईर्षावश वशिष्ठ के मासूम बच्चों की हत्या कर डाली। ऋषि वशिष्ठ जी के कारनामे आप जी ने पहले पढ़ लिए हैं। इसीलिए कहा है कि ये सर्व साधक सत्य साधना रहित हैं। मुक्त नहीं हो सकते।S

संपट शिला कूं साहिब कहते, चेतनसार चलावैं हैं।
अंधा जगत पूजारी जाका, दूनिया कै मन भावैं हैं।।
पारख लीजै शब्द पतीजै, शालिग शिला पूजावैं हैं।
तुलसी तोरि मरोरैं मूरख, जड़ पर फूल चढावैं हैं।।
ककड़ भांग तमाखू पीवैं, बकरे काटि तलावै हैं।

सन्यासी शंकर कूं भूले, बंब महादे ध्यावैं हैं।।
ये दश नाम दया नहीं जानै, गेरु कपड रंगावैं हैं।
पार ब्रह्म सैं परचे नांहि, शिव करता ठहरावैं हैं।।
धूमर पान आकाश मुनी मुख, सुच्चित आसन लावैं हैं।
या तपसेती राजा होई, द्वंद धार बह जावैं हैं।।
आसन करै कपाली ताली, ऊपर चरण हलावैं हैं।
अजपा सेती मरहम नांहीं, सब दम खाली जावैं हैं।।
चार संप्रदा बावन द्वारे, वैरागी अब जावैं हैं।
कूड़े भेष काल का बाना, संतौं देखि रिसावैं हैं।।
त्रिकाली अस्नान करैं, फिर द्वादस तिलक बनावैं हैं।
जल के मच्छा मुक्ति न होई, निश दिन प्रबी न्हावैं हैं।।
सालोक, सामिप्य, सायुज्य,सारूप कहलावैं हैं।
चार मुक्ति में महरम नांही, आगे की क्या पावैं हैं।।
विश्वामित्र सुनि विस्तारा, सौ पुत्र बशिष्ट के मारा।
राज ऋषि सैं बहुत रिसाये, ब्रह्म ऋषि से रीझ रिझाये।।
ज्ञान बिचित्र जोग अपारा, सर्व लक्षण सब से शिरदारा।
ऋग यजु साम अथर्वण भाषै। जामे नाम मूल नहीं राखैं।।
यौह बी बहदा है ———————।।
काया माया पिण्ड रु प्राणा, जामैं बसै अलह रहिमाना।
दासगरीब मिहरसैं पाईये, देवल धाम न भटका खाईये।।

भावार्थ :- संत गरीबदास जी को यह तत्वज्ञान परमेश्वर कबीर जी से प्राप्त हुआ था। वाणियों में बताया है कि ये सर्व साधु-महात्मा श्री विष्णु सतगुण तथा श्री शिव जी तमगुण के उपासक हैं जिनकी भक्ति करने वालों को गीता अध्याय 7 श्लोक 12-15 तथा 20-23 में राक्षस स्वभाव को धारण किए हुए, मनुष्यों में, दूषित कर्म करने वाले मूर्ख बताया है। प्रथम तो इनकी साधना शास्त्रविधि के विपरित है। दूसरे ये नशा भी करते हैं। जिस कारण से ये अपना अनमोल मानव जीवन तो नष्ट करते ही हैं, जो इनके अनुयाई बनते हैं, उनको भी नरक का भागी बनाते हैं। उनका भी अनमोल मानव जीवन नष्ट करके पाप इकट्ठा करते हैं। जिस कारण से गीता में इसी अध्याय 17 में कहा है कि उनको नरक में डाला जाता है।

ये लोग चारों वेदों (ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद) को पढ़ते तो हैं, परंतु वेदों में स्पष्ट किया है (यजुर्वेद अध्याय 40 मंत्र 15 में) कि ओम् (ॐ) नाम का जाप करो, अन्य पाखण्ड व कर्मकाण्ड मत करो। ये साधक ॐ नाम को मूल रूप में भक्ति का आधार नहीं रखते। अन्य मनमाने नाम व मनमानी अन्य साधना करते हैं। इसलिए इनकी मुक्ति नहीं होती।

संत गरीबदास जी ने स्पष्ट किया है कि हे साधक! सतगुरू की मेहर यानि कपा से सत्य साधना प्राप्त कर। अन्य साधना देवल (देवालय यानि मंदिर) व धामों में ना भटक।

।।सत साहेब।।

❑❑❑

।।सतरहवें अध्याय के अनुवाद सहित श्लोक।।

परमात्मने नमः

अथ सप्तदशोऽध्यायः

विशेष :- अर्जुन ने पूछा कि हे भगवन! शास्त्र विधि को त्याग कर साधना करने वालों अर्थात् तीनों गुणों (रजगुण ब्रह्मा जी, सतगुण विष्णु जी, तमगुण शिव जी) तथा इनसे भी नीचे भूत-पितर, यज्ञ, भैरव आदि की साधना करने वालों का स्वभाव कैसा होता है?

अध्याय 17 का श्लोक 1 (अर्जुन उवाच)

ये शास्त्रविधिमुत्सृज्य यजन्ते श्रद्धयान्विताः।
तेषां निष्ठा तु का कृष्ण सत्त्वमाहो रजस्तमः। १।

ये, शास्त्रविधिम्, उत्सज्य, यजन्ते, श्रद्धया, अन्विताः,
तेषाम्, निष्ठा, तु, का, कष्ण, सत्त्वम्, आहो, रजः, तमः।।1।।

अनुवाद : (कष्ण) हे कष्ण! (ये) जो मनुष्य (शास्त्रविधिम्) शास्त्रविधिको (उत्सज्य) त्यागकर (श्रद्धया) श्रद्धासे (अन्विताः) युक्त हुए (यजन्ते) देवादिका पूजन करते है (तेषाम्) उनकी (निष्ठा) स्थिति (तु) फिर (का) कौन-सी (सत्त्वम्) सात्विकी है (आहो) अथवा (रजः) राजसी (तमः) तामसी? (1)

केवल हिन्दी : हे कष्ण! जो मनुष्य शास्त्रविधिको त्यागकर श्रद्धासे युक्त हुए देवादिका पूजन करते है उनकी स्थिति फिर कौन-सी सात्विकी है अथवा राजसी तामसी? (1)

विशेष :- अध्याय 17 श्लोक 2 से 22 तक उन शास्त्र विधि त्याग कर मनमाना आचरण अर्थात् अपने-अपने स्वभाववश साधना करने वाले साधकों द्वारा किए जाने वाले धार्मिक पूजाओं का वर्णन है जिसको गीता अध्याय 16 श्लोक 23-24 में व्यर्थ कहा है। इसी लिए अर्जुन ने उपरोक्त इसी अध्याय 17 के श्लोक 1 में पूछा है, उसी का उत्तर देते हुए प्रभु ने कहा है कि जिस साधक का पिछले मनुष्य जीवन में जैसा स्वभाव था उसी का प्रभाव कभी फिर मनुष्य जन्म प्राप्त होता है वह उसी भाव में भावित रहता है। समझाने से भी नहीं मानता, उसे राक्षस स्वभाव के जान। ऐसे साधकों का विवरण गीता अध्याय 7 श्लोक 12 से 15 तक पूर्ण व्याख्या के साथ कहा है। इसी का प्रमाण गीता अध्याय 8 श्लोक 5-6 में स्पष्ट किया है। इस अध्याय 17 के श्लोक 2 से 22 तक भले ही एक-दूसरे की तुलना का विवरण कहा है फिर भी शास्त्र विधि रहित ही है। जिस कारण श्रेयकर नहीं है। इस अध्याय 17 श्लोक 23 से अन्तिम 28 तक पूर्ण परमात्मा की प्राप्ति का विवरण है, जिसके लिए गीता अध्याय 4 श्लोक 34 व अध्याय 15 श्लोक 1 से 4 में विशेष प्रमाण है।

अध्याय 17 का श्लोक 2 (भगवान उवाच)

त्रिविधा भवति श्रद्धा देहिनां सा स्वभावजा।
सात्त्विकी राजसी चैव तामसी चेति तां शृणु। २।

त्रिविधा, भवति, श्रद्धा, देहिनाम्, सा, स्वभावजा,
सात्त्विकी, राजसी, च, एव, तामसी, च, इति, ताम्, श्रणु।।2।।

अनुवाद : (देहिनाम्) मनुष्योंकी (सा) वह (स्वभावजा) स्वभावसे उत्पन्न (श्रद्धा) श्रद्धा (सात्त्विकी) सात्विकी (च) और (राजसी) राजसी (च) तथा (तामसी) तामसी (इति) ऐसे (त्रिविधा) तीनों प्रकारकी (एव) ही (भवति) होती है। (ताम्) उस अज्ञान अंधकार रूप जंजाल को (श्रणु) सुन।(2)

केवल हिन्दी : मनुष्योंकी वह स्वभावसे उत्पन्न श्रद्धा सात्विकी और राजसी तथा तामसी ऐसे तीनों प्रकारकी ही होती है। उस अज्ञान अंधकार रूप जंजाल को सुन। (2)

अध्याय 17 का श्लोक 3

सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः। ३ ।

सत्त्वानुरूपा, सर्वस्य, श्रद्धा, भवति, भारत्,
श्रद्धामयः, अयम्, पुरुषः, यः, यच्छ्रद्धः, सः, एव, सः।।3।।

अनुवाद : (भारत्) हे भारत!(सर्वस्य) सभी की (श्रद्धा) श्रद्धा (सत्त्वानुरूपा) उनके अन्तःकरणके अनुरूप (भवति) होती है। (अयम्) यह (पुरुषः) व्यक्ति (श्रद्धामयः) श्रद्धामय है इसलिये (यः) जो पुरुष (यच्छ्रद्धः) जैसी श्रद्धावाला है, (सः) वह स्वयं (एव) वास्तव में (सः) वही है।(3)

केवल हिन्दी : हे भारत! सभी की श्रद्धा उनके अन्तःकरणके अनुरूप होती है। यह व्यक्ति श्रद्धामय है इसलिये जो पुरुष जैसी श्रद्धावाला है, वह स्वयं वास्तव में वही है।(3)

अध्याय 17 का श्लोक 4

यजन्ते सात्त्विका देवान्यक्षरक्षांसि राजसाः।
प्रेतान्भूतगणांश्चान्ये यजन्ते तामसा जनाः। ४ ।

यजन्ते, सात्त्विकाः, देवान्, यक्षरक्षांसि, राजसाः,
प्रेतान्, भूतगणान्, च, अन्ये, यजन्ते, तामसाः, जनाः।।4।।

अनुवाद : (सात्त्विकाः) सात्विक पुरुष (देवान्) श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी, श्री शिव जी आदि देवताओं को (यजन्ते) पूजते हैं, (राजसाः) राजस पुरुष (यक्षरक्षांसि) यक्ष और राक्षसोंको तथा (अन्ये) अन्य जो (तामसाः) तामस (जनाः) मनुष्य हैं वे (प्रेतान्) प्रेत (च) और (भूतगणान्) भूतगणोंको (यजन्ते) पूजते हैं तथा मुख्य रूप से श्री शिव जी को भी इष्ट मानते हैं।(4)

केवल हिन्दी : सात्विक पुरुष श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी, श्री शिव जी आदि देवताओं को पूजते हैं, राजस पुरुष यक्ष और राक्षसोंको तथा अन्य जो तामस मनुष्य हैं वे प्रेत और भूतगणोंको पूजते हैं तथा मुख्य रूप से श्री शिव जी को भी इष्ट मानते हैं।(4)

अध्याय 17 का श्लोक 5

अशास्त्रविहितं घोरं तप्यन्ते ये तपो जनाः।
दम्भाहङ्कारसंयुक्ताः कामरागबलान्विताः। ५ ।

अशास्त्रविहितम्, घोरम्, तप्यन्ते, ये, तपः, जनाः,
दम्भाहंकारसंयुक्ताः, कामरागबलान्विताः।।5।।

अनुवाद : (ये) जो (जनाः) मनुष्य (अशास्त्रविहितम्) शास्त्रविधि से रहित केवल मनमाना (घोरम्) घोर (तपः) तपको (तप्यन्ते) तपते हैं तथा (दम्भाहंकारसंयुक्ताः) पाखण्ड और अहंकारसे

युक्त एवं (कामरागबलान्विताः) कामना के आसक्ति और भक्ति बलके अभिमानसे भी युक्त हैं।(5)

केवल हिन्दी : जो मनुष्य शास्त्रविधिसे रहित केवल मन माना घोर तपको तपते हैं तथा पाखण्ड और अहंकारसे युक्त एवं कामना के आसक्ति और भक्ति बलके अभिमानसे भी युक्त हैं।(5)

अध्याय 17 का श्लोक 6

कर्शयन्तः शरीरस्थं भूतग्राममचेतसः।
मां चैवान्तःशरीरस्थं तान्विद्ध्यासुरनिश्चयान्। ६ ।

कर्शयन्तः, शरीरस्थम्, भूतग्रामम्, अचेतसः, माम्,
च, एव, अन्तःशरीरस्थम्, तान्, विद्धि, आसुरनिश्चयान्।।6।।

अनुवाद : (शरीरस्थम्) शरीर में रहने वाले (भूतग्रामम्) प्राणियों के मुखिया - ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा गणेश व प्रकति को व (माम्) मुझे (च) तथा (एव)इसी प्रकार (अन्तःशरीरस्थम्) शरीर के हृदय कमल में जीव के साथ रहने वाले पूर्ण परमात्मा को (कर्शयन्तः) परेशान करने वाले (तान्) उनको (अचेतसः) अज्ञानियोंको (आसुरनिश्चयान्) राक्षसस्वभाववाले (एव) ही (विद्धि) जान। गीता अध्याय 13 श्लोक 17 तथा अध्याय 18 श्लोक 61 में कहा है कि पूर्ण परमात्मा विशेष रूप से सर्व प्राणियों के हृदय में स्थित है।(6)

केवल हिन्दी : शरीर में रहने वाले प्राणियों के मुखिया - ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा गणेश व प्रकति को व मुझे तथा इसी प्रकार शरीर के हृदय कमल में जीव के साथ रहने वाले पूर्ण परमात्मा को परेशान करने वाले उनको अज्ञानियोंको राक्षसस्वभाववाले ही जान। गीता अध्याय 13 श्लोक 17 तथा अध्याय 18 श्लोक 61 में कहा है कि पूर्ण परमात्मा विशेष रूप से सर्व प्राणियों के हृदय में स्थित है।(6)

अध्याय 17 का श्लोक 7

आहारस्त्वपि सर्वस्य त्रिविधो भवति प्रियः।
यज्ञस्तपस्तथा दानं तेषां भेदमिमं शृणु। ७ ।

आहारः, तु, अपि, सर्वस्य, त्रिविधः, भवति, प्रियः,
यज्ञः, तपः, तथा, दानम्, तेषाम्, भेदम्, इमम्, श्रणु।।7।।

अनुवाद : (आहारः) भोजन (अपि) भी (सर्वस्य) सबको अपनी अपनी प्रकतिके अनुसार (त्रिविधः) तीन प्रकारका (प्रियः) प्रिय (भवति) होता है (तु) इसलिए (तथा) वैसे ही (यज्ञः) यज्ञ (तपः) तप और (दानम्) दान भी तीन-तीन प्रकारके होते हैं (तेषाम्) उनके (इमम्) इस (भेदम्) भेदको तू मुझसे (श्रणु) सुन।(7)

केवल हिन्दी : भोजन भी सबको अपनी अपनी प्रकतिके अनुसार तीन प्रकारका प्रिय होता है इसलिए वैसे ही यज्ञ तप और दान भी तीन-तीन प्रकारके होते हैं उनके इस भेदको तू मुझसे सुन।(7)

अध्याय 17 का श्लोक 8

आयुःसत्त्वबलारोग्य-
सुखप्रीतिविवर्धनाः ।
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या-
आहाराः सात्त्विकप्रियाः। ८ ।

आयुः सत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः, रस्याः,
स्निग्धाः, स्थिराः, हृद्याः, आहाराः, सात्त्विकप्रियाः।।8।।

अनुवाद : (आयुःसत्त्वबल आरोग्य सुखप्रीति विवर्धनाः) आयु, बुद्धि, बल, आरोग्य, सुख और प्रीतिको बढ़ानेवाले (रस्याः) रसयुक्त (स्निग्धाः) चिकने और (स्थिराः) स्थिर रहनेवाले तथा (हृद्याः) स्वभावसेही मनको प्रिय ऐसे (आहाराः) आहार अर्थात् भोजन करनेके पदार्थ (सात्त्विकप्रियाः) सतोगुण प्रधान अर्थात् विष्णु के उपासक को जिनका विष्णु उपास्य देव है। उनको ऊपर लिखे आहार करना पसंद होते हैं।(8)

केवल हिन्दी : आयु, बुद्धि, बल, आरोग्य, सुख और प्रीतिको बढ़ानेवाले रसयुक्त चिकने और स्थिर रहनेवाले तथा स्वभावसेही मनको प्रिय ऐसे आहार अर्थात् भोजन करनेके पदार्थ सतोगुण प्रधान अर्थात् विष्णु के उपासक को जिनका विष्णु उपास्य देव है। उनको ऊपर लिखे आहार करना पसंद होते हैं।(8)

अध्याय 17 का श्लोक 9

कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः।
आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः। ९ ।

कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः,
आहाराः, राजसस्य, इष्टाः, दुःखशोकामयप्रदाः।।9।।

अनुवाद : (कटुअम्ल लवण अत्युष्ण तीक्ष्ण रूक्ष विदाहिनः) कड़ुवे, खट्टे, लवणयुक्त बहुत गरम, तीखे, रूखे, दाहकारक और (दुःखशोक आमयप्रदाः) दुःख चिन्ता तथा रोगोंको उत्पन्न करनेवाले (आहाराः) आहार (राजसस्य) राजस पुरुषको (इष्टाः) रजोगुण प्रधान अर्थात् जिनका ब्रह्मा उपास्य देव है उनको ऊपर लिखे आहार स्वीकार होते हैं। क्योंकि हिरणाकशिपु राक्षस ने ब्रह्मा की उपासना की थी।(9)

केवल हिन्दी : कड़ुवे, खट्टे, लवणयुक्त बहुत गरम, तीखे, रूखे, दाहकारक और दुःख चिन्ता तथा रोगोंको उत्पन्न करनेवाले आहार राजस पुरुषको रजोगुण प्रधान अर्थात् जिनका ब्रह्मा उपास्य देव है उनको ऊपर लिखे आहार स्वीकार होते हैं। क्योंकि हिरणाकशिपु राक्षस ने ब्रह्मा की उपासना की थी।(9)

अध्याय 17 का श्लोक 10

यातयामं गतरसं पूति पर्युषितं च यत्।
उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम्। १०।

यातयामम्, गतरसम्, पूति, पर्युषितम्, च, यत्,
उच्छिष्टम्, अपि, च अमेध्यम्, भोजनम्, तामसप्रियम्।।10।।

अनुवाद : (यत्) जो (भोजनम्) भोजन (यातयामम्) अधपका (गतरसम्) रसरहित (पूति) दुर्गन्धयुक्त (पर्युषितम्) बासी (च) और (उच्छिष्टम्) उच्छिष्ट है (च) तथा जो (अमेध्यम्) अपवित्र (अपि) भी है वह भोजन (तामसप्रियम्) तामस पुरुषको प्रिय होता है। तमोगुण प्रधान व्यक्तियों का उपास्य देव शिव है तथा वे उनसे निम्न स्तर के भूत प्रेतों को पूजते हैं उनको आहार ऊपर लिखित पसंद होता है।(10)

केवल हिन्दी : जो भोजन अधपका रसरहित दुर्गन्धयुक्त बासी और उच्छिष्ट है तथा जो अपवित्र भी है वह भोजन तामस पुरुषको प्रिय होता है। तमोगुण प्रधान व्यक्तियों का उपास्य देव शिव है तथा वे उनसे निम्न स्तर के भूत प्रेतों को पूजते हैं उनको आहार ऊपर लिखित पसंद होता है। (10) {इस श्लोक 11 में शास्त्र विधि अनुसार पूर्ण संत से तीन मंत्र का जाप (जिनमें एक ओ३म नाम है तथा तत् – सत् सांकेतिक हैं) प्राप्त करके पाँचों यज्ञादि भी प्रतिफल इच्छा न करके करनी चाहियें, अन्यथा इच्छा रूपी की गई यज्ञ का फल पूर्ण नहीं है।}

अध्याय 17 का श्लोक 11

अफलाकाङ्क्षिभिर्यज्ञो विधिदृष्टो य इज्यते।
यष्टव्यमेवेति मनः समाधाय स सात्त्विकः। ११।

अफलाकाङ्क्षिभिः, यज्ञः, विधिदष्टः, यः, इज्यते,
यष्टव्यम्, एव, इति, मनः, समाधाय, सः, सात्त्विकः।।11।।

अनुवाद : (यः) जो (विधिदष्टः) शास्त्रविधिसे नियत (यज्ञः) यज्ञ (यष्टव्यम्, एव) करना ही कर्तव्य है (इति) इस प्रकार (मनः) मनको (समाधाय) समाधान करके (अफलाकाङ्क्षिभिः) फल न चाहनेवाले पुरुषोंद्वारा (इज्यते) किया जाता है (सः) वह (सात्त्विकः) सात्त्विक है।(11)

केवल हिन्दी : जो शास्त्रविधिसे नियत यज्ञ करना ही कर्तव्य है इस प्रकार मनको समाधान करके फल न चाहनेवाले पुरुषोंद्वारा किया जाता है वह सात्त्विक है।(11)

विशेष :- भले ही उपरोक्त श्लोक 11 में सात्विक यज्ञ का वर्णन भेद विधान अनुसार कहा है परन्तु गीता अध्याय 4 श्लोक 34 में वर्णित तत्वदर्शी संत मिले बिना यह सात्विक साधना भी व्यर्थ है क्योंकि अध्याय 17 श्लोक 1 में अर्जुन ने शास्त्र विधि त्याग कर मनमाना आचरण करने वालों के विषय में पूछा है जिसको गीता अध्याय 16 श्लोक 23-24 में व्यर्थ बताया है। इसलिए यहाँ केवल स्वभाववश मनमाना आचरण करने वालों का ही विवरण चल रहा है। यह साधना भी व्यर्थ है।

अध्याय 17 का श्लोक 12

अभिसन्धाय तु फलं दम्भार्थमपि चैव यत्।
इज्यते भरतश्रेष्ठ तं यज्ञं विद्धि राजसम्। १२।

अभिसन्धाय, तु, फलम्, दम्भार्थम्, अपि, च, एव, यत्,
इज्यते, भरतश्रेष्ठ, तम्, यज्ञम्, विद्धि, राजसम्।।12।।

अनुवाद : (तु) परंतु (भरतश्रेष्ठ) हे अर्जुन! (दम्भार्थम्, एव) केवल दम्भाचरण के ही लिये (च) अथवा (फलम्) फलको (अपि) भी (अभिसन्धाय) दष्टिमें रखकर (यत्) जो यज्ञ (इज्यते) किया जाता है (तम्) अंधेरे वाले नरक में ले जाने वाली (यज्ञम्) यज्ञ अर्थात् धार्मिक अनुष्ठान को (राजसम्) राजस (विद्धि) जान।(12)

केवल हिन्दी : परंतु हे अर्जुन! केवल दम्भाचरण के ही लिये अथवा फलको भी दष्टिमें रखकर जो यज्ञ किया जाता है अंधेरे वाले नरक में ले जाने वाली यज्ञ अर्थात् धार्मिक अनुष्ठान को राजस जान।(12)

अध्याय 17 का श्लोक 13

विधिहीनमसृष्टान्नं मन्त्रहीनमदक्षिणम्।
श्रद्धाविरहितं यज्ञं तामसं परिचक्षते। १३।

विधिहीनम्, असष्टान्नम्, मन्त्रहीनम्, अदक्षिणम्,
श्रद्धाविरहितम्, यज्ञम्, तामसम्, परिचक्षते।।13।।

अनुवाद : (विधिहीनम्) शास्त्रविधिसे रहित (असष्टान्नम्) अन्नदानसे रहित (मन्त्रहीनम्) बिना वास्तवकि मन्त्रोंके (अदक्षिणम्) बिना दक्षिणा के, बिना दीक्षा-उपदेश लिए और (श्रद्धाविरहितम्) बिना श्रद्धाके किये जानेवाले (यज्ञम्) अर्थात् धार्मिक अनुष्ठान को (तामसम्) तामस यज्ञ (परिचक्षते) कहते हैं।(13)

केवल हिन्दी : शास्त्रविधिसे रहित अन्नदानसे रहित बिना वास्तवकि मन्त्रोंके बिना दक्षिणा के, बिना दीक्षा-उपदेश लिए और बिना श्रद्धाके किये जानेवाले अर्थात् धार्मिक अनुष्ठान को तामस यज्ञ कहते हैं।(13)

अध्याय 17 का श्लोक 14

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम्।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते।१४।

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनम्, शौचम्, आर्जवम्,
ब्रह्मचर्यम्, अहिंसा, च, शारीरम्, तपः, उच्यते।।14।।

अनुवाद : (देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनम्) दैवी वति वाले व्यक्ति अर्थात संत, ब्राह्मण, गुरु और ज्ञानीजनोंका आदर (शौचम्) पवित्रता (आर्जवम्) आधीनी (ब्रह्मचर्यम्) ब्रह्मचर्य (च) और (अहिंसा) अहिंसा यह (शारीरम्) शरीरसम्बन्धी (तपः) तप (उच्यते) कहा जाता है। परन्तु सर्व शास्त्र विधि रहित है जिस कारण से व्यर्थ साधना है। क्योंकि गीता अध्याय 16 श्लोक 23-24 में शास्त्र विधि त्याग कर मनमाना आचरण करने को व्यर्थ बताया है।(14)

केवल हिन्दी : दैवी वति वाले व्यक्ति अर्थात संत, ब्राह्मण, गुरु और ज्ञानीजनोंका आदर पवित्रता आधीनी ब्रह्मचर्य और अहिंसा यह शरीरसम्बन्धी तप कहा जाता है। परन्तु सर्व शास्त्र विधि रहित है जिस कारण से व्यर्थ साधना है। क्योंकि गीता अध्याय 16 श्लोक 23-24 में शास्त्र विधि त्याग कर मनमाना आचरण करने को व्यर्थ बताया है।(14)

अध्याय 17 का श्लोक 15

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते।१५।

अनुद्वेगकरम्, वाक्यम्, सत्यम्, प्रियहितम्, च, यत्,
स्वाध्यायाभ्यसनम्, च, एव, वाङ्मयम्, तपः, उच्यते।।15।।

अनुवाद : (यत्) जो (अनुद्वेगकरम्) उद्वेग न करनेवाला (प्रियहितम्) प्रिय और हितकारक (च) एवं (सत्यम्) यथार्थ (वाक्यम्) भाषण है (च) तथा जो (स्वाध्याय अभ्यसनम्) धार्मिक-शास्त्रोंके पठनका एवं परमेश्वरके नाम जापका अभ्यास (एव) ही (वाङ्मयम्) वाणीसम्बन्धी (तपः) तप (उच्यते) कहा जाता है।(15)

केवल हिन्दी : जो उद्वेग न करनेवाला प्रिय और हितकारक एवं यथार्थ भाषण है तथा जो धार्मिक-शास्त्रोंके पठनका एवं परमेश्वरके नाम जापका अभ्यास ही वाणीसम्बन्धी तप कहा जाता है।(15)

अध्याय 17 का श्लोक 16

मनःप्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः।
भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते। १६।

मनः प्रसादः, सौम्यत्वम्, मौनम्, आत्मविनिग्रहः,
भावसंशुद्धिः, इति, एतत्, तपः, मानसम्, उच्यते।।16।।

अनुवाद : (मनःप्रसादः) मनकी प्रसन्नता (सौम्यत्वम्) शान्तभाव (मौनम्) भगवान की चर्चा के ईलावा अन्य सांसारिक बातों में चुपी (आत्मविनिग्रहः) प्रत्येक विचार का निग्रह और (भावसंशुद्धिः) भावोंकी भलीभाँति पवित्रता (इति) इस प्रकार (एतत्) यह (मानसम्) मन सम्बन्धी (तपः) तप (उच्यते) कहा जाता है।(16)

केवल हिन्दी : मनकी प्रसन्नता शान्तभाव भगवान की चर्चा के ईलावा अन्य सांसारिक बातों में चुपी प्रत्येक विचार का निग्रह और भावोंकी भलीभाँति पवित्रता इस प्रकार यह मन सम्बन्धी तप कहा जाता है।(16)

अध्याय 17 का श्लोक 17

श्रद्धया परया तप्तं तपस्तत्त्रिविधं नरैः।
अफलाकाङ्क्षिभिर्युक्तैः सात्त्विकं परिचक्षते। १७।

श्रद्धया, परया, तप्तम्, तपः, तत्, त्रिविधम्, नरैः,
अफलाकाङ्क्षिभिः, युक्तैः, सात्त्विकम्, परिचक्षते।।17।।

अनुवाद : (अफलाकाङ्क्षिभिः) फलको न चाहनेवाले (युक्तैः) शास्त्रविधि अनुसार भक्ति में लीन (नरैः) पुरुषोंद्वारा (परया) परम (श्रद्धया) श्रद्धासे (तप्तम्) तपे हुए (तत्) उस पूर्वोक्त (त्रिविधम्) तीन प्रकारके (तपः) तपको (सात्त्विकम्) सात्विक (परिचक्षते) कहते हैं।(17)

केवल हिन्दी : फलको न चाहनेवाले शास्त्रविधि अनुसार भक्ति में लीन पुरुषोंद्वारा परम श्रद्धासे तपे हुए उस पूर्वोक्त तीन प्रकारके तपको सात्विक कहते हैं।(17)

अध्याय 17 का श्लोक 18

सत्कारमानपूजार्थं तपो दम्भेन चैव यत्।
क्रियते तदिह प्रोक्तं राजसं चलमध्रुवम्। १८।

सत्कारमानपूजार्थम्, तपः, दम्भेन, च, एव, यत्,
क्रियते, तत्, इह, प्रोक्तम्, राजसम्, चलम्, अध्रुवम्।।18।।

अनुवाद : (यत्) जो (तपः) तप (सत्कारमानपूजार्थम्) सत्कार मान रूपी पूजाके लिये (एव) ही (च) और (दम्भेन) पाखण्डसे (क्रियते) किया जाता है (तत्) वह (अध्रुवम्) अस्थाई (चलम्)नाशवान तप (इह) यहाँ (राजसम्)राजस (प्रोक्तम्)कहा गया है।(18)

केवल हिन्दी : जो तप सत्कार मान रूपी पूजाके लिये ही और पाखण्ड से किया जाता है वह अस्थाई नाशवान तप यहाँ राजस कहा गया है।(18)

अध्याय 17 का श्लोक 19

मूढग्राहेणात्मनो यत्पीडया क्रियते तपः।
परस्योत्सादनार्थं वा तत्तामसमुदाहृतम्। १९।

मूढग्राहेण, आत्मनः, यत्, पीडया, क्रियते, तपः,
परस्य, उत्सादनार्थम्, वा, तत्, तामसम्, उदाहृतम्।।19।।

अनुवाद : (यत्) जो (तपः) तप (मूढग्राहेण) मूढतापूर्वक हठसे (आत्मनः)अपने मन, वाणी और शरीरकी (पीडया) पीड़ाके सहित (वा) अथवा (परस्य) दूसरेका (उत्सादनार्थम्) अनिष्ट करने के लिये (क्रियते) किया जाता है (तत्) वह तप (तामसम्) तामस (उदाहृतम्) कहा गया है। (इसी का प्रमाण गीता अध्याय 3 श्लोक 6 में भी है।)(19)

केवल हिन्दी : जो तप मूढ़तापूर्वक हठ से अपने मन, वाणी और शरीर की पीड़ा के सहित अथवा दूसरे का अनिष्ट यानि बुरा करने के लिए किया जाता है। वह तप तामस कहा गया है।(यही प्रमाण गीता अध्याय 3 श्लोक 6 में भी है।)(19)

अध्याय 17 का श्लोक 20

दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे।
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम्। २०।

दातव्यम्, इति, यत्, दानम्, दीयते, अनुपकारिणे,
देशे, काले, च, पात्रे, च, तत्, दानम्, सात्त्विकम्, स्मतम्।।20।।

अनुवाद : (दातव्यम्) दान देना ही कर्तव्य है (इति) ऐसे भावसे (यत्) जो (दानम्) दान (देशे च काले) समय और स्थिति (च) और (पात्रे) दान देने योग्य व्यक्ति के प्राप्त होने पर (अनुपकारिणे) उसके बदले में अपनी भलाई अर्थात् फल की इच्छा न रखते हुए (दीयते) दिया जाता है (तत्) वह (दानम्) दान (सात्त्विकम्) सात्विक (स्मतम्) कहा गया है।(20)

केवल हिन्दी : दान देना ही कर्तव्य है ऐसे भावसे जो दान समय और स्थिति और दान देने योग्य व्यक्ति के प्राप्त होने पर उसके बदले में अपनी भलाई अर्थात् फल की इच्छा न रखते हुए दिया जाता है वह दान सात्विक कहा गया है।(20)

अध्याय 17 का श्लोक 21

यत्तु प्रत्युपकारार्थं फलमुद्दिश्य वा पुनः।
दीयते च परिक्लिष्टं तद्दानं राजसं स्मृतम्। २१।

यत्, तु, प्रत्युपकारार्थम्, फलम्, उद्दिश्य, वा, पुनः,
दीयते, च, परिक्लिष्टम्, तत्, दानम्, राजसम्, स्मतम्।।21।।

अनुवाद : (तु) किंतु (यत्) जो दान (प्रत्युपकारार्थम्) बदले में लाभ के लिए (वा) अथवा (पुनः) फिर (फलम्) फलके (उद्दिश्य) उदे्श्य (दीयते) दिया जाता है (च) तथा (परिक्लिष्टम्) क्लेशपूर्वक अर्थात् न चाहते हुए पर्ची काटने पर दुःखी मन से दिया जाता है (तत्) वह (दानम्) दान (राजसम्) राजस (स्मतम्) कहा गया है।(21)

केवल हिन्दी : किंतु जो दान बदले में लाभ के लिए अथवा फिर फलके उदे्श्य दिया जाता है तथा क्लेशपूर्वक अर्थात् न चाहते हुए पर्ची काटने पर दुःखी मन से दिया जाता है वह दान राजस कहा गया है।(21)

अध्याय 17 का श्लोक 22

अदेशकाले यद्दानमपात्रेभ्यश्च दीयते।
असत्कृतमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतम्। २२।

अदेशकाले, यत्, दानम्, अपात्रेभ्यः, च, दीयते,

असत्कतम्, अवज्ञातम्, तत्, तामसम्, उदाहृतम्।।22।।

अनुवाद : (यत्) जो (दानम्) दान (अवज्ञातम्) गुरु की आज्ञा का उलंघन करके (असत्कतम्) अनादर करके (च) और (अदेशकाले) अनुचित समय स्थिति में (अपात्रेभ्यः) पूर्ण गुरु के बिना कुपात्र को (दीयते) दिया जाता है (तत्) वह दान (तामसम्) तामस (उदाहृतम्) कहा गया है।(22)

केवल हिन्दी : जो दान गुरु की आज्ञा का उलंघन करके अनादर करके और अनुचित समय स्थिति में पूर्ण गुरु के बिना कुपात्र को दिया जाता है वह दान तामस कहा गया है।(22)

विशेष :- निम्न श्लोक 23 से 28 तक पूर्ण परमात्मा की प्राप्ति का विवरण कहा है तथा उसके लिए विशेष विवरण गीता अध्याय 8 श्लोक 5 से 10 व 12-13 अध्याय 4 श्लोक 34 व अध्याय 15 श्लोक1 से 4 व अध्याय 18 श्लोक 61,62,64,66 में विस्तत कहा है।

अध्याय 17 का श्लोक 23

ॐ तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः।
ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा। २३।

ॐ, तत्, सत्, इति, निर्देशः, ब्रह्मणः, त्रिविधः, स्मतः,

ब्राह्मणाः, तेन, वेदाः, च, यज्ञाः, च, विहिताः, पुरा।।23।।

अनुवाद : (ॐ)ओं मन्त्र ब्रह्म का(तत्) तत् यह सांकेतिक मंत्र परब्रह्म का (सत्) सत् यह सांकेतिक मन्त्र पूर्णब्रह्म का है (इति) ऐसे यह (त्रिविधः) तीन प्रकार के (ब्रह्मणः) पूर्ण परमात्मा के नाम सुमरण का (निर्देशः) आदेश (स्मतः) कहा है (च) और (पुरा) सष्टिके आदिकालमें (ब्राह्मणाः) विद्वानों ने (तेन) उसी (वेदाः) तत्वज्ञान के आधार से वेद (च) तथा (यज्ञाः) यज्ञादि (विहिताः) रचे। उसी आधार से साधना करते थे।(23)

केवल हिन्दी : ओं मन्त्र ब्रह्म का तत् यह सांकेतिक मंत्र परब्रह्म का सत् यह सांकेतिक मन्त्र पूर्णब्रह्म का है ऐसे यह तीन प्रकार के पूर्ण परमात्मा के नाम सुमरण का आदेश कहा है और सष्टिके आदिकालमें विद्वानों ने उसी तत्वज्ञान के आधार से वेद तथा यज्ञादि रचे। उसी आधार से साधना करते थे।(23)

अध्याय 17 का श्लोक 24

तस्मादोमित्युदाहृत्य यज्ञदानतपःक्रियाः।
प्रवर्तन्ते विधानोक्ताः सततं ब्रह्मवादिनाम्। २४।

तस्मात्, ओम्, इति, उदाहृत्य, यज्ञदानतपःक्रियाः,

प्रवर्तन्ते, विधानोक्ताः, सततम्, ब्रह्मवादिनाम्।।24।।

अनुवाद : (तस्मात्) इसलिये (ब्रह्मवादिनाम्) भगवान की स्तुति करनेवालों तथा (विधानोक्ताः) शास्त्रविधिसे नियत क्रियाऐं बताने वालों की (यज्ञदानतपःक्रियाः) यज्ञ, दान और तप व स्मरण क्रियाएँ (सततम्) सदा (ओम्) 'ॐ' (इति) इस नामको (उदाहृत्य) उच्चारण करके ही (प्रवर्तन्ते) आरम्भ होती हैं अर्थात् तीनों नामों के जाप में ओं से ही स्वांस द्वारा प्रारम्भ किया जाता है।(24)

केवल हिन्दी : इसलिये भगवान की स्तुति करनेवालों तथा शास्त्रविधिसे नियत क्रियाऐं बताने वालों की यज्ञ, दान और तप व स्मरण क्रियाएँ सदा 'ॐ' इस नामको उच्चारण करके ही आरम्भ होती हैं अर्थात् तीनों नामों के जाप में ओं से ही स्वांस द्वारा प्रारम्भ किया जाता है।(24)

अध्याय 17 का श्लोक 25

तदित्यनभिसन्धाय फलं यज्ञतपःक्रियाः।
दानक्रियाश्च विविधाः क्रियन्ते मोक्षकाङ्क्षिभिः। २५।

तत्, इति, अनभिसन्धाय, फलम्, यज्ञतपःक्रियाः,
दानक्रियाः, च, विविधाः, क्रियन्ते, मोक्षकाङ्क्षिभिः।।25।।

अनुवाद : (तत्) अक्षर पुरूष अर्थात् परब्रह्म के तत् मन्त्र के जाप (इति) पर स्वांस इति अर्थात् अन्त होता है तथा (फलम्) फलको (अनभिसन्धाय) न चाहकर (विविधाः) नाना प्रकारकी (यज्ञतपःक्रियाः) यज्ञ, तपरूप क्रियाएँ (च) तथा (दानक्रियाः) दानरूप क्रियाएँ (मोक्षकाङ्क्षिभिः) कल्याण की इच्छावाले अर्थात् केवल जन्म-मत्यु से पूर्ण छुटकारा चाहने वाले पुरुषोंद्वारा (क्रियन्ते) की जाती हैं अर्थात् यह तत जाप ''सोहं'' मन्त्र है जो परब्रह्म का जाप मन्त्र है और सतनाम के स्वांस द्वारा जाप में तत् मन्त्र पर स्वांस का इति अर्थात् अन्त होता है।(25)

केवल हिन्दी : अक्षर पुरुष अर्थात् परब्रह्म के तत् मन्त्र के जाप पर स्वांस इति अर्थात् अन्त होता है तथा फलको न चाहकर नाना प्रकारकी यज्ञ, तपरूप क्रियाएँ तथा दानरूप क्रियाएँ कल्याण की इच्छावाले अर्थात् केवल जन्म-मत्यु से पूर्ण छुटकारा चाहने वाले पुरुषोंद्वारा की जाती हैं अर्थात् यह तत जाप ''सोहं'' मन्त्र है जो परब्रह्म का जाप मन्त्र है और सतनाम के स्वांस द्वारा जाप में तत् मन्त्र पर स्वांस का इति अर्थात् अन्त होता है।(25)

अध्याय 17 का श्लोक 26

सद्भावे साधुभावे च सदित्येतत्प्रयुज्यते।
प्रशस्ते कर्मणि तथा सच्छब्दः पार्थ युज्यते। २६।

सद्भावे, साधुभावे, च, सत्, इति, एतत्, प्रयुज्यते,
प्रशस्ते, कर्मणि, तथा, सत्, शब्दः, पार्थ, युज्यते।।26।।

अनुवाद : (सत्) 'सत्' (इति) यह सारनाम तत् मन्त्र के अन्त में (एतत्) इसी पूर्ण परमात्मा के नाम के साथ (सद्भावे) सत्यभावमें (च) और (साधुभावे) श्रेष्ठभावमें (प्रयुज्यते) प्रयोग किया जाता है (तथा) तथा (पार्थ) हे पार्थ! (प्रशस्ते) उत्तम (कर्मणि) कर्ममें ही (सत् शब्दः) सत् शब्द अर्थात् सारनाम का (युज्यते) प्रयोग किया जाता है अर्थात् पूर्वोक्त दोनों मन्त्रों ओं व तत् के अन्त में जोड़ा जाता है।(26)

केवल हिन्दी : 'सत्' यह सारनाम तत् मन्त्र के अन्त में इसी पूर्ण परमात्मा के नाम के साथ सत्यभावमें और श्रेष्ठभावमें प्रयोग किया जाता है तथा हे पार्थ! उत्तम कर्ममें ही सत् शब्द अर्थात् सारनाम का प्रयोग किया जाता है अर्थात् पूर्वोक्त दोनों मन्त्रों ओं व तत् के अन्त में जोड़ा जाता है।(26)

अध्याय 17 का श्लोक 27

यज्ञे तपसि दाने च स्थितिः सदिति चोच्यते।
कर्म चैव तदर्थीयं सदित्येवाभिधीयते। २७।

यज्ञे, तपसि, दाने, च, स्थितिः, सत्, इति, च, उच्यते,
कर्म, च, एव, तदर्थीयम्, सत्, इति, एव, अभिधीयते।।27।।

अनुवाद : (च) तथा (यज्ञे) यज्ञ (तपसि) तप (च) और (दाने) दानमें जो (स्थितिः) स्थिति है

(एव) भी (सत्) 'सत्' (इति) इस प्रकार (उच्यते) कही जाती हे (च) और (तदर्थीयम्) उस परमात्माके लिये किए हुए (कर्म) शास्त्र अनुकूल किया भक्ति कर्म में (एव) ही वास्तव में (सत्) सत् शब्द के (इति) अन्त में कोई अन्य शब्द (अभिधीयते) तत्वदर्शी संत द्वारा कहा जाता है। जैसे सत् साहेब, सतगुरू, सत् पुरुष, सतलोक, सतनाम आदि शब्द बोले जाते हैं।(27)

केवल हिन्दी : तथा यज्ञ तप और दानमें जो स्थिति है भी 'सत्' इस प्रकार कही जाती हे और उस परमात्माके लिये किए हुए शास्त्र अनुकूल किया भक्ति कर्म में ही वास्तव में सत् शब्द के अन्त में कोई अन्य शब्द तत्वदर्शी संत द्वारा कहा जाता है। जैसे सत् साहेब, सतगुरू, सत् पुरुष, सतलोक, सतनाम आदि शब्द बोले जाते हैं।(27)

अध्याय 17 का श्लोक 28

अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत्।
असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह।२८।

अश्रद्धया, हुतम्, दत्तम्, तपः, तप्तम्, कतम्, च, यत्,
असत्, इति, उच्यते, पार्थ, न, च, तत्, प्रेत्य, नो, इह।।28।।

अनुवाद : (पार्थ) हे अर्जुन! (अश्रद्धया) बिना श्रद्धा के (हुतम्) किया हुआ हवन (दत्तम्) दिया हुआ दान एवं (तप्तम्) तपा हुआ (तपः) तप (च) और (यत्) जो कुछ भी (कतम्) किया हुआ शुभ कर्म है वह समस्त (असत्) 'असत्' अर्थात् व्यर्थ है (इति) इस प्रकार (उच्यते) कहा जाता है इसलिये (तत्) वह (नो) हमारे लिए न तो (इह) इस लोकमें लाभदायक है (च) और (न) न (प्रेत्य) मरनेके बाद ही।(28)

केवल हिन्दी : हे अर्जुन! बिना श्रद्धा के किया हुआ हवन दिया हुआ दान एवं तपा हुआ तप और जो कुछ भी किया हुआ शुभ कर्म है वह समस्त 'असत्' अर्थात् व्यर्थ है इस प्रकार कहा जाता है इसलिये वह हमारे लिए न तो इस लोकमें लाभदायक है और न मरनेके बाद ही।(28)

(इति अध्याय सतरहवाँ)

❑❑❑

❋ अठारहवां अध्याय ❋

।।दिव्य सारांश।।

गीता अध्याय 18 के श्लोक 1 में अर्जुन ने प्रश्न किया कि हे महाबाहो! मैं सन्यास तथा त्याग के तत्व यानि निष्कर्ष को भिन्न-भिन्न जानना चाहता हूँ।

''त्यागने और न त्यागने योग्य कर्मों का ज्ञान''

❖ *गीता अध्याय 18 श्लोक नं. 2 :- गीता ज्ञान देने वाले ने अन्य से सुना हुआ ज्ञान इस प्रकार बताया कि (कवय) कवि जन मनोकामना पूर्ण करने की इच्छा से किए भक्ति कर्मों को त्याग कहते हैं। अन्य अपने आपको विचक्षण यानि विचार कुशल मानने वाले कर्मों के फल के त्याग को त्याग कहते हैं।*

❖ *गीता अध्याय 18 श्लोक नं. 3 :- (एके) एक-आधा यानि कोई-कोई (मनीषिणः) अपने को विद्वान मानने वाले कहते हैं कि सर्व कर्म दोषयुक्त हैं। इसलिए सब त्यागने योग्य हैं और दूसरे कहते हैं कि यज्ञ, दान, तप रूप कर्म त्यागने योग्य नहीं हैं।*

❖ *गीता अध्याय 18 श्लोक नं. 4 :- हे शेर पुरूष अर्जुन! त्याग और सन्यास इन दोनों में से पहले त्याग के विषय में मेरा विश्वास सुन। त्याग तीन प्रकार का कहा है।*

❖ *गीता अध्याय 18 श्लोक नं. 5 :- जो भक्त के कर्तव्य कर्म यज्ञ यानि धार्मिक अनुष्ठान जैसे दान, तप आदि स्वधर्म पालन करने में संघर्ष में होने वाले कष्ट को तप कहा जाता है। ये कर्म त्यागने योग्य नहीं हैं। वे तो अवश्य करने के हैं क्योंकि यज्ञ दान और तप कर्म ही विद्वान भक्तों की आत्मा को पवित्र करने वाले हैं।*

❖ *गीता अध्याय 18 श्लोक नं. 6 :- :- इन उपरोक्त कर्मों के फल की इच्छा व संसार में आसक्ति त्याग करके करना चाहिए। यह मेरा निश्चय किया हुआ श्रेष्ठ मत यानि विचार है।*

❖ *गीता अध्याय 18 श्लोक नं. 7 :- :- इसलिए नियत यानि शास्त्र अनुकूल कर्म का त्याग उचित नहीं है। जैसे इसी अध्याय 18 के श्लोक 48 में कहा है कि अग्नि में धुंवे की तरह प्रत्येक काम में कुछ दोष भी होता है। जैसे धुँवा होने के के भय से भोजन बनाने के लिए जलाने वाली अग्नि को त्यागा नहीं जाता। इसी प्रकार अनिवार्य शुभ कर्म में भले ही कुछ पाप भी होता है, वे त्यागे नहीं जा सकते। जैसे किसान खेत जोतता है। उसमें करोड़ों जीवों की एक दिन में हिंसा होती है तो भी उसे त्यागा नहीं जा सकता। किसान का उद्देश्य जीव हिंसा करना नहीं है, अपना कर्तव्य कर्म करना है। (पापों से मुक्ति की विधि है कि पूर्ण संत से दीक्षा लेकर भक्ति करने से कर्म प्रतिदिन ही समाप्त होते रहते हैं। जैसे प्रतिदिन पहनने वाले वस्त्र मैले होते हैं, परंतु प्रतिदिन साबुन-पानी से साफ करने से मैल साथ की साथ समाप्त हो जाता है। जो गुरू बनाकर शास्त्र विधि अनुसार भक्ति नहीं करते, उनको वे पाप लगते रहते हैं। जिस कारण से उनको वे सर्व कर्म भोगने पड़ते हैं। सतगुरू के भक्त को भोगने नहीं पड़ते। इसलिए गुरु से दीक्षा लेकर भक्ति करना उचित तथा अनिवार्य है।) मोह यानि अज्ञानतावश भावुक होकर कर्तव्य कर्मों को त्यागना यानि सन्यास लेकर जंगल में चला जाना तामस त्याग है।*

❖ *गीता अध्याय 18 श्लोक नं. 8 :- जो यह कहकर सब कर्मों के त्याग का विचार करता है कि सब कर्म कष्टदायक हैं, वह राजस त्याग कहा है। उसे उस त्याग का फल कभी नहीं मिलता।*

❖ *गीता अध्याय 18 श्लोक नं. 9 :- हे अर्जुन! कर्तव्य कर्म यानि शास्त्रविहित कर्म करना कर्तव्य है। इस भाव से आसक्ति और फल का त्याग करके किया जाता है, वही सात्विक त्याग माना गया है।*

❖ *गीता अध्याय 18 श्लोक नं. 10 :- हे अर्जुन! जो मनुष्य अकुशल कर्मी से द्वेष नहीं करता तथा कुशल कर्मों से प्रभावित होकर उस पर आसक्त नहीं होता। केवल अपना कर्म यानि कार्य ही सिद्ध करता है। वह सत्वगुण प्रधान व्यक्ति संशयरहित बुद्धिमान त्यागी है।*

उदाहरण :- जैसे खिलाड़ी खेलते हैं तो दर्शक अच्छा खेलने वाले के प्रसंशक बनते हैं। दूसरे को धिक्कारते हैं। बुद्धिमान वह है जो खेल देखे ही नहीं, अपने कार्य में व्यस्त रहे।

अन्य उदाहरण :- सिनेमा देखने वाले अपना समय और धन नष्ट करते हैं तथा जो धन कमाने के लिए नाच-कूद करते हैं, उनको अपना मनपसंद अभिनेता या अभिनेत्री मानते हैं, वे मूर्ख हैं।

❖ *गीता अध्याय 18 श्लोक नं. 11 :- क्योंकि किसी भी शरीरधारी मनुष्य द्वारा सम्पूर्णता से सब कर्मों का त्याग किया जाना संभव नहीं है। जो कर्म प्रतिफल की इच्छा न करके भक्ति कर्म करता है, वह वास्तव में सन्यासी है।*

❖ *गीता अध्याय 18 श्लोक नं. 12 :- जो प्राणी शास्त्रविधिरहित कर्म बिना उपरोक्त त्याग भाव से करते हैं, उनको (प्रेत्य) मत्यु के बाद अच्छे-बुरे सर्व फल भोगने पड़ेंगे। जैसे पुण्यों के प्रभाव से पालतु कुत्ता बनकर अच्छी सुविधा लेगा जो उसके पुण्यों का फल होगा। बुरे कर्म के फल रूप में नरक तथा सूअर आदि-आदि जीवों के शरीर प्राप्त करेगा। किंतु जो शास्त्रविधि अनुसार साधना करते हैं। उनको यह कष्ट नहीं होगा।*

❖ *गीता अध्याय 18 श्लोक नं. 13 :- काल ब्रह्म ने कहा कि अब मैं (सांख्ये) वेदांत में कहे विचार यानि मत बताता हूँ। मेरे से भली-भांति सुन।*

❖ *गीता अध्याय 18 श्लोक नं. 14 :- वेदांत में पाँच कारण बताए हैं :- अधिष्ठान, कर्तापन, करण यानि कर्म इन्द्रियों व ज्ञान इन्द्रियों द्वारा किए गए कर्म तथा चेष्टाऐं, ये चार तथा पाँचवां कारण दैव यानि परमात्मा की अदश्य शक्ति से पूर्व संस्कार से होना। जैसे कहते हैं कि दैव योग से एक तैराक नदी पर उपस्थित था जिसने जल में डूबते बच्चे को बचा लिया।*

❖ *गीता अध्याय 18 श्लोक नं. 15 :- जो व्यक्ति मन, कर्म, वाणी से अथवा न्याय या अन्याय अर्थात् अच्छे-बुरे कर्म जो कुछ भी बताता है, उसके उपरोक्त ये पाँच कारण हैं (पूर्ण संत प्राप्ति के पश्चात् केवल शुभ कर्म प्राणी करता है जैसे नौका बिना खेवट के इधर-उधर भटकती है तो उसके कई कारण होते हैं, हवा का तेज चलना, जल की लहरें, दरिया के पानी का बहाव, जल की मछलियों की उछल-कूद से उत्पन्न पानी की हलचल। जब नौका को खेवट मिल जाता है तो वह उनके वश नहीं रहती, भले ही वे गतिरोध फिर भी रहते हैं। सतगुरू शरण में आने से पहले मानव (स्त्री-पुरूष) की जीवन रूपी नौका संसार रूपी दरिया में बिना खेवट वाली नौका की तरह होती है जो प्रारब्ध कर्मों के कारण सुख-दुःख प्राप्त करके चलती है यानि मानव पूर्व जन्म के कर्मों के भोग प्राप्त करता है। सतगुरू शरण के पश्चात् खेवट वाली नौका की तरह जिंदगी चलती है यानि दुःख समाप्त हो जाते हैं। सुख प्राप्त रहते हैं।इस श्लोक 15 का तात्पर्य यह है।)*

❖ *गीता अध्याय 18 श्लोक नं. 16 :- इस श्लोक में उस जड़मति व्यक्ति के विषय में कहा है जिसे सतगुरू नहीं मिला। वह स्वयं को सर्व अच्छे-बुरे कर्मों का कर्ता मानता है, उसकी मलीन बुद्धि है।*

❖ *गीता अध्याय 18 श्लोक नं. 17 :- इस श्लोक में उस तत्वदर्शी संत के शिष्य का वर्णन है जो सर्व कर्म सतगुरू का आदेश मानकर करता है। उसकी स्थिति उस सैनिक जैसी होती है जो अपने राजा की ओर से दूसरे शत्रु राजा की सेना से लड़ता है। वह जो शत्रु के सैनिक मारता है, उसमें वह दोषी नहीं है। यदि स्वयं मर जाता है तो स्वर्ग में जाता है। गीता अध्याय 2 श्लोक 37 में प्रमाण है। इसलिए इस श्लोक 17 में कहा कि वह सैनिक अपनी इच्छा से किसी को नहीं मारता। अपने राजा के आदेश से युद्ध करता है। इसलिए कहा है कि वह लोगों को मारकर भी नहीं मारता। तत्वज्ञान में बताया है कि :-*

जो इच्छा कर मारे नहीं, बिन इच्छा मर जाय, कह कबीर तास का, पाप नहीं लगाऐ।।

जैसे कर्तव्य कर्मों में प्रतिदिन पोंचा लगाने में, खाना बनाने के लिए, लकड़ी व गैस आदि से अग्नि जलाने में, कषि करने में, मजदूरी करने में आदि-आदि दैनिक कार्यों में जो जीव मरते हैं, उसका पाप पूर्ण संत के उपदेशी कबीर परमेश्वर के भक्त को नहीं लगते। अन्य जो भक्ति नहीं करते या गुरू बनाकर शास्त्रों के विपरित साधना करते हैं या अन्य देवी-देवताओं तथा ब्रह्म तक की साधना गुरू बनाकर भी करते हैं। उनको दैनिक उपरोक्त कार्यों के सब पाप लगते हैं। उन व्यक्तियों के पुण्यों तथा पापों को भिन्न-भिन्न लिखा जाता है। उनको दोनों प्रकार के फल स्वर्ग-नरक व अन्य प्राणियों के शरीर में भोगने पड़ते हैं, परंतु पूर्ण संत के शिष्य कबीर परमेश्वर के भक्त को वे पाप नहीं लगते। जैसे कोई व्यक्ति चालक प्रमाण पत्र (Driving License) के साथ कार-गाड़ी चलाता है। यदि उससे कोई दुर्घटना हो जाती है, तो चालक प्रमाण पत्र वाले को दोषी नहीं माना जाता यदि शराब आदि नशे का सेवन न कर रखा हो तो। इसी प्रकार सतगुरू के शिष्य को कर्तव्य कर्मों के पापों का फल नहीं भोगना पड़ता।

❖ *गीता अध्याय 18 श्लोक नं. 18 :- ज्ञाता यानि ज्ञान जानने वाला अर्थात् ज्ञानी, ''ज्ञान'' जैसे गीता ज्ञान, इसको जानने वाला ज्ञानी। ज्ञेय का अर्थ है जानने योग्य। जैसे भक्त के लिए ज्ञेय (अध्यात्म ज्ञान द्वारा) परमात्मा है, यह तीन प्रकार की कर्म प्रेरणा है। कर्ता जो कार्य करता है, करण जिस कारण से कर्म किया जा रहा है तथा कर्म जो करना है। वह क्रिया भी तीन प्रकार का कर्म संग्रह है।*

❖ *गीता अध्याय 18 श्लोक नं. 19 :- ज्ञान और कर्म तथा कर्ता गुणों के भेद से तीन-तीन प्रकार के ही कहे गए हैं। उनको भी तू मुझसे भली-भांति सुन।*

❖ *गीता अध्याय 18 श्लोक नं. 20 :- जिस ज्ञान से ज्ञानी पथक-पथक सब प्राणियों में एक अविनाशी परमात्मा के भाव को विभाग रहित देखता है यानि सर्व प्राणियों में परमात्मा की सत्ता देखता है। उस ज्ञान को तू सात्विक यानि सच्चा ज्ञान समझ।*

❖ *गीता अध्याय 18 श्लोक नं. 21 :- जो सर्व प्राणियों में परमात्म भाव को भिन्न-भिन्न यानि जीव को कर्ता देखता है, वह राजस ज्ञान जान।*

❖ *गीता अध्याय 18 श्लोक नं. 22 :- जो बिना सिर-पैर का ज्ञान है, वह तामस यानि अज्ञान है।*

❖ *गीता अध्याय 18 श्लोक नं. 23 :- कर्मों का भेद = जो कर्म शास्त्रविधि के अनुसार कर्तापन से रहित हैं। भक्ति कर्म का प्रतिफल न चाहकर किया गया कर्म बिना राग-द्वेष के किया गया हो, वह सात्विक कर्म कहा जाता है।*

❖ *गीता अध्याय 18 श्लोक नं. 24 :- परंतु जो कर्म फल की इच्छा तथा कठिन परिश्रम से किया जाता है जैसे खड़ा होकर तप करना, कावड़ लाने के लिए पैदल चलकर धार्मिक कर्म शास्त्रविरूद्ध*

करना राजस कर्म है।

❖ गीता अध्याय 18 श्लोक नं. 25 :- जो कर्म देखा-देखी बिना परिणाम विचार किया जाता है, वह तामस यानि अज्ञान आधार का कर्म है।

❖ गीता अध्याय 18 श्लोक नं. 26 :- अहंकार न करने वाला, अधिक संपत्ति संग्रह न करने वाला, धैर्य और उत्साह से युक्त कार्य सिद्ध होने तथा न होने में हर्ष-शोक विकारों से रहित है, वह कर्ता सात्विक कहा जाता है।

❖ गीता अध्याय 18 श्लोक नं. 27 :- जो राग-द्वेष करने वाला भक्ति को भौतिक सुख-सम्पत्ति की प्राप्ति के लिए करता है अर्थात् कर्मों का फल चाहने वाला लोभी है। दूसरों को स्वार्थवश दुःख देने वाला अशुद्धाचारी और हर्ष-शोक से ग्रस्त है, वह धार्मिक कर्म करने वाला यानि कर्ता राजस कहा गया है।

❖ गीता अध्याय 18 श्लोक नं. 28 :- जो अयुक्तः यानि भक्ति में नहीं लगा है, प्राकतः यानि भौतिकवादी स्तब्ध यानि हठी, धुर्त यानि शठ अर्थात् ठग, नैष्कतिकः यानि नाश करने वाला अर्थात् दूसरों की जीविका को नष्ट करने वाला, विषादी यानि खिन्न रहने वाला, जला-भुना स्वभाव वाला आलसः यानि आलसी और दीर्घ सुत्री यानि कार्य को लटकाने वाला कर्ता तामस यानि मूर्ख कहा है।

❖ गीता अध्याय 18 श्लोक नं. 29 :- इस श्लोक में कहा है कि बुद्धि तथा धारण शक्ति यानि धति भी गुणों के अनुसार तीन प्रकार के भेद वाली है, वह सुन।

❖ गीता अध्याय 18 श्लोक नं. 30 :- जो तत्वज्ञान के आधार से प्रवति मार्ग यानि कर्म करते-करते भक्ति करता है तथा उस भक्ति कर्म को फल प्राप्ति की इच्छा से नहीं करता जैसे यदि लड़का उत्पन्न हुआ तो सवामणी लगाऊँगा, नौकरी लगी तो कन्या जिमाऊँगा आदि-आदि की इच्छा बिना किया भक्ति कर्म प्रवति मार्ग कहा जाता है। निवति मार्ग यह अकर्म है। जैसे घर त्यागकर जंगल में चले जाना अकर्म है। शास्त्रविधि अनुसार कर्म कर्तव्य कर्म कहा जाता है और जो कर्म नहीं करने योग्य है, वह अकर्म कहा जाता है। उसको भय किन कर्मों से करना चाहिए तथा किन-किन कर्मों से को करने में व्यक्ति को निर्भय रहना चाहिए। इसको तथा बँधन व मोक्ष को यथार्थ जानती है, वह सात्विक बुद्धि है।

❖ गीता अध्याय 18 श्लोक नं. 31 :- जो दया, धर्म-अधर्म को तथा कर्तव्य-अकर्तव्य को यथार्थ नहीं जानता। उसकी बुद्धि राजस कही है।

❖ गीता अध्याय 18 श्लोक नं. 32 :- जो तामस यानि अज्ञान से घिरी हुई बुद्धि से अधर्म को धर्म मानता है तथा सर्व अर्थ विपरित लगाता है, वह तामस बुद्धि है।

❖ गीता अध्याय 18 श्लोक नं. 33 :- धति यानि धारण शक्ति वह है जो अव्याभीचारिणी धारण शक्ति से यानि एक परमात्मा के अतिरिक्त अन्य देव इष्ट धारण नहीं करती। मन प्राण यानि श्वांस और इन्द्रियों को एक प्रभु की भक्ति में धारण करता है। वह धति सात्विक है।

❖ गीता अध्याय 18 श्लोक नं. 34 :- परंतु हे पथु पुत्र अर्जुन! फल की इच्छा वाला मनुष्य जिस धारण शक्ति से अत्यंत आसक्ति धर्म, अर्थ और कर्मों को धारण करता है, वह धति राजसी है।

❖ गीता अध्याय 18 श्लोक नं. 35 :- हे पार्थ! दुष्ट बुद्धि वाला मनुष्य जिस धारण शक्ति के द्वारा निद्रा, भय, चिंता और दुःख को तथा उन्मतता यानि बकवाद को भी नहीं छोड़ता अर्थात् धारण किए रहता है। वह धारण शक्ति तामसी है।

''भक्तों का वर्तमान विष के तुल्य होता है और परिणाम अमृत के तुल्य होता है''

❖ *गीता अध्याय 18 श्लोक नं. 36-37 :- हे भरत श्रेष्ठ अर्जुन! तीन प्रकार के सुख को भी तू मुझसे सुन। भक्तों का प्रारम्भिक जीवन कष्टमय होता है क्योंकि वे परमात्मा की भक्ति, सेवा, दान आदि के अभ्यास में कष्ट उठाते हैं। जिस कारण से उनका वर्तमान जीवन विष के तुल्य दिखाई देता है, परंतु परिणाम में अमृत के तुल्य होता है क्योंकि परमात्मा की साधना से अमर लोक को प्राप्त होकर सदा सुखी रहता है, यह सात्विक सुख कहा गया है।*

''जो भक्ति नहीं करते उनका वर्तमान अमृत के तुल्य होता है और परिणाम विष के तुल्य होता है''

❖ *गीता अध्याय 18 श्लोक नं. 38 :- जो व्यक्ति पूर्व संस्कार से प्राप्त सुख यानि विषय भोग इन्द्रियों के भोग के संयोग से होता है, भोगकर आनंद मनाता है। उसका वर्तमान प्रारम्भिक जीवन अमृत के तुल्य प्रतीत होता है, परंतु परिणाम में विष के तुल्य है क्योंकि उसने अपने पूर्व जन्म के शुभ कर्मों को खर्च कर दिया। भविष्य के लिए भक्ति, दान, सेवा की नहीं, इसलिए नरक भोगेगा। अन्य प्राणियों के शरीरों में कष्ट पर कष्ट असँख्यों जन्मों तक कष्ट भोगेगा। इस तरह का सुख राजस कहा जाता है।*

❖ *गीता अध्याय 18 श्लोक नं. 39 :- जो व्यक्ति पूर्व संस्कार से प्राप्त सुख को भी ठीक से नहीं भोगता। जैसे कृपण (कंजूस) व्यक्ति के पास धन होता है तो भी उसका आनंद नहीं लेता। शुभ कर्म, भक्ति, सेवा, दान भी नहीं करता। उसका जीवन प्रारम्भ, वर्तमान तथा परिणाम में भी कष्टमय होता है। वह तामस सुख कहा जाता है। क्योंकि वह केवल इस बात से सुख मानता है कि मेरे पास करोड़ों रूपये हैं।*

❖ *गीता अध्याय 18 श्लोक नं. 40 :- इस संसार में सर्व देवता तथा मानव व दानव तीनों गुणों के प्रभाव से प्रभावित हैं यानि रजगुण ब्रह्मा जी के तथा सतगुण विष्णु के तथा तमगुण शिव जी के शरीर से गुणों की अदृश्य शक्ति निकल रही है। जैसे फूलों से सुगंध, मिर्च से निकलने वाली जलन प्रभाव करती है। उन तीनों गुणों के प्रभाव से वे स्वयं भी प्रभावित हैं। काल ब्रह्म के अन्य सर्व देवता व प्राणी भी प्रभावित हैं। सब कर्म करने के लिए विवश हैं।*

❖ *गीता अध्याय 18 श्लोक नं. 41 :- हे परन्तप अर्जुन! ब्राह्मण, क्षत्रीय, वैश्यों तथा शुद्रों के कर्म स्वभाव से उत्पन्न गुण के द्वारा बाँटे गए हैं।*

❖ *गीता अध्याय 18 श्लोक नं. 42 :- ब्राह्मण के कर्तव्य संसारिक कर्म तथा गुण इस प्रकार हैं :- शमः यानि संयम, दमः यानि इच्छाओं का दमन, तपः यानि स्वधर्म के पालन में कष्ट सहना, शौचम् यानि शरीर को स्वच्छ रखना, क्षान्तिः यानि दूसरों के अपराधों को क्षमा करना, आर्जवम् यानि सत्य निष्ठा, सरल स्वभाव, परमात्मा में श्रद्धा, ज्ञानम् यानि वेद शास्त्रों के ज्ञान को ठीक से समझना तथा विज्ञानम् यानि तत्वज्ञान को तत्वदर्शी से समझना जैसा गीता अध्याय 4 श्लोक 34 में निर्देश है। ये उपरोक्त कर्म एक ब्राह्मण यानि आध्यात्मिक गुरु के स्वाभाविक कर्म हैं।*

❖ *गीता अध्याय 18 श्लोक नं. 43 :- क्षत्रीय के शरीर में किए जाने वाले कर्तव्य कर्म :- शूरवीरता, तेज, धृतिः यानि धैर्य, समझदारी और युद्ध में न भागना, दान देना, क्षत्रीय के कर्म हैं।*

❖ *गीता अध्याय 18 श्लोक नं. 44 :- वैश्य के स्वाभाविक कर्तव्य कर्म :- खेती, गोपालन और*

क्रय-विक्रय यानि व्यापार वैश्य के स्वाभाविक कर्म हैं।

शुद्र के स्वाभाविक कर्म :- जातियों का विभाजन :- सर्वप्रथम सष्टि में कोई जाति नहीं थी। एक ही कुल के व्यक्तियों ने अपनी क्षमता के अनुसार कार्य बाँटे तथा उनको करने लगे। आगे चलकर उनकी संतान भी वही कार्य करने लगी। इस प्रकार जाति बनी। शुद्र वह वर्ग था जो घर की साफ-सफाई, झाडू-पोंचा करता था। अन्य व्यक्ति उसको अनाज व कपड़ा मेहनताना रूप में देने लगे। फिर रूपयों का चलन शुरू हुआ तो मजदूरी रूप में रूपये देना शुरू हुआ। वर्तमान में कोई शुद्र नहीं जाना जाता, न क्षत्रीय भिन्न रहा है क्योंकि समय के अनुसार सैना ने क्षत्रीय का स्थान ले लिया है जिसमें सब जातियों के युवा काम कर रहे हैं।

❖ *गीता अध्याय 18 श्लोक नं. 45 :- अपने-अपने स्वाभाविक कर्मों को करते हुए मनुष्य सतगुरू से दीक्षा लेकर जिस प्रकार से मनुष्य सिद्धि यानि परमात्मा की भक्ति से प्राप्त शक्ति को प्राप्त होता है, वह सुन।*

''गीता ज्ञान देने वाले से अन्य पूर्ण परमात्मा का ज्ञान''

❖ *गीता अध्याय 18 श्लोक नं. 46 :- अध्याय 18 के श्लोक 46 में गीता ज्ञान दाता ने अपने से अन्य उस परमेश्वर की भक्ति करने को कहा है। जिस परमेश्वर से सम्पूर्ण प्राणियों की उत्पत्ति हुई है। जिस परमेश्वर से यह समस्त जगत व्याप्त है यानि प्रकट व पालित है। परमेश्वर की अपने-अपने स्वाभाविक कर्म करते-करते अभ्यर्च्च यानि पूजा करके मनुष्य सिद्धि यानि परमात्मा की शक्ति को प्राप्त कर लेता है। भक्ति की शक्ति यानि सिद्धि शास्त्र अनुकूल भक्ति कर्मों से प्राप्त होती है। सिद्धि के द्वारा साधक अपने इष्ट देव यानि पूजित परमेश्वर को प्राप्त होता है। इसी परमात्मा की महिमा गीता अध्याय 2 श्लोक 17 में भी है।*

''शुद्र भी भगवान की भक्ति का अधिकारी है''

❖ *गीता अध्याय 18 श्लोक नं. 47 :- विशेष :- मेरे (रामपाल दास के) अतिरिक्त सर्व अनुवादकर्ताओं ने वही गलती इस श्लोक 47 के अनुवाद में दोहराई है जो गीता अध्याय 3 के श्लोक 35 में कर रखी है।*

अन्य अनुवादकों ने श्लोक 47 का अनुवाद इस प्रकार किया है जो अनुचित (गलत) है :- अच्छी प्रकार आचरण किए हुए दूसरे के धर्म से यानि धार्मिक साधना की क्रियाओं से गुणरहित यानि शास्त्रविधि विरूद्ध भी अपना धर्म यानि धार्मिक साधना श्रेष्ठ है क्योंकि स्वभाव से नीयत किए स्वधर्म के भक्ति कर्म को करता हुआ साधक पाप को प्राप्त नहीं होता।

विचार करें :- यदि इस अध्याय 18 के श्लोक 47 तथा अध्याय 3 के श्लोक 35 का यह अनुवाद उचित है तो फिर तो गीता के शेष सर्व ज्ञान की आवश्यकता ही समाप्त हो जाती है जिनमें कहा है कि (गीता अध्याय 16 श्लोक 23-24 में) :- जो साधक शास्त्रविधि को त्यागकर अपनी इच्छा से मनमाना आचरण करता है यानि मनमानी साधना करता है तो उसको न तो सुख प्राप्त होता है, न सिद्धि यानि आध्यात्मिक शक्ति जो मोक्ष में सहायक होती है तथा जिससे संसारिक कार्य सिद्ध होते हैं, प्राप्त होती है और न ही उसकी गति यानि मुक्ति होती है।(16/23)

इससे तेरे लिए कर्तव्य यानि जो भक्ति कर्म करने चाहिऐं और अकर्तव्य यानि जो भक्ति कर्म नहीं करने चाहिऐं, उनके निर्णय के लिए शास्त्र ही प्रमाण हैं।(16/24)

गीता अध्याय 15 के श्लोक 20 में कहा है कि गीता भी एक शास्त्र है। गीता शास्त्र के अध्याय 9 श्लोक 20-23 तथा 25, अध्याय 7 के श्लोक 12-15 तथा 20-23 में कहा है कि रजगुण ब्रह्मा जी, सतगुण विष्णु जी तथा तमगुण शिव जी को इष्ट मानकर भक्ति करने वालों का ज्ञान इन्हीं से मिलने वाली क्षिणिक सुख के द्वारा हरा जा चुका है। वे राक्षस स्वभाव को धारण किए हुए मनुष्यों में नीच, दूषित कर्म करने वाले मूर्ख मुझे यानि गीता ज्ञान दाता को भी नहीं भजते।

अन्य देवी-देवताओं को मैंने ही कुछ शक्ति दे रखी है जिससे उनके साधकों को कुछ लाभ प्राप्त होता है, परंतु उन (अल्पमेधसाम्) अल्पबुद्धि वालों यानि मूर्खों का वह फल नाशवान है। देवताओं के भक्त देवताओं को प्राप्त होते हैं। पितरों की पूजा करने वाले यानि श्राद्ध आदि-आदि कर्मकाण्ड करने वाले पितरों को प्राप्त होते हैं यानि पितर बनते हैं। भूतों की पूजा करने वाले भूत बनते हैं। गीता अध्याय 7 के ही श्लोक 18 में गीता ज्ञान देने वाले ने अपनी साधना से होने वाली गति यानि मुक्ति को भी अनुतमाम् गतिम् यानि अश्रेष्ठ गति कहा है। फिर गीता ज्ञान देने वाले ने गीता अध्याय 18 श्लोक 62 में अपने से अन्य परमेश्वर की शरण में जाने को कहा है तथा बताया है कि उस परमेश्वर की कपा से ही तू परम शांति को तथा सनातन परम धाम यानि अमर लोक को प्राप्त होगा। गीता शास्त्र के गूढ़ रहस्य को न समझकर अनुवादकों ने गीता अध्याय 18 श्लोक 47 तथा गीता अध्याय 3 श्लोक 35 का गलत अनुवाद किया है।

❖ *गीता अध्याय 18 श्लोक 47 का यथार्थ अनुवाद :- (विगुणः) गुण रहित (स्वनुष्ठितात्) स्वयं बनाया मनाना अर्थात् शास्त्रविधि रहित धार्मिक अनुष्ठान अच्छी प्रकार साज-बाज के साथ आचरण किए हुए (पर धर्मात्) दूसरे के धर्म यानि धार्मिक पूजा से (स्वधर्मः) अपना शास्त्रविधि अनुसार धार्मिक कर्म-पूजा (श्रेयान्) श्रेष्ठ है। (स्वभावनियतम्) अपने वर्ण के स्वाभाविक कर्म अर्थात् जो भी क्षत्रीय, वैश्य, ब्राह्मण तथा शुद्र वर्ण में उत्पन्न हैं, उन स्वाभाविक (कर्म) कर्मों को (कुर्वन) करता हुआ भक्ति करने से (किल्बिषम्) पाप को (न आप्नोति) प्राप्त नहीं होता।*

विशेष :- कर्मों के पाप किनको नहीं लगते, विस्तत जानकारी पढ़ें इसी अध्याय 18 के श्लोक 17 के सारांश में। पाठकों को अन्य अनुवादकर्ता या उनके पाठक भ्रमित करने के लिए कह सकते हैं कि इस अध्याय 18 के श्लोक 47 में अपने धर्म का भावार्थ केवल चारों वर्णों के कर्मों से है। याद रखें इसी अध्याय 18 के श्लोक 46 में गीता ज्ञान दाता ने अपने से अन्य परमेश्वर की पूजा अपने स्वाभाविक कर्म यानि क्षत्रीय-वैश्य, ब्राह्मण तथा शुद्र वाले कर्म करते-करते मनुष्य सिद्धि को प्राप्त करता है, जिस परमेश्वर ने सर्व प्राणियों की उत्पत्ति की है तथा जिससे यह सम्पूर्ण संसार व्याप्त है यानि धारण किया हुआ है। श्लोक 47 में भी धार्मिक भक्ति कर्मों का वर्णन है।

❖ *अध्याय 18 श्लोक 48 :- इस श्लोक में संसारिक कर्मों के विषय में कहा है कि जो व्यक्ति जिस वर्ण (क्षत्रीय, वैश्य, ब्राह्मण, शुद्र) में उत्पन्न है, उसके कर्म में पाप भी समाया है। जैसे ब्राह्मण हवन आदि करता है। उसमें जलने वाली अग्नि में सूक्ष्म जीवों की हिंसा होती है। वैश्य अपने खेत की पथ्वी को हल या ट्रैक्टर से गुड़ाई करता है। उससे जमीन में कीड़े-मकोड़े यानि भिन्न-भिन्न प्रकार के जीव मरते हैं।*

❖ *क्षत्रीय युद्ध में हिंसा करता है तथा सर्व वर्णों के व्यक्ति भोजन तैयार करते हैं, उसमें भी जीव हिंसा होती है।*

❖ *शुद्र साफ-सफाई आदि-आदि सेवा करता है। झाडू से सूक्ष्म जीव मरते हैं। इसलिए जैसे अग्नि में धुँआ होता है। धुँऐ के कारण अग्नि जलाना नहीं छोड़ा जा सकता। इसी प्रकार सर्व वर्णों के कर्मों*

में अग्नि में धुँऐ की तरह पाप भी होते हैं, परंतु ये कर्म शास्त्रोक्त तथा परमात्मा के आदेश होने से त्यागे नहीं जा सकते। इनको करते-करते परमात्मा की भक्ति पूर्ण सतगुरू यानि तत्वदर्शी संत से दीक्षा लेकर करने से पाप कर्म नहीं लगते। जैसे चालक प्रमाण पत्र वाले चालक से यदि दुर्घटना हो जाती है तो वह सीधा दोषी नहीं होता। यह नहीं कहा जा सकता कि इसको गाड़ी चलानी नहीं आती। जिसके पास ड्राईविंग लाईसेंस नहीं है, यदि उससे दुर्घटना हो जाए तो वह सीधा दोषी है।

विशेष :- इस विषय में अधिक जानकारी इसी अध्याय 18 के श्लोक 17 में पढ़ें।

अध्याय 18 के श्लोक 46, 47, 48 से यह भी सिद्ध होता है कि परमात्मा की भक्ति शुद्र भी कर सकता है। उसका भी मोक्ष संभव है।

❖ गीता अध्याय 18 श्लोक 49 :- इस श्लोक में भी गीता ज्ञान दाता से अन्य परमात्मा की भक्ति करने वाले की स्थिति बताई है। इसलिए उपरोक्त श्लोक 47 में भक्ति करने वाले धार्मिक कर्मों का ज्ञान है। इस श्लोक में कहा है सर्वत्र आसक्ति रहित बुद्धि वाला स्पंहारहित यानि संग्रह न करने वाला तथा बुरे कर्मों को न करने वाला जिसने अपनी आत्मा को ज्ञान से अनुचित कर्मों को न करने के लिए तैयार कर लिया है। वह आत्म विजयी तत्वज्ञान के द्वारा सन्यास की परिभाषा जानकर कर्म न त्यागकर बुराईयाँ त्यागकर भक्ति करने वाले द्वारा (पराम्) काल ब्रह्म से अन्य श्रेष्ठ मुक्ति को प्राप्त होता है जिससे (नैष्कर्म्य सिद्धम्) सर्व पाप कर्म नष्ट होने पर मुक्ति होती है। उस सिद्धि को प्राप्त होता है। नैष्कमर्य मुक्ति को प्राप्त प्राणी को सतलोक प्राप्त होता है। सत्यलोक में कर्म नहीं करने पड़ते। सर्व सुविधाऐं मुफ्त में प्राप्त होती हैं। गीता अध्याय 3 श्लोक 4 में भी प्रमाण है।

❖ गीता अध्याय 18 श्लोक 50 :- जो कि ज्ञान की श्रेष्ठ निष्ठा है याानि तत्वज्ञान का जो तात्पर्य है। उस सिद्धि यानि भक्ति के कारण प्राप्त आध्यात्मिक शक्ति को जिस प्रकार से प्राप्त होकर साधक (ब्रह्म) परमात्मा को (प्राप्तः) प्राप्त होता है। उस ज्ञान को हे कुन्तीपुत्र! तू मुझसे समझ।

❖ गीता अध्याय 18 श्लोक 51-53 :- इसमें बताया है कि तत्वज्ञान से विशुद्ध हुई बुद्धि से युक्त तत्वदर्शी संत का शिष्य खाने-पीने में संयम रखता है। विकारों से परहेज करता है। अच्छी धारणा वाला तथा एकान्त प्रिय होता है। संयमी बनकर बोलने में भी संयम रखता है। राग-द्वेष से दूर, काम, क्रोध, घमण्ड, अहंकार, परिग्रह यानि संग्रह का आदि का परित्याग करके निरंतर परमात्मा के विषय में विचार यानि ध्यान रखकर ध्यान यज्ञ करता हुआ शांत स्वभाव वाला साधक गीता ज्ञान दाता से अन्य सच्चिदानंद घन ब्रह्म मय यानि पूर्ण परमात्मा को प्राप्त करने के लिए योग्य होता है।

❖ गीता अध्याय 18 श्लोक 54 :- परमात्मा प्राप्ति के योग्य हुआ साधक न तो हानि होने पर शोक करता है, न इस संसार की वस्तुओं की इच्छा करता है। सर्व प्राणियों के प्रति समभाव रखने वाला मेरे वाली भक्ति से (पराम्) अन्य वास्तविक भक्ति को प्राप्त हो जाता है।

प्रथम मंत्र जो सात नाम का है, उसके जाप से साधक गीता अध्याय 18 श्लोक 51-53 में बताए विकार रहित हो जाता है। उसके पश्चात् दो नाम का जाप दिया जाता है। उसमें एक ओम् (ॐ) नाम भी जाप करने का दिया जाता है। यह काल ब्रह्म यानि क्षर पुरूष अर्थात् गीता ज्ञान देने वाले की वास्तविक भक्ति का नाम है। इसलिए इस अध्याय 18 के श्लोक 54 में गीता ज्ञान दाता काल ब्रह्म ने अपनी भक्ति कहा है। अपनी भक्ति से अन्य वास्तविक भक्ति की प्राप्ति योग्य होने की बात कही है। इसी अध्याय 18 के श्लोक 56 में स्पष्ट किया है कि मेरी इस भक्ति यानि ॐ नाम के जाप के करने वाली की रक्षा मैं करता हूँ। मेरे संरक्षण में मेरे में भी श्रद्धा रखने वाला मेरी कंपा यानि ॐ नाम की भक्ति के सहयोग से अविनाशी धाम को प्राप्त होता है।

❖ *गीता अध्याय 18 श्लोक 55 :- तत्वज्ञानी संत के सम्पर्क में आने से उसके द्वारा दिए ज्ञान से की गई भक्ति से दिव्य दष्टि खुल जाने से साधक मेरी क्षमता से परिचित हो जाता है। वह जान लेता है कि मैं (काल ब्रह्म) जो हूँ जितनी शक्ति वाला हूँ। उस भक्ति से मुझे तत्व से ठीक-ठीक जानकर कि मैं काल हूँ, नाशवान हूँ। मेरी भक्ति से प्राप्त होने वाली गति यानि मुक्ति अश्रेष्ठ (अनुत्तम) है। फिर वह तत्काल ही उस पूर्ण परमात्मा के परम पद में यानि सत्यलोक में (विशते) प्रवेश पाता है जो परमेश्वर गीता अध्याय 18 श्लोक श्लोक 46 में बताया है।*

भावार्थ :- उस परमात्मा में प्रवेश का भाव है कि दो नाम के जाप की भक्ति अधिक करने के पश्चात् साधक को ''सार नाम'' दिया जाता है जो परमेश्वर की सत्य भक्ति में भक्त प्रवेश करता है यानि दाखिला (Addmission) लेता है। उसके पश्चात् सत्यलोक में स्थाई स्थान प्राप्त करता है।

❖ *गीता अध्याय 18 श्लोक 56 :- इसमें स्पष्ट है कि काल ब्रह्म ने कहा है कि मेरी वास्तविक भक्ति मंत्र के जाप के प्रसाद यानि सदा से मेरे संरक्षण में अपने-अपने वर्ण वाले कर्म करता हुआ भी (शाश्वत् अव्ययम् पदम् आप्नोति) सनातन अविनाशी पद यानि अमर लोक प्राप्त होता है।*

❖ *गीता अध्याय 18 श्लोक 57-60 :- इन चारों श्लोकों में काल ब्रह्म यानि गीता ज्ञान देने वाला अर्जुन को युद्ध के लिए कह रहा है कि सर्व कर्मों को तू मुझ पर छोड़कर मेरे संरक्षण में रहकर मेरी बातों में चित्त रख। मेरे में चित्त रखने वाला होकर तू सर्व दुःखों यानि कर्म बंधन रूपी किले समान संकट को आसानी से पार कर जाएगा। यदि मेरी बातों पर ध्यान नहीं देगा तो नष्ट हो जाएगा।*

❖ *जो तू कह रहा है कि मैं युद्ध नहीं करूँगा, तेरा यह निश्चय मिथ्या है क्योंकि तेरा स्वभाव तुझे जबरदस्ती तुझे युद्ध कर्म लगा देगा।(18/59)*

❖ *गीता अध्याय 18 श्लोक 60 :- हे कुन्तीपुत्र! जिस अपने क्षत्रीय के कर्म को मोह के वश हुआ नहीं करना चाहता, उसको अपने पूर्व जन्म के संस्कार से बँधा हुआ परवश होकर करेगा।*

❖ *गीता अध्याय 18 श्लोक 61-62 :- इन दोनों श्लोकों में गीता ज्ञान दाता से अन्य पूर्ण परमात्मा का वर्णन है। उसी परमात्मा का वर्णन इसी अध्याय 18 के श्लोक 46 में किया है।*

गीता ज्ञान दाता ने कहा है कि हे अर्जुन! शरीर रूप यंत्र में आरूढ़ हुए सम्पूर्ण प्राणियों को अन्तर्यामी परमेश्वर उनके कर्मानुसार भ्रमण करवाता हुआ उनके हृदय में (तिष्ठति) विराजमान है यानि बैठा है।(18/61)

❖ *गीता अध्याय 18 श्लोक 62 :- हे भारत! तू सर्व भाव से उस परमेश्वर की शरण में जा। उस परमेश्वर की कपा से ही तू परम शांति को तथा सनातन परम धाम यानि सत्यलोक को प्राप्त होगा। इसी परमेश्वर की शरण में जाने के लिए इसी अध्याय 18 के श्लोक 66 में कहा है। इसी परमेश्वर को श्लोक 64 में गीता ज्ञान देने वाले ने अपना इष्ट देव यानि पूजित परमेश्वर बताया है।*

❖ *गीता अध्याय 18 श्लोक 63 :- श्रीमद्भगवत गीता में कुल अठारह अध्याय हैं। यह श्लोक नं. 63 इस अंतिम अध्याय का है। इसमें गीता ज्ञान देने वाले ने अर्जुन को सम्पूर्ण गीता के ज्ञान की याद दिलाई है। कहा है कि हे अर्जुन! (इति) इस प्रकार (गुह्यतात्) गोपनीय से भी (गुह्यतरम्) अति गोपनीय (ज्ञानम्) गीता शास्त्र का ज्ञान (मया) मेरे द्वारा (ते) तुझे (आख्यातम्) कह दिया है। अब तू (एतत्) इस गूढ़ गीता शास्त्र के ज्ञान को (अशेषेण) पूर्णतय (विमश्य) भली-भांति विचार कर जैसा चाहे वैसा कर।*

भावार्थ :- गीता का यह अठारहवाँ अध्याय अंतिम अध्याय है तथा इस अध्याय के अंत के श्लोक हैं। गीता ज्ञान दाता ने इस अध्याय 18 के श्लोक 63 में कहा है कि मैंने तेरे को गीता शास्त्र

में गोपनीय से भी अति गोपनीय ज्ञान कह दिया है। मैं काल हूँ।(11/32) मैं अपने वास्तविक स्वरूप में कभी किसी के समक्ष प्रकट नहीं होता यानि छिपा रहता हूँ। यह मेरा (अव्ययम्) अविनाशी (अनुतमम्) घटिया विधान है। मैं अपनी योगमाया यानि सिद्धि शक्ति से छिपा रहता हूँ।(अध्याय 7 श्लोक 24-25)

❖ *जो साधक रजगुण ब्रह्मा, सतगुण विष्णु तथा तमगुण शिव को इष्ट मानकर भक्ति करने में आरूढ़ है। उनका ज्ञान त्रिगुण माया यानि इन तीनों देवताओं से मिलने वाले क्षिणिक नाशवान लाभ के द्वारा हरा जा चुका है। वे राक्षस स्वभाव को धारण किए हुए मनुष्यों में नीच, दूषित कर्म करने वाले मूर्ख मेरी भक्ति नहीं करते। सब देवी-देवताओं को मैंने कुछ शक्ति दे रखी है, उसी से उनके पुजारियों को लाभ मिलता है। परंतु उन अल्पबुद्धि वालों यानि मूर्खों का वह लाभ नाशवान है। देवताओं को पूजने वाले देवताओं को प्राप्त होते हैं। मेरे भक्त मुझे प्राप्त होते हैं।(गीता अध्याय 7 श्लोक 12-15, 20-23)*

❖ *गीता ज्ञान दाता ने गीता अध्याय 2 श्लोक 12, अध्याय 4 श्लोक 5, अध्याय 10 श्लोक 2 में अपने को नाशवान यानि जन्म-मरण के चक्र में सदा रहने वाला बताया है। कहा है कि हे अर्जुन! तेरे और मेरे बहुत जन्म हो चुके हैं। तू नहीं जानता, मैं जानता हूँ।*

❖ *गीता अध्याय 8 श्लोक 5 तथा 7 में अपनी भक्ति करने को कहा है तथा युद्ध भी कर, निःसंदेह मुझे प्राप्त होगा, परंतु जन्म-मत्यु दोनों की बनी रहेगी। अपनी भक्ति का मंत्र अध्याय 8 के श्लोक 13 में बताया है कि (माम् ब्रह्म) मुझ ब्रह्म की भक्ति का केवल एक ओं (ॐ) अक्षर है। इस नाम का जाप अंतिम श्वांस तक करने वाले को इससे मिलने वाली गति यानि ब्रह्मलोक प्राप्त होता है। गीता अध्याय 8 के श्लोक 16 में स्पष्ट किया है कि ब्रह्मलोक में गए साधक भी पुनरावर्ती में हैं यानि ब्रह्मलोक में गए भक्त भी लौटकर संसार में जन्म लेते हैं। उनका भी जन्म-मरण का चक्र सदा बना रहेगा। युद्ध जैसे भयंकर कर्म भी करने पड़ेंगे। जिस कारण से काल ब्रह्म के पुजारियों को न तो शांति मिलेगी, न सनातन परम धाम जहाँ जाने के पश्चात् साधक कभी लौटकर संसार में नहीं आते। इसलिए गीता ज्ञान दाता ने गीता अध्याय 18 श्लोक 46 तथा 61-62 तथा 66 में कहा है कि हे भारत! तू सर्व भाव से उस परमेश्वर की शरण में जा जो गीता अध्याय 8 श्लोक 3 में मेरे से अन्य परम अक्षर ब्रह्म है। उस परमेश्वर की कपा से ही तू परम शांति को तथा सनातन परम धाम को प्राप्त होगा। अध्याय 18 के श्लोक 46 में यह भी स्पष्ट किया है कि वह परम अक्षर ब्रह्म वही परमात्मा है जिसने सर्व प्राणियों की उत्पत्ति की है तथा जिससे यह सम्पूर्ण जगत व्याप्त है। उसकी भक्ति अपने-अपने संसारिक स्वाभाविक वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रीय, वैश्य तथा शुद्र) के कर्म करता हुआ भी साधक परमगति को प्राप्त हो जाता है। गीता अध्याय 15 श्लोक 4 में कहा है कि तत्वदर्शी संत से तत्वज्ञान प्राप्ति के पश्चात् परमेश्वर के उस परम पद की खोज करनी चाहिए जहाँ जाने के पश्चात् लौटकर संसार में कभी नहीं आते। जिस परमेश्वर से संसार रूप वक्ष की प्रवति विस्तार को प्राप्त हुई है यानि जिस परमेश्वर ने संसार की रचना की है। (तम् एव) उसी (आद्यम् पुरूषम्) आदि यानि सनातन परमेश्वर की (प्रपद्ये) मैं शरण में हूँ। गीता ज्ञान दाता ने अध्याय 17 के श्लोक 23 में यह भी स्पष्ट किया है कि उस परम अक्षर ब्रह्म यानि सच्चिदानंद घन ब्रह्म की भक्ति का मंत्र तीन नामों का ॐ-तत्-सत् है। इसका स्मरण करके उसकी प्राप्ति होती है। अब तू विचार कर ले कि मेरी शरण में रहना है या उस परमेश्वर की शरण में जाना है। जो उचित लगे, वह कर। गीता अध्याय 18 श्लोक 63 का यह भावार्थ है।*

❖ *गीता अध्याय 18 श्लोक 64 :- इस श्लोक में भी स्पष्ट किया है कि गीता ज्ञान देने वाले का मेरा ''इष्टः'' यानि पूजित परमेश्वर भी वही परम अक्षर ब्रह्म यानि परमेश्वर ही है। कहा है कि हे अर्जुन! अति गोपनीय से भी गोपनीय गीता ज्ञान तुझे बता दिया।(गीता अध्याय 18 श्लोक 62 तक) अब सम्पूर्ण गोपनीय से अति गोपनीय मेरे वचन सुन जो तेरे हित में कहूँगा कि (इति) यह परमेश्वर जो अध्याय 18 के श्लोक 61-62, 46 में ऊपर बताया है जिसकी शरण में सर्व भाव से जाने को कहा है जो सर्व संष्टि का उत्पत्तिकर्ता है। (मे) मेरा (दृढ़म्) पक्के तौर पर (इष्टः) पूजित है यानि मेरा पूज्य देव भी यही है। गीता अध्याय 15 श्लोक 4 से भी स्पष्ट है कि मैं उसी की शरण में हूँ।*

विशेष :- मेरे (रामपाल दास के) अतिरिक्त सब अनुवादकों ने इस अध्याय 18 के श्लोक 64 में ''इष्टः'' शब्द का अर्थ प्रिय किया है। जबकि इन्हीं अनुवादकों ने अध्याय 18 के श्लोक 70 में ''इष्टः'' का अर्थ ''पूजित'' किया है। यहाँ श्लोक 64 में भी पूजित करना चाहिए था। यदि अन्य अनुवादकों की बात करें जिन्होंने इस अध्याय 18 के श्लोक 64 का अनुवाद इस प्रकार किया है :- हे अर्जुन! सम्पूर्ण गोपनीय से भी अति गोपनीय मेरे परम रहस्ययुक्त वचन को फिर सुन। तू मेरा (दृढ़म् इष्टः) अतिशय प्रिय है। इससे यह परम हितकारी वचन मैं तुझे कहूँगा। यह अनुवाद है अन्य अनुवादकों का अध्याय 18 श्लोक 64 का है। यदि यह ठीक मानें तो आगे गीता अध्याय 18 श्लोक 65 में वही बात दोहराई है जो अध्याय 8 के श्लोक 5 तथा 7 में कही है कि मुझ में मन वाला हो मेरा भक्त बन मुझको प्रणाम कर, मुझे ही प्राप्त होगा। मैं सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ। विचार करें कि यह वचन सम्पूर्ण गोपनीय से भी अतिशय गोपनीय कैसे हुआ? यह पहले कहा जा चुकाथा। गीता के विशेष गोपनीय ज्ञान के विषय में अध्याय 18 श्लोक 63 में कह ही दिया था। फिर और अति गोपनीय ज्ञान संबंधित वचन कौन-सा शेष रहा था। जो मैंने (रामपाल दास ने) गीता अध्याय 18 श्लोक 64 का अर्थ किया है, वह सत्य है।

गीता अध्याय 18 श्लोक 66 में भी गीता अध्याय 18 श्लोक 62 वाला ही वचन है कि उस परमेश्वर की शरण में जा। जो श्लोक 63 से पहले वर्णन आ चुका है जो गोपनीय से गोपनीय गीता ज्ञान का हिस्सा है। गीता अध्याय 18 श्लोक 63 में गोपनीय ज्ञान यानि जो गीता का ज्ञान पूर्व में दिया जा चुका है, के विषय में है। इस अध्याय 18 के श्लोक 64 में सम्पूर्ण गोपनीय से भी अति गोपनीय और मेरे परम वचन सुनने को कहा है। वे वचन हैं कि वह परम अक्षर ब्रह्म यानि परमेश्वर मेरा भी निश्चित रूप से इष्ट देव यानि पूज्य परमेश्वर है। मैं गीता ज्ञान दाता भी उसी की शरण में हूँ। उसी की भक्ति करता हूँ।

विशेष प्रमाण :- एक समय श्री गोरखनाथ सिद्ध से कबीर परमेश्वर जी की ज्ञान गोष्ठी हुई थी जो आप जी इसी अध्याय 18 के सारांश में आगे पढ़ेंगे। जब गोरखनाथ जी परमेश्वर कबीर जी से ज्ञान तथा सिद्धि में पूर्ण रूप से हार गए तो प्रश्न किया कि हे कबीर जी! आप कौन प्रभु हो? मैं आपकी शक्ति और ज्ञान से बहुत प्रभावित हूँ। तब परमेश्वर कबीर ने कविता रूप में शब्द कहा। गोरखनाथ जी तमगुण शिव के पुजारी थे तथा परमात्मा को निराकार यानि अलख निरंजन ज्योति स्वरूप मानते थे। ''अलख निरंजन'' का नारा लगाते थे। उसी ज्योति स्वरूप अलख निरंजन को समर्थ परमात्मा मानते थे। परमेश्वर कबीर जी ने शब्द में कहा कि अवधु यानि अवधूत! जो साधक केवल एक लंगोट या छोटा वस्त्र गुप्तांगों के ऊपर बाँधते हैं। शरीर पर कोई अन्य वस्त्र धारण नहीं करते, उन्हें संत भाषा में अवधूत कहते हैं। अपभ्रंस होकर पूर्व में सब साधक उस वेशधारी को ''अवधु'' कहते थे। हालांकि ज्ञान गोष्ठी के समय सम्पूर्ण शरीर पर वस्त्र धारण किए हुए थे, कारण

यह था कि वे यह नहीं बताना चाहते थे कि मैं गोरखनाथ हूँ, परंतु परमेश्वर कबीर जी तो अंतर्यामी थे। वे पहचान चुके थे कि ये गोरखनाथ जी हैं। तब कहा था कि :-

शब्द :– अवधु! अविगत से चल आया, मेरा भेद मर्म ना पाया।। टेक।।

शब्दार्थ :- हे अवधु! मैं उस सत्यलोक स्थान से सशरीर चलकर आया हूँ जिसका मेरे अतिरिक्त किसी को ज्ञान नहीं है। उस गति से कोई परिचित नहीं है। इसलिए उस स्थान यानि सत्यलोक को ''अविगत'' कहा है।

ना मेरा जन्म ना गर्भ बसेरा, बालक बन दिखलाया।
काशी नगर जल कमल पर डेरा, तहाँ जुलाहे ने पाया।।
मात–पिता मेरे कुछ नांही, ना मेरे घर दासी (पत्नी)।
जुलहे का सुत आन कहाया, जगत करे मेरी हाँसी।।
पाँच तत का धड़ ना मेरा, जानूँ ज्ञान अपारा।
सत्य स्वरूपी नाम साहेब का, सोई नाम हमारा।।
अधर द्विप गगन गुफा में, तहाँ निज वस्तु सारा।
तेरा ज्योति स्वरूपी अलख निरंजन, धरता ध्यान हमारा।।
हाड मास लहू ना मेरे, जाने सतनाम उपासी।
तारण तरण अभय पद दाता, हूँ कबीर अविनाशी।।

भावार्थ :- परमेश्वर कबीर जी ने अपनी अमर कथा स्वयं ही बताई है कि मेरा जन्म किसी माता के गर्भ से नहीं हुआ। मैं लीला करने के लिए सतलोक यानि सनातन परम धाम से चलकर आया हूँ। काशी शहर में लहर तारा नामक तालाब में कमल के फूल पर नवजात शिशु का रूप धारण करके विराजमान हुआ हूँ। वहाँ से नीरू जुलाहा उठा ले आया। जिस कारण से मुझे जुलाहा (धाणक) कहकर पुकारते हैं। मजाक करते हैं कि यह जुलाहा अशिक्षित है, यह क्या जाने वेद-शास्त्रों के ज्ञान को? इनको यह नहीं पता कि मेरा शरीर पाँच तत्व से नहीं बना है। मैं वेद-शास्त्रों वाला ज्ञान तथा जो सूक्ष्मवेद वाला जो ज्ञान इनमें है, उसे भी जानता हूँ। ऊपर आकाश में एक भंवर गुफा में सोहं की धुन यानि ध्वनि हो रही है तथा निज नाम रूपी विशेष वस्तु भी पास है। मैं तारण-तारण यानि सर्व का मोक्ष करने वाला हूँ। तीनों लोकों में प्रवेश करके सबका धारण-पोषण करने वाला अविनाशी परमेश्वर हूँ। जिस ज्योति स्वरूप अलख निरंजन काल ब्रह्म का आप गुणगान करते हो, वह भी मेरा ध्यान करता है यानि मेरी शरण में है। मैं उसका इष्ट देव हूँ। मेरा नाम वेदों में कविर्देव है। पथ्वी पर उसको अपभ्रंस करके कबीर साहेब कहते हैं।

❖ अध्याय 18 श्लोक 65 :- इसमें गीता ज्ञान दाता ने कहा है कि यदि मेरी शरण में रहना चाहता है तो मुझमें मन वाला हो, मेरा भक्त बन। मेरा पूजन करने वाला हो, मुझे नमस्कार कर, मुझे ही प्राप्त होगा। मैं तेरे से सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ, तू मुझे प्रिय है।

❖ अध्याय 18 श्लोक 66 :- इस श्लोक में गीता ज्ञान दाता ने अर्जुन से कहा है कि यदि उस परम अक्षर ब्रह्म की शरण में जाना है तो एक शर्त है :-

श्लोक 66 का यथार्थ अनुवाद :- परम अक्षर ब्रह्म यानि सच्चिदानंद घन ब्रह्म की प्राप्ति के लिए गीता अध्याय 17 के श्लोक 23 वाला तीन नाम का जाप करना होता है। जो ॐ (ओं), तत्, सत् तीन अक्षर हैं। गीता अध्याय 15 श्लोक 16-17 में तीन पुरूषों का वर्णन है :- क्षर पुरूष, यह काल ब्रह्म गीता ज्ञान दाता है। इसकी साधना का नाम ॐ (ओं) एक अक्षर है जिसके विषय में

गीता ज्ञान दाता ब्रह्म ने स्वयं गीता अध्याय 8 श्लोक 13 में कहा है। दूसरा अक्षर पुरूष है, इसकी भक्ति का मंत्र तत् है जो सांकेतिक है। तीसरा उत्तम पुरूष जो जो क्षर तथा अक्षर पुरूष दोनों से अन्य है, यह परम अक्षर पुरूष है जिसकी जानकारी गीता अध्याय 8 के श्लोक 3 में गीता ज्ञान दाता ने दी है तथा इसी के विषय में गीता अध्याय 8 श्लोक 8-10 तथा 20-22 में भी बताई है। यह परमात्मा कहा जाता है जो तीनों लोकों (क्षर पुरूष के इक्कीस ब्रह्माण्डों का काल लोक, अक्षर पुरूष के सात संश ब्रह्माण्डों का अक्षर लोक तथा परम अक्षर पुरूष के असँखों ब्रह्माण्डों का सनातन परम धाम यानि सत्यलोक) में प्रवेश करके सबका धारण-पोषण करता है। वह वास्तव में अविनाशी परमेश्वर है। तत्वदर्शी संत पूर्ण मोक्ष का मंत्र ॐ-तत्-सत् स्मरण करने को शिष्य को दीक्षा में देता है। जो ॐ (ओम्) नाम के जाप की साधना की कमाई यानि भक्ति धन त्रिकुटी कमल पर काल ब्रह्म को दे दिया जाता है। यह इसके प्रतिफल में साधक को पापमुक्त कर देता है। यदि साधक इस ॐ नाम की कमाई यानि भक्ति धन के प्रतिफल में ब्रह्मलोक जाना चाहता है तो यह कमाई वहाँ खर्च करके कर्मों के बंधन में रह जाता है। पुण्यों की कमाई ब्रह्मलोक रूपी होटल में खा-खर्च कर पापों के कारण नरक जाता है। अन्य प्राणियों के शरीरों में पाप का कष्ट भोगता है। परंतु सतगुरू का शिष्य ऐसी गलती नहीं करता। उसको तत्वज्ञान प्राप्त होता है। इसलिए वह सतगुरू का शिष्य ॐ नाम के जाप की कमाई काल को त्याग देता है, छोड़ देता है। काल ब्रह्म उसके प्रतिफल में सर्व पापों से मुक्त कर देता है। अध्याय 8 के श्लोक 28 में भी काल ब्रह्म ने कहा है कि जो योगी यानि सत्य साधक तत्वज्ञान को जानकर वेदों के पढ़ने यानि ज्ञान यज्ञ तथा अन्य यज्ञ यानि धार्मिक अनुष्ठान जैसे तप यानि स्वधर्म पालन में कष्ट सहन करना तप है, दान करने से जो पुण्यफल कहा है, उस सबका निःसंदेह उल्लंघन कर जाता है, वह सनातन परम धाम को प्राप्त हो जाता है।

❖ *गीता अध्याय 18 श्लोक 66 में भी कहा है कि :-*

मेरे (रामपाल दास) द्वारा किया यथार्थ अनुवाद :- गीता ज्ञान दाता ने कहा है कि (सर्वधर्मान्) मेरे स्तर की सर्व धार्मिक क्रियाऐं (माम्) मुझमें (परित्यज्य) त्यागकर तू केवल (एकम्) उस अद्वितीय अर्थात् जिसके समान अन्य कोई परमात्मा नहीं है, उस समर्थ परमेश्वर की (शरणम्) शरण में (व्रज) जा (अहम्) मैं (त्वा) तुझको (सर्व पापेभ्यः) सम्पूर्ण पापों से (मोक्षयिष्यामि) छुड़वा दूँगा यानि मुक्त कर दूँगा। तू (मा, शुचः) शोक मत कर।(18/66)

विश्लेषण :- तत्वज्ञान के अभाव से मेरे (रामपाल दास के) अतिरिक्त गीता के अन्य सब अनुवादकों ने ''व्रज'' शब्द का अर्थ आना किया है जबकि ''व्रज'' शब्द का अर्थ ''जाना'' है। जैसे अंग्रेजी भाषा के शब्द Go का अर्थ जाना, जाओ है। यदि कोई अज्ञानी किसी प्रकरण के अनुवाद में Go का अर्थ आना-आओ करे तो वह अनर्थ कर रहा है। आश्चर्य की बात तो यह है कि एस्कोन मिशन वाले श्री प्रभुपाद जी द्वारा किए गए इसी अध्याय 18 श्लोक 66 के अनुवाद में पहले मूल पाठ के प्रत्येक शब्द के अर्थ लिखे हैं। वहाँ पर ''व्रज'' का अर्थ ''जाओ'' ठीक किया है, परंतु नीचे अनुवाद में ''व्रज'' का अर्थ ''आओ'' कर दिया जिससे स्पष्ट है कि वास्तव में इस अध्याय 18 के श्लोक 66 में गीता ज्ञान दाता ने अपने से अन्य परम अक्षर ब्रह्म की शरण में जाने को कहा है।

कपा देखें एस्कोन वाले प्रभुवाद जी द्वारा गीता अध्याय 18 श्लोक 62 के शब्दार्थ तथा अनुवाद की फोटोकॉपी :-

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ।। ६६ ।।

सर्व-धर्मान्—समस्त प्रकार के धर्म; **परित्यज्य**—त्यागकर; **माम्**—मेरी; **एकम्**—एकमात्र; **शरणम्**—शरण में; **व्रज**—जाओ; **अहम्**—मैं; **त्वाम्**—तुमको; **सर्व**—समस्त; **पापेभ्यः**—पापों से; **मोक्षयिष्यामि**—उद्धार करूँगा; **मा**—मत; **शुचः**—चिन्ता करो।

समस्त प्रकार के धर्मों का परित्याग करो और मेरी शरण में आओ। मैं समस्त पापों से तुम्हारा उद्धार कर दूँगा। डरो मत।

❖ *गीता अध्याय 18 श्लोक 67 :- हे अर्जुन! तेरे को इस गीता वाले ज्ञान को नास्तिक से नहीं कहना चाहिए।*

❖ *गीता अध्याय 18 श्लोक 68 :- जो पुरूष इस गीता ज्ञान को मेरे (काल ब्रह्म के) भक्तों को सुनाएगा, वह मुझे ही प्राप्त होगा।*

❖ *गीता अध्याय 18 श्लोक 69 :- उससे बढ़कर मेरा प्रिय करने वाला कोई मनुष्य नहीं है तथा पथ्वी पर उससे बढ़कर मेरा प्रिय भविष्य में कोई दूसरा नहीं है।*

❖ *गीता अध्याय 18 श्लोक 70 :- जो इस गीता का पाठ करेगा, उसके द्वारा मैं उसका (इष्टः) पूज्य देव होऊँगा। शास्त्रों का पाठ करने से ज्ञान यज्ञ का फल मिलता है। (अहम् ज्ञान यज्ञेन् इष्टः स्याम्) मैं उसका ज्ञान यज्ञ से पूज्य देव होऊँगा।*

❖ *गीता अध्याय 18 श्लोक 71 :- इस गीता शास्त्र के पढ़ने से ज्ञान यज्ञ का फल होता है। इसके सुनने वाले को भी वही फल मिलता है। जिस कारण से ज्ञान यज्ञ के फल स्वरूप (शुभान् लोकान्) श्रेष्ठ लोकों यानि स्वर्ग को प्राप्त होगा। कुछ समय जन्म-मरण से मुक्त हो जाएगा।*

❖ *गीता अध्याय 18 श्लोक 72 :- गीता ज्ञान दाता ने अर्जुन से पूछा कि हे पार्थ! क्या इस गीता शास्त्र को तूने ध्यान से सुना है? हे धनंजय! क्या तेरा अज्ञान जनित मोह नष्ट हो गया है?*

❖ *गीता अध्याय 18 श्लोक 73 :- हे श्रेष्ठ! आपकी कपा से मेरा मोह नष्ट हो गया है। मैंने स्मति प्राप्त कर ली है। मैं संशय रहित होकर स्थित हूँ। अतः आपकी आज्ञा का पालन करूँगा।*

❖ *गीता अध्याय 18 श्लोक 74 :- संजय बोला! इस प्रकार मैंने श्री वासुदेव से गीता का ज्ञान सुना, मैं बहुत खुश हूँ।*

❖ *गीता अध्याय 18 श्लोक 75-78 :- संजय ने धतराष्ट्र को बताया कि श्री व्यास जी से प्राप्त दिव्य दष्टि से मैंने सब सुना और आपको बताया, काल का स्वरूप देखा। मेरा विचार है कि जिस ओर श्री कष्ण तथा अर्जुन हैं, विजय उसी पक्ष की होगी।*

।। अर्जुन, भगवान ब्रह्म (काल) की शरण में रहा फिर भी पाप मुक्त नहीं हुआ ।।

विशेष : अध्याय 18 के श्लोक 73 में अर्जुन कहता है कि मैं आपकी शरण में ही रहूँगा अर्थात् आपकी जो आज्ञा वही करूँगा। मैं युद्ध करूँगा। इसीलिए अर्जुन को काल भगवान पाप मुक्त नहीं कर सका। क्योंकि वह नादान अर्जुन काल की शरण में रहा। अर्जुन भी बेचारा क्या करे? प्रथम तो इतना डराया कि काँपने लग गया फिर उस परमात्मा को प्राप्त करने का मार्ग काल भगवान ने नहीं बताया। ऊँ मन्त्र तथा यज्ञों का करना बताया जो उस परमात्मा को पाने का नहीं है बल्कि काल जाल में ही रहने का है इसलिए तो अर्जुन पाप मुक्त नहीं हुआ। चूंकि प्रमाण है कि युद्ध में विजय के

उपरांत राजा युधिष्ठिर को बुरे स्वपन आने लगे। तब भगवान कष्ण ने उन्हें एक यज्ञ की सलाह दी कि यज्ञ करो। तुम्हारे युद्ध में किए पाप कर्म दुःखी कर रहे हैं। जबकि अर्जुन तो उन्हें अजम-अनादि तथा सर्व भूतों (प्राणियों) का महान भगवान मानता ही था। प्रमाण के लिए देखें अध्याय 10 के श्लोक 12 से 14 तक। क्योंकि अर्जुन ने तो उनका काल (विराट) रूप अपनी आँखों से देखा था। यह तो हो ही नहीं सकता कि अर्जुन काल (ब्रह्म) को सर्व प्राणियों का महान ईश्वर व अजन्मा अनादि न मानता हो। फिर पाप कर्म जो युद्ध में हुए थे, को समाप्त करने की सलाह स्वयं भगवान कष्ण ने दी थी कि तुम अंतिम स्वांस तक हिमालय में जा कर तप करो तथा वहीं शरीर समाप्त कर दो। तुम्हारे पाप जो युद्ध में हुए थे समाप्त हो जाएंगे। चारों पाण्डवों का शरीर हिमालय की बर्फ में शरीर गल कर नष्ट हो गया साथ में द्रौपदी तथा कुन्ती का भी तथा पांचवें युधिष्ठिर का केवल पंजा गला। चूंकि युधिष्ठिर ने झूठ बोला था कि अश्वत्थामा (द्रोणाचार्य का पुत्र) मर गया जबकि अश्वत्थामा मरा नहीं था। भगवान कष्ण ने झूठ बुलवाया था। फिर चारों पाण्डव (भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव) तथा द्रौपदी व कुंती आदि भी नरक में डाले गए जिसका प्रमाण महाभारत में पष्ठ नं. 1683 पर है और कुछ समय युधिष्ठिर को भी धोखे से नरक में डाला गया। फिर पाप मुक्त कौन हो सकता है? कपया पाठक विचारें तथा सतगुरु कबीर साहेब के नुमायन्दे संत से नाम ले कर काल लोक से छुटकारा करवाएँ।

जैसा कि गीता जी के अध्याय 18 के श्लोक 64 तथा अध्याय 15 के श्लोक 4 में स्पष्ट है कि स्वयं काल ब्रह्म कह रहा है कि हे अर्जुन! मेरा उपास्य देव (इष्ट) भी वही परमात्मा (पूर्ण ब्रह्म) ही है तथा मैं (काल) भी उसी की शरण हूँ तथा वही सनातन स्थान (सतलोक) मेरा (काल का) भी वास्तविक ठिकाना (स्थान) है अर्थात् मेरा परम धाम भी वही है। क्योंकि ब्रह्म (काल पुरुष) भी वहीं (सतलोक) से निष्कासित है।

।। साहेब कबीर व गोरख नाथ की गोष्ठी।।

एक समय गोरख नाथ (सिद्ध महात्मा) काशी (बनारस) में स्वामी रामानन्द जी (जो साहेब कबीर के गुरु जी थे) से शास्त्रार्थ करने के लिए (ज्ञान गोष्टी के लिए) आए। जब ज्ञान गोष्टी के लिए एकत्रित हुए तब कबीर साहेब भी अपने पूज्य गुरुदेव स्वामी रामानन्द जी के साथ पहुँचे थे। एक उच्च आसन पर रामानन्द जी बैठे उनके चरणों में बालक रूप में कबीर साहेब (पूर्ण परमात्मा) बैठे थे। गोरख नाथ जी भी एक उच्च आसन पर बैठे थे तथा अपना त्रिशूल अपने आसन के पास ही जमीन में गाड़ रखा था। गोरख नाथ जी ने कहा कि रामानन्द मेरे से चर्चा करो। उसी समय बालक रूप (पूर्ण ब्रह्म) कबीर जी ने कहा - नाथ जी पहले मेरे से चर्चा करें। पीछे मेरे गुरुदेव जी से बात करना।

योगी गोरखनाथ प्रतापी, तासो तेज पथ्वी कांपी।
काशी नगर में सो पग परहीं, रामानन्द से चर्चा करहीं।
चर्चा में गोरख जय पावै, कंठी तोरै तिलक छुड़ावै।
सत्य कबीर शिष्य जो भयऊ, यह वतांत सो सुनि लयऊ।
गोरखनाथ के डर के मारे, वैरागी नहीं भेष सवारे।
तब कबीर आज्ञा अनुसारा, वैष्णव सकल स्वरूप संवारा।
सो सुधि गोरखनाथ जो पायौ, काशी नगर शीघ्र चल आयौ।
रामानन्द को खबर पठाई, चर्चा करो मेरे संग आई।

रामानन्द की पहली पौरी, सत्य कबीर बैठे तीस ठौरी।
कह कबीर सुन गोरखनाथा, चर्चा करो हमारे साथा।
प्रथम चर्चा करो संग मेरे, पीछे मेरे गुरु को टेरे।
बालक रूप कबीर निहारी, तब गोरख ताहि वचन उचारी।

इस पर गोरख नाथ जी ने कहा तू बालक कबीर जी कब से योगी बन गया। कल जन्मा अर्थात् छोटी आयु का बच्चा और चर्चा मेरे (गोरख नाथ के) साथ। तेरी क्या आयु है? और कब वैरागी (संत) बन गए?

कबके भए वैरागी कबीर जी, कबसे भए वैरागी।
नाथ जी जब से भए वैरागी मेरी, आदि अंत सुधि लागी।।
धूंधूकार आदि को मेला, नहीं गुरु नहीं था चेला।
जब का तो हम योग उपासा, तब का फिरा अकेला।।
धरती नहीं जद की टोपी दीना, ब्रह्मा नहीं जद का टीका।
शिव शंकर से योगी, न थे जदका झोली शिका।।
द्वापर को हम करी फावड़ी, त्रेता को हम दंडा।
सतयुग मेरी फिरी दुहाई, कलियुग फिरौ नो खण्डा।।
गुरु के वचन साधु की संगत, अजर अमर घर पाया।
कहैं कबीर सुनों हो गोरख, मैं सब को तत्व लखाया।।

साहेब कबीर जी ने गोरख नाथ जी को बताते हैं कि मैं कब से वैरागी बना। साहेब कबीर ने उस समय वैष्णों संतों जैसा वेष बना रखा था। जैसा श्री रामानन्द जी ने बाणा (वेष) बना रखा था। जैसे मस्तिक में चन्दन का टीका, टोपी व झोली सिक्का एक फावड़ी (जो भजन करने के लिए लकड़ी की अंग्रेजी के अक्षर '' T '' के आकार की होती है) तथा एक डण्डा (लकड़ी का लट्ठा) साथ लिए हुए थे। ऊपर के शब्द में साहेब कहते हैं कि जब कोई संष्टि (काल संष्टि) नहीं थी तथा न सतलोक संष्टि थी तब मैं (कबीर) अनामी रूप में था और कोई नहीं था। चूंकि साहेब कबीर ने ही सतलोक संष्टि शब्द से रची तथा फिर काल (ज्योति निरंजन-ब्रह्म) की संष्टि भी सतपुरुष ने {ज्योति निरंजन (ब्रह्म) ने तप करके राज्य मांगा तब} रची। जब मैं अकेला रहता था जब धरती (पंथ्वी) भी नहीं थी तब से मेरी टोपी जानो। ब्रह्मा जो गोरखनाथ तथा उनके गुरु मच्छन्दर नाथ आदि सर्व प्राणियों के शरीर बनाने वाला पैदा भी नहीं हुआ था। तब से मैंने टीका लगा रखा है अर्थात् मैं (कबीर) तब से सतपुरुष आकार रूप में ही हूँ।

सतयुग-त्रेतायुग-द्वापर तथा कलियुग ये चार युग तो मेरे सामने असंखों जा लिए। कबीर साहेब बताते हैं कि हमने सतगुरु वचन में रह कर अजर-अमर घर (सतलोक) पाया। इसलिए सर्व प्राणियों को तत्व (वास्तविक ज्ञान) बताया है कि पूर्ण गुरु से उपदेश ले कर आजीवन गुरु वचन में चलते हुए पूर्ण परमात्मा का ध्यान सुमरण करके उसी अजर-अमर सतलोक में जा कर जन्म-मरण रूपी अति दुःखमयी संकट से बच सकते हो।

इस बात को सुन कर गोरखनाथ जी ने पूछा हैं कि आपकी आयु तो बहुत छोटी है अर्थात् आप लगते तो हो बालक से।

जो बूझे सोई बावरा, क्या है उम्र हमारी। असंख युग प्रलय गई, तब का ब्रह्मचारी।।टेक।।
कोटि निरंजन हो गए, परलोक सिधारी। हम तो सदा महबूब हैं, स्वयं ब्रह्मचारी।।
अरबों तो ब्रह्मा गए, उनन्चास कोटि कन्हैया। सात कोटि शम्भू गए, मोर एक नहीं पलैया।।

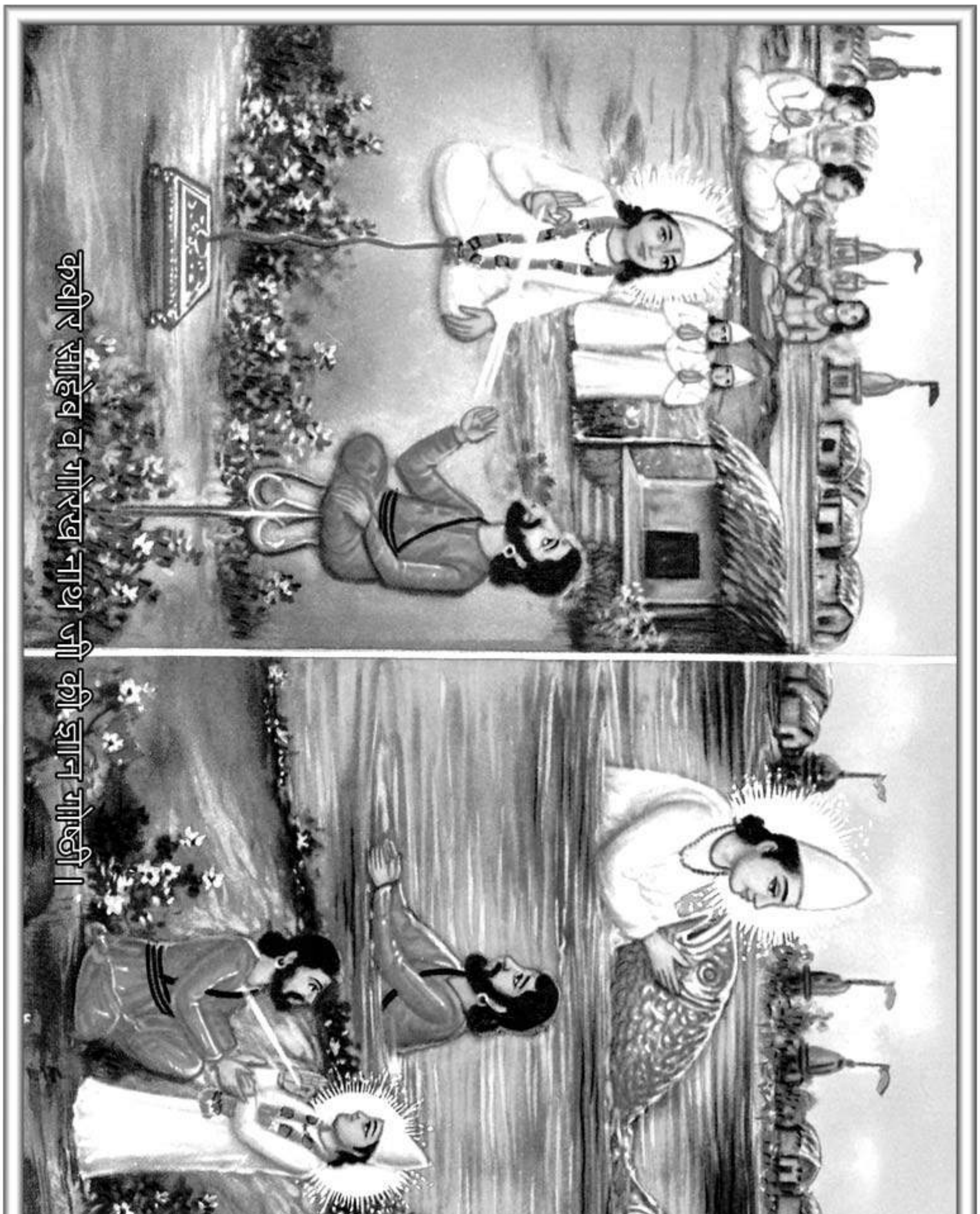
कबीर साहेब व गोरख नाथ जी की ज्ञान गोष्ठी।

कोटिन नारद हो गए, मुहम्मद से चारी। देवतन की गिनती नहीं है, क्या संष्टि विचारी।।
नहीं बुढ़ा नहीं बालक, नाहीं कोई भाट भिखारी। कहैं कबीर सुन हो गोरख, यह है उम्र हमारी।।

श्री गोरखनाथ सिद्ध को सतगुरु कबीर साहेब अपनी आयु का विवरण देते हैं। असंख युग प्रलय में गए। तब का मैं वर्तमान हूँ अर्थात् अमर हूँ। करोड़ों ब्रह्म (क्षर-काल) भगवान मंत्यु को प्रापत होकर पुनर्जन्म प्राप्त कर चुके हैं।

एक ब्रह्मा की आयु 100 (सौ) वर्ष की होती है।

ब्रह्मा का एक दिन = 1000 (एक हजार) चतुर्युग तथा इतनी ही रात्रि।

दिन-रात = 2000 (दो हजार) चतुर्युग।

{नोट - ब्रह्मा जी के एक दिन में 14 इन्द्रों का शासन काल समाप्त हो जाता है। एक इन्द्र का शासन काल बहतर चतुर्युग का होता है। इसलिए वास्तव में ब्रह्मा जी का एक दिन 72 गुणा 14 = 1008 चतुर्युग का होता है तथा इतनी ही रात्रि, परन्तु इस को एक हजार चतुर्युग ही मान कर चलते हैं।}

महीना= 30 गुणा 2000 = 60000 (साठ हजार) चतुर्युग।

वर्ष = 12 गुणा 60000 = 720000 (सात लाख बीस हजार) चतुर्युग का।

ब्रह्मा जी की आयु -

720000 गुणा 100= 72000000 (सात करोड़ बीस लाख) चतुर्युग।

ब्रह्मा से सात गुणा विष्णु जी की आयु -

72000000 गुणा 7 = 504000000 (पचास करोड़ चालीस लाख) चतुर्युग।

विष्णु से सात गुणा शिव जी की आयु -

504000000 गुणा 7 = 3528000000 (तीन अरब बावन करोड़ अस्सी लाख) चतुर्युग की हुई।

ऐसी आयु वाले सत्तर हजार शिव भी मर जाते हैं तब एक ज्योति निरंजन (ब्रह्म) मरता है। पूर्ण परमात्मा के द्वारा पूर्व निर्धारित किए समय पर एक शंख बजता है उस समय एक ब्रह्मण्ड में महाप्रलय होती है। यह समय (सत्तर हजार शिव की मंत्यु अर्थात् एक सदाशिव/ज्योति निरंजन की मंत्यु) एक युग होता है परब्रह्म का। परब्रह्म का एक दिन एक हजार युग का होता है इतनी ही रात्रि होती है तीस दिन रात का एक महिना तथा बारह महिनों का परब्रह्म का एक वर्ष हुआ तथा सौ वर्ष की परब्रह्म की आयु है। परब्रह्म की भी मंत्यु होती है। ब्रह्म अर्थात् ज्योति निरंजन की मंत्यु परब्रह्म के एक दिन के पश्चात् होती है इस प्रकार कबीर परमात्मा ने कहा है कि करोड़ों ज्योति निरंजन मर लिए मेरी एक पल भी आयु कम नहीं हुई है अर्थात् अमर पुरुष हूं। कबीर साहेब कहते हैं कि हम अमर हैं। अन्य भगवान जिसका तुम आश्रय ले कर भक्ति कर रहे हो वे नाशवान हैं। फिर आप अमर कैसे हो सकते हो? अरबों तो ब्रह्मा गए, 49 कोटि कन्हैया। सात कोटि शंभु गए, मोर एक नहीं पलैया।

विचार करें कि अमर पुरुष कौन है? 343 करोड़ त्रिलोकिय ब्रह्मा मर जाते हैं, 49 करोड़ त्रिलोकिय विष्णु तथा 7 करोड़ त्रिलोकिय शिव मर जाते हैं तब एक ज्योति निरंजन (काल-ब्रह्म) मरता है। जिसे गीता जी के अध्याय 15 के श्लोक 16 में क्षर (नाशवान) भगवान कहा है तथा इसी श्लोक में जिसे अक्षर (अविनाशी) कहा है वह परब्रह्म है जिसे अक्षर पुरुष भी कहते हैं। अक्षर पुरुष अर्थात् परब्रह्म भी नष्ट होता है। यह काल भी करोड़ों समाप्त हो जाएंगे। तब सर्व अण्ड-ब्रह्मण्ड नाश में आवेंगे। केवल सतलोक बचेगा। फिर अचिंत सत्यपुरुष के आदेश से संष्टि रचेगा। यही क्षर पुरुष तथा अक्षर पुरुष की संष्टि फिर शुरु हो जाएगी।

गीता जी के अध्याय 15 के श्लोक 17 में कहा है कि वह उत्तम पुरुष (पूर्ण परमात्मा) तो कोई और ही है जिसे अविनाशी परमात्मा नाम से जाना जाता है। वह पूर्ण ब्रह्म परमेश्वर सतपुरुष स्वयं कबीर साहेब है। केवल सतपुरुष अजर-अमर परमात्मा है तथा उसी का सतलोक (सतधाम) अमर है जिसे अमर लोक भी कहते हैं। वहाँ की भक्ति करके भक्त आत्मा पूर्ण मुक्त होती है। जिसका कभी मरण नहीं होता। कबीर साहेब ने कहा कि यह उपलब्धि सोहं शब्द के जाप से प्राप्त होती है जो उसके मर्म भेदी गुरु से मिले तथा उसके बाद सारनाम मिले। फिर सतलोक में वास तथा सतपुरुष प्राप्ति होती है। करोंड़ों नारद तथा मुहम्मद जैसी पाक (पवित्र) आत्मा भी आकर (जन्म कर) जा (मर) चुके हैं, देवताओं की तो गिनती नहीं। फिर आम मानुष शरीर धारी प्राणियों तथा जीवों का तो हिसाब क्या लगाया जा सकता है? मैं (कबीर साहेब) न बूढ़ा न बालक, मैं तो जवान रूप में रहता हूँ जो ईश्वरिय शक्ति का प्रतीक है। यह तो मैं लीलामई शरीर में आपके समक्ष हूँ। कहै कबीर सुनों जी गोरख, मेरी आयु (उम्र) यह है जो आपको ऊपर बताई है।

यह सुन कर श्री गोरखनाथ जी जमीन में गड़े लगभग 7 फूट ऊँचें त्रिशूल के ऊपर के भाग पर अपनी सिद्धि शक्ति से उड़ कर बैठ गए और कहा कि यदि आप इतने महान हो तो मेरे बराबर में (जमीन से लगभग सात फूट) ऊँचा उठ कर बातें करो। यह सुन कर कबीर साहेब बोले नाथ जी! ज्ञान गोष्टी के लिए आए हैं न कि नाटक बाजी करने के लिए। आप नीचे आएं तथा सर्व भक्त समाज के सामने यथार्थ भक्ति संदेश दें।

श्री गोरखनाथ जी ने कहा कि आपके पास कोई शक्ति नहीं है। आप तथा आपके गुरुजी दुनियाँ को गुमराह कर रहे हो। आज तुम्हारी पोल खुलेगी। ऐसे हो तो आओ बराबर। तब कबीर साहेब के बार-2 प्रार्थना करने पर भी नाथ जी बाज नहीं आए तो साहेब कबीर ने अपनी पराशक्ति (पूर्ण सिद्धि) का प्रदर्शन किया। साहेब कबीर की जेब में एक कच्चे धागे की रील (कुकड़ी) थी जिसमें लगभग 150 (एक सौ पचास) फुट लम्बा धागा लिप्टा (सिम्टा) हुआ था, को निकाला और धागे का एक सिरा (आखिरी छौर) पकड़ा और आकाश में फैंक दिया। वह सारा धागा उस बंडल (कुकड़ी) से उधड़ कर सीधा खड़ा हो गया। साहेब कबीर जमीन से आकाश में उड़े तथा लगभग 150 (एक सौ पचास) फुट सीधे खड़े धागे के ऊपर वाले सिरे (छौर) पर सुखासन (स्वाभाविक बैठते हैं) पर बैठ कर कहा कि आओ नाथ जी! बराबर में बैठकर चर्चा करें। गोरखनाथ जी ने ऊपर उड़ने की कोशिश की लेकिन उल्टा जमीन पर टिक गए।

पूर्ण परमात्मा (पूर्णब्रह्म) के सामने सिद्धियाँ निष्क्रिय हो जाती हैं। जब गोरख नाथ जी की कोई कोशिश सफल नहीं हुई, तब जान गए कि यह कोई मामूली भक्त या संत नहीं है। जरूर कोई अवतार (ब्रह्मा, विष्णु, महेश में से) है। तब साहेब कबीर से कहा कि हे परम (उत्तम) पुरुष! कप्या नीचे आएँ और अपने दास पर दया करके अपना परिचय दें। आप कौन शक्ति हो? किस लोक से आना हुआ है? तब कबीर साहेब नीचे आए और कहा कि -

अवधु अविगत से चल आया, कोई मेरा भेद मर्म नहीं पाया।।टेक।।
ना मेरा जन्म न गर्भ बसेरा, बालक है दिखलाया।
काशी नगर जल कमल पर डेरा, तहाँ जुलाहे ने पाया।।
माता–पिता मेरे कछु नहीं, ना मेरे घर दासी।
जुलहा को सुत आन कहाया, जगत करे मेरी है हांसी।।
पांच तत्व का धड़ नहीं मेरा, जानूं ज्ञान अपारा।

सत्य स्वरूपी नाम साहिब का, सो है नाम हमारा।।
अधर दीप (सतलोक) गगन गुफा में, तहां निज वस्तु सारा।
ज्योति स्वरूपी अलख निरंजन (ब्रह्म) भी, धरता ध्यान हमारा।।
हाड चाम लोहू नहीं मोरे, जाने सत्यनाम उपासी।
तारन तरन अभै पद दाता, मैं हूं कबीर अविनाशी।।

भावार्थ :- साहेब कबीर ने कहा कि हे अवधूत गोरखनाथ जी मैं तो अविगत स्थान (जिसकी गति या भेद कोई नहीं जानता उस सतलोक) से आया हूँ। मैं तो स्वयं शक्ति से बालक रूप बना कर काशी (बनारस) में एक लहर तारा तालाब में कमल के फूल पर प्रकट हुआ हूँ। वहाँ पर नीरू-नीमा नामक जुलाहा दम्पति को मिला जो मुझे अपने घर ले आया। मेरे मात-पिता नहीं हैं। न ही कोई घर दासी (पत्नी) है और जो उस परमात्मा का वास्तविक नाम है, वही कबीर नाम मेरा है। आपका ज्योति स्वरूप जिसे आप अलख निरंजन (निराकार भगवान) कहते हो वह ब्रह्म भी मेरा ही जाप करता है। मैं सतनाम का जाप करने वाले साधक को प्राप्त होता हूँ अर्थात् वहीं मेरे विषय में सही जानता है। हाड-चाम तथा लहु (खून) से बना मेरा शरीर नहीं है। कबीर साहेब सतनाम की महिमा बताते हुए कहते हैं कि मेरे मूल स्थान (सतलोक) में सतनाम के आधार से जाया जाता है। अन्य साधकों को संकेत करते हुए प्रभु कबीर (कविर्देव) जी कह रहे हैं कि मैं उसी का जाप करता रहता हूँ। इसी मन्त्र (सतनाम) से सतलोक जाने योग्य होकर फिर सारनाम प्राप्ति करके जन्म-मरण से पूर्ण छुटकारा मिलता है। यह तारन तरन पद (पूजा विधि) मैंने (कबीर साहेब अविनाशी भगवान ने) आपको बताई है। इसे कोई नहीं जानता। गोरख नाथ जी को बताया कि हे पुण्य आत्मा! आप काल क्षर पुरुष (ज्योति निरंजन) के जाल में ही हो। न जाने कितनी बार आपके जन्म हो चुके हैं। कभी चौरासी लाख जूनियों में कष्ट पाया। आपकी चारों युगों की भक्ति को काल अब (कलियुग में) नष्ट कर देता यदि आप मेरी शरण में नहीं आते।

यह काल इक्कीस ब्रह्मण्ड का मालिक है। इसको शाप लगा है कि एक लाख मानव शरीर धारी (देव व ऋषि भी) जीव प्रतिदिन खायेगा तथा सवा लाख उत्पन्न करेगा (मनुष्य शरीर वाले)। इस प्रकार प्रतिदिन पच्चीस हजार बढ़ रहे हैं। उनको ठिकाने लगाए रखने के लिए तथा कर्म भुगताने के लिए अपना कानून बना कर चौरासी लाख जूनियाँ बना रखी हैं। इनमें जीव बिल्कुल अनभिज्ञ रहता है तथा इन्हीं फालतु जीवों से ही शरीर बनाता है जैसे खून में जीवाणु, वायु में जीवाणु आदि-2। इसकी पत्नी आदि माया (प्रकृति देवी) अष्टंगी (आठ भुजाओं वाली) है। इसी से काल (ब्रह्म-अलख निरंजन) ने (पत्नी-पति के संयोग से) तीन पुत्र ब्रह्मा-विष्णु-शिव उत्पन्न किए। इन तीनों को अपने पक्के सहयोगी बना कर ब्रह्मा को शरीर बनाने का, विष्णु को पालन-पोषण का और शिव को संहार करने का कार्य दे रखा है। इनसे प्रथम तप करवाता है फिर सिद्धियाँ भर देता है जिसके आधार पर इनसे अपना उल्लु सीधा करता है और अंत में इन्हें (जब ये शक्ति रहित हो जाते हैं) भी मार कर नए तीन पुत्र पैदा करता है। ऐसे अपने काल लोक को चला रहा है। इन सब से ऊपर पूर्ण परमात्मा है। उसका ही अवतार मुझ (कबीर) को जान।

गोरख नाथ के मन में विश्वास हो गया कि कोई शक्ति है जो कुल का मालिक है। फिर गोरख नाथ ने कहा कि मेरी एक शक्ति और देखो। यह कह कर गंगा की ओर चल पड़ा। सर्व दर्शकों की भीड़ भी साथ ही चली। लगभग 500 फुट पर गंगा नदी थी। उसमें जा कर छलांग लगाते हुए कहा कि मुझे ढूंढ दो। फिर मैं (गोरखनाथ) आप का शिष्य बन जाऊँगा। गोरखनाथ मछली बन गए।

साहेब कबीर ने उसी मछली को पानी से बाहर निकाल कर सबके सामने गोरखनाथ बना दिया। तब गोरखनाथ जी ने साहेब कबीर को पूर्ण परमात्मा स्वीकार किया और शिष्य बने। साहेब कबीर से सतनाम व सारनाम ले कर भक्ति की। तब काल जाल से मुक्त हुए।

गीता जी के अध्याय 14 के श्लोक 26,27 का भाव है कि साधक अव्याभिचारिणी भक्ति अर्थात् पूर्ण आश्रित मुझ (काल-ब्रह्म) पर हो कर (अन्य देवी-देवताओं तथा माता, ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि की पूजा त्याग कर) भक्ति एक मेरे मन्त्र ॐ का जाप करता है वह उपासक उस परमात्मा को पाने योग्य हो जाता है और आगे की साधना करके उस परमानन्द के परम सुख को भी मेरे माध्यम से प्राप्त करता है।

जैसे कोई विधार्थी मैट्रिक, बी.ए., एम.ए. करके किसी कोर्स में प्रवेश ले कर सर्विस प्राप्त करके रोजी प्राप्त करके सुखी होता है तो उसके लिए वह मैट्रिक, बी.ए. या एम.ए. जिसके बाद कोर्स (ट्रेनिंग) में प्रवेश किया। उसको प्रतिष्ठा (अवस्था) अर्थात् सहयोगी हुआ। सर्विस प्रदान कर्त्ता नहीं हुआ। ठीक इसी प्रकार काल भगवान (ब्रह्म) कह रहा है कि उस अविनाशी परमात्मा के अमरत्व का और नित्य रहने वाले स्वभाव का तथा धर्म का और अखण्ड स्थाई रहने के आनन्द का सहयोगी मैं (ब्रह्म) हूँ। इसी का प्रमाण गीता जी के अध्याय 18 के श्लोक 66 में कहा है कि सर्व अन्य साधनाओं को मुझमें त्याग कर एक (पूर्णब्रह्म) की शरण को प्राप्त कर तब तेरे सर्व पाप माफ करवा दूंगा। जैसे जिन भक्त आत्माओं ने काल (ब्रह्म) के ॐ मन्त्र का जाप अनन्य मन से किया। उनको कबीर भगवान ने आगे की उस पूर्ण परमात्मा की भक्ति प्रदान करके काल लोक से पार किया। जैसे नामदेव नामक परम भक्त केवल एक नाम ॐ का जाप करते थे। उससे उनको बहुत सिद्धियाँ प्राप्त हो गई थी फिर भी मुक्ति नहीं थी। फिर कबीर साहेब श्री नामदेव जी को मिले तथा सतलोक व सतपुरुष का ज्ञान कराया। सोहं मन्त्र दिया जो परब्रह्म का जाप है। फिर सार शब्द दिया जो पूर्णब्रह्म का जाप है। जब नामदेव जी मुक्त हुए।

ऐसे ही गोरखनाथ जी ने भी एक मन्त्र अलख निरंजन का जाप तथा चांचरी मुद्रा की साधना की। तब साहेब कबीर ने उन्हें ॐ तथा सोहं मन्त्र दिया।

।। साहेब कबीर द्वारा रामानन्द जी को सतज्ञान करवाना।।

इसी प्रकार स्वामी रामानन्द जी चारों पवित्र वेदों के ज्ञाता श्री मद्भागवत् गीता के मर्मज्ञ ज्ञाता जो केवल एक ॐ मन्त्र के जाप में पूर्ण मुक्ति चाह रहे थे, को सतलोक दिखाया और सतपुरुष रूप में दर्शन सतलोक में दिए। तब स्वामी रामानन्द जी ने कहा कि हे कबीर भगवान् आप पूर्ण परमात्मा हैं तथा मुझे पार कर दिया।

दोहु ठोर है एक तूं, भया एक से दोय। गरीबदास मुझ कारने, उतरे हो मग जोय।।
मैं भक्ता मुक्ता भया, किया कर्म कुन्द नाश। गरीबदास अविगत मिले, मेटी मन की बांस।।
बोलत रामानंद जी, सुनि कबीर करतार। गरीबदास सब रूप में, तुम ही बोलनहार।।
तुम साहेब तुम संत हो, तुम सतगुरु तुम हंस। गरीबदास तुम रूप बिन, और न दूजा अंस।।

।।गीता का ज्ञान सुनने व सुनाने वाले भी काल जाल में।।

❖ *अध्याय 18 के श्लोक 67 से 71 में लिखा है कि अर्जुन यह मेरा गीता ज्ञान अश्रद्धालुओं को नहीं कहना चाहिए तथा जो भक्त श्रद्धा से सुने उन्हें सुनाने वाला व्यक्ति भी मुझे (काल के मुख में*

आजाएगा) ही प्राप्त होगा। क्योंकि इनका उपास्य देव (इष्ट) मैं (काल) ही होऊँगा। क्योंकि धार्मिक शास्त्र व ग्रन्थ पढ़ने से ज्ञान यज्ञ हो जाती है। उसका कुछ समय स्वर्ग में फल भोग कर फिर चौरासी लाख जूनियों व नरक का चक्र सदा बना रहेगा। अध्याय 18 के श्लोक 72 में काल भगवान कह रहा है कि क्या गीता को तूने एक चित हो कर सुना है? हे धनंजय! क्या तेरा अज्ञान जनित मोह नष्ट हो गया? भाव यह है कि क्या अर्जुन तुझे ज्ञान हो गया और तेरा संसार से मोह हटा या नहीं? क्या आया समझ में अर्थात् क्या फैसला किया?

❖ *अध्याय 18 के श्लोक 73 में अर्जुन कह रहा है कि आप की कृपा से मेरा मोह नष्ट हो गया और मुझे ज्ञान हो गया है। संश्य रहित हो कर स्थित हूँ और आप जो कहोगे वही करूँगा। अर्जुन (विवश तथा और कोई चारा न देख कर सोचा कि मरना तो है ही, युद्ध न करूंगा तो यह काल मारेगा। यदि एक बार फिर वही रूप दिखा दिया तो अभी भय से जीवन लीला समाप्त हो जाएगी। हो सकता है युद्ध जीत जाएँ तो राज तो करलेगें) बोला भगवान आ गई समझ में। आपकी शरण हूँ तथा आपकी जो आज्ञा वही करूंगा अर्थात् युद्ध करूंगा।*

यहाँ एक बात विशेष विचारणीय है कि अर्जुन कह रहा है कि मैं आप की शरण में हूँ। जो आप कहोगे वही करूँगा। काल भगवान अध्याय 18 के श्लोक 65 में कह रहा है कि तू मेरी शरण रह। मुझे आदर पूर्वक प्रणाम कर। मेरे में मन वाला बन फिर मुझे ही प्राप्त होगा। मैं सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ। तू चिंता मत कर। फिर महाभारत में प्रमाण है कि पाँचों पाण्डव नरक में डाले गए। युधिष्ठिर कम समय के लिए। फिर युधिष्ठिर ने पुण्य दिए तब वे नरक से छुटे। फिर भगवन वचन जो अध्याय 18 के श्लोक 65 में कहे थे, उनका क्या बना?

अध्याय 18 के श्लोक 74 से 78 तक संजय धृतराष्ट्र के दिल को धड़का रहा है, कह रहा है कि जिसके पक्ष में श्री कृष्ण है वे (पाण्डव) तो निःसंदेह विजयी होंगे। धृतराष्ट्र की छाती पर पहले ही पहाड़ रख दिया। गीता सुन कर धृतराष्ट्र कितना चिंतित हुआ होगा। शांति तो दूर रही चूंकि श्री कृष्ण पाण्डवों के पक्ष में थे जिसका परिणाम धृतराष्ट्र के पुत्रों की हार निश्चित थी।

❖ *विशेष :- गीता ज्ञान सुनने से न तो धृतराष्ट्र को शांति मिली, न अर्जुन को। घोर युद्ध करके परेशानी तथा अभिमन्यु वध की चिंता-दुःख तथा युद्ध में मारे व्यक्तियों की हत्या का पाप अर्जुन तथा पाण्डवों को मिला।*

गीता ज्ञान में बताए अनुसार परम अक्षर ब्रह्म की साधना से संसार में सुख-शांति प्राप्ति होती है तथा सनातन परम धाम तथा परम शांति भी प्राप्त होती है जिसकी गवाही गीता ज्ञान दाता ने गीता अध्याय 18 के श्लोक 62 में दी है।

।।सत साहेब।।

❑❑❑

।।अठारहवें अध्याय के अनुवाद सहित श्लोक।।

परमात्मने नमः

अथाष्टादशोऽध्यायः

अध्याय 18 का श्लोक 1(अर्जुन उवाच)

सन्न्यासस्य महाबाहो तत्त्वमिच्छामि वेदितुम्।
त्यागस्य च हृषीकेश पृथक्केशिनिषूदन।१।

सन्न्यासस्य, महाबाहो, तत्त्वम्, इच्छामि, वेदितुम्,
त्यागस्य, च, हृषीकेश, पथक्, केशिनिषूदन।।1।।

अनुवाद : (महाबाहो) हे महाबाहो! (हृषीकेश) हे अन्तर्यामिन! (केशिनिषूदन) केशिनाशक (सन्न्यासस्य) संन्यास (च) और (त्यागस्य) त्यागके (तत्त्वम्) तत्वको (पथक्) पथक्-पथक् (वेदितुम्) जानना (इच्छामि) चाहता हूँ।(1)

अध्याय 18 का श्लोक 2

काम्यानां कर्मणां न्यासं सन्न्यासं कवयो विदुः।
सर्वकर्मफलत्यागं प्राहुस्त्यागं विचक्षणाः।२।

काम्यानाम्, कर्मणाम्, न्यासम्, सन्न्यासम्, कवयः, विदुः,
सर्वकर्मफलत्यागम्, प्राहुः, त्यागम्, विचक्षणाः।।2।।

अनुवाद : (कवयः) पण्डितजन तो (काम्यानाम्) मनोकामना के लिए किए धार्मिक (कर्मणाम्) कर्मोंके (न्यासम्) त्यागको (सन्न्यासम्) संन्यास (विदुः) समझते हैं तथा दूसरे (विचक्षणाः) विचारकुशल पुरुष (सर्वकर्मफलत्यागम्) सब कर्मोंके फलके त्यागको (त्यागम्) त्याग (प्राहुः) कहते हैं।(2)

अध्याय 18 का श्लोक 3

त्याज्यं दोषवदित्येके कर्म प्राहुर्मनीषिणः।
यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यमिति चापरे।३।

त्याज्यम्, दोषवत्, इति, एके, कर्म, प्राहुः, मनीषिणः,
यज्ञदानतपःकर्म, न, त्याज्यम्, इति, च, अपरे।।3।।

अनुवाद : (एके) कई एक (मनीषिणः) विद्वान् (इति) ऐसा (प्राहुः) कहते हैं कि (कर्म) शास्त्र विधि रहित भक्ति कर्म (दोषवत्) दोषयुक्त हैं इसलिये (त्याज्यम्) त्यागनेके योग्य हैं (च) और (अपरे) दूसरे विद्वान् (इति) यह कहते हैं कि (यज्ञदानतपःकर्मः) यज्ञ, दान और तपरूपी कर्म (न,त्याज्यम्) त्यागने योग्य नहीं हैं।(3)

अध्याय 18 का श्लोक 4 (भगवान उवाच)

निश्चयं शृणु मे तत्र त्यागे भरतसत्तम।
त्यागो हि पुरुषव्याघ्र त्रिविधः सम्प्रकीर्तितः।४।

निश्चयम्, श्रणु, मे, तत्र, त्यागे, भरतसत्तम,
त्यागः, हि, पुरुषव्याघ्र, त्रिविधः, सम्प्रकीर्तितः।।4।।

अनुवाद : (पुरुषव्याघ्र) हे शेर पुरुष (भरतसत्तम) अर्जुन! (तत्र) संन्यास और त्याग इन दोनोंमेसे पहले (त्यागे) त्यागके विषयमें तू (मे) मेरा (निश्चयम्) निश्चय (श्रणु) सुन (हि) क्योंकि (त्यागः) त्याग (त्रिविधः) तीन प्रकारका (सम्प्रकीर्तितः) कहा गया है।(4)

अध्याय 18 का श्लोक 5

यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत्।
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्।५।

यज्ञदानतपःकर्म, न, त्याज्यम्, कार्यम्, एव, तत्,
यज्ञः, दानम्, तपः, च, एव, पावनानि, मनीषिणाम्।।5।।

अनुवाद : (यज्ञदानतपःकर्म) यज्ञ, दान और तपरूप कर्म (न, त्याज्यम्) त्याग करनेके योग्य नहीं है बल्कि (तत्) वह तो (एव) अवश्य (कार्यम्) कर्तव्य है क्योंकि (यज्ञः) यज्ञ (दानम्) दान (च) और (तपः) तप (एव) ही (मनीषिणाम्) बुद्धिमान् पुरुषों को (पावनानि) पवित्र करने वाले हैं।(5)

विशेष :- यहाँ पर हठयोग द्वारा किया जाने वाले तप के विषय में नहीं कहा है यहाँ पर गीता अध्याय 17 श्लोक 14 से 17 में कहे तप के विषय में कहा है।

अध्याय 18 का श्लोक 6

एतान्यपि तु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा फलानि च।
कर्तव्यानीति मे पार्थ निश्चितं मतमुत्तमम्।६।

एतानि, अपि, तु, कर्माणि, संगम्, त्यक्त्वा, फलानि, च,
कर्तव्यानि, इति, मे, पार्थ निश्चितम्, मतम्, उत्तमम्।।6।।

अनुवाद : (पार्थ) हे पार्थ! (एतानि) इन यज्ञ, दान और तपरूप कर्मोंको (तु) तथा (अपि) भी (कर्माणि) सम्पूर्ण कर्तव्यकर्मोंको (संगम्) आसक्ति (च) और (फलानि) फलोंका (त्यक्त्वा) त्याग करके (कर्तव्यानि) करना चाहिए (इति) यह (मे) मेरा (निश्चितम्) निश्चय किया हुआ (उत्तमम्) उत्तम (मतम्) मत है।(6)

अध्याय 18 का श्लोक 7

नियतस्य तु सन्न्यासः कर्मणो नोपपद्यते।
मोहात्तस्य परित्यागस्तामसः परिकीर्तितः। ७ ।

नियतस्य, तु, सन्न्यासः, कर्मणः, न, उपपद्यते,
मोहात्, तस्य, परित्यागः, तामसः, परिकीर्तितः।।7।।

अनुवाद : (तु) परंतु (नियतस्य) नियत शास्त्रानुकूल (कर्मणः) कर्मका (सन्न्यासः) त्याग (न,उपपद्यते) उचित नहीं है (मोहात्) मोहके कारण अज्ञानता वश भाविक होकर (तस्य) उसका (परित्यागः) त्याग कर देना (तामसः) तामस (परिकीर्तितः) त्याग कहा गया है।(7)

अध्याय 18 का श्लोक 8

दुःखमित्येव यत्कर्म कायक्लेशभयात्त्यजेत्।
स कृत्वा राजसं त्यागं नैव त्यागफलं लभेत्। ८ ।

दुःखम्, इति, एव, यत्, कर्म, कायक्लेशभयात्, त्यजेत्,
सः, कृत्वा, राजसम्, त्यागम्, न, एव, त्यागफलम्, लभेत्।।8।।

अनुवाद : (यत्) जो कुछ (कर्म) भक्ति साधना का व शरीर निर्वाह के लिए कर्म है (दुःखम्, एव) दुःखरूप ही है (इति) ऐसा समझकर यदि कोई (कायक्लेशभयात्) शारीरिक क्लेशके भयसे अर्थात् कार्य करने को कष्ट मानकर कर्तव्य कर्मोंका (त्यजेत्) त्याग कर दे तो (सः) वह ऐसा (राजसम्) राजस (त्यागम्) त्याग (कृत्वा) करके (त्यागफलम्) त्यागके फलको (एव) किसी प्रकार भी (न, लभेत्) नहीं पाता।(8)

अध्याय 18 का श्लोक 9

कार्यमित्येव यत्कर्म नियतं क्रियतेऽर्जुन।
सङ्गं त्यक्त्वा फलं चैव स त्यागः सात्त्विको मतः। ९ ।

कार्यम्, इति, एव, यत्, कर्म, नियतम्, क्रियते, अर्जुन,
संगम्, त्यक्त्वा, फलम्, च, एव, सः, त्यागः, सात्त्विकः, मतः।।9।।

अनुवाद : (अर्जुन) हे अर्जुन! (यत्) जो (नियतम्) शास्त्रानुकूल (कर्म) कर्म (कार्यम्) करना कर्तव्य है (इति,एव) इसी भावसे (संगम्) आसक्ति (च) और (फलम्) फलका (त्यक्त्वा) त्याग करके (क्रियते) किया जाता है (सः,एव) वही (सात्त्विकः) सात्विक (त्यागः) त्याग (मतः) माना गया है।(9)

अध्याय 18 का श्लोक 10

न द्वेष्ट्यकुशलं कर्म कुशले नानुषज्जते।
त्यागी सत्त्वसमाविष्टो मेधावी छिन्नसंशयः। १०।

न, द्वेष्टि, अकुशलम्, कर्म, कुशले, न, अनुषज्जते,
त्यागी, सत्त्वसमाविष्टः, मेधावी, छिन्नसंशयः।।10।।

अनुवाद : (अकुशलम्) अकुशल (कर्म) कर्मसे तो (न,द्वेष्टि)) द्वेष नहीं करता और (कुशले) कुशल कर्ममें (न,अनुषज्जते) आसक्त नहीं होता वह (सत्त्वसमाविष्टः) सत्वगुणसे युक्त पुरुष (छिन्नसंशयः) संश्यरहित (मेधावी) बुद्धिमान् और (त्यागी) सच्चा त्यागी है।(10)

अध्याय 18 का श्लोक 11

न हि देहभृता शक्यं त्यक्तुं कर्माण्यशेषतः।
यस्तु कर्मफलत्यागी स त्यागीत्यभिधीयते। ११ ।

न, हि, देहभृता, शक्यम्, त्यक्तुम्, कर्माणि, अशेषतः,
यः, तु, कर्मफलत्यागी, सः, त्यागी, इति, अभिधीयते।।11।।

अनुवाद : (हि) क्योंकि (देहभृता) शरीरधारी किसी भी मनुष्यके द्वारा (अशेषतः) सम्पूर्णतासे (कर्माणि) सब कर्मोका (त्यक्तुम्) त्याग किया जाना (न, शक्यम्) शक्य नहीं है (यः) जो (कर्मफलत्यागी) कर्मफलका त्यागी है (सः, तु) वही (त्यागी) त्यागी है (इति) यह (अभिधीयते) कहा जाता है।(11)

यही प्रमाण गीता अध्याय 3 श्लोक 4 से 8 व 19 से 21 में है।

अध्याय 18 का श्लोक 12

अनिष्टमिष्टं मिश्रं च त्रिविधं कर्मणः फलम्।
भवत्यत्यागिनां प्रेत्य न तु सन्न्यासिनां क्वचित्। १२।

अनिष्टम्, इष्टम्, मिश्रम्, च, त्रिविधम्, कर्मणः, फलम्,
भवति, अत्यागिनाम्, प्रेत्य, न, तु, सन्न्यासिनाम्, क्वचित्।।12।।

अनुवाद : (अत्यागिनाम्) कर्मफलका त्याग न करनेवाले मनुष्योंके (कर्मणः) कर्मोंका (इष्टम्) शुभ (अनिष्टम्) अशुभ (च) और (मिश्रम्) मिला हुआ (त्रिविधम्) तीन प्रकारका (फलम्) फल (प्रेत्य) मरनेके पश्चात् (भवति) होता है (तु) किंतु (सन्न्यासिनाम्) कर्मफलका त्याग कर देनेवाले मनुष्योंके कर्मोंका फल (क्वचित्) किसी कालमें भी (न) नहीं होता (पूर्ण मोक्ष हो जाता है)।(12)

अध्याय 18 का श्लोक 13

पञ्चैतानि महाबाहो कारणानि निबोध मे।
साङ्ख्ये कृतान्ते प्रोक्तानि सिद्धये सर्वकर्मणाम्। १३।

प च, एतानि, महाबाहो, कारणानि, निबोध, मे,
साङ्ख्ये, कतान्ते, प्रोक्तानि, सिद्धये, सर्वकर्मणाम्।।13।।

अनुवाद : (महाबाहो) हे महाबाहो! (सर्वकर्मणाम्) सम्पूर्ण कर्मोंकी (सिद्धये) सिद्धिके (एतानि) ये (प च) पाँच (कारणानि) हेतु (कतान्ते) कर्मोंका अन्त करनेके लिये उपाय बतलानेवाले (साङ्ख्ये) सांख्यशास्त्रमें (प्रोक्तानि) कहे गये हैं उनको तू (मे) मुझसे (निबोध) भलीभाँति जान।(13)

अध्याय 18 का श्लोक 14

अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधम्।
विविधाश्च पृथक्चेष्टा दैवं चैवात्र पञ्चमम्। १४।

अधिष्ठानम्, तथा, कर्ता, करणम्, च, पथग्विधम्,
विविधाः, च, पथक्, चेष्टाः, दैवम्, च, एव, अत्र, प चमम्।।14।।

अनुवाद : (अत्र) इस विषयमें अर्थात् कर्मोंकी सिद्धिमें (अधिष्ठानम्) अधिष्ठान (च) और (कर्ता) कर्त्ता (च) तथा (पथग्विधम्) भिन्न-भिन्न प्रकारके (करणम्) करण (च) एवं (विविधाः) नाना प्रकारकी (पथक्) अलग-अलग (चेष्टाः) चेष्टाएँ और (तथा) वैसे (एव) ही (प चमम्) पाँचवाँ हेतु (दैवम्) दैव अर्थात् ईश्वरीय देन है।(14)

अध्याय 18 का श्लोक 15

शरीरवाङ्मनोभिर्यत्कर्म प्रारभते नरः।
न्याय्यं वा विपरीतं वा पञ्चैते तस्य हेतवः। १५।

शरीरवाङ्मनोभिः, यत्, कर्म, प्रारभते, नरः,
न्याय्यम्, वा, विपरीतम्, वा, प च, एते, तस्य, हेतवः।।15।।

अनुवाद : (नरः) मनुष्य (शरीरवाङ्मनोभिः) मन, वाणी और शरीरसे (न्याय्यम्) शास्त्रानुकूल (वा) अथवा (विपरीतम्,वा) विपरीत (यत्,कर्म) जो कुछ भी कर्म (प्रारभते) करता है (तस्य) उसके (एते) ये (प च) पाँचों (हेतवः) कारण हैं।(15)

अध्याय 18 का श्लोक 16

तत्रैवं सति कर्तारमात्मानं केवलं तु यः।
पश्यत्यकृतबुद्धित्वान्न स पश्यति दुर्मतिः।१६।

तत्र, एवम्, सति, कर्तारम्, आत्मानम्, केवलम्, तु, यः,
पश्यति, अकतबुद्धित्वात्, न, सः, पश्यति, दुर्मतिः।।16।।

अनुवाद : (तु) परंतु (एवम्) ऐसा (सति) होनेपर भी (यः) जो मनुष्य (अकतबुद्धित्वात्) अशुद्धबुद्धि होने के कारण (तत्र) उस विषयमें यानी कर्मोंके होनेमें (केवलम्) केवल (आत्मानम्) जीवात्मा अर्थात् जीव को (कर्तारम्) कर्त्ता (पश्यति) समझता है (सः) वह (दुर्मतिः) दुर्बुद्धिवाला अज्ञानी (न,पश्यति) यथार्थ नहीं समझता।(16)

अध्याय 18 का श्लोक 17

यस्य नाहङ्कृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते।
हत्वापि स इमाँल्लोकान्न हन्ति न निबध्यते।१७।

यस्य, न, अहङ्कतः, भावः, बुद्धिः, यस्य, न, लिप्यते,
हत्वा, अपि, सः, इमान्, लोकान्, न, हन्ति, न, निबध्यते।।17।।

अनुवाद : (यस्य) जिसे (अहङ्कतः) 'मैं कर्त्ता हूँ' ऐसा (भावः) भाव (न) नहीं है तथा (यस्य) जिसकी (बुद्धिः) बुद्धि (न, लिप्यते) लिपायमान नहीं होती (सः) वह (इमान्) इन (लोकान्) सब लोकोंको (हत्वा) मारकर (अपि) भी (न) न तो (हन्ति) मारता है और (न) न (निबध्यते) बँधता है।(17)

अध्याय 18 का श्लोक 18

ज्ञानं ज्ञेयं परिज्ञाता त्रिविधा कर्मचोदना।
करणं कर्म कर्तेति त्रिविधः कर्मसङ्ग्रहः।१८।

ज्ञानम्, ज्ञेयम्, परिज्ञाता, त्रिविधा, कर्मचोदना,
करणम्, कर्म, कर्ता, इति, त्रिविधः, कर्मसंग्रहः।।18।।

अनुवाद : (परिज्ञाता) ज्ञाता (ज्ञानम्) ज्ञान और (ज्ञेयम्) ज्ञेय (त्रिविधा) यह तीन प्रकारकी (कर्मचोदना) कर्म-प्रेरणा है और (कर्ता) कर्त्ता (करणम्) करनी तथा (कर्म) क्रिया (इति) यह (त्रिविधः) तीन प्रकारका (कर्मसंग्रहः) कर्म-संग्रह है।(18)

अध्याय 18 का श्लोक 19

ज्ञानं कर्म च कर्ता च त्रिधैव गुणभेदतः।
प्रोच्यते गुणसङ्ख्याने यथावच्छृणु तान्यपि।१९।

ज्ञानम्, कर्म, च, कर्ता, च, त्रिधा, एव, गुणभेदतः,
प्रोच्यते, गुणसङ्ख्याने, यथावत्, श्रणु, तानि, अपि।।19।।

अनुवाद : (गुणसङ्ख्याने) गुणोंकी संख्या करनेवाले शास्त्रमें (ज्ञानम्) ज्ञान (च) और (कर्म) कर्म (च) तथा (कर्ता) कर्त्ता (गुणभेदतः) गुणोंके भेदसे (त्रिधा) तीन-तीन प्रकारके (एव) ही (प्रोच्यते) कहे गए हैं। (तानि) उनको (अपि) भी तू मुझसे (यथावत्) भलीभाँति (श्रणु) सुन।(19)

अध्याय 18 का श्लोक 20

सर्वभूतेषु येनैकं भावमव्ययमीक्षते।
अविभक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धि सात्त्विकम्।२०।

सर्वभूतेषु, येन, एकम्, भावम्, अव्ययम्, ईक्षते,
अविभक्तम्, विभक्तेषु, तत्, ज्ञानम्, विद्धि, सात्त्विकम्।।20।।

अनुवाद : (येन) जिस ज्ञानसे मनुष्य (विभक्तेषु) पथक्-पथक् (सर्वभूतेषु) सब प्राणियोंमें (एकम्) एक (अव्ययम्) अविनाशी परमात्मा (भावम्) भावको (अविभक्तम्) विभागरहित समभावसे स्थित (ईक्षते) देखता है (तत्) उस (ज्ञानम्) ज्ञानको तो तू (सात्त्विकम्) सात्विक (विद्धि) जान।(20)

अध्याय 18 का श्लोक 21

पृथक्त्वेन तु यज्ज्ञानं नानाभावान्पृथग्विधान्।
वेत्ति सर्वेषु भूतेषु तज्ज्ञानं विद्धि राजसम्।२१।

पथक्त्वेन, तु, यत्, ज्ञानम्, नानाभावान्, पथग्विधान्,
वेत्ति, सर्वेषु, भूतेषु, तत्, ज्ञानम्, विद्धि, राजसम्।।21।।

अनुवाद : (तु) किंतु (यत्) जो (ज्ञानम्) ज्ञान (सर्वेषु) सम्पूर्ण (भूतेषु) प्राणियोंमें (पथग्विधान्) भिन्न-भिन्न प्रकारके (नानाभावान्) नाना भावोंको (पथक्त्वेन) अलग-अलग (वेत्ति) जानता है (तत्) उस (ज्ञानम्) ज्ञानको तू (राजसम्) राजस (विद्धि) जान।(21)

अध्याय 18 का श्लोक 22

यत्तु कृत्स्नवदेकस्मिन्कार्ये सक्तमहैतुकम्।
अतत्त्वार्थवदल्पं च तत्तामसमुदाहृतम्।२२।

यत्, तु, कत्स्नवत्, एकस्मिन्, कार्ये, सक्तम्, अहैतुकम्,
अतत्त्वार्थवत्, अल्पम्, च, तत्, तामसम्, उदाहृतम्।।22।।

अनुवाद : (तु) परंतु (यत्) जो ज्ञान (एकस्मिन्) एक (कार्ये) कार्यरूप शरीरमें ही (कत्स्नवत्) सम्पूर्णके सदश (सक्तम्) आसक्त है (च) तथा जो (अहैतुकम्) बिना युक्तिवाला (अतत्त्वार्थवत्) बिना सोचे व बिना कारण के (अल्पम्) तुच्छ है (तत्) वह (तामसम्) तामस (उदाहृतम्) कहा गया है।(22)

अध्याय 18 का श्लोक 23

नियतं सङ्गरहितमरागद्वेषतः कृतम्।
अफलप्रेप्सुना कर्म यत्तत्सात्त्विकमुच्यते।२३।

नियतम्, संगरहितम्, अरागद्वेषतः, कतम्,
अफलप्रेप्सुना, कर्म, यत्, तत्, सात्त्विकम्, उच्यते।।23।।

अनुवाद : (यत्) जो (कर्म) कर्म (नियतम्) शास्त्रानुकूल (संगरहितम्) कर्त्तापनके अभिमानसे रहित हो तथा (अफलप्रेप्सुना) फल न चाहनेवाले द्वारा (अरागद्वेषतः) बिना राग द्वेषके (कतम्) किया गया हो (तत्) वह (सात्त्विकम्) सात्विक (उच्यते) कहा जाता है।(23)

अध्याय 18 का श्लोक 24

यत्तु कामेप्सुना कर्म साहङ्कारेण वा पुनः।
क्रियते बहुलायासं तद्राजसमुदाहृतम्।२४।

यत्, तु, कामेप्सुना, कर्म, साहंकारेण, वा, पुनः,
क्रियते, बहुलायासम्, तत्, राजसम्, उदाहृतम्।।24।।

अनुवाद : (तु) परंतु (यत्) जो (कर्म) कर्म (बहुलायासम्) बहुत परिश्रमसे युक्त होता है (पुनः) तथा (कामेप्सुना) भोगोंको चाहनेवाले पुरुष (वा) या (साहंकारेण) अहंकारयुक्त (क्रियते) किया जाता है (तत्) वह कर्म (राजसम्) राजस (उदाहृतम्) कहा गया है।(24)

अध्याय 18 का श्लोक 25

अनुबन्धं क्षयं हिंसामनवेक्ष्य च पौरुषम्।
मोहादारभ्यते कर्म यत्तत्तामसमुच्यते।२५।

अनुबन्धम्, क्षयम्, हिंसाम् अनवेक्ष्य, च, पौरुषम्,
मोहात्, आरभ्यते, कर्म, यत्, तत्, तामसम्, उच्यते।।25।।

अनुवाद : (यत्) जो (कर्म) कर्म (अनुबन्धम्) परिणाम (क्षयम्) हानि (हिंसाम्) हिंसा (च) और (पौरुषम्) सामर्थ्यको (अनवेक्ष्य) न विचारकर (मोहात्) केवल अज्ञानसे (आरभ्यते) आरम्भ किया जाता है (तत्) वह कर्म (तामसम्) तामस (उच्यते) कहा जाता है।(25)

अध्याय 18 का श्लोक 26

मुक्तसङ्गोऽनहंवादी धृत्युत्साहसमन्वितः।
सिद्ध्यसिद्ध्योर्निर्विकारः कर्ता सात्त्विक उच्यते। २६।

मुक्तसंगः, अनहंवादी, धत्युत्साहसमन्वितः,
सिद्ध्यसिद्ध्योः, निर्विकारः, कर्ता, सात्त्विकः, उच्यते।।26।।

अनुवाद : (कर्ता) कर्त्ता (मुक्तसंगः) संगरहित (अनहंवादी) अहंकारके वचन न बोलनेवाला (धत्युत्साहसमन्वितः) धैर्य और उत्साहसे युक्त तथा (सिद्धयसिद्धयोः) कार्यके सिद्ध होने और न होनेमें (निर्विकारः) विकारोंसे रहित (सात्त्विकः) सात्विक (उच्यते) कहा जाता है।(26)

अध्याय 18 का श्लोक 27

रागी कर्मफलप्रेप्सुर्लुब्धो हिंसात्मकोऽशुचिः।
हर्षशोकान्वितः कर्ता राजसः परिकीर्तितः।२७।

रागी, कर्मफलप्रेप्सुः, लुब्धः, हिंसात्मकः, अशुचिः,
हर्षशोकान्वितः, कर्ता, राजसः, परिकीर्तितः।।27।।

अनुवाद : (कर्ता) कर्त्ता (रागी) आसक्तिसे युक्त (कर्मफलप्रेप्सुः) कर्मोंके फलको चाहनेवाला और (लुब्धः) लोभी है तथा (हिंसात्मकः) दूसरों को कष्ट देनेके स्वभाववाला (अशुचिः) अशुद्धाचारी और (हर्षशोकान्वितः) हर्ष-शोकसे लिप्त है वह (राजसः) राजस (परिकीर्तितः) कहा गया है।(27)

अध्याय 18 का श्लोक 28

अयुक्तः प्राकृतः स्तब्धः शठोऽनैष्कृतिकोऽलसः।
विषादी दीर्घसूत्री च कर्ता तामस उच्यते।२८।

अयुक्तः, प्राकृतः, स्तब्धः, शठः, नैष्कृतिकः, अलसः,
विषादी, दीर्घसूत्री, च, कर्ता, तामसः, उच्यते।।28।।

अनुवाद : (कर्ता) कर्त्ता (अयुक्तः) अयुक्त (प्राकृतः) स्वभाविक (स्तब्धः) घमण्डी (शठः) धूर्त (नैष्कृतिकः) और दूसरों की जीविकाका नाश करनेवाला तथा (विषादी) शोक करनेवाला (अलसः) आलसी (च) और (दीर्घसूत्री) आज के कार्य को कल पर छोड़ना (तामसः) तामस (उच्यते) कहा जाता है।(28)

अध्याय 18 का श्लोक 29

बुद्धेर्भेदं धृतेश्चैव गुणतस्त्रिविधं शृणु।
प्रोच्यमानमशेषेण पृथक्त्वेन धनञ्जय।२९।

बुद्धेः, भेदम्, धृतेः, च, एव, गुणतः, त्रिविधम्, श्रृणु,
प्रोच्यमानम्, अशेषेण, पृथक्त्वेन, धन जय।।29।।

अनुवाद : (धन जय) हे धन जय! अब तू (बुद्धेः) बुद्धिका (च) और (धृतेः) धृतिका (एव) भी (गुणतः) गुणोंके अनुसार (त्रिविधम्) तीन प्रकारका (भेदम्) भेद मेरे द्वारा (अशेषेण) सम्पूर्णतासे (पृथक्त्वेन) विभागपूर्वक (प्रोच्यमानम्) कहा जानेवाला (श्रृणु) सुन।(29)

अध्याय 18 का श्लोक 30

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च कार्याकार्ये भयाभये।
बन्धं मोक्षं च या वेत्ति बुद्धिः सा पार्थ सात्त्विकी। ३०।

प्रवृत्तिम्, च, निवृत्तिम्, च, कार्याकार्ये, भयाभये,
बन्धम्, मोक्षम्, च, या, वेति, बुद्धिः, सा, पार्थ, सात्त्विकी।।30।।

अनुवाद : (पार्थ) हे पार्थ! (या) जो बुद्धि (प्रवृत्तिम्) प्रवृत्तिमार्ग (च) और (निवृत्तिम्) निवृत्तिमार्गको (कार्याकार्ये) कर्तव्य और अकर्तव्यको (भयाभये) भय और अभयको (च) तथा (बन्धम्) बन्धन (च) और (मोक्षम्) मोक्षको (वेत्ति) यथार्थ जानती है (सा) वह (बुद्धिः) बुद्धि (सात्त्विकी) सात्त्विकी है।(30)

अध्याय 18 का श्लोक 31

यया धर्ममधर्मं च कार्यं चाकार्यमेव च।
अयथावत्प्रजानाति बुद्धिः सा पार्थ राजसी। ३१।

यया, धर्मम्, अधर्मम्, च, कार्यम्, च, अकार्यम्, एव, च,
अयथावत्, प्रजानाति, बुद्धिः, सा, पार्थ, राजसी।।31।।

अनुवाद : (पार्थ) हे पार्थ! मनुष्य (यया) जिस बुद्धिके द्वारा (धर्मम्) धर्म (च) और (अधर्मम्) अधर्मको (च) तथा (कार्यम्) कर्तव्य (च) और (अकार्यम्) अकर्तव्यको (एव) भी (अयथावत्) यथार्थ नहीं (प्रजानाति) जानता (सा) वह (बुद्धिः) बुद्धि (राजसी) राजसी है।(31)

अध्याय 18 का श्लोक 32

अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसावृता।
सर्वार्थान्विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी। ३२।

अधर्मम्, धर्मम्, इति, या, मन्यते, तमसा, आवता,
सर्वार्थान्, विपरीतान्, च, बुद्धिः, सा, पार्थ, तामसी।।32।।

अनुवाद : (पार्थ) हे अर्जुन! (या) जो (तमसा) तमोगणुसे (आवता) घिरी हुई बुद्धि (अधर्मम्) अर्धमको भी (धर्मम्) 'यह धर्म है' (इति) ऐसा मान लेती है (च) तथा इसी प्रकार अन्य (सर्वार्थान्) सम्पूर्ण पदार्थोको भी (विपरीतान्) विपरीत (मन्यते) मान लेती है (सा) वह (बुद्धिः) बुद्धि (तामसी) तामसी है।(32)

अध्याय 18 का श्लोक 33

धृत्या यया धारयते मनःप्राणेन्द्रियक्रियाः।
योगेनाव्यभिचारिण्या धृतिः सा पार्थ सात्त्विकी। ३३।

धत्या, यया, धारयते, मनःप्राणेन्द्रियक्रियाः,
योगेन, अव्यभिचारिण्या, धतिः, सा, पार्थ, सात्त्विकी।।33।।

अनुवाद : (पार्थ) हे पार्थ! (यया) जिस (अव्यभिचारिण्या) अव्यभिचारिणी एक इष्ट पर आधारित (धत्या) धारणशक्तिसे मनुष्य (योगेन) भक्तियोगके द्वारा (मनःप्राणेन्द्रियक्रियाः) मन, स्वांस और इन्द्रियोंकी क्रियाओंको (धारयते) धारण करता है (सा) वह (धतिः) धति (सात्त्विकी) सात्विकी है।(33)

अध्याय 18 का श्लोक 34

यया तु धर्मकामार्थान्धृत्या धारयतेऽर्जुन।
प्रसङ्गेन फलाकाङ्क्षी धृतिः सा पार्थ राजसी। ३४।

यया, तु, धर्मकामार्थान्, धत्या, धारयते, अर्जुन,
प्रसंगेन, फलाकाङ्क्षी, धतिः, सा, पार्थ, राजसी।।34।।

अनुवाद : (तु) परंतु (पार्थ) हे पथापुत्र (अर्जुन) अर्जुन! (फलाकाङ्क्षी) फलकी इच्छावाला मनुष्य (यया) जिस (धत्या) धारणशक्तिके द्वारा (प्रसंगेन) अत्यन्त आसक्तिसे (धर्मकामार्थान्) धर्म, अर्थ और कामोंको (धारयते) धारण करता है (सा) वह (धतिः) धारणभक्ति (राजसी) राजसी है।(34)

अध्याय 18 का श्लोक 35

यया स्वप्नं भयं शोकं विषादं मदमेव च।
न विमुञ्चति दुर्मेधा धृतिः सा पार्थ तामसी। ३५।

यया, स्वप्नम्, भयम्, शोकम्, विषादम्, मदम् एव, च,
न, विमु चति, दुर्मेधाः, धतिः, सा, पार्थ, तामसी।।35।।

अनुवाद : (पार्थ) हे पार्थ! (दुर्मेधाः) नीच स्वभाव वाला (यया) जिस (स्पप्नम्) निंद्रा (भयम्) भय (शोकम्) चिन्ता (च) और (विषादम्) दुःखको तथा (मदम्) नशे को (एव)भी (न,विमु चति)नहीं छोड़ता (सा)वह (धतिः)भक्तिधारणा (तामसी) तामसी है।(35)

अध्याय 18 का श्लोक 36.37

सुखं त्विदानीं त्रिविधं शृणु मे भरतर्षभ।
अभ्यासाद्रमते यत्र दुःखान्तं च निगच्छति। ३६।

यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम्।
तत्सुखं सात्त्विकं प्रोक्तमात्मबुद्धिप्रसादजम्। ३७।

सुखम्, तु, इदानीम्, त्रिविधम्, श्रणु, मे, भरतर्षभ,
अभ्यासात्, रमते, यत्र, दुःखान्तम्, च, निगच्छति।।36।।
यत्, तत्, अग्रे, विषम्, इव, परिणामे, अमतोपमम्,
तत्, सुखम्, सात्विकम्, प्रोक्तम्, आत्मबुद्धिप्रसादजम्।।37।।

अनुवाद : (भरतर्षभ) हे भरतश्रेष्ठ! (इदानीम्) अब (त्रिविधम्) तीन प्रकारके (सुखम्) सुखको (तु) भी तू (मे) मुझसे (श्रणु) सुन। (यत्र) जिस (अभ्यासात्) भजन अभ्यासमें (रमते) लीन रहता है (च) और जिससे (दुःखान्तम्) दुःखोंके अन्तको (निगच्छति) प्राप्त हो जाता है (यत्) जो ऐसा सुख है (तत्) वह (अग्रे) आरम्भकालमें यद्यपि (विषम्) विषके (इव) तुल्य प्रतीत होता है परंतु (परिणामे) परिणाममें (अमतोपमम्) अमतके तुल्य है इसलिये (तत्) वह (आत्मबुद्धिप्रसादजम्) परमात्मविषयक बुद्धिके प्रसादसे उत्पन्न होनेवाला (सुखम्) सुख (सात्त्विकम्) सात्विक (प्रोक्तम्) कहा गया है।(36,37)

अध्याय 18 का श्लोक 38

विषयेन्द्रियसंयोगाद्यत्तदग्रेऽमृतोपमम्।
परिणामे विषमिव तत्सुखं राजसं स्मृतम्। ३८।

विषयेन्द्रियसंयोगात्, यत्, तत्, अग्रे, अमतोपमम्,
परिणामे, विषम्, इव, तत्, सुखम्, राजसम्, स्मतम्।।38।।

अनुवाद : (यत्) जो (सुखम्) सुख (विषयेन्द्रियसंयोगात्) विषय और इन्द्रियोंके संयोगसे होता है (तत्) वह (अग्रे) पहले भोगकालमें (अमतोपमम्) अमतके तुल्य प्रतीत होनेपर भी (परिणामे) परिणाममें (विषम्) विषके (इव) तुल्य है इसलिये (तत्) वह सुख (राजसम्) राजस (स्मतम्) कहा गया है।(38)

अध्याय 18 का श्लोक 39

यदग्रे चानुबन्धे च सुखं मोहनमात्मनः।
निद्रालस्यप्रमादोत्थं तत्तामसमुदाहृतम्। ३९।

यत्, अग्रे, च, अनुबन्धे, च, सुखम् मोहनम्, आत्मनः,
निद्रालस्यप्रमादोत्थम्, तत्, तामसम्, उदाहृतम्।।39।।

अनुवाद : (यत्) जो (सुखम्) सुख (च) तथा (अग्रे) पहले भोगकालमें (च) तथा (अनुबन्धे) परिणाममें (आत्मनः) आत्माको (मोहनम्) मोहित करनेवाला है (तत्) वह (निद्रालस्यप्रमादोत्थम्) निंद्रा आलस्य और प्रमाद से उत्पन्न सुख (तामसम्) तामस (उदाहृतम्) कहा गया है।(39)

अध्याय 18 का श्लोक 40

न तदस्ति पृथिव्यां वा दिवि देवेषु वा पुनः।
सत्त्वं प्रकृतिजैर्मुक्तं यदेभिः स्यात्त्रिभिर्गुणैः। ४०।

न, तत्, अस्ति, पथिव्याम्, वा, दिवि, देवेषु, वा, पुनः,
सत्त्वम्, प्रकतिजैः, मुक्तम्, यत्, एभिः, स्यात्, त्रिभिः, गुणैः।।40।।

अनुवाद : (पथिव्याम्) पथ्वीमें (वा) या (दिवि) आकाशमें (वा) अथवा (देवेषु) देवताओंमें (पुनः) फिर कहीं भी (तत्) वह ऐसा कोई भी (सत्त्वम्) सत्व (न) नहीं (अस्ति) है (यत्) जो (प्रकतिजैः) प्रकतिसे उत्पन्न (एभिः) इन (त्रिभिः) तीनों (गुणैः) गुणोंसे (मुक्तम्) रहित (स्यात्) हो।(40)

अध्याय 18 का श्लोक 41

ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां च परन्तप।
कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभावप्रभवैर्गुणैः।४१।

ब्राह्मणक्षत्रियविशाम्, शूद्राणाम्, च, परन्तप,
कर्माणि, प्रविभक्तानि, स्वभावप्रभवैः, गुणैः।।41।।

अनुवाद : (परन्तप) हे परन्तप! (ब्राह्मणक्षत्रियविशाम्) ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंके (च) तथा (शूद्राणाम्) शूद्रोंके (कर्माणि) कर्म (स्वभावप्रभवैः) स्वभावसे उत्पन्न (गुणैः) गुणोंके द्वारा (प्रविभक्तानि) विभक्त किये गये हैं।(41)

अध्याय 18 का श्लोक 42

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम्।४२।

शमः, दमः, तपः, शौचम्, क्षान्तिः, आर्जवम्, एव, च,
ज्ञानम्, विज्ञानम्, आस्तिक्यम्, ब्रह्मकर्म, स्वभावजम्।।42।।

अनुवाद : (शमः) छूआ छूत रहित तथा सुख दुःख को प्रभु कप्या जानना (दमः) इन्द्रियोंका दमन करना (तपः) धार्मिक नियमों के पालनके लिये कष्ट सहना (शौचम्) बाहर-भीतरसे शुद्ध रहना अर्थात् छलकपट रहित रहना (क्षान्तिः) दूसरोंके अपराधोंको क्षमा करना (आर्जवम्) मन, इन्द्रिय और शरीरको सरल रखना (आस्तिक्यम्) शास्त्र विधि अनुसार भक्ति से परमेश्वर तथा उसके सत्लोक में श्रद्धा रखना (ज्ञानम्) प्रभु भक्ति बहुत आवश्यक है। नहीं तो मानव जीवन व्यर्थ है, यह साधारण ज्ञान तथा पूर्ण परमात्मा कौन है, कैसा है? उसकी प्राप्ति की विधि क्या है इस प्रकार का ज्ञान (च) और (विज्ञानम्) परमात्माके तत्वज्ञान को जानना तथा अन्य तीनों वर्णों को शास्त्र विधि अनुसार साधना समझाना (एव) ही (ब्रह्मकर्म) ब्रह्म के विषय में कर्त्तव्य कर्म को जानने वाले ब्रह्मण के कर्म हैं। जो (स्वभावजम्) स्वभाव जनित होते हैं क्योंकि भगवान प्राप्ति के विषय में भक्त के स्वाभाविक कर्म हैं।(42)

अध्याय 18 का श्लोक 43

शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम्।
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम्।४३।

शौर्यम्, तेजः, धतिः, दाक्ष्यम्, युद्धे, च, अपि, अपलायनम्,
दानम्, ईश्वरभावः, च, क्षात्रम्, कर्म, स्वभावजम्।।43।।

अनुवाद : (शौर्यम्) शूर-वीरता (तेजः) तेज (धतिः) धैर्य (दाक्ष्यम्) चतुरता (च) और (युद्धे) युद्धमें (अपि) भी (अपलायनम्) न भागना (दानम्) दान देना (च) और (ईश्वरभावः) पूर्ण परमात्मामें रूचि स्वामिभाव ये सब के सब ही (क्षात्रम्) क्षत्रियके (स्वभावजम्) स्वाभाविक (कर्म) कर्म हैं।(43)

अध्याय 18 का श्लोक 44

कृषिगौरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम्।
परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम्।४४।

कषिगौरक्ष्यवाणिज्यम्, वैश्यकर्म, स्वभावजम्,
परिचर्यात्मकम्, कर्म, शूद्रस्य, अपि, स्वभावजम्।।44।।

अनुवाद : (कषिगौरक्ष्यवाणिज्यम्) खेती, गऊ रक्षा और उदर के लिए परमात्मा प्राप्ति का सौदा करना ये (वैश्यकर्म, स्वभावजम्) वैश्यके स्वाभाविक कर्म हैं तथा (परिचर्यात्मकम्) सब वर्णोकी सेवा तथा पूर्ण प्रभु की भक्ति करना (शूद्रस्य) शूद्रका (अपि) भी (स्वभावजम्) स्वाभाविक (कर्म) कर्म है।(44)

अध्याय 18 का श्लोक 45

स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः।
स्वकर्मनिरतः सिद्धिं यथा विन्दति तच्छृणु।४५।

स्वे, स्वे, कर्मणि, अभिरतः, संसिद्धिम्, लभते, नरः,
स्वकर्मनिरतः, सिद्धिम्, यथा, विन्दति, तत्, श्रणु।।45।।

अनुवाद : (स्वे,स्वे) अपने-अपने स्वाभाविक (कर्मणि) व्यवहारिक कर्मों तथा सत् भक्ति रूपी कर्मों में (अभिरतः) तत्परतासे लगा हुआ (नरः) मनुष्य (संसिद्धिम्) परम सिद्धिको (लभते) प्राप्त हो जाता है (स्वकर्मनिरतः) अपने स्वाभाविक कर्ममें लगा हुआ मनुष्य (यथा) जिस प्रकारसे (सिद्धिम्) परम सिद्धिको (विन्दति) प्राप्त होता है (तत्) उस विधिको तू (श्रणु) सुन।(45)

अध्याय 18 का श्लोक 46

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः।४६।

यतः, प्रवत्तिः, भूतानाम्, येन्, सर्वम्, इदम्, ततम्,
स्वकर्मणा, तम्, अभ्यर्च्य, सिद्धिं, विन्दति, मानवः।।46।।

अनुवाद : (यतः) जिस परमेश्वरसे (भूतानाम्) सम्पूर्ण प्राणियोंकी (प्रवतिः) उत्पत्ति हुई है और (येन) जिससे (इदम्) यह (सर्वम्) समस्त जगत् (ततम्) व्याप्त है (तम्) उस परमेश्वर की (स्वकर्मणा) अपने स्वाभाविक कर्मोंद्वारा अर्थात् हठ योग न करके सांसारिक कार्य करता हुआ (अभ्यर्च्य) पूजा करके (मानवः) मनुष्य (सिद्धिम्) सिद्धिको (विन्दति) प्राप्त हो जाता है।(46)

अध्याय 18 का श्लोक 47

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वभावनियतं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम्।४७।

श्रेयान्, स्वधर्मः, विगुणः, परधर्मात्, स्वनुष्ठितात्,
स्वभावनियतम्, कर्म, कुर्वन्, न, आप्नोति, किल्बिषम्।।47।।

अनुवाद : (विगुणः) गुण रहित (स्वनुष्ठितात्) स्वयं मनमाना अर्थात् शास्त्र विधि रहित अच्छी प्रकार आचरण किए हुए (परधर्मात्) दूसरेके धर्म अर्थात् धार्मिक पूजा से (स्वधर्मः) अपना धर्म अर्थात् शास्त्र विधि अनुसार धार्मिक पूजा (श्रेयान्) श्रेष्ठ है (स्वभावनियतम्) अपने वर्ण के स्वभाविक कर्म अर्थात् जो भी जिस क्षत्री, वैश्य, ब्राह्मण व शुद्र वर्ण में उत्पन्न है (कर्म) कर्म तथा

भक्ति कर्म (कुर्वन्) करता हुआ (किल्बिषम्) पापको (न आप्नोति) प्राप्त नहीं होता।(47)

अध्याय 18 का श्लोक 48

सहजं कर्म कौन्तेय सदोषमपि न त्यजेत्।
सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृताः।।४८।

सहजम्, कर्म, कौन्तेय, सदोषम्, अपि, न, त्यजेत्,
सर्वारम्भाः, हि, दोषेण, धूमेन, अग्निः, इव, आवताः।।48।।

अनुवाद : (कौन्तेय) हे कुन्तीपुत्र! (सदोषम्) दोष युक्त होने पर (अपि) भी (सहजम्) सहज योग अर्थात् वर्णानुसार कार्य करते हुए शास्त्र विधि अनुसार भक्ति (कर्म) कर्मको (न) नहीं (त्यजेत्) त्यागना चाहिए (हि) क्योंकि (धूमेन) धूएँसे (अग्निः) अग्निकी (इव) भाँति (सर्वारम्भाः) सभी कर्म (दोषेण) दोषसे (आवताः) युक्त हैं।(48)

भावार्थ :-- जिस भी व्यक्ति का जिस वर्ण (ब्राह्मण, वैश्य, क्षत्रीव शुद्र कुल) में जन्म है उस के कर्म में पाप भी समाया है। जैसे ब्राह्मण हवन करता है उसमें प्राणियों कि हिंसा होती है। वैश्य खेती व व्यापार करता है, क्षत्री शत्रु से युद्ध करता है। शुद्र सफाई आदि सेवा करता है। प्रत्येक कर्म में हिंसा होती है। फिर भी त्यागने योग्य कर्म नहीं है। क्योंकि इन कर्मों में हिंसा करना उद्देश्य नहीं होता। यदि देखा जाए तो सर्व उपरोक्त कर्म दोष युक्त हैं। तो भी प्रभु आज्ञा होने से कर्त्तव्य कर्म हैं। यही प्रमाण अध्याय 4 श्लोक 21 में है कि शरीर समबन्धि कर्म करता हुआ पाप को प्राप्त नहीं होता। गीता अध्याय 18 श्लोक 56 में भी है।

अध्याय 18 का श्लोक 49

असक्तबुद्धिः सर्वत्र जितात्मा विगतस्पृहः।
नैष्कर्म्यसिद्धिं परमां सन्न्यासेनाधिगच्छति।।४९।

असक्तबुद्धिः, सर्वत्र, जितात्मा, विगतस्पहः,
नैष्कर्म्यसिद्धिम्, परमाम्, सन्न्यासेन, अधिगच्छति।।49।।

अनुवाद : (सर्वत्र) सर्वत्र (असक्तबुद्धिः) आसक्तिरहित बुद्धिवाला (विगतस्पहः) स्पहारहित और (जितात्मा) बुरे कर्मों से विजय प्राप्त भक्त आत्मा (सन्न्यासेन) तत्व ज्ञान के अतिरिक्त सर्व ज्ञानों से सन्यास प्राप्त करने वाले द्वारा (परमाम्) श्रेष्ठ (नैष्कर्म्यसिद्धिम्) पूर्ण पाप विनाश होने पर जो पूर्ण मुक्ति होती है, उस सिद्धि अर्थात् परमगति को (अधिगच्छति) प्राप्त होता है।(49)

अध्याय 18 का श्लोक 50

सिद्धिं प्राप्तो यथा ब्रह्म तथाप्नोति निबोध मे।
समासेनैव कौन्तेय निष्ठा ज्ञानस्य या परा।।५०।

सिद्धिम्, प्राप्तः, यथा, ब्रह्म, तथा, आप्नोति, निबोध, मे,
समासेन, एव, कौन्तेय, निष्ठा, ज्ञानस्य, या, परा।।50।।

अनुवाद : (या) जो कि (ज्ञानस्य) ज्ञानकी (परा) श्रेष्ठ (निष्ठा) उपलब्धि है (सिद्धिम्) उस नैष्कर्म्यसिद्धिको (यथा) जिसे (प्राप्तः) प्राप्त होकर (ब्रह्म) परमात्मा को (आप्नोति) प्राप्त होता है (तथा) उस प्रकारको (कौन्तेय) हे कुन्तीपुत्र! तू (समासेन) संक्षेपमें (एव) ही (मे) मुझसे (निबोध) समझ।(50)

अध्याय 18 का श्लोक 51

बुद्ध्या विशुद्धया युक्तो धृत्यात्मानं नियम्य च।
शब्दादीन्विषयांस्त्यक्त्वा रागद्वेषौ व्युदस्य च। ५१।

बुद्ध्या, विशुद्धया, युक्तः, धत्या, आत्मानम्, नियम्य, च,
शब्दादीन्, विषयान्, त्यक्त्वा, रागद्वेषौ, व्युदस्य, च।।51।।

अनुवाद : (विशुद्धया) विशुद्ध (बुद्धया) बुद्धिसे (युक्तः) युक्त (च) तथा (धत्या) सात्विक धारण शक्ति के द्वारा (आत्मानम् नियम्य) अपने आप को संयमी करके (च) और (शब्दादीन्) शब्दादी (विषयान्) विकारों को (त्यक्त्वा) त्यागकर (रागद्वेषौ) राग द्वेष को (व्युदस्य) सर्वदा नष्ट करके (51)

गीता अध्याय 18 श्लोक 52

विविक्तसेवी लघ्वाशी यतवाक्कायमानसः।
ध्यानयोगपरो नित्यं वैराग्यं समुपाश्रितः। ५२।

विविक्तसेवी, लघ्वाशी, यतवाक्कायमानसः,
ध्यानयोगपरः, नित्यम्, वैराग्यम्, समुपाश्रितः।।52।।

(लघ्वाशी) अन्न जल का संयमी (विविक्त सेवी) व्यर्थ वार्ता से बच कर एकान्त प्रेमी (यत वाक् काय मानसः) मन-कर्म वचन पर संयम करने वाला (नित्यम्) निरन्तर (ध्यान योग परः) सहज ध्यान योग के प्रायाण (वैराग्यम्) वैराग्य का (समुपाश्रितः) आश्रय लेने वाला (52)

गीता अध्याय 18 श्लोक 53

अहङ्कारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम्।
विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते। ५३।

अहंकारम्, बलम्, दर्पम्, कामम्, क्रोधम्, परिग्रहम्,
विमुच्य निर्ममः, शान्तः, ब्रह्मभूयाय, कल्पते।।53।।

अनुवाद :-- (अहंकारम्) अहंकार (बलम्) शक्ति (दर्पम्) घमण्ड (कामम्) काम अर्थात् विलास (क्रोधम्) क्रोध (परिग्रहम्) परिग्रह अर्थात् आवश्यकता से अधिक संग्रह का (विमुच्य) त्याग करके (निर्ममः) ममता रहित (शान्तः) शान्त साधक (ब्रह्मभूयाय) पूर्ण परमात्मा को प्राप्त होने का (कल्पते) पात्र होता है।(53)

अध्याय 18 का श्लोक 54

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम्। ५४।

ब्रह्मभूतः, प्रसन्नात्मा, न, शोचति, न, काङ्क्षति,
समः, सर्वेषु, भूतेषु, मद्भक्तिम्, लभते, पराम्।।54।।

अनुवद : (ब्रह्मभूतः) परमात्मा प्राप्ति योग्य हुआ प्राणी (प्रसन्नात्मा) प्रसन्न मनवाला योगी (न) न (शोचति) शोक करता है (न) न (काक्षंति) आकांक्षा ही करता है ऐसा (सर्वेषु) समस्त (भूतेषु) प्राणियोंमें (समः) एक जैसा भाव वाला (पराम्,मद्भक्तिम्) मेरे वाली शास्त्रानुकूल श्रेष्ठ भक्ति को (लभते) प्राप्त हो जाता है।(54)

भावार्थ :-- इस श्लोक 54 का भावार्थ है कि जो प्रथम ब्रह्म गायत्री मन्त्र साधक को प्रदान किया जाता है जिस से सर्व कमल चक्र खुल जाते हैं अर्थात् कुण्डलनि शक्ति जागत हो जाती है वह उपासक परमात्मा प्राप्ति का पात्र बन जाता है। उस सुपात्र को ब्रह्म काल की परम भक्ति का मन्त्र ओं (ॐ) दिया जाता है। ओम्+तत् मिलकर दो अक्षर का सत्यनाम बनता है। इससे पूर्ण मोक्ष मार्ग प्रारम्भ होता है। इसलिए इस गीता अध्याय 18 श्लोक 54 में वर्णन है।

अध्याय 18 का श्लोक 55

भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः।
ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम्।५५।

भक्त्या, माम्, अभिजानाति, यावान्, यः, च, अस्मि, तत्त्वतः,
ततः, माम्, तत्त्वतः, ज्ञात्वा, विशते, तदनन्तरम्।।55।।

अनुवाद : (भक्त्या) वह भक्त (माम्) मुझ को (यः) जो (च) और (यावान्) जितना (अस्मि) हूँ, (तत्त्वतः, अभिजानाति) ठीक वैसा का वैसा तत्वसे जान लेता है तथा (ततः) उस भक्तिसे (माम्) मुझको (तत्त्वतः) तत्वसे (ज्ञात्वा) जानकर (तदनन्तरम्) तत्काल ही (विशते) पूर्ण परमात्मा की भक्ति में लीन हो जाता है।(55)

अध्याय 18 का श्लोक 56

सर्वकर्माण्यपि सदा कुर्वाणो मद्व्यपाश्रयः।
मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं पदमव्ययम्।५६।

सर्वकर्माणि, अपि, सदा, कुर्वाणः, मद्व्यपाश्रयः,
मत्प्रसादात्, अवाप्नोति, शाश्वतम्, पदम्, अव्ययम्।।56।।

अनुवाद : (मद्व्यपाश्रयः) मेरे संरक्षण में शास्त्रानुकूल मार्ग के आश्रित अर्थात् मतावलम्बी (सर्वकर्माणि) सम्पूर्ण कर्मों को (सदा) सदा (कुर्वाणः) करता हुआ (अपि) भी (मत्प्रसादात्) मेरे उस मत अर्थात् शास्त्रानुकूल साधना के पूर्ण ज्ञान की कप्या से (शाश्वतम्) सनातन (अव्ययम्) अविनाशी (पदम्) यथार्थ भक्ति की पद्यति को तथा अविनाशी पद को (अवाप्नोति) प्राप्त हो जाता है।(56)

नोट : मत का भाव है कि जैसे कहते हैं कि संतमत सतसंग अर्थात् संतों द्वारा दिए गए विचारों के आधार पर परमात्मा का विवरण (सतसंग)। मत का अर्थात् प्रकरण अनुसार मेरा भी होता है।

अध्याय 18 का श्लोक 57

चेतसा सर्वकर्माणि मयि सन्न्यस्य मत्परः।
बुद्धियोगमुपाश्रित्य मच्चित्तः सततं भव।५७।

चेतसा, सर्वकर्माणि, मयि, सन्न्यस्य, मत्परः,
बुद्धियोगम्, उपाश्रित्य, मच्चित्तः, सततम्, भव।।57।।

अनुवाद : (सर्वकर्माणि) सब कर्मोंको (चेतसा) मनसे (सन्न्यस्य) त्याग कर तथा (बुद्धियोगम्) ज्ञान योगको (उपाश्रित्य) आश्रय करके (मयि) मेरे (मत्परः) मत पर आधारित होकर और (सततम्) निरन्तर (मच्चित्तः) मेरे में चितवाला (भव) हो।(57)

अध्याय 18 का श्लोक 58

मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि।
अथ चेत्त्वमहङ्कारान्न श्रोष्यसि विनङ्क्ष्यसि।५८।

मच्चित्तः, सर्वदुर्गाणि, मत्प्रसादात्, तरिष्यसि,
अथ, चेत्, त्वम्, अहंकारात्, न, श्रोष्यसि, विनङ्क्ष्यसि।।58।।

अनुवाद : (मच्चितः) मेरे में चितवाला होकर (त्वम्) तू (मत्प्रसादात्) मेरे द्वारा बताई शास्त्रानुकूल विचार धारा की कप्यासे (सर्वदुर्गाणि) समस्त संकटोंको अनायास ही (तरिष्यसि) पार कर जाएगा (अथ) और (चेत्) यदि (अहंकारात्) अहंकारके कारण मेरे वचनोंको (न) न (श्रोष्यसि) सुनेगा तो (विनङ्क्ष्यसि) नष्ट हो जायगा अर्थात् योग भ्रष्ट हो गया तो नष्ट हो जाएगा। यही प्रमाण अध्याय 6 श्लोक 40-46 तक है।(58)

अध्याय 18 का श्लोक 59

यदहङ्कारमाश्रित्य न योत्स्य इति मन्यसे।
मिथ्यैष व्यवसायस्ते प्रकृतिस्त्वां नियोक्ष्यति।५९।

यत्, अहंकारम्, आश्रित्य, न, योत्स्ये, इति, मन्यसे,
मिथ्या, एषः, व्यवसायः, ते, प्रकतिः, त्वाम्, नियोक्ष्यति।।59।।

अनुवाद : (यत्) जो तू (अहंकारम्) अहंकारका (आश्रित्य) आश्रय लेकर (इति) यह (मन्यसे) मान रहा है कि (न,योत्स्ये) मैं युद्ध नहीं करूँगा, (ते) तेरा (एषः) यह (व्यवसायः) निश्चय (मिथ्या) मिथ्या है क्योंकि तेरा (प्रकतिः) क्षत्री स्वभाव (त्वाम्) तुझे (नियोक्ष्यति) जबरदस्ती युद्धमें लगा देगा।(59)

अध्याय 18 का श्लोक 60

स्वभावजेन कौन्तेय निबद्धः स्वेन कर्मणा।
कर्तुं नेच्छसि यन्मोहात्करिष्यस्यवशोऽपि तत्।६०।

स्वभावजेन, कौन्तेय, निबद्धः, स्वेन्, कर्मणा,
कर्तुम्, न, इच्छसि, यत्, मोहात्, करिष्यसि, अवशः, अपि, तत्।।60।।

अनुवाद : (कौन्तेय) हे कुन्तीपुत्र! (यत्) जिस कर्मको तू (मोहात्) मोहके कारण (कर्तुम्) करना (न) नहीं (इच्छसि) चाहता (तत्) उसको (अपि) भी (स्वेन्) अपनेपूर्वकत (स्वभावजेन) स्वाभाविक क्षत्री (कर्मणा) कर्मसे (निबद्धः) बँधा हुआ (अवशः) परवश होकर (करिष्यसि) करेगा।(60)

अध्याय 18 का श्लोक 61

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया।६१।

ईश्वरः, सर्वभूतानाम्, हृद्देशे, अर्जुन, तिष्ठति,
भ्रामयन्, सर्वभूतानि, यन्त्रारूढानि, मायया।।61।।

अनुवाद : (अर्जुन) हे अर्जुन! (यन्त्रारूढानि) शरीररूप यन्त्रमें आरूढ़ हुए (सर्वभूतानि) सम्पूर्ण प्राणियोंको (ईश्वरः) अन्तर्यामी ईश्वर (मायया) अपनी मायासे उनके कर्मोंके अनुसार (भ्रामयन्) भ्रमण करवाता हुआ (सर्वभूतानाम्) सब प्राणियोंके (हृद्देशे) हृदयमें (तिष्ठति) स्थित है।(61)

अध्याय 18 का श्लोक 62

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्। ६२।

तम्, एव, शरणम्, गच्छ, सर्वभावेन, भारत,
तत्प्रसादात्, पराम्, शान्तिम्, स्थानम्, प्राप्स्यसि, शाश्वतम्।।62।।

अनुवाद : (भारत) हे भारत! तू (सर्वभावेन) सब प्रकारसे (तम्) उस परमेश्वरकी (एव) ही (शरणम्) शरणमें (गच्छ) जा। (तत्प्रसादात्) उस परमात्माकी कपा से ही तू (पराम्) परम (शान्तिम्) शान्तिको तथा (शाश्वतम्) सदा रहने वाला सत (स्थानम्) स्थान/धाम/लोक को अर्थात् सत्लोक को (प्राप्स्यसि) प्राप्त होगा।(62)

अध्याय 18 का श्लोक 63

इति ते ज्ञानमाख्यातं गुह्याद्गुह्यतरं मया।
विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरु। ६३।

इति, ते, ज्ञानम्, आख्यातम्, गुह्यात्, गुह्यतरम्, मया,
विमश्य, एतत्, अशेषेण, यथा, इच्छसि, तथा, कुरु।।63।।

अनुवाद : (इति) इस प्रकार (गुह्यात्) गोपनीयसे (गुह्यतरम्) अति गोपनीय (ज्ञानम्) ज्ञान (मया) मैंने (ते) तुझसे (आख्यातम्) कह दिया (एतत्) इस रहस्ययुक्त ज्ञानको (अशेषेण) पूर्णतया (विमश्य) भलीभाँति विचारकर (यथा) जैसे (इच्छसि) चाहता है (तथा) वैसे ही (कुरु) कर।(63)

अध्याय 18 का श्लोक 64

सर्वगुह्यतमं भूयः शृणु मे परमं वचः।
इष्टोऽसि मे दृढमिति ततो वक्ष्यामि ते हितम्। ६४।

सर्वगुह्यतमम्, भूयः, श्रणु, मे, परमम्, वचः,
इष्टः, असि, मे, दढम्, इति, ततः, वक्ष्यामि, ते, हितम्।।64।।

अनुवाद : (सर्वगुह्यतमम्) सम्पूर्ण गोपनीयोंसे अति गोपनीय (मे) मेरे (परमम्) परम रहस्ययुक्त (हितम्) हितकारक (वचः) वचन (ते) तुझे (भूयः) फिर (वक्ष्यामि) कहूँगा (ततः) इसे (श्रणु) सुन (इति) यह पूर्ण ब्रह्म (मे) मेरा (दढम्) पक्का निश्चित (इष्टः) इष्टदेव अर्थात् पूज्यदेव (असि) है।(64)

अध्याय 18 का श्लोक 65

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे। ६५।

मन्मनाः, भव, मद्भक्तः, मद्याजी, माम्, नमस्कुरु,
माम्, एव, एष्यसि, सत्यम्, ते, प्रतिजाने, प्रियः, असि, मे।।65।।

अनुवाद : (मन्मनाः) एक मनवाला (मद्भक्तः) मेरा मतानुसार भक्त (भव) हो (मद्याजी) मतानुसार मेरा पूजन करनेवाला (माम्) मुझको (नमस्कुरु) प्रणाम कर। (माम्) मुझे (एव) ही (एष्यसि) प्राप्त होगा (ते) तुझसे (सत्यम्) सत्य (प्रतिजाने) प्रतिज्ञा करता हूँ (मे) मेरा (प्रियः) अत्यन्त प्रिय (असि) है।(65)

अध्याय 18 का श्लोक 66

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः। ६६।

सर्वधर्मान्, परित्यज्य, माम्, एकम्, शरणम्, व्रज,
अहम्, त्वा, सर्वपापेभ्यः, मोक्षयिष्यामि, मा, शुचः।।66।।

अनुवाद : गीता अध्याय 18 श्लोक 62 में जिस परमेश्वर की शरण में जाने को कहा है इस श्लोक 66 में भी उसी के विषय में कहा है कि (माम्) मेरी (सर्वधर्मान्) सम्पूर्ण पूजाओंको (माम्) मुझ में (परित्यज्य) त्यागकर तू केवल (एकम्) एक उस अद्वितीय अर्थात् पूर्ण परमात्मा की (शरणम्) शरणमें (व्रज) जा। (अहम्) मैं (त्वा) तुझे (सर्वपापेभ्यः) सम्पूर्ण पापोंसे (मोक्षयिष्यामि) छुड़वा दूँगा तू (मा,शुचः) शोक मत कर।(66)

विशेष :- अन्य गीता अनुवाद कर्ताओं ने ''व्रज्'' शब्द का अर्थ आना किया है जो अनुचित है ''व्रज्'' शब्द का अर्थ जाना, चला जाना आदि होता है।

भावार्थ :- श्लोक 63 का भावार्थ है कि गीता ज्ञान दाता ब्रह्म कह रहा है कि हे अर्जुन! यह गीता वाला अति गोपनीय ज्ञान मैंने तुझे कह दिया। फिर श्लोक 64 में गीता ज्ञानदाता एक और सम्पूर्ण गोपनीयों से भी गोपनीय वचन कहता है कि वह परमेश्वर जिस के विषय में श्लोक 62 में कहा है वह परमेश्वर मेरा (गीता ज्ञान दाता का) ईष्ट देव अर्थात् पूज्य देव है यही प्रमाण अध्याय 15 श्लोक 4 में भी कहा है कि मैं भी उस परमेश्वर की शरण हूँ। इससे सिद्ध है कि गीता ज्ञान दाता प्रभु से कोई अन्य सर्वश्रेष्ठ परमेश्वर है वही पूजा के योग्य है। यही प्रमाण अध्याय 15 श्लोक 17 में भी है गीता ज्ञान दाता प्रभु कहता है कि अध्याय 15 श्लोक 16 में वर्णित क्षर पुरूष (ब्रह्म) तथा अक्षर पुरूष (परब्रह्म) से भी श्रेष्ठ परमेश्वर तो उपरोक्त दोनों से अन्य ही है वही वास्तव में परमात्मा कहलाता है। वह वास्तव में अविनाशी है। उसी की शरण में जाने के लिए कहा है।

अध्याय 18 का श्लोक 67

इदं ते नातपस्काय नाभक्ताय कदाचन।
न चाशुश्रूषवे वाच्यं न च मां योऽभ्यसूयति। ६७।

इदम्, ते, न, अतपस्काय, न, अभक्ताय, कदाचन,
न, च, अशुश्रुषवे, वाच्यम्, न, च, माम्, यः, अभ्यसूयति।।67।।

अनुवाद : (ते) तुझे (इदम्) यह गीतारूप रहस्यमय उपदेश (कदाचन) किसी भी कालमें (न) न तो (अतपस्काय) तपरहित यानि स्वधर्म पालन में न लगे मनुष्य से (वाच्यम्) कहना चाहिए (न) न (अभक्ताय) भक्तिरहितसे (च) और (न) न (अशुश्रूषवे) बिना सुननेकी इच्छावालेसे ही कहना चाहिए (च) तथा (यः) जो (माम्) मुझमें (अभ्यसूयति) दोषदष्टि रखता है (न) नहीं कहना चाहिए।(67)

अध्याय 18 का श्लोक 68

य इमं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति।
भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः। ६८।

यः, इमम्, परमम्, गुह्यम्, मद्भक्तेषु, अभिधास्यति,
भक्तिम्, मयि, पराम्, कत्वा, माम्, एव, एष्यति, असंशयः।।68।।

अनुवाद : (यः) जो पुरुष (मयि) मुझमें (पराम्) परम (भक्तिम्) भक्ति (कत्वा) करके (इमम्) इस (परमम्) परम (गुह्यम्) रहस्ययुक्त गीताशास्त्रको (मद्भक्तेषु) भक्तोंमें (अभिधास्यति) कहेगा वह (माम्) मुझको (एव) ही (एष्यति) प्राप्त होगा (असंशयः) इसमें कोई संदेह नहीं है।(68)

अध्याय 18 का श्लोक 69

न च तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः।
भविता न च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि।६९।

न, च, तस्मात्, मनुष्येषु, कश्चित्, मे, प्रियकत्तमः,
भविता, न, च, मे, तस्मात्, अन्यः, प्रियतरः, भुवि।।69।।

अनुवाद : (तस्मात्) उससे बढ़कर (मे) मेरा (प्रियकत्तमः) प्रिय कार्य करनेवाला (मनुष्येषु) मनुष्योंमें (कश्चित्) कोई (च) भी (न) नहीं है (च) तथा (भुवि) पथ्वीभरमें (तस्मात्) उससे बढ़कर (मे) मेरा (प्रियतरः) प्रिय (अन्यः) दूसरा कोई (भविता) भविष्यमें होगा भी (न) नहीं।(69)

अध्याय 18 का श्लोक 70

अध्येष्यते च य इमं धर्म्यं संवादमावयोः।
ज्ञानयज्ञेन तेनाहमिष्टः स्यामिति मे मतिः।७०।

अध्येष्यते, च, यः, इमम्, धर्म्यम्, संवादम्, आवयोः,
ज्ञानयज्ञेन, तेन, अहम्, इष्टः, स्याम्, इति, मे, मतिः।।70।।

अनुवाद : (यः) जो पुरुष (इमम्) इस (धर्म्यम्) धर्ममय (आवयोः) हम दोनोंके (संवादम्) संवादरूप गीताशास्त्रको (अध्येष्यते) पढ़ेगा (तेन) उसके द्वारा (च) भी (अहम्) मैं (ज्ञानयज्ञेन) ज्ञानयज्ञसे (इष्टः) पूज्यदेव (स्याम्) होऊँगा (इति) ऐसा (मे) मेरा (मतिः) मत है।(70)

अध्याय 18 का श्लोक 71

श्रद्धावाननसूयश्च शृणुयादपि यो नरः।
सोऽपि मुक्तः शुभाँल्लोकान्प्राप्नुयात्पुण्यकर्मणाम्।७१।

श्रद्धावान्, अनसूयः, च, श्रणुयात्, अपि, यः, नरः,
सः, अपि, मुक्तः, शुभान्, लोकान्, प्राप्नुयात्, पुण्यकर्मणाम्।।71।।

अनुवाद : (यः) जो (नरः) मनुष्य (श्रद्धावान्) श्रद्धायुक्त (च) और (अनसूयः) दोष-दष्टिसे रहित होकर इस गीताशास्त्रका (श्रणुयात् अपि) श्रवण भी करेगा, (सः) वह (अपि) भी (मुक्तः) मुक्त होकर (पुण्यकर्मणाम्) उत्तम कर्म करनेवालोंके (शुभान्) श्रेष्ठ (लोकान्) लोकोंको (प्राप्नुयात्) प्राप्त होगा।(71)

अध्याय 18 का श्लोक 72

कच्चिदेतच्छ्रुतं पार्थ त्वयैकाग्रेण चेतसा।
कच्चिदज्ञानसम्मोहः प्रनष्टस्ते धनञ्जय।७२।

कच्चित्, एतत्, श्रुतम्, पार्थ, त्वया, एकाग्रेण, चेतसा,
कच्चित्, अज्ञानसम्मोहः, प्रनष्टः, ते, धन जय।।72।।

अनुवाद : (पार्थ) हे पार्थ! (कच्चित्) क्या (एतत्) इस गीताशास्त्रको (त्वया) तूने (एकाग्रेण,

चेतसा) एकाग्रचितसे (श्रुतम्) श्रवण किया और (धन जय) हे धन जय! (कच्चित्) क्या (ते) तेरा (अज्ञानसम्मोहः) अज्ञानजनित मोह (प्रनष्टः) नष्ट हो गया।(72)

अध्याय 18 का श्लोक 73 (अर्जुन उवाच)

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव।७३।

नष्टः, मोहः, स्मतिः, लब्धा, त्वत्प्रसादात्, मया, अच्युत,
स्थितः, अस्मि, गतसन्देहः, करिष्ये, वचनम्, तव।।73।।

अनुवाद : (अच्युत) हे अच्युत! (त्वत्प्रसादात्) आपकी कप्यासे मेरा (मोहः) मोह (नष्टः) नष्ट हो गया और (मया) मुझे (स्मतिः) ज्ञान (लब्धा) प्राप्त हो गया (गतसन्देहः) संश्यरहित होकर (स्थितः) स्थित (अस्मि) हूँ अतः (तव) आपकी (वचनम्) आज्ञाका (करिष्ये) पालन करूँगा।(73)

अध्याय 18 का श्लोक 74 (संजय उवाच)

इत्यहं वासुदेवस्य पार्थस्य च महात्मनः।
संवादमिममश्रौषमद्भुतं रोमहर्षणम्।७४।

इति, अहम्, वासुदेवस्य, पार्थस्य, च, महात्मनः,
संवादम्, इमम्, अश्रौषम्, अद्भुतम्, रोमहर्षणम्।।74।।

अनुवाद : (इति) इस प्रकार (अहम्) मैंने (वासुदेवस्य) श्रीवासुदेवके (च) और (महात्मनः) महात्मा (पार्थस्य) अर्जुनके (इमम्) इस (अद्भुतम्) अद्भुत रहस्ययुक्त (रोमहर्षणम्) रोमांचकारक (संवादम्) संवादको (अश्रौषम्) सुना।(74)

अध्याय 18 का श्लोक 75

व्यासप्रसादाच्छ्रुतवानेतद्गुह्यमहं परम्।
योगं योगेश्वरात्कृष्णात्साक्षात्कथयतः स्वयम्। ७५।

व्यासप्रसादात्, श्रुतवान्, एतत्, गुह्यम्, अहम्, परम्
योगम्, योगेश्वरात्, कष्णात्, साक्षात्, कथयतः, स्वयम्।।75।।

अनुवाद : (व्यासप्रसादात्) श्रीव्यासजीकी कप्यासे दिव्य दष्टि पाकर (अहम्) मैंने (एतत्) इस (परम्) परम (गुह्यम्) गोपनीय (योगम्) योगको अर्जुनके प्रति (कथयतः) कहते हुए (स्वयम्) स्वयं (योगेश्वरात्) योगेश्वर (कष्णात्) भगवान् श्रीकष्णसे (साक्षात्) प्रत्यक्ष (श्रुतवान्) सुना है।(75)

अध्याय 18 का श्लोक 76

राजन्संस्मृत्य संस्मृत्य संवादमिममद्भुतम्।
केशवार्जुनयोः पुण्यं हृष्यामि च मुहुर्मुहुः।७६।

राजन्, संस्मत्य, संस्मत्य, संवादम्, इमम्, अद्भुतम्,
केशवार्जुनयोः, पुण्यम्, हृष्यामि, च, मुहुर्मुहुः।।76।।

अनुवाद : (राजन्) हे राजन् (केशवार्जुनयोः) भगवान् श्रीकष्ण और अर्जुनके (इमम्) इस रहस्ययुक्त (पुण्यम्) कल्याणकारक (च) और (अद्भुतम्) अद्भुत (संवादम्) संवादको (संस्मत्य,संस्मत्य) पुनः-पुनः सुमरण करके मैं (मुहुर्मुहु) बार-बार (हृष्यामि) हर्षित हो रहा हूँ।(76)

अध्याय 18 का श्लोक 77

तच्च संस्मृत्य संस्मृत्य रूपमत्यद्भुतं हरेः।
विस्मयो मे महान्राजन्हृष्यामि च पुनः पुनः।७७।

तत्, च, संस्मत्य, संस्मत्य, रूपम्, अति, अद्भुतम्, हरेः,
विस्मयः, मे, महान्, राजन्, हृष्यामि, च, पुनः, पुनः।।77।।

अनुवाद : (राजन्) हे राजन्! (हरेः) श्रीहरिके (तत्) उस (अति) अत्यन्त (अद्भुतम्) विलक्षण (रूपम्) रूपको (च) भी (संस्मत्य,संस्मत्य) पुनः-पुनः सुमरण करके (मे) मेरे चितमें (महान्) महान् (विस्मयः) आश्चर्य होता है (च) और (पुनः,पुनः) बार-बार (हृष्यामि) हर्षित हो रहा हूँ।(77)

अध्याय 18 का श्लोक 78

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम।७८।

यत्र, योगेश्वरः, कष्णः, यत्र, पार्थः, धनुर्धरः,
तत्र श्रीः, विजयः, भूतिः, ध्रुवा, नीतिः, मतिः, मम।।78।।

अनुवाद : (यत्र) जहाँ (योगेश्वरः) योगेश्वर (कष्णः) भगवान् श्रीकष्ण हैं और (यत्र) जहाँ (धनुर्धरः) गाण्डीव-धनुषधारी (पार्थः) अर्जुन हैं (तत्र) वहींपर (श्रीः) श्री (विजयः) विजय (भूतिः) विभूति और (ध्रुवा) अचल (नीतिः) नीति है (मम) मेरा (मतिः) मत है।(78)

(इति अध्याय अठारहवाँ)

❑❑❑

Aaqo val A2

स्वयं काल (ब्रह्म) भगवान कह रहा है कि मैं नाशवान (क्षर पुरुष) हूँ तथा मेरे से ऊपर एक अविनाशी (अक्षर पुरुष) है परंतु वास्तव में हम दोनों से ऊपर अविनाशी तो अन्य ही है। जिसे अविनाशी परमात्मा (परम अक्षर पुरुष) नाम से जाना जाता है। वही परमात्मा तीनों लोकों में प्रवेश करके सबका धारण पोषण करता है। फिर अपनी वास्तविकता बताते हुए ब्रह्म (काल) भगवान कहता है कि मैं तो इसलिए पुरुषोत्तम कहलाता हूँ कि स्थूल शरीर धारी प्राणियों तथा सूक्ष्म शरीर में आत्मा से ही उत्तम हूँ। वास्तव में अविनाशी तो कोई और ही है। (अध्याय नं.15 के श्लोक नं. 16,18)

फिर अर्जुन को सलाह देता है कि यदि पूर्ण मुक्त होना है तो उस परमात्मा की शरण में जा। (अध्याय नं. 18 के श्लोक नं. 62,64,66)। मैं भी उसी की शरण हूँ तथा मेरा उपास्य इष्ट भी वही है। (अध्याय नं. 15 के श्लोक नं. 4)

क्या गीता जी के पढ़ने वालों ने व प्रचार करने वाले संतों ने यह नहीं पढ़ा कि भगवान ने व्रत के लिए मना किया है? इससे साधक अपनी साधना में सफल नहीं हो सकता? गीता जी के अध्याय नं. 6 का श्लोक नं. 16 में लिखा है कि साधना न तो बिल्कुल न खाने वाले की पूरी होती है और न ही अधिक खाने वाले की अर्थात् व्रत (अन्न न खाना) वर्जित है। न अधिक जागने वाले की तथा न अधिक सोने वाले की।

क्या यह नहीं पढ़ा कि पित्र-पूजा, भूत-पूजा तथा देवी-देवताओं की पूजा न करके मेरी (सर्गुण परमात्मा गुरु की) पूजा करो। गीता जी के अध्याय नं. 9 का श्लोक नं. 25 है जिसमें प्रमुख प्रमाण ब्रजवासियों से इन्द्र (जो देवी देवताओं के राजा (स्वर्ग के राजा) देवराज इन्द्र) की पूजा भी बन्द करवाके कहा था कि भगवान की पूजा करो। इन देवी-देवताओं से अच्छा तो अपनी गऊओं (गायों) की सेवा (पूजा) करो जिससे वे अधिक दूध देवें या अपने उन चरगाह पहाड़ों की पूजा करों जहां आपकी गऊऐं चारा चर कर आती हैं तथा आपको अमृत दूध पिलाती हैं। यह देवी-देवता, पित्र-भूत आपको अस्थाई लाभ देकर नरक में ले जाते हैं तथा यह पूजा मूर्ख लोग करते हैं जिसके कारण फिर वे पतन को प्राप्त होते हैं अर्थात् जन्म-मरण में जाते हैं। गीता जी के अध्याय नं. 9 के श्लोक नं. 23, 24, 25 का भाव यह है --

एक समय पाँच अंधों ने हाथी वाले से कहा - ओ हाथी वाले हमें हाथी दिखा! हाथी वाले ने कहा अब अंधेरा है तथा आप भी अंधे हो। हाथी कैसे देखोगे? अंधों ने कहा हमारे हाथ आँखों का काम करते हैं। तब हाथी वाले ने कहा अच्छा आओ देखो हाथी। उस व्यक्ति ने उन पाँचों अंधों को हाथी के चारों ओर खड़ा कर दिया। अब एक ने सूंड को पकड़ा तथा अच्छी तरह हाथों से निरिक्षण किया। दूसरे ने पैरों का तीसरे ने पूँछ का, चौथे ने कानों का, पाँचवे ने पेट का। अपनी-2 तसल्ली करके चल पड़े। रास्ते में किसी ने पूछा कहां गए थे सूरदास? अंधों ने कहा हाथी देख कर आए हैं। व्यक्ति ने पूछा कैसा था हाथी? अंधों ने अपना-2 अनुभव बताया। एक (जिसने सूंड का निरिक्षण किया था) ने बताया हाथी लम्बी पाईप जैसा है। दूसरे (जिसने पैर का निरिक्षण किया था) ने कहा नहीं, हाथी थाम्ब (खम्बा) जैसा होता है। उसने पैरों को हाथी मान रखा था। तीसरे (जिसने पूँछ

का निरिक्षण किया था) ने कहा हाथी पट्टे जैसा होता है। उसने पूँछ को ही हाथी समझ रखा था। चौथे (जिसने कान का निरिक्षण किया था) ने कहा अरे! हाथी तो छाज (सूप) जैसा होता है। उसने कानों को ही हाथी समझ रखा था। पाँचवें (जिसने पेट का निरिक्षण किया था) ने कहा कि हाथी तो भींत (दिवार) जैसा होता है। उसने हाथी के पेट को ही हाथी मान रखा था।

यहां पर काल भगवान कह रहा है कि जो देवी-देवता हैं वे मेरे ही अंश हैं। परंतु वे आपको पूरा लाभ नहीं दे सकते। जैसे कोई हाथी की पूँछ से चिपका हो और हाथी चल रहा हो। वह सफर तो कर रहा है परंतु झटकम-लटकम हो रहा है। कोई कहे कि यहाँ मत चिपटो! नादान (मूर्ख) रास्ते में गिर जाओगे, ऊपर बैठो आपको हाथी यात्रा का सही लाभ मिलेगा। वे नादान कहते हैं कि 'पूंछ हाथी की ही है। यह लाभ भी हाथी ही दे रहा है।' परंतु यह पूर्ण लाभ नहीं है।

इसलिए यह यात्रा (देवी-देवताओं, पितरो, भूतों की पूजा) मूर्ख लोग करते हैं जो बार-2 गिर जाते हैं अर्थात् जन्म-मरण व चौरासी लाख जूनियों को बार-2 प्राप्त होते रहते हैं। इसलिए हाथी के ऊपर बैठो अर्थात् पूर्ण परमात्मा की पूजा करो जिससे यात्रा (परमात्मा की पूजा) का पूर्ण आनन्द प्राप्त हो सके। प्रमाण के लिए देखें गीता जी के अध्याय नं. 9 के श्लोक नं. 23, 24, 25 तथा अध्याय नं. 7 के श्लोक नं. 12 से 15 तथा 20 से 23 तक।

फिर वे संतजन लाखों भक्तजनों को पित्र-पूजा (श्राद्ध निकालना), देवी-देवताओं की पूजा, एकादशी-सोमवार- मंगलवार-शुक्रवार-शनिवार के व्रत आदि की सलाह देते हैं। भगवान के वचन की अवहेलना करके स्वयं भी नरक में जाते हैं तथा अनुयाईयों को भी नरक ले जाते हैं। कप्या देखें गीता जी के अध्याय 7 श्लोक 12 से 15 तथा अध्याय 16 के श्लोक नं. 15 से 20 तक और अध्याय नं. 17 के श्लोक नं. 1 से 6 तक।

ऐसे साधकों को तथा मार्ग दर्शकों को राक्षस वत्ति (स्वभाव) के कहा है। केवल मान-बड़ाई या पैसा प्राप्ति उनका प्रमुख उद्देश्य है, जीव कल्याण नहीं। यदि एक दिन भी ये संतजन कह दें कि गीता जी में भगवान ने यह सब मना किया है अर्थात् यह सब नहीं करना तो उनके पण्डाल खाली हो जाएँ तथा भक्तजन समूह कम हो जाए। उनके धंधे बंद हो जाएँ। गरीबदास जी महाराज कहते हैं :-

"तत्त्व भेद कोई ना कहै राई झूमकरा। पैसे ऊपर नाच सुनो राई झूमकरा।।"

भाव यह है कि गरीबदास जी महाराज कह रहे हैं कि तत्त्व भेद अर्थात् सही ज्ञान जनता को नहीं कहा जाता क्योंकि पैसा संतों का मुख्य उद्देश्य है, जिसके कारण समाज को धोखे में डाला गया है।

❑❑❑

शंका समाधान

''मुझ दास (रामपाल दास) को तत्व भेद प्राप्ति''

एक दिन इस दास (रामपाल दास) ने अपने पूज्य गुरूदेव स्वामी रामदेवानंद जी से पूछा कि हे गुरूवर! यह सारनाम क्या है? जिसके विषय में बार-बार सतग्रन्थ साहेब तथा परमेश्वर कबीर साहेब जी की वाणी में आता है। तब उन्होंने कहा कि आज तक किसी ने मेरे से इस विषय में नहीं पूछा। लाखों का समूह है। परंतु ये प्रभु नहीं चाहते ये तो माया चाहते हैं या प्रभुत्ता। गुरु जी ने कहा कि आपके दादा गुरु जी ने मुझे कहा था कि आपसे कोई ऐसी बात पूछे तो उसे यह वास्तविक मन्त्र तथा सारशब्द का भेद देना। वह पूर्ण संत होगा तथा कबीर परमेश्वर का वास्तविक भक्ति मार्ग प्रारम्भ होगा। ऐसा कह कर पूज्य गुरुदेव स्वामी रामदेवानन्द जी महाराज ने उनके पास उपस्थित संगत को अपनी कुटिया से बाहर कर दिया तथा सर्व भेद समझाया और कहा कि रामपाल तेरे समान संत इस पथ्वी पर नहीं होगा। मुझे तेरा ही इंतजार था। सतलोक प्रस्थान करने से पूर्व सर्व आश्रम त्याग कर मुझ दास के पास जीन्द(हरियाणा) कुटिया में स्वामी जी चालीस दिन रहे तथा कहा कि किसी को नहीं बताना कि मैंने तेरे को सारनाम तथा सारशब्द दिया है। क्योंकि तेरे दादा गुरु जी की आज्ञा थी कि जो शिष्य सारशब्द के विषय में पूछे केवल उसी को बताना। वह एक ही होगा। अन्य को सारशब्द नहीं देना। इसलिए अन्य जो शिष्य हैं वे अधिकारी नहीं हैं। उन्हें पता चलेगा तो वे द्वेष करेंगे तथा पाप के भागी हो जाएंगे। यदि ये सर्व इसी जन्म में या अगले जन्मों में तेरे (रामपाल दास के) बनेंगे तो इनका उद्धार होगा।

मुझ दास के पास चालीस दिन जीन्द कुटिया में ठहर कर स्वामी जी 24 जनवरी 1997 को पंजाब में बने आश्रम कस्बा तलवण्डी भाई में गए। वहाँ पर 26 जनवरी 1997 को सुबह 10 बजे सतलोक प्रस्थान किया। सन् 1994 को मुझ दास को नाम दान करने का आदेश दिया तथा अपने सर्व शिष्यों से कह दिया कि आज के बाद यह रामपाल ही तुम्हारा गुरु है। आज के बाद मैं तुम्हारा गुरु नहीं हूँ। जिसने कल्याण करवाना हो, इस रामपाल से उपदेश प्राप्त करो। इन शब्दों द्वारा पूज्य गुरुदेव ने भी नकली शिष्यों का भार अपने सिर से डाल दिया। यह सारशब्द अभी तक पूर्ण रूप से गुप्त रखना था।

पूज्य गुरुदेव के सतलोक सिधारने के पश्चात् यह दास(रामपाल दास) बहुत अकेलापन महसूस करने लगा। बहुत चिंतित रहने लगा। अब मेरे साथ कौन रहेगा ? मैं क्या करूँ ? इतनी बड़ी जिम्मेवारी को यह अकेला दास कैसे निभा पाएगा ? परमेश्वर कबीर साहेब जी ने सारनाम व शब्द देना मना किया हुआ है। मेरी यह चिंता गहन होने लगी। मार्च 1997 में फाल्गुन शुक्ल एकम संवत् 2054 को दिन के दस बजे परमेश्वर कबीर साहेब जी अपने वास्तविक रूप में मुझे मिले तथा कहा कि चिंता मत कर, मैं तेरे साथ हूँ। अब सारनाम तथा सारशब्द प्रदान करने का समय आ गया है तथा कहा कि संत गरीबदास से भी मैंने ही कहा था कि आप की परम्परा में केवल एक संत को सारनाम व शब्द बताना है। उसे कसम दिलाना है कि केवल एक ही

शिष्य को वह भी सारनाम व शब्द बताए जो ऐसे प्रश्न पूछे। यह परम्परा संत गरीबदास जी से संत शीतल दास जी को तथा अब केवल तेरे(रामपाल दास) तक पहूँची है। यह रहस्य जान बूझ कर रखा था। कहा पुत्र निश्चिंत हो कर मेरा गुनगान कर। अब सारी पथ्वी पर तत्व ज्ञान फैलेगा। परमेश्वर कबीर साहेब जी ने कहा कि अभी किसी से मत कहना कि मुझे कबीर प्रभु मिले थे। आप पर कोई विश्वास नहीं करेगा। तुझे कुछ समय उपरांत फिर मिलूँगा। परमेश्वर कबीर साहेब जी दास को समय-2 पर दर्शन देकर कत्यार्थ करते रहते हैं। अब परमेश्वर का स्पष्ट संकेत हो गया है। इसलिए दास वर्णन कर रहा है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है कि आदरणीय गरीबदास जी की वाणी "सुमरण का अंग" में लिखा है कि 'सोहं ऊपर और है, सत सुकत एक नाम'। जो अभी तक संत गरीबदास पंथ में उस सारनाम का ज्ञान नहीं था। अब इस दास (रामपाल दास) से विमुख हुए गुरु द्रोही ही उन्हें बताने लगे हैं। लेकिन अब शिक्षित समाज है, इनकी दाल नहीं गलने देगा। कुछे बातें ऐसी होती हैं जो गुप्त रखनी होती है। परमेश्वर कबीर साहेब जी ने स्वामी रामानन्द जी को भी यही कसम दिलाई थी कि मेरा भेद मत देना। आप मेरे गुरु बने रहो तथा संत धर्मदास जी को भी यही कहा था कि -

"गुप्त कल्प तुम राखो मोरी, देऊं मकरतार की डोरी"

भावार्थ है कि अन्य किसी को मेरे विषय में मत बताना। क्योंकि कोई आप पर विश्वास नहीं करेगा और जो भक्ति मार्ग मैं तुझे बता रहा हूँ यह किसी को मत बताना। मैं तुझे सतलोक जाने की वह(मकरतार अर्थात् मकड़ी के तार की तरह अभेद भक्ति मार्ग जिस के सहारे प्राणी भ्रमित न होकर सतलोक चला जाता है वह प्रभु पाने की) विशेष विधि बताता हूँ जिसके द्वारा आप सतलोक पहुँच जाओगे। परमेश्वर कबीर साहेब जी ने अपने प्रिय शिष्य धर्मदास जी साहेब से कहा था कि यह सारशब्द मैं तुझे प्रदान करता हूँ। परंतु आप यह सारशब्द अन्य किसी को नहीं देना। तुझे लाख दुहाई है अर्थात् सख्त मना है। यदि यह सारशब्द किसी अन्य के हाथ में पड़ गया तो आने वाले समय में जो बिचली(मध्य वाली) पीढ़ी पार नहीं हो पावेगी। धर्मदास जी ने शपथ ली थी कि प्रभु आपके आदेश की अवहेलना कभी नहीं होगी। इसलिए धर्मदास जी ने अपने किसी भी वंशज को यह वास्तविक नाम जाप तथा सारशब्द नहीं बताया। जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण है कि संत धर्मदास जी ने पुरी(जगन्नाथ पुरी) में शरीर त्यागा। जहाँ कबीर परमश्वेर ने एक पत्थर चौरा(चबुतरा) जिस पर बैठ कर समुंद्र को रोक कर श्री जगन्नाथ जी के मन्दिर की रक्षा की थी। संत धर्मदास जी तथा धर्मपत्नी भक्तमति आमिनी देवी दोनों की यादगार वहाँ पुरी में बनी है। यह दास कई सेवकों सहित इस तथ्य को आँखों देख कर आया है। बाद में श्री चुड़ामणी जी को (जो संत धर्मदास जी को कबीर परमेश्वर की कपया से नेक संतान प्राप्त हुई थी।) कबीर परमेश्वर जी ने धर्मदास जी पुत्र चूड़ामणी जी को केवल प्रथम मन्त्र जो सात नामों का है, प्रदान किया। वह प्रथम वास्तविक नाम भी धर्मदास की सातवीं पीढ़ी में काल का दूत महंत बना उसने काल के बारह पंथों में एक टकसारी पंथ भी है, उसके प्रवर्तक की बातों में आकर प्रथम नाम छोड़कर जो वर्तमान में दामाखेड़ा (छत्तीसगढ़) की गद्दी वाले महंत एक पूरा श्लोक अजर नाम, अमर नाम पाताले सप्त सिंधु नाम दीक्षा में देते हैं, नामदान करने प्रारम्भ कर दिये। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है कि श्री चूड़ामणी जी की महंत परम्परा में यह वास्तविक मंत्र नहीं दिया जाता केवल मनमुखी नाम दिए जाते हैं जो अजर नाम, अमर नाम,

पाताले सप्त सिंधु नाम, आदि... हैं। इससे सिद्ध हुआ कि यह भी मनमुखी साधना तथा गद्दी परम्परा चला रहे हैं।

सतलोक आश्रम बरवाला (हिसार) में मुझ दास(रामपाल दास) से उपदेश लेने से सर्व सुख व लाभ भी प्राप्त होंगे तथा पूर्ण मोक्ष भी प्राप्त होगा। कहते हैं - आम के आम, गुठलियों के दाम। कृप्या निःशुल्क प्राप्त करें।

गरीब, समझा है तो शिर धर पाव। बहुर नहीं है ऐसा दाव।।

मुझ दास की प्रार्थना है कि मानव जीवन दुर्लभ है, इसे नादान संतों, महंतों व आचार्यों, महर्षियों तथा पंथों के पीछे लग कर नष्ट नहीं करना चाहिए। पूर्ण संत की खोज करके उपदेश प्राप्त करके आत्म कल्याण करवाना ही श्रेयकर है। सर्व पवित्र सद्ग्रन्थों के अनुसार अर्थात् शास्त्र अनुकूल यथार्थ भक्ति मार्ग मुझ दास(रामपाल दास) के पास उपलब्ध है। कृपया निःशुल्क प्राप्त करें।

सर्व पवित्र धर्मों की पवित्र आत्माऐं तत्वज्ञान से अपरिचित हैं। जिस कारण नकली गुरुओं, संतों, महंतों तथा ऋषियों तथा पंथों का दाव लगा हुआ है। जिस समय पवित्र भक्त समाज आध्यात्मिक तत्वज्ञान से परिचित हो जाएगा उस समय इन नकली संतों, गुरुओं व आचार्यों को छुपने का स्थान नहीं मिलेगा। सर्व प्रभु प्रेमियों का शुभ चिन्तक तथा दासों का भी दास।

"सत् साहेब"

संत रामपाल दास
सतलोक आश्रम बरवाला, जिला हिसार (हरियाणा)।
दूरभाष : 8222880541, 8222880542

''संत धर्मदास जी के वंशों के विषय में''

प्रश्न : संत धर्मदास जी की गद्दी दामा खेड़ा वाले कहते हैं कि इस गद्दी से नाम प्राप्त करने से मोक्ष संभव है ?

उत्तर : संत धर्मदास जी का ज्येष्ठ पुत्र श्री नारायण दास काल का भेजा हुआ दूत था। उसने बार-बार समझाने से भी परमेश्वर कबीर साहेब जी से उपदेश नहीं लिया। पुत्र प्रेम में व्याकुल संत धर्मदास जी को परमेश्वर कबीर साहेब जी ने नारायण दास जी का वास्तविक स्वरूप दर्शाया। संत धर्मदास जी ने कहा कि हे प्रभु ! मेरा वंश तो काल का वंश होगा। यह कह कर संत धर्मदास जी बेहोश(अचेत) हो गए। काफी देर बाद होश में आए। फिर भी अतिचिंतित रहने लगे। उस प्रिय भक्त का दुःख निवारण करने के लिए परमेश्वर कबीर साहेब जी ने कहा कि धर्मदास वंश की चिंता मत कर। यह काल का दूत है। उसका वंश पूरा नष्ट हो जाएगा तथा तेरा बियालीस पीढी तक वंश चलेगा। तब संत धर्मदास जी ने पूछा कि हे दीन दयाल ! मेरा तो इकलौता पुत्र नारायण दास ही है। तब परमेश्वर ने कहा कि आपको एक शुभ संतान पुत्र रूप में मेरे आदेश से प्राप्त होगी। उससे केवल तेरा वंश चलेगा। तब धर्मदास जी ने कहा था कि हे प्रभु ! आप का दास वृद्ध हो चुका है। अब संतान का होना असंभव है। आपकी

शिष्या भक्तमति आमिनी देवी का मासिक धर्म भी बंद है। परमेश्वर कबीर साहेब ने कहा कि मेरी आज्ञा से आपको पुत्र प्राप्त होगा। उसका नाम चुड़ामणी रखना। यह कह कर परमेश्वर कबीर साहेब ने उस भावी पुत्र को धर्मदास के आंगन में खेलते दिखाया। फिर अन्तर्ध्यान कर दिया। संत धर्मदास जी शांत हुए। कुछ समय पश्चात् भक्तमति आमिनी देवी को संतान रूप में पुत्र प्राप्त हुआ उसका नाम श्री चुड़ामणी जी रखा। बड़ा पुत्र नारायण दास अपने छोटे भाई चुड़ामणी जी से द्वेष करने लगा। जिस कारण से श्री चुड़ामणी जी बांधवगढ़ त्याग कर कुदरमाल नामक शहर(मध्य प्रदेश) में रहने लगा। कबीर परमेश्वर जी ने संत धर्मदास जी से कहा था कि धार्मिकता बनाए रखने के लिए अपने पुत्र चुड़ामणी को केवल प्रथम मन्त्र(जो यह दास/रामपाल दास प्रदान करता है) देना जिससे इनमें धार्मिकता बनी रहेगी तथा तेरा वंश चलता रहेगा। परंतु आपकी सातवीं पीढ़ी में काल का दूत आएगा। वह इस वास्तविक प्रथम मन्त्र को भी समाप्त करके मनमुखी अन्य नाम चलाएगा। शेष धार्मिकता का अंत ग्यारहवां, तेरहवां तथा सतरहवां गद्दी वाले महंत कर देंगे। इस प्रकार तेरे वंश से भक्ति तो समाप्त हो जाएगी। परंतु तेरा वंश फिर भी बियालीस(42) पीढ़ी तक चलेगा। फिर तेरा वंश नष्ट हो जाएगा।

प्रमाण पुस्तक "सुमिरण शरण गह बयालिश वंश" लेखक : महंत श्री हरिसिंह राठौर, पष्ठ 52 पर -

वाणी :सुन धर्मनि जो वंश नशाई, जिनकी कथा कहूँ समझाई।।93।।
काल चपेटा देवै आई, मम सिर नहीं दोष कछु भाई।।94।।
सप्त, एकादश, त्रयोदस अंशा, अरु सत्रह ये चारों वंशा।।95।।
इनको काल छलेगा भाई, मिथ्या वचन हमारा न जाई।।96।।
जब-2 वंश हानि होई जाई, शाखा वंश करै गुरुवाई।।97।।
दस हजार शाखा होई है, पुरुष अंश वो ही कहलाही है।।98।।
वंश भेद यही है सारा, मूढ जीव पावै नहीं पारा।।99।।
भटकत फिरि हैं दोरहि दौरा, वंश बिलाय गये केही ठौरा।।100।।
सब अपनी बुद्धि कहै भाई, अंश वंश सब गए नसाई।।101।।

उपरोक्त वाणी में कबीर परमेश्वर ने अपने निजी सेवक संत धर्मदास साहेब जी से कहा कि धर्मदास तेरे वंश से भक्ति नष्ट हो जाएगी वह कथा सुनाता हूँ। सातवीं पीढ़ी में काल का दूत उत्पन्न होगा। वह तेरे वंश से भक्ति समाप्त कर देगा। जो प्रथम मन्त्र आप दान करोगे उसके स्थान पर अन्य मनमुखी नाम प्रारम्भ करेगा। धार्मिकता का शेष विनाश ग्यारहवां, तेरहवां तथा सतरहवां महंत करेगा। मेरा वचन खाली नहीं जाएगा भाई। सर्व अंश वंश भक्ति हीन हो जाएंगे। अपनी-2 मन मुखी साधना किया करेंगे।

"चौदहवीं महंत गद्दी का परिचय"

पुस्तक "धनी धर्मदास जीवन दर्शन एवं वंश परिचय" पष्ठ 49 पर तेरहवें महंत दयानाम के बाद कबीर पंथ में उथल–पुथल मची। काल का चक्र चलने लगा। क्योंकि इस परम्परा में कोई पुत्र नहीं था। तब तक व्यवस्था बनाए रखने के लिए महंत काशीदास जी को चादर दिया गया। कुछ समय पश्चात् काशी दास ने स्वयं को कबीर पंथ का आचार्य घोषित कर दिया तथा खरसीया में अलग गद्दी की स्थापना कर दी। यह देख तीनों माताऐं रोने लगी कि काल का चक्र चलने लगा। बाद में कबीर पंथ के हित में ढाई वर्ष के बालक चतुर्भुज साहेब को बड़ी माता साहिब ने गद्दी सौंप दी

जो "गन्धमुनि नाम साहेब" के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

विचार करें : एक ढाई वर्ष का बालक क्या नाम व ज्ञान देगा ?

माता जी ने गद्दी पर बैठा दिया। बेटा महंत बन गया। जिसे भक्ति का क-ख का भी ज्ञान नहीं। सन्त धर्मदास जी के वंशज भोले श्रद्धालुओं को दंत कथाओं (लोकवेद) के आधार से भ्रमित करके गुमराह कर रहे हैं।

महंत काशी दास जी ने खरसिया शहर में नकली कबीर पंथी गद्दी प्रारम्भ कर दी। उसी खरसिया से एक श्री उदीतनाम साहेब ने मनमुखी गद्दी लहर तारा तालाब पर काशी(बनारस) में चालु कर रखी है। कबीर चौरा काशी में श्री गंगाशरण शास्त्री जी भी अलग से महंत पद पर विराजमान है। परंतु तत्व ज्ञान व वास्तविक भक्ति का किसी को क-ख भी ज्ञान नहीं है।

उपरोक्त विवरण से प्रभु प्रेमी पाठक स्वयं निर्णय करें कि दामा खेड़ा वाले महंतों के पास वास्तविक भक्ति है या ड्रामाबाजी?

श्री चुड़ामणी जी के कुदरमाल चले जाने के पश्चात् बांधवगढ़ पूरा नष्ट हो गया। आज भी प्रमाण है।

प्रश्न : दामा खेड़ा गद्दी वाले तो कहते हैं कि कबीर जी ने कहा था कि जब तक तेरी बियालीस वंश की गद्दी चलेगी तब तक मैं पथ्वी पर नहीं आऊँगा अर्थात् अन्य को यह नाम दान आदेश नहीं दूंगा?

उत्तर : यह उनकी मनघड़ंत कहानी है। कबीर सागर में कबीर बानी नामक अध्याय में पष्ठ 136-137 पर बारह पंथों का विवरण देते हुए वाणी लिखी हैं जो निम्न हैं :-

द्वादश पंथ चलो सो भेद

द्वादश पंथ काल फुरमाना। भूले जीव न जाय ठिकाना।।
प्रथम आगम कहि हम राखा। वंश हमार चूरामणि शाखा।
दूसर जगमें जागू भ्रमावै। विना भेद ओ ग्रन्थ चुरावै।।
तीसरा सुरति गोपालहि होई। अक्षर जो जोग दृढ़ावे सोई।।
चौथा मूल निरञ्जन बानी। लोकवेद की निर्णय ठानी।।
पंचम पंथ टकसार भेद लै आवै। नीर पवन को सन्धि बतावै।।
सो ब्रह्म अभिमानी जानी। सो बहुत जीवन की करी है हानी।।
छठवाँ पंथ बीज को लेखा। लोक प्रलोक कहें हममें देखा।।
पांच तत्व का मर्म दृढावै। सो बीजक शुक्ल ले आवै।।
सातवाँ पंथ सत्यनामि प्रकाशा। घटके माहीं मार्ग निवासा।।
आठवाँ जीव पंथले बोले बानी। भयो प्रतीत मर्म नहिं जानी।।
नौवें राम कबीर कहावै। सतगुरू भ्रमले जीव दृढावै।।
दसवें ज्ञान की काल दिखावै। भई प्रतीत जीव सुख पावै।।
ग्यारहवें भेद परमधाम की बानी। साख हमारी निर्णय ठानी।।
साखी भाव प्रेम उपजावै। ब्रह्मज्ञान की राह चलावै।।
तिनमें वंश अंश अधिकारा। तिनमें सो शब्द होय निरधारा।।
सम्वत् सत्रासै पचहत्तर होई, तादिन प्रेम प्रकटें जग सोई।।
साखी हमारी ले जीव समझावै, असंख्य जन्म ठौर नहीं पावै।।
बारवें पंथ प्रगट है बानी, शब्द हमारे की निर्णय ठानी।।

अस्थिर घर का मरम न पावैं, ये बारा पंथ हमही को ध्यावैं।
बारवें पंथ हम ही चलि आवैं, सब पंथ मेटि एक ही पंथ चलावें।।

उपरोक्त वाणी में ''बारह पंथों'' का विवरण किया है तथा लिखा है कि संवत् 1775 में प्रभु का प्रेम प्रकट होगा तथा हमरी बानी प्रकट होवेगी। (संत गरीबदास जी महाराज छुड़ानी, (हरियाणा) वाले का जन्म 1774 में वैसाख पूर्णमासी को हुआ है उनको प्रभु कबीर 1784 में मिले थे। यहाँ पर इसी का वर्णन है तथा सम्वत् 1775 के स्थान पर 1774 होना चाहिए, गलती से 1775 लिखा है दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि भारतीय वर्ष चैत्र मास से प्रारम्भ होता है सन्त गरीबदास जी का जन्म वैसाख मास में हुआ जो चैत्र के बाद प्रारम्भ होता है। कई बार दो चैत्र मास भी बनाए जाते हैं। उस समय शिक्षा का अति अभाव था। प्रत्येक गाँव में एक ही तीथि बताने वाला होता था। वह भी अशिक्षित ही होता था। आस–पास के शहर या गाँव से तिथि किसी अन्य ब्राह्मण से पता करके फिर गाँव में सर्व को बताता इस कारण से भी संवत् 1775 के स्थान पर संवत् 1774 लिखा गया हो वास्तव में यह संकेत गरीबदास जी के विषय में ही है)।

भावार्थ यह है कि :- कबीर परमात्मा ने गरीबदास जी का ज्ञान योग खोल कर उनके द्वारा अपना तत्वज्ञान स्वयं ही प्रकट किया। जो सत्ग्रन्थ साहेब रूप में लीपि बद्ध है। कारण यह था कि कबीर वाणी में नकली कबीर पंथियों ने मिलावट कर दी थी। इसलिए परमेश्वर कबीर जी की महिमा का ज्ञान पुनर् प्रकट कराया फिर भी तत्व भेद (सार ज्ञान) गुप्त ही रखा (जो अब प्रकट हो रहा है।) इस कारण गरीबदास जी के पंथ में तत्वज्ञान नहीं है जिस कारण से वे गरीदास साहेब की वाणी का विपरीत अर्थ लगा कर जन्म व्यर्थ करते रहे उन्हें असंख जन्म भी ठौर नहीं है अर्थात् वे मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकते केवल एक सन्त शीतल दास जी वाली प्रणाली में मुझ दास तक एक सन्त ही पार होता आया है जो एक सन्त सारनाम प्राप्त करके केवल एक को आगे बताकर गुप्त रखने की कसम दिलाता था। वह भी आगे केवल एक शिष्य को बताकर गुप्त रखता था समय आने पर परमेश्वर कबीर जी के संकेत से ही आगे शिष्य को आज्ञा देता था। इस प्रकार मुझ दास तक यह सारनाम कड़ी से जुड़ा हुआ पहुँचा है अब यह सर्व अधिकारी श्रद्धालु भक्तों को देने का आदेश प्रभु कबीर जी का है इसलिए कहा है बारहवां पंथ जो गरीबदास जी का चलेगा यह पंथ हमारी साखी लेकर जीव को समझाएगें। परन्तु वास्तविक मन्त्र के अपरिचित होने के कारण गरीबदास पंथ के साधक असंख्य जन्म तक सतलोक नहीं जा सकते। उपरोक्त बारह पंथ हमको ही प्रमाण करके भक्ति करेगें परन्तु स्थाई स्थान (सतलोक) प्राप्त नहीं कर सकते। बारहवें पंथ (गरीबदास वाले पंथ) में आगे चलकर हम (कबीर जी) स्वयं ही आऐगें तथा सब बारह पंथों को मिटा एक ही पंथ चलाऐगें। उस समय तक सारशब्द छुपा कर रखना है। यही प्रमाण सन्त गरीबदास जी महाराज ने अपनी अमतवाणी ''असुर निकंन्दन रमैणी'' में किया है कि ''सतगुरू दिल्ली मण्डल आयसी, सूती धरती सूम जगायसी'' पुराना रोहतक जिला (वर्तमान में सोनीपत जिला, झज्जर जिला, रोहतक जिला) दिल्ली मण्डल कहलाता है। जो पहले अग्रेंजों के शासन काल में केन्द्र के आधीन था। बारह पंथों का विवरण कबीर चरित्र बोध (बोध सागर) पष्ठ नं. 1870 पर भी है जिसमें बारहवां पंथ गरीबदास जी वाला पंथ स्पष्ट लिखा है।

कबीर साहेब के पंथ में काल द्वार प्रचलित बारह पंथों का विवरण कबीर चरित्र बोध (कबीर सागर) पष्ठ नं. 1870 से :- (1) नारायण दास जी का पंथ (2) यागौदास (जागू) पंथ

(3) सूरत गोपाल पंथ (4) मूल निरंजन पंथ (5) टकसार पंथ (6) भगवान दास (ब्रह्म) पंथ (7) सत्यनामी पंथ (8) कमाली (कमाल का) पंथ (9) राम कबीर पंथ (10) प्रेम धाम (परम धाम) की वाणी पंथ (11) जीवा पंथ (12) गरीबदास पंथ।

यदि कबीर परमेश्वर जी ऐसा वचन कहते कि ''जब तक धर्मदास का वंश चलेगा तब तक मैं पृथ्वी पर पग नहीं रखुंगा अर्थात् पृथ्वी पर प्रकट नहीं होऊँगा। तो सन् 1518 में सतलोक प्रस्थान के 33 वर्ष पश्चात् सन् 1551 में सात वर्षीय संत दादू साहेब जी को नहीं मिलते, 209 वर्ष पश्चात् सन् 1727 में दस वर्षीय संत गरीबदास जी को गाँव छुड़ानी, जिला झज्जर(हरियाणा प्रदेश, भारत) में नहीं मिलते तथा गरीबदास जी को नामदान नहीं देते और आगे नामदान करने का आदेश नहीं देते। इसके बाद फिर 292 वर्ष पश्चात् सात वर्षीय संत घीसा दास जी को गाँव खेखड़ा, जिला मेरठ(उतर प्रदेश) में नहीं मिलते। जो आज भी यादगार साक्षी हैं तथा उपरोक्त संतों द्वारा लिखी अमृत वाणी साक्षी रूप हलफिया ब्यान(एफिडेविट) है कि परमेश्वर कबीर जी काशी वाले जुलाहा धाणक ने स्वयं साक्षात दर्शन दिए तथा अपने सतलोक के भी दर्शन करा करके अपनी समर्थता का प्रमाण दिया।

मुझ दास(रामपाल दास) को परमेश्वर कबीर साहेब जी संवत् 2054 फाल्गुन मास शुक्ल पक्ष एकम(मार्च) 1997 को दिन के दस बजे मिले तथा सारशब्द की वास्तविकता तथा संगत को दान करने का सही समय का संकेत दे कर अर्न्तध्यान हो गए तथा इसको अगले आदेश तक रहस्य युक्त रखने का आदेश दिया।

''पवित्र कबीर सागर में अद्भुत रहस्य''

''अनुराग सागर'' :- यह अध्याय कबीर सागर का ही अंग है।

वर्तमान कबीर सागर के संशोधन कर्ता श्री युगलानन्द बिहारी (प्रकाशक एवं मुद्रक-खेमराज श्री कृष्ण दास, श्री वेंकेटेश्वर प्रैस मुंबई) द्वारा अपने प्रस्तावना में लिखा है कि मेरे पास अनुराग सागर की 46 (छियालिस) प्रतियाँ हैं। जिनमें हस्त लिखित तथा प्रिन्टिड हैं। सभी की व्याख्या एक दूसरे से भिन्न हैं। अब मैंने (श्री युगलानन्द जी ने) शुद्ध करके सत्य विवरण लिखा है।

विवेचनः- श्री युगलानन्द जी ने अनुराग सागर पृष्ठ 110 पर लिखा है कि धर्मदास साहेब जी नीरू का अवतार अर्थात् नीरू वाली आत्मा ही धर्मदास रूप में जन्मी थी तथा नीमा वाली आत्मा ही आमनी रूप में जन्मी थी। वाणी बना कर लिखी है, कबीर वचन :-

चलेहु हम तब सीस नवाई, धर्मदास अब तुम लग आई।
धर्मदास तुम नीरू अवतारा, आमिनि नीमा प्रगट बिचारा।।

तथा ''ज्ञान सागर'' पृष्ठ नं. 72 पर धर्मदास को नीरू अवतार नहीं लिखा है तथा नीरू के स्थान पर नूरी लिखा है।

विशेषः- पुस्तक ''धनी धर्मदास जीवन दर्शन एवं वंश परिचय'' दामाखेड़ा से प्रकाशित पृष्ठ नं. 9 पर लिखा है। धर्मदास जी का जन्म संवत् 1452(सन् 1395) तथा कबीर सागर ''कबीर चरित्र बोध'' पृष्ठ-1790 पर कबीर जी के जन्म के विषय में लिखा है कि संवत् 1455 (सन् 1398) ज्येष्ठ शुद्धि पूर्णिमा सोमवार के दिन सतपुरूष का तेज काशी के लहरतारा तालाब पर उतरा अर्थात् कबीर जी बालक रूप में प्रकट हुए।

पृष्ठ नं. 1791, 1792 (कबीर चरित्र बोध) पर लिखा है कि नीरू जुलाहा तथा उसकी पत्नी

नीमा चले आ रहे थे। उन्हें एक बालक देखा उसे उठा लिया।

पष्ठ नं. 1794 से 1818 तक आदरणीय गरीबदास जी महाराज (छुड़ानी-हरियाणा वाले) की वाणी के द्वारा महिमा समझाई है। सन्त गरीबदास जी महाराज की वाणी लिखी है (यह भी कबीर सागर में प्रक्षेप अर्थात् मिलावट का प्रत्यक्ष प्रमाण है)

उपरोक्त विवरण से सिद्ध हुआ कि :-

(1.) संत धर्मदास साहेब का जन्म सन् 1395 में तथा परमेश्वर कबीर जी का अवतरण सन् 1398 में तथा नीरू व नीमा को मिलन सन् 1398 में तो धर्मदास जी व परमेश्वर कबीर जी तथा नीरू व नीमा समकालीन हुए। यह वाणी की धर्मदास जी नीरू वाली आत्मा थी, गलत सिद्ध हुई। इससे सिद्ध हुआ कि कबीर सागर में मिलावट (प्रक्षेप) है जो दामाखेड़ा वालो द्वारा जान बूझ कर किया गया। सन्त गरीबदास जी (छुडानी-हरियाणा वाले) का जन्म सन् 1717 (सम्वत् 1774) में हुआ। जो कबीर जी के अन्तर्ध्यान के 199 वर्ष बाद की गरीबदास जी की वाणी भी कबीर सागर में कबीर चरित्र बोध में लिखी है। जो प्रत्यक्ष प्रमाण करती है कि कबीर सागर में मिलावट है।

स्वसम वेद बोध (बोध सागर) पष्ठ नं. 137 पर साखी लिखी है की काशी में भण्डारे के समय कबीर जी तो घर छोड़ कर चले गए तथा विष्णु ने भण्डारा किया:-

भीर भई साधुन की भारी, गह तजि सत्य कबीर सिधारी।
आये विष्णु भये भण्डारी, साधुन को आदर करि भारी।।

इससे सिद्ध है कि कोई नकली कबीर पंथी मिलावट कर्ता श्री कष्ण का भी पुजारी है तथा सत् कबीर जी की महिमा से अपरिचित है।

विशेष विवरण:- कबीर सागर ''कबीर चरित्र बोध'' पष्ठ नं. 1862 से 1865 तक लिखा है कि कलयुग में कबीर साहेब ने चार गुरू नियत किये हैं।

(1.) धर्मदास जी जिस के बयालिश वंश है तथा ''उत्तर'' में गुरूवाई सौंपी है।

(2.) दूसरे चतुर्भुज ''दक्षिण'' में गुरूवाई करेगें।

(3.) तीसरे बंक जी ''पूर्व'' में गुरूवाई करेगें।

(4.) चौथे सहती जी ''पश्चिम'' में गुरूवाई करेगें।

जिस समय कबीर सागर लिखा गया सन् 1505(सम्वत् 1562) में उस समय तक केवल एक धर्मदास जी ही प्रकट हुए थे। जब ये चारों गुरू प्रकट हो जाऐगें तब पूरी पथ्वी पर केवल कबीर साहेब जी का ही ज्ञान चलेगा।

यही प्रमाण ''अनुराग सागर'' पष्ठ नं. 104-105 पर है। उपरोक्त विवरण से स्पष्ट हुआ कि कलयुग में धर्मदास जी के अतिरिक्त तीन गुरू और पथ्वी पर प्रकट होगें, उनके द्वारा भी जीव उद्धार होगा। दामा खेड़ा वालों द्वारा बनाई दन्त कथा गलत सिद्ध हुई कि कलयुग में केवल धर्मदास जी के वंशजो द्वारा ही जीव उद्धार सम्भव है अन्य द्वारा नहीं। यह उल्लेख कबीर सागर में कबीर वाणी पष्ठ 160 पर लिखा है जो स्पष्ट मिलावट दिखाई देती है।

मुझ दास (रामपाल दास) को एक 450 वर्ष पुराना कबीर सागर प्राप्त हुआ है। जो बहुत ही जीरण-सीरण है। उसके आधार पर कबीर सागर का संशोधन किया जाएगा। ''वर्तमान कबीर सागर'' के संशोधन कर्ता श्री युगलानन्द जी ने ज्ञान प्रकाश- बोध सागर पष्ठ नं. 37 के नीचे टिप्पणी की है कि इस ज्ञान प्रकाश की कई लीपी मेरे पास हैं परन्तु कोई भी एक दूसरे

से मेल नहीं खाती। लेखक महात्माओं की कपा से पक्षपात और अविद्यावश कबीर पंथ के ग्रन्थों की दुर्दशा हुई है।

विशेष :- भक्त जन विचार करें कि काल ने कैसा जाल फैलाया है। अपने दूतों द्वारा परमेश्वर के सत् ग्रन्थों को ही बदलवा डाला। फिर भी सत्य को छुपा नहीं सके।

कबीर :– चोर चुराई तूम्बड़ी, गाढै पानी मांही। वो गाढे वह उपर आवै, सच्चाई छयानी नाहिं।।

इसकी पूर्ति परमेश्वर ने संत गरीबदास जी (छुड़ानी-हरियाणा वाले) द्वारा करवाई है। गरीबदास जी द्वारा भी संस्ययुक्त वाणी युक्त करवाई है जिस में श्री विष्णु जी की महिमा भी अधिक वर्णित है तथा सारज्ञान (तत्वज्ञान) भी गुप्त ढ़ंग से लिखा हैं संत गरीबदास जी की वाणी में निर्णायक ज्ञान नहीं है। कबीर जी की शक्ति से ही आदरणीय गरीबदास जी ने वाणी बोली है। कबीर जी ने जो बुलवाना था वही बुलवाया ताकि अब तक(मुझ दास रामपाल तक) भेद छुपा रहे। अब उसी बन्दी छोड़ कबीर परमेश्वर जी ने वह पूर्ण ज्ञान(तत्वज्ञान) मुझ दास(रामपाल दास) तेरहवां वंश द्वारा प्रकट कराया है।

कबीर वाणी पष्ठ 134 :- ''वंश प्रकार''

प्रथम वंश उत्तम।1। दूसरा वंश अहंकारी।2। तीसरा वंश प्रचंड।3। चौथे वंश बीरहे।4। पाँचवें वंश निद्रा।5। छटे वंश उदास।6। सांतवें वंश ज्ञानचतुराई।7। आठे द्वादश पन्थ विरोध।8। नौवं वंश पंथ पूजा।9। दसवें वंश प्रकाश।10। ग्यारहवें वंश प्रकट पसारा।11। बारहवें वंश प्रगट होय उजियारा।12। तेरहवें वंश मिटे सकल अँधियारा।13।

भावार्थ :- उपरोक्त विवरण में प्रथम वंश जो उत्तम लिखा है वह चूड़ामणी साहेब के विषय में है, दूसरा वंश अहंकारी लिखा है ''यागौदास'' पंथ है, तीसरा वंश प्रचण्ड लिखा है, यह सूरत गोपाल पंथ है, चौथा वंश बीरहे लिखा है, यह ''मूल निरंजन पंथ'' है। पांचवाँ वंश ''पूजा टकसार पंथ'' है। छठा वंश ''उदास'' यह ''भगवान दास पंथ'' सातवां वंश ''ज्ञान चतुराई'' यह सत्यनामी पंथ है। आठवाँ वंश''द्वादश पंथ विरोद्ध'' यह कमाल का पंथ है। नौवाँ वंश ''पंथ पूजा'' यह राम कबीर पंथ है। दशवाँ वंश प्रकाश यह प्रेमधाम (परम धाम) की वाणी पंथ है। ग्यारहवाँ वंश ''प्रकट पसारा'' यह जीवा पंथ है। बारहवाँ वंश ''गरीबदास पंथ'' है। तेरहवाँ वंश यह यथार्थ कबीर पंथ है जो मुझ दास (सन्त रामपाल दास) द्वारा बिचली पीढ़ी के उद्धार के लिए प्रारम्भ कराया है। कबीर परमेश्वर ने अपनी वाणी में काल से कहा था कि तेरे बारह पंथ चल चुके होगें तब मैं अपना नाद (वचन-शिष्य परम्परा वाला) वंश अथार्त् अंस भेजेगें उसी आधार पर यह विवरण लिखा है। बारहवां वंश (अंश) सन्त गरीबदास जी से कबीर वाणी तथा परमेश्वर कबीर जी की महिमा का कुछ-कुछ संस्य युक्त ज्ञान विस्तार होगा। जैसे सन्त गरीबदास जी की परम्परा में परमेश्वर कबीर जी को विष्णु अवतार मान कर साधना तथा प्रचार करते हैं। संत गरीबदास जी ने ''असुर निकन्दन रमैणी'' में कहा है ''साहेब तख्त कबीर खवासा। दिल्ली मण्डल लीजै वासा। सतगुरू दिल्ली मण्डल आयसी, सूती धरणी सूम जगायसी'' भावार्थ है कि सन्त गरीबदास जी वाला बारहवाँ पंथ (अंश) तो काल तक साधना बताने वाला कहा है। इसलिए केवल कबीर महिमा की वाणी ही संत गरीबदास जी द्वारा प्रकट की गई है। उसमें कहा है कि कबीर परमात्मा के तख्त अर्थात् सिंहासन का ख्वास अर्थात् नौकर दिल्ली के आस-पास के क्षेत्र में आएगा वह उस क्षेत्र के कपण अर्थात् कंजूस व्यक्तियों को परमात्मा की महिमा बता कर जगाएगा अर्थात् दान-धर्म में उनकी रूची बढ़ाएगा। वह तेरहवाँ

अंश कबीर परमात्मा के दरबार का उच्चतम् सेवक होगा। वह कबीर परमेश्वर का अत्यंत कपा पात्र होगा। ऋग्वेद मण्डल 1 सुक्त 1 मन्त्र 7 में उप अग्ने अर्थात् उप परमेश्वर कहा है। इसलिए पूर्ण परमात्मा अपना भेद छुपा कर दास रूप में प्रकट होकर अपनी महिमा करता है। इसलिए उसी परमेश्वर को ऋग्वेद मण्डल 10 सुक्त 4 मन्त्र 6 में तस्करा अर्थात् आँखों मे धूल झोंक का कार्य करने वाला तस्कर कहा है। श्री नानक जी ने उसे ठगवाड़ा कहा है। इसलिए तेरहवें अंश को (सन्त रामपाल दास को) उनका दास जाने चाहे स्वयं पूर्ण प्रभु का उपशक्तिरूप(उप अग्ने) समझें। इसलिए लिखा है कि बारहवें अंश की परम्परा में हम ही चलकर तेरहवें अंश रूप में आऐंगे। वह तेरहवां वंश (अंस) पूर्ण रूप से अज्ञान अंधेरा समाप्त करके परमेश्वर कबीर जी की वास्तविक महिमा तथा नाम का ज्ञान करा कर सभी पंथों को समाप्त करके एक ही पंथ चलाएगा, वह तेरहवां वंश हम (परमेश्वर कबीर) ही होंगे।

कबीर वाणी (कबीर सागर) पष्ठ 136 पर :-

बारह पंथों का विवरण दिया है। बारहवें पंथ (गरीबदास पंथ, बारहवां पंथ लिखा है कबीर सागर, कबीर चरित्र बोध पष्ठ 1870 पर) के विषय में कबीर सागर कबीर वाणी पष्ठ नं. 136-137 पर वाणी लिखी है कि :-

द्वादश पंथ चलो सो भेद

द्वादश पंथ काल फुरमाना। भुले जीव न जाय ठिकाना।।
(प्रथम) आगम कहि हम राखा। वंश हमार चूरामणि शाखा।
दूसर जग में जागू भ्रमावै। बिना भेद ओ ग्रन्थ चुरावे।।
तीसरा सुरति गोपालहि होई। अक्षर जो जोग द्दढ़ावे सोई।।
चौथा मूल निरञ्जन बानी। लोकवेद की निर्णय ठानी।।
पंचम पंथ टकसार भेद लै आवै। नीर पवन को सन्धि बतावै।।
सो ब्रह्म अभिमानी जानी। सो बहुत जीवनकीकरी है हानी।।
छठवाँ पंथ बीज को लेखा। लोक प्रलोक कहें हममें देखा।।
पांच तत्व का मर्म द्दढ़ावै। सो बीजक शुक्ल ले आवै।।
सातवाँ पंथ सत्यनामि प्रकाशा। घटके माहीं मार्ग निवासा।।
आठवाँ जीव पंथले बोले बानी। भयो प्रतीत मर्म नहिं जानी।।
नौमा राम कबीर कहावै। सतगुरू भ्रमलै जीव द्दढ़ावै।।
दशवां ज्ञानकी काल दिखावै। भई प्रतीत जीव सुख पावै।।
ग्यारहवाँ भेद परमधाम की बानी। साख हमारी निर्णय ठानी।।
साखी भाव प्रेम उपजावै। ब्रह्मज्ञान की राह चलावै।।
तिनमें वंश अंश अधिकारा। तिनमेंसो शब्द होय निरधारा।।
संवत सत्रासै पचहत्तर होई। तादिन प्रेम प्रकटें जग सोई।।
आज्ञा रहै ब्रह्म बोध लावे। कोली चमार सबके घर खावे।।
साखि हमार लै जिव समुझावै। असंख्य जन्म में ठौर ना पावै।।
बारवै पन्थ प्रगट होवै बानी। शब्द हमारे की निर्णय ठानी।।
अस्थिर घर का मरम न पावैं। ये बारा पंथ हमहीको ध्यावैं।।
बारहें पन्थ हमही चलि आवै। सब पंथ मिटा एकहीपंथ चलावै।।

तब लगि बोधो कुरी चमारा। फेरी तुम बोधो राज दर्बारा।।
प्रथम चरन कलजुग नियराना। तब मगहर माडौ मैदाना।।
धर्मराय से मांडो बाजी। तब धरि बोधो पंडित काजी।।
धर्मदास मोरी लाख दोहाई, सार शब्द बाहर नहीं जाई।
सार शब्द बाहर जो परही, बिचली पीढी हंस नहीं तरहीं।
तेतिस अर्ब ज्ञान हम भाखा, तत्वज्ञान गुप्त हम राखा।
मूल ज्ञान(तत्वज्ञान) तब तक छुपाई, जब लग द्वादश पंथ न मिट जाई।

कबीर सागर ''कबीर बानी'' नामक अध्याय (बोध सागर) पृष्ठ नं. 134 से 138 पर लिखे विवरण का भावार्थ है :-

पृष्ठ नं. 134 पर बारह वंशों (अंसों) के बाद तेरहवें वंश (अंस) में सब अज्ञान अंधेरा मिट जाएगा। संत गरीबदास पंथ तक काल के बारह वंश अपनी-2 चतुरता दिखाएगें। पृष्ठ नं. 136-137 पर ''बारह पंथों'' का विवरण किया है तथा लिखा है कि संवत् 1775 में प्रभु का प्रेम प्रकट होगा तथा हमरी बानी प्रकट होवेगी। (संत गरीबदास जी महाराज छुड़ानी हरियाणा वाले का जन्म 1774 में हुआ है उनको प्रभु कबीर 1784 में मिले थे। यहाँ पर इसी का वर्णन है तथा सम्वत् 1775 के स्थान पर 1774 होना चाहिए, गलती से 1775 लिखा है दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि संत गरीब दास जी का जन्म वैशाख मास की पूर्णमासी को हुआ। संवत् वाला वर्ष चैत्र से प्रारम्भ होता है जो वैसाख मास के साथ वाला है। कई बार तिथीयों के घटने बढ़ने से दो मास बन जाते हैं। उस समय शिक्षा का अभाव था तिथी व संवत् बताने वाले भी अशिक्षित होते थे। जिस कारण से संवत् 1775 के स्थान पर गरीबदास जी का जन्म संवत् 1774 लिखा गया होगा परन्तु यह संकेत संत गरीबदास जी की ओर है।)।

भावार्थ है कि बारहवां पंथ जो गरीबदास जी का चलेगा उस पंथ सहित अर्थात् उपरोक्त बारह पंथों के अनुयाई मेरी महिमा का गुणगान करेगें तथा हमारी साखी लेकर जीव को समझाएगें। परन्तु वास्तविक मन्त्र के अपरिचित होने के कारण साधक असंख्य जन्म सतलोक नहीं जा सकते। उपरोक्त बारह पंथ हमको ही प्रमाण करके भक्ति करेगें परन्तु स्थाई स्थान (सतलोक) प्राप्त नहीं कर सकते। बारहवें पंथ (गरीबदास वाले पंथ) में आगे चलकर हम (कबीर जी) स्वयं ही आऐगें तथा सब बारह पंथों को मिटा एक ही पंथ चलाऐगें। उस समय तक सारशब्द तथा सारज्ञान (तत्वज्ञान) छुपा कर रखना है। यही प्रमाण सन्त गरीबदास जी महाराज ने अपनी अमृतवाणी ''असुर निकंन्दन रमैणी'' में किया है कि ''सतगुरू दिल्ली मण्डल आयसी, सूती धरती सूम जगायसी'' पुराना रोहतक जिला (वर्तमान में, सोनीपत, झज्जर तथा रोहतक जो पहले एक ही जिला था) दिल्ली मण्डल कहलाता है। जो पहले अग्रेंजों के शासन काल में केन्द्र के आधीन था। मुझ दास का पैत्रिक गाँव धनाना इसी पुराने रोहतक जिले में है। सन् 1951 में मेरा (संत रामपाल का) जन्म हुआ था। बारह पंथों का विवरण कबीर चरित्र बोध (बोध सागर) पृष्ठ नं. 1870 पर भी है जिसमें बारहवां पंथ गरीबदास लिखा है।

कबीर साहेब के पंथ में काल द्वारा प्रचलित बारह पंथों का विवरण (कबीर चरित्र बोध (कबीर सागर) पृष्ठ नं. 1870 से) :- (1) नारायण दास जी का पंथ (2) यागौदास (जागू) पंथ (3) सूरत गोपाल पंथ (4) मूल निरंजन पंथ (5) टकसार पंथ (6) भगवान दास (ब्रह्म) पंथ (7) सत्यनामी पंथ (8) कमाली (कमाल का) पंथ (9) राम कबीर पंथ (10) प्रेम धाम (परम धाम)

की वाणी पंथ (11) जीवा पंथ (12) गरीबदास पंथ।

विशेष :- यहाँ पर प्रथम पंथ का संचालक नारायण दास लिखा है जबकी कबीर वाणी (कबीर सागर) पृष्ठ 136 पर प्रथम पंथ का संचालक चूरामणी लिखा है, शेष प्रकरण ठीक है। इसमें भी दामाखेड़ा वाले अनुयाइयों ने चुड़ामणी को हटाने का प्रयत्न किया है। उसके स्थान पर नारायण दास लिख दिया। जबकि नारायण दास तो बिल्कुल विपरित था। उसका तो विनाश हो गया था। इसलिए प्रथम पंथ चुड़ामणी जी का ही मानना चाहिए। दूसरी बात है कि कबीर वाणी (कबीर सागर) पृष्ठ नं. 136 पर लिखी वाणी में चूड़ामणी को मिला कर ही बारह पंथ बनते हैं।

विचार करें:- अब वही एक पंथ मुझ दास (रामपाल दास) द्वारा परमेश्वर कबीर जी की आज्ञा व शक्ति से चलाया जा रहा है जो सभी पंथों को एक करेगा।

वर्तमान कबीर सागर का संशोधन कर्ता भी दामा खेड़ा वालों का अनुयायी है। कबीर सागर में कबीर चरित्र बोध (बोध सागर) में लेखक ने लिखा है कि धर्मदास जी के बयालीस वंश का नियम है कि प्रत्येक वंश पच्चीस वर्ष बीस दिन तक गद्दी पर बैठा करे तथा स्वःइच्छा से शरीर छोड़े। इस से अधिक तथा कम समय कोई गद्दी पर न रहे। यह भी लिखा है कि वर्तमान में यही क्रिया चल रही है।

''धर्मदास जीवन दर्शन एवं वंश परिचय'' पुस्तक पृष्ठ नं. 32 से 49 तक विवरण दिया है कि :-

पहला चुरामणी जी सम्वत् 1570 से 1630 तक 60 वर्ष कुदुरमाल नामक स्थान की गद्दी पर रहे।

दूसरा सुदर्शन नाम जी सम्वत् 1630 से 1690 तक 60 वर्ष रतनपुर नामक स्थान की गद्दी पर रहे।

तीसरा कुलपत नाम जी सम्वत् 1690 से 1750 तक 60 वर्ष कुदुरमाल नामक स्थान की गद्दी पर रहे।

चौथा प्रमोद गुरू बाला पीर जी सम्वत् 1750 से 1804 तक 54 वर्ष मंढला नामक स्थान की गद्दी पर रहे।

पाँचवां केवल नाम जी सम्वत् 1804 से 1824 तक 20 वर्ष धमधा गद्दी पर रहे।

छठवां अमोल नाम जी सम्वत् 1824 से 1846 तक 22 वर्ष मंडला नामक स्थान की गद्दी पर रहे।

सातवां सूरत सनेही जी सम्वत् 1846 से 1871 तक 25 वर्ष सिंघाड़ी नामक स्थान की गद्दी पर रहे।

आठवां 1872 से 1890 तक 18 वर्ष कवर्धा नामक स्थान की गद्दी पर रहा।

नौवां 1890 से 1912 तक 22 वर्ष कवर्धा नामक स्थान की गद्दी पर रहा।

दसवां 1912 से 1939 तक 27 वर्ष कवर्धा नामक स्थान की गद्दी पर रहा।

ग्यारहवें को गद्दी ही नहीं हुई। क्योंकि दो वर्ष की आयु में मृत्यु हो गई।

बारहवां उग्र नाम साहब जी सम्वत् 1953 में गद्दी पर बैठा तथा सम्वत् 1971 में मृत्यु हुई, 18 वर्ष तक कवर्धा स्थान को त्याग कर दामा खेड़ा में स्वयं गद्दी बना कर रहा तथा सम्वत् 1939 से 1953 तक 14 वर्ष तक दामाखेड़ा नामक स्थान की गद्दी के पंथ वंश बिना

पंथ रहा।

तेरहवां वंश दयानाम साहेब सम्वत् 1971 से 1984 तक 13 वर्ष दामाखेड़ा नामक स्थान की गद्दी पर रहा।

उपरोक्त विवरण से सिद्ध है कि दामाखेड़ा वालों की मनघड़न्त कहानी है कि वंश गद्दी से ही कलयुग में मुक्ति सम्भव है तथा प्रत्येक गद्दी वाला महंत 25 वर्ष 20 दिन तक गद्दी पर रहता है। फिर दूसरे को उत्तराधिकारी बना कर शरीर त्याग जाता है। न अधिक समय, न कम समय अपितु पूरे 25 वर्ष 20 दिन ही रहता है, यह गलत सिद्ध हुआ। क्योंकि उपरोक्त विवरण में किसी भी गद्दी वाले ने 25 वर्ष 20 दिन का समय नहीं रखा कोई 60 वर्ष कोई 54, 22, 27 या पूरे 25 या 18 वर्ष समय गद्दी पर रहे हैं।

शंकाः- अनुराग सागर पष्ठ नं. 120 से 123 तक बारह दूतों का वर्णन किया है। जिसमें लिखा है कि आठवां दूत जो पंथ चलाएगा वह कुछ कुरान तथा कुछ वेद चुरा कर कुछ कबीर जी का केवल निर्गुण ज्ञान लेकर अपना ज्ञान प्रचार करेगा तथा एक तारतम्य पुस्तक लिखेगा। आप भी वेद व कुरान आदि का वर्णन करके पुस्तक लिख रहे हो। आपका मार्ग कबीर मार्ग ही है क्या प्रमाण है?

समाधानः- यहाँ पर बारह काल पंथों का विवरण है जो दामा खेड़ा वालों के द्वारा मिलावट करके लिखा गया है।

(1.) क्योंकि कबीर बानी (बोध सागर) पष्ठ नं. 134 से 138 तथा कबीर चरित्र बोध पष्ठ नं. 1870 पर लिखे बारह पंथों के विवरण से नहीं मिलती।

(2.) यह विवरण आठवें पंथ के प्रवर्तक का है। उसके बाद राम कबीर पंथ, सतनामी पंथ आदि सर्व बारह पंथ चल चुके हैं।

अब इस दास (रामपाल दास) द्वारा तेरहवां अर्थात् एक वास्तविक मार्ग चलाया जा रहा है। जिससे सर्व पंथ मिट कर एक पंथ ही रह जाएगा। जिसका प्रमाण आप पूर्व लिखे विवरण में पढ़ चुके हैं। जो स्वयं कबीर परमेश्वर जी की आज्ञा व कपा से चल रहा है। यह दास (रामपाल दास) वेदों तथा कुरान व कबीर वाणी आदि को चुरा कर पुस्तक नहीं लिख रहा है अपितु परमेश्वर कबीर साहेब जी की वाणी के आधार से प्रचार किया जा रहा है तथा परमेश्वर की कविर्वाणी (कबीर वाणी) की सत्यता के लिए वेदों तथा कुरान आदि का समर्थन लिया जा रहा है। वाणी चुराने का अर्थ होता है कि वास्तविक ज्ञान को छुपाने के लिए सतग्रन्थों के ज्ञान को मरोड़-तरोड़ कर अपने लोक वेद (दंत कथा) को उजागर करना परन्तु यह दास तो परमेश्वर कबीर जी की वाणी को ही आधार मान कर यथार्थ ज्ञान के आधार से मार्ग दर्शन कर रहा है।

इसलिए हमारा मार्ग कबीर मार्ग (पंथ) है। शेष पंथों की साधना शास्त्र विरूद्ध अर्थात् मनमाना आचरण (पूजा) है जो मोक्षदायक नहीं है।

कबीर सागर– ''अमर मूल'' पष्ठ 196 पर साखी लिखी है :

साखीः- नाम भेद जो जान ही, सोई वंश हमार।
नातर दुनियाँ बहुत ही, बूड़ मुआ संसार।।

पष्ठ 205 पर लिखा हैः- नाम जाने सो वंश तुम्हारा, बिना नाम बुड़ा संसारा।

पष्ठ 207 पर लिखा हैः- सोई वंश सत शब्द समाना, शब्द हि हेत कथा निज ज्ञाना।

पृष्ठ 217 पर लिखा है:- बिना नाम मिटे नहीं संशा, नाम जाने सो हमारे वंशा।
नाम जाने सो वंश कहावै, नाम बिना मुक्ति न पावै।
नाम जाने सो वंश हमारा, बिना नाम बुड़ा संसारा।
पृष्ठ 244 पर लिखा है:- बिन्द के बालक रहें उरझाई, मान गुमान और प्रभुताई।
साखीः– हमरे बालक नाम के, और सकल सब झूठ।
सत्य शब्द कह जानही, काल गह नहीं खूंठ।।
वंश हमारा शब्द निज जाना, बिना नाम नहिं वंशहि माना।।
धर्मदास निर्मोहि हिय गहेहू। वंश की चिन्ता छाड़ तुम देहू।

कबीर सागर के अध्याय अनुराग सागर पृष्ठ 138 से 141 तक का भावार्थ है कि:- तेरे वंश में बिन्द (सन्तान) तो अभिमानी होगें तथा साथ ही अहंकार वश झगड़ा करेगें तथा कहेगें कि हम तो धर्मदास के वंश (सन्तान) से हैं। हम श्रेष्ठ है। कबीर परमेश्वर ने कहा है कि मेरा वास्तविक वंश वही है जो मेरे निज शब्द अर्थात् सारशब्द से परिचित है जो सारशब्द से परिचित नहीं है वह हमारा वंश नही माना जाएगा। इसलिए बारहवें पंथ अर्थात् गरीबदास जी वाले पंथ तक काल के पंथ ही कहा गया है। इसलिए धर्मदास जी से कबीर जी ने कहा है कि आप अपने वंश की चिन्ता छोड़ कर निर्मोही हो जाओ।

कबीर साहेब ने कहा कि यदि तेरे वंश वाले मेरे वचन अनुसार चलेगें तो उन्हे भी पार कर दूंगा अन्यथा नहीं।

पृष्ठ नं. 139 से :- वचन गहे सो वंश हमारा, बिना वचन (नाम) नहीं उतरे पारा।
धर्मदास तब बंस तुम्हारा, वचन बंस रोके बटपारा।।
शब्द की चास नाद कह होई, बिन्द तुम्हारा जाय बिगोई।
बिन्द ते होय ना पंथ उजागर। परखि के देखहु धर्मनिनागर।।
चारहु युग देखहु समवादा, पन्थ उजागर किन्हों नादा।
और वंस जो नाद सम्हारै, आप तरें और जीवहीं तारे।
कहां नाद और बिन्द रै भाई। नाम भक्ति बिनु लोक ना जाई।।

उपरोक्त वाणी का भावार्थ है कि परमेश्वर कबीर जी ने धर्मदास जी से कहा जो मेरी आज्ञा का पालन करेगा। वही हमारा वंश अर्थात् अनुयाई होगा अन्यथा वह पार नहीं होगा तेरे बिन्द वाले अर्थात् शरीर से उत्पन्न सन्तान महंत परम्परा तो अभिमानी हो जाऐगें। वे तो सीधे नरक के भागी होगें। केवल नाद (शिष्य परम्परा) से ही तेरा पंथ चल सकेगा यदि वास्तविक नाम चलता रहेगा तो अन्यथा तेरे दोनों ही नाद (शिष्य) बिन्द (शरीर की संतान) भक्तिहीन हो जाएगें। केवल तेरा वंश फिर भी चलेगा।

धर्मदास आप की दोनों परम्परा (नाद व बिन्द) से अन्य कोई मेरे वचन अर्थात् नाद (शिष्य परम्परा) के अनुयायी होगें उनसे मेरा यथार्थ कबीर पंथ उजागर (प्रसिद्ध) होगा। कबीर साहेब कह रहे हैं कि धर्मदास किसी युग में देख ले केवल नाद (वचन) अर्थात् शिष्य परम्परा से ही जीव कल्याण हुआ है तथा बिन्द (शरीर) की सन्तान अर्थात् महंत परम्परा से कोई सत्य मार्ग नहीं चलता, वे तो अभिमानी होते हैं।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट हुआ कि दामाखेड़ा वाली गद्दी वाले महंत जी मनघड़ंत कहानी बना कर श्रद्धालुओं को गुमराह कर रहे हैं। जो वास्तविक सतनाम(जो दो मंत्र का है जिसमें

एक ओ3म् तथा दूसरा सांकेतिक तत् मन्त्र है) यह दास(रामपाल दास) दान करता है। उसका प्रमाण आदरणीय धर्मदास साहेब जी की वाणी जो कबीर सागर तथा कबीर पंथी शब्दावली में तथा आदरणीय गरीबदास साहेब जी की वाणी में तथा आदरणीय दादू साहेब जी की वाणी में तथा आदरणीय घीसा दास साहेब की वाणी में तथा परमेश्वर कबीर साहेब जी की वाणी में प्रमाण है। परंतु वर्तमान के सर्व तथा कथित कबीर पंथी तथा उपरोक्त अन्य संतों के पंथी सतनाम से अपरीचित हैं तथा मनमाने नाम जाप दान कर रहे हैं। जो व्यर्थ हैं।

प्रश्न : एक भक्त कह रहा था कि सातवीं पीढ़ी के बाद सुधार कर लिया था?

उत्तर : यदि सुधार कर लिया होता तो उनके पास सतनाम मंत्र होता। यह भी किसी काल के दूत की ही सोच है। यदि अब कोई मुझ दास से नाम प्राप्त करके ढोंग रचे कि मेरे पास भी वही मंत्र हैं तो वह अनअधिकारी होने के कारण व्यर्थ है।

प्रश्न : आप तीन बार नाम देते हो तथा फिर सारशब्द भी प्रदान करके चौथा पद प्राप्त कराते हो। परंतु दामा खेड़ा वाले तथा अन्य कबीर पंथी महंत, संत तो नाम एक ही बार देते हैं। कौन सा सत्य है ? इसकी परख कैसे हो ?

कबीर पंथ में दामाखेड़ा वाले महन्तों द्वारा तथा उन्हीं से भिन्न हुए खरसिया गद्दी वालों तथा लहरतारा काशी (बनारस) वालों द्वारा जो उपदेश मन्त्र (नाम) दिया जाता है। वह निम्न है :- ''सत सुकृत की रहनी रहो। अजर अमर गहो सत्य नाम। कह कबीर मूल दीक्षा सत्य शब्द प्रमाण। आदि नाम, अजर नाम, अमी नाम, पाताले सप्त सिंधु नाम, आकाशे अदली निज नाम। यही नाम हंस का काम। खुले कुंजी खुले कपाट पांजी चढ़े मूल के घाट। भर्म भूत का बान्धो गोला कह कबीर यही प्रमाण पांच नाम ले हंसा सत्यलोक समान''

उत्तर : कबीर सागर में अमर मूल बोध सागर पृष्ठ 265 पर लिखा है :-

तब कबीर अस कहेवे लीन्हा, ज्ञानभेद सकल कह दीन्हा।।
धर्मदास मैं कहो बिचारी, जिहिते निबहै सब संसारी।।
प्रथमहि शिष्य होय जो आई, ता कहैं पान देहु तुम भाई।।1।।
जब देखहु तुम दृढ़ता ज्ञाना, ता कहैं कहु शब्द प्रवाना।।2।।
शब्द मांहि जब निश्चय आवै, ता कहैं ज्ञान अगाध सुनावै।।3।।

दोबारा फिर समझाया है -

बालक सम जाकर है ज्ञाना। तासों कहहू वचन प्रवाना।।1।।
जा कहैं सूक्ष्म ज्ञान है भाई। ता कहें स्मरन देहु लखाई।।2।।
ज्ञान गम्य जा कहैं पुनि होई। सार शब्द जा कहैं कह सोई।।3।।
जा कहैं दिव्य ज्ञान परवेशा, ताकहैं तत्व ज्ञान उपदेशा।।4।।

उपरोक्त वाणी से स्पष्ट है कि कड़िहार गुरु तीन स्थिति में सार नाम तक प्रदान करता है तथा चौथी स्थिति में सार शब्द प्रदान करना होता है। धर्मदास जी के माध्यम से इस दास (रामपाल दास) को संकेत है। क्योंकि कबीर सागर में तो प्रमाण बाद में देखा था परंतु उपदेश विधि पहले ही पूज्य गुरुदेव तथा परमेश्वर कबीर साहेब जी ने मुझ दास को प्रदान कर दी थी। जो उपदेश मन्त्र (नाम) दामाखेड़ा वाले व खरसीया तथा लहरतारा काशी वाले देते हैं वह मन्त्र व्यर्थ है। उस में तो सत्यनाम तथा निजनाम (सारनाम) तथा पांच नामों की महीमा बताई है जो यह दास (रामपाल दास) प्रदान करता है। यह उपरोक्त पूरा शब्द(जो दामाखेड़ा व

खरसीया व लहरतारा काशी वाले उपदेश में देते हैं) रटने से कुछ लाभ नहीं जो इसमें संकेत है उस सत्यनाम व निज नाम (सारशब्द) तथा पांच नामों को मुझ दास से प्राप्त करके साधना करने से मोक्ष होगा।

धर्मदास जी को तो परमश्वेर कबीर साहेब जी ने सार शब्द देने से मना कर दिया था तथा कहा था कि यदि सार शब्द किसी काल के दूत के हाथ पड़ गया तो बिचली पीढ़ी वाले हंस पार नहीं हो पाऐंगे।

इसलिए कबीर सागर, जीव धर्म बोध, बोध सागर, पृष्ठ 1937 पर लिखा है :-

धर्मदास तोहि लाख दुहाई, सार शब्द कहीं बाहर नहीं जाई।
सार शब्द बाहर जो परि है, बिचली पीढ़ी हंस नहीं तरि है।

जैसे कलयुग के प्रारम्भ में प्रथम पीढ़ी वाले भक्त अशिक्षित थे तथा कलयुग के अंत में अंतिम पीढ़ी वाले भक्त कृतघनी हो जाऐंगे तथा अब वर्तमान में सन् 1947 से भारत स्वतंत्र होने के पश्चात् बिचली पीढ़ी प्रारम्भ हुई है। सन् 1951 में मुझ दास को भेजा है। अब सर्व भक्तजन शिक्षित हैं। वह बिचली पीढी वाला भक्ति समय प्रारम्भ हो चुका है। मुझ दास के पास सत्यनाम तथा सार शब्द तथा पांच नाम परमेश्वर कबीर दत्त हैं। उपदेश प्राप्त करके अपना कल्याण करायें। मानव जीवन तथा बिचली पीढ़ी वाला समय आप को प्राप्त है। अविलम्ब मुझ दास के पास आऐं अन्यथा पश्चाताप् करना पड़ेगा। यथार्थ कबीर पंथ अर्थात् एक पंथ प्रारम्भ हो चुका है। अब यह सत मार्ग सत साधना पूरे संसार में फैलेगी तथा नकली गुरु तथा संत, महंत छुपते फिरेंगे।

पुस्तक "धनी धर्मदास जीवन दर्शन एवं वंश परिचय" के पृष्ठ 46 पर लिखा है कि ग्यारहवीं पीढ़ी को गद्दी नहीं मिली। जिस महंत जी का नाम "धीरज नाम साहब" कवर्धा में रहता था। उसके बाद बारहवां महंत उग्र नाम साहेब ने दामाखेड़ा में गद्दी की स्थापना की तथा स्वयं ही महंत बन बैठा। इससे पहले दामाखेड़ा में गद्दी नहीं थी।

इससे स्पष्ट है कि पूरे विश्व में मुझ दास के अतिरिक्त वास्तविक भक्ति मार्ग नहीं है। सर्व प्रभु प्रेमी श्रद्धालुओं से प्रार्थना है कि प्रभु का भेजा हुआ दास जान कर अपना कल्याण करवाऐं।

यह संसार समझदा नाहीं, कहन्दा श्याम दोपहरे नूं।
गरीबदास यह वक्त जात है, रोवोगे इस पहरे नूं।।

संत रामपाल दास
सतलोक आश्रम बरवाला,
जिला हिसार (हरियाणा)।

"प्रभु प्रेमी पाठकों की शंकाओं का समाधान - रामपाल दास"

परमेश्वर के तत्वज्ञान सम्बन्धित लेखों को विज्ञापन के माध्यम से समाचार पत्रों में पढ़कर 99.99 प्रतिशत पाठक श्रद्धालुओं के प्रशंसा युक्त पत्र सतलोक आश्रम बरवाला में प्राप्त हुए। जिन्होंने लगभग सर्व लेख पढ़े हैं। एक आध श्रद्धालु ने केवल एक ही विज्ञापन पढ़ा, उसी के आधार पर नाराज होकर बिना पते का पत्र डाल दिया तथा एक पाठक ने 9 जुलाई 2005 के दैनिक भास्कर पृष्ठ 6 पर एक कोने में शंका व्यक्त की है। उन श्रद्धालुओं से प्रार्थना है कि पूर्ण जानकारी के लिए दो पुस्तकें (1. ज्ञान गंगा 2. गीता तेरा ज्ञान अमृत) सतलोक आश्रम बरवाला से मुफ्त प्राप्त करें। दूरभाष (8222880541, 8222880542) द्वारा अपना पता लिखवायें, पुस्तकें आपके पास पहुँच जाएंगी। केवल डाकखर्च आपको देना होगा।

शंका - (क) किसी की निंदा नहीं करनी चाहिए। जो संत जैसा मार्ग दर्शन करता है, करता रहे।

उत्तर - मुझ दास का उद्देश्य है कि सर्व भक्त समाज को तत्वज्ञान कराऊँ। जिस भी शास्त्र पर जो भक्त वंदआधारित है उसी की वास्तविकता आप के समक्ष रखूं, तभी उन अधूरे शास्त्रों को त्यागने तथा सत भक्ति ग्रहण करने की तड़फ जाग्रत होगी। जैसे पेंटर (रंग करने वाला) जंग अर्थात् पूर्व किया गलत पैंट हटाने के लिए रेगमार लगाता है, फिर पेंट सही पकड़ करता है। इसी प्रकार शास्त्र विधि त्याग कर मनमाना आचरण (पूजा) करने वाले श्रद्धालुओं पर जंग लगा है, जिसे छुड़ाने के लिए शास्त्रों का तत्वज्ञान रूपी रेगमार लगाना अति आवश्यक है, यह निंदा नहीं है।

वास्तविक वस्तु का बोध कराने के लिए नकली वस्तु को साथ दिखाना आवश्यक होता है। जैसे सरकार ने 500 रूपये के नकली नोट पकड़े थे। जनता को धोखे से बचाने के लिए नकली तथा असली दोनों नोट समाचार पत्रों तथा टी.वी. के माध्यम से दिखाए थे। सरकार ने निंदा नहीं, परोपकार किया था, जो अति आवश्यक था। सरकार के उपरोक्त प्रयत्न को तीन प्रकार के व्यक्ति निंदा कह सकते हैं, एक तो जिसने नशा कर रखा हो, दूसरा अबोध बालक तथा तीसरा उसी गिरोह का व्यक्ति जो नकली नोट छापते थे।

सर्व पवित्र धर्मों के पवित्र शास्त्र वास्तविक (असली) नोट हैं। परन्तु उन्हीं की आड़ में वर्तमान के मार्गदर्शकों ने जो साधना की विधि बताई है, दास ने तो उसकी तुलना असली शास्त्रों से की है। जैसे किसी अध्यापक ने गणित का प्रश्न ठीक हल नहीं किया है उसी पर सर्व कक्षा के विद्यार्थी आश्रित हैं। दूसरा अध्यापक उसे ठीक कराए और विद्यार्थी कहें की अध्यापक जी तो पूर्व अध्यापक की निंदा कर रहा है, तो वह उन विद्यार्थियों की बाल बुद्धि ही है। मूल व्याख्या फिर पढ़ें। किसी अन्य अध्यापक से भी जानकारी लें। पूर्ण निश्चय करके परीक्षा की तैयारी करना ही उचित है।

अपने शास्त्र (सद्ग्रन्थ) सत्यज्ञान युक्त हैं, जिनमें मूल व्याख्या है। उन्हें पुनर् पढ़कर निर्णय लेना ही हितकर है। मूल शास्त्र हैं - 1. पवित्र चारों वेद, 2. पवित्र श्रीमद्भगवत गीता जी, अठारह पुराण, श्रीमद्भागवत सुधासागर जो पवित्र हिन्दु समाज के शास्त्र माने जाते हैं। वास्तव में उपरोक्त शास्त्र महर्षि व्यास जी द्वारा उस समय लिपिबद्ध किए गए थे जब कोई अन्य धर्म(हिन्दु, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई आदि) नहीं था। केवल वेदों के अनुसार साधना सर्व भक्त

समाज किया करता था, ऋषिजन एक ही प्रकार की साधना श्रद्धालुओं को बताते थे। परन्तु वर्तमान के मार्गदर्शक शास्त्र विधि त्याग कर मनमाना आचरण (पूजा) कर तथा करवा रहे हैं जो हानिकारक है। प्रमाण श्रीमद्भगवत गीता अध्याय 16 श्लोक 23-24 में कहा है कि अर्जुन ! जो साधक शास्त्र विधि त्याग कर मनमाना आचरण (पूजा) करता है उसे न तो कोई सुख होता है, न परमगति, न ही कोई कार्य ही सिद्ध होता है। इसलिए भगवत भक्ति के करने तथा न करने योग्य कर्मों (साधनाओं) के निर्णय के लिए शास्त्र ही प्रमाण हैं(श्रीमद्भगवत गीता जी का ज्ञान बोला जा रहा था, अतः चारों वेदों की तरफ संकेत है)।

पवित्र गीता जी चारों पवित्र वेदों का ही सारांश है, जो भक्ति के लिए प्रभु का संविधान है। संविधान की अवहेलना करने वाला दोषी होता है। पवित्र गीता जी तथा पवित्र चारों वेदों का ज्ञान ब्रह्म (ज्योति निरंजन-काल) द्वारा ही दिया गया है। जिसमें ब्रह्म(क्षर पुरुष), परब्रह्म(अक्षर पुरुष) तथा पूर्णब्रह्म(परम अक्षर पुरुष) के विषय में विवरण है। प्रमाण : पवित्र श्रीमद्भगवत गीता अध्याय 15 श्लोक 1 से 4 तथा 16-17 में, पवित्र यजुर्वेद अध्याय 40 मंत्र 17, पवित्र ऋग्वेद मण्डल 10 सूक्त 90 मंत्र 1 से 5 आदि-आदि।

उपरोक्त शास्त्रों में पूजा की विधि केवल ब्रह्म तक की ही वर्णित है। पूर्णब्रह्म की पूजा की विधि के विषय में पवित्र गीता तथा पवित्र वेदों का ज्ञान दाता ब्रह्म(ज्योति निरंजन-काल) ने कहा है कि उस पूर्ण परमात्मा के विषय में मुझे ज्ञान नहीं है। उसके लिए किसी तत्वज्ञान युक्त तत्वदर्शी संतों की खोज कर, फिर जैसे वे तत्वदर्शी संत बताऐं वैसे साधना उस परमात्मा की करना। प्रमाण पवित्र गीता अध्याय 4 श्लोक 34, यजुर्वेद अध्याय 40 मंत्र 10 ।

अपनी साधना के विषय में पवित्र श्रीमद्भगवत गीता के ज्ञान दाता ब्रह्म ने अध्याय 8 मंत्र 13 में कहा है -

ओम् इति एकाक्षरम्, ब्रह्म व्याहरन् माम् अनुस्मरन्,
यः प्रयाति त्यजन् देहम्, सः याति परमाम् गतिम्।।13।।

इसका शब्दार्थ है कि गीता बोलने वाला ब्रह्म अर्थात् काल कह रहा है कि (माम् ब्रह्म) मुझ ब्रह्म का तो (इति) यह (ओम् एकाक्षरम्) ओं अर्थात् ॐ एक अक्षर है (व्याहरन्) उच्चारण करके (अनुस्मरन्) स्मरण करने का (यः) जो साधक (त्यजन् देहम्) शरीर त्यागने तक अर्थात् अन्तिम स्वांस तक (प्रयाति) साधना करता है (सः) वह साधक ही मेरे वाली (परमाम् गतिम्) परमगति को (याति) प्राप्त होता है। भावार्थ है कि श्री कष्ण जी के शरीर में प्रेतवत् प्रवेश करके ब्रह्म अर्थात् हजार भुजा वाला ज्योति निरंजन काल कह रहा है कि मुझ ब्रह्म की साधना केवल एक ओम् (ॐ) नाम से मत्यु पर्यन्त करने वाले साधक को मुझसे मिलने वाला लाभ प्राप्त होता है। अन्य कोई मंत्र मेरी भक्ति का नहीं है तथा अपनी गति को भी गीता अध्याय 7 मंत्र 18 में अनुत्तमाम् अर्थात् अति घटिया बताया है। इसलिए गीता अध्याय 18 श्लोक 62 में कहा है कि अर्जुन सर्व भाव से उस परमेश्वर की शरण में जा, तब तू पूर्ण मुक्त होकर परम शान्ति को तथा सतलोक अर्थात् सनातन धाम को प्राप्त होगा। यदि मेरी शरण में रहेगा तो युद्ध भी कर तथा मेरा स्मरण भी कर (गीता अध्याय 8 श्लोक 7)। परन्तु तू तथा मैं (गीता ज्ञान दाता प्रभु) दोनों ही नाशवान हैं अर्थात् तेरे तथा मेरे बहुत जन्म हो चुके हैं, आगे भी होते रहेंगे (गीता अध्याय 4 श्लोक 5 तथा गीता अध्याय 2 श्लोक 12 व अध्याय 10 श्लोक 2 में)। उस परमेश्वर के ज्ञान व भक्ति विधि के लिए किसी तत्वदर्शी संत की खोज करने को कहा है(गीता अध्याय

4 श्लोक 34)। अब सर्व से प्रार्थना है कि उस परमेश्वर पूर्णब्रह्म का ज्ञान मुझ दास के पास है, निःशुल्क प्राप्त करें।

यही प्रमाण यजुर्वेद अध्याय 40 मंत्र 15 व 17 में भी है। उपरोक्त सद्ग्रन्थों अर्थात् प्रभु भक्ति के संविधान ने सिद्ध कर दिया कि एक ओ३म् नाम को छोड़ कर अन्य जो भी नाम हैं वे शास्त्र विधि (प्रभु भक्ति के संविधान) के विरूद्ध मनमाना आचरण (पूजा) हैं जो हानिकारक है। इसलिए ओम् नमो शिवाय, ओम् नमो भगवते वासुदेवाय, हरिओम् आदि भी मंत्र शास्त्र विधि अनुसार नहीं हैं। जैसे मोटर साईकिल के पिस्टन से कोई अन्य नट आदि वैल्ड कर देना हानिकारक है, ऐसे ही ओम नाम के साथ अन्य कोई वाक्य या अक्षर लगाना शास्त्र विधि रहित है। इसलिए ब्रह्म तक की साधना भी केवल एक ओं (ॐ) 'ओ३म्' नाम के जाप से ही सफल होती है, अन्य से नहीं।

शंका - (ख) महर्षि बाल्मीक जी मरा-मरा जाप करके तिर गए।

उत्तर - यदि मरा-मरा नाम जाप करने से ही साधक पार हो जाए तो उपरोक्त पवित्र शास्त्रों का ज्ञान प्रभु नहीं देता। महर्षि वाल्मिक जी के उद्धार के विषय में आप ने दंत कथा सुनी है, जिस कारण ऐसी शंका उत्पन्न हुई है। इसीलिए तत्वज्ञान की आवश्यकता भक्त समाज को है, जिसके लिए मुझ दास द्वारा लिखी उपरोक्त पुस्तकें निःशुल्क केवल डाकखर्च पर प्राप्त करके पढ़ें।

महर्षि वाल्मिक जी को सप्त ऋषि मिले थे। ऋषि लोग केवल वेदों अनुसार एक 'ओम' (ॐ) मंत्र ही उच्चारण करके जाप करना साधक को बताते थे। जिसे महर्षि वाल्मिक जी ने सर्व विकार त्याग कर संसार से उल्ट कर अनन्य मन से जाप किया। यह ओम नाम उच्चारण (बोल-बोल) के करने से ही ब्रह्म साधना की सफलता कही है। इसलिए श्री वाल्मिक जी ने ओम-ओम का उच्चारण करके जाप किया। जो अन्य श्रोता को ओम-ओम-ओम के स्थान पर मओ-मओ-मओ उल्टा सुनता है। परन्तु साधक उसे हृदय से विधिवत् 'ओम' ही उच्चारण करता है।

महर्षि वाल्मिक जी के विषय में - 'उलटा नाम जपा जग जाना, वाल्मिक भए ब्रह्म समाना'

भावार्थ - महर्षि वाल्मिक जी ने संसार को असार जान कर संसार से विरक्त (उलट कर) होकर केवल ओं नाम जाप किया, जिससे ईश्वरीय गुणों से युक्त हो गए। दंत कथाओं के आधार पर मरा-मरा शब्द राम का उलटा कहा है, परन्तु 'राम' नाम के जाप का किसी शास्त्र में प्रमाण नहीं है। शंका उत्पन्न होती है कि फिर यह प्रचलित कैसे हुआ? इस विषय में वास्तविकता है कि ऋषिजन 'ओम्' नाम अपने शिष्य को जाप के लिए कहते हैं। केवल अधिकारी व्यक्ति (संत-गुरु) ही नाम दान कर सकता है, अन्य नहीं। गुरु जी सर्व अनुयाईयों को कहता है कि मंत्र का जाप काम करते-करते करो अर्थात् सांसारिक कार्यों के कारण भूल न पड़े। इसलिए सर्व साधकों को आदेश ऋषि करता था कि एक-दूसरे को नाम साधना की याद दिलाते रहना, कहीं भूल न पड़ जाए। परन्तु यह नहीं कहना कि 'ओम्' नाम जाप करो। क्योंकि ऐसा कहने से आप का आदेश हो जाएगा। आप अधिकारी नहीं हो इसलिए दोषी हो जाओगे, आपका नाम खण्ड हो जायेगा। गुरु जी (ऋषि जी) कहते थे कि आप एक दूसरे से कहना राम-राम, जिससे सामने वाला उपदेशी सावधान हो जाएगा। वह यदि सांसारिक उलझन में नाम जाप नहीं कर रहा होगा तो करने लग जाएगा या कर रहा होगा तो अच्छी बात है। इसलिए एक साधक जब रास्ते में या कहीं और साधक से मिलता है तो कहता है कि राम-राम, जिसका भावार्थ है कि प्रभु (राम) की याद न भूलना, राम ही सब कुछ है। राम (प्रभु) की ही भक्ति सत है, शेष असत है। इसके उत्तर में दूसरा साधक कहता है वास्तव में यही है। इसलिए कहता है राम-राम अर्थात् कोई संशय नहीं है कि प्रभु भक्ति ही सर्व सुखदायक

है। यदि सामने वाला 'ओम्' मंत्र का जाप कर रहा होता है तो भी मन-मन में कहता है राम-राम अर्थात् साधना कर रहा हूँ, भूल नहीं पड़ी है। यदि विचारों में उलझ कर नाम जाप भूल रहा होता है तो भी कहता है राम-राम मन-2 में कहता है भूल पड़ गई थी, अब फिर शुरु करता हूँ। इस प्रकार यह राम-राम शब्द प्रचलित हो गया। रामनाम के जाप को जपने के लिए वर्तमान के गुरु भी कहते हैं। उस विषय में वास्तविकता है कि कुछ एक पुण्यकर्मी प्राणी में पूर्व शास्त्र विधि अनुसार साधना की कमाई के कारण कुछ सिद्धि शेष रह जाती है, जिस कारण से कुछ चमत्कार हो जाते हैं। फिर बहुत से उसके अनुयाई बन जाते हैं। फिर उससे प्रभु भक्ति की विधि भी श्रद्धालु जानना चाहते हैं। वह पूर्व सिद्धि युक्त कथित ऋषि सुने-सुनाए ज्ञान (दंत कथा) के आधार से कह देता है राम-राम जाप करो। जिसे अनुयाई भक्ति मार्ग जान कर करते रहते हैं, परन्तु शास्त्र विधि त्याग कर मनमाना आचरण होने से हानिकारक है, प्रमाण गीता अध्याय 16 मंत्र 23-24 ।

इसी प्रकार जो पुण्यकर्मी प्राणी शास्त्र विधि त्याग कर मनमाना आचरण (पूजा) करते-करते शरीर त्याग जाते हैं वे पितर बन जाते हैं। फिर उसके अनुयाई ध्यान लगाते हैं, तो वही भूत(प्रेत) अंदर से आवाज देने लगता है, राम-राम रा......म। जिसे परमात्मा की आकाशवाणी जानकर श्रद्धालु उसी 'राम' नाम पर दृढ़ता से लग जाते थे तथा अनुयाईयों को भी 'राम' नाम दान करने लगे तथा कहते थे कि यह प्रभु का दिया मंत्र है।

विचारणीय विषय है कि 'राम' नाम के जाप करने वाला गुरु जी चमत्कार दिखाता था। परन्तु शिष्य बीस वर्ष की साधना के पश्चात् भी कुछ नहीं दिखा पाया। इससे सिद्ध हुआ कि जो पूर्व भक्ति संस्कार से सिद्धि युक्त उस गुरू जी की बैट्री पहले जन्म के चार्जर अर्थात् शास्त्र अनुकूल साधना से चार्ज थी। परन्तु इस जन्म में शास्त्र विधि रहित साधना करके स्वयं भी खाली हो कर गया तथा अनेकों अनुयाईयों को भी गलत मार्ग दर्शन करके दोषी हो गया। श्री रामचन्द्र जी ने भक्तमति शबरी(भिलनी) को नवधा भक्ति के विषय में बताते हुए कहा - (श्री तुलसीदास कृत रामायण)

'मंत्र जप मम दृढ़ विश्वासा, पंचम भजन जो वेद प्रकाशा' ।

भावार्थ है कि श्री रामचन्द्र जी गुरु रूप से अपनी शिष्या भक्तमति शबरी को पाँचवी विधि में कह रहे हैं कि मैं जो ज्ञान बता रहा हूँ इस मेरे ज्ञान पर दृढ़ विश्वास कर तथा मंत्र जाप (भजन) भी उसी मंत्र का करो जो वेद में वर्णित है अर्थात् ओ३म् नाम। इसी विषय में कविर्देव (कबीर परमेश्वर) ने कहा है :-

कबीर, राम नाम जो जाप करत हैं, जान मुक्ति को काम।
श्री राम ने वशिष्ठ गुरु किया, जिन्ह दीन्हा ओम् नाम।।

भावार्थ - जो साधक राम-राम नाम जाप मुक्ति का जान कर जाप करते हैं वे कृपया विचार करें, जब श्री राम ने वशिष्ठ मुनि से आत्मकल्याण के लिए दीक्षा ली तब श्री वशिष्ठ ऋषि ने श्रीराम को भी 'ओ३म्' नाम ही जपने को कहा था। इसी आधार से श्री रामचन्द्र जी ने अपनी शिष्या भक्तमति शबरी को भी कहा है कि वेद ज्ञान अनुसार नाम जाप का मंत्र (ओम्) ही जाप (भजन) के लिए उत्तम है, क्योंकि यह मंत्र वेद में वर्णित है, अन्य कोई नाम ब्रह्म साधना का नहीं है।

इसलिए दास की प्रार्थना है कि आज सर्व समाज शिक्षित है, अपने-अपने सद्ग्रन्थों को कृपया पुनर् पढ़ें।

जैसे मुझ दास के अनुयाई 'सत साहेब' कहते हैं, जिसका भावार्थ है कि साहेब=प्रभु, सत= अविनाशी अर्थात् परमात्मा ही सत है, अन्य कोई वस्तु अपनी नहीं है। इसलिए गुरु मंत्र (जो अन्य

जाप मंत्र होता है) जाप करते रहो। इसी को एक-दूसरा भक्त आपस में उच्चारण करता है, जिससे वास्तविक मंत्र जाप की भूल न पड़ जाए। अब वर्तमान में कई नकली गुरु जी 'सत साहेब' नाम जाप करने को ही बताने लग गए हैं। कई 'सतनाम' जाप करने को कहते हैं। जबकि सतनाम तो सच्चे मंत्र की तरफ संकेत है। जैसे कोई कहे 'दवाई खाले', उस दवाई का नाम कुछ और होता है। इसी प्रकार दास की प्रार्थना है कि तत्वज्ञान को समझें।

शंका - (ग) किसी की भावनाओं को ठेस नहीं पहुंचानी चाहिए।

उत्तर - यदि कोई अबोध बच्चा बिजली के नंगे तार को पकड़ने जा रहा हो, जिसमें से प्रकाश की आतिशबाजी सी चल रही हो (स्पार्किंग के कारण चमक निकल रही हो)। बच्चा उसे अच्छी वस्तु जानकर भावनावश पकड़ना चाहता है। यदि बड़ा व्यक्ति देख ले तो दौड़ कर बच्चे को उठाएगा या उस बिजली की तार को उस बच्चे की पहुंच से दूर कर देगा। भले ही बच्चे की भावना को ठेस लगने के कारण बच्चा रोता रहे, परन्तु उस समय उसकी भावना को ठेस लगाना अति आवश्यक है।

ठीक यही प्रयत्न मुझ दास का है कि अपने सर्व शास्त्र आज भी साक्षी हैं। परन्तु शास्त्र विधि त्यागकर मनमाना आचरण (पूजा) करके साधक अनमोल मनुष्य जीवन को नष्ट कर रहा है। शास्त्र अनुकूल साधना का ज्ञान कराना अति आवश्यक है। भले ही प्रथम बार किसी को कष्ट भी हो, परन्तु उद्देश्य गलत नहीं है।

शंका - (घ) किसी रेखा को काटने की बजाए नई लगाना ही ठीक है।

उत्तर - पुरानी रेखा के साथ ही तो नई रेखा लगाई जा रही है। वर्तमान संतों की साधना को लिख कर फिर शास्त्र अनुकूल साधना से ही तुलना की जा रही है।

प्रश्न : शंका - (ड़) समाज सुधारकों के विरुद्ध मोर्चा खोल देना कहाँ तक न्याय संगत है ?

उत्तर - जिन समाज सुधारकों ने अपने विचारों से रची पुस्तकों में समाज बिगाड़ का विवरण लिखा है, उसे पढ़कर या लिख कर दिखाना न्याय संगत ही है। जैसे एक समाज सुधारक महर्षि दयानन्द जी द्वारा रची 'सतार्थ प्रकाश' नामक पुस्तक समुल्लास 4 में लिखा है कि -

1. जिस कुल में किसी के बवासीर, मिर्गी, अक्षय, दमा, खांसी आदि रोग हैं, तथा किसी के शरीर पर बड़े-बड़े बाल हैं उस पूरे कुल की लड़की व लड़के से विवाह नहीं करना चाहिए।

2. पिता का एक गोत्र तथा माता की छः पीढ़ियों के गोत्र छोड़ कर विवाह करना उत्तम है।

3. जिस लड़की का नाम गंगा, जमुना, सरस्वती आदि नदियों पर है तथा काली नाम तथा भूरे नेत्र वाली हों उससे विवाह न करना चाहिए।

4. तथा 24 वर्ष की स्त्री से 48 वर्ष के पुरुष का विवाह उत्तम है। महर्षि दयानन्द जी का भावार्थ है कि 24 वर्ष की स्त्री तथा 48 वर्ष के पुरुष का विवाह होना चाहिए। यदि उपरोक्त नियमों के अनुसार विवाह नहीं किया जाता वह देश खुशहाल नहीं हो सकता। (पंष्ठ 70-71)

5. शुद्र के अतिरिक्त अन्य तीन वर्णों में जिसकी पत्नी की मंत्यु हो जाए उस पुरुष तथा विधवा का पुनर् विवाह नहीं होना चाहिए। वे केवल नियोग कर सकते हैं। उनके लिए कहा कि वंश चलाने के लिए किसी अपने कुल का लड़का गोद लेकर वंश चलाऐं या नियोग करें।

पुनर्विवाह तथा नियोग की भिन्नता बताते हुए सतार्थ प्रकाश समुल्लास 4 में लिखा है कि विवाह में तो पति-पत्नी सदा इकट्ठे रहते हैं तथा दोनों मिल कर बच्चों का पालन करते हैं। आपस में झगड़ा भी करते रहते हैं।

परन्तु नियोग में स्त्री पुरुष केवल मिलन समय मिलते हैं, फिर अपने-अपने घर में

अलग-अलग रहते हैं। जो संतान उत्पन्न होती है वह न तो वीर्यदाता का पुत्र कहलाता है तथा गोत्र भी वीर्यदाता वाला नहीं होता, मृत पति वाला ही माना जायेगा। बच्चों की परवरिश अकेली स्त्री ही करती है। महर्षि दयानन्द जी का कहने का भावार्थ है कि विधवा का पुनर् विवाह ठीक नहीं, नियोग (पशु तुल्य कर्म) ग्यारह व्यक्तियों तक करना दोष नहीं है। (पृष्ठ 96-97,101)

<u>विचार करें</u> - यह नियोग तो पशुओं तुल्य हुआ जैसे नर पशु मादा पशु से नियोग करके चला जाता है, फिर कुतियां बच्चों के समूह को लिए फिरती है।

एक विधवा स्त्री ग्यारह व्यक्तियों तक नियोग (पशु तुल्य घिनौंना कर्म) कर सकती है। इसी प्रकार पुरुष भी ग्यारह स्त्री तक नियोग कर सकता है। समुल्लास 4 पृष्ठ 101 यह भी लिखा दिखाया कि पुनर्विवाह करने से तो स्त्री का पतिव्रत्य अर्थात् पतिव्रता धर्म नष्ट हो जाता है, समुल्लास 4 पृष्ठ 97 परन्तु नियोग जैसे पशु तुल्य कर्म से चाहे ग्यारह पुरुष संभोग करलें उनसे पतिव्रता धर्म नष्ट नहीं होता? (यह महर्षि द्वारा सत्यार्थ प्रकाश समुल्लास 4 पृष्ठ 96 से 101 तक लिखा है।)

सत्यार्थ प्रकाश समुल्लास 4 पृष्ठ 102 पर यह भी लिखा है कि जिस स्त्री का पति जीवित है वह दूर देश में रोजगार के लिए गया हो तो उसकी स्त्री तीन वर्ष तक बाट देखकर किसी अन्य पुरुष से संतान उत्पत्ति नियोग कुकर्म से करले, जब पति घर आवे तो नियोग किए पति को त्याग दे। जो गैर पुरुष से संतान उत्पन्न की है, वह विवाहित पति की ही मानी जायेगी।

सत्यार्थ प्रकाश में समाज सुधार की कलम तोड़ व्याख्या एक और देखने को मिली कि जिस पुरुष की पत्नी अप्रिय बोलने वाली हो तो उस पुरुष को चाहिए कि किसी अन्य स्त्री से केवल नियोग करके संतान उत्पत्ति करले तथा रहे अपनी पत्नी के साथ ही। इसी प्रकार जो पुरुष अत्यन्त दुःखदायक हो तो उसकी स्त्री भी दूसरे पुरुष से नियोग से संतान उत्पत्ति करके उसी विवाहित पति के दायभागी संतान कर लेवे।

भावार्थ है कि स्त्री किसी परपुरुष के पास जाकर कुकर्म करके संतान उत्पन्न करके अपने पति के घर में ही रहे तथा जो गैर संतान उत्पन्न हो वह विवाहित पति की सम्पति की हिस्सेदार (वारिस) होगी। यह लिखा है कि नियोगी पुरुष का गोत्र नहीं माना जाएगा, उस गैर संतान का गोत्र भी विवाहित पति वाला ही माना जाएगा। महर्षि दयानन्द जी ने लिखा है कि इस प्रकार पूर्वोक्त विवाह नियमों तथा नियोग से अपने-अपने कुल की उन्नति करें। उपरोक्त विचार महर्षि दयानन्द जी के समाज सुधार के विषय में हैं। {विचारणीय बात है कि जिस पति की पत्नी उसकी आँखों के सामने अन्य पुरुष के पास जाए तो क्या वह परिवार उन्नति कर सकता है ? वह तो कुरुक्षेत्र का मैदान हो जायेगा। 24 वर्ष की स्त्री 48 वर्ष के वृद्ध से विवाह करे जो पिता की आयु के समान होता है, क्या कोई यह उपरोक्त नियम पालन करके सुखी हो सकता है अर्थात् नहीं। ऐसे निराधार शास्त्रों की पोल संत ही खोलते हैं, ताकि समाज सावधान होकर सतमार्ग अपनाए।} उपरोक्त विवरण सत्यार्थ प्रकाश से निष्कर्ष रूप में समुल्लास 4 पृष्ठ 70-71 तथा 96 से 102 पर से लिया गया है।

भक्ति मार्ग के विषय में महर्षि दयानन्द जी के विचार पूर्ण रूप से वेदज्ञान विरुद्ध हैं।

1. महर्षि दयानन्द जी ने लिखा है कि प्रभु की भक्ति, स्तुति आदि करने से पाप नाश(क्षमा) नहीं होते, अन्य लाभ होता है जैसे उपासना से परब्रह्म से मेल तथा उसका साक्षात्कार होना। फिर अपने ही करकमल से यजुर्वेद अध्याय 8 मंत्र 13 के अनुवाद में लिखा

है कि परमात्मा अधर्म के अधर्म अर्थात् घोर पाप को भी नाश (क्षमा) कर देता है। इससे सिद्ध हुआ कि महर्षि दयानन्द जी को वेदज्ञान शुन्य था। वे प्रभु को निराकार कहते हैं तथा दूसरा प्रभु नहीं मानते। फिर स्वयं कह रहे हैं कि पापी आत्मा (जिसका पाप नाश नहीं हुआ वह पापी हुआ) ब्रह्म से भी दूसरे परब्रह्म से साक्षात्कार कर सकती है। साक्षात्कार तो साकार से होता है, निराकार से नहीं। यदि पापी व्यक्ति भी प्रभु प्राप्ति कर सकता है तो प्रभु भक्ति की रूचि ही समाप्त हो जाती है। जैसे दादा से दूसरा दादा (दादा का पिता) परदादा होता है।

यदि कोई रोगी वैद्य के पास रोग मुक्त होने के लिए जाए तथा वैद्य कहे कि औषधी से रोग समाप्त तो होगा नहीं, परन्तु पहलवान हो जाएगा। क्या वह व्यक्ति वैद्य हो सकता है ? यदि कोई साबुन विक्रेता कहे कि साबुन कपड़े का मैल तो छुड़वाता नहीं, परन्तु कपड़े को मजबूत कर देता है, क्या वह व्यक्ति साबुन से परिचित है ? वह तो पत्थर के टुकड़े साबुन रूप में विक्रय करने वाला ठग हो सकता है। ऐसी-ऐसी सैकड़ों त्रुटियां सत्यार्थ प्रकाश में हैं जो स्वामी दयानन्द जी द्वारा अपनी समझ से लिखा है, जो वेद ज्ञान के पूर्ण रूप से विपरीत है।

उपरोक्त विवरण सत्यार्थ प्रकाश से निष्कर्ष रूप में समुल्लास 4 पृष्ठ 70-71 तथा 96 से 102 पर से लिया गया है। यदि कोई शंका उठे तो कृपया सतलोक आश्रम करौंथा से ''गहरी नजर गीता में'' तथा ''सत्यार्थ प्रकाश'' दोनों पुस्तक मुफ्त प्राप्त करें। केवल फोन करें, पुस्तक आपके पास पहुंच जायेगी, केवल डाकखर्च आप का होगा। दूरभाष है - 8222880541, 8222880542

शंका - (च) भगवान शंकर के उपासक रावण को 'कुत्ते की मौत मरा' कहना तो अर्थ हुआ कि शंकर की उपासना व्यर्थ है।

उत्तर - दास अपनी तरफ से कुछ नहीं कहता, केवल अपने सद्ग्रन्थ जो कहते हैं, वही सर्व के समक्ष रखता हूँ। पवित्र श्रीमद्भगवत गीता अध्याय 7 श्लोक 12-15 तथा 20-23 तक कृप्या स्वयं पढ़ें।

''तीनों गुण क्या हैं ? प्रमाण सहित''

''तीनों गुण=रजगुण ब्रह्मा जी, सतगुण विष्णु जी, तमगुण शिव जी हैं। इसलिए त्रिगुण माया भी इन्हीं को कहा जाता है। ब्रह्म(काल) तथा प्रकृति (दुर्गा) से उत्पन्न हुए हैं तथा तीनों प्रभु नाशवान हैं''

प्रमाण :- गीताप्रैस गोरखपुर से प्रकाशित श्री शिव महापुराण जिसके सम्पादक हैं श्री हनुमान प्रसाद पोद्दार पृष्ठ सं. 110 अध्याय 9 रूद्र संहिता ''इस प्रकार ब्रह्मा-विष्णु तथा शिव तीनों देवताओं में गुण हैं, परन्तु शिव (ब्रह्म-काल) गुणातीत कहा गया है।

दूसरा प्रमाण :- गीताप्रैस गोरखपुर से प्रकाशित श्रीमद् देवीभागवत पुराण जिसके सम्पादक हैं श्री हनुमान प्रसाद पौद्दार चिमन लाल गोस्वामी, तीसरा स्कंद, अध्याय 5 पृष्ठ 123 :- भगवान विष्णु ने दुर्गा की स्तुति की : कहा कि मैं (विष्णु), ब्रह्मा तथा शंकर तुम्हारी कृपा से विद्यमान हैं। हमारा तो आविर्भाव (जन्म) तथा तिरोभाव(मृत्यु) होती है। हम नित्य (अविनाशी) नहीं हैं। तुम ही नित्य हो, जगत् जननी हो, प्रकृति और सनातनी देवी हो। भगवान शंकर ने कहा : यदि भगवान ब्रह्मा तथा भगवान विष्णु तुम्हीं से उत्पन्न हुए हैं तो उनके बाद उत्पन्न होने वाला मैं तमोगुणी लीला करने वाला शंकर क्या तुम्हारी संतान नहीं हुआ अर्थात् मुझे भी उत्पन्न करने वाली तुम ही हो। इस

संसार की सष्टि-स्थिति-संहार में तुम्हारे गुण सदा सर्वदा हैं। इन्हीं तीनों गुणों से उत्पन्न हम, ब्रह्मा-विष्णु तथा शंकर नियमानुसार कार्य में तत्पर रहते हैं।

उपरोक्त यह विवरण केवल हिन्दी में अनुवादित श्री देवीमहापुराण से है, जिसमें कुछ तथ्यों को छुपाया गया है। इसलिए यही प्रमाण देखें श्री मद्देवीभागवत महापुराण सभाषटिकम् समहात्यम्, खेमराज श्री कष्ण दास प्रकाश मुम्बई, इसमें संस्कत सहित हिन्दी अनुवाद किया है। तीसरा स्कंद अध्याय 4 पष्ठ 10, श्लोक 42 :-

ब्रह्मा – अहम् महेश्वरः फिल ते प्रभावात्सर्वे वयं जनि युता न यदा तू नित्याः, के अन्ये सुराः शतमख प्रमुखाः च नित्या नित्या त्वमेव जननी प्रकतिः पुराणा(42)।

हिन्दी अनुवाद :- विष्णु जी बोले हे मातः ! ब्रह्मा, मैं तथा शिव तुम्हारे ही प्रभाव से जन्मवान हैं, नित्य नही हैं अर्थात् हम अविनाशी नहीं हैं, फिर अन्य इन्द्रादि दूसरे देवता किस प्रकार नित्य हो सकते हैं। तुम ही अविनाशी हो, प्रकति तथा सनातनी देवी हो।(42)

पष्ठ 11-12, तीसरा स्कंद अध्याय 5, श्लोक 8 :- यदि दयार्द्रमना न सदां बिके कथमहं विहितः च तमोगुणः कमलजश्च रजोगुणसंभवः सुविहितः किमु सत्वगुणों हरिः ।(8)

अनुवाद :- भगवान शंकर बोले :-हे मात! यदि हमारे ऊपर आप दयायुक्त हो तो मुझे तमोगुण क्यों बनाया, कमल से उत्पन्न ब्रह्मा को रजोगुण किस लिए बनाया तथा विष्णु को सतगुण क्यों बनाया? अर्थात् जीवों के मत्यु रूपी दुष्कर्म में क्यों लगाया?

श्लोक 12 :- रमयसे स्वपतिं पुरुषं सदा तव गतिं न हि विह विद्म शिवे (12)

हिन्दी - अपने पति पुरुष अर्थात् काल भगवान के साथ सदा भोग-विलास करती रहती हो। आपकी गति कोई नहीं जानता।

विशेष - उपरोक्त विवरण से सिद्ध हुआ कि रजगुण श्री ब्रह्मा जी, सतगुण श्री विष्णु जी, तमगुण श्री शंकर जी हैं तथा ये तीनों नाशवान हैं। यह भी प्रमाणित हुआ कि दुर्गा अपने पति ब्रह्म के साथ भोग विलास करती है।

''तीनों गुण (रजगुण ब्रह्मा जी, सतगुण विष्णु जी, तमगुण शिव जी) अर्थात् त्रिगुण माया की पूजा व्यर्थ''

गीता अध्याय 7 श्लोक 12 : तीनों गुणों से जो कुछ हो रहा है वह मुझ से ही हुआ जान। जैसे रजगुण(ब्रह्मा) से उत्पत्ति, सतगुण(विष्णु) से पालन-पोषण स्थिति तथा तमगुण(शिव) से प्रलय(संहार) का कारण काल भगवान ही है। फिर कहा है कि मैं इन में नहीं हूँ। क्योंकि काल बहुत दूर(इक्कीसवें ब्रह्मण्ड में निज लोक में रहता है) है परंतु मन रूप में मौज काल ही मनाता है तथा रिमोट से सर्व प्राणियों तथा ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी व श्री शिव जी को यन्त्र की तरह चलाता है। पवित्र गीता जी के अ. 7 में ब्रह्म (ज्योति निरंजन - काल) कह रहा है कि हे अर्जुन! अब तुझे वह ज्ञान सुनाऊँगा जिसके जानने के बाद और कुछ जानना बाकी नहीं रह जाता। गीता बोलने वाला ब्रह्म कह रहा है कि मेरे इक्कीस ब्रह्मण्डों के प्राणियों के लिए मेरी पूजा से ही शास्त्र अनुकूल साधना प्रारम्भ होती है, जो वेदों में वर्णित है। मेरे अन्तर्गत जितने प्राणी हैं उनकी बुद्धि मेरे हाथ में है। मैं केवल इक्कीस ब्रह्मण्ड़ों में ही मालिक हूँ। इसलिए (गीता अ. 7 श्लोक 12 से 15 तक) जो भी तीनों गुणों से (रजगुण-ब्रह्मा से जीवों की उत्पत्ति, सतगुण-विष्णु जी से स्थिति तथा तमगुण-शिव

जी से संहार) जो कुछ भी हो रहा है उसका मुख्य कारण मैं (ब्रह्म-काल) ही हूँ। (क्योंकि काल को शाप लगा है कि एक लाख मानव शरीर धारी प्राणियों के शरीर को मार कर मैल को खाने का) जो साधक मेरी (ब्रह्म की) साधना न करके त्रिगुणमयी माया (रजगुण-ब्रह्मा जी, सतगुण-विष्णु जी, तमगुण-शिव जी) की साधना करके क्षणिक लाभ प्राप्त करते हैं, जिससे ज्यादा कष्ट उठाते रहते हैं, साथ में संकेत किया है कि इनसे ज्यादा लाभ मैं (ब्रह्म-काल) दे सकता हूँ, परन्तु ये मूर्ख साधक तत्वज्ञान के अभाव से इन्हीं तीनों गुणों (रजगुण-ब्रह्मा जी, सतगुण-विष्णु जी, तमगुण-शिव जी) तक की साधना करते रहते हैं। इनकी बुद्धि इन्हीं तीनों प्रभुओं तक सीमित है। त्रिगुण माया अर्थात् ब्रह्मा(रजगुण), विष्णु(सतगुण) तथा शिव (तमगुण) से मिलने वाले क्षणिक लाभ के द्वारा जिनका ज्ञान हरा जा चुका है। भावार्थ है कि वे फिर अन्य प्रभु की भक्ति नहीं करते। यदि कोई समझाने का प्रयत्न करता है तो उसी के दुश्मन बन जाते हैं। इसलिए गीता अध्याय 7 श्लोक 12 से 15 में कहा है कि तीनों प्रभुओं (त्रिगुणमाया) के पूजारी राक्षस स्वभाव को धारण किए हुए, मनुष्यों में नीच, शास्त्र विरूद्ध साधना रूपी दुष्कर्म करनेवाले, मूर्ख मुझे(ब्रह्म को)नहीं भजते। यही प्रमाण गीता अध्याय 16 श्लोक 4 से 20 व 23, 24 तक अध्याय 17 श्लोक 2 से 14 तथा 19 व 20 में भी है।

विचार करें :- रावण ने भगवान शिव जी को मत्युंजय, अजर-अमर, सर्वेश्वर मान कर भक्ति की, दस बार शीश काट कर समर्पित कर दिया, जिसके बदले में युद्ध के दौरान दस शीश रावण को प्राप्त हुए, परन्तु मुक्ति नहीं हुई, राक्षस कहलाया। यह दोष रावण के गुरुदेव का है जिस नादान (नीम-हकीम) ने वेदों को ठीक से न समझ कर अपनी सोच से तमोगुण युक्त भगवान शिव को ही पूर्ण परमात्मा बताया तथा भोली आत्मा रावण ने झूठे गुरुदेव पर विश्वास करके जीवन व अपने कुल का नाश किया।

एक भस्मागिरी नाम का साधक था, जिसने शिव जी (तमोगुण) को ही ईष्ट मान कर शीर्षासन(ऊपर को पैर नीचे को शीश) करके 12 वर्ष तक साधना की, वचन बद्ध करके भस्मकण्डा ले लिया। भगवान शिव जी को ही मारने लगा। उद्देश्य यह था कि भस्मकण्डा प्राप्त करके भगवान शिव जी को मार कर पार्वती जी को पत्नी बनाऊँगा। भगवान श्री शिव जी डर के मारे भाग गए, फिर श्री विष्णु जी ने उस भस्मासुर को गंडहथ नाच नचा कर उसी भस्मकण्डे से भस्म किया। वह भस्मागिरी जो शंकर जी (तमोगुण) का साधक था भस्मासुर अर्थात् राक्षस कहलाया। हरिण्यकशिपु ने भगवान ब्रह्मा जी (रजोगुण) की साधना की तथा राक्षस कहलाया।

एक समय आज से लगभग 325 वर्ष पूर्व हरिद्वार में हर की पैड़ियों पर (शास्त्र विधि रहित साधना करने वालों के) कुम्भ पर्व की प्रभी का संयोग हुआ। वहाँ पर सर्व (त्रिगुण उपासक) महात्मा जन स्नानार्थ पहुँचे। गिरी, पुरी, नाथ, नागा आदि भगवान श्री शंकर जी (तमोगुण) के उपासक तथा वैष्णों भगवान श्री विष्णु जी(सतोगुण) के उपासक हैं। प्रथम स्नान करने के कारण नागा तथा वैष्णों साधुओं में घोर युद्ध हो गया। लगभग 25000 (पच्चीस हजार) त्रिगुण उपासक मत्यु को प्राप्त हुए। जो व्यक्ति जरा-सी बात पर कत्ले आम कर देता है वह साधु है या राक्षस स्वयं विचार करें। आम व्यक्ति भी कहीं स्नान कर रहे हों और कोई व्यक्ति आ कर कहे कि मुझे भी कुछ स्थान स्नान के लिए देने की कपा करें। शिष्टाचार के नाते कहते हैं कि आओ आप भी स्नान कर लो। इधर-उधर हो कर आने वाले को स्थान दे देते हैं। इसलिए पवित्र गीता जी अध्याय 7 श्लोक 12 से 15 में कहा है कि जिनका मेरी त्रिगुणमई माया (रजगुण-ब्रह्मा जी, सतगुण-विष्णु जी, तमगुण-शिव जी) की पूजा के द्वारा ज्ञान हरा जा चुका है, वे केवल मान बड़ाई के भूखे राक्षस स्वभाव को धारण किए हुए,

मनुष्यों में नीच अर्थात् आम व्यक्ति से भी पतित स्वभाव वाले, दुष्कर्म करने वाले मूर्ख मेरी भक्ति भी नहीं करते।

यही भूमिका वर्तमान में श्री सुधांशु जी महाराज तथा श्री आसाराम जी महाराज कर रहे हैं जो सर्व नाम जाप के मंत्र शास्त्र विधि के विरुद्ध भक्त समाज को प्रदान कर रहे हैं तथा श्री शंकर जी तथा श्री विष्णु जी आदि की पूजा पर भक्त समाज को आधारित किए हुए हैं। इसलिए गलत मार्ग पर जा रहे हैं। पथिक को सही मार्ग बताना निंदा नहीं हित होता है। फिर भी किसी पर कोई दबाव नहीं, केवल प्रार्थना है कि शास्त्र विधि त्याग कर मनमाना आचरण (पूजा - साधना) मानव जीवन के लिए अति हानिकारक है। शास्त्र विधि अनुसार साधना मुझ दास के पास उपलब्ध है, निःशुल्क प्राप्त करें।

मुझ दास की प्रार्थना है कि मानव जीवन दुर्लभ है, इसे नादान सन्तों, महन्तों व आचार्यों, महर्षियों तथा पंथों के पीछे लग कर नष्ट नहीं करना चाहिये। पूर्ण संत की खोज करके उपदेश प्राप्त करके आत्म कल्याण करवाना ही श्रेयकर है। सर्व पवित्र सद्ग्रन्थों के अनुसार अर्थात् शास्त्र अनुकूल यथार्थ भक्ति मार्ग मुझ दास (रामपाल दास) के पास उपलब्ध है। कृपया निःशुल्क प्राप्त करें। सर्व पवित्र धर्मों की पवित्रात्माऐं तत्वज्ञान से अपरिचित हैं। जिस कारण नकली गुरुओं, संतों, महन्तों तथा ऋषियों तथा पंथों का दाव लगा हुआ है। जिस समय पवित्र भक्त समाज आध्यात्मिक तत्वज्ञान से परिचित हो जाएगा उस समय इन नकली सन्तों, गुरुओं व आचार्यों को छुपने का स्थान नहीं मिलेगा। कुछ श्रद्धालुओं को शंका है कि गुरु जी बदलना पाप है। उनसे प्रार्थना है कि पूरे गुरुदेव की प्राप्ति होने पर अधूरे गुरु को त्याग देना समझदारी होती है। जैसे एक वैद्य से रोग ठीक नहीं होता तो दूसरे डॉक्टर के पास जाना हितकर होता है। इसी प्रकार गुरु बदलना पाप नहीं पुण्य है। इसके बारे में कबीर साहेब कहते हैं कि - 'झूठे गुरु को तजते, तनिक न कीजै वार।' आध्यात्मिक ज्ञान को समझने के लिए कृपया सतलोक आश्रम करौंथा से निम्न सम्पर्क सूत्र से सम्पर्क करें।

जीव हमारी जाति है, मानव धर्म हमारा। हिन्दु मुस्लिम सिख ईसाई, धर्म नहीं कोई न्यारा।।
हिन्दु मुस्लिम सिख ईसाई, आपस में सब भाई–भाई। आर्य जैनी और बिश्नोई, एक प्रभु के बच्चे सोई।।
कबीरा खड़ा बाजार में, सबकी मांगे खैर। ना काहूँ से दोस्ती ना काहूँ से बैर।।

(संत) रामपाल दास

❑❑❑